*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.*

पूर्ण संख्या ७३ | | Reg. No. A 708
भाग १३ | मेष, संवत् १९७८। अप्रैल १९२१ | संख्या १
Vol XIII. | | NO. 1

## प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

### विषय सूची



प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३) ] [ एक प्रतिका मूल्य ।)

## विज्ञानपरिषद्-प्रयाग द्वारा प्रकाशित अपने ढंगकी अनूठी पुस्तकें:—

विज्ञान परिषद् ग्रंथमाला, महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट् द्वारा सम्पादित।

१—**विज्ञान प्रवेशिका** भाग १—ले० रामदास गौड़, एम० ए० तथा शालिग्राम भार्गव, एम० एस-सी० मूल्य ... ... ।)

२—**विज्ञान प्रवेशिका** भाग २—ले० महावीर प्रसाद, बी०एस-सी०, एल०टी०, विशारद १)

३—**मिफ़ताह-उल-फ़नून**—अनुवाद प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामी, ... ।)

४—**ताप**—ले० प्रेमवल्लभ जोशी, बी० एस सी० ।=)

५—**हरारत** (तापका उर्दू अनुवाद) प्रोफ़ेसर मेहदीहुसेन नासिरी, एम० ए० ... ।)

विज्ञान ग्रन्थमाला, प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी द्वारा सम्पादित

१—**पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य**—ले० शालिग्राम वर्मा ... ... -)

२—**केला**—ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ... -)

३—**सुवर्णकारी**—ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

४—**चुम्बक**—ले० शालिग्राम भार्गव, एम० एस सी० ... ... ... ।=)

५—**गुरुदेवके साथ यात्रा**—अनु० महावीर प्रसाद, बी० एस-सी., एल०टी०, विशारद ।=)

६—**क्षयरोग**—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस० ... -)

७—**दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस**—ले० प्रोफ़ेसर रामदास गौड़, एम० ए० ... -)

८—**शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम**—ले० गोपालनारायण सेनसिंह, बी० ए० ... ।)

९—**पैमाइश**—ले० श्री० मुरलीधर जी, एल. ए-जी तथा नन्दलाल जी ... १)

१०—**कपास और भारतवर्ष**—ले० प्रो० तेजशङ्कर कोचक, बी. ए. ... ... =)

११—**कृत्रिम काष्ठ**—ले० गङ्गाशङ्कर पचौली =)

१२—**आलू**—ले० " " ।)

परिषद्से प्राप्य अन्य पुस्तकें

**हमारे शरीरकी रचना भाग १**—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस. ... २।)

**हमारे शरीरकी रचना भाग २**—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस. ... ३।)

**बबा**—अनु० प्रो० करमनारायण बाहल, एम. ए. ... ... ... १)

**चिकित्सा सोपान**—ले० डा० बी. के. मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

**भारीभ्रम**—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. १।)

### चुम्बक

ले० प्रोफ़ेसर शालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी., मूल्य ।=)

यह पुस्तक अत्यन्त सरल और मनोरञ्जक भाषामें लिखी गई है। भारतीय विश्वविद्यालयोंकी इण्टरमीडियेट और बी. ए-सी परीक्षाओंके लिए जितनी बातें चुम्बकत्वके विषयमें जानना आवश्यक होता है, वह सब बातें इसमें दी हैं। कुछ बातें जो इस पुस्तकमें दी हैं अंग्रेज़ीकी मामूली पाठ्य पुस्तकोंमें भी नहीं पाई जाती हैं। लेखकने बड़ा परिश्रम करके उन्हें वैज्ञानिक पत्रोंमेंसे खोज निकाला है और इस पुस्तकमें दिया है। नीचे दी हुई समालोचनाएँ देखिये।

---

"इसमें चुम्बक और उसके सम्बन्धकी प्रायः सभी बातोंका सरल सुबोध भाषामें प्रतिपादन किया गया है"।

चित्रमय जगत

"This is the fourth volume of the science series above mentioned and is as good as its predecessors. The subject treated of is magnet and magnetism and the book is divided into 13 sections including an appendix and is written in good Hindi."—

MODERN REVIEW

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग १३ } मीन, संवत् १९७७ । अप्रैल सन् १९२१ । { संख्या १

## अध्यापन कला

[ लेखकः—अध्यापक विश्वेश्वर सहाय बी. ए. ]

अध्यापकका पहिला दिन बड़े महत्वका होता है। उस दिन उसकी परीक्षा होती है। परीक्षक बालक होते हैं। वे जान लेते हैं कि मास्टर साहब कैसे हैं और वे उसी दिन यह निश्चय कर लेते हैं कि मास्टर साहब से कैसा व्यवहार करना होगा।

इस कलामें प्रवीण होनेके लिए ट्रेनिंग कालेज उपस्थित हैं। पर ट्रेनिंग कालेजमें गए बिना ही एक चतुर अध्यापक इस कलामें कौशल प्राप्त कर सकता है। कई हेडमास्टरोंका विचार है कि नए ट्रेनिंग पास अध्यापकोंसे पुराने बिना ट्रेनिंग पास अध्यापक काम करनेमें अच्छे हैं। साधारणतया लोग यह कहते हैं कि ट्रेनिंग पाये हुए अध्यापक कुछ काम नहीं करते क्योंकि वे यह समझते हैं कि अब उनको कोई कुछ कह नहीं सकता। इसका अर्थ यही हो सकता है कि योग्य पुरुष किसी कारणसे अपनी योग्यताको काममें नहीं लाते।

कुछ लोग ऐसे भी देखे जाते हैं जिनको इसमें विश्वास ही नहीं कि अध्यापन वृत्तिके लिए किसी प्रकारके विशेष अध्ययनकी आवश्यकता है। वे यह समझते हैं कि ट्रेनिङ्ग कालेज व्यर्थ हैं। कोई भी पुरुष लड़कोंको पढ़ानेका काम कर सकता है। यह बड़ी भूल है। मेरा तात्पर्य यह नहीं कि ट्रेनिङ्ग कालेजमें जाना आवश्यक है पर अध्यापनके आधुनिक सिद्धान्तोंको जानना अत्यन्त ही आवश्यक है।

आरम्भ ही में मैंने लिखा है कि अध्यापकका पहला दिन बड़े महत्वका है। लड़के तो अध्यापकके आचारणसे यह निश्चय कर लेते हैं कि मास्टर साहब सीधे हैं या कड़े। हेडमास्टर यह तुरन्त समझ सकते हैं कि अध्यापक अध्यापनके

सिद्धान्तोंको जानता है या नहीं और वह क्लासके शिष्टाचार (discipline) को ठीक रख सकता है या नहीं। इन्स्पेक्टरोंकी रिपोर्टमें भी अध्यापकोंके विषयमें अधिकांश यह बात लिखी पाई जाती है कि अध्यापक महोदय प्रोफ़ेसरी करते थे न कि मास्टरी, अर्थात् अध्यापकको पढ़ानेकी रीति नहीं मालूम।

कालेजके प्रोफ़ेसरका विशेष कार्य यह होता है कि वह जिस विषयका प्रोफ़ेसर है उस विषयकी उन बातोंको और स्पष्ट करता रहे जिन्हें कालेजके विद्यार्थी उन दिनों स्वयम् पढ़ रहे हों। अथवा विद्यार्थियोंको उन पुस्तकोंका परिचय देता रहे जिन पुस्तकोंका अवलोकन विद्यार्थियोंको करना चाहिए। यह कार्य लेक्चरसे हो सकता है।

स्कूलके अध्यापकोंका कार्य दूसरे ही प्रकारका है। विद्यार्थियोंकी आयु थोड़ी होनेसे रीति दूसरी होनी चाहिए। यदि अध्यापक स्कूलमें लेक्चरकी परिपाटीका अनुसरण करे तो बालक तो अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। सब काम मास्टरने किया, उन्हें कुछ न करना पड़ा, पर वास्तविक कार्य तो लड़कोंको स्वयम् अपने मस्तिष्कसे काम लेनेका अभ्यास दिलाना है। यदि यह अभ्यास स्कूलमें न हुआ तो विद्यार्थीका कालेजमें जाना व्यर्थ है क्योंकि जो बातें विद्यार्थी नहीं जानते उनका बताना अथवा यों कहिए कि बालकोंको नए ज्ञानके सम्पादन करनेके पथ पर चला देना और उन्हें सहायता देते रहना ही अध्यापकका मुख्य कर्तव्य है। कुछ युरोपियन प्रोफ़ेसरोंका विचार है कि हमारे देशके कालेजके विद्यार्थी इस अभ्यासको बिना प्राप्त किये ही कालेजमें आ जाते हैं। उनको रटनेके अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय परीक्षामें सफल होनेका दिखाई ही नहीं देता।

अध्यापनकी आधुनिक रीतिके मुख्य सिद्धान्त यह जान पड़ते हैं:—(१) बालकको जो बात बताना हो उसमें रुचि उत्पन्न करा देना (२) जब रुचि उत्पन्न हो जाय तो उसके विचारको असंगत न होने देना। इन्हीं दोनों बातोंको एक मूल सिद्धान्तके शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते हैं कि अध्यापकके मनकी वृत्ति मनोवैज्ञानिक (Psychological attitude) होनी चाहिए।

बात तो साधारण बुद्धिकी है। पर इसका अनुभव जब तक किसी को न हो उसे इसके महत्वका पता नहीं चल सकता। और न तो उसका आचरण बालकोंके प्रति ऐसा हो सकता है जैसा होना चाहिए। अध्यापन कलामें प्रवीणता शिष्टाचार ( discipline ) पर ध्यान दिये बिना आ ही नहीं सकती। आप क्लासमें गए कुछ लड़के बैठे हैं कुछ खड़े हुए हैं। यदि आप सफल होना चाहते हैं तो छोटी सी छोटी बातको बिना ठीक किए आगे बढ़ना भूल है। आपको तुरन्त उन बालकोंको जताना चाहिए कि उनका बैठे रह जाना अनुचित है और उन्हें लज्जित होना चाहिए। आपने पढ़ाना आरम्भ किया और कुछ लड़के बात कर रहे हैं आपके पढ़ाने पर ध्यान ही नहीं देते इस प्रकार पढ़ानेसे कोई लाभ नहीं। एक योग्य हेडमास्टरने मुझसे एक बार कहा कि ऐसे अध्यापक को, जो क्लासमें शिष्टाचार ठीक नहीं रख सकता क्लास छोड़ देना चाहिए और त्याग पत्र दे देना चाहिए।

यह दो दृष्टान्त क्लास-शिष्टाचारके इसलिए दिए कि जिन बालकोंकी विचार-शक्ति इतनी निर्बल है, जिन्हें इन साधारण और सभ्य नियमोंके पालन करनेका ध्यान ही नहीं, वे पढ़नेमें अपने मस्तिष्कको ठीक रीति पर कैसे लगा सकते हैं। एक शिष्ट विद्यार्थी पढ़नेमें भी अच्छा होगा और जिसका आचरण शिष्ट नहीं है वह पढ़नेमें अच्छा नहीं होगा। कुछ लोग चुलबुले बालकोंको बुरा समझ बैठते हैं। वास्तविक बात दूसरी

होती है। वह मनोवैज्ञानिक बुद्धिके बिना समझमें नहीं आ सकती।

जबसे आधुनिक शिक्षा प्रणाली चली अध्यापकोंमें दो दल हो गए। एक तो जिन्हें दूसरा दल प्राचीन कहता है और जो मार पीट और उसके द्वारा भय स्थापन करनेके अनुकूल हैं। दूसरा वह जो इनके प्रतिकूल है। दण्ड विधान दोनों ही दलके लोग आवश्यक मानते हैं। दण्डके अर्थमें भेद पड़ता है। प्राचीन प्रणालीके लोग दण्डसे केवल डंडेका अर्थ लेते हैं। नवीन प्रणालीके लोग उसके अर्थको कुछ विस्तृत रूपसे समझते हैं। प्राचीन प्रणालीके अध्यापकका विश्वास है कि उसका स्वरूप जब तक बालकके हृदयमें भय न उत्पन्न करे तब तक बालक कहना नहीं मानेगा। नवीन प्रणालीके अध्यापकका यह विश्वास है कि अध्यापकके देखनेसे ही बालक उस पर ऐसा मुग्ध हो जाय कि जो वह कहे वह करे।

इन बातोंके साथ साथ एक बात और स्मरण रखना चाहिए। वह यह कि प्राचीन प्रणालीके लोग उस प्रणालीका अनुसरण इस लिए करते हैं कि अधिकांश लोग नवीन प्रणालीके अनुसार आवश्यक प्रेममय स्वरूप धारण करनेमें असमर्थ होते हैं। प्राचीन प्रणाली वाले भी इस बातको भली प्रकार समझते हैं अथवा यदि समझाया जाय तो समझ सकते हैं कि नवीन प्रणाली प्राचीन प्रणालीसे अधिक अच्छी है, बुरी नहीं है।

एक बात और स्मरण रहे कि नवीन प्रणालीके अनुसार अत्यन्त ही कट्टर ईमानदार आदमी अध्यापक होना चाहिए। इसका मूलमंत्र यही है कि अध्यापकको किसी भी ऐसे कामको स्वयम् न करना चाहिए जिसे वह बालकोंके लिए बुरा समझे। जैसा उन्हें सिखावे वैसा ही करे तभी वह सफल हो सकता है। आज कल नई प्रणालीके अनुसार शिक्षा प्राप्त ऐसे कितने अध्यापक हैं जिन्हें उपरोक्त बातका सदा ध्यान रहता है और जो अपने जीवनके हर काममें उन्हीं सिद्धान्तोंका अनुसरण करते हैं जिन्हें वे दूसरोंको बतलाया करते हैं।

इन बातों पर विचार करके भी प्रत्येक मनुष्य इतना तो अवश्य ही कह सकता है कि यदि प्राचीन प्रणालीका इस कारणसे अनुसरण करते हो कि नवीन प्रणाली कठिन है तो कमसे कम इतना तो युक्तियुक्त ही है कि नवीन प्रणाली पर चलनेका प्रयत्न करते रहो।

संसारमें जितने पेशे हैं उन सबसे अधिक महत्वका पेशा अध्यापन है। यदि किसीके हृदयमें कुछ भी सत्यताका भाव हो, कुछ भी देश सेवाका प्रेम हो, कुछ भी अपने और दूसरोंके जीवन सुधारनेका ध्यान हो, कुछ भी अपनेको आनन्दमें रखनेकी अभिलाषा हो, कुछ भी दूसरोंको सुख देनेका विचार हो तो वह अध्यापक बने। यही एक पेशा है जिसमें आत्मोन्नति एक सच्चे आदमीके लिए आवश्यक होती है। अच्छे अध्यापकका अर्थ है अच्छा मनुष्य। जो सज्जन नहीं वह अध्यापक नहीं हो सकता। जो विद्वान नहीं वह अध्यापक नहीं हो सकता। जो कार्य-कुशल नहीं वह अध्यापक नहीं हो सकता। यदि किसीमें इन गुणोंका अभाव हो पर वह सच्चा ईमानदार हो तो अध्यापन कला सीखे—स्वयम् और अनायास ही वह सज्जन, विद्वान और कार्य-कुशल हो जायगा।

## व्यापारी पत्र-व्यवहार व उसका संरक्षण

### पत्रोंका सामना।

[ लेखक:—श्री कस्तूरमल बांठिया बी. काम. ]

पत्रोंकी नकल करना जान लेनेके पश्चात् प्रत्येक व्यापारी-शिक्षाके विद्यार्थीको, पत्र आदि किस तरह डाकके लिए तैयार किए जाते हैं और उन पर सिरनामा आदि किस तरह लिखा

जाता है, इत्यादि बातें जाननेकी ज़रूरत है। साथ ही उसे डाकखानेके मुख्य मुख्य नियमोंका जानना भी आवश्यक है। क्योंकि इसके ज्ञान बिना वह यह नहीं जान सकता कि पत्र अथवा और कोई कागज़ात व नमूने आदि किस प्रकार उद्दिष्ट व्यक्तिको बिना कुछ दंड आदि दिये मिल सकते हैं, और व्यापारको भी किस तरह डाकके फ़ालतू खर्चसे बचाया जा सकता है। अतएव अब इसी बातका यहां विवेचन किया जायगा।

### पत्रों पर सिरनामा करना

प्रत्येक व्यापारीके लिए यह बात बड़ेही दुःखकी होती है जब कि उसके पत्र ग़लत अथवा अपूर्ण सिरनामेके कारण वापिस लौट आते हैं और उद्दिष्ट व्यक्तिको नहीं मिलते। कभी कभी पत्रों पर सिरनामाही नहीं किया जाता और कोरे लिफ़ाफ़े डाकमें छोड़ दिये जाते हैं। यह बात बड़ीही हास्य-प्रद है। इसका कारण बहुधा बेपरवाही है। प्रत्येक क्लर्कको, जिसके पास यह काम हो, चाहिए कि प्रत्येक पत्र पर साफ़ साफ़ अक्षरोंमें और पूरा सिरनामा करे और डाकमें छोड़नेके पहले फिरसे एक एक पत्रको जांच ले कि उस पर सिरनामा बराबर कर दिया गया है अथवा नहीं। बिना परीक्षा किए एक भी पत्र डाकमें छोड़नेके लिए चपड़ासीको न दे। सिरनामा करते समय ध्यान रखे कि वह लिफ़ाफ़े के परिमाणसे है अथवा नहीं। इसके अलावा यदि सिरनामा नवीन पद्धति पर किया गया है अथवा अंगरेज़ीमें किया गया है तो प्रत्येक पंक्तिको तथा उनमें व्यवहृत प्रत्येक संक्षिप्ता-क्षरको उपयुक्त विराम चिन्ह से अंकित करे। सिर-नामेकी प्रत्येक पंक्ति एक दूसरेसे किंचित् हटाकर लिखे और उनके बीचमें बराबर अंतर रखे। जब प्राचीन पद्धतिसे सिरनामा करना हो तो प्रार-म्भमें ७४॥ अथवा १॥ अथवा ||||| पांच छोटी छोटी खड़ी लकीरें खींचे और तब सिरनामा लिखना प्रारम्भ करे। सिरनामा लिखनेमें सबसे पहले 'भाईश्री' अथवा 'साहश्री' अथवा 'साहजी' अथवा 'साहजी श्री ५' अथवा 'पूज्यश्री' अथवा 'पूज्य श्री ५' आदि अल्क़ाबोंको लगाना न भूले। इसी तरह यदि सिरनामा नवीन पद्धतिसे करे तो श्रीयुत, श्रीमान् आदि अन्य अल्क़ाबोंको, और यदि सिरनामा अंगरेज़ीमें लिखे तो मेसर्स एस्क्वायर मिस्टर आदि का लिखना न भूले। सिरनामा इस प्रकार करेः—

१. प्राचीन पद्धति

७४॥ भाई श्रीशिवजी रामजी हरनाथ योग्य
ठि० कालबादेवी रोड,
बंबई नं० २

२. नवीन पद्धति

श्रीयुत शिवजीराम हरनाथ,
कालबादेवी रोड,
बंबई, पोस्ट नं० २

३. अंगरेज़ीमें

मेसर्स शिवजीराम हरनाथ,
कालबादेवी रोड,
बंबई नं० २

अंगरेज़ीमें प्रत्येक सिरनामेके शुरूमें मेसर्स नहीं लिखा जाता। इस अल्क़ाबका वहां ही उपयोग किया जाता है जब कि वह एक घराने अथवा दूकान का नाम है। यदि उद्दिष्ट व्यक्ति एक व्यापारी है तो उसके लिये मिस्टर अथवा एस्क्वायर का अल्क़ाब उपयोग किया जाता है। ये दोनों अल्क़ाब एक साथ उपयोग नहीं किए जाते। मिस्टर नामके पहले लगाया जाता है और एस्क्वायर नामके बाद। प्रत्येक पंक्तिके अन्तमें कोमाका विराम चीन्ह दिया जाता है, और सिरनामेके अन्तमें पूर्ण विराम चिन्ह लगाया जाता है। इसी प्रकार जब संक्षिप्ताक्षरका उपयोग किया जाता है तो उसके बाद पूर्ण विराम चिन्ह लगाया जाता है। इसमें इस बातका विचार नहीं किया जाता कि संक्षिप्ताक्षर पंक्तिके मध्यमें आये ।

थवा अन्तमें। यदि वह अन्तमें आया है तो सके बाद पूर्ण विराम-चिन्ह लगाकर फिर उस कि का जो उपयुक्त विराम-चिन्ह है वह लगादिया ाता है। जब प्रेषित पत्र उसी शहरमें भेजा ानेवाला हो तो सिरनामेके अन्तमें शहर अथवा ांवका नाम नहीं लिखा जाता। गली बाज़ार और र नंबर व पोस्ट नंबर लिखकर सिरनामेके पर स्थानीय अथवा अंगरेज़ीमें ( Local ) ोकल शब्द रेखांकित करके लिख दिया जाता है। कसी घराने अथवा दुकानका प्राचीन अथवा नवीन द्धतिसे सिरनामा करते समय उसके पहले ामके पीछे 'जी' शब्द जोड़ दिया जाता है। यदि रानेका नाम एक ही नामवाला है तो उस नामके सम्पूर्ण होतेही 'श्री' लगादी जाती है। अंग्रेज़ीमें दि हमने एस्कवायर आदि अल्क़ाब लगा दिये हैं तो फिर जी, साहब आदि अल्काबोंकी लगानेकी आवश्यकता नहीं। ये उसी दशामें लगाये जाने चाहिए जब कि और दूसरे अल्क़ाब न लगाये गये हों।

प्राचीन पद्धतिके अल्क़ाब किस तरहसे लगाना चाहिए इसके भी व्यवहारमें कितने ही नियम हैं। जैसे सगोत्रीय व अन्यजातीय लोगोंको 'भाई-श्री' और सजातियों को 'साहश्री' लिखा जाता है। सगोत्रियोंमें जो हमसे पदमें बड़ाहो उसको 'भाईश्री' 'भाई श्री५' 'पूज्यश्री' 'पूज्य श्री ५' आदि और जो हमसे पदमें छोटाहो उसे 'चिरं' अथवा, 'चिरंजीव' लिखा जाता है। इसी तरह सजातियोंमें किसी को 'साहश्री' किसी को 'कंवरजीश्री' और किसीको 'साहजीश्री' और 'साहजी श्री ५' लिखा जाता है। इसके नियमोंका पत्र-लेखनके पाठमें विवेचन किया है।

नवीन पद्धतिके अल्क़ाब मुख्यतयः दो हैं। श्री मान् और श्रीयुत। बड़े को और श्रीमन्तको 'श्रीमान' अथवा 'श्रीमन्त' लिखा जाता है। और बराबर वाले व। तथा व्यापारीको श्रीयुत लिखा जाता है। सगोत्रियों में जो अपने निकट सम्बन्धी हों उनको छोड़कर बाक़ी सबके लिए श्रीयुत उपयोग किया जाता है। निकट सम्बन्धियों में जो हमसे पदमें बड़े हैं उनके लिए 'पूज्य पिताजी' 'पूज्य भाईसाहब' आदि और अपनेसे छोटेके लिए 'चिरंजीव' उपयोग किया जाता है। इन अल्काबोंके अलावाभी कई अल्क़ाब हैं जो हमें किसी पत्रबोधके देखनेसे मालूम हो सकते हैं। जैसे बाबू, लाला, आदि।

अंगरेज़ीमें मुख्य अल्काब तीन हैं : मिस्टर एस्कवायर और मेसर्स मेसर्स केवल व्यापारियोंके लिए ही उपयोग किया जाता है। अथवा जहां दो तीन मनुष्योंका नाम एक साथ लिखना अथवा बोलना हो तो प्रत्येकके पहले मिस्टर न लगा कर पहले एक बार मेसर्स लगा दिया जाता है और पीछे नाम उच्चारण कर दिये जाते हैं अथवा लिख दिये जाते हैं। इबारतके मध्यमें किसी नामके पीछे एस्कवायर नहीं उपयोग किया जाता। जिस नामके पीछे एस्कवायर लगाया जाता है उसके पहले किसी तरहकी उपाधि नहीं लगाई जाती। मिस्टरके लिए सदा उसका संक्षिप्ताक्षर उपयोग किया जाता है। एस्कवायर और नामके बीचमें कामेका उपयोग किया जाता है। जहां एस्कवायर का संक्षिप्ताक्षर (Esq) का उपयोग किया जाता है तो इसके बाद पूर्ण-विराम और कामा लगा देनेके पश्चात् जितनी डिग्रियां हों लिख दी जाती हैं। लिमीटेड कम्पनीके नाममें लिमीटेड शब्द और उसके पहले के शब्दके बीचमें कामेका उपयोग किया जाता है। राय, राय बहादुर, सर, लार्ड आदि माननीय उपाधियोंके होते हुए न तो शुरूमें मिस्टरका उपयोग किया जाता है और न पीछे को एस्कवायर आदि लगाया जाता है। प्रत्येक उपाधि एक दूसरेसे कामा द्वारा पृथक रक्खी जाती है। अव्यक्ति-वाचक घरानोंके नामोंके पहले मेसर्स अथवा श्रीयुत आदि किसी भी अल्क़ाबके लगानेकी चाल नहीं है। स्त्री-नामांतिक घरानें, दूकानों आदिके नाम केपहले हिन्दीमें श्रीमती और

अंगरेज़ीमें मिसेज़, मेसडेम, मेडम, और मिली उपयोग किया जाता है अंगरेज़ी के व्यापारीसंक्षिप्ताक्षरकी इस पाठके अन्तमें एक सूची परिशिष्ट रूपमें दी गई है। प्रत्येक सिरनामेके पहले अंगरेज़ीमें टू लिखा जाता है परन्तु उसके बाद न तो कामेका चिन्ह ही लगाया जाता है और न वह एक लाइनमें सिरनामेके बराबरमेंही लिखा जाता है।

पत्रोंका लपेटना और लिफ़ाफ़े में बंद करना।

हमारे लिखे या भेजे हुये पत्र एक प्रकारसे हमारे गुण अवगुणकी परीक्षा कराने वाले हैं। जिसके पास हमारा पत्र जाता है वह उसके लिखनेका ढंग और उसकी सफ़ाई आदि को देख कर हमारे व्यवहारकी शुद्धता एवम् व्यापार-पटुता आदिका अंदाज़ा लगा लेता है। इसी लिए व्यापार-विशारदोंका कथन है कि काट छांट किए हुए अथवा स्याहीके छींटे आदि से बिगड़े हुए पत्र कभी किसी आढ़तियेको नहीं भेजना चहिए। पत्रोंकी बेपरवाही देखकर ऐसे शख़्स हमारे व्यापारमें भी बेपरवाह होनेका अनुमान करलेते हैं। और यह बात हमारे व्यापारकी उन्नतिमें पूर्ण बाधक हो जाती है।

पत्रके जिस अंश पर आढ़तियेकी सबसे पहले निगाह पड़ती है वह उसका लिफ़ाफ़ा है। अस्तु उसे देखकर वह हमारे बाबतमें तनिकभी ख़राब विचार न बांधने पावे इसलिए आवश्यक है कि वह बहुत साफ़ साफ़ लिखा जाय और ध्यान के साथ बंद किया जाय। उसके बंद करनेमें इतना ज़्यादा गोंद न लगाया जाय कि वह बाहर भीतर सब जगह फैल जाय और अन्दरके पत्रको भी उससे चिपका दे। यदि पत्र खोलनेवाला बंद करनेवालेकी इस बेवक़ूफ़ी का विचार न रखते हुए पत्र खोलने लगे तो पत्रके फट जानेका पूरा भय रहता है। दूसरे बाहरका फैला हुआ गोंद लिफ़ाफ़ेको बिलकुल गंदा और घृणास्पद बना देता है। लिफ़ाफ़ेके बाद जिस चीज़ पर आढ़तियेकी फिर निगाह पड़ती है वह उसमें बंद किया हुआ पत्र है। इसके बाबतमें आढ़तिया यह बात देखता है कि पत्र किस तरहसे बंद किया गया है। यानी उसकी तह किस प्रकार की गई है। हमारे देशी व्यापारी सदा काग़ज़के लंबे टुकड़ेमें अपने पत्र लिखा करते हैं। इसे वे ओलिया कहते हैं। इसके साइज़का कुछ परिमाण नहीं है। जब जैसी ज़रूरत होती है तब वैसाही लंबा अथवा छोटा काग़ज़ लिखनेके लिए ले लिया जाता है। साधारणतः ओलिया हाथी छापके काग़ज़की लंबाईसे विशेष लंबा नहीं होता। इन ओलियों पर चिट्ठी कैसे लिखते हैं वह आगे बताई गई है। अस्तु यहां पर इतनाही जानना काफ़ी है कि ऐसे ओलिये लिफ़ाफ़ेमें किस प्रकार बंद किये जाते हैं। जिस सिरेसे पत्र लिखना प्रारम्भ किया जाता है वह पत्रका सिरा कहा जाता है। अस्तु पत्र उसी तरहसे लपेटा जाता है कि जिससे पत्रका सिरा सबसे ऊपर रहे। और पत्रके खोलतेही पढ़ने वालेके सामने उसके सबसे पहले लिखे हुए समाचार पढ़नेमें आजायं, और जैसे जैसे वह पढ़ता जाय और पत्र खोलता जाय उसके सामने आगेके समाचार खुलते जायं। सारे पत्रके खोलने पर जिसका आदि दिखाई पड़े वह पत्र अव्यवहारिक रीतिसे खामा हुआ माना जाता है और इसका खामनेवाला भी व्यवहार-ज्ञान-शून्य समझा जाता है।

जब पत्र नवीन पद्धतिसे लिखा जाता है तो उसमें इस प्रकारका लंबा काग़ज़ नहीं लिया जाता। इस पद्धतिसे पत्र लिखनेके काग़ज़ साधारणतः चार प्रकारके हैं। यही काग़ज़ अंगरेज़ी पत्र व्यवहारमें काम आते हैं। वे सब इस प्रकार हैं :—

(१) फ़ोलियो अथवा अर्ध फुल्स्केप (२) कार्टो अथवा चार पेजी (३) आक्टैवो अथवा आठ पेजी (४) सिक्स्टो अथवा छः पेजी।

ये चार तरहके काग़ज़ सब जगह एकही लंबाई चौड़ाईके नहीं होते। परन्तु ये सब स्टेन्डर्ड साईज़के लगभग होते हैं। इनका स्टेन्डर्ड साईज़ इस प्रकार है:—

पत्रोंके लिए

अर्ध फुल्सकेप ...... $१२\frac{३}{४}'' \times ८''$

लार्ज पोस्ट कार्टो ...... $१०'' \times ८''$

पोस्ट कार्टो ...... $८'' \times ६\frac{१}{८}''$

लार्ज पोस्ट आक्टेवो ...... $८'' \times ५''$

पोस्ट आक्टेवो ...... $७\frac{१}{८}'' \times ४\frac{१}{२}''$

बीजक आदिके लिए

अर्ध फुल्सकेप ...... १ ... $२\frac{३}{४}'' \times ८''$

ला. पो. ८वो ...... $८'' \times ५''$ ।

पोस्ट ८वो ...... $७\frac{१}{८}'' \times ४\frac{१}{२}''$

पत्र आदिके लिए

अर्ध फुल्सकेप ...... $१२\frac{३}{४}'' \times ८''$

ला. पो. ४टो ...... $१०\frac{१}{२}'' \times ८\frac{१}{४}''$

डेमी ६ पेजी ...... $७\frac{३}{४}'' \times ६\frac{५}{८}''$

काग़ज़ोंके अनुसार लिफ़ाफ़े भी चार तरहके होते हैं :—

फुल्सकेप लिफ़ाफ़े ...... $१०'' \times ४\frac{३}{८}''$ अर्ध फुल्सकेपके लिए

कोर्ट लिफ़ाफ़े ...... $६\frac{३}{८}'' \times ४\frac{५}{८}''$ ला. पो. ४ पेजी । अथवा $५\frac{५}{८}'' \times ४\frac{३}{८}''$ ला. पो. ८ पेजी ।

$५\frac{१}{४}'' \times ४\frac{१}{४}''$ पो. ४ पेजी और पो. ८ पेजी ।

सम चौरस लिफ़ाफ़ोंके [स्थानमें] व्यापारी लिफ़ाफ़े $६'' \times ३\frac{३}{४}''$ के साईज़के ला. पो. ४ पेजी और ला. पो. ८ पेजी और छोटे लिफ़ाफ़े $५\frac{५}{८}'' \times ३\frac{२}{८}''$ पो. ४ पेजी और पो. ८ पेजीके और डेमी ६ पेजीके लिए काममें लिये जा सकते हैं।

उपर्युक्त साईज़की स्टेशनरीके अलावा भी व्यापारमें स्टेशनरी काम आती है। परन्तु ऊपर बताई हुई ही सबसे विशेष उपयोगमें आती है। इससे हमने उसका यहाँ देना उपयोगी समझा है।

जब लिखनेका काग़ज़ फुल्सकेप साईज़का है तो उसे लंबाईसे एक बेर दोहराकर फिर दोहरा दिया जाता है। अर्थात् उसके चार तह किए जाते हैं

जिनमें प्रत्येकका साईज़ लगभग $3\frac{3}{16}$" × ८" साईज़ होताहै।

जब लिखनेका कागज़ क्वार्टो साइजका है तो इसे पहले लंबाईसे दोहरा किया जाता है और फिर इस दोहरे किये हुए कागज़की लंबाईसे उसके तीन तह किये जाते हैं। उदाहरणके लिए ला पो. ४ पेजी कागज़ दोहराने से पहले ८" × ५" की साईज़का आठ पेजी कागज़ हो जाता है। और जब इसके बराबरके तीन तह किये जाते हैं तो प्रत्येक तह लगभग $2\frac{2}{3}$" × ५" के साईज़की रह जाती है जो ऊपर बताये हुए बड़े साईज़के व्यापारी लिफ़ाफ़ेका साईज़ है। यदि पत्र सम चौरस कोर्ट लिफ़ाफ़ेमें बंद करनेका है तो पहले दोहरा करके उसे फिर लंबाईसे दोहरा किया जाता है। इस प्रकार चौहरा किये हुए कागज़का साइज़ लगभग ५" × ४" का रहता है जो ऊपर बताये हुए छोटी जातिके कोर्ट लिफ़ाफ़ेका साईज़ है।

जब लिखनेका कागज़ ८ पेजी है तो ऊपर लिखे अनुसार व्यापारी लिफ़ाफ़ेमें बंद करनेके लिए उसके तीन तह कर लिये जाते हैं। यदि पत्र कोर्ट साईज़ लिफ़ाफ़ेमें बंद करना होता है तो उसको केवल दोहरा करदिया जाता है।

यदि लिखनेका कागज़ डेमी छः पेजी है तो पहले वह कागज़ लगभग एक अथवा सवा इंच लंबाई पर मोड़ दिया जाता है। ऐसा करने से वह ८ पेजी पोस्ट कागज़के साईज़का हो जाता है और तिहरा कर लिफ़ाफ़ेमें बंद कर दिया जाता है।

सरक्यूलर आदि पत्रोंका लिफ़ाफ़ा गोंदसे चिपकाया नहीं जाता। परन्तु उनका मुंह लिफ़ाफ़े के अन्दर घुसेड़ दिया जाता है। इससे इसका डाकमहसूल केवल बुकपोस्टके अनुसार ही लगता है जो लेटर पोस्ट से बहुत ही सस्ता पड़ता है।

### पतेका रजिस्टर और ऐड्रेसोग्राफ़ मशीन

नई चालके व्यापारालयोंमें आढ़तियों के पते आदिकी सूची एक पृथक किताबमें रक्खी जाती है। यह पिछले पाठमें कहा जा चुका है। जिस किताबमें यह सूची रक्खी जाती है वह पहले वर्णमालाके अक्षरोंमें बांट ली जाती है और जिस अक्षरसे आढ़तियेका नाम शुरू होता है उसी अथवा उन्हीं प्रष्ठोंमें वह नाम लिख दियाजाता है। और जब कोई आढ़तिया पता बदलनेका समाचार लिखता है तो उसको तत्काल इस किताबमें उचित स्थान पर नोट कर लिया जाता है। जबसे कार्ड इन्डेक्स सिस्टमका अविष्कार हुआ है तबसे व्यापारी लोग इस कामके लिए रजिस्टर आदि नहीं रखते। प्रत्येक आढ़तियोंके नामका एक एक कार्ड तैयार किया जाता है और ये सब अक्षरानुक्रमसे जमा किए जाते हैं। जब पत्रों पर उद्दिष्ट व्यक्तिका पूरा पता नहीं लिखा होता तो फिर लिफ़ाफ़े पर इस सूचीकी सहायतासे पता लिखा जाता है। परन्तु आजकल प्रत्येक पत्र पर पूरा पता लिखनेकी चाल व्यापारियोंमें प्रचलित हो गई है। इससे लिफ़ाफ़ों पर सिरनामा करनेवालेको सूची से पता आदि लिखनेकी अवश्यकता नहीं होती। इससे समयका भी बहुत बचाव हो जाता है।

बड़े बड़े व्यापारालयोंमें जहां कि प्रति दिन हज़ारोंकी संख्यामें पत्रादि लिखे और भेजे जाते हैं सिरनामा आदि करने के लिए एक मशीन उपयोगमें लाईजाती है। इस मशीनको एड्रेसोग्राफ़ कहते हैं। प्रत्येक आढ़तियेका नाम और पूरा पता एक तांबे अथवा पीतलकी प्लेट पर खोद लिया जाता है। और ये सब बिना सिरेकी सांकल द्वारा एक दूसरेसे जोड़ दी जाती हैं। ये बिना सिरेकी सांकलें इस मशीनमें लगा दी जाती हैं। घुमाने से ये मशीनमें लगे हुए एक ढोलके चारों तरफ़ घूमा करती हैं। जिस लिफ़ाफ़े पर पता लिखना होता है वह इस मशीनमें छापनेकी जगह रख

दिया जाता है और मशीन घुमाई जाती है। इससे पते वाली एक एक प्लेट क्रम क्रमसे सामने आती जाती है और पता छपता जाता है।

पत्रोंके बंद करते समय क्लर्कको इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि उसमें कितने और कौन कौनसे काग़ज़ात बंद करनेके हैं। यह बात उसे पत्रको पढ़नेसे फ़ौरन मालूम हो सकती है। और यदि पत्र नवीन पद्धति पर अथवा अंगरेज़ी में लिखा हुआ है तो पत्र लिखने वाला उसके कोनेमें इस बातका एक इशारा भी कर देता है। परन्तु इस इशारेसे केवल यही बात मालूम हो सकती है कि ऐसे खामणों की संख्या जिसे अंगरेज़ीमें एन्क्लोज़र्स कहते हैं कितनी है। इस इशारेसे वे किस प्रकारके हैं इस बातका तनिक भी पता नहीं चलता। इसके लिए पत्रको बंद करनेके पहले आदिसे अन्त तक पढ़ना पूर्ण आवश्यक है। जब तक एक बार उस पत्रमें लिखे हुए सब खामण न तैयार हो जायं पत्र बंद नहीं किया जाना चाहिए। इस बातकी सारी ज़िम्मेदारी क्लर्ककी समझी जाती है। इसलिए हमें सदा ध्यानमें रखना चाहिए कि :—

१—पत्र सदा उनके उपयुक्त लिफ़ाफ़ेमें बंद किये जायं। एकका पत्र कभी दूसरेके नामके लिफ़ाफ़ेमें न बंद किया जाना चाहिए। इससे व्यापार का कभी कभी भारी धक्का पहुंचता है। कई बार इस भूलके कारण एक आढ़तियेके एकही जाति और तादाद के मालके एकही दिनके बीजक ऐसे आढ़तियेको भेज दिये गये हैं कि जिसको उस मालका भाव दूसराही लगाया गया है। इससे व्यापारको कितनी हानि उठानी पड़ती है यह हम सहजही अनुमान कर सकते हैं।

२—आढ़तियोंको पत्र ठीक समय पर मिले इसके लिए पत्र सदा डाक निकलनेके समयसे पहले डाकमें छोड़े जाना चाहिए। यदि डाकका समय निकल गया है और फिर भी चिट्ठीका भेजना ज़रूरी है तो उस पर ( लेटफ़ी ) का टिकट लगाना न भूलना चाहिए। लेट फ़ी लगाये हुए पत्र डाकके डिब्बोंमें छोड़नेकी भूल कदापि न करना चाहिए। इन्हें डाकख़ाने पर अथवा स्टेशन पर जाकर डाक की गाड़ीमें छोड़नेसे ही हमारा लेट फ़ी लगाना सार्थक हो सकता है।

इस सम्बन्धमें पोस्टेज रजिस्टरका उपयोग करना न भूलना चाहिए। पोस्टेज रजिस्टरकी ख़ानाबंदी जो पहले पाठमें दी जा चुकी है उसके देखनेसे मालूम होगा कि उसमें पहला ख़ाना उन टिकटोंकी क़ीमत लिखनेका है जो बचे हुये हों या नये ख़रीद किये जायं। पोस्टेज क्लर्कको जब स्टाम्पों की ज़रूरत होती है तो वह ख़ज़ानचीको इत्तिला कर देता है। ख़ज़ानची या तो स्वयम उसकी मांगके अनुसार टिकट आदि ख़रीद कर उसे सौंप देता है अथवा उसे ख़रीद लेनेके लिए नक़द दाम दे देता है। पोस्टेज क्लर्कको दैनिक खिलक यानी बाक़ी सिवा पोस्टेज टिकट और कुछ न होना चाहिये। क्योंकि उसका काम केवल टिकटोंका हिसाब रखना है। ज्योंही कि उसे टिकट आदि ख़रीदनेके लिए ख़ज़ानचीसे नक़द दाम अथवा चैक आदि मिले उसे अपनी ज़रूरतके अनुसार टिकट लिफ़ाफ़े इत्यादि मंगवा लेना चाहिये। बड़ी बड़ी दूकानोंमें जहांकि रोज़ मर्रा सैंकड़ों रूपयेके टिकट चिट्ठी, पार्सल, तार आदिमें ख़र्च होते हैं, वहां टिकटोंकी चोरी आदि न हो, इसके लिए उन पर दूकानोंका नाम संक्षेपमें छिद्राङ्कित करा लिया जाता है। पाश्चात्य देशोंमें टिकटों पर इस प्रकार नाम छिद्रांकित करने वालों के अनेक घराने हैं। ये टिकट आफ़िससे सब प्रकारके टिकट ख़रीद लाते हैं और उन पर अपने आढ़तियोंके नाम आदि छिद्राङ्कित कर रखते हैं। जब आढ़तियों की मांग आती है तो वे उसे अपने स्टाकमेंसे शीघ्र पूरी कर देते हैं। अस्तु जो कम्पिनियां इस प्रकारके टिकट काममें लाती हैं वह सीधे टिकट घरसे टिकट न ख़रीद कर इन छिद्राङ्कित करने वाली कम्पनियोंसे टिकट ख़रीदती हैं।
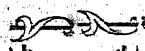
हमारे देशमें यह चाल अभी तक प्रचलित नहीं हुई है।

प्रत्येक पोस्टेज क्लर्कको चाहिएकि वह अपनी सिलक रोज़ लगाता रहे। किसीभी तरहके टिकट-की सिलक बिलकुल पूरीनहो जाने दे। प्रति सप्ताहका टिकट खर्चका हिसाब ख़ज़ानचीके पास जमा खर्च करादे। और आगेके सप्ताहके लिए उससे टिकट आदिके लिए दाम अथवा टिकट ले ले। टिकटोंको सदा टोकरीनुमा फ़ाइलमें खाने बना कर अथवा किताबके पन्नोंके बीचमें जुदा जुदा रक्खे। एक तरहके टिकटोंको दूसरी तरहके टिकटों से कदापि न मिलने दे। सप्ताहका डाकखर्च खज़ानचीके पास जमा खर्च करा देने के बाद अपनी पोस्टेज बुकमें उसकी सही लेले। यदि प्रत्येक खर्च किए हुए टिकटकी नोंध करते करते फिरभी टिकटोंकी सिलक घटने लगे तो अपने घरसे वह कमी पूरी करनेकी चेष्टा न करे। परन्तु घटीका हाल जान कर ख़ज़ानचीसे कहे और उसकी आज्ञा-से उसे खर्चमें माढ़कर पूरी करदे। अपनी जेबसे कमी पूरी करनेसे यह भूलनेकी प्रकृति नहीं सुधर सकती। इससे कभी ऐसा न करे।

---

## अंधेरे घरमें उजाला !

### लैम्प जलानेकी रासायनिक कथा

[ लेखकः-प्रो० फूलदेव सहाय वर्म्मा एम० एस-सी०, एफ. सी. एस ]

प्रकाश उत्पन्न करनेके आजकल अनेक साधन हैं। उनमें बिजलीके प्रकाशके अतिरिक्त सभीमें हवामें जलानेकी विधिसे प्रकाश उत्पन्न होता है। इससे पहले केवल वे ही वस्तुएं प्रयोग होती थीं जो बिना किसी विशेष व्यवहार ( Treatment ) के जल सकें। इस प्रकार मानव इतिहासके आदि कालमें शीघ्र जलनेवाली लकड़ियोंका प्रयोग आरम्भ हुआ। पीछे वानस्पतिक तेल व्यवहार होने लगे। तेलोंको रखनेके लिये बर्तनकी ज़रूरत पड़ी। पहले मट्टीके बर्तन पीछे धीरे धीरे धातुके बर्तन काममें आने लगे। इन बर्तनोंसे फिर छुटकारा पानेकी चेष्टा होने लगी और इस प्रकार बत्तीके रूपमें ठोस मोम और चर्बियोंका व्यवहार प्रारम्भ हुआ। पहले पहल जलने वाली बत्तियां मधुमक्खि-योंके मोम और पीछे जानवरोंकी चर्बियोंसे बनने लगीं। इससे जलनेवाली बत्तियोंको मोम से न बनी रहने पर भी अभी तक मोमबत्तीके नामसे पुकारते हैं। इस मोमबत्तीके बनानेकी प्राचीन विधि केवल सूतकी डोरीको बारम्बार पिघले हुये मोम अथवा चर्बीमें डुबाना और ठंडी करना ही थी। १९वीं सदीके आरम्भमें रासायनिक ज्ञानकी सहायतासे प्रकृति पर विजय पानेकी चेष्टा होने लगी और प्राकृतिक वस्तुओंके स्थानमें कृत्रिम वस्तुओंके प्रयोगकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ। मोमबत्ती बनानेके वर्तमान व्यवसायमें एक फ्रांसीसी रसायनाचार्य्य शिव्रुल (Chevereul) से मनुष्य मात्रको बहुत सहायता मिली। इन्होंने पहले पहल तेलों और चर्बियोंका रासायनिक ज्ञान प्राप्त किया। यद्यपि वानस्पतिक तेल और पाशव चर्बी देखनेमें इतने भिन्न भिन्न मालूम पड़ते हैं किन्तु रासायनिक दृष्टिसे उनमें अधिक विभिन्नता नहीं है। वे सभी ग्लीसीरिन और दूसरे अम्लोंके विशेषतः खजूराम्ल (Palmitic Acid), वसाम्ल (Stearic Acid) और ज़ेतूनाम्ल (Oleïc Acid) के यौगिक हैं। इन तीनों अम्लोंमें पहले दो साधारणावस्थामें ठोस होते हैं और उनका ग्लीसीरिन यौगिक भी ठोस है किन्तु तीसरा तरल है और इसका ग्लीसीरिन यौगिक भी तरलही है। साधारणतः यह तीनों अम्ल तेल और चर्बीमें वर्तमान रहते हैं और यदि पहले दो का अंश बहुत ज़्यादा हुआ तब वह ठोस चर्बी रूप में पाया जाता है और यदि तीसरेका अंश कुछ ज़्यादा हुआ तब वह तरल रूपमें पाया जाता है।

आजकल मोम बत्तियोंके बनानेमें जो तेल

अथवा चर्बी प्रयोग होती हैं उनको पहले शोधन किया जाता है। शोधन करने की अनेक विधियां हैं जिनमें सबसे सस्ती और सरल विधि तेल अथवा पिघली हुई चर्बीमें घन्टों जलवाष्प पहुंचाना है। इस विधिमें समय अधिक लगता है। इस व्यवहारसे तेल और चर्बीके रेशीले पदार्थ उनसे अलग होकर ठंडे होने पर पेंदेमें बैठ जाते हैं। उनका रङ्ग भी बहुत कुछ हलका होजाता है। तब ये ग्लीसोरिन और अम्लोंमें विच्छेद किये जाते हैं। इस विच्छेद क्रियाकी भी अनेक विधियां हैं और हर देशमें जुदी जुदी विधियोंका प्रयोग होता है। इस लेखके लेखक को भी बरसों इस विषय पर कार्य्य करना पड़ा था और ऐसी विधिको खोज निकालने की चेष्टा करनी पड़ी थी जो इस देशकी दशाके अनुकूल हो, अतएव इस देश केलिये अधिक उपयुक्त हो।

वानस्पतिक तेल और पार्शवचर्बियोंके विच्छेद करने की निम्नलिखित ५ विधियां हैं:—

(१) ओटो प्लेममें थोड़ा चूनेके साथ उत्तप्त—(Superheated) जलवाष्पसे गरम करनेसे

(२) गन्धकाम्लके घोलके साथ दबावमें गरम करनेसे ।

( ३ ) एक विशेष प्रकारके—( reagent ) की सहायतासे जिसे ट्विचेलका रीएजेन्ट (Twitchell's Reagent) कहते हैं।

(४) साबुन तैयार करनेमें सोडा खारके साथ गरम करने से। यह विधि केवल साबुन बनानेमें ही प्रयोग होती है।

(५) साधारण तापक्रम पर परण्डी बीजमें उपस्थित—किण्व क्रिया (Fermentation) की सहायतासे।

उपरोक्त विधियों में अन्तिम ही ऐसी विधि है जो इस देशमें सुभीतेके साथ प्रयोगमें लाई जा सकती है परन्तु इसके प्रयोगके लिये आवश्यक है कि उसके दोष दूर कर दिये जायं *।

आजकल जो मोमबत्तियां बाजार में मिलती हैं वे दो प्रकारकी होती हैं। एक वसा अथवा वसाम्ल की बनी हुई और दूसरी पाराफीन मोमकी बनी हुई। स्टियरिन में कभी कभी थोड़ा पाराफीन भी मिलादेते हैं जिससे उसका गुण बढ़ जाता है। केवल चर्बीकी भी मोमबत्तियां बनती हैं; किन्तु स्टियरिनकी मोमबत्तियां चर्बीकी मोमबत्तियों से श्रेष्ठ होती हैं। यह देखनेमें अधिक स्वच्छ और अधिक कड़ी होती हैं; उनकी बत्ती झुक नहीं जाती। यह अपारदर्शी और कम धुआं उत्पन्न करने वाली होती हैं। मोम बत्ती बनानेमें केवल पाराफीन भी बहुतायतसे प्रयोग होता है। यह एक श्वेत पदार्थ है जो स्काटलैंण्डमें तेलिया डामर—को वायुशून्य बर्तन के भपकेमें गरम करनेसे तैयार होता था। अब भी यह जर्मनीमें भूरे कोयले या लिगनैट को भपकेमें(Distill)करनेसे और अमेरिका और बरमादेशमें पेट्रोलियमसे तैयार होता है। यह कई यौगिकोंका मिश्रण है। यह यौगिक कर्बन और उज्जनसे बने हैं अतएव उनको कर्बोज्जों के नामसे पुकारते हैं। ये चर्बी अथवा चर्बी में उपस्थित अम्लोंसे बिलकुल भिन्न हैं क्योंकि इन में ओषजन का अंश नहीं है। मोमबत्ती बनानेके पहले इस पाराफीनकी भी शोधन क्रिया होती है जिससे उच्चताप पर पिघलने वाला और रंग विहीन विशुद्ध पाराफीन प्राप्त होता है।

यद्यपि मोमबत्ती दहनशील पदार्थोंसे बनी हुई है किन्तु वह तब तक नहीं जलती जब तक उसका तापक्रम इतना अधिक न होजाय कि

* इन दोषोंको दूर करनेके लिये लेखकने इस विषय पर अनुसन्धान किया था और उसमें सफलता भी हुई। इस विषय पर एक दूसरा स्वतन्त्र लेख शीघ्रही निकलेगा।

—सम्पादक।

बत्तीमें लगा हुआ मोम गैसके रूपमें परिणत हो जाय। यथार्थमें यह गैस ही है जो जलती है और प्रकाश उत्पन्न करती है। जब मोमबत्तीमें सलाई लगाई जाती है तब वह सलाई एस्टीअरिन अथवा पाराफ़ीनके कुछ अंश को पिघला कर गैस बनादेती है और तब वह गैस जलकर प्रकाश उत्पन्न करती है; किन्तु शीघ्रही कुछ क्षणके लिये वह प्रकाश धीमा पड़ जाता है और लौ छोटी होकर नीचेको उतरने लगती है। क्योंकि बत्तीमें स्टीयरिन अथवा पाराफ़ीनका अंश बहुत थोड़ा है। जब यह जलती हुई लौ नीचे उतरकर मोम तक पहुंच जाती है तो वह पिघलना शुरू हो जाता है और बत्तीके रेशों द्वारा पिघला हुआ पाराफ़ीन अथवा स्टीयरिन (Capillary action) से खिंच कर ऊपर चढ़ता है जब वह पिघला हुआ मोम लौके पास पहुंचता है तो भापमें परिणत होकर गरमीसे लौको बढ़ा देता है। पिघले हुए मोमके ऊपर आने और लौकी गरमी नीचे जानेवाली क्रियाओंमें साम्यावस्था उत्पन्न हो जानेसे लौ एक समान जलती रहती है। लौ (Flame) के चारों ओर नीचेसे हवाका खिंचाव भी शुरू होता है जिससे मोमबत्तीका ऊपरी किनारा इतना ठंडा हो जाता है कि बत्ती नहीं पिघलती। इस प्रकार लौकी गरमीसे एक छोटा प्यालासा बन जाता है जिसमें पिघला हुआ मोम एकत्रित होता है और लौ मणिकी भांति प्रकाशित रहती है। यदि हवाके झोंकेमें बत्ती रख दी जाय तब चारों ओर बराबर गरमी न मिलनेसे वह बत्ती एकसी चारों ओर नहीं जलेगी; प्यालेका किनारा पिघल जायगा और मोमबत्ती पिघल कर शीघ्र नष्ट हो जायगी।

पुरानी मोमबत्तियोंमें बत्तीको कुछ कुछ समय पर कैंचीसे काट काट कर हटाना पड़ता था। इसका कारण यह था कि बत्तीसे सटा हुआ चारों ओर बिना जला हुआ गैस उपस्थित रहता था जिससे वायुमण्डलका ओषजन बत्तीके निकट नहीं पहुंच पाता था। इससे तापक्रम काफ़ी ऊंचा नहीं होता था कि बत्तीको पूर्णरूपसे जला दे। इस प्रकार बत्तीकी राख न बन कर वह कोयला ही बनी रहती थी और यह कोयला बनी हुई बत्ती उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी जिससे जरूरतसे ज़्यादा मोम पिघल जाता था और प्रकाशकी कमी होकर धुआं अधिक पैदा होने लगता था। जब यह बात मालूम हो गई तब इसे दूर करनेकी चेष्टा होने लगी। एक फ्रांसीसी रसायनाचार्य्य कोमबासीरस (Combaceres) ने गोलाकार बत्तीके स्थानमें गुथी हुई बुनावटकी बत्ती व्यवहार कर इस त्रुटिको दूर कर दिया। जलती हुई मोमबत्तीको देखनेसे मालूम होगा कि बत्तीका अन्तिम भाग धीरे धीरे टेढ़ा होता जाता है और इस प्रकार टेढ़ा होनेसे ओषजनके समागमसे बत्ती जल कर राख हो जाती है। बत्तीका भले प्रकारसे जलना उसके डील डौल और बनावट पर भी निर्भर है। कभी कभी शोरा पोटाश नेत्रेत अथवा अन्य किसी ऐसे ही पदार्थमें डुबा देनेसे भी इसकी त्रुटियोंको दूर कर देते हैं।

आजकल प्रकाश उत्पन्न करनेवाली वस्तुओंमें मोमबत्तीका स्थान बहुत ऊंचा है और इसके प्रयोगकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। इसके प्रयोगमें अनेक सुविधाएं हैं। इसके लिये किसी विशेष बर्तनकी आवश्यकता नहीं पड़ती। खर्च भी अधिक नहीं होता। धुआं भी बहुत नहीं होता। देखने में भी अच्छा मालूम पड़ता है और प्रकाश भी काफ़ी तेज़ होता है।

दूसरी प्रकाश उत्पन्न करने वाली वस्तु मट्टीका तेल है जो पहले अमेरिका और रूसमें संचित पाया गया था। स्काटलेण्डमें एक प्रकारका तेलिया डामर खानोंमें पाया गया था जिसको भपकेमें गरम करनेसे मट्टीका तेल और पाराफ़ीन मोम उत्पन्न होता था। कुछ दिनों से बरमामें भी ऐसे तेल पाये गये हैं। मेसोपोटामियामें भी इस तेलकी खानें हैं जिनके आधिपत्यके बारेमें बहुत

कुछ राजनैतिक कूटनीति चल रही है। इस देशमें जो तेल आते हैं वे यातो अमेरिकासे य बरमासे।

पानीमें सड़ी हुई वनस्पतियों को चलाकर खूब मथनेसे एक प्रकारका गैस पानीसे बाहर निकलता है। यह गैस दहनशील है और दलदलोंसे उत्पन्न होनेके कारण दलदली गैस के नामसे भी पुकारा जाता है। यह गैस कोयले की खानोंसे निकलकर वायुके साथ मिलकर भड़कने वाली एक मिश्रण बनाती है। रसायनशास्त्रमें इसे 'मिथेन' कहते है। मट्टीके तेल उत्पन्न होने वाले स्थानोंमें यही गैस पृथ्वीसे बाहर निकलती रहती है। मिथेन कर्बोज्जोंकी एक बहुत बड़ी श्रेणीका पहला यौगिक है। मिथेनके एक अणुमें कर्बनके एक परमाणु और उज्जनके चार परमाणु सम्मिलित हैं। क्योंकि कर्बनका एक परमाणु उज्जनके चारसे अधिक परमाणुओंसे सम्मिलित नहीं हो सकता, उस की योगशक्ति न चारसे घटती है न बढ़ती ऐसे कर्बोज्ज को तृप्त (Saturated) कर्बोज्ज कहते हैं। कर्बनमें एक विशेषता है जो अन्य मौलिकोंमें नहीं पायी जाती। वह विशेषता यह है कि कर्बन के परमाणु एक दूसरेसे बहुत सरलतासे मिलकर श्रेणीबद्ध हो जाते हैं। इस तरह कर्बन और उज्जनके योगसे श्रृङ्खलाकार अनेकों नये और जुदे जुदे रंग रूप तथा गुण वाले यौगिक उत्पन्न हो जाते हैं। जिन्हें इथेन, प्रपेन, बुटेन, पंचेन षष्ठेन, अष्टेन इत्यादि नामसे पुकारते हैं। इनमें क्रमशः २, ३, ४ ५, ६, ७, ८ इत्यादि कर्बन परमाणु उपस्थित हैं। इनका संगठन इस प्रकार दिखाया जा सकता हैः—
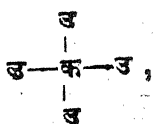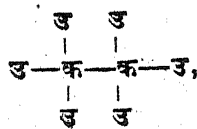
```
     उ                उ   उ
     |                |   |
  उ—क—उ ,         उ—क—क—उ,
     |                |   |
     उ                उ   उ
   मिथेन              इथेन

     उ  उ  उ                 उ  उ  उ  उ
     |  |  |                 |  |  |  |
  उ—क—क—क—उ ,          उ—क—क—क—क—उ
     |  |  |                 |  |  |  |
     उ  उ  उ                 उ  उ  उ  उ
     प्रपेन                    बुटेन
```
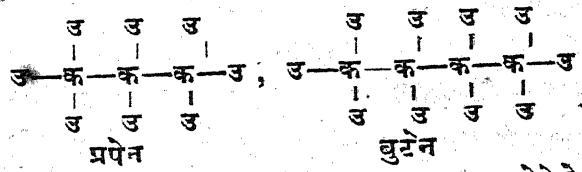
ऊपर दिये हुये पदार्थोंके संगठन पर ध्यान देनेसे पाठकोंको मालुम हो जायगा कि इन सब यौगिकों में उज्जनके परमाणुओंकी संख्या कर्बनके परमाणुओंकी संख्या की दोगुनीसे दो ज्यादा है। जैसे मिथेनमें कर्बनका एक परमाणु है और उज्जनके २+२ यानी चार। इथेनमें कर्बनके दो परमाणु हैं और ४+२ यानी छः उज्जनके परमाणु। इस लिये सब यौगिकों का व्यापक सूत्र $क_न उ_{२न+२}$ हुआ। इन सब कर्बोज्जोंमें कर्बनकी पूरी योगशक्ति तृप्त हो जाती है।

कुछ ऐसे कर्बोज्ज भी हैं जिनमें उज्जनका अंश ऊपर लिखे हुये कर्बोज्जोंमें उज्जनके अंशसे न्यून है। ऐसे कर्बोज्जों को अतृप्त कर्बोज्ज कहते हैं। जिन अतृप्त कर्बोज्जोंमें तृप्त कर्बोज्जोंसे उज्जनके दो परमाणु कम हों उन्हें इथिलीन (इथेनसे) प्रपिलीन (प्रोपेनसे) ब्यूटेलीन (ब्यूटेनसे) पञ्चलीन (पञ्चेन से) षष्ठलीन (षष्ठेनेसे) इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं। इन सबको इथलीन श्रेणीके कर्बोज्ज कहते हैं। आगे चलकर मालूम होगा कि कोयलेसे उत्पन्न गैसोंके ये एक मुख्य अंश हैं। इन अतृप्त कर्बोज्जोंके अणुसूत्रोंके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैंः—
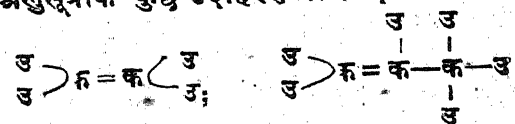
```
                                        उ  उ
                                        |  |
 उ               उ              उ
   >क=क<            ;             >क=क—क—उ
 उ               उ              उ         |
                                          उ
      इथिलीन                      प्रपिलीन
```

इन यौगिकोंमें उपरोक्त तृप्त कर्बोज्जोंकी बनिस्बत उज्जनके २ परमाणु कम हैं। इस श्रेणीको इथलीन श्रेणी कहते हैं और इसका व्यापक सूत्र $क_न उ_{२न}$ है।

ऐसे भी कर्बोज्ज हैं जिनमें एथिलीन श्रेणीके कर्बोज्जों से भी कम उज्जनके अंश वर्तमान हैं। यहां ऐसीटिलीनका नाम उल्लेख किया जा

सकता है; जो साधारणतः एसीटिलीन लैम्पोंमें तेज़ रोशनी उत्पन्न करनेके लिये प्रयोग होता है। यह श्रेणी इथिलीन श्रेणीसे भी अधिक अतृप्त है इसका व्यापक सूत्र $\text{क}_{\text{न}}\text{उ}_{\text{२न−२}}$ है। एसिटिलीन का सूत्र उ−क≡क−उ है। अमेरिकाके तेलोंमें विशेषतः मिथेन श्रेणीके ही कर्बौज्ज विद्यमान हैं किन्तु जो तैल दक्षिणी रूसमें निकलता है उसमें कुछ ऐसे कर्बौज्ज भी विद्यमान हैं जो बेन्ज़ीनसे * समता रखते हैं। यह प्राकृतिक तेल सामुद्रिक जीव और बनस्पतियों पर अनन्त काल के उत्ताप और दबाव क्रियाओं से बने हुये कोई एक यौगिक नहीं–वरन् अनेक यौगिकों के मिश्रण हैं। इनमेंसे सबसे छोटा मेम्बर मिथेन पृथ्वीसे गैस रूपमें बाहर निकलता रहता है। जैसे जैसे कार्बनका अंश इनमें बढ़ता जाता है वैसे ही उड़नेकी शक्ति उनकी कम होती जाती है और उबलने का तापक्रम भी धीरे धीरे कम होता जाता है। जब कर्बनके परमाणुओंकी संख्या १६ पर पहुंच जाती है तब वह यौगिक साधारण तापक्रम पर एक ठोस पदार्थ हो जाता है।

पृथ्वीसे निकला हुआ पेट्रोलियम जब उबाला जाता है तो अधिक उड़ने वाले कर्बौज्ज पहले उड़ जाते हैं और जुदे जुदे तापक्रमों पर उड़े हुये अंश अलग अलग इकट्ठे किये जाते हैं। इस प्रकार पेट्रोलियमके अनेकों जुदे जुदे अंश प्राप्त होते हैं। इनमें जो अंश ७०° से ८०° शतांश पर इकट्ठा होते हैं उन्हें पेट्रोलियम ईथर कहते हैं और वह अनेक पदार्थोंको घुलानेके लिये अधिकतर व्यवहारमें आते हैं। दूसरे अंश जो ८०° से १२०° शतांश पर इकट्ठे होते हैं उन्हें गैसोलिन, पेट्रोलियम नेफ़था अथवा लिग्रोइनके नामसे पुकारते हैं। ये मोटर गाड़ियोंके इंजनोंमें जलाने और गलानेके लिये व्यवहारमें आते हैं। तीसरे अंश जो १२०°से १५०° शतांश पर इकट्ठे होते हैं उन्हें बेनज़ाइन† अथवा बेन्ज़ोलियन कहते हैं। ये ऐसे कपड़ोंके धोनेमें काम आते हैं, जहां पानीका प्रयोग हानिकारक है अथवा जहां मैल—वानस्पतिक तेल इत्यादि—केवल पानीकी सहायतासे दूर नहीं हो सकता। जैसे जैसे गरमी बढ़ाई जाती है ऊंचे तापक्रम पर उड़नेवाले अंश उड़ना शुरू करते हैं। १५०°से ३००° शतांश पर जो अंश उड़ते हैं उन्हें किरोसीन कहते हैं। यही तेल टीनों में भर कर यहां आता है और हम लोगों के घरों में लालटेनोंमें जलाया जाता है। इस से भी ऊंचे तापक्रम पर उड़ने वाली वस्तुएं मशीनोंको ऊँगने वाले ( Lubricating Oils) तेल और वेसलीन हैं। जो अंश उड़नेसे रह जाता है उसे पाराफ़ीन कहते हैं और वह प्रायः ४५०-६५० शतांश पर पिघलता है और अधिकांश मोमबत्ती बनाने में प्रयोग होता है।

केरोसीन में कर्बन का अंश अधिक रहने से यदि पर्याप्त परिमाण में ओषजन नहीं रहे तो जलने में धुआं उत्पन्न होता है। अतएव जब यह तेल प्रकाश उत्पन्न करने के लिये प्रयोग होता है तब लौके चारों ओर चिमनी रख दी जाती है जिससे अधिक तादाद में हवा खिंच कर काफ़ी ओषजन लौको प्राप्त हो जाय। ऐसे लालटेनों में जहां बत्ती गोलाकार हो एक ऐसी नली रहनी चाहिये जिसके द्वारा लौके भीतरी भाग की तरफ़ ओषजन खींचा जासके।

पहले पहल जब प्रकाश उत्पन्न करने के लिये ऐसे तेलों का व्यवहार आरम्भ हुआ तब आग लगना एवं भड़कना कोई असाधारण बात न थी। इससे इस तेल के प्रयोग को इन दुर्घटनाओं से रहित करने के लिये विशेष क़ानून बनाने की आवश्यकता पड़ी। ऐसी दुर्घटनाएं अधिक उड़ने वाले तेलोंके अंशोंको पूर्ण रूपसे दूर न करने

*बेन्ज़ीन एक दूसरी श्रेणीका कर्बौज्ज है जिसमें कर्बन के ६ और उज्जनके ६ परमाणु विद्यमान हैं

† यह बेन्ज़ीनसे बिलकुल भिन्न पदार्थ है

हीं के कारण-हुआ करती थीं। ये अधिक उड़ने वाले अर्थात् वायु के साथ मिलकर भड़कने वाले मिश्रण बन कर आग लगाते थे। ऐसी दुर्घटनाओंको दूर करने के लिये यह आवश्यक था कि किसी नियमित तापक्रम के नीचे गैस बनने वाले तेल उपस्थित नहीं रहें। इस बात की एक विशेष यंत्र द्वारा जांच की जाती है जिसके द्वारा वह ताप-क्रम मालूम कर लिया जाता है जिस पर तेल गैस बन कर बर्तन के बाहर निकल आग पकड़ता है। वह तापक्रम तेल का भक-विन्दु (Flash Point) कहा जाता है और कम से कम ७३° फ़ारन हीट रहना है।

आजकल सभ्य देशोंमें और कलकत्ता, बम्बई इत्यादि बड़े २ शहरोंमें प्रकाश उत्पन्न करनेकी मुख्य वस्तु गैस है जो कोयलेको बन्द बर्तनों के भपकेमें गरम करनेसे उत्पन्न होती है। यह बात बहुत दिनोंसे मालूम थी कि कोयलेको बन्द बर्तनों में गरम करनेसे दहनशील गैस उत्पन्न होते हैं किन्तु यह यश स्कटालैंड वासी विलियम मुर्डोक (William Mardoch) को प्राप्त है जिन्होंने पहले पहल इस गैसको तैयार करनेकी विधिको सुधार कर यह प्रमाणित कर दिया कि प्रकाश उत्पन्न करने के लिये आमतौरसे यह गैस प्रयोग हो सकती है। यह घटना १८ वीं शताब्दीके अन्तमें हुई। इसके कुछ ही दिन बाद इसका प्रयोग आमतौर पर होने लगा। इसके प्रयोगसे उस समय नगरों के देख-रेख और मनुष्योंके आराममें जो परिवर्तन हुआ उसको १९ वीं शताब्दीके एक लेखकने इस प्रकार वर्णन किया है:—

"हमलोगोंको याद है कि १८१० ई० के पहले अधिकांश सड़कोंका कैसा अन्धकारमय रूप था। उसके पहले सड़कोंकी रोशनी इतनी कम थी कि पथिकोंका चोर और चौकीदारों, नाले और गढ़ोंको पहचानना प्रायः असम्भव था। अब दशा बिल्कुल भिन्न है क्योंकि गैसकी लालटेनोंसे दिनके प्रकाशसे कुछही कम प्रकाश उत्पन्न होता है और इससे सड़कें अबउन भयावनी और अरुचिकर बातोंसे मुक्त हैं जिनको पहले लोगोंको सहन करना पड़ता था क्योंकि उस समय इनसे बचनेका कोई उपाय नहीं था।"

ऊपर लिखी हुई बातोंमें हम लोगोंके लिये कोई नवीनता नहीं है क्योंकि अब तक यहांके मुफ़स्सिल शहर वैसेही प्रकाशित किये जाते हैं जैसे युरोपमें १८१० ई० के पूर्व किये जाते थे। किन्तु जिन लोगोंने कलकत्ता, बम्बई इत्यादि शहरोंको देखा है वे कह सकते हैं कि इन गैससे प्रकाशित शहरों और मुफ़स्सिलके तेलके लैम्पों द्वारा प्रकाशित शहरोंमें कितनी विभिन्नता है।

कोयला शुद्ध मौलिक नहीं है वरन् अनेक वस्तुओंका एक अद्भुत मिश्रण है जिसकी प्रकृतिका अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लगा है। यद्यपि इस विषयपर अनेक लेख सामायिक रासायनिक पत्रोंमें निकल रहे हैं। कोयलेमें मौलिकपदार्थ कर्बन, उज्जन और ओषजन हैं यद्यपि नत्रजन और गन्धकका थोड़ा थोड़ा अंश अवश्य उपस्थित रहता है। जब यह कोयला बन्द बर्तनोंमें गरम किया जाता है तो इससे केवल प्रकाश उत्पन्न करनेवाली गैसें ही नहीं उत्पन्न होतीं प्रत्युत अमोनिया और टार भी उत्पन्न होता है। जो कुछ बर्तनमें बच जाता है उसे "कोक" कहते हैं। लगभग ५०। ६० वर्ष पहले अमोनिया और टार कुछ भी महत्वके नहीं थे किन्तु आजकल यह गैससे भी अधिक महत्वके समझे जाते हैं क्योंकि इनसे अनेक मूल्यवान वस्तुएं आजकल तैयार होती हैं। लोहा, इस्पात और अन्यान्य धातुओंके बनानेमें कोक इतनी अधिक तादादमें आजकल व्यवहार किया जाता है कि करोड़ों मन कोयला केवल कोक तैयार करनेके अभिप्रायसे बन्द बर्तनोंमें उत्तप्त किया जाता है।

कोयलेके उत्तप्त करनेसे जो वस्तुएं जिस जिस परिमाणमें उत्पन्न होती हैं वह अधिकांश कोयलेकी प्रकृति पर निर्भर हैं, किन्तु साधारणतः

कहा जाता है कि निम्न लिखित वस्तुएं निम्न लिखित परिमाणमें उत्पन्न होती हैं:—

एक मन कोयलेमें

| | |
|---|---|
| जलनेवाली गैस | प्रायः ४०४ वर्ग फ़ीट |
| टार | „ $2\frac{1}{4}$ सेर |
| अमोनियम गन्धेत | „ $\frac{1}{2}$ सेर |
| कोक | „ २७ सेर |

जलनेवाली गैसके बनानेमें कोयले बड़े बड़े बर्तनोंमें रख कर प्रायः १८००° फ़ारनहैट तापक्रम पर गरम किये जाते हैं और इनमेंसे निकले हुये गैस ऐसी नली द्वारा ले जाये जाते हैं जिनके मुंह पानीमें डूबे हुये हैं। इस प्रकार पानी और टारके कुछ अंश घनीभूत हो वहां रह जाते हैं। शेष पानी और टार घनीभूत करनेवाली श्रेणीबद्ध नलियोंमें घनीभूत होते हैं। अधिकांश अमोनिया पानी हीमें घुल जाता है और जो शेष बच जाता है वह विशेष उपायोंसे गन्धकाम्लके द्वारा दूर किया जाता है। अब भी इस गैसमें ऐसी ऐसी वस्तुएं रह जाती हैं जिनका रहना उचित नहीं। ऐसी वस्तुओंमें अधिक महत्वके उज्जन गन्धेद और कर्बनद्विओषित हैं। उज्जन गन्धेद इस कारण हानिकारक है कि इसके जलनेसे गन्धकद्विओषित बनता है, जो पोधों एवं घरके सामानों को धीरे धीरे विनाश करता है। कर्बनद्विओषित इस कारण दूषित है कि इसके रहने से प्रकाश उत्पन्न करने की शक्ति कम हो जाती है। कोलगैस को इन दूषित पदार्थोंसे मुक्त करनेके लिये अनेक बक्सों के भीतर होकर पास कराया जाता है जिन में चूने और लौहओषित रखे जाते हैं जो क्रमशः कर्बनद्विओषित और उज्जनगन्धेदको सोख लेते हैं। जब सारा लौहओषित लौहगन्धेद में परिवर्तित हो जाता है तब उसमें अधिक उज्जन गन्धेद नहीं सोख सकता। उस लौहगन्धेद को तब कुछ समयके लिये हवामें खुला रखनेसे सोखनेकी शक्ति फिर उसमें आ जाती है। इस प्रकार थोड़ेही लौहओषित को बारंबार कुछ समय तक इस कार्य्यके लिये प्रयोग कर सकते हैं। इसके बाद यह गन्धकाम्लके तैयार करनेके लिये भेज दिया जाता है।

इस प्रकार शोधन क्रियाओंको समाप्त कर यह गैस उस बड़े बर्त्तनमें एकत्र होती है जहांसे प्रयोग करनेवालोंके पास भेजी जाती है। इस गैसके संगठन (composition) जुदे जुदे कारखानोंमें जुदे जुदे होते हैं। एक कारखानेमें भी बराबर एकसा संगठन नहीं होता तो भी औसत सङ्गठन (Composition) इस प्रकार दिया जा सकता है:—

| | | | |
|---|---|---|---|
| उज्जन | ४८—फ़ी सैकड़ा आयतन | | |
| मिथेन | ३५ | „ | „ |
| अतृप्त कर्बोज्ज | ४ | „ | „ |
| कर्बन एकोषित | ५ | „ | „ |
| कर्बन द्विओषित | ०.५ | „ | „ |
| नत्रजन— | ६ | „ | „ |
| ओषजन— | ०.५ | „ | „ |

ऊपरके अङ्कोंसे यह स्पष्ट है कि कोयलेसे बनाया हुआ गैस अनेक वायव्य पदार्थोंका मिश्रण है। इनमें कर्बनद्विओषित, नत्रजन और, ओषजन प्रकाश उत्पन्न करनेकी शक्तिको कम करते हैं क्योंकि वे स्वयम् नहीं जलते उनको कोलगैस का विकार कहा जा सकता है।

दहनशील गैसों में उज्जन प्रकाशहीन लौके साथ, और कर्बन-एकोषित चमकीली नीले रङ्गकी प्रकाशहीन लौके साथ जलता है। मिथेन ऐसी लौके साथ जलता है जिस में थोड़ा प्रकाश उत्पन्न करनेकी शक्ति है। एथीलीन बहुत चमकीले प्रकाशके साथ जलता है। यथार्थमें कोल गैसकी लौका प्रकाश इसीश्रेणी केही दूसरे कर्बोज्जोंसे उत्पन्न होता है। दूसरे अतृप्त कर्बोज्जोंमें बेन्ज़ीनका नाम उल्लेखनीय है क्योंकि इसकी

भाग भी प्रकाश युक्त लौका और कुछ धुएं के साथ जलती है।

मोमबत्ती, कोलगैस और पेट्रोलियम के जलने से प्रकाश क्यों उत्पन्न होता है इस प्रश्नका उत्तर बहुत समय हुआ सर हम्फ्रे डेवी (Sir Humphry Davy) ने इस प्रकार दिया था—"कर्बोज्ज़ पदार्थ कर्बनके कणोंमें विभक्त हो जाते हैं और यह कर्बन के करण जलती हुई गैस में बहुत अधिक तप्त होकर प्रकाश उत्पन्न करते है। इन छोटे छोटे कणों की उपस्थिति सरलतासे प्रमाणित की जा सकती और दिखाई जा सकती है। यदि एक शीतल तह प्रकाश उत्पन्न करनेवाली लौ पर रखी जाय तब शीघ्र ही उस शीतल तहपर कजली इकट्ठी हो जायगी। यह कर्बनके कण वहांसे निकल कर हवामें नहीं आते वरन् लौके किनारे पहुंचते पहुंचते वायु के ओषजनके साथ मिल कर जल जाते हैं।" इस प्रकार यदि ध्यानसे देखा जाय तो लौके तीन भाग देख पड़ेंगे। एक भीतरका अदृश्यभाग जो बिना जला हुआ गैस का है। दूसरा दृश्य भाग जहां कर्बन कण तप्त होकर प्रकाश उत्पन्न करते हैं तीसरा बहुत पतला बाहर का भाग जहां कर्बन कण पूर्ण रूपसे जलते हैं। ऊपर लिखी हुई बातों से यह स्पष्ट है कि बहुत तेज़ प्रकाश उत्पन्न करनेके लिये दो बातों की ज़रूरत हैं। (१) कार्बन कण जितने ही ज़्यादा लौमें मौजूद हों उतना ही तेज़ प्रकाश होगा (२) लौका ताप क्रम जितना ही ऊंचा हो उतना ही अधिक प्रकाश उत्पन्न होगा।

## धृतराष्ट्रके सौ पुत्र

[ लेखक—श्री० जयदेव शर्मा विद्यालंकार ]

किसी पुरुषके सौ पुत्र होना इतना असम्भव नहीं प्रतीत होता जितना एक माताके १०० पुत्र होना। भारतके प्राचीन इतिहासमें सगरके ६० हज़ार पुत्र थे, वह भी एक मातासे। दक्ष प्रजापतिकी कितनी ही कन्याएँ थीं। धृतराष्ट्रके सौ पुत्र थे, जिनकी माता भी एक गान्धारी थी। इस प्रकारकी असम्भावनाओंको देख कर प्रायः पाठक कल्पना करेंगे कि कदाचित् भारतमें राजाओंकी बहुत सी स्त्रियां होती थीं। एक पुरुषसे बहुत सी स्त्रियोंमें सौ सवासौ पुत्रोंका हो जाना सम्भव है। पटरानी गान्धारी होगी, जो सामान्यतः सबकी माता कहाती होगी। अस्तु ऐसी कल्पना अन्ततः कल्पना ही है। एक गर्भसे १०० पुत्रोंका पैदा होना यदि असम्भव नहीं तो भी विस्मयजनक जैसे पहले था वैसे ही अब भी है। इस लेखके लिखनेके पूर्व ही पाठकोंको हम निश्चय करा देना चाहते हैं कि १०० पुत्र धृतराष्ट्रके गान्धारीके गर्भसे होने सम्भव हैं। विज्ञान इसका कोई विरोध नहीं करता। पर किस प्रकार, यह आगे पढ़नेसे ज्ञात हो जायगा।

प्राकृतिक संसारमें एक मादाजीवसे सैकड़ों अपत्य और एक नर जीवसे सैंकड़ों गर्भोंका धारण देखा गया है। यह कोई छिपी बात नहीं।

क्षुद्र जातिके जीवोंमें चिरकालतक गर्भ-धारण-शक्ति नहीं होती। इसीलिए मछली मेंढक आदि क्षुद्र जलचर मादाएं अपने अन्तःगर्भसे सहस्रों डिम्ब बाहर फेंक देती हैं और नर अपने शुक्रकीटोंसे उनको गर्भित करदेता है। पक्षिजातिमें कुछ काल गर्भ रखनेकी शक्ति होती है। यद्यपि नर मादाके मैथुनमें एक संयोगमें ही नरके एक बार छोड़े वीर्यमें सहस्रों शुक्रकीट और स्त्रीके रजःउत्सर्गमें सहस्रों डिम्ब होते हैं तोभी थोड़े ही परस्पर मिलकर अण्डा बन पाते हैं, शेष सब अनुकूल अवस्था न होनेसे अण्डा रूप नहीं बनपाते। इसी प्रकार उत्तम कोटिके स्तनपायी जानवरोंमें गर्भको चिरकालतक धारण करनेकी शक्ति है। उनमें भी पूर्वोक्त कथनानुसार ही सहस्रों शुक्रकीट एवं सहस्रों रजकीट व्यर्थ जाते हैं और पुत्र रूप दो चार ही फलते हैं; जैसे शूकरोंके पेटमें ६

बच्चे तक भी हो जाते हैं, कुतियाके पेटमें ४, ५; पर हाथी, गौ, घोड़ा आदि केवल एक बच्चा जनते हैं। मनुष्योंमेंभी एकही बच्चा एक बारमें उत्पन्न होता है। परन्तु कभीकभी २, ३, ४, ५, बच्चेभी एक समय एकही गर्भसे उत्पन्न होते पायेगये हैं। अब आश्चर्यजनक बात यही है कि क्या यह संख्या १०० तक भी पहुँच सकती है ?

यदि १०० शुक्रकीटों को १०० रजःकीटों (या डिम्बों) के साथ मिलनेका अवसर मिलजाय और फिर उनके नियमानुकूल अनुपघातक अवस्थामें परिपोषण पानेका अवसर प्राप्तहो तो कोई शंका नहीं कि १०० पुत्र पैदा न हो सकेंगे। मेंढकीके पेटसे सैकड़ों रजःकीट या डिम्ब निकलते हैं और नर मेंढक उनको अपने शुक्रकीटोंसे गर्भित करता है और वह पानीकी तहमें ही अण्डाकार रूपमें एक झिल्लीमें लिपटे हुये पड़े रहते हैं। फलतः गर्भ-विज्ञान के नवीन शास्त्रने इस बातको सत्य माना है कि गर्भ शुक्रकीट द्वारा डिम्बमें उपस्थित किये हुये गर्भाधानके परिपोषणका उचित स्थान है। वह प्राणीके पेटमें न होकर बाहर भी सम्भव है।

इसी स्थापनाके अनुसार स्त्रियोंके गर्भमें यदि संयोगवश १०० डिम्ब शुक्रकीटोंसे गर्भस्थित होजावें और उनको गर्भाशयमें उचित परिपोषणका अवसर प्राप्त हो तो कोई कारण नहीं कि वे सब गर्भ ठीक पुत्र रूपमें न फलजावें। जब यह सत्य है तो अब यही देखना शेष है कि स्त्रीके गर्भमें १०० रजःकीटों या डिम्बोंका पुरुषके शुक्रकीटोंसे गर्भित होजाना (फ़र्टिलाइज़ होजाना) सम्भव है या नहीं। हमें इसमें भी कोई असम्भव बात प्रतीत नहीं होती क्योंकि गर्भाशय तो केवल एक पोषण-स्थान है, गर्भित होना केवल योनिमार्ग या गर्भके मुख द्वारमें ही होता है। यदि क्रमसे डिम्ब गर्भित हो कर गर्भमें प्रविष्ट होते जायं तो एक गर्भाशयमें १०० गर्भित डिम्बोंको आजाना असम्भव नहीं क्योंकि गर्भित होनेके कालमें डिम्ब और शुक्रकीटका परिमाण एक इञ्चका $\frac{1}{200}$ भाग होता है। गर्भाशयका परिमाण प्रथम अंगुलमात्र होता है। १५ दिनके पश्चात् गर्भाशयमें गर्भित डिम्बका आकार $\frac{1}{12}$ इंच होता है। तीसरे सप्ताहमें बाजरेके दाने के या लाल चींटीके बराबर होता है। चौथे सप्ताहमें लम्बाई $\frac{1}{3}$ इंच होती है। ४५ दिनके बाद लम्बाई एक इंच होजाती है और मानवीय आकृति पूर्ण होजाती है। तीसरे महीनेके बाद उसका आकार साढ़े तीन इंच हो जाता है और भार ढाई औंस होजाता है। चौथे मासमें आकार ५, ६ इंच तक ५ वें मासमें लम्बाई ७, ८ इंच तक होजाती है; भार भी ८ औंस (४ छटांक)। छठे मासमें लम्बाई १०, १२ इंच और भार १ सेर होता है। ७ वें मासमें आकार १४ इंच; भार ३ पौण्ड (डेढ़ सेर)। आठवें मासमें लम्बाई १६ इंच और भार ४ पौण्ड (२ सेर)। नवें मासमें लम्बाई १८ से २० इंच तक और भार (३-४ सेर) और १० मासके बाद प्रसव कालमें लम्बाई २४ इंच और भार ७ सेर तक होता है।

इस अनुमानसे हम इस परिणाम पर पहुंचे कि मानवी गर्भमें १० मासमें १ बच्चा पुष्ट होता हुआ ७ सेर हो जाता है, जिसकी लम्बाई दो फुट होती है। परन्तु जिस भोज्य सामग्रीको १ बालक गर्भमें खाता है यदि उसीको एक गर्भमें सोये हुए १०० बच्चे खावें तो स्पष्ट है कि उनका पोषण बहुत न्यून होगा और उनका परिपाक भी बहुत देरमें होगा। हम यह भी देखते हैं कि प्रथम वृद्धिका अनुक्रम बहुत न्यून है परन्तु बादमें वृद्धि बहुत शीघ्र होती है। इससे उचित परिपाकके लिये प्रथम गर्भके जमने और विरूढ़ होनेके लिये चिरकाल लगेगा। अब हम गान्धारीके गर्भकी आलोचना करते हैं।

महाभारतके अनुसार दो वर्षके पश्चात् गान्धारीने शोक विलापसे अपने गर्भको पीटकर नियत प्रसव काल पूर्व ही बाहर फेंक दिया। जब वह लोथड़ा सा बाहर आया तो १०० पुत्रोंकी इच्छामें मगन गान्धारी सहसा आश्चर्यसे दंग रह गयी। उसी समय व्यासदेव वहां उपस्थित हो कर बोले तू ने यह क्या किया? गान्धारी बोली 'भगवन् कुन्तीके तो पुत्र पैदा भी हो गये और मुझ अभागिनीके दो वर्ष गर्भके बाद भी यह लोथड़ा पैदा हुआ। इस पर भगवान व्यासने कहा कि मैंने असत्य नहीं कहा था; तुम्हारे गर्भसे १०० पुत्र ही होंगे। इसके बाद व्यासदेवने १०० घीके कूँड़े मँगवाये उनको बड़े सुरक्षित स्थानों पर रखा गया। गर्भसे निकले मांसमय गर्भको शीतल जलके छींटे दिये गये। छींटे देनेकी देर थी कि उस पेशीके आपसे आप सौभाग हो गये। पर पाठक ध्यान रखें कि वह मांसमयी पेशी जिस को महाभारतकार ने अष्ठीला* या मांसकी गांठ (मांसग्रन्थि) लिखा है वह मांसकी गांठ ही नहीं थी परन्तु उसीमें १०० छोटे छोटे गर्भ इकट्ठे मिले हुए थे। अपरिपक्व दशामें वह उस रूपमें थे और एक दूसरेसे सटे हुए थे। व्यासदेवने उनमेंसे एक एकको अलग अलग किया और बड़े शास्त्रीय उपचार तथा डाक्टरी अनुयोगके अनुसार सुरक्षित स्थान पर रखे घीके कुण्डोंमें बड़ी सावधानीसे रखा। व्यासजी यह भी कह गये कि इतने नियत काल बाद इन कुण्डोंको खोलना। यह वास्तविक वर्णन है, जो महाभारतमें लिखा गया है। इसमें १०१ गर्भोंका पृथक् पृथक् होना वैशम्पायन ने माना है। वह १०१ टुकड़े, मांसपेशीको काटकर नहीं किये थे प्रत्युत १०१ गर्भ जो परस्पर चिपके हुए थे उनको पानी छिड़क कर अलग किया गया था। वह सब स्वतः छोटे छोटे अंगूठेके पोरुएके बराबर गर्भ थे और संख्यामें वह १०१ थे† अर्थात् उनकी लम्बाई लगभग $1\frac{1}{4}$ इंच के थी। अर्थात् उनका परिपोष अभी उतना ही हुआ था जितना कि डेढ़ दो मासके गर्भका होता है। अब पाठक देख सकते हैं कि मानव गर्भमें १०१ गर्भ दो सालमें भी उतना परिपोष पासके जितना एक गर्भ दो मासमें। यदि गान्धारी इस प्रकार उस गर्भको गिरा नहीं देती और गान्धारी का पेट भी यथासम्भव पूर्ण दशमासिक परिपक्व १०० बालकोंको धार सकता तो उसके पुष्ट होनेके लिए कमसे कम १० साल लगने चाहिये थे।

परन्तु व्यास जीने अब क्या बुद्धिमत्ता की। उस समय बड़ी सुरक्षासे, प्रत्येक गर्भ (गर्भित डिम्ब) को घी से पूर्ण घड़ेमें रखा और उनको परिपाक किया। मानो अंडोंको सेनेकी उचित विधि ढूंढ़ निकाली। जिससे वह डिम्ब नष्ट होने न पाये। जब ईश्वरकी सृष्टिमें सर्वथा नाजुक अण्डेको तिर्यग्योनि तक अपने पेटके नीचे रखकर सेकर बच्चा बना सकती है, मानो चूनेके आवरण में लिपटे वीर्य और रजोभागको बच्चा बना लेती हैं, तब क्या व्यास जैसे विद्वान ऋषि उस डिम्ब की उचित रक्षाका प्रबन्ध नहीं कर सकते थे। कर सकते थे और किया भी। उनके परिपोष हो चुकने पर उनको पुत्र रूपसे बाहर निकाल लिया। संसार भरके इतिहासमें यदि सर्वथा अपरिपक्व मानव गर्भको भी बच्चा लेनेकी कोई अद्भुत चमत्कारिक आयोजनाका आविष्कार किया था तो निःसन्देह आजसे ५००० वर्ष पूर्व व्यास देव ने किया था। जिस नवजीवनके विद्या रहस्य यूरोपके विद्वान अब जान पाये हैं और पूरी सफलता अ-

* सासिच्यमाना त्वष्ठीला बभूव शतधातदा ॥

† अंगुष्ठ पर्व मात्राणां गर्भाणां पृथगेव तु।
एकाधिकशतं पूर्णं यथायोगं निशाम्यते ॥

भी नहीं पा सकते हैं उसका मर्म प्राचीन ऋषि ५००० वर्ष पहले जान चुके थे*

## बनस्पति संसारमें नियम भङ्ग

( 'विज्ञान' के लिए विशेष )

( १ )

यो तो संसार ही विचित्र है। इसके प्रत्येक मार्गमें रहस्य भरा हुआ है। सत्य और असत्यकी खोजमें ही मानव जातिका जीवन व्यतीत हो रहा है। तौभी संसारकी सभी रचनाओंमें एक नियम और एक क्रम दीख पड़ता है। जैसे आम गर्मीके मौसममें फलता है। कास शरदारम्भमें फूलते हैं। जामन बरसातमें फलती है, इत्यादि। इसी क्रम, नियममें यदि कुछभी विशेषता दीख पड़ेगी वही अद्भुत जान पड़ेगी। ऐसा क्यों हुआ, यह क्रम क्यों टूटा, अब यह नियम क्यों बदला, यह प्रश्न स्वभावतः उत्पन्न हो जायंगे।

यदि अबसे आम सरदीमें फलें, कास बसन्तमें खिले जामुन हेमन्तमें पके और फूलमेंसे फूल निकलें फलमेंसे फूल पैदा हों तो यह सभी नियम भङ्ग होना हमारे लिए विस्मयका कारण होंगे। ऐसा क्यों हुआ इसके जाननेकी इच्छा होगी। इस प्रकारके नियम भङ्गोंका ही उल्लेख इस लेखमें किया जायगा।

हमारे इस लेखमें दिखाये हुये क्रमभङ्गों या वैचित्र्योंका वास्तविक कारण तो कदाचित् कोई बनस्पतिशास्त्रका चतुर विद्वानही बता सके, परन्तु हमारे प्राचीन विद्वानोंने भी इस पर बड़ा अनुशीलन किया था। उन्होंने प्रकृतिके सभी अद्भुत नाटकोंको खूब सूक्ष्मतासे देखा था। और अपने ज्ञानके अनुसार जितना गहरा पहुंच पाये उतना पहुंचनेमें कसर नहीं की थी।

( २ )

प्राचीनोंका विश्वास था कि प्रत्येक वस्तुमें मनुष्यका धर्म अधर्म जुड़ा हुआ है। प्रत्येक घटनाका किसी देश कालमें होना वहांके वासियोंके लिए अच्छाई या बुराईका द्योतक या कारण है। इन्हीं आधारों पर शकुन-शास्त्रोंकी रचना हुई है। नैसर्गिक घटनाओंका देश कालकी स्थितिके परिवर्तनके साथ साहचर्य एवं प्राकृतिक घटनाओंका जीव संसारके सुख दुःखोंके साथ तात्विक सम्बन्ध देख कर उन्होंने इतना अनुभव प्राप्त कर लियाथा कि उनको अपना भूत, भविष्य सभी ज्ञात होता प्रतीत होता था।

इन्हीं शास्त्रकारोंने बनस्पति संसारकी विचित्र बातोंको देख पाया और उनसेभी अपने सम्पद विपद, सौभाग्य दुर्भाग्य, जय पराजय, लाभहानि और सुभिक्ष दुर्भिक्षका निर्णय करनेका प्रयत्न किया, हम इस लेखमें अधिक ज़ोर फलादेश पर न देकर वैचित्र्य दर्शाने में ही लगाएंगे।

( ३ )

प्राचीन कालमें कवि लोग ऋषि कहाते थे और ऋषि लोग कवि थे। उनकी सब उक्तियां सत्यका प्रतिरूप थीं। जैसे वाल्मीकि और व्यास एक ओर कवि थे तो दूसरी ओर साथ ही प्रामाणिक विद्वान् आचार्य भी थे। इनके ग्रन्थोंमें भी ऐसी बहुत सी विचित्र बातें पायी जाती हैं, जैसेः—

(१) वाल्मीकिने लिखा है किजिस समय राम लङ्का विजयके लिये उद्यत हुए तब वहांके वृक्षोंमें

* हम इस लेखको आलोचना किये बिना ही विज्ञानमें स्थान देते हैं, और अपने विज्ञ पाठकों तथा अन्य विद्वानोंका ध्यान इसमें लिखी हुई बातों पर दिलाते हुये आशा करते हैं कि वह इस विषयपर अपने विचार प्रगट करनेकी कृपा करेंगे। इस अवस्थामें हम इस लेखके विषयमें सिर्फ यही कहना चाहते हैं कि इसमें वर्णित बातें विचारणीय हैं।

—सम्पादक

पहले से अधिक सुगन्ध आगई और अधिक फूल फूले पाये गये ।

( २ ) वराहमिहिरने लिखा है कि जब किसी देश पर सहसा युद्धका मौका आपड़ेतो अचानक वृक्षोंकी टहनियां टूटने लगती हैं । जब राष्ट्रका नाश उपस्थित होनेका होता है तो वृक्ष भी हँसते हैं। जब देशमें रोग बहुत प्रबल रूपमें फैलता है तो वृक्ष भी रोया करते हैं ।

(३) वृद्ध गर्ग ने लिखा है कि धनक्षय होनेके समय वृक्ष आपसमें बातें किया करते हैं ।

(४) वराह लिखते हैं कि जब वृक्ष एक स्थानसे दूसरे स्थानपर सरक जाते हैं और परस्पर बात चीत किया करते हैं तब जनताका नाश समीप जानना चाहिये।

(५) बृहस्पति लिखते हैं कि देशका नाश होते समय वृक्ष गर्जा करते हैं; अपनी शाखाएं गिरा देते हैं ; चलते फिरते हैं ; गिर पड़े होंतो आपसे आप उठकर खड़ेहो जाते हैं ।

(६) गर्ग लिखते हैं कि दुर्भिक्षके पहले सूखे वृक्ष आपसे आप हरे हो जाते हैं ; बिना किसी रोगके भी सूख जाते हैं ।

(७) वराह लिखते हैं—"बिना मौसमके छोटे छोटे पौधे भी खिल जाते हैं; इससे देशमें बालकों की मृत्युकी सूचनाहो जाती है"।

यह बात शुक्र, आदि अन्य आचार्योंने भी भिन्न भिन्न फलादेशके लिए उद्धृत की है।

(८) पराशर लिखते हैं कि राष्ट्रपर जब किसी अन्य राजाका राज आता है अर्थात् राज पलटने लगता है तब किसी वृक्षपर उससे विजातीय वृक्षका फल भी लगने लगता है। जैसे बेरीपर आम का फल आजाय, आम पर खजूरका, जामन पर गूलरका फल लगे इत्यादि । इसी राजपलटनेके दृश्य को समक्ष रख कर व्यासदेवने महाभारतमें लिखा है वृक्षों पर कमलके फूल दिखाई देते थे। वह भी कहते हैं कि परचक्र आनेके समय एक ही वृक्षमें नाना जातियोंके फल लगे दीखते हैं। इसी प्रकार विजातीय फल बदल जाते हैं ।

( १० ) वृद्ध गर्ग आदिने लिखा है कि वृक्षोंसे गो-दुग्ध चूने लगता है; घी, तेल, मद्य, रक्त, शहद, और पानी भी चूने लगता है; परन्तु इनसे सूचित भिन्न भिन्न बातें होती हैं ।

(११) अगर दुग्ध चूएतो गौ जाति पर विपत्ति; तेल घी चूएँतो दुर्भिक्ष; शराब चूए तो हाथी घोड़े मरते हैं; रक्त चुए तो लड़ाई होती है, शहद चुए तो बीमारियोंमें बढ़ती होती है और पानी चुए तो वर्षा नहीं होती ।

( १२ ) वृक्षोंमें कभी स्वयं ही धूआं उठने लगता है । कभी आप ही आप ज्वाला भड़क उठती है । मन्दिरोंके समीपस्थ वृक्ष कभी स्वयं टूट जाते हैं या बुरी तरहसे रोया करते हैं, हंसते हैं या गाते है या अव्यक्तवाद करते हैं ।

( १३ ) प्रायः सब कोई जानता है कि गूलर पीपल वड़ और पिलखनके पेड़ोंमें फूल नहीं लगता। विशेष विनाशादिके समय इनपर भी फूल आता हुआ देखा गया है ।

और भी वैचित्र्य सुनिये—

( १४ ) राजपलटनेके समय स्वतः फूलोंमें से फूल और फलोंमेंसे फल पैदा होने लगते हैं। इसी प्रकार स्वाभाविक रूपमें जौके एक ही पौदेमें पांच पांच सीटे, और धानोंमें सौ सौ बाल निकलने लगती हैं ।

( १५ ) कमलकी एक दण्डीमें कई कई फूल निकल आते हैं। तिलोंमें तेल सर्वथा सूख जाता है ।

(१६) गर्ग कहते हैं कि फलमें पड़ा हुआ बीज अंकुरित होआवे तो इससे गृहस्थिमें स्त्रीपुरुष दोनों नष्ट होजाते हैं ।

( १७ ) मयूरचित्रमें लिखा है कि राज्यों में उपद्रव होनेके समय धान बोओ तो सरसों पैदा

होती है। खेतोंको बिना पानी से सींचे धान पैदा हो जाते हैं और धानोंको बिना भूने खीलें बन जाती हैं।

इस प्रकार वनस्पति संसारमें विशेष अवसरोंपर विशेष परिवर्त्तन होते हैं। ऐसा ही शेष जीव संसारमें भी होता है, जो हम पाठकोंको किसी अन्य अंकमें दर्शायेंगे। परन्तु क्या हम इस अवसरपर वानस्पतिक विद्याके धुरन्धर विद्वानोंसे यह प्रार्थना कर सकते हैं कि वह इन विशेष अद्भुत परिवर्तनोंके कारणकी स्पष्ट व्याख्या करेंगे।

हालमें जगदीशचन्द्रवसु महोदयने अपने वैज्ञानिकपरिशीलनमें वनस्पतियोंका भी सजीव सिद्ध किया है। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि शोक, भय, पीड़ा, कष्ट, दुर्भिक्ष और सुभिक्ष आदिका उनपर कोई आनुभविक प्रभाव न पड़े। जब स्वामीके मरनेपर उसके पाले हुए बन्दर, कुत्ते, बिल्ली, गौएं, हाथी, घोड़े आदि तिर्यग् जीवों को रोते देखा गया है तो बिचारे जीव संसारके एक अंग वृक्ष वनस्पतियोंमें यह रोना हंसना आदि क्यों नहीं हो सकता। वनस्पतियोंमें जीवको स्वीकार करनेवाले इतना अवश्य मानेंगे कि हां हो सकता है और होता भी होगा। पर अब देखना यही है कि क्या उनके मुख है कि बोलेंगे। या दांत हैं कि हंसेंगे। पैर हैं जो भागेंगे। यद्यपि उनके पास कुछ भी नहीं तो भी वह अपने जीवकी अनुभवशक्ति तथा भाव-प्रकाशन शक्तिके अत्यधिक होनेसे वैसा चमत्कार दिखा सकते हैं। कदाचित् मानवसमाजके विचार-वातावरणोंमें रहते हुए उनपर आध्यात्मिक या मानसिक विचारोंका इतना दृढ़तर प्रभाव पड़ता हो जिससे उक्त प्रकारके नाना चमत्कार दृष्टि-गोचर होते हैं। हमारी सभी कल्पनाएं फिर भी अन्त तक कल्पनाएं ही रहेंगी। विज्ञान इनका काल्पनिक उत्तर न ढूंढकर यदि वैज्ञानिक उत्तर प्रमाणित करें तो बड़ा उपकार हो। *

—जयदेव

—:o:—

## वैष्णव धर्मका पुनरुत्थान

[ लेखिका-स्वर्गवासिनी बहिन निवेदिता देवी ]

भारतवर्षमें शैव और वैष्णव मत इतने प्राचीन कालसे प्रचलित हैं कि वर्तमान उन्नतिशील युगमें, जब प्रायः हर प्रकारकी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, आदि अवस्थाओं पर विचार हो रहे हैं और उनके संबंधमें खोज की जा रही है, बड़ी कठिनतासे उनके लुप्तप्राय ऐतहासिक मन्दिरोंके कभी कभी चिन्ह मात्र मिल जाया करते हैं। विद्वानोंमें अब भी इस विषयपर विवाद फैला हुआ है कि इस पवित्र भूमिमें अवतीर्ण इन दोनों मतोंमें कौनसा अधिक पुरातन है। कुछ सज्जनोंका विश्वास है कि शिवजी श्रीशंकरा-चार्यके समयसे ही महादेव हुए हैं। अन्य महाशयोंका विचार है कि बौद्धधर्मके पतनके पश्चात् ब्राह्मणों को इस बातकी बड़ी आवश्यकता प्रतीत हुई कि बौद्धधर्मावलंबी दक्षिणी लोग जो अन, हिन्दुओंमें प्रायः पूर्णतया ही मिलचुके थे अब भी नवसंगठित धर्मके अनुयायी बने रहें। इस विषयमें बौद्धोंने जो जो गलतियांकी थीं उन सबपर भली भांति सोच विचार करके इस नवीन हिन्दू धर्मके संगठन कर्त्ताओंने धार्मिक एकता पर अधिक ध्यान दिया, और सहनशीलता (Toleration) जिसकी मात्रा हिन्दू धर्ममें

---

* हम लेखक महोदय का ध्यान विज्ञानके अगले अङ्कमें छपनेवाले इसी प्रकारके एक लेखकी तरफ आकर्षित करते हैं। वृक्षोंमें जिन घटनाओंका होना वह लिखते हैं उनके लिए हम अभी कुछ कहनेके लिए तैयार नहीं हैं। पर एक ऐसी ही अद्भुत घटनाका वृत्तान्त तथा उसका कारण अगले लेखके पढ़नेसे उन्हें ज्ञात होगा।

इस समय भी कुछ कम न थी अब इस नव-संगठित धर्म की एक मुख्य अंग बन गई। क्योंकि इस धार्मिक विप्लव की महाशक्तिशाली लहरने सब धार्मिक भेदभावों को बहा उन्हें भी अपने रेलेमें सम्मिलित कर लिया था। परिणाम इसका यह हुआ कि वैदिक कालके रुद्र देवताकी जगह पर अब शिवजी महाराज की प्रतिष्ठा हो गई, और इन्हें द्रविड़ देशीय अनुयायियोंकी रुचि अनुसार बनानेके लिए मुण्ड माल, आक धतूरा तथा सर्पों के यज्ञोपवीत आदि अलंकारोंसे विभूषित किया गया। अर्ध सभ्य मनुष्योंके देवता की पूजा सभ्य आर्य देवगणोंके साथ होने लगी। भागवत पुराणकी कथाओंसे इस बात का पूरा पता लग जाता है। त्रिदेवी-सिद्धान्त हमारे देशमें कितनाही प्राचीन क्यों न रहा हो, पर तो भी हम यह बात बिना लिखे नहीं रह सकते हैं कि शिवजीका इस सिद्धान्तमें सम्मिलित किया जाना अर्वाचीन समय का है। दक्ष प्रजापति की कथासे पता लगता है कि शिवजीके अनार्य देवता होनेके कारण इन्हें यज्ञमें भाग नहीं दिया गया था। शिव-प्रसाद को आज दिन तक ग्रहण न करना हमारे उपरोक्त कथन का और भी समर्थन करता है।

बहुत से महानुभावों का ऐसा विचार है और इसके प्रमाण भी मौजूद हैं कि आधुनिक वैष्णव धर्मके उत्थानके पूर्व जो गुप्त वंशी राजा स्कन्द गुप्तके समयमें हुआ था, शैव धर्म ही भारतका सर्वमान्य मत था। उपरोक्त विचारों की पुष्टिके लिए हम केवल इतना ही लिख देना आवश्यक समझते हैं कि इस धर्मके स्तंभ रूपी विष्णु भगवानके चरित्रको स्थायी बनानेके लिए हमारे यहां प्रायः बहुत सी इस विषयकी कथायें शिवजी द्वारा ही वर्णित हैं। भारतीय धार्मिक जनताकी दृष्टिमें, जो इस समय तक शिवानुयायी बनी हुईथी, विष्णु भगवानको प्रतिष्ठित बनानेका एक मात्र सुलभ उपाय यही था कि शिवजी ही विष्णुका परिचय करावें। इसके पश्चात् जैसे जैसे समयमें परिवर्तन होता गया और यह नवीन मत जड़ पकड़ता गया, इसके अनुयायी अपने पूज्य देवको शिवका भी आराध्य कहने लगे और अपने ग्रंथोंमें स्वयं शिवजी के मुखसे इसका निश्चय कराने लगे।

शिव पुराण देखनेसे कुछ और ही विचार उपस्थित होते हैं। यह बात साहित्यके पण्डितोंसे अविदित नहीं है कि विष्णु पुराण भागवत आदि वैष्णव ग्रंथोंको देखा-देखी ही शैव लोगों ने शिव पुराणकी रचना की थी। अतः इन्हीं पुराणोंकी कथाओंको यहां थोड़े बहुत अंतरसे लिख दिया गया है। भेद केवल इतना ही है कि इस पुराणके रचयिता शिवजी को देवानुदेव महादेव प्रकट करते हैं। पौराणिक कालमें जब वैष्णवों और शैवोंमें घोर विवाद फैला हुआ था तो इस वैमनस्यकी शान्तिके लिए पुराण लेखकोंने बहुत कुछ उद्योग किया था। वैदिक कालके रुद्र देव और शिवमें समानता दिखला कर उन्होंने हमारे उपरोक्त मतका प्रत्यक्ष प्रमाण दिया है। आधुनिक कालीन कवियोंने भी इस झगड़ेके शान्त करनेकी बहुत चेष्टा की थी।

अतः ऐतिहासिक दृष्टिसे देखने पर हमें जहां तक पता चलता है उससे प्रकट है कि उत्तरीय भारतमें ही इस उथल पुथलका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है, क्योंकि बौद्ध धर्मके महा उन्नतिके समयमें भी दक्षिणी भारतमें पुरातन धर्मके अंकुर मौजूद थे और आधुनिक वैष्णव धर्मके उत्थानके समयसे आज दिन पर्यन्त दक्षिणी भारतमें ही शैवियोंका बहुत बड़ा संगठन मौजूद है।

इस धर्मके पुनरुत्थानमें दक्षिणी और उत्तरी भारतवर्षको संगठित कर ऐक्यसूत्रमें बांधनेकी चेष्टा की गई थी। इसका एक परमोत्कृष्ट प्रमाण वह समझौता है जो इस नये वैष्णव धर्मके स्थापन करते समय उत्तरी और दक्षिणी भारतवर्षमें हुआ। इस समझौतेके अनुसार विष्णु भगवानके सभी

बड़े अवतार उत्तरी भारतमें हुए परन्तु इस धर्म की सम्प्रदायोंके प्रायः सभी आचार्य दक्षिणमें हुये और अब भी होते आते हैं।

[ इस भूमिका देनेके पश्चात हम पाठकों को इस लेखकी लेखिका निवेदिता बहिनका संक्षिप्त परिचय करा देना आवश्यक समझते हैं। बहिन निवेदिताका नामथा मारगेरे नोबिल (Margaret-Noble) । २८ अक्टूबर १८६७ ई० को ( Rev. S. R. Noble) पादरी नोबिलके यहां आपका जन्म हुआ था। ३८ वर्षकी अवस्थामें ही इनके पिताकी मृत्यु हो गई। उनकी यही पहली सन्तान थीं। इन्होंने अध्यापन वृत्ति द्वारा जीविका प्राप्त करनेके लिये शिक्षा पाई थी। आपके शिक्षक उस समयके परम विख्यात विद्वानोंमेंसे थे। शुरू से ही आपको विद्याध्ययनका बड़ा प्रेम था और धर्मकी आलोचना प्रत्यालोचनामें आपको बड़ा चाव था। उस समयके परमोन्नत विचारशील और उदार प्रकृति नवयुवक विद्वानोंमें आपका नम्बर सबसे पहला था। आपकी आध्यात्मिक-ज्ञान-पिपासा बड़ी अविरल थी। धार्मिक तथा सामाजिक कार्य्योंमें आप सदा अग्रसर रहीं। स्वामी विवेकानन्द जिस समय १८९५ ई० में दुबारा लण्डन पहुंचे आप उनकी शिष्या हो गईं और भारतीय स्त्रियोंमें विद्या तथा धर्मके प्रचारार्थ आप स्वामी जीकी सहायताके लिए भारतवर्षमें पधारीं। इसी समय से आपका नाम देवी निवेदिता बहिन हुआ। भारतवर्षमें आकर आपने जिस धीरता, प्राणपण, विद्वत्ता तथा कार्य-कुशलता से इस देशकी उन्नतिका कार्य किया, उसके लिये हम सदा सर्वदा उनके ऋणी रहेंगे। हमें खेद है कि स्थानाभावसे हम बहिन निवेदिता देवीके जीवनका विस्तृत परिचय नहीं दे सके हैं परन्तु, इनके अपूर्व प्रतिभाशाली लेखों द्वारा पाठकोंको स्वयम् ही इनकी विद्वत्ताका पता चल जायगा। —सम्पादक]

वैष्णव धर्मकी कई सम्प्रदाएं हैं, इसीलिये इसके पृथक् पृथक् अनुयायी भी मौजूद हैं। इस धर्मके उत्थान और संचालनका इतिहास देनेके लिये प्रत्येक संप्रदायका इतिहास देनेकी आवश्यकता है। हम इस लेखमें इस धर्मके अन्तिम पुनरुत्थानसे जो महाप्रभू श्रीचैतन्यके समयसे १५ वीं शताब्दीमें प्रचलित हुआ था अपने इतिहासको प्रारंभ करते हैं। बंगालमें तो यह मत आंधीकी प्रकार फैला और बड़े क्या छोटे सभीने इसे बड़ी श्रद्धासे अपनाया था। इसके सिद्धान्त महा गूढ़ और इसका शास्त्र अति विषम होने पर भी अछूत और महा अशिक्षित जातियों तकमें इसका प्रचार हो गया। शेष बौद्धमतानुयायियोंको शुद्ध कर इस धर्मने शीघ्र ही अपने आश्रित कर लिया। वृन्दाबन धाम इस धर्मका महा पवित्र तीर्थ और परम पूज्य क्षेत्र हो गया। बंगालमें इसका प्रादुर्भाव हुआ पर इसका पूज्य मन्दिर बृज भूमिमें होनेके कारण इस धर्मकी नींव बंगालके बाहर ही लगी और वहीं पर इसकी नई शिल्पकारीका युग प्रारंभ हुआ। जन्म-स्थान बंगालमें इस धर्मके कौशल द्वारा एक अपूर्व और प्रतिभाशाली भाषा साहित्यकी रचनाका श्री गणेश हुआ। पर तो भी चैतन्य महाप्रभू और पूज्यवर नित्यानन्दजीने जिस ढंग पर इसको चलाया था उससे तो यह समस्त भारतवर्षीय मत होनेकी अपेक्षा बंगालसे ही अधिक संबन्ध रखता दीख पड़ता है। इसके आराध्य देव श्री राधाकृष्ण और लक्ष्य उनके गुणानुवादका श्रवण व गान करना है। शेष भारत वर्षमें इसी प्रचारके साथ साथ पुरातन वैष्णव धर्मकी हर एक शाखाका प्रचार होता गया। जैसे हमारे प्रान्तमें (संयुक्त प्रदेशमें) श्री सीता रामके नाम और गुण सुनना सुनाना इसी धर्मका लक्ष्य बनाया गया। अन्य प्रान्तोंमें इसी धर्मने और दूसरे स्तंभोंका आश्रय लिया। यहां तक कि श्री लक्ष्मीनारायणकी महाराष्ट्र और गुजरातमें स्थापना हो गई। बद्रिकाश्रम तक इन्हीं श्रीलक्ष्मीनारायणकी ध्वजा

पताका फहराने लग गई। हरिद्वारसे केदारनाथ तक शिव और सत्यनारायणने भूमि बांट ली और इस नई लहरने शीघ्र ही श्रीनगरसे बद्रीनाथ तक फैल कर अपना साम्राज्य जमा लिया।

अब प्रश्न यह है कि क्या पुरातन वैष्णव धर्ममें भी श्री लक्ष्मीजी विद्यमान थीं? यदि नहीं थीं तो इस मध्य-कालीन पुनरुत्थानमें किस प्रकार इनको शामिल कर लिया गया? इस प्रश्नके उत्तरमें एक सहस्र वर्षके सामाजिक इतिहास-का निरीक्षण कराना होगा। इसका उत्तर वैष्णव धर्मके समस्त मतमतान्तरोंके सिद्धान्त,संप्रदायक व्यवहार, कथा और विश्वास आदिके मनन करने पर ही भली भांति दिया जा सकता है। हमें यह विश्वास है कि कुशाग्र-बुद्धि मनुष्योंके लिये हमारे इस धर्मपालक देशमें प्रत्येक मतका इति-हास उसी धर्मके मुख परसे पढ़ लेना कोई कठिन कार्य्य नहीं है। और हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि मूल मतकी प्रत्येक संस्था और संप्रदायका इतिहास प्रायः लोक कथा द्वारा छान बीन करके जाना जा सकता है। प्रकृतिका यह अटल सिद्धान्त है कि कोई भी चीज़ जो हमें इस समय विद्यमान दीखती है अकस्मात ही नहीं बनी है। ईश्वरीय सृष्टिमें कोई पदार्थ केवल इसी लिए नहीं बना है कि वह अन्यपदार्थोंसे विभिन्न ही हो। इस प्रकारकी सृष्टिकी तो अब तक कभीकी इतिश्री हो चुकी होती। वैष्णव धर्मका वर्तमान संगठन भी इसके इतिहास द्वारा ही इस अवस्था-को पहुंचा है।

पर एक बात बड़े पेंचकी है कि राजपूतनी मीराबाईकी भक्ति इतनी बंगालियोंकी सी क्यों थी? श्रीकृष्णके ही अलौकिक प्रेममें वह पूर्णतया पग चुकी थी। श्री वृन्दाबनकी ही ओर उसकी लौ लगी हुई थी। इससे जान पड़ता है कि उस समयमें बंगाल और राजपूतानेके बीच ऐसा घनिष्ठ संबन्ध जुड़ानेवाला कोई अपूर्व ही सूत्र रहा होगा। इस सिद्धान्तका प्रमाण यह है कि राजपूत राजा महाराजा लोग मुसल्मानों से कई बार "गयाजी" के छीन लेनेको लड़े हैं। इसलिए वैष्णव धर्मका कोई इतिहास उस समय तक पूर्ण रूपसे इतिहासकी दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता जब तक कि वह ऐसे भेदोंका (जैसे कि बंगाल और अन्य प्रान्तोंमें विद्यमान हैं) अथवा मीराबाईकी चैतन्याकृति-भक्तिका पूरा पूरा ब्यौरा न दे।

भारतीय जाग्रत आत्माओं लिए तो यह मध्यकालीन पुनरुत्थान स्त्रियों और पुरुषोंके स्वत्वाधिकारोंके प्रतिपादनार्थ एक बड़ा भारी विप्लव कहा जा सकता है। धार्मिक विचारोंपर स्त्री और मनुष्य दोनोंका समाधिकार है और आत्म संशोधनार्थ स्त्रियोंको भी पुरुषोंके समान गृहस्थ धर्म छोड़कर विरक्त हो जानेका पूरा हक़ हासिल है। बस ऐसे ही सिद्धान्तोंसे इन दोको चिरस्थायी बनानेके लिए इस समय श्री लक्ष्मीजीको श्रीनारा-यणजीके साथ सिंहासनारूढ़ कर वैष्णव धर्मने प्रायः समस्त भारतवर्ष पर अपनी दिग्विजयका शंख बजाया था।

ऐसा भी संभव है कि यह सिद्धान्त बौद्धोंसे प्राप्त हुए हों, क्योंकि "खरदह" पर १३०० स्त्रियों और १२०० पुरुषोंका वैष्णव मतानुयायी हो जाना हमारे पूर्वोक्त विचारको पुष्ट करता है और हम यह अवश्य कह सकते हैं कि बौद्धोंके संघमें भी जैसे स्त्री और पुरुष दोनों ही शामिल हो सकते थे, ऐसे ही इस अवसर पर उनका यह धर्म गृहण करना कोई अचंभेकी या बिलकुल नई बात नहीं थी। दूसरी बात जो हमें इसी घटनासे वि-दित होती है वह यह है कि चाहे उस समयके स्त्री पुरुष कितने ही अनपढ़ और कम बुद्धिवाले क्यों न रहे हों पर उन्होंने यह तो थोड़े बहुत अंशमें अव-श्य जान लिया था कि कमसे कम धार्मिक प्लेट-फ़ार्म पर तो स्त्री पुरुष एक ही श्रेणीके माने जाते हैं और स्त्रियोंको भी वही अधिकार प्राप्त हैं

जो पुरुषोंको। और यदि यथार्थ ही हम उन्हें प्राचीन बौद्ध संघका प्रतिनिधि कहें, और यह सत्य हो तो हमें यह लिखनेमें ज़रा भी संकोच नहीं है कि धार्मिक विषयोंमें स्त्रियोंके अधिकारका विचार हिन्दुओंमें बहुत पुराने समयसे मौजूद है, क्योंकि इस समय इस नये हिन्दू-धर्म संगठनमें भी वही बात देख बौद्ध मतानुयायी चकित और विचारशून्यसे इस लिए होगये थे कि उन्हें अब बौद्ध धर्मके इतिहासका स्वप्नमें भी खयाल नहीं रहा था।

मध्यकालीन वैष्णव धर्मने दक्षिणमें बड़े बड़े आचार्यों द्वारा जन्म पाया था। श्री रामानुजाचार्य्य और श्री माधवाचार्य्यजी इसके मुख्य आधारस्तंभ रहे हैं। उत्तरमें इस धर्मने बड़ी उत्तमता से उत्तरी और दक्षिणी भारतमें पारस्परिक संबंधकी गांठ लगाई थी। श्री केदारनाथ और श्री बद्रीनाथ जी दोनों ही धामोंके महन्त रावल मद्राससे हो लिये जाते हैं और संभव है कि यह नियम श्री शंकराचार्य्यजीके समयसे जारी हुआ हो। पर इसमें कोई संन्देह नहीं है कि ऐसा होनेपर भी बादमें इसका पुष्टीकरण भी अवश्य हुआ है। द्राविड़देशके वैष्णव मन्दिरोंमें, और श्री गयाजीमें भी श्री नारायणका ही अखंड राज्य है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वैष्णव धर्मका यह नया सिद्धान्त अर्वाचीन समयका है और श्री नारायणकी पूजा इससे भी बहुत प्राचीन समयकी है। यह सत्य भी है। धर्मावलंबी देशोंमें ही प्रायः नये विप्लवका अधिक ज़ोर हुआ करता है, जैसे ब्रह्मा और सीलोनमें हिन्दू धर्मकी एक संस्थाका इतना प्रचार हुआ कि वही उस देश भरका धर्म होगई। अपनी जन्म भूमिमें तो हर धर्म बड़े विशाल भवनके एक सुसज्जित कमरेके समान रहता है पर दूर देशोंमें जाकर वही स्वयम् प्रासाद हो जाता है। कहा भी है "घरका जोगी जोगिया, आन गांवका सिद्ध"। इसी भांति प्रत्येक धर्मका बाहरके देशोंमें अधिक आदर और प्रचार होता है।

इस विचारसे वैष्णव धर्मके इतिहासकी खोजमें हमें दक्षिणी भारत वर्षकी ओर ध्यान देना पड़ेगा और वहांके धार्मिक संगठन और देवालयोंकी शास्त्रोक्त-क्रिया और संस्कारोंका भली भांति परिचय लेना होगा। इससे हमें यह पता चल जायगा कि वह कौनसा स्रोत था जिससे श्री रामानुजाचार्य जैसे पूज्य आचार्य्यका जन्म हुआ तथा वह कौनसा बैकुंठधाम था जिसकी प्राप्ति के लिये श्री शंकराचार्य्य जीकी पूजनीया माता ऐसी उत्सुक थीं।

दक्षिणी वैष्णव धर्म गुप्तवंशी राजाओंके समयमें प्रचलित हुआ था। यह धर्म महाभारतकी कथाके साथ ही साथ समस्त भारतवर्षमें फैल चुका था। दक्षिणी ग्रामोंकी "पाण्डव लीला" और उत्तरी तीर्थोंके "पाण्डव चरित्र" का एक ही कालमें जन्म होना पाया जाता है। यह दोनों ही चौथी, पांचवीं और छटी शताब्दी के "पाटली पुत्र साम्राज्य" में प्रचलित थीं। दक्षिणमें ही ऐसे मन्दिर मौजूद हैं जहां श्रीकृष्ण चन्द्र की पूजा "पारथ-सार्थी" के नामसे होती है, क्योंकि दक्षिणमें ही आज दिन तक गुप्त वंशी प्रतापका सूर्य्य अस्त नहीं हो पाया है। दक्षिण देशके श्री नारायण जी "मगध-राज्य" के श्री सत्य-नारायण जी हैं। यह वही श्री नारायण जी हैं जिन्हें महाराजा स्कन्द गुप्तने "भीतरीकी लाट" पर ४६० ई०में स्थापित कराया था। इसका कारण यह था कि उन्हें अपने पिताके श्राद्ध और "हुण" लोगोंपर अपनी विजयका स्मारक-चिन्ह बनाना था। यह वही श्री नारायण जी हैं जो बंगालमें "पाल-वंशियों" के समयमें "गौड़" राजधानीमें पूजे जाते थे। "भीतरीकी लाट" के अमूल्य शिला-लेखमें लिखा है कि "जिस प्रकार श्री कृष्ण चन्द्र अपने बैरियोंपर विजय पाकर अपनी माता

देवकीके पास अति आतुरतासे पधारे थे वैसेही महाराजा स्कन्द-गुप्त हुए शत्रुओंपर जय लाभकर अपनी माताके समीप उपस्थित हुए थे।*

महाभारतमें भी कई जगह श्री कृष्ण जीका "पूतनाके संहार करने वाले" आदिक नामोंसे वर्णन किया है। ठीक इसी प्रकार इस शिलालेखसे भी यह विदित है कि "महा भारतीय-वैष्णव-धर्म" यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीताके ही श्री कृष्णके आधार-पर अवलंबित है, पर यथार्थ ही गोकुल और मथुराकी कथाको प्रामाणिक बनानेके लिए ही स्था-पित किया गया था। यह बात हम साहित्यके समालोचकोंके लिए छोड़े देते हैं कि इस विस्तृत कथाके इस मूल-ग्रंथमें वृन्द्राबनकी लीलाका कितना भाग होना चाहिये था। यह रहस्य हरिवंश, तथा विष्णु पुराण और भागवत पुराणके रचना-कालकी निगूढ़तामें अस्पष्ट है। हमें यह पूर्ण विश्वास है कि बालक कृष्णने सदैव ही राक्षसोंका नाश किया। यह लीला तो उनकी ईश्वरत्ताके लिए परमावश्यक थी। क्या दिव्य आत्माएँ राक्षसोंके नाशसे ही हमेशा नहीं पहचानी जाती हैं? जब उनकी दैवी-शक्तिका हमारे हृदय पर पूर्ण रूपसे अधिकार जम जाता है उसी समय हमारा ध्यान उनकी "गीता" और "शिक्षा" की ओर आकर्षित हुआ करता है।

इस युगमें जब कि शिक्षाका सर्वसाधारणमें भलीभांति प्रचार था और प्रायः धर्मके अंग भी बहुत लोग समझते थे, पाटलीपुत्रके राज्य शासन-को यह दिखलाना पड़ा था कि उपनिषदोंके उत्कृष्ट सिद्धान्तोंको लोकप्रिय और प्रामाणिक बनानेके लिए केवल शैव मत ही योग्य न था। बालक कृष्ण जो जमुनाके तटपर ग्वालोंके यहां रहते थे हिन्दुओंके परम विख्यात चन्द्रवंशी कुलमें जन्मे थे और कंस बधके पश्चात् उनका उपनयन संस्कार आदि कराकर उन्हें सुषैण गुरुके पास विद्याध्ययनके लिए भेज दिया गया था। अतः कुरुक्षेत्रकी महान आत्माने गीताका वह अलौकिक ज्ञान प्रकाश किया जिसे ४०० ई०में समस्त भारत-वर्षने धर्मका मूल आधार मान लिया था। इनमें शिवका दैवत्व, हरक्युलीज़का पौरुष, ईसा मसीह की सरल वृत्ति, बुद्धदेव की दया और उपनिषद्-के आचार्यों और ऋषियोंकी सी निश्छलतापस-वृत्तिका भण्डार भरा हुआ था। गुप्त-वंशी महा-राजाओंके समयमें जब महाभारत अपने इस रूपमें प्रस्तुत किया गया तब यही सिद्धान्त, जिन्हें श्री कृष्ण चन्द्रने अपने श्री मुखसे गीतामें वर्णन किया है, सार्वजनिक हो रहे थे। इसलिए यह परमावश्यक था कि साक्षात् भगवान श्री कृष्ण-चन्द्र ही अपनी भक्ति द्वारा मुक्तिका मार्ग स्था-पित करते और यही मुक्ति-मार्ग-निर्वाचना इस समयके भगवद्गीता की शिक्षाका एक मुख्य भाग है। इस नये धर्मको राजकीय आश्रय भी बहुत कुछ मिला था। इससे सिद्ध है कि इसी समयसे हिन्दुओंमें विवाहके अवसर पर शालिग्रामकी मूर्तिका विष्णुकी जगह होना परमावश्यक है।

गुप्त कालीन वैष्णव धर्मने सार्वजनिक जीवन-की बहुत सी जानी हुई बातोंको पुनः जीवन दे उनकी नई रीतिपर व्याख्या की। जैसे इस धर्मने श्री नारायणकी वह मूर्ति स्थापित की जो उस समयके शिल्पकार स्तूपोंपर बनाने लग गये थे। या जैसे इस नये धर्मने मिट्टीके तीन ढेलोंको आस पास रखकर (जैसा कि आजकल की भांति लोग उस समय किया करते थे) श्री जगन्नाथ स्वामी की आकृति बतायी। इसी प्रकार चरण पूजाका भी इस मतने पक्ष ले उसकी भी व्याख्या कर डाली। तथा इस धर्मने बुद्धदेवको भी अपने संगठनमें, विष्णुका दसवां अवतार मानकर, मिला लिया। बौद्ध-गया की जगह इसने ब्रह्म-गया की पवित्रता तथा पावनता स्थापित कर दी। और गया जी व अन्य तीर्थोंमें इसी मतने चीनी और तिब्बत वाले यात्रियों तथा सौदागरोंका अनुसरण कर मुर्दों के प्रति श्राद्ध आदिक कर्मोंको, जो इस समय प्रचलित हो गये थे, जारी कर दिया।

हम यह मान लेनेको तैयार नहीं हैं कि जब इस महाभारतका पहले पहल जनतामें प्रचार हुआ तो अकेले श्री कृष्ण ही उस समय भी इतने ही ख्याततनामा थे जैसे कि आजकल हैं। हमारे विचारमें तो तत्कालीन भारतीय उत्कर्षता (Culture) का यह सारा कोष जिसका नाम महाभारत रक्खा गया है केवल भगवद्गीताके ही निमित्त बनाया गया था और पहली बार प्रचलित होनेपर तो वह अवश्य ही बड़ा प्रभाव-शाली था। भीष्म, करण, अर्जुन तथा प्रत्येक पाण्डवकी वीरता जातीय हृदयमें अङ्कित थी। यही नहीं वरन् गढ़-वालके मन्दिरोंका पूरा ब्यौरा जाननेसे यह भली भांति ज्ञात हो जायगा कि न केवल वेदव्यास जी जिन्होंने इस बृहद् ग्रंथ की रचना की, वरन् समस्त मुनी और कवि जिन्होंने कुछ श्लोक ही लिखे थे, बड़ी श्रद्धा और सम्मानके पात्र हो गये।

इस प्रकार वैष्णव धर्मका ताना भारतीय धर्मों के बानेपर पूरा गया। पर हमें आश्चर्य्य है कि उन लोगोंकी दृष्टिमें जो उस समय विष्णुके इस नये अवतारकी आराधना करते आते थे, शिव जी का क्या मान था? क्या वह केवल नागेश्वर या नीलकंठ ही थे? या इस समय वह भी अर्धाङ्गी हो गए थे? ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि यदि वह अर्धाङ्गी हो जाते तो श्री सत्यनारायण जी बिना श्री लक्ष्मी जीके उन्हें किस प्रकार पदच्युत कर देते, पर तो भी श्री कृष्णजी की पूजासे देवीजी-की पूजा प्रवीन है क्योंकि देवीपुराणमें लिखा है कि देवी ही कृष्ण हैं। अभी तक श्री शंकराचार्य्यकी विलक्षण बुद्धिका शिवजीको महादेव बना देनेके लिए विकास नहीं हो पाया था।

धार्मिक विचारोंके इस प्रश्नरूपी आकाशसे जिसमें श्रीकृष्ण चन्द्रका उदय हुआ हमारे लिए बहुत कुछ लाभदायक शिक्षा प्राप्त करने की आशा है। भगवान की गोप लीलासे ही बहुत सी बातों का पता चलता है। जैसे ब्रह्मा जी की यह परीक्षा लेना कि वह यथार्थ ही विष्णु भगवानके अवतार थे या नहीं स्पष्ट रूपसे सिद्ध करता है कि ब्रह्माजी-का सृष्टि कर्ता होना अभी तक पूर्ण रीतिसे लोगों-को ज्ञात नहीं था; यद्यपि त्रिमूर्ति-सिद्धान्त अब अनाशंकित हो गया था। ब्रह्मा जीके विचारोंसे मालूम होता है कि विष्णु भी उनके बराबर ही थे। फिर दूसरी कथामें श्रीकृष्ण जी काली नागको नाथकर उसके मस्तिष्क पर अपने चरणका चिन्ह छोड़ देते हैं। यहां पर भी वही बात मौजूद है जो हमें प्राक्कालीन नाग पूजाके विषयमें शिव जीको नागे-श्वर बनानेमें मिलती है। अगली कथामें श्रीकृष्ण जी गोपों से राजा इन्द्रकी पूजा छुड़ा देते हैं। यहां पर तो वह प्राचीन वैदिक देवताओंको भी पीछे छोड़ देते हैं। हिमालयकी तराईमें तो अब भी इन्हीं देवताओंके पूजने वाले विद्यमान हैं जो ब्रह्माजी-के सृष्टि-कर्ताके रूप और गुणसे अनभिज्ञ हैं। एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि समस्त महाभारतमें श्रीशिवजी ही श्रीकृष्णजीके अवतार होने-की साक्षी देते हैं। पर श्रीकृष्णजी कहींपर भी शिवजीके लिये कुछभी नहीं कहते! इसका केवल यही अभिप्राय मालूम होता है कि उस समय सभी लोग (क्या कवि और क्या श्रोता व दर्शक) शिवजी को ईश्वर रूप मानते थे। पर श्रीकृष्णजी-की ईश्वरता अभी सर्व-साधारण पर विदित करनी बाकी थी। एक बात यह भी विचारने योग्य है कि दक्षिणकी शास्त्रोक्त 'विधि-क्रियाओं में धार्मिक जुलूसभी बौद्ध "चैत्यों" की भांति आवश्यक थे, जिससे हमें यह बात विदित होती है कि ऐसे समयमें भी जब इन दृश्योंसे श्रद्धालु हृदयोंपर बड़ा गंभीर प्रभाव पड़ता था इस धर्ममें संगठन शक्तिके प्रमाण मौजूद थे। पाठकोंको अब भली भांति विदित हो गया होगा कि जब भारतवर्ष गुप्त वंशी साम्राज्यमें राजनीतिक दृष्टिसे संयुक्तराज्य था और जब बौद्ध मत इतना अधिक बढ़ गयाथा कि उसके प्रादुर्भावका इतिहास जनताके हृदयसे लुप्त होता जाता था तो उस समय इस देशके इति-हासमें वैष्णव धर्म बहुत बड़ा उद्धवकारी विलक्षण

(Formative movement) हुआ है। इस युगमें पार्थ-सार्थी, गीताके जन्म दाता, ख्यातनामा, गोकुलके गोपाल और मथुराके प्रजा-पालक, सिद्धान्तवादी श्रीकृष्णचन्द्रके निर्विवाद प्रभुत्वमें संगठन शक्तिका एक अनुपम उदाहरण उपस्थित हुआ। इसी समयमें इस संस्थापित धर्मको फैलानेके लिए दक्षिणकी ओरभी बहुत कुछ प्रयत्न किया गया और शायद गढ़वाल और कुमायूंके ज़िलोंसे जो उस समय पाण्डव-तीर्थ थे यह नया मिशन चारों ओर फैल गया। श्रीकृष्णजीके विचार और उनकी लीलाओं की कथाका यह संस्थापन महा-भारतके पुनः संशोधित अंतिम प्रचारसे बहुत कुछ संबंध रखता है। महाभारतका यह प्रचार समुद्र गुप्त और दूसरे चन्द्र गुप्त विक्रमादित्यके साम्राज्यमें ३२० से लेकर ४५५ ई० तक राज-सभा-द्वारा-नियुक्त-कवि-समाज का कृत्य मालूम होता है। क्योंकि हमें यह बात निश्चित रूपसे मालूम है कि इस समयके बादके सभी गुप्त वंशी महाराजा नारायणके अवतार श्रीकृष्णजी के अनन्य भक्त थे और इस भक्तभावमें देवकीके पुत्र और कंसके मारने वाले श्रीकृष्ण एक ही व्यक्ति माने गये थे।

वैष्णव धर्मका इतिहास यहीं पर समाप्त नहीं होता। रामायण महाभारतसे भी पुराना ग्रंथ है। इस लिए श्रीरामचन्द्र इससे भी पुराने युगमें अवतरित हुए थे, जब लोग कृष्ण-युगकी अपेक्षा, अधिक शैवमतानुयायी थे और बौद्ध मत द्वारा उत्पन्न हुए प्रश्नोंका उन्हें अधिक ज्ञान था। हमें विश्वास है कि रामायणके लिखे जानेसे भी पूर्व, तथा शैव धर्मकी स्थापनासे भी पहले विष्णु भगवान्की पूजा इस देशमें होती थी। जब शैव-धर्मके उत्थानसे त्रिमूर्तिका विचार पैदा हुआ तो विष्णुको तुरन्त ही ब्रह्मा और शिवके बीचमें स्थान दिया गया। देवताओंकी गणनामें विष्णुका नाम शिवके नामसे सदैव ही पहले लिया जाता है। क्या इसमें कोई ऐतिहासिक तत्व छिपा हुआ नहीं है? यही इतिहास सहस्रों वर्षोंके पुराने वैष्णव धर्मका जन्मदाता हुआ, जो श्रीशंकराचार्य्यके समयसे सैकड़ों वर्ष पीछे तक संस्थापित हिन्दू धर्मको उन दो लड़ियोंमें विभाग करता आया है जिन्हें ऐंठ कर भारतीय-धर्म सूत्र बनाया गया है। बौद्ध धर्मके प्रारंभमें ही हमें एक सङ्गठित हिन्दू धर्मके सूर्य्योदयकी झलक दृश्य आती है जिसमें वैष्णव और शैव धर्म भारतीय-धर्म रूपी लटकनकी गतिकी दो अन्तिम अवस्थायें हैं।*

इस शताब्दीमें कोई नवीन विप्लव होनेकी अपेक्षा सर्वथा शान्ति रही है, इसका यही कारण ज्ञात होता है कि कोई नई कथा अब पुनः स्थापितकी जायगी।

स्वामी शंकराचार्य्य और महा प्रभु चैतन्यके समयके अन्तर्गत बहुतसी संयोग-कारिणी श्रृङ्खलाएं होंगी। क्योंकि हिन्दू धमका यह सिद्धान्त है कि उलट पलट कर वैष्णव धर्मके पश्चात शैव और शैव धर्मके पश्चात् फिर वैष्णव धर्मका पुनरुत्थान होता है और प्रत्येक युगमें यथावसर ईश्वरका अवतार धारण करना प्राकृत्तिक नियमोंके अनुकूल है।

*अगर हम डोरीमें एक भारी लटकन बांध कर छतसे लटकादें और इस लटकनको पकड़ कर कुछ दूर अपनी तरफ़ खींच कर छोड़ दें तो हम देखेंगे कि यह लटकन इस प्रकार डोलना शुरू कर देगा कि जिस स्थितसे उसे खींच कर छोड़ा गया था, उस स्थानसे पहले स्थान तक पहुंच कर बाईं ओर उतनीही दूर तक जायगा जितना कि वह दाहिनी तरफ़ गया था। जैसे अगर लटकन अ से

अ''..........अ...........अ'

खींच कर अ' पर छोड़ दिया जायतो वह अ' से लौट कर अ पर होता हुआ अ'' पर पहुंचेगा और अ' और अ'' के बीचमें बराबर डोलता रहेगा। अ' और अ'' इस लटकनकी गति की अंतिम अवस्थायें हैं और अ से दोनों ही बराबर दूरी पर हैं। अस्तु भारतीय-धर्म रूपी लटकन अगर अ' स्थान पर पहुंच कर शैव धर्मका प्रतिपालन करता है तो अ'' स्थान पर वैष्णव धर्मकी पूर्णोन्नति का दर्शक है।

—o— —सा० व०

# क्या गरुड़ अथवा रुखकी बात सच्ची है ?

[ ले०—श्री० "गरुड़" ]

प्रत्येक हिन्दू इस बातसे परिचित है कि विष्णुका वाहन गरुड़ है। गरुड़ भी हिन्दुओंके पूज्य देवता हैं। उनके गरुत्मान, तार्क्ष्य नागान्तक आदि नौ नाम प्रसिद्ध हैं :—

चित्र—१ रुखं सिंदबाद जहाज़ी को उड़ाये लिये जा रहा है।

गरुत्मान् गरुड़स्तार्क्ष्यो वैनतेयः खगेश्वरः।
नागान्तको विष्णुरथः सुपर्णः पन्नगाशनः॥

इनके पिताका नाम कश्यप और माताका नाम विनता था। यह पक्षियोंके राजा, सर्पोंके घोर शत्रु और अरुणके बड़े भाई माने जाते हैं। इनका मुंह सफ़ेद, नाक नोकीली और मुड़ी हुई, लाल पर और सुवर्ण कासा शरीरका रंग पुराणोंमें बतलाया है।

हमारे बहुत से भाई इस बातको मानना अपनी विद्वत्तामें धब्बा लगाना समझते हैं कि कभी आदमीका पक्षी पर सवार होना भी सम्भव है। अपने ज्ञानके घमंडके आवेगमें बहुतसे मनचले रिफ़ार्मर इन कथाओंका, केवल "कपोल कल्पित" कह कर, तिरस्कार करते हैं। इसी प्रकार सिंदबाद जहाज़ीकी उस कथाको जिसमें उसने रुखका हाल बतलाया है केवल अशिक्षित जनताके असंस्कृत हृदयका उद्गार अथवा रुग्ण कल्पना-शक्तिकी उपज बता केवल मनोरञ्जनकी सामग्री मानते हैं। परन्तु वैज्ञानिक, जो अपने ज्ञानकी सीमा-बद्धताको भली भांति जानता है और जो सदा उसके विस्तृत करनेका निरन्तर प्रयत्न करता रहता है, ऐसे अनादर और अश्रद्धासे इन कथा कहानियोंको नहीं टाल देता, किन्तु उसका यह विश्वास है कि इन कथा कहानियोंकी उत्पत्ति विशेष कारणोंसे होती है। उन्हीं विशेष कारणोंके खोज निकालनेसे सृष्टि और मनुष्य समाजके विकाश क्रमका पता लगता है।

सिंदबाद एक जहाज़में सफ़र कर रहा था।

जहाज़ किसी टापूके किनारे आकर ठहरा। सब आदमी उतर कर इधर उधर सैर करने लगे। सिंदबाद भी उतरा, पर एक जगह पहुंच ठंडी जगह पाकर सोगया। जब उठा, अपने जहाजको वहां न पाया। बड़ा घबड़ाया, लाचार आगे बढ़ा तो क्या देखता है कि सामने एक गुम्बद खड़ी है। उसकी बनावट हूबहू अण्डेकी सी थी, पर दर्वाज़ेका पता न था। यह दर्वाज़ा ढूंढ़ निकालनेका प्रयत्न कर रहा था कि एक दम अंधेरा होगया, जान पड़ता था कि बड़ा गहरा बादल ऊपर छा गया है। "सहसा अंधेरा हो जानेसे मुझे बड़ा अचंभा हुआ, पर अचंभे की सीमा न रही जब मैंने देखा कि इसका कारण एक पर्वताकार पक्षी है जो मेरी तरफ़ आरहा है। मुझे याद पड़ा कि पहले मैंने नाविकोंसे एक महाकाय पक्षीकी बात सुनी थी, तब मुझे ख़याल आया कि हो न हो यह गुम्बद इसी पक्षीका अण्डा है। थोड़ी देरमें पक्षी उतरा और अण्डेपर आ बैठा। मैं अण्डेसे लगकर बैठ गया था, इस लिए पक्षीकी एक टांग ठीक मेरे सामने थी। वह एक वृक्षके तनेसे कम बड़ी न थी। मैंने अपने बदनको पगड़ीसे कसकर पक्षीकी टांगसे बांध दिया, जिसमें दूसरे दिन पक्षी मुझे किसी अन्य स्थानको उड़ाले जाय।

ऐसा हुआ भी। सवेरा होते ही पक्षी उड़ा और इतना ऊंचा चढ़ गया कि मुझे पृथ्वी न दीखती थी। बादमें वह नीचे उतरने लगा, पर इतनी शीघ्रतासे कि मैं बेहोश हो गया। पृथ्वीपर जब मेरे पांव टिके तो मैंने फ़ौरन अपना शरीर खोल डाला। और उसकी टांगसे अलग हो गया। थोड़ी देर बाद पक्षी एक बड़े भारी सर्पको पकड़ कर उड़ गया। यह सिंदबादका कथन है। इसमें दो बातें विचारणीय हैं। एक तो यह कि पक्षी सिंदबादको सुगमतासे उड़ा लेगया। दूसरी यह कि पक्षी सांपोंको खाता था। यह दोनों बातें गरुड़से मिलती हैं।

आज कलके वैज्ञानिकों का मत है

कि प्राचीन कालमें ऐसे पक्षी थे। जो बिना प्रयास आदमीको उड़ा लेजा सकते थे।

क्या यह संभव है ?

यह कुछ असंभव बात नहीं है। आज कल भी उक़ाब जिसके डैनोंका फैलाव लगभग ५ फुट होता है ५ सेरका बकरीका बच्चा अथवा मुर्ग़ी उठा लेजाता है साधारणतया यह नियम बतला सकते हैं कि अपने वज़नसे ड्योढ़ा बोझ पक्षी उठा सकता है। इस हिसाबसे तो यदि किसी पक्षीका बोझ १॥ मन हो तो वह एक आदमीको जिसका वज़न २। मन हो सहज ही उठा सकता है। फिर उन पक्षियोंका तो कहना ही क्या है जिनका भार सैकड़ों सेर और डैनोंका विस्तार रेलके डिब्बोंसे अधिक होता था। अब उक्त प्रकारके पक्षियोंमेंसे कुछका वर्णन यहां करेंगे।

प्राचीन कालमें उड़ना अधिक सुगम था

प्राचीन कालमें वायुमें कर्बन द्विओषिदकी मात्रा आधुनिक कालकी अपेक्षा बहुत अधिक थी। इस लिए वायुकी विशिष्ट गुरुता अथवा उत्तोलन-शक्ति अधिक थी। कुछ लोगोंका यह भी कहना है कि उस सुदूर कालमें चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर एक कुण्डलके रूपमें विद्यमान था, जैसे कि वर्तमान समयमें शनिके चारों ओर छल्ले मौजूद हैं। इस लिए गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक न था जितना आजकल है। इस कारणसे भी उड़ना आसान था।

पाताल लोकके कुछ अद्भुत पक्षी

गरुड़देव तो स्वर्ग लोकके थे। वहांका हाल तो वैज्ञानिकोंको अभी तक मालूम नहीं हुआ; पर हां, पाताल लोकका अवश्य कुछ हाल मालूम है।

शुकासुर

३० लाख वर्षसे पहलेकी बात है, आजकलकी नहीं, कि शुकासुर पथरीले पहाड़ों (Rocky Mountains) में रहा करते थे। इनकी चोंच बड़ी भारी

होती थी और इनका कर्कश स्वर भोंफूकी तरह, मीलोंतक गूंजता रहा होगा। इनका सर २॥ फुट लम्बा और उंचाई ७ फुट होती थी। इस पक्षीका एक पूरा अस्थिपिंजर और अन्य पिंजरोंके अनेक टुकड़े पाये गये हैं। इसलिए यह बातें असंदिग्ध है।

### बकासुर

शुक्रासुर से अधिक भयानक और दीर्घकाय बकासुर था। इसका भी अस्थि पिंजर हालमें ही पेटेगोनिया (Patagonia) में खोदकर निकाला गया है। सम्भवतः इतना बड़ा हिंसक पक्षी और दूसरा कभी पैदा नहीं हुआ। यह बड़े बड़े जानवरोंकी शिकार कर लेता था। इसका शिर घोड़े से भी बड़ा, गरदन घोड़ेके समान मोटी, चोंच दीर्घाकार और अत्यंत पैनी, नख तीव्र और ऊंचाई ८ फुट होती थी। इसके सभी अङ्ग पुष्ट और भारी होते थे। यह दौड़नेवाली जातिका पक्षी था, इसके डैने इतने छोटे होते थे कि उड़नेके काममें न आ सकते थे।

### वर्तमान कालके कुछ पक्षी

लगभग सौ वर्ष हुए कि मैडेगैस्कर द्वीपमें एक पक्षी रहता था जिसका नाम एईपाइओरनिस (aepyornis) था इसके अण्डे प्रायः १३ इंच लम्बे होते थे और उनकी परिधि ३ फुट होती थी। वह एक इंच मोटे होते थे और उनमें दो गैलन पानी अमाता था। इन्हीं पक्षियोंको देखकर अरबके नाविकों ने रुखकी कहानी गढ़ती होगी। अभाग्य वश इस पक्षीका कोई अस्थिपिंजर नहीं मिला जिससे उसके आकारका पता चलता, हां इसके अण्डे अवश्य देखनेमें आये हैं और कुछ इधर उधर पड़ी हुई हड्डियां भी इन्हींसे अनुमान होता है कि यह प्रायः १० फुट ऊंचा होता होगा।

न्यूज़ीलेण्डका मोआ पक्षी भी १४ फुट ऊंचा होता था। उसका वज़न प्रायः १४॥ मन होता
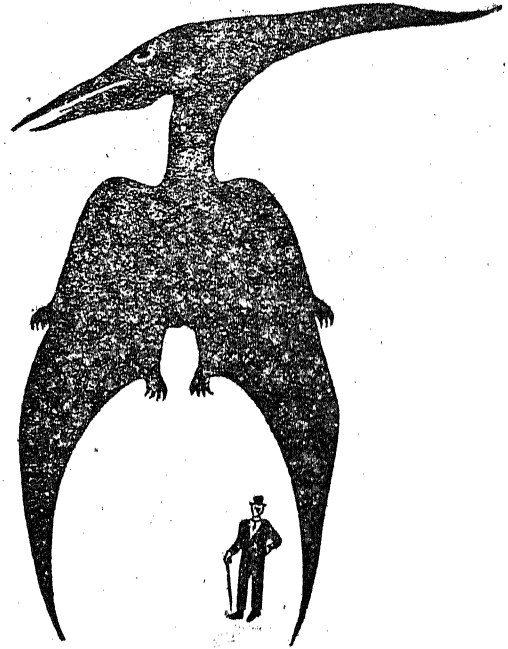
चित्र २—एक प्राचीन पक्षी और आधुनिक जैण्टिलमैन। एक चिमगादड़ जैसा पक्षी, जिसका अस्थिपिञ्जर हालमें ही मालूम हुआ है, जिससे मालूम होता है कि आदमीका उड़ा ले जाने-वाला पक्षी कभी रहा होगा।

था, पर उसकी टांगें इतनी मोटी होती थीं कि बिचारा बहुत तेज़ दौड़ नहीं पाता था। इसीसे वहांके आदिम निवासी उसे भूनकर खागये।
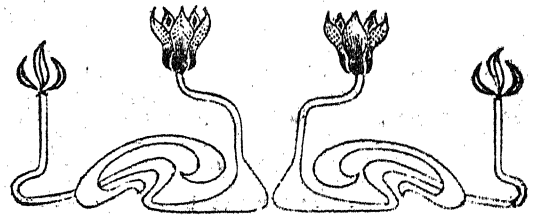
# नक्षत्र संसार

## ( पौर्वात्य आलोचना )

[ ले०—श्री० जयदेवशर्म्मा विद्यालंकार ]

प्रभुकी मायाको देखकर कौन नहीं प्रसन्न होता। किस विलासीने प्रभुके मायाविलास से अपने मानस-विलासकी तरंगें नहीं जगाईं। सभी तो इस सृष्टिको देखकर चकित हैं। कोई वाणीके मर्मज्ञ कवि ईश्वरकी मायाको अपनी वाक् चातुरी द्वारा शब्दमय और अर्थमय अलङ्कारोंसे छिपाना चाहते हैं। पर दूसरे, उनके ही मर्मज्ञ, टीका करनेमें भूलकर उस प्रभुकी मायाको स्पष्ट करनेके व्याजमें अपनी व्याख्यामय जालमें छिपा देते हैं। कोई गूढ़ वैज्ञानिक अपनी नीरक्षीर-विवेकिनी-मतिसे उस मायाके रहस्य चुनते हैं और विज्ञानके मार्मिक सिद्धान्तोंका मीनार तैयार कर उस पार खड़े हो प्रभुका यश गाया करते हैं। कोई उसीकी मायाको आलङ्कारिक रूप देकर कुछ रूपान्तरमें ही छिपा छिपाकर अपने आपको विज्ञ समझा करते हैं। परन्तु सचमुच उस प्रभुकी माया स्वतः बड़ी स्पष्ट है, छिपाये नहीं छिपती, और साथ ही बड़ी गूढ़ है खोले भी नहीं खुलती।

स्वच्छ विमल रात्रिमें अन्धकारकी भीषणता वस्तुतः बड़ी खेद-जनक है। इसीसे ईश्वरने उस खेदकी औषध स्वरूप यह अमृत-बिन्दुके समान तारे विशाल गगन-मण्डलपर छिटका दिये हैं। तभी तो सब विरहीजन रातको तारे गिन कर हृदयको अमृतमय आश्वासन दे लेते हैं। क्या सातवें आसमान पर बैठे खुदाकी विशाल श्यामल गगनमयी वाटिकाके यह प्रफुल्लित फूल हैं जो रातको अपनी अनोखी छटासे खिलते हुए दीखते हैं? क्या, यह पुण्य-चरित्र तपस्वी ऋषि महर्षि हैं जो इस लोकमें विचरनेके बाद अब स्वर्गमें तेजोमय शरीरसे भासमान होते हैं? क्या यह सब सूर्य हैं जो बहुत दूर होनेसे छोटे छोटे दीखते हैं? अच्छा कुछ भी हो, यह विस्मय और कौतूहलका विषय अवश्य है। सभी देशोंके विद्वानोंने अपनी बुद्धि यन्त्रसे इनकी परीक्षा की है। देखें पूर्वात्य विद्वान् क्या कहते हैं और पाश्चात्योंका इस विषयमें क्या मत है।

संस्कृत साहित्यमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं। उनका अनुशीलन करना बहुत ही बड़ी योग्यताका काम है। उनमें ज्योतिषके नक्षत्रोंकी खोज करना बड़ा ही गम्भीरता और मर्मज्ञताका कार्य है। तो भी प्रसङ्ग-वश उनका संक्षेपसे उल्लेख करते हैं।

(१) ऋग्वेद और अथर्व वेदमें २८ नक्षत्रोंका वर्णन है। वेदके मुख्य अंगोंमें ज्योतिष भी एक अंग है। विद्वान् ज्योतिषको वेदकी आंख कहते हैं। फिर उसमें नक्षत्रोंकी उपेक्षा करना असम्भव है।

अथर्वमें नक्षत्रोंका वर्णन निम्न लिखित रूपसे किया है—

"द्यौलोकमें अत्यन्त प्रकाशमान नाना प्रकारके अत्यन्त वेगसे गतिमान और घूमनेवाले नक्षत्र इस भुवन कोशमें शोभा दे रहे हैं।" *

कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसू, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वा आषाढ़ा, उत्तरा आषाढ़ा, अभिजित्, श्रवण, श्रविष्ठा, शतभिषग्, दोनों प्रोष्ठपदा, रेवती, अश्वनी और भरणी; यह नक्षत्र हमें सुखकारी, कल्याणकारी और पुण्य सम्पत्ति कारक हों।

यह सभी नक्षत्र राशिचक्रके हैं। इन्हीं पर चन्द्र और सूर्य संक्रमण करते हैं। पुराने ऋषि यज्ञ करनेके निमित्त काल निर्णय करनेके लिए ज्योतिष

* चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि। ( अथर्व० का० १६ सू० ७-८ )

शास्त्रको ही मुख्य साधन समझते थे। अतः उन्होंने संवत्सरकी गणना सूर्यकी क्रान्तिपर ही की है। इस संवत्सरको प्रजापति और नक्षत्रमय पुरुष माना गया है। उसमें भी यह २८ नक्षत्र उसके शरीरके* भिन्न भिन्न अंग बनाते हैं। वेदमें इन उक्त नामोंके अतिरिक्त और भी बहुत से नक्षत्रोंका उल्लेख किया है जो कि राशिस्थ नक्षत्रोंसे सर्वथा भिन्न हैं, जैसे—

व्याध नक्षत्र (केनिस मेजर) के विषयमें लिखा है कि "आकाशमें स्थित श्व नक्षत्र बहुत अधिक प्रकाश वाला है।"

सारमेय युगलके विषयमें लिखा है कि "तीन कालकञ्ज नक्षत्र द्यौलोकमें दीप्त हो चमकते हैं इसीसे देव कहाते हैं।" "यमकी रक्षा करनेवाले चार आंखोंवाले मार्गरक्षक दोनों श्वनक्षत्र हैं।" वेदमें इनको श्वानोंके नामसे पुकारा गया है। (मूल शब्द-श्वन्।) कैनिस, शब्द भी इसीका अपभ्रंश है।

दक्षिण आकाशमें 'अर्णवयान मण्डल या कान्स्टीलेशन आर्गो' के विषयमें लिखा है—"आकाशमें सुवर्णकी बनी रस्सियोंसे सुवर्णकी बनी नौका तैर रही है।"

ओरायन या काल पुरुष-मण्डलके विषयमें लिखा है। "नमुचि वृत्रके शिरको इन्द्रने पानीके झाग या फेनसे काट डाला"। यह कथा प्रायः सभी पुराणोंमें आई है। परन्तु इस रूपमें है—"वृत्तासुरसे देवता बहुत भयभीत थे; उन्होंने विष्णुसे उसके मारनेकी प्रार्थना की। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा कि मैं मार दूंगा। परन्तु वृत्रको स्वयं विष्णुने प्रसन्न हो कर वर दिया था कि वह न जलमें न थलमें न आकाशमें मरेगा, न वज्रसे न खड्गसे ही मरेगा। इसीसे विष्णु स्वयम् फेन रूप होकर इन्द्रके वज्रमें घुस गये। उसीसे वह मारा गया"। मृगशिरा-नक्षत्र वही नक्षत्र है। सायन लिखते हैं कि "बान-से उनका शिर काटा गया है; अस्तु बान सहित सिर अन्तरिक्षमें उछल कर नक्षत्र रूपसे चमक रहा है।" अमर कोशकार लिखते हैं मृगशीर्ष नक्षत्र ही मृग शिरा है उसीको आग्रहायन कहते हैं। उसके शिरोभागमें 'इन्वक' नामक तारे होते हैं। "मृग शीर्षं मृग शिरः तस्मिन्नेवा ग्रहा-यणी। इन्वकास्तच्छिरो देशे तारका निव सन्ति याः॥"

आग्रहायनका शब्दार्थ है (अग्र-हायन) "वर्षका प्रारम्भ"। अर्थात् इस नक्षत्रमें जब सूर्य प्रविष्ट होता था तभीसे वर्षप्रारम्भ होता था। इसीसे वह नक्षत्र वैदिक कालमें अग्रहायन कहाते थे। इसी समय मार्गशीर्षका मास प्रारम्भ होता था; तभी वसन्तऋतु होती थी। अतः भगवान कृष्णने अपनी विभूतियोंको दर्शाते हुए लिखा है। "मैं मासोंमें मार्गशीर्ष हूं और ऋतुओंमें वसन्त (कुसुमाकर) हूं।"

यह नक्ष मण्डल (constellation) वास्तवमें बहुत रहस्यमय है। (१) वैदिक आर्षकालमें वसन्त मार्गशीर्ष माससे प्रारम्भ होती थी। इसीसे इस नक्षत्र को आग्रहायन कहते थे। (२) अग्रहायन = आ (ग्) र (ह) ा यन; आरायन, ओरायन (Orion) अर्थात् यूनानी भाषाका शब्द भी वैदिक शब्दका अपभ्रंश है। (३) अपांफेन या झागसे वृत्रका शिर काटा गया; यह आलंकारिक वर्णन कितना रोचक है। वैदिक कालमें भी आकाशको कितनी सुन्दरतासे नक्षत्र मण्डलोंमें बांटा गया था। इसका उत्तम निदर्शन भी यही है। (४) आकाशमें देखनेसे भी यही प्रतीत होता है। मृगशिरा नक्षत्र या ओरायनके तारे आकाश गंगाके सर्वथा तटपर हैं। वैदिक कालमें आकाश गंगाको अपांफेन कहते थे। इससे स्पष्ट है कि वैदिक कालमें नक्षत्र

* यो वै नक्षत्रीयं प्रजापतिं वेद उभयोरेनं लोकयोर्विदुः। हस्त एवास्य हस्तः चित्रा शिरः निष्ट्या हृदयं ऊरू विशाखे, प्रतिष्ठानराधाः। एष वै नक्षत्रीयः प्रजापतिः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण)

संसारका ऐसी उत्तमतासे निरीक्षण किया गया था कि सभी अंशोंको विशेष रूपसे प्रकट किया था।

अब प्रश्न यह है कि शेष नक्षत्र मण्डलोंका विभाग कैसा था। इस विषयमें दिग्दर्शनमात्रके लिए इतना कहना पर्याप्त होगा कि वैदिक गाथाओं और अर्थवादोंकी बहुत सी बातें ज्योतिषिक अलङ्कार ही हैं। जैसे शिशुमार, सप्तर्षि आश्रम, ब्रह्माश्रम, अगस्त्याश्रम, वालखिल्याश्रम, सुवर्णाश्रम, * सरमोपाख्यान, हरिश्चन्द्रोपाख्यान, आदि उनमेंसे हर एककी व्याख्या करना यहां स्थानाभावसे सम्भव नहीं, तो भी यह कहना अनुचित न होगा कि २८ नक्षत्र जो राशि मण्डलके वैदिक साहित्यमें पाये गये हैं वह भी स्थान स्थान पर उसी नामसे नहीं पुकारे जाते, प्रत्युत् वैदिक ज्योतिषमें उनके विशेष देवताओंकी कल्पना की गयी है। जैसे ऐतरेयमें लिखा है कि कृत्तिका नक्षत्रका अग्नि देवता है, रोहिणी नक्षत्रका प्रजापति इत्यादि। निम्नाङ्कित सारणीमें सब नक्षत्रोंके देवता दर्शाते हैं।

| नक्षत्र | देवता | नक्षत्र | देवता |
|---|---|---|---|
| कृत्तिका | अग्नि | अनुराधा | मित्र |
| रोहिणी | प्रजापति | भरणी | इन्द्र |
| मृगशिरा | सोम | विधृत | पितरः |
| आर्द्रा | रुद्र | (पू०) आषाढा | आपः |
| पुनर्वसु | अदिति | (उ०) „ | विश्वेदेवाः |
| तिष्य | बृहस्पति | श्रवण | विष्णु |
| अश्लेषा | सर्प | श्रविष्ठा | वासवः |
| मघा | पितरः | शतभिषज् | इन्द्रः |
| फाल्गुनी | भग | प्रोष्ठपदा(पू०) | अजएकपाद् |
| हस्त | इन्द्रो | „ (उ०) | अहिर्बुध्न्यः |
| चित्रा | इन्द्र | रेवती | पूष |
| स्वाति | वायु | अश्वयुजौ | अश्विनौ |
| विशाखा | इन्द्राग्नि | | |

इस देवता-कल्पनासे यह भी स्पष्ट है कि वेदकी देवकथाएं वस्तुतः नक्षत्र मण्डलोंकी रहस्यमयी व्याख्याएं हैं; जिनका उल्लेख अन्य लेखमें करूंगा। अगले ज्योतिषियों ने भी इन देवताओंका लोप नहीं किया, प्रत्युत् वैसाका वैसाही माना है। देवताओंके नाम पर ही उन नक्षत्रोंके पर्याय रूढ़ियोंका प्रयोग किया गया है जैसे निम्न लिखित सारिणीमें नक्षत्रोंके देवताओंको क्रमशः दर्शाया गया है। वैदिक देवता उन नक्षत्रोंके नामोंसे तथा उनके पर्यायान्तरोंसे भी पुकारे जाते हैं।

| | |
|---|---|
| दास्त्र = अश्विनी | त्वष्टा = चित्रा |
| याम्य = भरणी | ब्रह्मा = अभिजित् |
| अग्नि = कृत्तिका | वरुणः = शतभिषा |
| ब्रह्मा = रोहिणी | पूषा = रेवती |
| सोम = मृग शिरा | समीरण = स्वाति |
| शम्भु रुद्र = आर्द्रा | इन्द्र और अग्नि = विशाखा |
| अदिति = पुनर्वसु | मित्र = अनुराधा |
| वसवः = धनिष्ठा | इन्द्र = ज्येष्ठा |
| गुरु = पुष्या | राक्षस = मूला |
| सर्व = अश्लेषा | जल = पूर्वाषाढ़ा |
| पित्तर = मघा | विश्वेदेवा = उत्तराषाढ़ा |
| भग = पूर्वाफल्गुनी | विष्णु = श्रवण |
| अर्यमा = उत्तराफाल्गुनी | अजपाद = पूर्वा भाद्रपदा |
| सूर्य = हस्ता | अहिर्बुध्न्यः = उत्तराभाद्रपदा |

इस व्याख्यासे हमें यह निश्चय हो जाता है कि विशाल गगन मण्डलमें दिव्य नक्षत्रोंको देखकर प्राचीन विद्वानोंने इनका खूब अनुशीलन किया था। इतना ही नहीं बल्कि अनुसंधानसे यह भी प्रतीत होता है कि यह अनुसन्धान भी कई मन्वन्तरों तक होता रहा था। अब संक्षेपमें यह देखना चाहिये कि वर्तमान कालमें जिस प्रकार सम्पूर्ण आकाशको नक्षत्र मण्डलोंमें बांटा हुआ है क्या वैदिक ऋषियोंने या पौर्वात्य ऋषियोंने भी इसको बांटा था? अगर उन्होंने भी बांटा था तो किस प्रकार? साहित्यके रसिक कवियोंने अपने काव्योंमें

स्थान स्थानपर कई नक्षत्रमण्डलोंका उल्लेख किया है। जैसे श्रीहर्षने शंख, वृश्चिक, मीन आदिका उल्लेख किया है। द्वादश राशियां नक्षत्र मण्डलोंका अच्छा नमूना है। प्ररोचनके लिए उनके अद्भुत आकारोंकी भी विशेष कल्पना है। जैसे मेषमें मेढ़ेकी, वृषमें बैलकी और मिथुनमें दो युवा युवतियोंकी कल्पना है। कर्क एक केकड़ेकी आकृति है, सिंहमें सिंहका आकार है, कन्यामें नाव पर चढ़ी एक हाथमें धान्य और दूसरेमें अग्निदीप लिये कन्याका आकार कल्पित है। तुलामें एक तराजूकी कल्पना है, वृश्चिकमें एक बड़े भारी बिच्छूकी कल्पना है। धनुषमें पिछला आधा शरीर घोड़ेका और अगला आधा शरीर मनुष्यका हाथमें धनुषबाण लिये है। मकरमें मृगके शिरसे युक्त एक मगर मच्छकी कल्पना है। कुम्भमें एक पुरुष घड़ा लिये खड़ा है। मीन दो मछलियां एक दूसरेके प्रति मुख पूंछ किये हुए एक रस्सीसे बंधी हैं। यह द्वादश राशियोंकी कल्पना है। वर्त्तमान समयमें या यूनानी ज्योतिष-में भी इनकी कोई नवीन कल्पना नहीं, प्रत्युत् जैसा भारतीय विद्वानोंके शास्त्रोंमें है उसी प्रकार यहां भी है।

बहुत से विद्वानोंका मत है कि भारतके विद्वानोंने राशिचक्रकी गणना यूनानी लोगोंसे ही सीखी थी। भारतके बहुत से विद्वान मध्यकालमें सिकन्द्रियाकी पाठशालामें पढ़ने जाया करते थे। हमारी सम्मतिमें यह देश विशेषोंमें पक्षपातका भाव ही पहले न था। गुणोंकी, विद्याकी सब जगह पूजा होती थी। इसीसे वराहने लिखा है कि "यवन लोग म्लेच्छ हैं तथापि उनमें ज्योतिषशास्त्रका बहुत अच्छा प्रचार है। इस गुणसे उनका भी आदर ऋषि मुनियोंके सदृश ही है।" इससे इतना अवश्य स्पष्ट है कि वराहके समय यूनानी तथा अन्य भारतवर्षसे पश्चिममें बसे हुये मिश्र, असीरिया बाबीलोनिया आदि देशोंमें ज्योतिषका खूब प्रचार था।

इस पर भी यह मानना कि सारे ज्योतिष विषयके लिए यूनानी लोगोंके भारतवासी ऋणी थे यह अनुचित है। राशिचक्रके स्पष्ट निरीक्षणसे ही प्रतीत होता है कि वास्तवमें इसकी उत्पत्ति भी सर्वथा यूनानी नहीं प्रत्युत इसमें दोनोंका प्रभाव दीखता है। जैसे मेष राशिमें मेढ़ेकी कल्पना यूनानी है। उनके मिथ्या कथावादोंमें रामसलके दिव्य मेढ़ेकी कथा मिलती है। वृष की कल्पना भारतीय है। महादेवके वृषभ की कथा वैदिक है। मिथुन में दोनों युवायुवतीकी कल्पना उभय पक्षी है। क्योंकि किन्नरमिथुन की कल्पना दोनोंके साहित्यमें समान भावसे है। यूनानी स्वयम् किन्नर थे, भारतीय साहित्यमें किन्नरोंका जोड़े रूपमें दीखना प्रायः वर्णित है। कर्क, वृश्चिक और मीनका उद्भव यूनानी है, परन्तु धनुष भी यूनानी है; क्योंकि उसमें अश्व-नर धनुर्धरकी कल्पना यूनानी चेरियन या सेन्टौरका अनुकरण है। मकर की कल्पना भारतीय है, क्योंकि नक्षत्र मय चित्रमें मकरका सिर मृगका है यह वही नक्षत्र है जो मृग शिरा है। हमें देखनेसे प्रतीत होता है कि राशि कल्पना राशियोंके नाम और राशियोंकी रूप कल्पना यह पश्चिमी देशों और पूर्वीय देशोंके परस्पर सामञ्जस्यका नवीन फल था। पहले राशिकी गणना न थी। प्रत्युत नक्षत्रोंसे ही गणना करना भारतीय शैली थी। मास कल्पना भी आप देखेंगे कि राशियों पर नहीं प्रत्युत नक्षत्रोंके आधारोंपर है। जैसे विशाखा नक्षत्रमें पूर्णचन्द्रके प्रवेशसे वैशाख, ज्येष्ठामें प्रवेश हो तब ज्येष्ठ, आषाढ़ा नक्षत्रमें प्रवेश हो तब आषाढ़, इसी प्रकार सभी महीनोंके नाम हैं। द्वादशमासकी कल्पना प्राचीन और वैदिक समयकी है। प्राचीन वैदिक महीनोंके नाम सूर्यकी दशाको देख करके उनके आधार पर रख गये थे, जैसे मधु, माधव, इत्यादि।

प्राचीन विद्वानोंने राशि मण्डलोंके अतिरिक्त और भी कई प्रकारसे सब नक्षत्रोंका विभाग

किया हुआ था। इसका उदाहरण स्वरूप है-वीथियोंकी कल्पना।

वीथियोंकी कल्पना

गर्गाचार्यने वीथियोंकी कल्पना इस प्रकारकी है। इसके अनुसार ९ वीथियां मानी गई हैं:—

(१) नागवीथी (२) गजवीथी (३) ऐरावती (४) आर्षभी, (५) गोवीथी, (६) जारद्गवी (७) मृगवीथी, (८) अजवीथी (९) दहनावीथी। इन नौ वीथियोंमें नक्षत्रोंको बांटा गया है। इनकी कल्पना सूर्यकी दक्षिणायन और उत्तरायण गतिके विशेष क्रमको लक्ष्यमें रखकर की गयी है। इसीके आधार पर नवद्रेष्काणों की गणना की जाती है। पराशर, विष्णु, धर्मोत्तर, काश्यप, याज्ञवल्क्य आदि सभीने वीथिविभागको स्वीकार किया है।

इस प्रकार हमने सामान्यतः दिखा दिया कि प्राचीन कालमें नक्षत्रोंका अनुशीलन प्राचीन विद्वानोंने निःसन्देह बड़े विनोदसे किया था। अब और विशेष नक्षत्रोंके विषयमें भी देखते हैं कि क्या अनुसन्धान किया गया था।

ध्रुव

सब नक्षत्रोंमें मुख्य ध्रुवको माना गया है। पुराणोंमें कथा है कि ध्रुवभक्तको उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर ही देवलोकका आधिपत्य दिया गया था। अब तक ध्रुव आकाशमण्डलमें उत्तरकी दिशामें प्रतिष्ठित है; उसके हा चारों ओर सब तारागण प्रदक्षिणा कर रहे हैं। विष्णु पुराणमें लिखा है, श्री भगवान आकाशमें तारामय 'मगर' मच्छका (शिशुमार) आकार बनाये हुये विद्यमान हैं; उन्हींकी पूंछमें ध्रुव विराजते हैं।"

इस उद्धरणसे दो बातें स्पष्ट हैं? छोटे सप्तर्षि या जिनको लघुऋक्ष (Ursa minor उर्सा माइनर) कहते हैं वह ऋक्षाकार नहीं माना जाता था परन्तु घड़याल या शिशुमारके रूपका सा माना जाता था। यही रूप भगवानका समझा जाता था। इसीने सम्पूर्ण राशिचक्रको गति समझी जाती है। राशिचक्र स्वतः शिशुमारचक्रके नामसे विदित है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि नक्षत्रोंके चित्रमय विभाग तो पहले विद्यमान थे, परन्तु ध्रुव तारेको घूमता न देखकर उसीको नक्षत्रमण्डलकी गतिका केन्द्र माना गया और उसीमें सबकी शक्तियोंको केन्द्रित समझा गया। प्राचीन ज्योतिषी वराह, आर्यभट, भास्कर, तथा पुराणकारोंकी सम्मतिमें नक्षत्र सभी प्रवह वायुद्वारा घूमते हैं। वह वायु भी इतनी तीव्र है कि सारे नक्षत्र एक दिनमें सम्पूर्ण चक्र कर लेते हैं। इसके अनुसार पृथ्वीको स्थिर माना है।

यह सिद्धान्त हमें कहीं देखनेमें नहीं आया कि यह सब नक्षत्र अपने स्थानोंपर स्थित हैं। हां, वेदमंत्रोंमें नक्षत्रोंकी दो प्रकारकी गतियोंका वर्णन आया है। पूर्व उद्धृत अथर्वके उद्धरणमें नक्षत्रोंकी गति दर्शानेवाले दो विशेषण दिये हैं। एक 'सरिसृपाणि' दूसरा 'जवानि' अर्थात् यह नक्षत्र सर्पकी तरह सरकते हैं और अतिवेगसे चलते हैं। सरकनेका तात्पर्य अपने स्थानसे विचलित होनेका है। और जवन या वेगवाली गतिसे उनका स्वतः आकाशगोलमें विशेष दिशापर गति करना है। वेदमन्त्रमें तीसरी बात स्वतः प्रकाशमान होनेकी है (रोचमाना)। अर्थात् वैदिक महर्षियोंकी सम्मतिसे नक्षत्र स्वतः सूर्य हैं, वह अपने मार्गपर वेगसे गति कर रहे हैं और आकाशमें उनके स्थान भी नियत नहीं प्रत्युत् आगे पीछे सरक जाते हैं। संस्कृतमें नक्षत्र नामभी इसी कारण है कि वह ग्रहोंके सदृश राशि संक्रमण नहीं करते।

ध्रुव तथा उसके साथके छः और तारे मिलकर छोटा रीछ (उर्सा माइनर) बनता है (चित्र २)। उन्हीं को लघु-ऋक्ष या छोटे सप्तर्षिके नामसे पुकारा जाता है।

चित्रमें प्रदर्शित प्लवङ्ग और वत्सयुगल दो तारे अधिक उज्वल होनेसे अधिक प्रकाश मान हैं; उनको प्रायः रात्रिके समय काल ज्ञानके लिए अधिक देखा जाता है। आजकल (७ वैशाख)
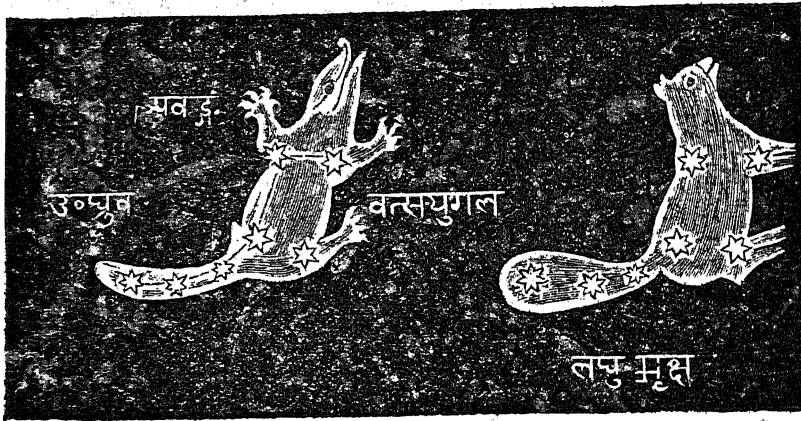
चित्र ३—शिशुमार, लघुऋक्ष

उत्तरमें चित्रमें दिखाये रूपमें यह रात्रिके ६ बजे प्रकट होते हैं।

सप्तर्षिमण्डल

सबसे अधिक चित्ताकर्षक और सुगमतासे चित्तपर अधिकार जमानेवाला यही मण्डल है। इस नक्षत्र मण्डल में ७१ उज्ज्वल तारोंको सात ऋषि कल्पित किया गया है। संस्कृतमें ऋक्ष शब्द भी इन्हींका नाम है। वेदमें यह ऋक्ष नामसे पुकारे गये हैं। 'अमीय ऋक्षा निहितास उच्चैः' ऋ०। सायन भी कहते हैं, "ऋक्षाः सप्तर्षयः" सप्तर्षि ही ऋक्ष कहाते हैं। इन्हींको चित्र शिखण्डिके नामसे भी पुकारा जाता था। *

( चि० ४ )

ऋक्ष, सप्तर्षि या चित्रशिखण्डि भागवतादि पुराणोंमें यह सातों ऋषि गिनाये गये हैं—१ मरीचि, २ अङ्गिरा, ३ अत्रि, ४ पुलस्त्य, ५ पुलह, ६ क्रतु, ७ अरुन्धती—वसिष्ठ। चित्रमें सबका नियत स्थान दर्शाया है (चित्र० ४)। पाश्चात्य विद्वान इन सातोंको देख देख कर अपनी मतिके अनुसार जुदे जुदे चित्रोंकी कल्पना करते हैं; जैसे मयूर, हल तथा कुर्सीकी कल्पना भी करते हैं।

वसिष्ठ और अरुन्धती यह दोनों युगल तारे हैं। वसिष्ठ स्वयं अपनी पत्नी सहित आकाशमें विराजित माने जाते हैं, जिसको अपनी आंख से वसिष्ठ और अरुन्धती तारे न दीखें उसकी मृत्यु समीप ही समझी जाती है। परन्तु अब एनकोंके ज़मानेमें सरकारी स्कूलोंकी घातक शिक्षामें कितने ही भारतीय शिक्षित युवक ऐसे हैं जिनको अपनी पुस्तकके अक्षर तक देखने दुर्लभ हैं। फिर अरुन्धतीका तारा दीखना तो बिलकुल असम्भव है।

ब्रह्ममंडल

यह वही नक्षत्र मण्डल है जिसको पश्चिमी विद्वान् आरिगा ( Auriga ) के नामसे पुकारते हैं। इसके तीन तारे मुख्य हैं—ब्रह्म हृदय (कपेला), उर; प्रजापति।

मृगशिरा या कालपुरुष मंडल ( Orion )

इसके विषयमें पहले भी बहुत कुछ लिखा जा चुका है। प्रसङ्गवश और भी लिखते हैं।

वैदिक साहित्यमें इन्द्र वृत्रकी कथामें वृत्र ह मृगरूपमें माना जाता है। नमुचि भी इसीको माना गया है। यदि प्राचीन साहित्यके अनुसार इसे नमुचि मण्डल या वृत्र मण्डल कहें तो बुरा न होगा। इसीमें सूर्यके प्रवेश होनेसे पूर्व वैदिक

* सप्तर्षयो मरीच्यत्रिमुखाश्चित्रशिखण्डिनः। अमर०

कालमें वर्षका प्रारम्भ होता था। इसीसे इन नक्षत्रों-को आग्रहायन नक्षत्र कहते थे, जिसका अपभ्रंश ओरायन यूनानी शब्द है।

कृष्णभगवान अपनेको मार्गशीर्ष कहते हैं। कदाचित्

चित्र ४

मार्गशीर्ष ही उस कालमें वर्षका प्रथम मास था। सूर्यका अयन बहुत विचलित हो जानेसे अब अयना-रम्भ मृगशिरासे न होकर आश्विनी से होता है।

इसका यूनानी लोग एक पुरुषका रूप बताते हैं। इसके पेटीमें तीन तारे हैं। हाथमें एक वज्र या तलवार है, दो तारे हैं, पीछेसे कुत्ते हैं। वेदके साहित्यमें यही यम कहा गया है इसीके पीछे दो कुत्ते श्याव और शबल है।

इस मण्डलके तारे सारे गगनाभोगमें सबसे अधिक उज्वल हैं जिनके नाम क्रम से यह हैं—

काण राज, विशाख, अनिरुद्ध, कार्त्तिकेय, ऊषा, कार्त्तवीर्य, चित्रलेखा, एणक स्कन्दापस्मार, मातृगण।

इन नामोंमें सबसे अधिक विस्मय जनक स्कन्दापस्मार है। यह कुछ एक तारे वाष्पस्तवक (नेबुला) के जालमें फंसे हैं। ओरायनका प्रसिद्ध नेबुला ही स्कन्दापस्मार है।
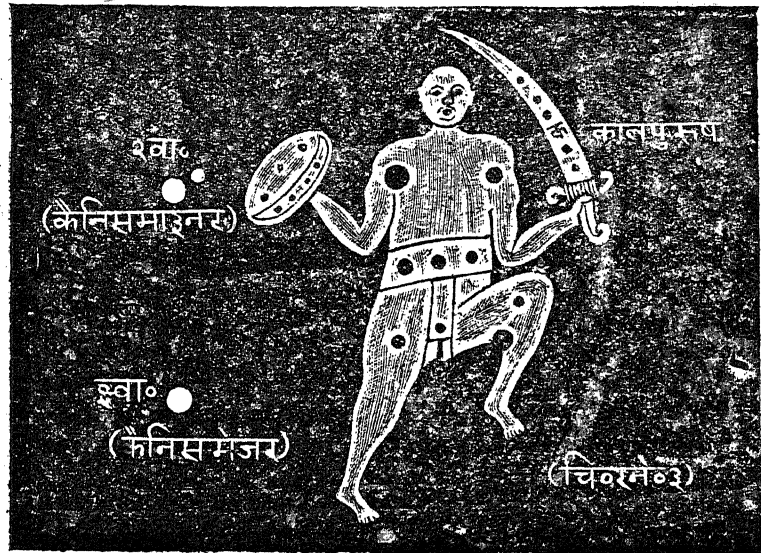
श्वा० चित्र ५—काल पुरुष (orion) मंडल

मृगव्याध मंडल ( Canis major )

मृगव्याध, लुब्धक यह दोनों पर्याय हैं। काल-पुरुषकी पेटीके तीनों तारोंकी रेखाको दक्षिणकी ओर बढ़ाया जावे तो व्याघ्रमण्डलका मुख्य तारा व्याध या लुब्धक ( सिरियस ) ही दीखता है। मृगनक्षत्रके पीछे यह शिव किरात लगे हैं और ३ बाण मृगकी पीठमें लगे हैं। कैसा अच्छा यह दृश्य विनोद है। यही तारा आर्द्रा लुब्धक कहाता है।

शुनी या सरमा मंडल ( Canis minor )

इसमें दो ही तारे हैं प्रभाव और प्रत्यूष। वेदमें भी इसी का वर्णन सरमा रूपसे आया है। यही देवशुनी कहाती है।

काश्यपीय मंडल (Cassiopeia)—वैवस्वतमन्वन्तरमें यही मण्डल सप्तर्षि थे। इसमें कश्यप-अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गोतम, जमदग्नि और भरद्वाज यह ७ ऋषि गिने जाते थे। वर्तमानके

ध्रुवमाता मंडल (Andromeda)

इस मण्डलके उज्वल तारे बहुत ही चित्ता-कर्षक हैं। उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र इसी मण्डलमें हैं। शेषमें से दो तारे मच्छ और सुनीति पुराने-कालसे प्रसिद्ध हैं। इसी मण्डलमें एक चक्षुसे दीख पड़ने योग नीहारिका है, जिसको 'स्तवक-राशी' के नामसे पुकारा जाता है।

इसकी स्थिति काश्यपीय मण्डलके पीछे ही है। इसको यूनानी अन्ड्रोमिडा (अन्तर्मदा) कहते हैं। यूनानी दन्त कथाओंके अनुसार पर्सयस नामकी यही अन्तर्मदा प्रधान नायिका है जो क्षीरसागरके तटपर सुवर्ण श्रृङ्खलासे बन्धी है। ध्रुवमाताके नाम का प्रवृत्तिनिमित्त इसका प्रसिद्ध तारा सुनीति ही है। विष्णुपुराणमें लिखा है—"ध्रुवकी माता सुनीति अत्यन्त निर्मल स्वच्छ कान्तिसे स्वतः विमानमें स्थित होकर ध्रुवके साथ ही रहती है।
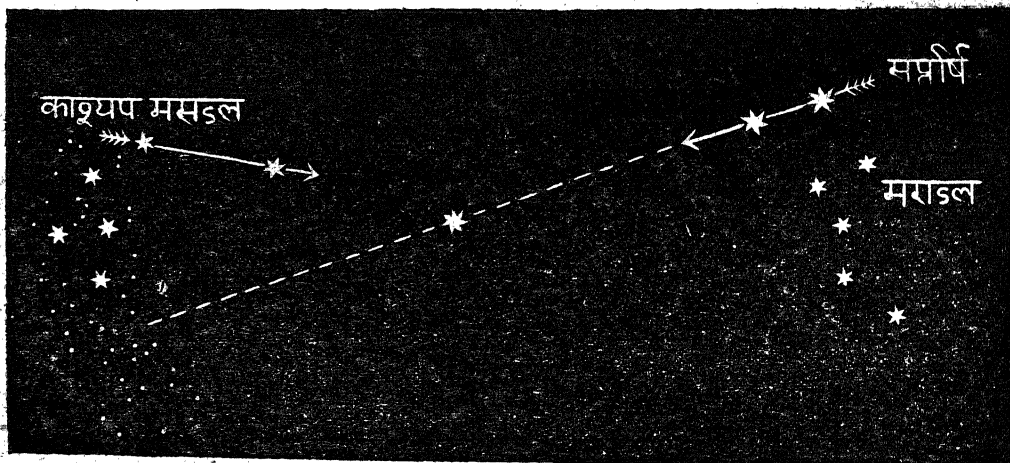
काश्यपीय मंडल

सप्तर्षि मंडल

चि। ६

सप्तर्षियोंके ठीक सामने ध्रुवके दूसरी ओर यह काश्यपीय मण्डल विराजमान है। आकाशगङ्गा इन्हींपरहोकर गुज़रती है।

नौ मंडल या अर्णव यान मंडल ( Argo )

गगनके दक्षिण कपालमें यह नक्षत्र मण्डल एक अद्भुत रूपमें विराजता है। वेदमें इसीको

हिरण्मयी नौकाके नामसे याद किया गया है। यूनानी मिथ्या कथावादोंमें आर्गो या दिव्य नौकाकी पतवार पर कनोपस (अगस्त्य) को बिठलाया गया है। इधर नौकाके पिछले काण्डपर अगस्त्य ही विराजते हैं। यह अगस्त्य ही दक्षिण दिशामें माने गये हैं, जिनके उदय होनेपर वर्षाकालमें कीचड़से मलिन हुआ जल शरदारम्भमें स्वच्छ होना प्रारम्भ होता है। मानसून रूपमें उमड़नेवाले समुद्रका शरदारम्भमें शान्त हो जाना ही अगस्त्यका समुद्रपान है। यूनानके द्वीपोंसे अगस्त्य तारा बारह मास नहीं दीखता। इसका दर्शन मिश्र और भारतमें अवश्य होता है। मिश्रवासी इसको कन-उभ कहते थे। इसकी कान्त दहकते स्वर्णकी तरह मानते थे। इसीसे इसको कन-उभ कहते थे। (कन-उभ = स्वर्णाभ)

इस मण्डलका दूसरा तारा मारीच है। यही रामके बाणसे व्यथित हो कर समुद्रमें जा गिरा था। यह बहुरूप है, मानों वही मायावी मारीच है।

सुवर्णाश्रम मंडल (Dorado)—इसका अत्यन्त रक्तवर्ण अति उज्वल बहुरूप तारा लोपा मुद्रा है। इसका वर्णन वामन पुराणमें आया है कि अगस्त्य ऋषि दक्षिण दिशामें सहसा अंतरिक्षमें गमन कर गये, और वहां अत्यन्त रमणीय सुवर्णके बन्दनवारों से सजा आश्रम बना कर उसमें लोपामुद्राको छोड़ गये।

(असमाप्त)
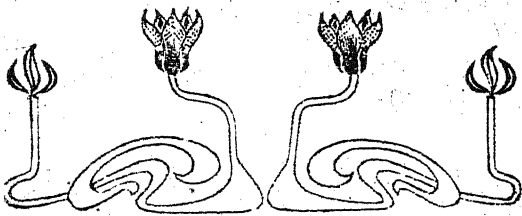
# प्राणियों और वनस्पतियों की विभिन्नता

[लेखक—श्री० शालिग्राम वर्मा, बी. एस-सी.]
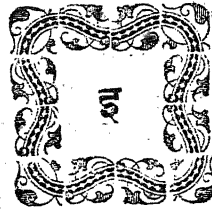
इस लेखमें हम सारी पृथ्वीके प्राणियों तथा वनस्पतियोंके विकासका इतिहास लिखेंगे। इस विषयमें लुप्तजन्तु-शास्त्र (Palaentology) की साक्षीपर पूरा पूरा यक़ीन नहीं किया जा सकता कि प्राथमिक-युगके पश्चात् ही अधिक विभिन्नता प्राप्त जीव, जन्तु, तथा वृक्ष वगैरा उत्पन्न हुये हैं। पर तो भी यह कहनेमें किसीको भी आशंका नहीं हो सकती कि इस परिणामकी तरफ़ तो इनका झुकाव अवश्य ही रहा होगा। अस्तु हम एक दृष्टान्त देकर अब इस बातको सिद्ध करने की चेष्टा करेंगे कि एक कारणसे अनन्त घटनाएँ घटित हो कर, पृथ्वी की भौतिक परिस्थितिमें परिवर्तन हो कर, वनस्पतियों तथा पशु पक्षियोंके विकाशमें भी यही विभिन्नता दिखलाई पड़ती है। पाठकोंको यह तो विदित ही है कि भूकम्प आनेपर जो परिवर्तन ज़मीनपर उपस्थित होते हैं उनसे कहीं तो बड़े बड़े नगर ज़मीनमें समाजाते हैं और कहीं कहींपर नई पृथ्वी भी निकल आती है। अस्तु उन्हें यह मान लेनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी कि अगर किसी कारणसे (Eastern Archipelago) पूर्वी-द्वीप-समूह उभर कर विस्तृत महाद्वीप बन जाय और इस उभार की अक्षरेखाके सहारे सहारे एक पहाड़ी-श्रृङ्खला भी बन जाय तो इस परिवर्तन का पहला परिणाम यह होगा कि बोरनियो सुमात्रा, जावा, न्यूगिनी इत्यादि टापुओंमें रहनेवाले जीव जन्तु तथा वहांपर उगनेवाली वनस्पतियों की अवस्थामें विभिन्नता उत्पन्न हो जायगी। यहां की जल वायुमें असाधारण परिवर्तन होगा। उष्णता, आर्द्रता और नियत समयपर होनेवाले

भौतिक परिवर्तनों जैसे ऋतु इत्यादिमें भी अंतर पड़ जायगा। इस हालतमें स्थानीय परिवर्तनों की सूची तो बहुत लंबी चौड़ी हो जायगी। इस महाद्वीप के ही नहीँ वरन् संभव है कि सारे गोलार्धके वानस्पतिक और प्राणी संबंधी परिस्थितिमें घोर उथल पुथल उत्पन्न हो जाय। पृथ्वी की सतह (level) बदलनेसे ही बहुत बड़ा भेद पड़ जायगा। एक ही जातिके जीव तथा वृक्षादिमें भी जाति भेद हो जायगा। पहाड़ी सिलसिलेके कारण समुद्रके किनारेपर उगनेवाले बहुत से वृक्षोंके लोप हो जानेकी संभावना है। तराइयोंमें ही उगने वाले वृक्ष अगर बच भी गये तो उनके आकार प्रकारमें ऐसी भारी तबदीली हो जायगी कि हम उसे प्रत्यक्ष रूपसे देख सकेंगे। इसी प्रकार समुद्रस्थ पृथ्वीके उभरनेसे नये नये वृक्ष अब उत्पन्न होंगे उनमें कुछ न कुछ विलक्षणता तो अवश्य ही दिखलाई देगी। इतना ही नहीँ वरन् जो कीट पतंग तथा अन्य जीव जन्तु इन वृक्षोंके आधारपर रहते थे उनके भोज्य-पदार्थमें फ़र्क़ पड़ जानेसे उन की अवस्था भी ज़रूर बदल जायगी। यह परिवर्तन उस समय और भी अधिक प्रत्यक्ष हो जायगा जब एक जातिके पेड़ोंके लोप हो जाने पर उनके आश्रित जीव जन्तु उसी प्रकारके अन्य पेड़ों को खाने लगेंगे। इसी तरह तबदीली होते होते कुछ बरसोंमें इन की स्थिति तथा आकार प्रकार दृढ़ होकर, इस नई अवस्थाके अनुकूल होने (adaplation) से अनेक नई नई उपजातियों की भी सृष्टि हो जायगी। दूसरी बार पृथ्वी उभरनेपर और भी अधिक परिवर्तन होंगे तथा पहले परिवर्तनमें उत्पन्न हुई योनियोंमें भी बहुत कुछ विभिन्नता आ जायगी। प्रत्येक परिवर्तनसे इसी प्रकार विभिन्नता बढ़ती जायगी। पर स्मरण रहे कि इस विभिन्नताका यह नतीजा कभी नहीँ हो सकता कि एक हजार जातिके योनिजों की जगहपर एक हज़ार नई जातिके योनिज उत्पन्न हो जायँ। हाँ, उन एक हज़ार जातियों की जगह कई हज़ार नई उपजातियां तथा प्रत्येक जाति की कई उपजातियां होकर हज़ारों उपजातियोंकी सृष्टि हो जायगी। इसी तरह हर जाति एक ही स्थानमें परिमित न रह कर अन्य स्थलों को अधिवासित (Colonise) करने की चेष्टामें लगी रहती है। इसी लिए एक ही जातिके जुदे जुदे प्राणियोंपर तरह तरह के जल वायु इत्यादि का प्रभाव पड़नेसे, इन उपजातियोंकी संख्या नित्य नूतन बढ़ती चली जाती है। भूमध्य रेखा की तरफ़ प्रवास करनेवाली तथा वहां से ध्रुव को जानेवाली जातियों की अवस्थामें बड़ा भारी भेद होनेसे उपजातियाँ भी बहुत ही विभिन्न होंगी। इसी तरह समुद्रके किनारे प्रस्थान करनेवाली तथा पहाड़ी प्रदेशोंमें घर बनानेवाली जातियों की विभिन्नतामें भी अंतर पड़ेगा। अस्तु इन योनिजों की प्रत्येक आदिम जातिने मूल जाति बन बहुत सी जुदी जुदी उपजातियोंकी सृष्टि की। इनमें कुछ उपजातियों को तो स्थानीय तथा अन्य परिवर्तनोंके असामयिक मृत्यु का सामना करना पड़ा, परन्तु इस पृथक्करणसे इनके अवशेष (Survival) की ही संभावना नहीं बढ़ी वरन् दूसरे भूनिर्माण युग तक दो चार को तो अवश्य ही बच रहने का मौका मिल गया।

भौतिक अवस्थाओं और भोजन इत्यादिके बदल जानेसे ही नहीं बल्कि इन प्राणियों और वनस्पतियोंके स्वभावमें भी परिवर्तन उत्पन्न हो जानेसे अनेक विभिन्नतायें मौजूद हो जाती हैं। किसी टापू की वनस्पतियों तथा प्राणियोंमें, नये स्थलोंमें प्रवास करनेसे, और उन जगहोंके प्राणियोंसे सम्पर्क हो कर, किसी समय तो ऐसे विभिन्न प्राणियोंकी सृष्टि होती है कि उनके ऐसा कभी पहिले देखनेमें ही नहीं आया था। कभी कभी देखा गया है कि नये नये जानवरोंके समीप होनेसे वनस्पतियाँ अपने बचावके लिए बड़ा ही विलक्षण उपाय किया करती हैं। इन जीवोंपर भी इस क्रियाका प्रभाव पड़ता है और इन्हें भी अपने आक्रमण तथा अनुक्रमण को रीतियोंमें परिवर्तन करना पड़ता है। आधुनिक खोजसे पता लग चुका है कि जैसे जैसे अवस्थामें

भेद उत्पन्न होता जाता है, वैसे ही प्राणियों और वनस्पतियोंके भी स्वभाव बदलते रहते हैं। पादरी मैंडलके प्रयोगोंसे यह सिद्ध हो चुका है कि किसी विशेष स्वभावकी अधिकता होनेसे ही इनकी रचना (Organisation) में भी तबदीली पैदा होजाती है। इस समय एक और नया चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। इन योनिजोंमें व्यवच्छेद-क्रिया द्वारा एक जातिसे बहुत सी जातियों में बंट जानेकी ही प्रवृत्ति न होगी, पर कभी कभी इन्हींसे उच्च कोटिके योनिजकी सृष्टि होजायगी। इन सब बातोंका विचार करनेसे हमें विदित होता है कि यह विभिन्न उपजातियां भी नई नई भौतिक अवस्थाओं तथा स्वभाव-परिवर्तनसे उत्पन्न हो गई हैं, अनेकानेक नई और विलक्षण तबदीलियों की जन्म दाता बनेंगी। यह संभव है कि इन परिवर्तनोंके होते हुए भी उन्नत अवस्था मौजूद न हो, तथा यह नई पैदा होने वाली सृष्टि पहिलीसे विभिन्न भी न हो। यहां तक कि इस (Modification) तबदीलीके कारण कभीकभी इन नये जीवोंकी जीवन प्रणाली बहुत सरल होने से इनका आकार प्रकार तथा इनकी बनावट बहुत साधारण भी हो जाय। यह तो हुआ अवनति (Retrgoradation) का उदाहरण। पर इस विवरणसे यह अवश्य ही ज़ाहिर है कि किसी जातिके योनिजोंको समयके हेर फेरसे नई नई तबदीलियोंका सामना ही नहीं करना पड़ता है बलिक इस तबदीलीकी वजहसे उनकी रहन सहन पर प्रभाव पड़ कर उनके कुछ खास खास अवयवोंमें व्यवच्छेद हो कर, विभिन्नता बढ़ती ही जाती है। अस्तु साधारण अवस्थामें पृथ्वीके जीव जन्तु तथा वनस्पतियोंमें विभिन्नता पैदा हो कर उसकी वृद्धि ही होती रहती है। भूगर्भ विषयक परिवर्तनोंसे हमारी पृथ्वी पर सैकड़ों तबदीलियां हुई हैं और इन्हींकी वजहसे हमारी दुनियांके जीव जन्तुओं तथा वनस्पतियोंमें अनेकानेक विभिन्नताएं मौजूद हो गई हैं। हमारे विचारमें इस स्थान पर इतना ही कहना अलम् होगा कि जिन विशेष कारणों (अथवा शक्तियों) से पृथ्वीकी रचना हुई है उन्हींके प्रभावसे उस पर बसनेवाले जीव जन्तुओं तथा वनस्पतियोंका विकास हुआ है। अस्तु एक ही आदि कारणसे अनन्त प्रभाव होनेका सामान्यता से विभिन्नतामें परिवर्तन उपस्थित हो गया है।

भुगर्भ-विद्या तथा जीवन संबंधी साधारण नियमोंके उद्घाटनसे जो अनुमान निकला उसीके नित्य प्रतिके अनुभवसे मिलान करने पर और उसकी एकता प्रमाणित हो जाने पर उसका महत्व और भी बढ़ जाता है। पूर्व एतहासिक तथा एतहासिक कालमें मनुष्यों तथा पालतू पशुओंमें एक जातिसे विभिन्न जातियोंकी उत्पत्ति हुई है और उसका हमें ज्ञान भी है। जिस प्रकार हमने अपने अनुमान द्वारा यह निश्चय किया था कि कारण बाहुल्यसे भूगर्भकालमें विभिन्न जातियोंकी उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार हमको यह मालूम है कि एतहासिक कालमें तथा उसके पहले उन्हीं कारणोंका वही प्रभाव हुआ है? दुर्भिक्ष, जन संख्याकी असाधारण वृद्धि, महामारी, युद्ध इत्यादिक दैवी आपदाओंने भी मनुष्यों तथा उनके आश्रित पशु पक्षियोंमें विभिन्नता उत्पन्न की है। इन दैवी आपदाओं द्वारा उत्पन्न हुई प्रत्येक विभिन्नताके कारण नया रूपांतर हुआ तथा भांति भांतिके प्रतिरूप भी बन गये? हम इस बातको मानें या न मानें कि मनुष्य जाति एक ही आदि पुरुषकी संतान है परन्तु शब्दशास्त्रके अकाट्य प्रमाणोंकी उपस्थितिमें हमें मानना पड़ेगा कि संसारमें आज दिन मनुष्योंकी जितनी जातियां वर्तमान हैं, और जिनकी विभिन्नता स्पष्ट रूपसे प्रकट है, वह किसी समयमें एक ही जातिके अंग रही होंगी। अथवा यों कहिये कि जुदे जुदे जलवायु, रहन सहन तथा अन्य प्राकृतिक घटनाओंके प्रभावसे उस एक जातिकी इतनी विभिन्न जातियां तथा उप जातियां प्रकट हो गई हैं! पालतू जानवरोंका भी ठीक यही हाल है! कुत्तोंको छोड़ कर अन्य जितने भी पालतू जानवर

हमारे देशमें मौजूद हैं वह अवश्य ही किसी समय एकही जातिके रहे होंगे, परन्तु जैसे जैसे जलवायु परिवर्तन, रहन सहनकी विभिन्नता तथा उनकी भोजन सामग्रीमें भेद पड़ता गया, वैसे ही उनमें अनेकों उपजातियोंकी सृष्टि होगई—यहां तक कि आज दिन उनमें इतना भेद और अन्तर पड़ गया है कि उनसे अस्थिर मिश्रित जातियां उत्पन्न होती हैं! इसके अतिरिक्त एक ही कारण द्वारा उत्पन्न हुए विविध परिणामोंसे, यही नतीजा निकलता है कि सर्वलौकिक विभिन्नताकी ही वृद्धि नहीं होती वरन् कहीं कहीं विशेष विभिन्नतायें भी उत्पन्न हो जाती हैं! हमें यह बात स्वीकृत है कि मनुष्य जातिके अनेक अङ्ग-प्रतिअङ्गोंमें ऐसे परिवर्तन हुये हैं जिन्हें हम उन्नतिके नामसे नहीं पुकार सकते तथा बहुत सी जातियोंके रूपान्तरमें अवनति भी हुई है; परन्तु फिर भी जब हम समस्त मनुष्य जातिपर दृष्टि डालते हैं तो विभिन्नताकी ही वृद्धि नजर आती है! उदाहरणके लिए किसी भी उच्च जातिके हिन्दू या यूरोपियनको ले लीजिये! पृष्ठ-वंश-विशिष्ट आदिम आदर्श पुरुषसे असभ्य जातियोंकी अपेक्षा यह सभ्य पुरुष कहीं अधिक विभिन्न और निराला मालूम होता है। अतःवर्तमान सृष्टिके सम्बन्धमें हमें समानतासे विभिन्नता उत्पन्न होने वाले उन्नति सिद्धान्तकी वास्तविकता और सर्वभौमिकताके अकाट्य और सुस्पष्ट प्रमाण प्राप्त हुये हैं।

---

## एक महा अद्भुत रोग और उसका उतना ही अद्भुत इलाज

डाक्टरोंका मत है कि चिकित्सा-इतिहासमें अद्वितीय और अनूठा रोग "बोलनेका रोग" है, जो हालमें ही देखनेमें आया है। उसका इलाज भी बड़ा चमत्कारिक और अद्भुत हुआ। मिरियम् रूबिन नामकी एक अष्टवर्षा अमेरिकन बालिका लगातार २१२ घण्टे तक बोलती रही। आरम्भमें किसीको कोई चिन्ता न हुई, क्योंकि बालिकाको किसी प्रकारका कष्ट नहीं प्रतीत होता था। परन्तु बोलते बोलते जब घंटों होगये और बालिका बोलती ही रही तो उसके माता पिताको घबड़ाहट शुरु हुई। उनके पिता बड़े धनाढ्य व्यवसायी हैं, उन्होंने फौरन अच्छे अच्छे डाक्टरोंको बुलाया।

सबने मिरियमका रोग असाध्य बतलाया। बालिका निरन्तर बात करनेके प्रभावसे ही मर-जायगी, इसमें किसीको सन्देह नहीं रहा। डा० पौल बरगर हड्डी बैठानेका काम करते हैं। उन्होंने कहा कि मैं इसका इलाज कर सकता हूं। अन्य डाक्टरोंने भी अनुमति दे, क्योंकि वह तो पहलेसे ही हताश होचुके थे और निद्रावह पदार्थोंको दे देकर हैरान हो चुके थे।

और सब इलाज बन्द कर दिये गये, डा० बरगरने परीक्षा आरम्भ कर दी। मिरियमको एक कुरसी पर बैठाया। उसकी पीठ उघाड़ दी और एक मेरुदंडका चित्र हाथमें ले वह परीक्षा करने लगे। अन्य चिकित्सक बड़ी उत्सुकतासे उसकी ओर देखते रहे। बरगर महोदय मेरुदंडपर उसी प्रकार हाथ फेरने लगे जैसे कोई बाजा बजाने वाला बाजे पर हाथ फेरता हो। इस समय २१२ घंटोंके अपव्ययके कारण मिरियमकी आवाज़ मुश्किलसे सुनाई देती थी। बरगर चित्र पर निशान करते जाते थे। एकाएक उन्होंने ऊपरको नज़र उठाई और आवेगसे पुकार उठे :—

"यह लो, जो मुझे सन्देह था वही ठीक निकला। दूसरा और पांचवां कशेरु जगहसे हटा हुआ है। उनमेंसे एक वाक्-नाड़ियोंको दबा रहा है, दूसरेके कारण जागरण और ज्वर हो रहा है। डा० निस्बत, (Dr. Nisbet) यदि आप इस स्थानपर (बता कर) हाथ रखें तो आपको यह बात साफ मालुम हो जायगी।"

डा० निस्बतने टटोल कर देखा और डा० बरगरका कहना ठीक पाया। डा० बरगर अब कशेरुओं को अपने स्थानपर बैठानेका प्रयत्न करने लगे। उन्होंने दबाया तो चटखनेकी आवाज़ आई और बालिकाने उसास ली, एक दम बोलना बन्द होगया। ऐसा प्रतीत होता था कि किसी ने जादू कर दिया। थोड़े मिनटोंमें ही बालिका सो गई। डा० बरगरने कहा कि अब गड़बड़ न होगी।
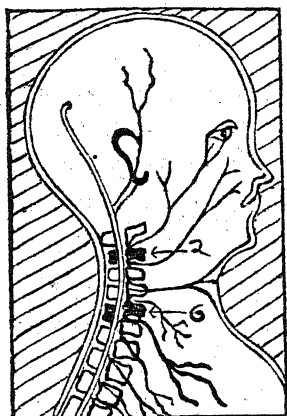
चित्र ७

उनका कहना ठीक निकला। जब मिरियम जागी उसका तापक्रम कई डिग्री कम होगया था। वह फिर बात करने लगी, पर ज्वर बिलकुल जाता रहा था। उचित प्रबन्ध द्वारा बालिका शीघ्र ही अच्छी होगयी।

डाकटरोंका खयाल है कि गिरने या सहसा चोट लगनेसे यह गड़ बड़ पैदा हुई थी। बादमें जो नृत्य मिरियम सीख रही थी उससे रोग और भी बढ़ गया। ताअज्जुबकी बात तो यह थी कि जब तक ज्वर नहीं होआया था, तबतक उसकी बातें बड़ी समझ और होशदारीकी थीं। उसे भूक भी लगती थी, वह अपने माता पितासे बातें भी करती थीं। जब कोई उसके पास न रहता था तो वह स्कूलका सबक फेरा करती थी। कभी शिक्षक की तरह, कभी विद्यार्थी की तरह, वह क्लास रूम की सभी बातें ज्यों की त्यों दुहराती थी। वह अपनी सब किताबें ज्योंकी त्यों सुना गई। व्याकरण, गणित आदि सब ही चीज़ें उसने सुनाईं, जिससे मालूम होता है कि उसकी स्मृति अद्भुत रूपसे सचेष्ट होगयी थी।

—मनोहर लाल

---

# छिपाकर माल ले जाने वालोंकी मुश्किल!

जूता पहनने वालोंको खुश खबरी !!
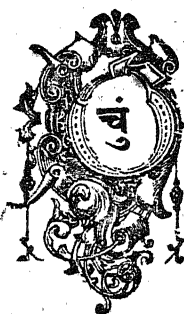
गी और आबकारीके महकमों ने न जाने कितने सज्जनोंको झूठ बोलना, आंख बचाकर या रोब जमाकर निकल जाना, छिपाकर माल ले जाना सिखाया है। आप प्रयागसे दो सेर या चार सेर पकान्न या मिठाई लेकर यात्राको निकलते हैं, आगरेमें पहुंचे कि उस पर चुंगी वसूल हुई, आगरेकी सैर करके मथुरा पहुंचे तो फिर टेक्स भरा, फिर जो प्रयाग आये और कहीं मिठाई बच रही तो फिर, टेक्स दिये बिना टेक्सी पर चलना मुश्किल। यह तो भी गनीमत है। रजवाड़ोंमें और भी अंधेर है। अलवरमें अजब हाल है। खेतमें से नाज गांवमें ले जाइये तो चुंगी दीजिये, गांवसे लादकर अलवर बेचने ले जाइये तो चुंगी दीजिये और जो अभाग्य-वश न बिका तो फिर गांवमें घुसना मुश्किल; जब तक कि आप महसूल न भर दें।

मुसाफिरोंको निजी प्रयोगके लिए थोड़ी बहुत चीज़ इधर उधर ले जानेमें कितना कष्ट होता है। मेहसूल देना इतना नहीं अखरता जितना कि दो पैसेके लिए दस मिनट खराब करना।

लोगोंने भी चुंगीके चंगुलसे निकलने और आबकारीको झुल देनेके अनेक उपाय निकाले हैं। कहीं काठके खिलौनोंमें कुकेन और अफीम निकलती है, कहीं छड़ियोंकी उदर दरीमें से चीज़ें फट पड़ती

हैं। कहीं तकियोंमें, कहीं कमीज़के नीचे छाती पर बंधे हुए, कहीं जूतोंके तलोंमें भरे हुए, मादक द्रव्य अथवा बहुमूल्य पदार्थ पाये जाते हैं। हीरे तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थ खोखले दांतोंमें, मोज़ोंमें, जूतोंमें प्रायः छिपे पाये जाते हैं।

उधर चुंगी वाले भी बड़े होशियार होते जाते हैं। आदमी की शकल से ही वह प्रायः ताड़ जाते हैं कि इसने कुछ छिपाया है या नहीं; फिर वह असबाब की तालाशी भी इस खूबी से लेते हैं कि पता चला ही लेते हैं।

परन्तु अब उनके पास एक नया साधन प्रस्तुत हो गया है, जिससे उनका काम बहुत हलका हो गया है। "एक्स" किरण अब तक तो चिकित्सकों और पीड़ितोंके ही काम आती थीं, परन्तु अब वह चुंगी वालोंकी सहायता करनेका बचन दे चुकी हैं।

एक्स किरण जब यशद गन्धिद से पुते हुए पर्दे पर पड़ती हैं तो वह चमक उठता है। इसी लिए यदि हाथको एक्स-किरण नलिका और आंखोंके बीचमें रखें और परदेको हाथ और आंखके बीचमें, तो जहां जहां एक्स किरण परदे पर पड़ेंगी वह चमक उठेगा। अब, मांसमें होकर तो यह किरण निकल जाती हैं पर हाड़मेंसे नहीं निकलतीं; अतएव पर्दे पर हाथकी हड्डियोंकी छाया साफ दीखेगी।

पर इस परदेसे "पर्सपेक्टिव" ठीक नहीं दीखता। छाया एक तलमें दीखती है, उसमें ठोसपना नहीं प्रदर्शित होता। इस कारण चीज़ोंको स्पष्ट देखनेमें बड़ी कठिनाई होती थी।

हालमें ही सैरबीन—परदा बनाया गया है। जैसे मामूली सैरबीन (स्टीरियोस्कोप Stereoscope) में चीज़ें दिखाई देती हैं, वैसेही इस सैरबीन-चमक-प्रदर्शक (Stereo scopic Fluoroscope) द्वारा दिखाई पड़ती हैं। जो विद्युद्धारा एक्स किरणके यंत्रमें जाती है उसीसे एक ढकन (Shutter) इस यंत्रमें हिलता रहता है। वह कभी दाईं आंखको ढक लेता है, कभी बाईंको; परन्तु वह इतनी तेज़ीसे हिलता रहता है कि आंखको पता भी नहीं चलता।

### इस यंत्रका चिकित्सामें उपयोग

अब तक यह रिवाज था कि फुफ्फुस व्रण (lung lesion) या गोलीके घावके ठीक स्थान जाननेके लिए दो फोटोग्राफ, छाया चित्र, लेने पड़ते थे—एक सामने से एक पार्श्व से। तब भी ठीक स्थिति जान लेना कठिन होता था। अब इस यंत्र से, बिना चित्र उतारनेके कष्टके और बिना समय और चीज़ें खराब किये, सहज ही ठीक स्थान जान लिया जाता है।

### इस यंत्रका चुंगीमें उपयोग

जूतेमें छिपे हुए हीरों, अंगूठियों या अन्य चीज़ोंका पता इस यंत्र द्वारा निरीक्षण करनेसे सहज ही चल जाता है और उनका ठीक स्थान भी मालूम हो जाता है। एक बार चुंगीवालोंको धोखा हुआ कि एक लेडी ने कुछ जूतेमें छिपा रखा है। उन्होंने नवाविष्कृत यंत्रसे देखा तो पता चल गया कि उनका संदेह ठीक था। इसीका चित्र यहां दिया जाता है।

### जूते पहननेवालोंको खुशखबरी

यह सभी जूते पहनने वालोंका अनुभव होगा कि जब नया जूता पहनते हैं तो यह पता चलाना कठिन हो जाता है कि आता है या नहीं। नतीजा यह होता है कि पैरकी आकृति हरबार कुछ बिग-

चित्र ८—जूतेके अन्दर दो हीरेकी अंगूठियां छिपी हैं।
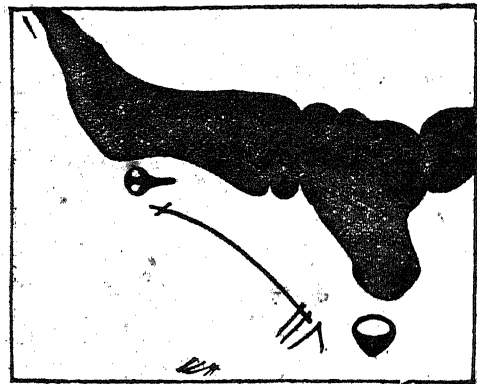
ड़ती रहती है। अब इस नये यंत्रकी सहायता से हम सहजमें ही देख सकते हैं। चित्रमें दाईं ओर दिखलाया है कि जूते पहननेवालेको जूता पहनाते समय यंत्रसे उसके पैरोंको कैसे देखते हैं।

(ख)

(ग)

(क)
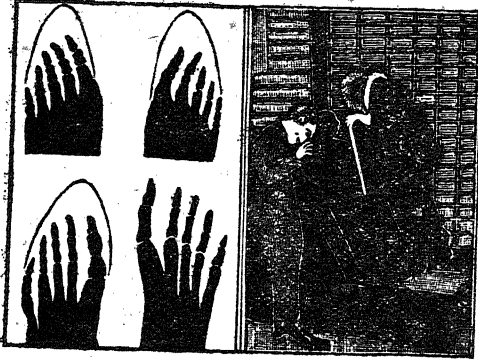
चित्र ९—क—जूता पहननेवाले खेडीके पैर जूतोंके अन्दर देख रहे हैं।

(ख) जो जूते अच्छी तरह नहीं आते उनके अन्दर पैरोंकी आकृति।

ग—(बाईं तरफ) ठीक आनेवाले जूतेके भीतर पैरकी आकृति (दाईं तरफ) नंगे पैरकी आकृति

बाईं ओर ऊपरके भागमें दिखाया है कि अच्छे न बैठनेवाले जूतेमें पैर कैसे विकृत दीखते हैं। नीचेके भागमें दाईं तरफ नङ्गे पैर और बाईं तरफ अच्छी तरह आनेवाले जूतेमें पैरकी आकृति दिखाई गई है।

इस यंत्रका प्रचार सब जगह होना चाहिये। यदि हो सके तो अपने पैरका मोल्ड बनवा कर रखना चाहिये; उसीसे हरबार जूता बनवा कर पहननेमें आराम मिलेगा।

—कुरैशी।

# बुढ़ापेमें जवानोंका सा चेहरा

जब चेहरे पर झुर्रियां पड़ने लगती हैं, तो सूरतसे बुढ़ापा टपकने लगता है। साधारणतया जिनके चेहरेकी त्वचा तनी हुई नहीं रहती वह असली उम्रसे कुछ अधिक वयोवृद्ध दीखते हैं। आजकल सर्जनों ने यह तरकीब निकली है कि चेहरेके चमड़ेको चिमटियोंसे खींच खींच कर शिकन निकाल देते हैं और बढ़ा हुआ चमड़ा काटकर टांके लगा देते हैं। इस प्रकार शस्त्रोपचारसे चेहरे पर फिर जवानीका जोबन दिखाई देने लगता है। इस कष्टप्रद क्रियासे अधिक सुगम एक और उपाय है, जिसका अवलम्बन सब कर सकते हैं। वह है कसरतका करना, और स्वच्छ निर्मल वायुका सेवन और शीतल जलमें स्नान करना। कसरत करनेसे गरदनकी पेशियां बलवान होंगी और फूलेंगी। इस प्रकार गर्दन और चेहरेका चमड़ा सुघड़ प्रतीत होने लगेगा। गर्दनके लिए विशेष प्रकारकी व्यायाम भी है। सुबह उठते ही पलंग पर पड़े ही पड़े आप इस व्यायामको कर सकते हैं। वैसे जब चाहें इस कसरतको कीजिये।

पहले चित लेटिये और कंधेके नीचे तकिया लगा लीजिये। फिर सिरको नीचेकी ओर फेंकिये। जितना नीचा जा सके उतना जाने दीजिये। फिर सिर ऊपरको उठाइये और उसे छाती तक लाइये। इस अभ्यासके करनेमें पहले पहल बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है। आरम्भमें आहिस्ता आहिस्ता काम कीजिये। यदि इसके करनेसे चक्कर आवे तो बहुत थोड़ा थोड़ा अभ्यास कीजिये। पहले पहल केवल पांच बार ही कीजिये। थोड़े दिनमें ही आप पायेंगे कि सहज में ही २०, २५ बार आप यह क्रिया कर सकते हैं।

[ देखिये चित्र १० में क और ख ]

दूसरे अभ्यासमें करवटसे लेटिये। टेंटवे और

चिबुकके बीचमें जो पेशी है उसके बीचमें अंगूठा रख कर दबाइये। जब आप बाईं करवट लेटें तो बायें अंगूठे से दबाइये। दाईं करवट लेटें तो दाएं अंगूठे से दबाइये। तब अंगूठेसे अपने सिरको पीठकी तरफ मोड़ कर ऊपर की ओरको (दाईं करवट लेटे हों तो बाईं तरफको, इत्यादि) घुमाइये। फिर सबको सामनेकी तरफ लाइये; ऐसा करनेमें चिबुक छातीकी तरफको झुकी रहनी चाहिये। इस प्रकार तनाव या दबाव निकल जायगा। इस अभ्यासमें यह खयाल रखना चाहिये कि अंगूठा पेशीको बराबर दबाता रहे। इस अभ्यास-

क ख ग
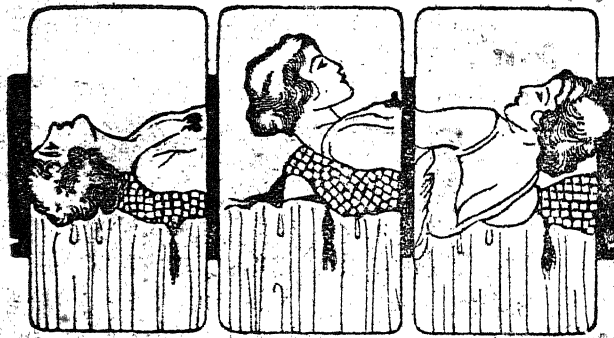
चित्र १०

से गलेकी पेशियां खूब पुष्ट हो जाती हैं। पहले पहल छः बार यह अभ्यास करो, बादमें ३० बार एक करवटसे और ३० बार दूसरी करवटसे करो।

[ देखो चित्र १० ग ]

तीसरे अभ्यासमें साधारणतया लेट जाओ। सरके पीछे दोनों हाथ मिलाकर लगा लो और सरको हाथोंसे उठाओ। फिर सिरको पीछेकी तरफ दबाओ और हाथोंसे उसे आगेकी तरफ खींचते रहो। इस प्रकार गरदन पर खूब जोर पड़ेगा। इस अभ्यासको भी पहले पहल पांच बार करो, अन्तमें २० बार तक बढ़ा सकते हो।

—रतनलाल

## प्राप्त स्वीकार

मार्चमें इन सज्जनोंसे परिषदके चन्दाका द्रव्य प्राप्त हुआ है। अतएव उनको कोटिशः धन्यवादः—

१—श्री० प्यारेलाल गर्ग, L.Ag कानपुर १२)
२—श्री० देवकीनन्दन जी, बी. ए., पूसा २४)
३—प्रो० लालजी श्रीवास्तव, एम. एस-सी., अजमेर ... ... ... ७)
४—प्रो० ब्रजगोपाल भटनागर, एम. ए., प्रयाग ४)
५—प्रो० बी. एस. तम्मा. एम. एस-सी. ... १२)
६—श्री० चर्ल्स नार्ड लिंगर, कलकत्ता ... १२)
७—प्रो० सुशील ल साहनी, एम. एस-सी., प्रयाग ... ... २)
८—श्री पं० बालादत्त जोशी, बी. ए., धामपुर ... ... २४)
९—राय रविनन्दनप्रसाद बहादुर बी. ए., एल-एल. बी., काशी ... २४)
१०—प्रोफेसर देवधर, एम. ए., इन्दौर ... ... ... १२)

## मार्च मासका हिसाब

### आय

| | |
|---|---|
| चन्दा, सभ्यों का, | १३३) |
| मुत्फर्रिक | ३=) |
| पुस्तकों की बिक्री | ११।।।–) |
| | १४८–) |
| २८ फर० को रोकड़ बाकी | ३९८।≡)।१ |
| | ५४६।।)१ |

### व्यय

| | |
|---|---|
| तनख्वाह क्लर्क (फरवरी की) | १८) |
| किराया दफ़तर, दि०, ज०, तथा फरवरी | १३।।) |
| डाक खर्च | १) |
| मुत्फर्रिक | ३=) |
| पुस्तक पर पुरस्कार | २५।) |
| | ६०।।।=) |
| ३१ मार्च को रो० बाकी | ४८५।।=)।१ |

## उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग—दूधकी शुद्धता, बनावट और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।) २—ईख और खांड-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-) ३—करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ।।।) ४-संकरी करण अर्थात् बीजोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति -) ५—सनातन धर्मरत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीनअंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।) ६—कागज़ काम, रद्दीका उपयोग-) ७-केला-मूल्य -) ८—सुवर्णकारी-मूल्य ।) ९-खेत ( कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ।।।) १०—नींबू नारंगी, ११—काल समीकरण मध्यम स्पष्टकाल ज्ञान, १२—निज उपाय-औषधोंके चुटकुले, १३—मूंगफली =)॥

इसके सिवाय, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिम काष्ठ, [illegible]योगी सूत्र(ज्योतिष),रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आलूकी खेती नामक ग्रन्थ छप रहे हैं।

मिलनेका पता:—पं० गंगाशंकर पचौली—भरतपुर वा बूंदी



पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए० द्वारा सुदर्शन प्रेसमें मुद्रित तथा विज्ञान परिषद्, प्रयाग से प्रकाशित।

*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.*

Reg. N0 A 708

र्ण संख्या ७४
ाग १३
ol XIII.

वृष, संवत् १९७८ । मई १९२१

संख्या २
N0. 2

## प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

## विषय-सूची



प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३) ]

[ एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै॰ उ॰ । ३ । ५ ।

भाग १३ } वृष, संवत् १९७८ । मई सन् १९२१ । { संख्या २

## "बादलकी भ्रमण कथा"

( कालिदासके मेघदूतकी आत्म-कहानी )

[ लेखक:-श्री शालिग्राम वर्मा बी. एस-सी ]

पाठको ! कालिदासका मेघदूत आप लोगोंने अवश्य पढ़ा होगा। विरही यक्षने जिस मेघको देख कर अपनी विरहिणी कान्ता यक्षिणीके पास संदेशा लेकर भेजा था आज उसी मेघकी आत्मकहानी आपकी भेटकी जाती है ! यह कहानी बादलने मुझसे स्वयम् शिमले पहाड़ पर कही थी। एक दिन अपने कमरेके आगे बरामदेमें तीसरे पहरको बैठा हुआ मैं कुछ सोच रहा था कि मुझे बरामदेमें यकायक अंधेरा सा मालूम पड़ा। निगाह उठा कर देखता हूं तो एक भूधराकार भूरे रङ्गका बादल सामने नज़र आया। मैं भी विचारावस्थामें कुछ ऐसा निमग्न था कि यक्षकी भांति बादलको चेतन समझ उससे बातें करने लगा। बादल ने भी मेरी बातोंका यथोचित उत्तर देना शुरूकर दिया। हम लोगोंकी बात चीत का सारांश नीचे लिखा जाता है :—

मैं—कहिये महाशय, आज इधर कैसे भूल पड़े।

बादल—कोई विशेष कारण तो नहीं है। ऐसे ही घूमता फिरता आज इधर आ निकला। आपको विचारमग्न देखकर इच्छा हुई कि आपका कुछ मनोरंजन करूं।

मैं - मैं आपकी इस कृपाका बड़ा कृतज्ञ हूं।

बादल—अच्छा तो सुनिये मैं आपको अपनी ही आत्मकहानी सुनाता हूं! इस समय तो मैं शिमला पहाड़ पर हूं परन्तु अपने जीवनके जिस पहले दिन की मुझे अब तक याद है मैं उस दिवस कलकत्ता नगरमें पाले ( fog ) के रूपमें था। उस दिनको आज कई वर्ष हो चुके हैं। उस समय कलकत्तेमें मोटर गाड़ियां और ट्राम मौजूद नहीं

थीं। उन दिनों कलकत्तेकी बड़ी बड़ी सड़कों पर चलने वाली गाड़ियों की धड़ धड़ाहट घोड़ोंकी टापोंकी टप टप और उनकी गरदनोंमें बंधी हुई घंटियोंकी झनझनाहट का शब्द मुझे अब तक याद है। जब मैं हवामें उड़ते उड़ते समुद्रकी तरफ़ बढ़ने लगा तो यह सब मेरे कानोंमें धीमे पड़ते पड़ते अन्तमें बिलकुल ग़ायब हो गये।

एक दिन यकायक मैंने देखा कि कलकत्ते नगर की सड़कोंपर चलनेवाली सभी गाड़ियां ठहरी थीं और अंधेरा इतना घटाटोप छाया हुआ था कि लोग मशालें जला कर चल फिर सकते थे। यह देख कर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ परन्तु थोड़ी ही देरमें मैंने देखा कि लोग बुरी तरहसे खांस रहे थे और उनका दम घुट घुट कर उनके प्राण निकल रहे थे। रास्तों और गलियोंमें भी सैकड़ों लोग मरे हुये पड़े थे जिन्हें कोई उठानेवाला भी मौजूद नहीं था! यह करुणापूर्ण दृश्य देख कर मैं द्रवित हो उठा और वहांसे भागनेको उद्यत हो गया। मुझे भागनेमें हवासे बड़ी सहायता मिली और मैं आकाशमें बराबर ऊपरको उठता चला गया। जैसे जैसे मैं ऊपर आकाशमें चढ़ने लगा मुझे बड़ा अच्छा मालूम होने लगा और मेरे चित्तकी उद्विग्नता भी शान्त होने लगी। ऊपर जाकर मैंने देखा कि कलकत्ता जैसा विशाल नगर छोटी सी गुड़िया की रहनेकी डिबिया जैसा दिखलाई पड़ने लगा और मनुष्य तथा घोड़े ऊंट इत्यादि चींटी तथा चिड़िया जैसे छोटे दिखलाई पड़ते थे।

जब मैं कलकत्ता नगरीके ऊपर भ्रमण करता था उस समय मेरे अंगमें गंधक और जले हुये कोयले की भस्म लगी हुई थी और मेरे चारों तरफ़ दुर्गन्धि फैली हुई थी। इस समय मेरा रङ्ग मटीला सा और कुछ पीला मालूम होता था। परन्तु जैसे जैसे मैं अपने तपोबल से आकाशमें भ्रमण करने लगा तो मेरा शरीर दिव्य श्वेत वर्ण हो गया। इस समय नीले आकाशमें, हवाके सर्द गरम झोंकोंकी गोदमें, सूर्यदेवके पूर्ण प्रकाशसे चमकता हुआ मैं अठकेलियां करता भ्रमण करता चला जा रहा था कि मेरी निगाह डायमंड बंदर (Diamond Harbour) पर जा ठहरी। मैंने देखा कि समुद्र की बड़ी बड़ी फैनदार लहरें किनारे पर पहुंच कर हज़ारों छोटी छोटी तरङ्गोंमें विभाजित होकर इधर उधर फैल जाती थीं। बंदरगाहमें छोटे बड़े सभी प्रकारके जहाज़ मौजूद थे। कोई मद्रास और कोलम्बो जा रहा था कोई सिंगापूर होता हुआ जावा, जापान और चीन जा रहा था, और कोई आस्ट्रेलिया, अमेरिका तथा इंगलैण्ड जानेके लिये तैयार था। मेरे विचारमें इस समय बंदरगाहमें सौ से अधिक जहाज़ मौजूद थे।

दिन भर पूर्वी हवा चलते रहनेके कारण मैं बंगालेकी खाड़ीमें आगे बढ़ने लगा और निकोबार टापूमें जा पहुंचा। वहां पर ईस्ट इंडीज़ स्काडरन (East Indies Squadron) के जंगी जहाज़ों को देखनेके लिये कुछ ही मिनठ ठहरा था कि (Fog-horns) पाला-सूचक भोंपू बजने लगे। इनके बजनेसे ऐसी डरावनी अवाज़ होने लगी कि मैंने भाग कर अपने प्राण छिपाना ही उचित समझा। सायंकालके समय मुझे दूरसे मालद्वीप नज़र आने लगा, सवेरा होते होते मैं उसके समीप जा पहुंचा। इस समय एक अद्भुत घटना घटित हुई। एक लवा गाती हुई मेरे निकट आ मेरे शरीरमें पैठ कर गाने लगी। उस समय उसका चहचहाना ऐसा सुहावना मालूम होता था कि आनन्दके मारे मेरे रोमांच हो आया। आप लोगोंने लवाका गाना तो अवश्य सुना ही होगा परन्तु जिस तरह मेरे शरीरमें पैठकर उसके चहचहानेसे मुझे हृदयोल्लास हुआ तथा मेरी आत्माको इस अलौकिक मधुर और प्रेम-पूर्ण रागसे जो शान्ति प्राप्त हुई वह कदाचित ही किसी प्रेमीको उस समय भी प्राप्त हुई होगी जब अपनी प्रेमिकाके प्रणयसे उसकी हृदय तंत्रीमें प्रेमके अलौकिक वीणा की झनकार उत्पन्न हो गई हो! यह लवा ऐसा मधुर राग अलाप रही थी कि एक (तारा यहां प

बृहस्पति नक्षत्रसे मतलब है जो सबेरे सब तारोंके बाद छिप जाता है) भी इसे सुननेके लिये निकल आया मैंने इस समय देखा कि बहुत से लोग खेतों में आकाश की ओर टकटकी लगाये इस अपूर्व गानको सुनकर मंत्र-मुग्ध से खड़े हुये थे। इस समय लवा भी तन्मय होकर गा रही थी। और मैं उसके रागको सुनकर अलौकिक स्वर्गीय सुखका अनुभव कर रहा था; क्योंकि मैं इस रागको समझता था (इसका समझना मनुष्योंके लिये असंभव है परन्तु हम लोग इसका हर अक्षर खूब अच्छी तरह समझ सकते हैं)। यह चिड़िया इस प्रकार गा रही थी :—

अहह! धन्य! तेरी उज्वल आत्माको
क्या हम तुझे केवल पक्षी ही कहेंगे,
जो नित्य प्रति स्वर्ग की वाटिकामें
सुमधुर गीत गा, हृदय को है लुभाती।
शुभ अरुण शिखा रात्रिके बीतने पर,
पूर्वमें कालिमा लालिमासे बदलती,
जगद्भास्कर, सूर्य, की अर्चना को
प्रणय-सूक्त-गंथित-पुष्प है तू चढ़ाती॥

इसी रागको यह लवा बराबर दुहरा दुहरा कर अलापती रही। जब यह गायन समाप्त हुआ तो दूसरी लवा ने आकर दूसरा गीत प्रारम्भ किया और इस रागमें उसने मेरे (मेघके प्रति) लिये निम्न-लिखित बातें कहीं :—

I bring fresh showers for the thristy flowers.
From the seas and streams;
I bear light shade from the leaves when laid,
In their noonday dreams.

From my wings are shaken the dews that waken
The sweet buds every one,
When rocked to rest on their mother's breast
As she dances about the sun.

I wield the flail of the lashing hail,
And whiten the green plains under;
And then I again dissolve it in rain
And laugh as I pass in thunder.

I sift the snow, on the mountains below
And their great pines groan aghast,
And all the night' tis my pillow white
While I sleep in the aims of the blast.

अब ज़रा महाकवि कालिदासके शृङ्गारमय प्राकृतिक वर्णनको पढ़िये :—

छत्रोत्पत्ती कर, फलवती जो मही को करे है—
ऐसी प्यारी सुन तव ध्वनी मानसोत्कंठ जो है।
हंसश्रेणी मृदु कमल के नाल पाथेय ले रे!
जावेंगी वे गगन-पथ से साथ कैलास तेरे॥

आज्ञा ले तू स्वप्रिय गिरि से, अङ्क में भेंट दे रे!
कक्षा में जो रघुपति-पदों के पुनीताङ्क धारे।
वर्षामें जो तव मिलन से स्नेह भी है दिखाता,
है तेरे ही चिर-विरह से तप्त अश्रू बहाता॥

तथा:—

रत्नाभा से मिलित सुठि ज्यों इन्द्र का चाप आगे—
बांबीसे है वह निकलता, देखते चारु लागे
तेरा नीला सु तनु उससे यों लसेगा सुवेशी
जैसे पिच्छ-द्युति सुभगसे विष्णु जी गोपवेशी॥

पाके वन्याम्र फल-द्युति से पाण्डु है शैल चोटी,
बैठेगा तू उस पर मनो चीकनी चारु चोटी।
देखेंगे सो छवि, चकित हो देव सस्त्री सुशील.
पृथ्वी-गौरस्तन गिरि मनो बीचमें है सुनील॥

पानी बिन्दु-ग्रहण-पटु जो चातकों को दिखाते,
जो आनन्दी तिय-युत, बक-श्रेणियोंको गिनाते।
देमानेंगे तव गुण अरे! गर्ज से सिद्ध लोग,
आलिंगेंगे प्रिय तिय-गणोंको भयार्ता बिलोक॥

यथाः—

हंसश्रेणी सुरव करती बीचि से किङ्किनी सी,
दर्शाती जो निज भवँरकी नाभि सद्दामिनी सी।
निर्विन्ध्यासे सरस रत हो मेघ ! तू मोद पाना,
स्त्रीके प्रेमी बचन पहले भाव हीका बताना॥

शिप्रा-वात, ध्वनि सरस जो सारसोंकी बढ़ाता,
जो कंजों से परिमलित हो प्रातमें मोद देता।
स्त्री-लोगोंकी रति-जनित सो ग्लानियें है मिटाता,
प्रार्थी होके प्रियतम सतो मानिनीको मनाता॥

पन्ना से हैं हरित तृणमें कोटियों शङ्ख-शुक्ती
सूर्य्याभा से जनु चमकते हारमें रत्न मोती।
मूंगा से है रचित दिखती हाट-शोभा विशेष
मानो रत्नाकर जलधिमें नीर ही आज शेष॥

वर्ण-स्पर्धी जहँ रवि-हयों से बरें अश्व चारु,
बसाते त्वत्समगज, नग-क्रीड़ते, दाद-धारु।
भारी योद्धा दशमुख-रण प्राप्त मानो निशङ्क—
शोभा देते तनु पर धरे चन्द्रहास-व्रणांक॥

और भी लीजियेः—

सन्ध्या-लाली, तनु पर, जपा-पुष्प-सी रम्य पाना।
शम्भूके से भुज-तरु-वनों पै वृत्ताकार छाना॥
शेच्छा गीले गज-चरमकी नृत्यमें पूर्ण होगी।
शान्तस्थाहो,सरुचि गिरिजा भक्ति तेरी लखेगी॥

होगी तेरी चिरविलसन-श्रान्त विद्युत् सुभगा
शान्ती लेना छत पर, निशी-सुप्त होंगे परेवा॥
बाकी मार्ग क्रमण करना देखके, मेघ ! सूर्य्य,
ढीले होते सहृदय नहीं मित्रका मान कार्य्य॥

चौड़ी है जो, पर लघु लखे दूर से, सर्व ओर,
लेगा प्रानो नमित जब तू विष्णुका रङ्ग-चोर।
देखेंगे सो छवि मुदित हो व्योमगामी सुशील
मुक्ता-माला महि-गल सनो बीचमें इन्द्रनील॥

आगे कैसा ही मनोहर वर्णन हैः—

जन्मे अग्नी स ल घिसके, वायुके योग से जो,
दावाग्नीसे चमरि-कच औ शैल दुःखी जले जो;
तो तू धाराऽयुत बरसके अग्निको शान्ति देना,
पुरयात्मा श्री-फल मधुर है दुःखितापद् मिटाना॥

तेरी वाणी न सह करके स्वाङ्गको भङ्गनार्थ;
गर्वी होके शरभ तुझको व्यर्थ उल्लंघनार्थ—
कूदेंगे रे ! करक-बरसा-हास्य से तू भगाना;
व्यर्थारम्भी यतन करके कौन होता स्याना ?।

तेरी स्निग्धाञ्जन सम सखा ! श्याम आभा निराली,
हाली छिन्न द्विप-रद-सदृश शैलश्री है उजाली
होगी शोभा तब, शिखर पै, देखने योग्य प्यारी,
जैसे नीला पट हलधर-स्कन्धमें सौख्यकारी।

जो है हेमोत्पल जनक सो मानसी नीर पीना;
दिङ्नागेन्द्र-प्रिय मुख-पटप्रेमसे मेघ होना।
औ वायूसे सुरतरु लता वस्त्र सी तू कँपाना;
नाना क्रीड़ा कर घन ! वहीं शैल पै मोद पाना॥

मेघका यात्रा किस प्रकार होगी इसका भी हृदय-ग्राही वर्णन पढ़ने योग्य है।

धीरे धीरे पवन तुझको सानुकूला चलावे,
बाईं ओर प्रियरव, सुखी हो, पपीहा सुनावे।
गर्भाधानोत्सव समयमें सुन्दरी जो बलाका
पूजेंगी वे नयन सुख रे ! व्योममें, हैं चलाका॥

पीते जाना, जल बरसके, नीर उसका सगन्ध
तीखा वन्य-द्विप मद-बसा, जम्बु-कुञ्जावरुद्ध।
होना अन्तर्प्रचुर जिससे वायु पावे न जीने
रीते सार लघु जगतमें पूर्ण हैं श्रेष्ठ होते॥

नीपोंकी जो हरितकपिशा मञ्जरी देख प्यारी,
जो कूलोंकी नवमकुलिता कन्दलीके अहारी।
जो भू-गन्ध-प्रचुर सुरभी काननोंके बिहारी,
वे सारंग ! प्रगट पथसे ले चलेंगे आगारी॥

मेरे पूंछनेपर लवाने मुझे बतलाया कि यह कवितायें कविकुल शिरोमणि शेली नामक अंग्रेज़ कवि और हमारे देशके महाकवि कालिदासकी हृद्योद्गारके चमत्कार हैं। आख़िर लवाका राग समाप्त हुआ और मैं इधर उधर भ्रमण कर प्रकृति सौन्दर्यकी उस अलौकिक छटाको देखता रहा जिसे मनुष्योंके चर्म चक्षुओंको अब तक देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। अब गगन मंडल

में तारागण विराजने लग गये। नीले आकाशमें मणियोंकी भांति चमकते हुये तारोंका बड़ा ही अद्भुत दृश्य आज मुझे देखने को मिला। इस समय ऊपर तो तारोंका अपूर्व दृश्य था और नीचे शान्त-पूर्ण पृथ्वी और उसके चारों तरफ़ मौजें मारता हुआ समुद्र दिखलाई पड़ रहा था। थोड़ी ही देरमें सोलह कलाओंसे विभूषित, अतुल-सौन्दर्य-पूर्ण, परम शान्ति प्रदान करनेवाले चन्द्रदेवने धीरे धीरे आने मंडलमें विराजमान हो समस्त संसारमें अपनी रुपहली किरणों से अपूर्व प्रकाश फैला कर, शान्ति और सुन्दरताका साम्राज्य स्थापित कर दिया। इस समय मुझे काफ़ी सरदी मालूम होने लगी क्योंकि रात का आकाश में दिन की अपेक्षा अधिक शीत होता है।

सवेरा होने पर मुझे मालूम हुआ कि मैं मद्रास नगरकी तरफ़ चला जा रहा हूं। मैंने इस समय थक जानेके कारण ज़रा सुस्ताना चाहा परन्तु किनारेकी तरफ़से ऐसी ज़ोरकी हवा चली कि वह मुझे फिर समुद्रमें उड़ा ले गई। दिन भर भटकते भटकते बीता, रातको वही तारोंसे सुसज्जित आकाश और मौजें मारता हुआ समुद्र मेरी आंखों के सामने मौजूद थे। इस समय न तो हरे भरे पुष्पोंसे लदे हुये बाग़ बग़ीचे ही नज़र आते थे न तो पक्षीका मधुर, मनमुग्धकारी राग ही सुनाई पड़ता था। अकेला होनेके कारण इस समय मेरा चित्त व्याकुल हो उठा। मैं इसी अवस्था में था कि मैंने किसीकी बड़ी धीमी आवाज़ यह कहते हुये सुनी 'क्या मानसरोवरकी राह मुझे बतलानेकी आप कृपा करेंगे'। मैंने आश्चर्यान्वित होकर अपने चारों तरफ़ देखा तो एक नन्ही सी बदलीको देखकर चित्त बहुत ही प्रसन्न हुआ।

'यह नन्ही बदली लंकासे आई थी'

मैंने पूछा 'क्या तुम अकेली ही मानसरोवर तक चली जाओगी'। उत्तर मिला 'अवश्य! वहां पर सहस्रों कमल मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मैं वहां पहुंच कर उनका आश्वासन करूंगी। परन्तु लंका-से चलते चलते मैं इतनी थक गई हूं कि सुबह होने तक यहीं विश्राम करना चाहती हूं'। यह सुनकर अपनी भुजाओंसे उठा मैंने उस नन्ही बदलीको अपनी गोदमें सुला लिया। रातमें हम लोग कँवलोंकी ही बातें करते रहे। सवेरा होते ही बदली तो विदा होकर चल दी और मैंने दक्षिण-पश्चिमकी राह ली। अब हवा बहुत धीमी चलने लगी थी इसलिये मैं भी बहुत ही धीरे धीरे चलता हुआ मालद्वीप जा पहुंचा। यहां जल कुक्कुट (Sea-gulls) आपसमें लड़भिड़ रहे थे। इस टापूमें घने सायेदार वृक्ष लगे हुये थे और चारों तरफ़ बड़े सुहावने रंग बिरंगे फूल खिल रहे थे जिन पर सहस्रों पक्षी कलरव करते फिरते थे। इस टापूकी शोभा पर मुग्ध होकर मैंने कुछ दिनों यहां ही ठहरनेका विचार किया पर इसी समय हवाका एक झोंका मुझे फिर उड़ा ले गया और मैं लंका-द्वीपके समीप जा पहुंचा। इस टापूमें मैं दोपहरके क़रीब पहुंचा। पहुंचते ही आदम पर्वतकी पेड्रोतालागाल (Pedrotalagala) शिखाने मेरा बड़ा आदर सत्कार कर मुझसे प्रार्थनाकी कि मैं उसके चारों ओर मण्डल बना दूं जिससे वहां आस पासके रहनेवालोंको सूर्यके प्रखर तापसे कुछ सान्त्वना मिले। यहां मैं घंटों मंडल बनाये रहा और इस टापूकी खूब सैर करता रहा। यहां पर ताड़के वृक्ष बहुत अधिक हैं और चायके बग़ीचोंमें भी ख़ूब चहल पहल रहती है। यह बग़ीचे पहाड़ियोंकी तराइयोंमें हैं। यहां कुलियोंके साथ अमानुषिक व्यवहार देख कर मुझे ऐसी करुणा उत्पन्न हुई कि मेरे नेत्रोंसे टप टप कुछ बूंद आंसू गिर गये। अपने चित्तको सावधान कर मैं कुछ दूर आगे बढ़ा। यहां गरमी ख़ूब थी, इस लिये मेरा डील डौल नित्य प्रति घटने लगा और मुझे यह डर होने लगा कि मैं कहीं बिलकुल ही न सूख जाऊं। परन्तु मेरे इस भयकी बहुत आव-श्यकता न थी क्योंकि दिनमें मेरा शरीर जितना

कृश हो जाता था रातको मैं फिर जैसाका तैसा होजाता था।

'बादलकी गरज और बिजलीकी कड़क'

इस यात्रामें दूरसे सेतबन्धु रामेश्वरके दर्शन प्राप्त करने तथा उनके चरण धोनेके अतिरिक्त और कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। अब तो यहां समुद्रके सिवा न तो कोई टापू ही था, न रंग बिरंगे अद्भुत पक्षी ही थे जिनके केवल कलरवसे मेरा चित्त प्रसन्न होता। जब कभी बड़ी बड़ी मछलियां तथा मगर मच्छ-आदिक जलजन्तु मुझे दिखलाई पड़ जाते थे तो मैं इन्हें देखकर बड़ा प्रसन्न होता था। एक सप्ताह इसी प्रकार भटकते भटकते मैं अरब समुद्रमें जा पहुंचा। यहां जाते ही एक बड़ी विलक्षण घटना घटित हुई। एक बड़े श्याम-वर्ण बादलने ऊपरसे आकर मुझे घेर लिया। इसके सहचारसे बड़ा अद्भुत आनन्द आने लगा तथा इसके सम्पर्कसे मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मुझे ज्वर आया हो और गरमीसे मेरा शरीर झुलस सा गया हो। इस समयका मेरा अनुभव बड़ा ही विलक्षण था मेरे शरीरका प्रत्येक रक्त (जल) बिन्दु चटक चटक कर स्फुरित होने लगा। यकायक बिजलीकी घोर कड़क हुई और उस श्याम-वर्ण बादल तथा मेरे बीच विद्युत स्पन्दन होने लगा। यह घटना कुछ समय तक जारी रही। अन्तमें वह श्याम वर्ण मेघ द्रवित हो जल बरसाने लगा और बिजलीकी कड़क तथा चमक बंद हो गई।

इसी प्रकार एक घटना और भी विलक्षण हुई। मेरी यात्राको पूरा एक महीना हो चुका था और आज भी पूर्णिमा थी। चन्द्रदेव पूर्णकला विभूषित प्रकाश मान थे। मेरे शरीर पर सप्तरंगी चादर चन्द्रदेवकी भेंट दी हुई पड़ी हुई थी। चन्द्रदेवने कृपा पूर्वक, मुझे अपना स्नेह भाजन बनाया था। उनकी दयादृष्टि मुझ पर थी। इस दृष्टिके ही चमत्कार-स्वरूप मेरा शरीर इन्द्र धनुष-के सप्तरंगोंसे विभूषित परम सुन्दर और चित्ता-कर्षक दिखलाई पड़ता था। चन्द्रदेवकी कृपा कटाक्ष द्वारा प्राप्त अपनी इस अनुपम सुन्दरताको देख जो आनन्द मुझे प्राप्त हुआ उसका वर्णन करना मेरी शक्तिके बाहर है।

इस समय समुद्रमें ऐसा भयानक अंधड़ चल रहा था कि मेरे पैर किसी जगह न जम पाते थे। मूंगेके टापुओंको देख कर मैं बड़े कौतूहलसे उनकी रचनाका रहस्य जाननेकी चेष्टामें था तथा छोटे बड़े मूंगोंको देखकर बड़े विस्मयके साथ उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो रहा था कि हवाके झोंके मुझे, मेरी इच्छा न रहते पर भी वहांसे उत्तर-पूर्व को घसीट ले गये और येनकेनप्रकारेण मुझे विवश हो अपनी इस लालसाको दिल ही में गुप्त रखना पड़ा।

'पश्चिमी घाट पर फहराती हुई पताका'

ज्येष्ठकी अमावस्याके दिन मैं बंबई पहुंचा। मैं इस टापूनुमा नगरकी अपूर्व सुन्दरता देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ और उस अद्भुत पाश्चात्य सभ्यताकी सराहना कर ही रहा था, जिसके चमत्कारोंका एक नमूना यह विशाल नगर था, कि यकायक हवाके झोंकेने मुझे उड़ा कर पश्चिमी घाटसे जा टकराया। यह पहाड़ भारतवर्षके पश्चिमी किनारेके साथ साथ बहुत दूर तक फैला हुआ है। पथरीला और घने जंगलोंसे लदा हुआ होने पर भी इसकी शोभा इस मौसममें और भी दर्शनीय हो जाती है। इस पहाड़के समीप आते ही इसने मुझे पकड़ लिया और मैं पताकाकी भांति इसके आस पास फहराने लगा। स्वच्छन्द जीवन बितानेके बाद कुछ दिनोंकी यह परतंत्रता मुझे बहुत खलने लगी। पहाड़ने ऐसी विशाल दीवार बना रखी थी कि उसे लांघ कर निकल जाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था। मुझे यहां भी दिल बहलावेकी सामग्री मिल गई। मेरे शरीरसे रक्त (जल) बिन्दुओंकी झड़ी लग गई

और बड़ी ज़ोरसे वर्षा होने लगी। वर्षा होनेके कारण मेरा शरीर कृश तो अवश्य हो जाता था परन्तु शीघ्र ही मैं स्वस्थ हो पुनः अपना कार्य सम्पादन करने लगता था। यहां पर मुझे एक नया चमत्कार देखनेको मिला। जहां जहां वर्षा होती थी पृथ्वीकी कायापलट होती जाती थी। सारी पृथ्वी पर हरी घासका फ़र्श बिछा हुआ था जिस पर हज़ारों रंग बिरंगे पुष्प ऐसे सुहावने मालूम होते थे कि उनकी चित्ताकर्षक अनुपम सुन्दरताको देखकर उस जगत्कर्ताके रचना-कौशल पर विस्मय मालूम होता था। ऐसा प्रतीत होता था मानों मेरे जल विन्दुओंके छिड़के जाने पर पृथ्वीकी सोई हुई उर्वरा-शक्ति पूर्ण रूपसे जागृत होकर संसारमें एक नई सुन्दरताका साम्राज्य स्थापित कर रही है। पृथ्वी पर इन मनोहर पुष्पोंको खिलते देख कर मुझे एक कविता का स्मरण हो आयाः—

फल फूलन छवि छटा छई जो वन उपवनकी
उदित भई मनु अवनि-उदर सों निधि रतननकी
तुहिन-सिखर,सरिता,सर,विपिननकी मिलिसो छवि
छई मण्डलाकार, रही चारहुं दिसि यों फबि
मानहु मनिमय मौलि-माल-आकृति अलबेली
बांधी बिधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली

इस प्रकार भाद्रपद तक मैं पश्चिमी घाटपर ही विचरता रहा। शरद ऋतु आनेके साथ ही मैंने उत्तरकी ओर यात्रा प्रारंभ कर दी। कौकन की तरफ़ होता हुआ मैं गुजरात मरुस्थलके निकट पहुंच कर उस घने जंगल और पहाड़ी स्थानोंको देखने लगा जहां सिंह पाये जाते हैं। कभी कभी रातमें इसकी दहाड़ सुनकर मेरा भी कलेजा कांप उठता था। इसके बाद राजपूतानेकी मरुभूमिके दर्शन हुये। यहां के राजपूत वीरोंकी अनुपम वीरता, अपूर्व साहस, अनुकरणीय आत्म-बलिदान और अलौकिक देशभक्तिकी स्मृति हो आई हृदय गद्गद हो उठा और ज़बानसे धन्य धन्यके सिवाय कुछ भी शब्द न निकल सके। यह मरुस्थल सूर्यदेवकी प्रखर किरणोंसे इतना उत्तप्त हो रहा था कि मैंने यहां पर जल वर्षा करने का इरादा किया, परन्तु यहां तापका उत्ताप इतना अधिक था कि वर्षा होना कठिन हो गया। जलविन्दु बीच ही में भाप बन कर उड़ गये। यहां हिरणों के गोल और करील आदिक पहाड़ी पौधोंके अतिरिक्त कोई विशेष देखने योग्य वस्तु नहीं मिली। इसी प्रकार कई सप्ताह तक नये नये दृश्य देखता हुआ और नये नये स्थानों की सैर करता हुआ मैं सीधा उत्तर की तरफ़ चला जा रहा था कि मैंने एक अद्भुत काला पहाड़ देखा। इस पर ज्वाला देवीकी मूर्त्ति विराजमान थी। किसी समय इस पहाड़से अग्निकी ज्वाला और धुंआ निकला करता था। जिस समय यह पर्वत ज्वाला-पूर्ण था इसमेंसे गली हुई चट्टानें और भभकती हुई राख निकलती थी। इसकी धधकती हुई छातीसे जिस समय अग्निकी ज्वाला निकलती थी तो इसमें गरम गरम झुलसादेने वाली भाप और जले हुये गंधक की हवा निकल चारों ओर ऐसा घटा टोप अंधेरा छा जाता था कि किसी को कोई वस्तु सुझाई ही नहीं पड़ती थी। इतना ही नहीं, हवामें जले हुये गंधककी गैस जिसे गंधक-द्विओषद कहते हैं इतनी ज़हरीली होती थी कि मनुष्योंका दम घुट जाता था और शीघ्र ही उनके प्राण पखेरू इस शरीरको छोड़ उड़ जाते थे। यह पहाड़ बड़े भारी दानवकी भांति गर्जना कर जब चीत्कार करता था तो दूर दूर तक चर व अचर सभीका हृदय कांप उठता था। जंगल डोलने लगते थे, बस्तियां उजड़ जाती थीं और चारों तरफ़ हाहाकार छा जाता था। इस पर्वत का आकार ऐसा है कि जितना यह ऊंचा होता जाता है इसका घेरा कम होता जाता है यहां तक कि इसकी चोटी बहुत कम घेरेदार रह जाती है। कभी कभी यह पर्वत बिलकुल सूच्याकार (Conical) होते हैं। इसके तल भागसे लेकर चोटी तक एक लंबी सुरंग

होती है। इसी सुरंगकी राह यह आग उगलता रहता है। इस ज्वाला मुखी पर्वत को प्राचीन समय के लोग दानव ही मानते थे। वह इसके महाभयानक घातक कार्यों से बड़े दुखी थे। दावानल जैसी घोर अग्नि ज्वाला सदा इस दानवके मुखसे निकला करती थी। जब कुछ वर्षोंके लिये यह पर्वत रूपी दानव अपना विनाशकारी कृत्य स्थगति कर देता था तो लोग समझते थे कि देवी देवताओं की कृपा से उन्हें यह चैन प्राप्त हुआ है। इस लिये देवी और देवताओं को सदा प्रसन्न रखने के लिये पूजा पाठ इत्यादि किया जाता था, देवी जीको बलिदान दिया जाता था और सदा उनको सन्तुष्ट रखनेकी चेष्टाकी जाती थी। कुछ समय बाद इस पहाड़ने आग उगलना बंद कर दिया, इसकी ज्वाला सदा सर्वदाके लिये शान्त हो गई। गली हुई चट्टानें और जले हुये गंधकका ज़हरीला धुंआ उगलने वाला मुंह बंद हो गया, दानव का हत्या-कार्य समाप्त हुआ और लोगोंकी यह धारणा हो गई, उन्हें यह विश्वास दिला दिया गया, कि देवीजीने अपने भक्तोंकी टेर सुनली। उनके कष्टोंके कारुणिक दृश्योंसे द्रवित हो कर उन्होंने इस दैत्यसे महासंग्राम कर उसका संहार कर दिया। उसी दिनसे ज्वाला देवीकी पूजा बड़ी श्रद्धासे प्रचलित हो गई। देवी पुराण, देवी स्तोत्र, देवी गीता तथा देवी गायत्री तक प्रचलित हो गईं। मैंने भी देवीको मन ही मन प्रणाम किया तथा उन्हें इस पदवी पर पहुँचाने वाले महीसुरोंकी सराहना करता हुआ मैं आगे बढ़ा।

यहां से आगे बढ़ते ही मुझे ऐसे ज़ोरके तूफ़ान का सामना हुआ कि मैंने अपने जन्म भर ऐसा घोर तूफ़ान न देखा था। इस समय सैकड़ों वृक्ष टूट टूट कर धराशायी हो रहे थे। बड़े विशालकाय वृक्ष हवाके झोंकोंसे इस तरह पट टूट रहे थे जैसे कोई बच्चा दियासलाइयोंको तोड़ डालता है। मूसलाधार वर्षामें टूटे हुये वृक्षोंसे डरे हुये पक्षी और पशु इधर उधर निःसहाय दौड़रहे थे। इस तूफ़ानको तय करता हुआ मैं एक घटा टोप जंगल में पहुँचा। यहां सैकड़ों बरसोंके पुराने दरख़्त तूफ़ानसे गिरे हुये पड़े थे। इस विध्वंस कार्यको देख कर मुझे उस पूर्व ऐतिहासिक समयका स्मरण हो आया जब इसी प्रकारके सैकड़ों मीलों तक फैले हुये जंगल भूकम्प आने से पृथ्वीमें समा जाते थे। उस समय सूर्य देवसे जो ताप और प्रकाश यह पा चुके थे और इनके शरीरोंमें संग्रहीत था उसका भी लोप हो जाता था। परन्तु पृथ्वी माताके गर्भ में जा यही वृक्षों का जंगल अपने संग्रहीत ताप और प्रकाशको क़ायम रखते हुये उत्ताप और दबावके कारण प्राकृतिक रासायनिक क्रियाओं द्वारा कोयले ( पत्थरके कोयले ) का रूपधारण कर फिर मनुष्यके उपयोगमें आये। इस कोयलेने अब मनुष्यको सहस्रों और लाखों बरसों का संग्रह किया हुआ ताप और प्रकाश प्रदान कर उनके कला कौशलकी जो उन्नतिकी है उसका हाल किसी से छिपा नहीं है। यह जंगलभी भविष्यमें मनुष्यों का इसी प्रकार उपकार करेगा, इस बातका विचार करते ही मेरी आंखों के सामने बाइसकोपके दृश्यों की भांति उल्लिखित घटनाके सारे दृश्य गुज़रते चले गये। इसी जंगलके निकट एक सरोवर था। इसका स्वच्छ निर्मल जल देख कर मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। इस सरोवरमें खिले हुये रंग बिरंगे कंवलोंको देख कर मेरा जी यहीं पर कुछ दिनों विश्राम करनेके लिये लालायित हो उठा।

मैं इस सरोवरपर दोही दिन रहने पाया था कि जंगलकी तरफ़से बड़ा भयानक अंधड़ चलने लगा और आकाशमें इतनी धूलछा गई कि दिन रातके समान प्रतीत होने लगा। सरोवरके निर्मल जलमें स्नान करने के पश्चात इस प्रकार धूलसे लतपत हो जाने के कारण मुझे बड़ा क्रोध आया, परन्तु विवश होनेके कारण मुझे अपना गुस्सा पीजाना पड़ा। शाम होते ही मुझे यह ज्ञात हो गया कि अगर धूल उड़नेके कारण मुझे कुछ कष्ट हुआभी तो धूल बिल्कुल ही निकम्मी चीज़ नहीं है:

मेरा मुक्त होना कठिन है। परन्तु थोड़े ही दिनों बाद आशादेवीने मुझे पुनः आश्वासन दिलाया और मुझे अपने छुटकारेकी फिर आशा होने लगी। वसन्त ऋतु बीत जानेपर बहुत दिनों बाद फिर गरमी पड़ने लगी और गरम हवा इस ज़ोरसे चलने लगी कि मुझे ज्वलामुखी पहाड़का सारा इतिहास फिर स्मरण हो आया। सूर्यका ताप और हवाकी गरमी बढ़ती ही गई, कभी कभी मैं इतना गरम हो जाता था कि मेरे शरीरसे पसीनेकी जगह धुआं निकलने लगता था। इस प्रकार पंजाबकी कठिन गरमीसे घबड़ा कर एक दिन मैं निकल भागा और पुनः अपना स्वरूप धारण कर आकाशमें विचरने लगा। पर इस बार मुझे आकाशमें बहुत ऊंचे पर जाकर स्थान मिला। मैं थक कर विश्राम करनेके लिये जगह ढूंढ़ ही रहा था कि मेरे मित्र पवनदेवकी सहायतासे मेरी यात्रा फिर शुरू हो गई। रावी, चिनाब और झेलम नदियोंको पार करता हुआ मैं सिन्ध नदीके तटपर पहुंचा। दूर ही उत्तरमें मुझे हिमालयके दर्शन होने लगे और दक्षिणमें आकाशकी नीलिमासे अरब सागर ऐसा मिला हुआ दिखलाई पड़ने लगा कि नीले आकाश और नीले जलका पहचानना कठिन हो गया। सिन्धु नदीको देख कर मेरा चित्त ऐसा प्रसन्न हुआ कि मैं इसकी शोभा देखता हुआ उत्तरकी तरफ़ चल दिया। रास्तेमें मेरी गरुड़ पक्षीसे मुलाक़ात हुई उसने मुझे काश्मीर जानेकी सलाह दी। मुझे भी यह राय बहुत पसंद आई, अस्तु मैं झेलम नदी जिस रास्तेसे आई थी उसीको ग्रहण कर उत्तरकी ओर जाने लगा।

### काश्मीरकी सैर और झेलमका स्रोत

रावलपिंडी होकर काश्मीर जानेका रास्ता है, परन्तु मेरे लिये किसी विशेष मार्गकी आवश्यकता नहीं। मैं तो आकाशगामी, गगनचर हूं, पूर्ण स्वतंत्रता पूर्वक मैं जहां चाहूं वहां जा सकता हूं। इसलिये जो दृश्य मुझे देखनेको मिल सकते हैं वह मनुष्योंको देखना दुर्लभ नहीं तो बहुत कठिन है। काश्मीरकी अनुपम सुन्दरता, यहांके अद्वितीय नैसर्गिक दृश्य, प्रकृतिकी मनोमोहिनी छटा, कुछ ऐसी चित्ताकर्षक हैं कि कोई भी यात्री इसे देख कर, तथा यहांकी सैर करके यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मृत्यु लोकमें अगर स्वर्ग कहीं हो सकता है तो वह यही स्थान है। किसी फ़ारसीके कविने कहा है:—

"अगर फ़िर्दौस बर रूए ज़मीनस्त।
हमी नस्तो हमी नस्तो हमी नस्त"

अगर पृथ्वीपर कहीं भी स्वर्गीय आनन्द मौजूद है तो वह यहीं है, और इसी स्थानपर है। अस्तु यहांके उन दृश्योंका कोई वर्णन मैं न करूंगा जिन्हें प्रत्येक यात्रीने देखा है और जिसकी कवियोंसे लेकर साधारण लोगों तक ने भूरि भूरि प्रशंसा की है। काश्मीरकी वादीमें जो अद्भुत दृश्य मैंने देखे वे इस सारी यात्रामें अबतक देखनेको नसीब नहीं हुये। किसी कवि ने कहा है:—

यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुरकानन सुन्दर
यहि अमरन को ओक, यहीं कहुं बसत पुरन्दर

हिमपूर्ण पहाड़ोंसे बरफ़की चट्टानें टूट टूट कर, हिम-नदियां (Glaciers) जहां तहां बह रही थीं। रंगबिरंगे और सुहावने सुगन्धित पुष्पोंको देख नन्दन बनके फूलोंकी सुन्दरता याद आती थी। मैंने ऐसे अद्भुत रंग रूप और गंधवाले पुष्प कभी नहीं देखे थे। पहाड़ोंकी घाटियोंमें जो अलौकिक आनन्द था उसका वर्णन असंभव है। हिमनदियां जहां नीचे उतरीं कि अनेक सरोवरों अथवा नदियोंका रूप धारण कर इस देशकी सुन्दरताको बढ़ाने लगीं। सूर्य देवकी किरणें जिस समय इस हिमपूर्ण, परमोज्ज्वल शिखर, घाटी, सरोवर अथवा नदीपर पड़ती थीं तो प्रकाश किरणों द्वारा उत्पन्न हुए सैकड़ों ऐसे अद्भुत दृश्य उपस्थित होते थे जिन्हें सिर्फ वैज्ञानिक बड़े कौशलसे

प्रयोगों द्वारा कृत्रिम रूपसे ही देख सकते हैं। अगर कहीं कोई वैज्ञानिक मेरी तरहपर आकर इन दृश्योंको देख सके तो वह प्रकृतिका वह रहस्योद्घाटन कर सकेगा जिसे जान कर मनुष्य मात्र की आंखोंमें चकाचौंध उत्पन्न होजायगी और उनके वैज्ञानिक ज्ञानकी कायापलट हो जायगी।

जैसे जैसे मैं आगे बढ़ने लगा चारों तरफ़ बर्फ़िस्तान नज़र आने लगा। सरदीका यहांपर क्या कहना है। मैं ठिठरा हुआ तो पहले ही से था पर अब कांपना शुरू हो गया, दांत कटाकट बजने लगे और मेरा वेग बहुत मध्यम पड़ गया। थोड़ी ही देरमें मुझे चटाचट सी एक बड़ी अजीब आवाज़ सुनाई देने लगी। ज़रा सिर उठाकर जो देखा तो मालूम हुआ कि मेरे चारों ओर सितारोंकी वर्षा हो रही है। इस वर्षाका दृश्य ऐसा मनोरम, अद्भुत और रहस्य-पूर्ण था कि उसका वर्णन करना मेरे लिये असंभव है। इस समय यदि कोई प्रकृति-सेवी कवि मेरे साथ होता तो वह इस हृदय-ग्राही दृश्यका कुछ वर्णन कर सकता। ख़ैर आपके मनोरंजनके लिये जैसा कुछ मैं बता सकता हूं, सुनिये। इन बर्फ़कणोंकी वर्षा इस प्रकार हो रही थी जैसे जगमगाते हुये, सप्तरंगी मणियोंकी लड़ियां लटक रही हों। बर्फ़कण ऐसे विचित्र आकारके थे कि इसके जुदे जुदे कोणोंपरसे प्रकाश-रश्मियां विकृत होकर ऐसा मनोहर दृश्य उत्पन्न कर रही थीं जैसे हरे, पीले, लाल, नीले सब रंगोंके जुदे जुदे आकार वाले हीरोंकी लड़ियोंपर सप्तरंगी बिजलीका प्रकाश घूम घूम कर बारी बारीसे पड़े। मीलों तक यही दृश्य दृष्टिगोचर होता था। इस के कुछ कुछ सदृश दृश्य उस फ़व्वारेका था जो सं० १६११ में प्रयागकी प्रदर्शिनीमें रात्रिके समय दर्शकोंको आश्चर्यान्वित कर उनकी आंखोंमें चकाचौंध उत्पन्न कर दिया करता था। इस मणि-वर्षा के साथ ही साथ मुझे मालूम पड़ा कि मैं भी हिमालयमें कैलाश पर्वत तक पहुंच गया हूं।

मेरी कैलाश यात्रा

इसी स्थानसे मेरी कैलाश यात्रा प्रारंभ हुई। पाण्डव लोग जिस रास्तेसे यहां पहुंचे थे उसे देखकर मुझे ऐसा मालूम होने लगा मानों मेरी आंखोंके सामने इस समय भी वही दृश्य मौजूद है। एक एक करके पाण्डव लोग रास्तेमें गिरते जाते और इस लोकमें अपनी लीला संवरण करते जाते हैं, परन्तु धर्मात्मा युधिष्ठिर आगे बढ़े चले आरहे हैं। भाइयों और स्त्रीकी मृत्यु ने उन्हें कुछ देरके लिये अवश्य अधीर बना दिया, परन्तु सदा धर्मपर दृढ रहने वाले सत्य-पाल धर्मराजका पग कहीं कर्मपथसे डिग सकता था। इस स्थानसे जिस ओर निगाह दौड़ाइये बर्फ़ ही बर्फ़ नज़र आता था। चारों ओर महाप्रलयकी परम शान्तिका साम्राज्य था। यहां न पक्षियोंका कलरव था, न वायुका नृत्य था, न पशुओंका नाद था और न मनुष्योंका शोर। हर तरफ़ शान्ति ही शान्ति थी। सारी प्रकृति मानों सुषुप्ति अवस्थामें थी। पंच-तत्व अपनी प्रकृतिमें लीन थे। सारा जगत एक ही तत्व-मय भासता था। शक्ति और तत्वका पूर्ण संयोग था। यहां न शक्ति तत्वसे परे थी और न तत्व शक्तिसे जुदा।

ऐसे परम शान्त स्थानपर पहुंच कर मुझे भी यह ज्ञान न रहा कि मैं क्या हूं। मैं भी उसी परम शान्तिको प्राप्त हो गया।
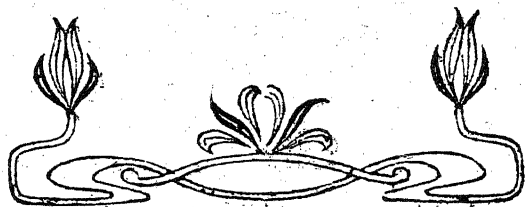
# घी

[लेखक-प्रोफेसर फूलदेवसहाय वर्म्मा, एम. एस-सी., एफ. आर सी. एस. ]

हम लोगोंकी खाद्य वस्तुओंमें घीका स्थान बहुत ऊंचा है। कोई पक्वान्न इसके बिना पवित्र नहीं समझा जाता। इस कारण कहीं कहीं ग्रामीण भाषामें इसे "पवित्री" के नामसे भी पुकारते हैं। यह एक सात्विक खाद्य वस्तु समझी जाती है। अनेक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें इसका वर्णन है और बहुत प्राचीन कालसे इसका प्रयोग होता चला आता है। हम हिन्दुओं ने इसे अर्ध-धार्मिक भाव दे रखा है, यह कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं। इससे इसके विषयमें जानकारी रखना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। आजकल यह पूड़ी भाजी, मछली, मांस, चावल इत्यादि प्रायः सभी मुख्य खाद्य वस्तुओंके पकानेमें व्यवहारमें आता है। जो लोग इसे अर्थाभावके कारण प्रयोग करनेमें अशक्य हैं वह इसके स्थानमें मीठे तेलका व्यवहार करते हैं।

गायका घी सबसे उत्तम समझा जाता है। उसके बाद भैंसके घीका दरजा है। कुछ लोगोंकी रायमें भेड़ीका घी भैंसके घीसे उत्तम होता है; किन्तु भेड़ीका घी अधिक परिमाणमें नहीं पाया जाता इससे खानेके लिये अधिक व्यवहारमें नहीं आता। बकरीका भी घी होता है किन्तु उसमें गन्ध रहनेके कारण पसन्द नहीं किया जाता। भैंसके दूधमें गायके दूधकी अपेक्षा अधिक घी निकलता है। साधारणतः भैंस गायसे अधिक दूध देती है पर भैंसका दूध खानेके लिये उतना ज्यादा व्यवहारमें नहीं आता जितना गायका। भैंस गायकी अपेक्षा कुछ सस्ती भी मिलती है (दूध देनेके हिसाबसे) और भैंसके खिलाने पिलानेमें कम खर्च पड़ता है, यद्यपि देख रेखकी अधिक आवश्यकता पड़ती है। इन कारणोंसे भैंसका घी अधिक परिमाणमें पाया जाता है और गायके घीसे सस्ता होता है।

घी तैयार करनेकी मुख्य दो विधियां हैं। एक कच्चे दूधके मक्खनसे दूसरे दहीके मक्खनसे। कच्चे अथवा थोड़े उबाले हुये दूधको मथनेसे दूधका मक्खन बनता है। हिन्दुस्तान की जल वायु ऐसी है कि यह मक्खन शीतकाल को छोड़ कर और किसी समय में गरमी के कारण एकत्रित नहीं होता। इससे अधिक मात्रामें यह मक्खन यहां तैयार नहीं किया जाता। इस मक्खन से बना हुआ घी भी उतना स्वादिष्ट और गुणकारी नहीं होता। इससे कच्चे दूधके निकाले हुए मक्खनसे बनाया हुआ घी यहां बहुत नहीं पाया जाता। बाज़ारोंमें जो घी मिलता है वह अधिकांश दही के मक्खनसे बना हुआ होता है। दूधको उबाल कर कुछ ठंढे होनेपर उसमें थोड़ासा दही जोरन देदेनेसे ६ से २४ घन्टेके बीच दूध जमकर दही बनजाता है। ऊपर घीकी एक मोटी तह जम जाती है। कहीं कहीं जिस बर्तनमें दही जमाया जाता है अगर उसे बिना धोये ही, उसमें दूधको उबाल कर भर दिया जाय तो भी दही बन जाता है। पाश्चात्य देशों में भी दही बनाया जाता है किन्तु वहांकी विधि ही दूसरी है। दूधमें रेनेट * (Rennet) डालनेसे यह शीघ्र ही जमकर थक्का हो जाता है। इन तीनों तरीकों में एक ही रासायनिक क्रिया होती है। रेनेट डालनेसे दूध इतनी जल्दी जम जाता है कि घीको ऊपर उठनेका समय नहीं मिलता किन्तु अन्य दो तरीकोंमें धीरे धीरे जमनेके कारण घीको ऊपर उठकर एकत्र होनेका पूरा समय मिलजाता ही है। यथार्थमें जितनी ही देरमें दूध जमे उतना अधिक (एक नियमित मात्रा पर्यन्त) घी इकट्ठा होता है। जमे हुये मक्खन की यह मोटी तहें निकाल कर रखी जाती हैं और

* रेनेट एक पदार्थ है जो दूधको शीघ्र ही जमा देता है। —लेखक

कुछ दिनोंके बाद—साधारणतः एक सप्ताहके भीतर—पानी डालकर मथी जाती हैं, जिससे मक्खन पानीके ऊपर एकत्रित हो जाता है। उसे पिघला कर उबालनेसे घी तैयार होता है। स्वादिष्ट घी तैयार करनेके लिये अनुभवकी आवश्यकता पड़ती है। अनुभव इस बात का कि दही पर जमी हुई तहसे कितने दिनोंके बाद मक्खन निकाला जाय, जिससे ग्रामों में अच्छा घी बन सके। इस बातका अनुभव प्राप्त होना ज़रा कठिन काम है। गांवोंमें ऐसा बहुधा सुना जाता है कि अमुक मनुष्यका घी अच्छा होता है। इससे यह आशय नहीं कि दूसरों का घी अशुद्ध अथवा और किसी कारणसे बुरा होता है। वरन इसका तात्पर्य यही है कि किसी किसी मनुष्यको स्वादिष्ट और सुगन्धित घी बनाने का पूरा अनुभव हो जाता है। इस स्वादिष्ट और सुगन्धित घीका बनना एक प्रकार की रासायनिक क्रिया पर निर्भर है। दहींमें वह किएव मौजूद रहते हैं जिनके द्वारा दहीको दूधमें मिला देनेसे किएवक्रिया (Fermentation) उत्पन्न होकर दूध जमकर दही बन जाता है। यह एक प्रकारकी रासायनिक क्रिया है जिसके द्वारा मक्खन अलग हो जाता है, और कुछ दिनों तक एक विशेष तापक्रम पर रखनेसे इन्हीं कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न हुई किएव-क्रियासे घी बन जाता है। यदि यह क्रिया नियत परिमाणसे कम हो तो उस घी में यथेष्ट गुण नहीं रहेंगे। और यदि उस नियमित मात्रासे अधिक हो तब भी उसमें कुछ ऐसे गुण आजावेंगे जिससे घीका स्वाद नष्ट हो जायगा और लोग उसे पसन्द नहीं करेंगे। घी को इस विशेष तापक्रमसे ऊपर उत्तप्त करनेसे उसमें एक प्रकारका खट्टापन आजाता है जिससे लोग उसे बहुत पसन्द करते हैं। किन्तु ऐसा करनेसे घीकी तादादमें कमी होती है जिससे घीके व्यवसाइयों को उतना लाभ नहीं होता। साधारणतः जितना घी बाज़ारमें आता है वह नियत तापक्रमसे नीचे उत्तप्त किया जाता है। इसका असर यह होता है कि घी कुछ दिनोंमें बिगड़ना शुरु होता है और उसमें एक विशेष प्रकारकी कड़वी सी गंध पैदा हो जाती है। भैंसके एक सेर दूधमें प्रायः ६ तोला घी निकलता है और गायके उतने ही दूधमें उसका आधा अर्थात ३$\frac{1}{2}$ तोला और कभी कभी बहुत अच्छी गायके दूधमें उसका तीन चौथाई अर्थात् ४$\frac{1}{2}$ तोला भी घी निकलता है।

घी बहुत दिनों तक सुरक्षित रखा जासकता है। गरमागरम घी चमड़ेके पीपोंमें नमकके बिना अथवा अन्य किसी संरक्षक वस्तु (Preservatives) की सहायतासे बरसों अच्छी दशामें रखा जा सकता है। वैद्यक ग्रन्थोंमें पुराने घीका कई स्थानों में वर्णन किया गया है और ताज़ा घीसे अधिक गुणकारी बतलाया गया है। बाहरी प्रयोगके लिये तो पुराना घी बहुत ही उत्तम कहा गया है। सौ सौ वर्षका पुराना घी सुननेमें आता है। फ्रायर (Fryer) नामक एक अंग्रेज़ने सूरतके वर्णनमें पत्थरकी बनी हुई नाज भरनेकी कोठियों और चार सौ वर्षके पुराने घीसे भरे हुये चहबच्चोंका उल्लेख किया है। ऐसे पुराने घीको लोग सुवर्णके ऐसा मूल्यवान समझते थे। चमड़ेके पीपोंमें रखनेसे घी सूखकर मोम जैसा हो जाता है, किन्तु रङ्गमें कुछ अधिक परिवर्तन नहीं होता।

जितनी खाद्य वस्तुएं हम लोग प्रयोग करते हैं उनको मुख्यतः चार भागोंमें विभाजित कर सकते हैं।

१—खनिज (Inorganic) वस्तुएं, जैसे नमक तथा पौधों और पशुओंकी भस्मीसे प्राप्त हुये लवण। यह हड्डियोंके बनानेमें अधिक सहायक होते हैं. अतएव बाल्यावस्थामें इनका प्रयोग बहुत लाभदायक और नितान्त आवश्यक है।

२—अलब्यूमिन वस्तुएं अथवा प्रोटीन्स। यह एक प्रकारके विशेष मिश्रित पदार्थ हैं जिनमें १५ से

१७ प्रतिशत नत्रजन विद्यमान है। यह कर्बन, उज्जन, ओषजन और गन्धकके साथ सम्मिलित हैं। जितने पदार्थ हम लोगोंके भोजनमें व्यवहार किये जाते हैं उनमें यह सबसे अधिक महत्वके हैं क्योंकि इनके बिना जीवन सुरक्षित नहीं रह सकता। इन्हीं वस्तुओंके भोजन से नत्रजन हम लोगोंके शरीरमें प्रवेश करता है अन्यथा नहीं। मांसकी बनावटमें यही मुख्य सहायक होते हैं। अतएव इन्हें कभी कभी "मांसोत्पादक" वस्तुके नामसे भी पुकारते हैं। अण्डेके अन्दरका सफ़ेद पदार्थ इन्हींका यौगिक है। पौधों और फलोंमें भी यह अधिकतासे पाये जाते हैं यद्यपि इनका अंश अधिक नहीं होता। दूधमें भी इनका कुछ अंश रहता है और इन्हें "केसीन" कहते हैं। बच्चों और रोगियोंके लिये जितने पुष्ट पदार्थ और दवाइयां जैसे (Sanatogen) सेनेटोजिन इत्यादि तथा और जितने पदार्थ दवाईखानों और बाज़ारोंमें मिलते हैं उनमें इसका अंश बहुत अधिक मात्रामें विद्यमान रहता है। अधिक मात्रामें ही प्रोटीन न खानेसे कोई विशेष लाभ नहीं होता वरन् लाभ होता है इसके भौतिक गुणपर। अन्य सब भोज्य वस्तुओंसे अण्डा विशेष बलप्रद इसी कारण समझा जाता है कि इसमें प्रोटीन्स इस रूपमें मौजूद है कि बहुत सरलतासे शरीरमें प्रविष्ट (assimilate) कर जायं। अण्डेके बाद दूधका दरजा है और इसके बाद फल फूल आते हैं।

३—कर्बोज्ज और चर्बी, जिनमें कार्बन, उज्जन और ओषजन विद्यमान हैं। शरीरमें बल वीर्य और पौरुष उत्पन्न होनेके लिये इनका व्यवहार अत्यावश्यक है। विशेषकर शरीरमें उष्णता उत्पन्न करनेके कारण इन्हें "तेजोत्पादक" भी कहते हैं। यथार्थमें जितनी वस्तुएं हम लोग भोजन करते हैं वे सभी तेज उत्पन्न करती हैं किन्तु यह और खाद्य वस्तुओंकी अपेक्षा अधिक मात्रामें और शीघ्र ही अपना असर उत्पन्न करती हैं। इस वर्गमें घी पार्शव चर्बी आदि अनेक प्रकारके वानस्पतिक तेल आते हैं। खाद्य वस्तुओंमें प्रोटीन्सके बाद इन्हीं का दरजा है और यह शरीरकी पुष्टिके लिये अत्यावश्यक ही नहीं वरन अनिवार्य हैं।

४—कार्बोहाइड्रेट—जिनमें कार्बन, उज्जन और ओषजन सम्मिलित हैं। उज्जन और ओषजन उसी अनुमानमें उपस्थित हैं जिसमें वह पानीमें पाये जाते हैं। गेहूं, चावल, आलू, अरारूट और सागू इत्यादिके आटेमें अधिकांश यही कार्बोहाइड्रेट हैं चीनी भी इसी वर्गमें शामिल है और इसका अणुसूत्र $क_{१२} उ_{२२} ओ_{११}$ है यह आटेसे बिलकुल विभिन्न है। चर्बी बनानेमें भी यह यौगिक काम आते हैं। इस कारण इन्हें "वसोत्पादक" भी कहते हैं।

हम लोगोंकी खाद्य वस्तुओंमें शायद ही कोई ऐसी वस्तु है जिसको ऊपर लिखे हुए चारों वर्गोंमें से केवल किसी एक ही वर्गमें रख सकें। साधारणतः खाद्य वस्तुएं कमसे कम तीन और कभी चारों वर्गोंकी वस्तुओंके मिश्रण हैं। अलव्यूमिनके सिवा मांसमें खनिज पदार्थ और चर्बी सदा उपस्थित रहती हैं। रोटियोंमें कार्बोहाइड्रेटके अतिरिक्त कुछ अलव्यूमिन थोड़ी चर्बी और खनिज पदार्थ सदा पाये जाते हैं। प्रोटीनके सिवा दूधमें चीनीके रूपमें कार्बोहाइड्रेट चर्बी और खनिजपदार्थ सदा उपस्थित रहते हैं। इन सब प्रकारकी खाद्य वस्तुओंमें सब श्रेणीके पदार्थ ठीक ठीक अंशमें रहने से ही बिना किसी दूसरी वस्तुकी सहायताके इन्हें खाने वाले बहुत थोड़ी शक्ति व्यय करके अपनी जीवन रक्षा कर सकते हैं। ऐसे खाद्य पदार्थोंमें रोटी और दूधका नाम उल्लेख किया जा सकता है। इनमें दूध ही एक ऐसी वस्तु है जिसके खानेसे जीवन रक्षित रह सकता है। यह भी सब लोग जानते हैं कि शैशवावस्थामें बालकोंके लिये यह एक परमावश्यक खाद्य वस्तु है। अनेक दशाओंमें रोगियोंको केवल दूध पी कर ही रहना होता है। इस दूधका मक्खन आदि निकाल देने से भिन्न भिन्न पदार्थोंके अंशोंमें यदि कमी बेशी की जाय तब इस सर्वोत्तम खाद्यवस्तुका केवल गुण ही नहीं घट जाता वरन् अनेक हालतोंमें इसके गुण बिलकुल

नष्ट हो जाते हैं और यह अधिक भारी (देरसे पचने वाला) हो जाता है।

आजकल शहरोंमें जो घी मिलता है वह अधिकांश अशुद्ध और हम लोगोंके विचारसे अपवित्र होता है। छोटे छोटे शहरोंमें तो शुद्ध और पवित्र घी मिल भी जाता है किन्तु बड़े शहरोंमें शुद्ध घीका मिलना कठिन है। घीको अशुद्ध करनेके लिये अनेक वस्तुओंका व्यवहार होता है। उनमें वानस्पतिक तेल मुख्य हैं। इनमें कुछ तो निर्दोष हैं अर्थात् उनके व्यवहार से कोई शारीरिक हानि नहीं होती; किन्तु कुछ ऐसे हैं जिनके व्यवहार से हानि होती है। पहली श्रेणीके तेलोंमें गरी, चीनी या बादाम, बिनोले तिल और कुसुमके तेल मुख्य हैं। दूसरी श्रेणीके तेलोंमें महुआ और रेंडीके तेल प्रधान कहे जा सकते हैं। गरी, तिल और महुयेके तेल ही अधिक मात्रामें व्यवहार किये जाते हैं। पार्शव चर्बियां भी विशेष कर बकरे और भेड़ोंकी चर्बी इसमें व्यवहार होती हैं। चूंकि बकरे और भेड़ोंकी चर्बियां काफ़ी तादादमें हर जगह मिल सकती हैं इससे इनका प्रयोग अधिक देखा जाता है। तेलमिश्रित घीको गाढ़ा बनानेके लिये चावल, बजड़ा, केला और आलूका आटा भी उनमें मिलाते हैं।

ऐसा देखा जाता है कि घी बनानेवाले गांववाले तो घी अच्छा ही देते हैं पर इस व्यवसायके करनेवाले इसमें दूसरी चीज़ोंका मेल कर देते हैं। ऐसे मेल किये हुये घीका व्यवसाय कलकत्ता, बम्बई, इत्यादि बड़े बड़े शहरोंमें खूब होता है। कभी कभी यह देखा गया है कि रोग-ग्रस्त जन्तुओं की चर्बियां भी इस काममें व्यवहार की जाती हैं। कलकत्ता बम्बई आदि बड़े शहरोंमें म्युनिस्पैलिटियोंकी ओरसे इस कुप्रथाको रोकनेके लिये बहुत कड़े नियम बन गये हैं जिससे अब इन व्यवसाइयोंकी उतनी दाल नहीं गलती किन्तु अब वह छोटे छोटे शहरोंमें घी भेजकर वहांके लोगोंको ठगते हैं। इस दूषित व्यवसायके लिये यह अत्यावश्यक है कि सारे देशके लिये कड़े नियम बन जाँय जिससे इन व्यवसाइयोंकी दाल न गले।

वैज्ञानिक रीतिसे घीकी जांच करनेके लिये घीका रसायन जानना बहुत आवश्यक है। साधारणतः निम्नलिखित रीतिसे भी यह जांचा जा सकता है। थोड़ा सा घी लेकर उबालो और जब यह खूब उबलने लगे तब थोड़ा सा ठंडा पानी उसमें डाल दो। अगर उस घीमें किसी तेलका मेल होगा तो उसकी तह अलग हो कर ऊपर जम जायगी। इस प्रकार इस अशुद्धिको दूर किया जा सकता है।

घीमें मक्खन (Fat) के अतिरिक्त जल, दही और नमकका भी अंश मौजूद रहता है। जितना ही अच्छा घी होगा उतना ही उपरोक्त तीनों पदार्थोंका अंश कम होगा। इन तीनों पदार्थोंका परिमाण एक विशेष नियमित मात्राके नियमित परिमाणके भीतर रहनेसे इनके मौजूद होने पर भी घी अशुद्ध नहीं कहा जा सकता। जल दही और नमकका अंश घीके हर नमूनेमें जुदी जुदी मात्रामें रहता है। जलका अंश रह जानेसे घी बहुत दिनों तक रखे रहने योग्य नहीं रहता। यदि घीको बहुत समय तक रखना हो तो यह परमावश्यक है कि जलके अंशको पूर्ण रूपसे हटा दिया जाय। जलकी उपस्थितिके कारण ही कुछ समय व्यतीत होने पर घीमें एक प्रकारकी गंध उत्पन्न होती है जिसे लोग पसन्द नहीं करते। दही और लवणके अंशकी कोई नियमित मात्रा नहीं किन्तु आधेसे ३ अंश प्रतिशत पाया जाता है। शुद्ध घी वानस्पतिक तेल और पार्शव चर्बियोंकी तरह वसाम्ल (Fatty acids) और ग्लीसिरिनका यौगिक है। इसके यथार्थ (Composition) संगठनका पूरा ज्ञान अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। घीके हर नमूनेमें इन अम्लोंका अंश विभिन्न रहनेसे, तथा जुदे जुदे अम्लोंकी मौजूदगीसे विभिन्नता होती है किन्तु साधारणतः कहा जा सकता है कि घीमें

नीचे लिखे वसाम्ल निम्नलिखित अंशोंमें मौजूद रहते हैं:—

| | |
|---|---|
| ओलिकाम्ल ... ... ... ... | ४०.४ फ़ी सैकड़ा |
| वसाम्ल ... ... ... ... | ४७.५ " " " |
| ब्यूटिरिकाम्ल ... ... ... | ३.५ " " " |
| केप्रोइकाम्ल ... ... ... | २.४ " " " |
| केप्रीलिकाम्ल ... ... ... | ०.८ " " " |

पहले दो अम्ल पानीमें नहीं घुलते और गरमीसे उड़ते भी नहीं हैं (अर्थात् बिना विश्लिष्ट हुये वाष्पके रूपमें परिवर्तित नहीं होते)। इनकी मात्रा ६० फ़ी सैकड़ा रहती है। शेष तीन अम्ल जलमें घुलनशील हैं और केप्रीलिकाम्लको छोड़ कर शेष दो साधारण तापक्रमपर भी उड़ जाते हैं। इन दोनों प्रकारके अम्लोंको कुछ गरम करनेसे ही बहुत आसानीसे अलग किया जा सकता है। घीको वैज्ञानिक रीतिसे जाँच करनेमें इन दोनों अम्लोंके साधारण तापक्रमपर भाप होकर उड़ जानेके गुणकी सहायता ली जाती है! ऊपर लिखे हुये अङ्कोंसे मालूम होगा कि घीमें प्रायः ५.६ फ़ी सैकड़ा अंश इस प्रकार भाप बन कर उड़ जानेवाले अम्लोंका पाया जाता है। दूसरे वानस्पतिक तेल और चर्बियोंमें यह उड़ जानेवाले अम्ल मौजूद नहीं हैं। अगर दो चारमें यह मौजूद भी हों तो उनमें इनका अंश बहुत थोड़ा है। घीके किसी नमूनेमें इन उड़ जाने वाले अम्लोंका अंश यदि एक नियमित मात्रासे—जैसे ५ फ़ी सैकड़ा—कम हो तो वह घी निखालिस और अन्य वस्तुओंसे मिश्रित समझा जायगा। घी के जाँच करनेकी यह विधि बहुत ही सन्तोषदायक है, किन्तु इसके प्रयोगके लिये समय कुछ अधिक लगता है और इस जाँचके लिये प्रयोगशाला और एक अनुभवी मनुष्यकी आवश्यकता पड़ती है। सर्व साधारणके लिये यह प्रयोग सहल नहीं है। सर्व साधारण तो कुछ थोड़े अनुभवसे ही केवल घीकी गंधसे अथवा जलनेपर घीसे उत्पन्न हुई गंधसे घीके शुद्ध अथवा अशुद्ध होनेका पता लगा लेते हैं।

पाश्चात्य देशोंमें प्राकृतिक घी पर्याप्त परिमाणमें नहीं मिलता। इसके अनेक कारण हैं। वहांके निवासी घी उत्पन्न करनेवाले अधिकांश पशुओंको ही भक्षण कर जाते हैं। जो पशु बच जाते हैं वे प्रायः दूध और मक्खनके लिये ही काफ़ी होते हैं। इससे वहां कृत्रिम घी तैयार करनेकी आवश्यकता पड़ी और आजकल वहां अनेक कारख़ाने ऐसे हैं जहां कृत्रिम घी तैयार होता है। यद्यपि इस देशमें कृत्रिम घीकी मांग नहीं है और न होनेकी सम्भावना ही है तो भी इस देशके लिये कृत्रिम घी तैयार करनेका प्रश्न आर्थिक दृष्टिसे बड़े महत्वका प्रश्न है। इसके तैयार करनेकी सामग्री यहां काफ़ी तादादमें पैदा होती है। पाश्चात्य देशोंके कई एक कारख़ाने यहां ही के कच्चे मालसे कृत्रिम घी तैयार करते हैं। बम्बईके प्रसिद्ध करोड़पती "ताता और उनके पुत्र" कोचीन (मन्द्राज प्रान्त) में कृत्रिम घी तैयार करनेका एक बहुत बड़ा कारख़ाना खोल रहे हैं जहांसे घी बन कर पाश्चात्य देशोंको भेजा जायगा।

कृत्रिम घीके तैयार करनेमें जो मुख्य वस्तुएं प्रयोगमें आती हैं वह इस प्रकार हैं:—गाय, बकरी और भेड़ोंकी चर्बी, और गरी, तिल, चीनी, बदाम या बिनौलेका तेल। कृत्रिम घी बनानेके हर एक कारख़ानेमें वहांकी स्थितिके अनुसार नई नई विधियां काममें लाई जाती हैं। किन्तु सभी विधियोंमें दो अवस्थाएं होती हैं। पहली अवस्थामें पार्थिव चर्बियोंसे शीघ्र पिघलनेवाले अंश निकाल दिये जाते हैं अथवा चर्बियोंके शीघ्र पिघलनेवाले अंश और तरल तेल (Oxidisation) धनदक्रिया से घी सदृश पदार्थोंमें परिवर्त्तित कर दिये जाते हैं। यह वह रासायनिक क्रिया है। जिससे अतृप्त ग्लीसीराइड—तरल ग्लीसीरिन और (Fattyacids) वसाम्लोंके यौगिक—उज्जनके द्वारा तृप्त ग्लीसीराइड—ठोस पदार्थ—में परिवर्त्तित हो जाते हैं। अतृप्त वस्तुएं साधारण अवस्थामें उज्जनको काफ़ी तादादमें ग्रहण नहीं करतीं। किसी अन्य

वस्तुके स्पर्श अथवा सम्पर्कसे यह क्रिया बहुत वेगसे होने लगती है। ऐसे "उत्तेजक" पदार्थोंका ठीक ज्ञान सर्वसाधारणको नहीं मिलता, क्योंकि कारखानेवाले इसे गुप्त रखते हैं और दूसरोंको बताना नहीं चाहते। किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि निकिल धातु किसी न किसी रूपमें इन सब कारखानोंमें व्यवहारकी जाती है। इस विधिमें उज्जनकी आवश्यकता पड़ती है जो आजकल वैद्युतिक-विश्लेषण द्वारा जलसे प्राप्त होता है। जब पार्शव चर्बियां इस कामके लिये प्रयोगमें लाई जाती हैं और इस उद्जनद क्रियाका आश्रय नहीं लिया जाता तब ताज़ा चर्बियोंको धोकर और छोटे टुकड़ोंमें काट कर, १२०° फ़ारनहैट तापक्रमपर पिघलाया जाता है। इस क्रिया से रेशे तो पेंदेमें बैठ जाते हैं और स्वच्छ चर्बी उंडेल कर निकाल ली जाती है। तब उसे ठंडा करके एक वस्त्रमें बांधकर ज़ोरसे दबाया जाता है जिससे प्रायः आधा शीघ्र पिघलनेवाला अंश अलग हो जाता है। जो अंश कपड़ेमें बच जाता है वह दूसरी अवस्थामें होनेवाली रासायनिक क्रियाओं-के लिये इकट्ठा कर लिया जाता है।

दूसरी अवस्थामें चर्बी अथवा गाढ़ा किए हुए तेलमें केवल दूध अथवा दूध और मक्खन दोनों डाल कर वह गंध और स्वाद पैदा किया जाता है जो प्राकृतिक घी में पाया जाता है। यह मिश्रण-विधि सरल नहीं है क्योंकि इसमें बड़े अनुभवकी आवश्यकता पड़ती है। प्राकृतिक घीकी गंध ब्यूटिरिन—ब्यूटिरिकाम्ल और ग्लीसीरिन यौगिकों—से उत्पन्न होती है। यह ब्यूटिरिन ब्यूटिरेस—butyrase—नामक एक (Ferment) किएवोत्पादक वस्तुसे उत्पन्न होती है। यह ब्यूटिरेस दूध मक्खन अथवा घीमें पाया जाता है। इस विधिका तात्पर्य यही है कि ब्यूटिरेस नियमित परिमाणमें गाढ़े तेलमें फैल कर ब्यूटिरिन बनावें और स्वाभाविक घीकी गंध उत्पन्न कर दें। कितने दिनों तक किस परिमाणमें, किस तापक्रमपर यह सब क्रियाएं हों, इसमें बड़े अनुभवकी ज़रूरत है और इसीमें इस कृत्रिम घी बनानेका गूढ़ रहस्य भरा हुआ है।

कभी कभी चर्बीको घीके सदृश बनानेके लिये दूधके सिवाय उसमें वानस्पतिक तेल गलाने-की भी आवश्यकता पड़ती है। जब ऐसी आवश्य-कता पड़ती है तब चर्बीको पिघला कर दूध और तेलके साथ मिला देते हैं। कहीं कहीं उसमें रङ्ग भी डालते हैं। यह ठंडे जलसे धोया जाता है और नमक मिलाकर मथा जाता है। देखनेमें यह बिलकुल घीके समान लगता है। पानी और दहीके अंश अवश्य ही इसमें बहुत कम रहते हैं। इसके नमूने एक दूसरेसे बहुत भिन्न नहीं होते। इनमें जो ग्लीसीराइड होते हैं उनका घनत्व प्राकृतिक घीके ग्लीसीराइडके घनत्वसे कम होता है और उनका कथनांक भी कुछ नीचा होता है किन्तु इन दोनों प्रकारके घीमें सबसे अधिक महत्वकी विभिन्नता भाप बन कर उड़ जानेवाले और घुलनशील वसाम्लोंके कृत्रिम घीमें न रहनेसे है। निम्नलिखित अङ्कोंसे यह स्पष्ट हो जायगा :—

| | प्राकृतिक घी | कृत्रिम घी |
|---|---|---|
| पामिटिन ... ... | ५० (पामिटिन व स्टीयरिन) | २२·३ |
| स्टीयरिन ... ... | | ४६·८ |
| आनलीन ... ... | ४२·२१ | ३०·४ |
| भाप बन कर उड़ जाने वाले अम्लोंके ग्लीसीराइड | ७·७९ | ०·४ |

यदि कृत्रिम घी शुद्ध रीतिसे बनाया जायगा तो तन्दुरुस्त आदमीके लिये यह हानिकारक नहीं है किन्तु स्वाभाविक घीका स्वाद इसमें नहीं होता और यह उतना शीघ्र पचता भी नहीं है। स्वाभाविक घीसे सस्ता बिकनेके कारण इसका प्रयोग दिन दिन बढ़ता जाता है और आशा है कि बढ़ता जायगा।

# गोरूरक्षा

[लेखक—श्री. ज्योतिस्वरूप गुप्त, बी. एस-सी. एल-एल. बी.]

ज्ञानमें तो केवल ज्ञान और तत्वकी पूजा और आराधना होती है, पर मैं भूले हुए पथिककी तरह इस विषयकी समालोचना आपकी पत्रिकामें नहीं करना चाहता। यह विषय ऐसा गंभीर और अपूर्व है कि चाहे किसी राहसे जाओ उसी स्थानपर पहुंचोगे और चाहे जिस कसौटीसे परखो गोरूरक्षाका कार्य उतना ही महत्वका मालूम होगा। हिन्दुओंके लिए तो यह धर्मकी बात है और मुसलमानोंके लिए आज-कल राजनीति तथा मनुष्योचित कर्तव्योंमेंसे है; परन्तु भारतीय जनताके लिए अहिंसा और दयाका विषय होते हुये भी यह बड़ा भारी आर्थिक प्रश्न है। पर वैज्ञानिक तो इन बातोंसे सन्तुष्ट न होगा और उसे तो अकाट्य प्रमाणों, वास्तविक घटनाओं तथा अंकों द्वारा ही यक़ीन दिलाना होगा कि यह गोरू मनुष्योंके उपकारके लिए हैं और अगर उनकी रक्षा न हुई तो भारतीय समाज शीघ्र ही विनाशाभिमुख हो जावेगी। भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहां ७२ प्रतिशत मनुष्योंका पालन कृषिसे होता है; पर बड़े खेदकी बात है कि गोरू बैल यहां बहुत ही कम हैं और अगर हैं भी तो बड़ी हीन दशा में हैं। अन्य देशोंसे अपना मुक़ाबला करनेपर हमें प्रतीत होगा कि हमारे ही देशमें आबादीके हिसाब से गोरुओंकी निष्पत्ति सबसे कम है। निम्न लिखित सारिणीसे यह भली भांति मालूम हो जायगा।—

| देशका नाम | गोरुओंकी संख्या | आबादी | १०० मनुष्यों पीछे गोरूकी संख्या |
|---|---|---|---|
| भारतवर्ष | १४, ५६, २२० | २४, ४२, ६७, ५४२ | ५६ |
| डेनमार्क | १८, ४०, ५०० | २५, ००, ००० | ७४ |
| संयुक्त राज्य अमेरिका | ७, २५, ३४, ००० | ६, २०, ००, ००० | ७६ |
| केनाडा | ५५, ७६, ५०० | ७२, ५०, ००० | ८० |
| केप कालोनी | १२, ७०, ००० | ११, ००, ००० | १२० |
| न्यूज़ीलेंड | १८, १६, ३०० | १२, ००, ००० | १५० |
| आस्ट्रेलिया | १, १६, ५६, ०२४ | ५५, ००, ००० | २५६ |
| आरजेन्टीन | २, ५८, ४४, ८०० | ८०, ००, ००० | ३२३ |
| उरुगुए | ६८, ३०, ००० | १४, ०० ००० | ५०० |

बैलोंकी कमीकी वजहसे खेती या काश्त करने योग्य ज़मीन अच्छी तरह नहीं जोती जाती है और उसका नतीजा यह होता है कि पैदावार बहुत कम होती है।

भारतवर्षमें खेती या काश्त करने योग्य ज़मीन लगभग २२ करोड़ ८० लाख एकड़ है और बैल (Plough cattle) प्रायः ४ करोड़ ६० लाख हैं। इनमें से अगर २५ प्रतिशत बोझा ढोनेवाले या बार बरदारीका काम करनेवाले हों और २५ प्रतिशत बुड्ढे, बीमार और कमज़ोर समझे जावें तो क़रीब २ करोड़ ४५ लाख बैल हल जोतनेके कामके लिए बचते हैं। इस हिसाबसे १ बैलोंकी जोड़ीको १८ एकड़ ज़मीन जोतनी पड़ती है। एक मज़बूत बैलोंकी जोड़ीसे ५ एकड़से ज़्यादा ज़मीन नहीं जुतवानी चाहिये। इसका नतीजा यह होता है कि यहां एक एकड़ ज़मीनमें और देशोंके मुक़ाबले में अनाज बहुत कम पैदा होता है। हमारे यहां एक एकड़ ज़मीनमें केवल ११.५ बुशल अनाज होता है पर

डेनमार्क देशमें ३३ बुशल होता है। न्यूज़ीलेण्डमें ३० बुशल, ग्रेट ब्रिटेनमें २६·८ बुशल, नारवेमें २३ बुशल, स्वीडिनमें २३ बुशल, स्विट्ज़रलैंडमें ३५·५ बुशल, जापानमें ३२ बुशल तथा मिश्रमें २६ बुशल।

भारतवर्षमें दूध देनेवाली गायें भी बहुत कम होती हैं और कुल आबादीके आठवें हिस्सेको भी पूरा दूध नहीं मिलता। अगर हर एक गाय-की साल भरमें ७ महीने तक एक सेर हर रोज़ दूध की औसत लगाई जावे तो ५ करोड़ गाय जो हिन्दुस्तानमें हैं प्रायः ७ लाख ५० हज़ार मन रोज़ की औसतसे दूध देवेंगी और अगर इसको कुल आबादी (यानी २५ करोड़ मनुष्यों) में बराबर बांट दिया जाय तो हर आदमी को सिर्फ़ २ छटांक दूध मिलेगा। बड़े लायक़ और फ़ायक़ डाक्टरोंका कहना है कि हर आदमीको कमसे कम १ सेर दूध (या उसका घी, मक्खन, दही आदि) की ज़रूरत है।

इन सब बातों पर भी तुर्रा यह है कि गाय बैलोंके लिए न तो खली भूसी और चारा मिलता है और न उनके लिए काफ़ी चरागाह हैं। हमारे नीति-शास्त्रमें लिखा हुआ है कि गांवों का दसवां हिस्सा चरागाहके लिए छोड़ देना चाहिये। बड़े खेदकी बात है कि हम और देशोंसे अपने देशका इस बातमें भी मुक़ाबला नहीं कर सकते क्योंकि हमारे देशमें भूमिके विस्तारकी निस्बत चरागाहोंका विस्तार सब देशोंसे कम है, जरमनी और जापानमें यह निष्पत्ति $\frac{1}{6}$ है, इंगलेण्ड और संयुक्त राज्यमें तथा न्यूज़ीलैंडमें तिहाई है और भारत वर्षमें $\frac{1}{27}$। अगर हम यह देखें कि हर गाय बैलको कितने एकड़ ज़मीन चरनेको मिलती है तो ज्ञात होता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका-में हर एक गायको १३ एकड़ चरागाह-की औसत पड़ती है और हमारे यहां बम्बईके सूबेमें एक गायको १·३ एकड़ मिलती है और बंगालमें सिर्फ़ ·१७ एकड़। यहांपर यह याद दिलादेना ज़रूरी मालूम होता है कि इससे दो बड़े नुक़सान होते हैं। एक तो चरागाहों की कमीसे गोरुओंका बड़ा नुक़सान होता है। इनकी शारीरिक वृद्धि बन्द हो जाती है। दूसरे यह कि (Intensive cultivation gives a greater field than extensive cultivation) परिमित भूमि पर सालमें कई बार काश्त करनेसे यह फ़ायदा तो अवश्य होता है कि पैदावार उस हालतकी बनिस्बत बढ़ जाती है जब कि भूमि-की बहुतायतसे थोड़ी ही फ़सलें फैल फूट कर उगती थीं। परन्तु देशकी आर्थिक अवस्था हीन होनेसे अच्छी तरह खाद न मिलनेके कारण पृथ्वी की उर्वरा-शक्ति दिन प्रति दिन घटती चली जा रही है। यही कारण है कि भारतमें हर वर्ष काश्त की जानेवाली भूमि का विस्तार बढ़ता जाता है परन्तु प्रति एकड़ पैदावार घटती जाती है।

नीचे दी हुई सारिणीसे विदित हो जायगा कि काश्त की जानेवाली भूमि का विस्तार हर साल बढ़ते जाने पर भी पैदावार प्रति एकड़ कम होती जा रही है।

| | बम्बई प्रान्त | | उत्तर-पश्चिमी-सीमा प्रान्त | |
|---|---|---|---|---|
| साल (ईसवी) | १९१०-११ | १९१३-१४ | १९०३-१९०४ | १९०७-८ |
| खेतीकी ज़मीन एकड़ोंमें | ३,०७,४२,००० | ३,०८,४५,००० | २४,६६,२२० | २६,५७,९०६ |
| १ एकड़में पैदावार (सेरोंमें) | २७० | २५०५ | ३२९ | २८३ |

अगर भूसेका हाल देखा जावे तो मालूम होगा कि यहां पर भी वही रोना है। भारतवर्षका विस्तार ६१ करोड़ ७० लाख एकड़ है। उसमेंसे अनाज २६ करोड़ १० लाख एकड़में बोया जाता है और ६४ लाख एकड़में चरी पैदा होती है। इसका मतलब यह होता है कि चरी सारे देशके विस्तारके $\frac{१}{१००}$ भागमें ही पैदा होती है। एक एकड़की पैदावारके भूसेसे २२ गाय बैलका पोषण होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका (United States of America) में देशके विस्तारके साढ़े तीन प्रतिशत भागमें भूसा पैदा होता है और १ गाय बैल १.१६ एकड़की पैदावारका भूसा खा सकता है।

एक और बड़ी मुश्किलकी बात है कि हमारे देशकी हाईकोर्टोंने ऐसी ऐसी नज़ीरें कर दी हैं कि जिनसे जो सांड़ गोरू-सन्तानोत्पत्ति (Breeding Purposes) के लिए शहरों और गांवोंमें छोड़ दिये जाते थे वह Res Nullis हो गये हैं याना वह किसीके नहीं रहे और हर आदमीको अख़्तयार रहता है कि वह उनसे जो चाहे सो काम ले।

इन सब बातोंका नतीजा यह हुआ कि हमारे गाय बैलोंकी हालत बहुत बुरी है। आईन ए-अकबरीमें लिखा हुआ है कि अकबरके राज्यमें गायें २० सेर दूध देती थीं और बैल घोड़ेसे भी तेज़ चल सकते थे। हमारे बड़े लोग हमें बतलाते हैं कि करीब २५ साल हुये, जब गायें साधारणतः ५ सेर दूध देती थीं। आजकल गोरुओंकी गणना सूचक रिपोर्टोंसे ही मालूम होता है कि गायें सिर्फ़ १ सेर दूध देती हैं। अगर हम और देशोंसे अपनेको मिलायें तो मालूम होता है कि हम ही सबसे नीचे हैं, क्योंकि इंगलैंड और डेनमार्कमें गायें १० सेर दूध रोज़ देती हैं और संयुक्त राज्य अमेरिकामें ५ सेरके करीब।

इस सब अधोगतिका नतीजा यह है कि गायोंका, दूधका, नाज और घी मक्खन वगैरा सब चीज़ोंका भाव खूब अँधा धुन्द बढ़ गया है और इसकी ही वजहसे देशमें अकाल रहता है और मनुष्य दुबले पतले रोगी होने लगे हैं। एक न एक बीमारी इस देशमें चली ही जाती है और सब लोग ख़ास कर स्त्रियां और बच्चे बहुत जल्दी और बहुत तादादमें मरे चले जाते हैं।

इधर तो आख़री ५०—६० सालोंमें अनाजकी क़ीमत तो कोई ५-७गूनी ही बढ़ी है पर दूधकी क़ीमत तो ४० गुनी हो गई है और गायोंकी भी ४-५ गुनी हो गई है। इंगलैंडमें अनाज तो हिन्दुस्तानके हिसाबसे दुगना और चौगना मंहगा तक बिकता है पर दूध यहांसे सस्ता ही मिलता है। अगर अपनी आपत्तियोंका ख़याल करें तो मालूम होता है कि यहां पर बच्चे तो अंधाधुन्ध मरते जाते हैं और अगर और देशोंको ही सभ्य (civilised) मान लें और उन्हींसे अपनी समता करें तो हम देखेंगे कि हमारे देशमें (United Kingdom) ब्रिटेन (Denmark) डेनमार्क और जापानसे दुगने बच्चे मरते हैं और नारवे और स्वीडिन (Norway & Sweden) से तीन गुने और (Holland and United States) हौलैंड तथा संयुक्त राज्य अमेरिकासे पांच गुने और न्यूज़ीलेन्डसे ६ गुने। हिन्दुस्तानमें एक वर्षके अंदर ही अंदर २६ प्रति सैकड़ा बच्चे मर जाते हैं और १ से ५ वर्षकी उमरवाले ६ प्रति शत से अधिक बच्चे मर जाते हैं। करनल मेक्रागार्ट जो (United) संयुक्त प्रान्तके Sanitary Engineer हैं और उन्हें इस लिये बहुत लायक़ समझना चाहिये, उनका भी कहना यह है कि दूध इतना सस्ता होना चाहिये कि ग़रीब अमीर सब ख़रीद सकें ताकि जो बच्चे दुर्भोज (malnutrition) से मरते हैं वह जिन्दा रहें। यह बात तो निर्विवाद है कि अगर अच्छा दूध खूब मिले तो ज़च्चा भी इतनी न मरें और बच्चे भी स्वस्थ रहें। अगर इस देशकी जच्चाओंका हाल देखा जाय तो मालूम होगा कि

दुर्भोज तथा भोजनकी कमीसे ही वह बहुत मरती हैं। यह तो रोज़ मर्राकी घर घरकी बात है कि जच्चा बहुत बीमार रहती हैं और अक्सर मर भी जाती हैं, पर अगर इस गणनाके लिए (Facts and figures) वास्तविक घटनाओं और अंकोंकी आवश्यकता हो तो यह समझ रखना चाहिये कि अक्सर औरतोंको १५ से ३० वर्ष तक बच्चे होते हैं और उस उमरमें औरतें मरदोंकी अपेक्षा बहुत अधिक मरती हैं। अगर कुल मनुष्य और औरतोंकी मृत्यु-गतिका औसत लगाया (Average Death-rate) जाय तो हिन्दुस्तानमें हज़ार आदमियोंमें ३१'८ मर जाते हैं। और देशोंमें इससे बहुत कम मरते हैं, पर जापानमें हज़ार आदमियोंमें २१'९ मरते हैं, कैनेडामें १४'६, (United kingdom) ब्रिटेनमें १४'६ और संयुक्त राज्य अमेरिका (United States of America) में और आसट्रेलियामें १०'५। हिन्दुस्तानियों की औसत उमर २३ सालके लगभग है और यूरोपके देशोंमें ४५-५५ सालकी औसत उमर होती है। इस देशके मनुष्यों में से अधिकांश बीमार ही रहते हैं और उनकी हड्डी ही हड्डी नज़र आती है। इन सब बीमारियोंमें से बहुत सी तो ऐसी हैं जो अच्छे खाने पीनेसे नहीं रहतीं। भारतमें तपेदिकके मरीज़ १९०२ में तो सिर्फ़ ३८, ४३५ थे और १९०९ में १, ००, १६२ हो गये।

इस लेखसे मेरा यह अभिप्राय कभी नहीं है कि विज्ञानके पाठकोंसे और उनकी मारफ़त जनता से यह प्रार्थना करूँ कि वह गायोंको न मारें और न यह मतलब है कि जो मान (Sanctity) और अधिकार (Authority) एक वैज्ञानिक पत्रिकाका जनतामें होता है उसके द्वारा सरकारसे कहूं कि वह अफग़ानिस्तान, बरौदा, जम्मू—कशमीर, गोंडल, बसानी, धरमपुर बनसड़ा, कूच बहार, धरमपुर, कैमबे, खिलचीपुर आदि राज्योंकी तरह गौ—हत्याको क़ानूनसे बंद करदें। मेरा अभिप्राय तो केवल वैज्ञानिकोंका ध्यान खोजके लिए (Fresh and most urgent venues of research) नये नये और परमावश्यक विषयोंकी ओर आकर्षित करनेका है, ताकि भारत और भारतीय इस अँधाधुन्धसे लोप न हो जायं। पर (Facts and figures) वास्तविक घटनाओं और अंकोंको पूर्ण करनेके लिए और इस प्रश्नकी परमावश्यकता दिखलाने के लिए यह लिखदेना अपना कर्तव्य समझता हूं कि इस देशमें कितनी गायोंकी किस लिए प्रति दिन हत्या की जाती है।

गाय बैल (१) खानेके लिए (२) बाहरीदेशों में भेजनेके लिए (३) और चमड़ेके व्यपारके लिए मारे जाते हैं। इन तीनों कार्योंमें हर साल वृद्धि ही मालूम होती है। गायोंके मारनेपर कसाई-घरोंसे जो चुँगी सरकार लेती है वह इन १० सालों में ७० प्रतिशत बढ़ गई और ५० साल के अन्दर ही २० गुनी अधिक खालें बाहर जाने लगी हैं। १९०२-३ में गायोंके मारने का कर ४,८५,२०२ रु० था और १९१३-१४ में ६,४४,७७६ रु० हो गया। १९०२-३ में चुँगी घरों से २८, १५, ८९४ रु० टेक्स लिया गया था और १९१३-१४ में ४५,३५,६२४ रु० हो गया। यह अन्दाज़ा किया जाता है कि खानेके ही लिए २० लाखसे लेकर ६० लाख तक गाय बैल मारे जाते हैं। फ़ौज के लिए ८५ कसाब-खाने स्थाई रूपसे हैं और २ लाख १५ हज़ार मन गायोंका मांस सालाना फ़ौजमें खर्च होता है। सुखाये हुये मांसके व्यापार के लिए कितनी गाय बैल मारी जाती हैं यह नहीं मालूम, पर लाला सुखबीरसिंह ने संयुक्त प्रदेशके बहुत से ज़िलोंसे निजी तौरपर पूंछ तांछ कराकर मालूम किया है कि इस कामके लिए १९१२-१३ में क़रीब १३ लाख गाय बैल मारे गए। ईस्ट इंडियन रेलवेके एजेन्टसे मालूम हुआ कि सिर्फ़ हाउड़ासे ही दो लाख टन सुखाया हुआ मांस बाहर भेजा गया। इससे यह अन्दाज़ा किया जाता है कि इस कामके ही लिए ५ लाख गोरुओंकी

हत्या अवश्य होती होगी। हम विज्ञानके पाठकोंके बड़े कृतज्ञ होंगे अगर वह यह बतला सकें कि एक मन सूखा व १ मन ताज़ा मांस व १ मन खालें कितने गोरुओंके शरीरसे मिल सकती हैं। अथवा एक साधारण गोरूसे कितना मांस तथा कितना चर्म मिलसकता है। इस हिसाबसे यह पता चल सकेगा कि इस व्यापारके लिए कितने गोरू हर साल काममें लाये जाते हैं।

गोरुओंकी दूर देशोंमें रफ़्तनीकी संख्यायें ठीक ठीक नहीं मिलती हैं; परन्तु सं० १९१८-१९ में ४४ हज़ार ४३८ अच्छीसे अच्छी नसलके गोरू खास बृटिश साम्राज्यमें ही भेजे गये। इंडियनह्यूमेनीटेरियन (Indiau Humanitarian) नामक पत्रमें लिखा है कि १९०१ में ३,२०,८३५ और १९१२ में ५,४४,५८८ गोरू भारत वर्षसे विदेशोंको भेजे गये। इसी प्रकार अक्टूबर सं० १९१९ से लेकर दिसंबर सं० १९२० तक १०,५२,०९५ मन कच्चा तथा ३,२३,२०७ मन कमाया हुआ बड़े जानवरों का चमड़ा तथा ६,६३,९६० मन कच्चा और १,१८,९१० मन कमाया हुआ अन्य जानवरोंका चमड़ा भारत वर्षसे विदेशमें भेजा गया। इन सब बातोंका नतीजा यह हुआ कि गाय बैल साल ब साल कम होते जाते हैं। बम्बई प्रान्तमें १८९१ में ८,३१,९०० गाय बैल थे और १९१० में सिर्फ़ ७५,३०,००; (United Provinces) संयुक्त प्रान्तमें १९०४ में तो ३,१३,५२,००० गया बैल थे और १९०९ में २,९३,६८,००० ही बचे। इनमेंसे भी जो बच गये वह बहुत कमज़ोर और घटिया नसल (Breed) के रह गये। हर साल ज़्यादा ही ज़्यादा गाय मरती जाती हैं जैसा कि निम्नलिखित टेबिलमें दिया हुआ है। कमजोरी तथा बीमारीके कारण भी हमारे देशमें हर वर्ष गोरुओं की मृत्यु-संख्या बढ़ती चली जारही है।

## गोरुओंकी मृत्यु गणना

| वर्ष | रिंडर-पेस्ट रोग से | अन्य रोगोंसे | मीज़ान |
|---|---|---|---|
| १९०४—५ | ९२, १२३ | १, १८, ९९६ | २, ११, ११९ |
| १९०९—१० | १, ५८, ४२५ | १, ४४, ३३३ | ३, ०२, ७५८ |
| १९१४—१५ | १, ११, ६२९ | १, २४, ७३१ | २, ३६, ३६० |

इस विषयमें मैं काफ़ी अंकों द्वारा वैज्ञानिकोंको परिणामोंपर विचार करनेकी सामग्री उपस्थित कर चुका हूं। अब यह उनका कर्तव्य है कि वह इस परमावश्यक प्रश्नके जुदे जुदे अंगोंपर विचार कर अपनी खोजों द्वारा देशके समीप नये नये विचार तथा उपयोगी साधन उपस्थित करें तथा राष्ट्रीय नेताओं, सामाजिक रिफ़ारमरों और अर्थ शास्त्रियोंके साथ इस देशकी उन्नति-प्राप्तिके मार्गमें योग दें। मेरे विचारमें तो निम्नलिखित बातें ज़रूरी हैं।

(१) चरागाहोंके लिए ज़मीन अधिक छोड़ी जानी चाहिये।

(२) भूसा और चारेकी उपजके लिये विशेष प्रबंध होना चाहिये। चारा ज़्यादा ज़मीनमें बोना चाहिये।

(३) जिन गायोंके बच्चा होने वाला हो उनके चरागाहोंमें चरनेका खास इन्तज़ाम रहना चाहिये।

(४) दूध सस्ता और ख़ालिस (Unadulterated) बेचे जानेका इन्तज़ाम होना चाहिये।

(५) गाय बैल विदेश नहीं भेजे जाने चाहिये और इन्तज़ाम इस तरहसे होना चाहिये कि कमसे कम १ सेर दूध फ़ी आदमी १ आने सेरके हिसाबसे मिल सके।

(६) खली वग़ैरा भी खूब इफ़रातसे और सस्ती बिकनी चाहिये और बाहर नहीं भेजनी चाहिये। प्रजा-वृद्धि ( Breeding Purposes ) के लिए तन्दुरुस्त और अच्छी नसलके साँड का इन्तज़ाम रहना चाहिये।

(७) गाय बैलोंका पुराने देशी इलाजका इन्तज़ाम होना चाहिये।

आशा है कि इस विषयमें भारत भूमिकेसपूत वैज्ञानिक राजनीतज्ञों, समाजसुधारकों तथा अर्थशास्त्रियों और निस्वार्थ सेवियोंसे किसी प्रकार पीछे न रहेंगे और गोरुओंके स्वास्थ्य और उनकी वृद्धि तथा उन्नतिके साथ साथ दूध तथा दूधसे प्राप्त अन्य पौष्टिक पदार्थोंके सस्ता करने और उनकी वृद्धि करनेमें इस देशकी जनताकी हीन दशा देखकर, उनके कृतज्ञता-भाजन बनेंगे।*

---

# शहरों और बस्तियों का उजाड़

( भविष्यकी काल्पनिक कथा )

[ लेखक—श्रीमनोरंजन दास ]

"मुकन्द! मुकन्द; प्रयोगशालामें फ़ौरन चले आओ"! "जल्दी आओ;" "ठहरनेका अवसर नहीं है।"

यह आवाज़ सुन कर प्रयोगशालाके बराबर ही आराम करनेके कमरेमें बैठे हुये प्रोफ़ेसर मुकन्द स्वरूप काशीवालने मेज़ परसे सुनहरी चश्मा उठाते हुये मुस्कराकर कहा, "क्कांग जी, थोड़ी देर ठहर न जाइये। मैं कल रात भर उस नये सूक्ष्मदर्शक यंत्रके बनानेमें लगा रहा। इस समय तबियत काम करनेसे उकता गई है, जी में आता है कि चुपचाप पड़ कर सो जाऊं।"

मुकन्द जी अपनी बात पूरी तरहसे ख़तम भी न कर पाये थे कि प्रोफ़ेसर कांग कमरेमें आ मौजूद हुये और उन्हें हाथ पकड़ कर ज़बरदस्ती प्रयोगशालामें घसीट ले गये। अन्दर जाकर आप बोले "मुकन्द सोनेकी जल्दी न करो। पहले मेरी बात सुन लो और शीघ्र काशी छोड़कर हिमालयमें मानसरोवरको चलदो।"

मुकन्दने—कहा सो क्यों? कुछ बतलाइये भी।

कांगचू जी ने कहा—"कारण सुनोगे! अच्छा लो सुनो! मेरी, तुम्हारी तथा समस्त भारतवासियोंकी मृत्यु निकट आ गई है। परन्तु अगर हम लोग मान सरोवर पहुंच कर एक सप्ताह भी जीवित रह सके तो सारे संसारको मौतके चुंगल से बचा सकेंगे।" मुकन्दने कहा, "क्या यह उसी कीटाणुके कारण होगा।" चीनी प्रोफ़ेसरने सिर हिलाते हुये कहा, "हां, उसी कीटाणुके कारण शीघ्र ही संसारमें प्रलय उपस्थित हुआ चाहती है। मैं भी कल तमाम रात तुम्हारे उस अणुवीक्षण यंत्र से प्रयोग करता रहा हूं। सवेरे चार बजे मेरे प्रयोग समाप्त हुये, तो मुझे मालूम हुआ कि अन्त आ पहुंचा! बस अब ठहरने या बात करनेका अवसर नहीं है। भागो! भागो! फ़ौरन मानसरोवर चलदो।"

इतना कह कांगचू और मुकन्द फ़ौरन लिफ्ट ( Lift* ) पर बैठ काशी विश्व-विद्यालयकी छत पर जा पहुंचे। यहां एक हवाईनाव रक्खी हुई थी। यह दोनों इसमें कूद कर जा बैठे। कांगने कहा, "जबतक हम लोग हवाई एक्सप्रेस गाड़ीका इन्तज़ार करेंगे उस समय तक तो यह नाव तुम्हें आधी दूरले पहुंचेगी।" परन्तु इस बातको सुनता कौन, मुकन्दतो सोया हुआ था। यह हालत देख

---

* इस लेखमें दिये हुये अङ्क सरकारी रिपोर्टों अथवा गौरक्षणी सभाके मिमोरियलसे संङ्कलित किये हैं।

* यह मशीन बिजलीसे काम करती है। इसके द्वारा ऊपरसे नीचे आने और नीचेसे ऊपर जानेमें बड़ा सुभीता होता है।

कांग नाव परसे उतर आया और ड्राईवरसे बोला, "ज़रा देर ठहरो! मैं इन्हें इंजेक्शन देलूं।"

यह कह कांग दौड़ कर लिफ़्टमें जा बैठा और थोड़ी ही देरमें एक सुई की भांति पतली पिचकारी लिये हुये ऊपर आगया। उसने इस पिचकारी द्वारा सोते हुये मुकन्दकी बांहमें एक दवा इंजेक्ट करदी और ड्राईवरसे कहा, "देखो विश्शू! मानसरोवर पहुंचने तक इनकी नींद खुल जायगी। अगर यह न जागें तो टेलीफ़ून द्वारा मुझे सूचित करना, मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा करना।" विश्शू बोला, 'महाराज कांग जी मुझे तो ऐसा मालूम होता है मानो बड़ी घोर निद्रा चढ़ी आ रही है। प्रायः १५ दिन हुये जबसे मैं दिन रात ऊंघा करता हूं। शहरमें सब लोगोंको यही शिकायत है। क्या आप न चलेंगे?"

'नहीं' कहते हुय प्रोफ़ेसर कांग लिफ़्टकी तरफ़ बढ़े और विश्शूने नावमें बैठे हुये पेच घुमाना शुरू किया। कुछ सैकेंडके भीतर ही यह विश्वविद्यालयकी हवाई नाव अकाशमें जा उत्तर पश्चिमकी तरफ़ निगाहसे गायब हो गई। यह नाव प्रोफ़ेसर मुकन्दने ही बनाई थी, हवाई नावोंमें यह सबसे अधिक शीघ्रगामी थी। परन्तु फिरभी काशी नगरसे निकल कर खुले मैदानोंमें पहुंचते इसे कई मिनट लग गये। इसका कारण यहथा कि संवत २०७८ में काशी महा विशाल नगरीहो गई थी। इस समयकी बड़ी नगरियोंमें इसका नंबर सबसे अव्वलथा। ४० वर्ष हुये जब इस नगरकी व्यवस्थापक सभाने रानीगंजकी कोयलेकी खानें ख़रीद कर वहीं बिजली तैयार करनी शुरू करदी। यह बिजली काशीमें पहुंचा दी गई। यह इतनी सस्ती थी कि जमशेदपुर के लोहेके कारखाने वाले टाटाके वंशज अपने कल कारखाने काशीमें ही ले आये और काशी तथा रानीगंज मिल कर एक विशाल बस्ती हो गई। कल कारखानों और उनमें काम करने वाले मजदूरोंके काशीमें ही आबाद हो जानेसे यह नगर इतना बड़ाहो गया कि १९ वीं शताब्दीके लोगोंको इसका अनुमान करना भी कठिन है। इस नगरीके पूर्व और दक्षिणकी ओर कल कारख़ाने और फ़ेक्ट्रियां थीं। इसमें पटना, गया आदि सब ज़िले घिर गये थे। उत्तरकी तरफ़ गोरखपुर, फ़ैज़ाबाद तक काशीका विस्तार था। हर सड़कके दोनों तरफ़ पैदल चलने वालोंके लिये चबूतरे बने हुये थे। यह बिजली द्वारा सदा हरकत करते रहते थे और लोगोंको शहरमें इधरसे उधर और उधरसे इधर लिये फिरते थे। पृथ्वीके नीचे सारे शहरमें सुरंगें बनी हुई थीं जिनमें होकर बिजलीकी रेलें १०० मील फ़ी घंटेकी रफ़्तारसे दौड़ती रहती थीं। पर तो भी काशीवासियोंको यही शिकायत थी कि रेलें बड़ी धीमी चलती हैं और सफ़र करनेमें बड़ा समय नष्ट होता है।

इस समय काशीमें प्रायः १० करोड़ निवासी रहते थे। अमेरिका और जर्मनीमें कोयलेकी खानें तो भारतवर्षसे बड़ी अवश्य थीं परन्तु न्यूयार्क और बरलिनमें केवल ८ करोड़की ही आबादी थी। इस समय लण्डन और पैरिस मामूली बस्तियां रह गई थीं, क्योंकि इनकी आबादी एक करोड़के अन्दर ही थी। हां, चीनकी राजधानी पीकिङ्ग काशी की टक्कर की थी, क्योंकि यहां भी ९ करोड़के लग भग बस्ती थी। प्रोफ़ेसर कांगचू पीकिंग विश्वविद्यालयके बड़े विख्यात डाक्टर थे। इन्होंने भारतवर्षमें काशी विश्वविद्यालयमें भी शिक्षा पाई थी। इनके गुरु थे संसारके परम विख्यात विज्ञानवेत्ता डाक्टर मदन मोहन कुशल। डाक्टर कुशल अपने शिष्योंके साथ वैज्ञानिक प्रयोगोंमें लगे हुये थे कि इन्हें अचानक रोगने आ दबाया और कुछ दिनोंमें ही इनकी मृत्यु हो गई। इस आकस्मिक घटनासे वैज्ञानिक संसारमें बड़ी खलबली मच गई; परन्तु डाक्टर साहबके अनुभवी और विद्वान शिष्योंने उनकी वैज्ञानिक खोजका काम जारी रखा और काशी विश्वविद्यालय संसारके परमोन्नत विद्यालयोंमें अब भी सर्वमान्य रहा। आजकल प्रोफ़ेसर

कांगचू और मुकन्द इसी विश्वविद्यालयमें अपने गुरूकी स्थापित कीर्त्तिको चिरस्थायी करनेके लिए अहर्निश उद्योग करते रहते हैं।

डाक्टर कांगचू इसी १५ तारीखको शेनसीसे एशियाई-शीघ्रगामी रेल द्वारा काशीमें आये हैं। इस रेलकी रफ्तार ३०० मील फी घंटा है। डाक्टर कांगके देशमें एक नये प्रकारकी बीमारी फैली हुई थी। इस बीमारीमें लोगोंको खूब नींद आती थी और दिन रात इन पर नींदका नशा चढ़ा रहता था। यह काशी विश्वविद्यालय की वैद्यक रसायनशालामें डाक्टर मुकन्दके साथ इस विषयकी खोज कर रहे थे कि काशीमें भी उसी बीमारीके लक्षण दिखाई देने लगे। हर मनुष्यको यह शिकायत थी कि उसका बदन भारी मालूम होता था और हर वक्त आंखोंमें नींदका नशा भरा हुआ था। डाक्टर कांगने मुकन्दके अणुवीक्षणयंत्र द्वारा यह देख लिया था कि एक अणुमात्र, परन्तु विषैले कीटाणुके कारण यह बीमारी फैलती जा रही है। इन्हें पता चला कि पहले पहल यह कीटाणु एक मरे हुये मनुष्यके मस्तिष्कमें मिला था। इस मनुष्यके यकायक मर जानेका कारण बहुत कुछ पूंछ तांछ करने पर भी उन्हें मालूम न हो सका। इस कीटाणुको देख कर दोनों मित्रोंको विश्वास हो गया कि इस बीमारीका आदिकारण यही कीटाणु है। अस्तु मुकन्दके कहने पर डाक्टर कांगने इनजेक्शन की सहायतासे इस कीटाणुका सीरम उनके रक्त द्वारा शरीरमें पहुंचा दिया। इस इन्जेक्शन देनेके साथ ही उन्हें स्वयम् यह बीमारी हो गई; परन्तु देहातमें चले जानेके कारण उन पर इसका विशेष असर न पड़ा। जब एक सप्ताहके बाद वह लौट कर आये तो उन्होंने मुकन्दको फिर भी ऊंघते पाया। इसी लिए उन्होंने डाक्टर मुकन्दको हिमालयमें मानसरोवरके तट पर भेज दिया था, जिससे पवित्र जल वायु सेवन करनेके कारण उन परसे रोगका असर जाता रहे।

उसी दिन तीसरे पहरको डाक्टर कांगने काशी विद्यापीठमें इस रोग की उत्पत्ति और उससे बचनेके उपायोंपर बड़ा सारगर्भित व्याख्यान दिया। एक घंटेके अंदर ही यह व्याख्यान बेतारके टैलीफ़ोन द्वारा सारे संसारके हर बड़े विद्यालयके छात्रों और अध्यापकोंके कानों तक पहुंच गया। और उसी दिन सारे संसारके समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हो जानेके कारण प्रायः सभी देश देशान्तरोंकी जनताको विदित हो गया। दूसरे ही दिन इसका प्रभाव देखने को मिल गया। नगरनिवासी नगरोंको छोड़ देहातोंकी शरण लेने भागे। पहले तो कुछ धनी लोग ही इस प्रकार भाग खड़े हुये परन्तु दो ही एक दिनमें सारे शहरके शहर ख़ाली होने लगे। भीड़ अधिक होजाने और दंगा फ़िसादके डरसे गवर्नमेंटने तुरन्त यह प्रबंध कर दिया कि हवाई नावें और जहाज़ तो लोगोंको ले जानेमें काम आवें और रेलों द्वारा खाना और दवाई पहुंचानेका बन्दोबस्त किया जाय। कुछ दिनोंमें लोगोंकी परेशानी कम हो गई क्योंकि डाक्टर मुकन्दने स्वस्थ होते ही गवर्नमेंट द्वारा यह प्रबंध करा दिया कि भारतवर्षके हर सूबेके लोग जुदे जुदे पहाड़ी स्थानोंपर जा कर स्वास्थ्य लाभ कर सकें।

गवर्नमेंट की यह विज्ञप्ति प्रकाशित होते ही काशीमें साधारण प्रजा की रुख़सती शुरू हो गई। हर मनुष्यने पहले (Antiseptic) कृमिनाशक पानीसे स्नान किया, इसके बाद स्वास्थ्य-रक्षा सभा की तरफ़से मिले हुये बादामी रंगके कपड़े पहने और घरसे बाहर निकल खड़े हुये। गलियों और सड़कों पर जिधर देखिये यही बादामी कपड़े वाले नज़र आते थे। सड़कोंपर मोटर गाड़ियां मौजूद थीं। स्वयंसेवक जिस मनुष्यको ऊंघते देखते उसे तुरन्त मोटरपर चढ़ा कर अस्पताल पहुंचा देते थे। डाक्टर और पुलिस विमानोंपर चढ़े सारे नगरका चक्कर लगा रहे थे और बेतारके टेलीफ़ोन द्वारा लोगोंको उपदेश करते जाते थे। इतनी भीड़ होने-

पर भी कहीं गड़बड़ या दंगेका नाम न था। लोगों-ने बड़ी सावधानीसे इस महाविपत्तिका सामना किया। राज्यका प्रबंध भी सराहनीय था। १० बजे रातको लोगोंको आराम करनेकी आज्ञा मिली। इस बीमारीसे बचनेके लिये टहलना भी परमाव-श्यक था, इसीलिए सब नगर निवासियोंको इस भांति दिन भर टहलाया गया। इस समय लोग इतने थके हुये थे कि उन्हें लौट कर घर जाना कठिन था। अस्तु गवर्नमेन्टने पार्कों और मैदानों-में जहां इन लोगोंके सोनेका सुभीता कर दिया था सबने वहीं खुली हवामें रात बिताई। टहलनेसे लोगोंके मस्तिष्कसे इस कीटाणुके विषका बहुत कुछ असर जाता रहा था, और सुबह जागनेपर बहुत लोगोंको नींद-की शिकायत की कमी हो गई।

रोगी और निर्बलोंके लिए विशेष ट्रेनोंका प्रबंध किया गया था। इनकी संख्या इतनी अधिक थी कि दिन रात बड़ी फुर्तीसे काम करने-पर एक सप्ताहमें इन लोगोंका पहाड़ोंपर भेजा जा सका। इस समय काशी जैसी विशाल और भव्य नगरी सूनी पड़ी थी। परन्तु इस पर भी कोई चोरी या डाकेकी वारदात नहीं हुई। इसका कारण यह था कि लोग शहरमें जाकर धनके लालचमें अपने प्राण गंवाना नहीं चाहते थे। दूसरे नगरकी व्यवस्थापिका सभाकी तरफ़से चौकी पहरेका बड़ा उत्तम प्रबंध था। व्योमयानोंपर बैठे हुये वालंटियर नगर की चौकीदारी किया करते थे।

इस महामरीसे पूर्ण आरोग्य प्राप्त करनेके लिए स्वच्छ हवाके साथ ठंडककी भी बड़ी आव-श्यकता थी। अस्तु डाकृर कांग और मुकन्दके आदेशानुसार लोग ध्रुव लोकोंमें जाकर बसने लगे। राज्यकी तरफ़से ऐसे लोगोंके सुभीते और आरामके लिए पूरा पूरा प्रबंध कर दिया गया था। थोड़े ही दिनोंमें ध्रुव लोकोंमें भी मनुष्योंका वास हो गया। जिन राज्योंके पास इन लोकोंमें जगह नहीं थी उनकी प्रजाके लिये भारत वर्ष और चीन ने विशेष प्रबंध कर दिया। इस प्रकार सारी पृथ्वी की जनता को इस महाभयानक कीटाणुके आक्रमणसे बचाया गया। डाकृर मुकन्द और कांगका नाम सारी पृथ्वी की जनतामें फैल गया। सब देशों की गवर्नमेन्टों ने इनकी सलाहसे काम लिया। दुनियाके सारे वैज्ञानिक और डाकृर इनके कथनानुसार काम करने लगे और हर देश की जनता इन दोनों मनुष्य जातिके रक्षकोंकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगी।

इस महामरीके फैलनेसे शहरोंके निवासियों की तो अवश्य दुर्गति हुई परन्तु गांवोंमें रहने वाले किसान तथा अन्य मज़दूर पेशा लोग इसके महाकोपसे साफ़ बच गये। इसका कारण था खुली हवामें रहना और खूब शारीरिक परिश्रम करना। अस्तु इन लोगोंके स्वस्थ रहनेसे गवर्न-मेन्टको भोजन आदिक सामग्री इकट्ठी करने तथा उसे ज़रूरत वालों तक पहुंचानेमें विशेष कष्ट नहीं करना पड़ा। इसी लिये ध्रुव लोकोंमें भी बस्तियां बसानेमें अधिक कष्ट नहीं हुआ।

दो महीने बाद एक दिन डाकृर कांग ने मुकन्दसे कहा "लो भाई, आज उस महा-प्रलयकारी कीटाणुपर विजय प्राप्त हो गई, क्योंकि अब संसार में कहीं भी मरीज़ोंका पता बाकी नहीं रहा है।"

मुकन्द ने कहा "परन्तु इस महामरीके बाद अभी तो सभ्यता पुनः स्थापित करनी है। इनके लिये भी तो तुम ने अवश्य कोई प्रोग्राम गढ़ लिया होगा। मेरे विचारमें तो नगरोंका निवास ही छोड़ देना चाहिये।

डाकृर कांग ने उत्तर दिया "अवश्य, कृपा कर एक विज्ञप्ति द्वारा लोगों को सूचित कीजिये कि शीघ्र ही सहयोग सिद्धान्तके अनुसार सारे समाज का पुनः संगठन किया जायगा, जिसमें नगर निवासियोंको फ़सल काटनेमें किसान भाइयों की सहायता करनी होगी; परन्तु इसके पूर्व ध्रुव

लोकोंसे लौटने वाले लोगोंको एक बार फिर टीका लगवा लेना चाहिये।

डाकृर मुकुन्द ने शीघ्र ही इस विषय की एक विज्ञप्ति निकाल दी। कार्तिक संवत २०८१ के पहले दिन संसार की सारी जातियों की एक बृहद् सभा की बैठक हुई।

इस महासभाके सामने मुख्य प्रश्न यह उपस्थित था कि मनुष्य जाति की भोजन सामग्री में कमी न होने हुये भी किस प्रकार नगर-निवासियोंके देहातमें रहनेका सुभीता किया जा सकता है। बहुत वाद विवादके बाद परिणाम यह हुआ कि हर जाति ने अपने आधीन सारी पृथ्वी जातीय धनसे खरीद कर उसपर जातीय अधिकार प्राप्त कर लिया। इसके बाद उस जातिके प्रत्येक कुटुंब की आवश्यकताके अनुसार उन्हें खेती बारीके लिये भूमि बांट दी गई। जहां कहीं भी बिजली की शक्ति के उत्पादनके लिये नैसर्गिक साधन मौजूद थे उन्हें प्रयोगमें लाकर सारे संसारमें बिजली बांट दी गई। बड़े बड़े शहर तोड़ दिये गये। इन की जगह देहातमें दूर दूरपर बस्तियां और फैक्ट्रियां बनाई गईं। काशी नगरमें थोड़ी थोड़ी दूरपर बग़ीचे और पार्क बन गये। शहरमें चारों तरफ़ बग़ीचे ही बग़ीचे नज़र आने लगे और सारी काशी उद्यानपुरी बन गई।

---

## पानीका रंग कैसा है ?

नदियोंका रङ्ग और ब्लूलेक इंककी नदी

अनन्त आकाश की निर्मल नीलमा-युक्त आभा नित्य भक्त जनोंको अपने प्यारे भगवानकी छविकी सुधि दिला आनन्दित किया करती है। यदि क्षीरसागर-शायी भगवान नीलाम्बुजश्यामल-कोमलाङ्ग हैं, तो रत्नाकरका रंग नीला किस कारण है। क्या समुद्र देव भी अपने इष्ट देवके रंगमें शराबोर हो गये हैं? अथवा ऊपर जो नीलगूं शामियाना तना हुआ है, उसका प्रतिबिम्ब पड़नेसे ही यह नीलिमामय हो गये हैं ? या रत्नों की नीली ज्योति निकलकर रत्नाकरका नाम सार्थक बना रही है ?

आइये, देखें वर्तमान विज्ञान इस ग्रन्थिको कैसे सुलझाता है। समुद्र क्यों नीला है, आकाश क्यों नील वर्ण है, यह प्रश्न तो विचारणीय हैं ही, परन्तु यह विचार भी उपस्थित होता है कि कोई भी चीज़ क्यों नीले रंग की होती है ? इन प्रश्नों पर विचार करनेसे पहले यह समझ लेना चाहिये कि रंग होता क्या है ?

सूर्यका सफ़ेद प्रकाश वास्तवमें सफ़ेद नहीं है। सफ़ेदी की पाकीज़गी सायंसने किर किरी करदी है। उसने बतला दिया है कि सफ़ेद रंग वास्तवमें पचमेल ( कि सतमेल ) खिचड़ी है, जिसमें बहुतसे रंग मिले हुए हैं। यदि सफ़ेद रोशनी कांचकी फली रूपी पुलिसके हवाले करदी ( उसमें होकर निकाली ) जाय तो उसके सब अवयव अलग अलग हो जाते हैं। साधारणतः देखनेवालोंको पांच रंग नज़र आते हैं, पर वास्तवमें हैं सात रंग—बैंजनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंजी और लाल। सूर्यका सफ़ेद प्रकाश अर्थात् उपरोक्त सातों रंग प्रत्येक वस्तु-पर पड़ते हैं। प्रत्येक वस्तु इनमेंसे कुछ रंगोंको सोख लेती है और कुछको लौटा देती है। यही लौटा हुआ अथवा लौटे हुए रंग देखनेवालेकी आंखपर पड़ता है तब वस्तु उसी रंग की दिखाई देती है। जैसे गुलाबका फूल गुलाबी इस लिए दिखाई देता है कि उसपरसे केवल गुलाबी प्रकाश उचट कर हमारी आंखों तक पहुंच पाता है। यदि गुलाबपर सफ़ेद रोशनी न डालकर हरी रोशनी डालें तो वह उसको पूर्णतया सोख लेगा यानी काला दिखलाई देगा। [ काला रंग तब दिखाई देता है जब सब प्रकाश लुप्त हो जाता है, सफ़ेद तब दीख पड़ता है जब सब प्रकाश प्रतिफलित हो जाता है। ] इस प्रकार यदि गुलाब

के पुष्पको हरे शीशेमेंसे (जो केवल हरे रंगको निकलने देता है) देखें तो वह काला नज़र पड़ेगा। इसी प्रकार अन्य वस्तुओंके रंगका कारण समझिये। यदि वस्तुओंपर पड़नेवाला प्रकाश ही बदल जाय तो उनका रंग बदला हुआ प्रतीत होगा, जैसा रातको होता मालूम है। इसी लिये रातको रंगका काम (चित्रकारी, रंगाई आदि) करना बड़ा मुश्किल ही नहीं, ना मुमकिन है।

यदि उपरोक्त नियम् ठीक है तो समुद्र की नीली आभाका कारण, जलका नीला होना, होना चाहिये। पर क्या वास्तव में जल नीलवर्ण है? प्रत्येक मनुष्य अपने साधारण अनुभव से कह सकता है कि पानी वर्णहीन है। इसी लिये कुछ दिन हुए कि लोगों को समुद्र के नीले रंग की व्याख्या करने का और कोई ढंग ढूंढ़ निकालने की चिन्ता हुई।

समुद्र में अनगिनत रेतके कण तैरते फिरते हैं। कहा यह गया कि यह कण प्रायः इतने सूक्ष्म होते हैं कि वह छोटे तरंगान्तरवाले नीले प्रकाशको ही प्रतिफलित कर सकते हैं। बड़े तरंगान्तरवाली, लाल, पीले आदि रंग की प्रकाश लहरियां वहीं लय हो जाती हैं। अतएव समुद्रका रंग भी नीला दिखाई देता है।

बहुत कुछ वाद विवाद हो चुकने पर बड़ी सावधानीसे प्रयोग किये गये। भिन्न भिन्न वस्तुएं भिन्न भिन्न नीचाई तक समुद्रमें उतारी गईं, और उनके रंगमें जो परिवर्तन दिखाई पड़ा बड़ी सावधानी से देखा गया, तो पता चला कि पहले का विश्वास मिथ्या है अर्थात् वस्तुतः जलका वर्ण नीला है।

शायद इस बातको सुनकर आप भी चौंकें। हमारे एक मित्र कह रहे हैं, "खुदाके लिए किसी औरको बहकाइये। पानी और नीला? यह बिल्कुल ग़लत है। मेरे ईश्वरकी दी हुई दो आंखें हैं। मुझे निश्चय है कि रङ्ग पानीको छूकर भी नहीं निकला। समुद्रका जल, अथवा जमना जल पाईपमेंसे, बालटीमें भर लो, देखो रंगका नाम निशान नहीं।"

पाठको, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आप मलमलका थान हलका काफूरी रंगवाइये। उसमेंसे एक हाथ भरका टुकड़ा किसीको दीजिये। वह कह उठेगा कि रंग सफ़ेद है। पर थान दिखलाइये या खोल कर ढेर लगा दीजिये, रंग साफ़ दिखलाई देगा।

यही पानीका हाल है। जमना जल लोटेमें सफ़ेद मालूम होगा। किनारे पर जहां आप दो तीन हाथ गहरे पानीमें नहाते होंगे सफ़ेद मालूम होता होगा, परन्तु गहरेमें पानी निर्मल नीला होगा।

यदि यह कथन मान भी लिया जाय तो भी बहुत सी बातें रह जाती हैं जिनकी व्याख्या करना परमावश्यक है। समुद्रको ही लीजिये। कहींपर तो समुद्र जल गहरे नीले रंगका है, कहीं हलका पीलापन लिये हुए नीले रंगका है। कभी फीका दिखाई देता है, तो कभी चमकदार। कभी हरा दिखाई देता है तो कभी काला। इन सब रंगों की विभिन्नताओंके लिए फिर भी हमें उसी पुराने सिद्धान्तका सहारा ढूंढ़ना पड़ता है अर्थात् रंगोंका कारण रेतके कणोंको ही मानना पड़ता है। (Mediteranean Sea) भूमध्य सागर की जांच ख़ास तौरपर की गई है, क्योंकि उसका रंग बहुत गहरा और चमकदार है। परिणाम यह निकला है कि उसमें बहुत अधिक रेतके कण मौजूद हैं। इन कणोंपर जो प्रकाश पड़ता है वह ज्योंकात्यों प्रतिफलित हो जाता है। परन्तु समुद्रका जल इस प्रतिफलित हुए प्रकाशमेंसे केवल नीले प्रकाशको वायुमण्डल तक पहुंचने देता है, शेष सब रंगोंको सोख लेता है। अतएव भूमध्य सागरके जल की चमक का कारण रेतके कण हैं, परन्तु उसका नीला रंग स्वभावज है।

ब्रिटिश टापुओंके पास पीले रेत कण समुद्र में तैरते रहते हैं। उनका पीला रंग, समुद्रके असली नीले रंगसे मिलकर हरा रंग पैदा कर देता है। अतएव समुद्रका रंग वहांपर हरा दिखलाई देता है। कहीं कहीं समुद्रमें उगनेवाली हरी वनस्पति भी उसका रंग बदल कर हरा कर देती है।

आकाशके नीले रंगका प्रभाव भी समुद्रके रंग-पर अवश्य पड़ता है। संध्या समय समुद्र तटपर खड़े होकर उसके रंगमें जो अद्भुत परिवर्तन दिखाई देते हैं, उन्हें देख कर ही इस प्रभावका कुछ अनुभव हो सकता है।

आकाशके नीले रंगके कारण भी कुछ दिन पहले धूलकण ही समझे जाते थे, परन्तु अब यह विश्वास हो चला है कि वायुमण्डल की ओषजनका रंग नीला है। इसीसे आकाश नीला दिखाई देता है। कदाचित् ओषजन वायुमण्डलमें-से निकाल दी जाय तो आकाश एक अंधकारमय अनन्त गुफा सी दिखाई देने लगे।

नदियोंके भी भिन्न भिन्न रंग होते हैं। गंगा का सित और जमनाका असित रंग वैदिक काल से अबतक मशहूर चला आया है। बहुत नदियोंके नाम भी उनके रंगके सूचक हैं जैसे कृष्णा, काले रंग की; एसप्रोपोटेमो नदी (River Aspropotamo Greece) सफ़ेद रंगकी; रायोकोलोरेडो (Rio Colorado, America) लाल रंगकी, होंगहो (Hoang-Ho, China) पीले रंगकी; ब्लेकरिवर इत्यादि। पर स्मरण रहे कि सदैव नदीका नाम उसके रंग काही बोधक नहीं होता जैसे गंगाका नाम उसके वेगके कारण पड़ा है, (Orange River) औरेंज रिवरका औरेंज वंशके कारण।

नदियोंके भिन्न भिन्न रंग होने के कई कारण होते हैं। कभी कभी तो जिस भूमिमेंसे नदी बहती है उसके रंगके अथवा किनारे के प्रतिबिम्ब-के कारण नदीमें रंग दीखने लगता है। मसेलेण्ड (Masaland) के ब्लेक रिवरके काले वर्णका कारण वह लावायुक्त काली भूमि है जिस पर वह बहता है। कभी कभी बहती हुई नदी भी रंग बदल देती है, जैसे ब्लेकैडर (Blackadder) में पीट का अंश बहुत रहनेके कारण उसका रंग काला है। उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त कभी कभी रासायनिक कारण भी उपस्थित होते हैं। जैसे अल्जीरिया में एक नदी है, जिसका पानी ब्लुब्लेक स्याही के समान काला है। इस की एक शाखा तो ऐसी जमीन में होकर आती है कि बहुत कुछ लोहेका अंश घुला लाती है; दूसरी शाखा में गेलिक एसिड घुली हुई आती है। इन दोनों के मिलने पर खासा स्याही तय्यार हो जाती है। पाठको, इस समय जी चाहता है कि उसी नदी के किनारे चल कर बैठें और लिखें, जिसमें स्याहीकी तो बचत हो जाय।

—घनश्याम

---

# शालग्रामकी बटिया

[ लेखक—श्री० शालिग्राम वर्मा, बी. एस-सी. ]

I chatter over stony ways,
In little sharps and trebles,
I bubble into eddying bays
I babble on the pebbles.

—Tennyson

इस गिरे हुये ज़मानेमें भी भारतवर्ष में ऐसे बहुत कम हिन्दू मिलेंगे, जिन्हों ने शालग्राम-की मूर्त्तिपूजा न की हो अथवा इनका चर्णामृत न लिया हो। अस्तु हमारे लिये केवल यह जानलेना काफ़ी नहीं है कि शालग्रामकी मूर्त्ति गंडकी नदी में मिलती है वरन् हमें यह भी जानना चाहिये कि यह बटिया वहां ही क्यों अधिक मिलती हैं? परन्तु इस प्रश्न

का उत्तर देनेके पूर्व ही हम अपने पाठकोंको यह बतला देना चाहते हैं कि यह बटिया क्या चीज़ है। यह कहना बहुत सरल है कि प्रत्येक बटिया पत्थरकी बनी होती है या पत्थर है; परन्तु हम यह कदापि नहीं कह सकते कि हर पत्थर भी बटिया है। अस्तु बटिया से हमारा मतलब उस छोटे गोलाकार, चिकने, पौलिशदार पत्थर से है जो कम से कम अंगूरके दानेके बराबर हो अथवा ज़्यादा से ज़्यादा बेर या छोटे नीबू के आकारका हो। इस आकार से अगर कोई टुकड़ा बड़ा हो तो वह मूर्त्ति बनाने के योग्य नहीं है। एक बात और भी है, यह बटियां जहां तक मिल सके गोल ही होनी चाहिये तथा इनका रंग भी काला श्याम वर्ण होना चाहिये। अब हमें केवल यही मालूम करना है कि यह बटिया कहां से आती हैं और किस प्रकार बनती हैं? इनका उत्तर भी कवि टेनीसन ने ऊपर लिखी हुई चार पंक्तियों में बड़ी चतुराई से नदी के मुख से कहलवा दिया है पर हम ज़रा विस्तार के साथ पाठकोंको इनके बननेका इतिहास बतलाना चाहते हैं।

अगर आप कभी समुद्रके किनारे गये हैं तो आपने समुद्रतट (Beach) पर इस तरह की छोटी बड़ी हज़ारों बटियोंका ढेर देखा होगा। क्या आप समझते हैं कि यह बटिया समुद्र में होती हैं और समुद्र में ही बनती हैं? इस प्रश्नका उत्तर पाने के लिये कुछ अधिक विचार करनेकी आवश्यकता है।

विज्ञानके पाठक जानते हैं कि किसी समय हमारी यह शस्य श्यामला वसुंधरा एक तप्त पिंड थी। जैसे जैसे समय गुज़रता गया यह ठंडी होकर ठोस होती गई। बड़े बड़े पथरीले चट्टानों और पहाड़ोंको देखकर हम अनुमानसे कह सकते हैं कि पृथ्वी जब ठंडी होने लगी थी तो उसका ऊपरी छिल्पड़ ऐसाही रहा होगा। उस समय न तो गोल पत्थर थे, न पत्थर की शिलायें थीं, न बटिया थीं और न रेत कण। उस समय
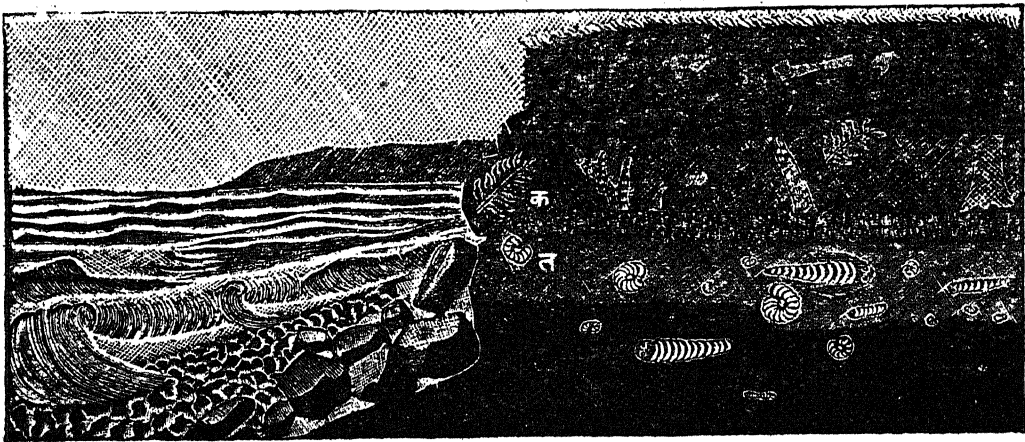
चित्र ११

इस चित्रमें समुद्रकी तरङ्गोंके टकरानेसे किनारे पर चट्टानें किस तरह टूट जाती हैं, भली भांति दिखलाया गया है। समुद्रके किनारे की चट्टानके अन्दर हज़ारों वर्ष पहलेके दबे हुये जीव जन्तुओंके अस्थि-पिंजर तथा वनस्पतियोंके पत्ते आदि भी दिखलाई पड़ रहे हैं। अगर इस चित्रमें दी हुई पहाड़ीकी सबसे ऊपरवाली रोड़ोंकी तह एक लाख वर्षमें बनी है, ऐसा अनुमान किया जावे तो, इसकी सबसे नीची तह हमें करोड़ों वर्ष पुरानी माननी पड़ेगी।

तो जिधर देखिये उधर बड़ी बड़ी डरावनी चट्टानें और भूधराकार शिलाखंड नज़र आते थे। तब फिर यह छोटी छोटी बटिया किस प्रकार बनीं ?

इनके बनने में बहुत समय लगा। जैसे जैसे पृथ्वी तल की चट्टानें ठंडी पड़ती गईं, दरारें पड़कर इनका टूटना प्रारंभ हुआ। इसके बाद जल और वायुके पराक्रम से इनका टूटना फूटना और भी बढ़ने लगा और कुछ समयके बाद बड़े बड़े पत्थर और शिलायें जहां तहां मिलने लग गयीं। इस प्रकार सहस्रों बरस गुज़रने पर यह पत्थर टूट टूट कर और भी छोटे हो गये। परन्तु अब भी बटिया नहीं बनी, क्योंकि जैसा हम अभी लिख चुके हैं बटियाका आकार बहुत छोटा होना चाहिये और वह बहुत चिकनी होनी चाहिये। अगर यह पत्थरके रोड़े टूट फूट कर घिस घिसा कर सुडौल और चिकने हो जाय तो इन्हें बटिया कहा जा सकता है। यह क्रिया तीन प्रकार से होनी संभव हैः—हिमनदियों द्वारा, बाढ़ और लहरों द्वारा तथा नदियों द्वारा। परन्तु संसार में जितनी बटिया मिलती हैं वह सब बाढ़ और लहरों द्वारा ही बनी हैं, हिम नदियों और नदियों द्वारा तो बहुत ही कम बटिया बनी हैं !

चित्र १२

इस चित्रमें ज्वार भाटा-आनेके समय बड़ी प्रबल तरंगोंके टकरानेसे पत्थरकी शिलायें क, ग, त, टूट कर बही जारही हैं और इनके कोने रगड़ से घिस कर टूट रहे हैं।

नदी किनारे सैर करने जानेपर भी हमें कुछ बटियां मिलती हैं, यह इस नदीके बहावसे ही बनी हैं। पाठकोंको यह बात भली भांति मालूम है कि प्रायः सभी नदियोंका स्रोत पहाड़ोंमें होता है। जिस समय यह नदियां ऊंची ऊंची पहाड़ियोंसे टकराकर बहती हुई मैदानमें आ निकलती हैं, इनके बहाव की तरंगसे अनेक शिलायें टूट फूट कर बही चली आती हैं और जब यह मैदानमें बहती हैं तो करारे काट काट कर अपना रास्ता बना लेती हैं। इस प्रकार पहाड़ी चट्टानें टूट फूट कर नदियों के रेलेमें एक दूसरेसे टकराती टकराती घिस घिस कर चिकनी और छोटी होती जाती हैं। अगर हम एक पत्थरका रोड़ा किसी ऐसी नदीमें डालदें जिसकी तह में मिट्टी मौजूद है तो कुछ दिनों बाद हमें वह रोड़ा क़रीब क़रीब ज्योंका त्यों मिलेगा, या उसमें बहुत परिवर्तन न पाया जा सकेगा। परन्तु अगर वही पत्थर किसी द्रुतगामी नदीमें छोड़ दिया जाय, जिसकी तह पथरीली हो, तो थोड़े ही दिनोंमें दूसरे पत्थरोंसे टकराकर उसके कोने झड़ कर वह छोटा, चिकना, बटिया

की भांति हो जायगा। अस्तु पत्थरोंके आपसमें लहरोंके ज़ोरसे टकरानेके कारण उनके कोने झड़ कर वह चिकने हो जाते हैं, उनपर पौलिश या जिला आ जाती है। अगर नदी की तेह रेतीली हुई तब तो यह क्रिया बहुत ही जल्द समाप्त हो जाती है और सैकड़ों तथा हज़ारों बटिया इस प्रकार बन जाती हैं। गंडकी बड़ी द्रुतगामी पहाड़ी नदी है जो पहाड़ी चट्टानोंपर बहती है। इसकी तह रेतीली है। यही कारण है कि यहां शालग्राम की बटिया मिलती हैं। इसी प्रकार मानवी समाजमें जितना ही अधिक मनुष्योंका आपसमें सम्पर्क होता है, जितना ही ज़्यादा वह एक दूसरेसे मिलते जुलते हैं उनके आचरण तथा स्वभाव की नीरसता पौलिश होते होते सरसतामें परिवर्तित हो जाती है और ऐसे ही मनुष्य भद्र पुरुष कहलाते हैं। इनका सब लोग उसी प्रकार अधिक आदर करने लगते हैं जिस प्रकार शालग्राम की बटियाकी सब लोग देवतुल्य पूजा प्रतिष्ठा करते हैं।

यह तो हुआ नदियों द्वारा बनी हुई बटियों का इतिहास; परन्तु समुद्रतट पर जो अगणित रंग बिरंगी बटियां मिलती हैं उनकी उत्पत्तिका रहस्य बिलकुल ही निराला है। नदी में यदि एक बटिया बनती है तो समुद्र में लाखों मिलती हैं। नदी की अपेक्षा समुद्र से प्राप्त हुई बटिया अधिक चिकनी और गोल होती हैं। ज्वार भाटे और बड़ी बड़ी लहरों से समुद्रका मंथन होनेके कारण टूटे हुये पत्थरोंके सारे कोने झड़ कर इनमें गोलाई, चमक और चिकनापन आ जाता है। ज्वार भाटे की बाढ़के समय घड़घड़ाहटका शब्द इन्हीं रोड़े और बटियोंके ढुलकने और संघर्षणसे उत्पन्न होता है और इसी प्रकार जब ज्वार भाटा घट कर वापिस लौटता है तो इन्हींके लुढ़कने की आवाज़ होती है। यह आवाज़ ऐसी होती है जैसे किसी मकानके पत्थरोंके टूट कर गिरनेसे होती है। यह तोड़ फोड़ सैकड़ों और हज़ारों वर्षों से जारी है। बड़े बड़े पत्थर किनारोंपरसे टूट टूट कर रोड़ोंमें और रोड़े बटियोंमें

चित्र ११
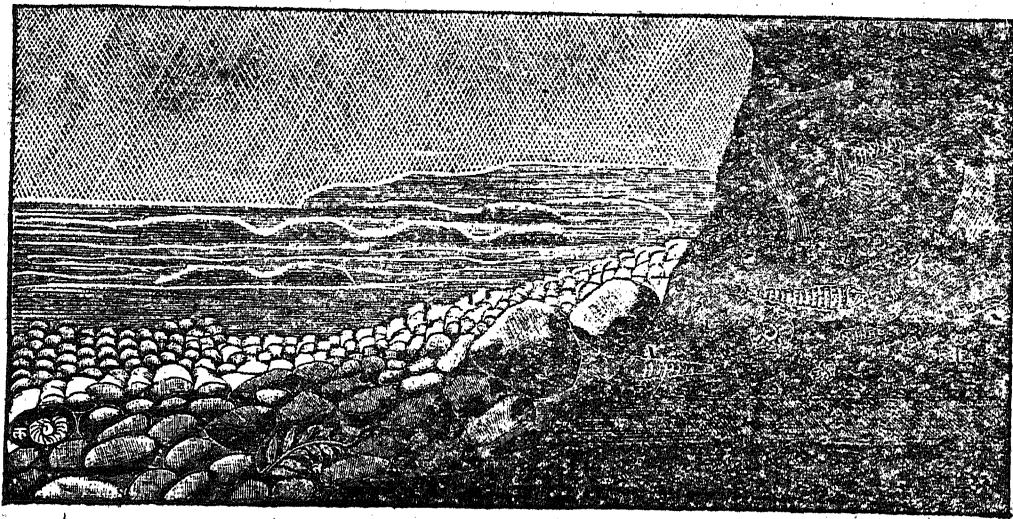
इस चित्र में समुद्र तट पर बिखरी हुई बटिया दिखलाई गई हैं। किसी किसी बटियाके अन्दर समुद्री जीवों के अस्थिपिंजर तथा किसी किसीके अन्दर वानस्पतिक पत्तियां भी ज्यों की त्यों मौजूद हैं।

परि-वर्तित होते जाते हैं। यह बटिया टूट फूट और घिसकर कंकड़ियां हो जाती हैं और यह घिसते घिसते टूट कर रेत, रेणुका या बालू बन जाती हैं। जिस प्रकार सैंडपेपरसे धातकी चीज़को मज कर, उन्हें चमकाकर, आप पौलिश कर लेते हैं, उसी प्रकार बालूकी रगड़से यह बटिया भी गोलाकार चिकनी और चमकीली हो जाती हैं। इस प्रकार जिन छोटी छोटी बटियों को देख कर हमें इस समय कोई आश्चर्य नहीं होता है वही किसी समयमें बड़ी बड़ी पहाड़ी शिलायें रही होंगी।

चित्र १४

यह चित्र उन छोटे छोटे जीवोंकी त्वचाओंका है जो समुद्रके जलसे शिलाकण एकत्रित कर चकमक पत्थरकी रचना करते हैं। इस चित्रमें दिखलाई हुई त्वचायें अपने वास्तविक आकारसे बहुत बड़ी बनाई गई हैं।

### चकमकपत्थरकी बटिया

परन्तु समुद्रमें काले रंगकी वज्रतुल्य कड़ी जो बटिया मिलती हैं, वह इन शालग्रामकी बटियोंसे बिलकुल विभिन्न होती हैं, क्योंकि यह चट्टानों या पत्थरोंके टूटे हुये रोड़ोंसे नहीं बनती हैं। यह शिलाकण (Silica) की बनी होती हैं और इनके बननेका वृत्तान्त भी निराला ही है।

विज्ञानके पाठकोंको विदित होगा कि स्पंज जिससे अस्पतालोंमें

मरीज़ोंके घाव धोये जाते हैं एक सामुद्रिक जीवकी शक्लसे मिलता है। इस जीव का नाम भी स्पंज है। यह समुद्रकी तहमें बिना पैरोंकी सहायताके पत्थरोंकी चट्टानों-से चिमटा रहता है। इसके हाथ पैर आंख नाक आदि अवयव नहीं होते, परन्तु इसके शरीरमें
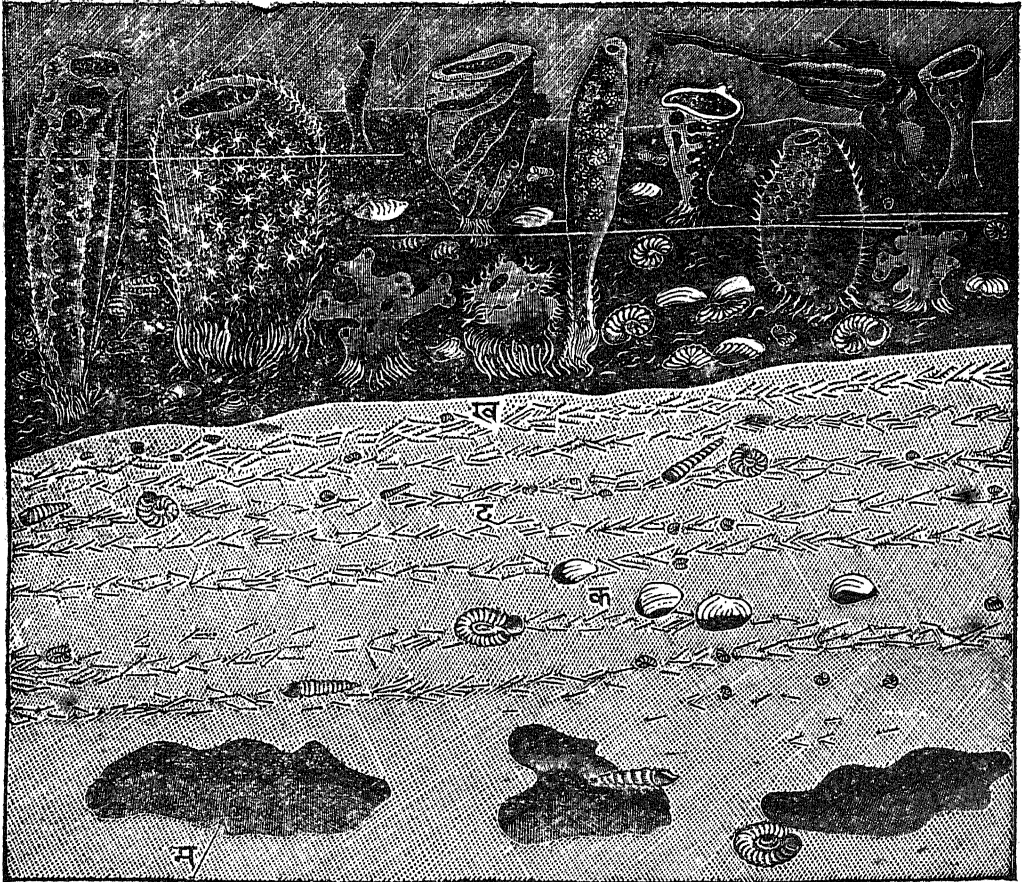
चित्र १५

स चित्रमें ख से ऊपर बनी हुई रेखा समुद्रकी तह है। इसपर स्पंज आदि सहस्रों जलीय-जीव मौजूद हैं। इनकी मृत्यु होने पर इनकी त्वचा जलमें घुल जाती हैं और इनकी अस्थियां तथा ढांचे टूट फूट कर समुद्रकी तहके नीचे खरिया मिट्टीमें मिल जाते हैं। ट, ट स्थान पर मरे हुये स्पंजोंके टूटे फूटे अस्थिपिंजर खरिया मिट्टी की तहोंमें समाये जा रहे हैं। उत्खातद्रव्यों (Fossil-shells) की ठठरियां इधर उधर बिखरी हुई क स्थान पर हैं। शिलाकण इन खरिया मिट्टी की तहों से दब कर जिस प्रकार ठोस हो कर चक-मक बनता है, यह दृश्य भी पड़े हुये चकमक के टुकड़ों से विदित होता है। म इसी प्रकार बना हुआ एक चकमक का टुकड़ा है।

सहस्रों रंध्र होते हैं, जिनसे मुख की भांति यह समुद्रका खारी जल पीकर उगलता रहता है। यह अपने चारों ओर सहस्रों कोष (Cells) और नलियां पानी पीनेके सुभीतेके लिए बना लेता है। कुछ दिनोंमें यह छत्ते की भांति फैल कर स्पंज हो जाते हैं, जिन्हें काट कर मछुए डोंगियों- में भर लाते हैं और बाज़ारों में बेच देते हैं। किसी किसी स्पंजकी छत्तेदार ठठरियां नुकीले सींगोंदार भी होती हैं। कुछ स्पजों की त्वचा बहुत मुलायम चिकनी होती है, जिसमें पतली सुइयों जैसी कंटीली कीलियां (Spicules) होती हैं। यह कीलियां गोदन्तमणिकी (दूधिया Opal) भांति, कांचकी तरह चमकते हुये, शिलाकण की बनी होती हैं। इस प्रकारके स्पंजोंकी त्वचायें बहुत सुन्दर होती हैं, परन्तु घाव आदि धोनेके कामकी नहीं होतीं। इनका आकार झिंझरीदार फूलकारी की छोटी टोकरी की भांति होता है, इसी लिए इनका नाम ( Venous Flower basket ) वीनस-पुष्प-मंजूषा है, जो उपहार या प्रीतिदान की तरह भेट की जाती हैं। इस पिटारीमें प्रायः दो घोंघे बंद होते हैं और इसीलिए जापानमें विवाहोत्सव पर वर दुलहिनको यह पिटारी दी जाती है। जापानमें इसका बड़ा आदर होता है और पति पत्नी की पारस्परिक प्रीतिका यह स्मारक समझा जाता है।

पाठक स्पंजों के इस वर्णनको पढ़ कर सोचने लगे होंगे कि चकमक और स्पंजसे क्या संबंध; यह असंगत वर्णन क्यों दिया गया है? परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। प्रकृति-भंडारमें ऐसी अगणित वस्तुयें मौजूद हैं जिनका कोई संबंध, उनका बाहरी रूप रंग बनावट और आकार देख, प्रतीत नहीं होता। जैसे चन्द्रमा समुद्रसे लाखों मील दूर होनेपर भी समुद्रमें ज्वार भाटा उत्पन्न करता है, उसी प्रकार स्पंज और चकमकसे कोई बाहरी संबंध न रहनेपर भी इन्हीं पुष्प-मंजूषा रूपी स्पंजोंसे यह चकमक बनता है। समुद्र- की तहमें रहते हुये स्पंज समुद्र-जलसे शिला- कण एकत्रित कर उससे पिटारीके आकारकी कांचकी तरह चमकीली ठठरियों की रचना करते हैं।

नदियां, चट्टानों और पहाड़ोंपर बहती हुई, जब समुद्रमें आगिरती हैं तो अपने बहावमें शिला- कण एकत्रित कर लाती हैं। इन नदियों द्वारा बहाकर लाये हुये नन्हे नन्हे शिलाकणोंको स्पंज एकत्रित कर अपनी चमकीली त्वचाकी रचना करते हैं। जब कुछ समय बाद यह स्पंज मरने पर समुद्रकी तहमें पैठ जाते हैं और उनपर चूने तथा खरियाकी तहें जम जाती हैं तो इनकी त्वचायें गल कर मिट्टीमें समा जाती हैं और यह मिट्टीकी तहें शिलाकणको जज़्ब करलेती हैं। मिट्टी- की इन तहोंमें जहां तहां स्पंजों की त्वचाओंसे प्राप्त हुआ शिलाकण जमा हो जाता है। परन्तु इस अवस्थामें एक विचित्र परिवर्तन उपस्थित होता है। जब कोई वस्तु शिलाकण-युक्त पानीमें मौजूद होती है तो शिलाकणका यह विचित्र गुण है कि वह उस वस्तुमें पैठ कर कांच की भांति चमकीला ठोस पदार्थ बन जाता है। समुद्रमें कई स्थानों पर तप्तजल-स्रोत हैं जिनमें शिलाकण मौजूद है। यहां जितनी जलीय घास, पुष्प अथवा जलवृक्ष हैं उन पर एक प्रकार की चमकीली कांच की सी वस्तु जमी हुई होती है। अक्सर लोग इन जल-वृक्षों तथा घासोंमें छोटी छोटी चीज़ें इस लिए डाल दिया करते हैं कि उन पर शिलाकण जम जाय। ठीक इसी प्रकार खरिया मिट्टीकी चट्टानोंमें शिला- कण जम कर वज्र जैसे कड़े तथा कांच जैसे चमकीले चकमक बन गये। संभव है कि आप इसे केवल कल्पना ही समझें परन्तु जब हम चक- मकको तोड़ कर अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखते हैं तो हमें उसके अन्दर ( Fossil Shells ) उत्खात- द्रव्योंकी की ठठरियां मिलती हैं। यही ठठरियां खरिया मिट्टीके अन्दर भी पाई जाती हैं।

समुद्रसे संसारमें विप्लवकारी वस्तुकी उत्पत्ति

क्या यह बात कौतूहलोत्पादक नहीं है कि चकमक की अगणित बटियोंमें मौजूद रहनेवाला शिलाकण किसी समय जीते जागते जीवोंका ढांचा था, तथा स्पंज जैसे क्षुद्र जीवके कौशल और परिश्रमसे वह एकत्रित किया गया? पल भरमें राईसे पर्वत, और पर्वतसे राई करने वाले उस जगदीश्वर की अनन्त मायाका क्या यह महा अद्भुत तमाशा नहीं है कि उसने चकमक की बटियोंको इस प्रकार उत्पन्न किया? क्या इन बटियोंके भीतर किसी समय जीते जागते जीवोंकी त्वचायें और ठठरियां देख कर विस्मयसे हमारे मुखसे यह निकल जाना संभव नहीं है कि इस अपरिमित मायाके रहस्यको हम अपनी परिमित बुद्धि द्वारा कहां तक जान सकते हैं? ऐसी अवस्थामें 'नेति नेति श्रुति गावहीं' के सिवाय और हम क्या कह सकते हैं?

परन्तु विज्ञानकी उन्नति द्वारा जब हमें यह मालूम होता है कि शिलाकणसे चकमक बनवाने के लिए समुद्रमें स्पंज उत्पन्न किये गये, और इस चकमक द्वारा मनुष्य जाति की सभ्यताके इतिहास और भवितव्य (Destiny) पर कैसा अपूर्व प्रभाव पड़ा तो हम उस परम पिताकी अद्भुत लीलाको समझ कर और भी अवाक् रह जाते हैं। चकमक की रगड़से मनुष्यने अग्नि उत्पन्न कर अपनी सभ्यताके इतिहासका श्रीगणेश किया। अग्निदेवकी सहायतासे मनुष्य और मानुषिक सभ्यता आज दिन कितने ऊंचे शिखर पर है यह किसीसे छिपा नहीं है। क्या चकमकके बिना अग्निदेवकी अनुपस्थितिमें मनुष्य इतनी उन्नति कर लेता? इसका उत्तर देना हमारे लिए बहुत कठिन और करीब करीब असंभव सा है। ऋग्वेद का प्रारंभ अग्निदेवकी स्तुतिसे होना ही इस बातका द्योतक है कि हमारे पुराने ऋषि
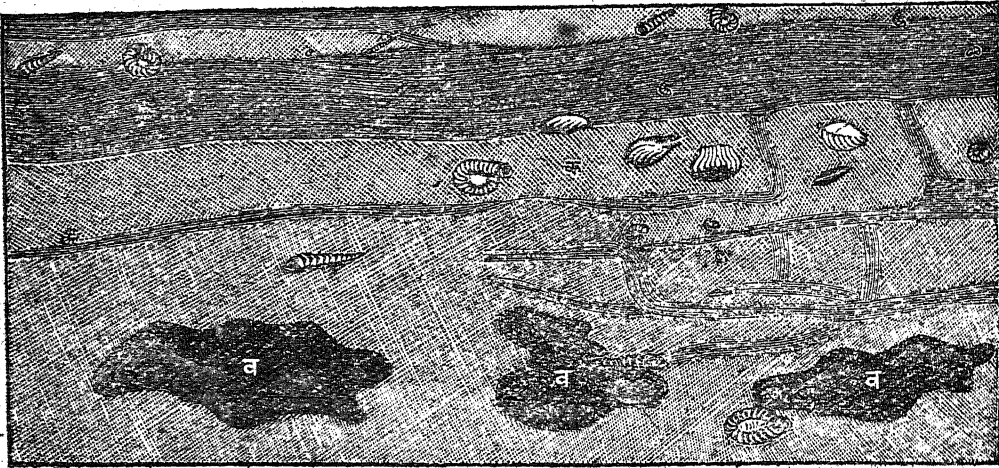
चित्र १६

लाखों करोड़ों बरसों बाद समुद्रकी तहमें खरियाकी चट्टानें बन गई हैं। क स्थान पर खरियाकी शिलाओंमें उत्खातद्रव्यों की ठठरियां ज्योंकी त्यों दिखलाई गई हैं। स्पंजोंकी ठठरियोंमेंसे शिलाकण निकल कर जमनेसे जिस प्रकार चकमक के टुकड़े बन गये। उसके तीन चित्र व बने हुये हैं। इन चित्रोंमें चकमकके अन्दरकी ठठरियां भी दिखलाई गई हैं।

मानुषिक सभ्यता के इस श्रोत का पूर्ण ज्ञान रखते थे।

शालग्रामका अर्थ

इस लेखके विषयमें हम पाठकोंका ध्यान शालग्राम शब्द की व्युत्पत्तिपर आकर्षित करते हैं। संस्कृतमें शाल एक प्रकार की मछलीका नाम है और ग्राम शब्दका अर्थ रहनेका स्थान है। प्रातः शालग्राम शब्दका अर्थ हुआ वह पत्थरकी बटिया जिसमें शाल मछलीका निवास-स्थान हो। ऊपरके वर्णनसे पाठकोंको भली भांति ज्ञात हो जायगा कि शालग्राम की बटियाका नाम कितना यथार्थ रखा गया है। क्या इससे यह विदित नहीं होता कि आज दिन विज्ञान की सहायतासे इन बटियोंकी बनावटका जो इतिहास हमें मालूम हुआ है उसका बहुत बड़ा अंश हमारे पूर्वजोंको भी ज्ञात था? हमारे लेखमें दिये हुये चित्रों द्वारा पाठक देखेंगे कि मछलियों और स्पंज आदिक जीवों की ठठरियां इन बटियोंमें किस प्रकार मौजूद रहती हैं।

---

## सूखी बाटरी

[ लेखक—श्री० श्रीराम जीवन पिठी, फोटो आर्टिस्ट ]

जनवरी मासके विज्ञानमें श्रीयुत गंगा प्रसाद जी, बी० एस-सी० नामके एक सज्जनका लिखा हुआ "ड्राई बैटरी अर्थात् सूखी बाटरी" शीर्षक छोटा सा नोट पढ़ कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वैज्ञानिक विषयोंपर जो कुछ कहना हो उसपर, मेरी तुच्छ रायमें, पहिले खूब सोच लेना उचित और आवश्यक है, नहीं तो इससे लाभकी अपेक्षा हानिकी विशेष सम्भावना है।

आप जैसी विधि लिख रहे हैं, उससे आधा वोल्ट (Volt) भी पैदा न हो* सकेगा; फिर धारा (Ampere) तो होगी ही कहांसे? हाँ, (Resistance) बाधा खूब बढ़ जायगी, जिससे लेम्प (Globe) तक पहुंचनेके पहिले धारा समाप्त होजायगी। ऐसी अवस्थामें व्यर्थ धन-व्यय और कोरे परिश्रमके सिवा और कुछ हाथ न आयेगा। अतः आशा है, श्रीमान् लेखक महाशय मुझे इन पंक्तियोंके लिये क्षमा करेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि वर्त्तमान समयमें सूखी बाटरियों ( Dry Batteries ) की बहुत मांग है। आजकल प्रायः सभी इसको पसन्द करते हैं; और वास्तवमें यह है भी ऐसी ही चीज़। आवश्यकतानुसार जब चाहे बग़ैर दिया-सलाईके इससे अच्छी रोशनी पैदा कर सकते हैं। विशेषतः अन्धेरे रास्तेमें विषैले जानवरोंसे बचनेके लिए अवश्य ही यह विशेष कामकी चीज़ है। इतना ही नहीं, हिन्दुस्तानमें इस समय इनकी इतनी मांग है कि यदि कोई यह काम जानता हो तो एक छोटा सा कारखाना खोलकर अच्छी आमदनी पैदा कर सकता है। परन्तु ज़माना (Competition) स्पर्धाका है। इस समय भारतवर्षमें बीसियों प्रकारकी सूखी बैटरियां भिन्न भिन्न कारखानोंकी बनी हुई आती हैं, मगर जैसा नाम "एवर रेडी" (Ever Ready) का हुआ है वैसा अन्य किसीने नहीं पाया। हमारा खुदका यह अनुभव है कि यदि हम ध्यान पूर्वक परिश्रमसे यह कार्य्य करें तो अवश्य ही 'एवर रेडी' की भांति उत्तम बैटरियां तैयार कर सकेंगे।

बैटरी बनानेके पहिले हमें दो बातों पर ध्यान देना चाहिये।

१—दबाव (Volt) अथवा वोल्टेज

२—बाधा (Resistance)

---

* लेखक महोदय भी इसी दोषके दोषी हैं, यह मानना अनुचित है कि वोल्टेज आधा वोल्ट ही होगा। नापकर तब कहना चाहिये कि क्या होगा। लेखक महोदय को हमने लिखा था कि दोनों प्रकार की बाटरी बना कर परीक्षार्थ भेजें, पर अभी तक उन्होंने नहीं भेजी।—सं०

साधारणतः एक अच्छी बैटरी १$\frac{१}{२}$ वोल्ट और तीन ओह्मकी बाधाकी होनी चाहिये।

सबसे पहिले अपनी इच्छानुसार साइज़के तीन शुद्ध जस्तेके* बेलनाकार खोखले बर्तन बनावे। फिर कर्बनके तीन उसी साइज़के डंडे(Carbon rod) लेकर तीनोंके सिरे पर ताम्बेका तार झालदे। अब एक मोटे कागज़की बैटरीके प्रमाणकी वैसी ही नलिकाकार "कोर" बनावे, और उसके बीचों बीच कर्बन रौड खड़ा करके निम्न लिखित मसाला खूब कूट कूट कर भरदे।

| | | |
|---|---|---|
| मैंगनीज़ द्विओषिद(Manganese dioxide) | | २ भाग |
| ग्रैफ़ाइट | (Graphite) | १ भाग |

उक्त दोनों मसालोंको अच्छी तरह मिलाकर थोड़ा सा पिसा हुआ नौसादर छोड़दें और नीचे लिखे घोलके साथ पिट्टी सी बनाकर कोरमें भरदें। इसके बाद(Zinc Chloride)यशदहरिदका ऐसा लोशन बनावें जिसका विशिष्ट गुरुत्व (Specific gravity) १.३५ हो। इसमें दशवाँ हिस्सा केलसियम हरिद (Calcium Chloride) और इतना ही नौसादर (Ammonium Chloride) डालदें, जिससे यह नौसादरका संपृक्तघोल (Saturated Solution) बनजाय।

अब कोर को सावधानीसे खोल कर मसालेकी मूसलीके चारों ओर दो तह पतला और सूखा कपड़ा लपेट दें और पतले धागे से अच्छी तरहसे कस कर बांध दें। ध्यान रहे कि कपड़ा लपेटते समय कर्बन रौड का वह सिरा जिसमें तार बँधा हुआ है खुला रखना चाहिये।

| | | |
|---|---|---|
| मैदा | ५ | भाग |
| नौसादर | २$\frac{१}{२}$ | " |
| कैलसियम क्लोराइड | $\frac{१}{२}$ | " |
| ज़िंक क्लोराइड | $\frac{१}{२}$ | " |

पानी इतना होना चाहिये जिससे पतली पिट्टी बन जाय। इन्हें आग पर चढ़ा कर लेई बनालें। इस लेई में यदि थोड़ा सा पोटास ब्रोमाइड(Potas Bromide) भी मिला दें तो अच्छा होगा।

मसाले और कर्बन रौड की बनी हुई छड़की चारों तरफ चार मोटे कागज़ की पतली धारियाँ काट कर और पिघले हुए मोम में डुबाकर लगादें; तब उपर्युक्त लेई (Paste) इसके सब ओर लगाकर जस्तेकी बनी हुई नलियोंमें जमा दें। अब केवल नलकियों का मुँह बन्द करना बाक़ी रहा, सो पिघली हुई चपड़ी या मोमसे मुँह बन्द करदें। इस प्रकार बैटरी तैयार होगई। अब इन तीनोंको इस तरह जोड़दें कि पहली बैटरी का ऋण ध्रुव दूसरीके धनध्रुव से जुड़ जाय—यानी जस्तेसे लगा हुआ तार दूसरी बैटरीके कर्बन रौडसे लगे हुए तारसे बांध दिया जाय। अब इसके ऊपर कागज़ लपेट कर काम में लावें।

ऐसी प्रत्येक सेल (Cell) १.५ वोल्ट (1.5 Volt) और साधारणतः दो एम्पेयर (2 Amperes) देगी, जिससे एक साढ़े तीन वोल्ट का पोकेट लेम्प साइज़ का ग्लोब भली भांति रोशनी दे सकेगा। 'एवर रेडी' बनी हुई बैटरियों की यही विधि है। परन्तु इस विधि से बनी हुई बैटरियोंमें कठिनता यह है कि यदि इससे घंटे दो घंटे लगातार रोशनी लेना चाहें तो नहीं दे सकतीं। हम आगामी अङ्कमें ऐसी विधियाँ बतावेंगे जिनसे बराबर रोशनी भी लीजा सकती है और बग़ैर एंजिन (Engine) और डायनेमो (Dynamo) के मकान आदि में साधारणतः अच्छी रोशनी कर सकते और पंखा आदि चला सकते हैं।

* शुद्ध जस्ता मिलना बहुत कठिन है, इसके बदलेमें यदि जस्तेपर पारा चढ़ा दिया जाय तो उत्तम होगा, पर इसमें कठिनता यह है कि पारा पत्तर को खाता है और इस तरह पतली चद्दरकी नलियां कमजोर हो जाती हैं। इसलिये मोटे पत्तरकी नलियां बनाकर पारा चढ़ा लेना चाहिये।—ले०

# शेरशाह

[ लेखक—पं० कमला कान्त मालवीय ]

भारतवर्षके इतिहासमें शेरशाहकी गणना उन बादशाहोंमें की जाती है जो अपने ही पुरुषार्थ और बुद्धिबलसे उन्नतिके शिखरपर पहुंचे। इनके विचित्र जीवनचरित्रसे हमें बड़ी शिक्षा मिलती है और हमारा उत्साह बढ़ता है। आदिसे अन्त तक इनकी जीवनी विलक्षण, कौतुकपूर्ण और रहस्यमय है।

शेरशाहके बाबा इब्राहीम अफगानिस्तानके निवासी थे और उनका संबन्ध वहांके एक सम्पन्न वंशसे था। इनके पिता हसन बिहार देशके ५०० सवारोंके जागीरदार थे। शेरशाहका जन्म इसी देशमें हुआ था। महाराष्ट्र वीर शिवाजीके पिताके समान शेरशाहके पिताने भी अपनी स्त्रीको एक कुलटाके कपट-जालमें पड़कर त्याग दिया था। तबसे शेरशाह अपनी दुःखिया माताके ही पास रहते थे। कुछ होश संभालनेपर यह जौनपुरके सरदारके यहाँ रहने लगे। यहांसे इनके पिताने इन्हें बुलाना चाहा, जिसमें इनके पठन पाठन का उचित प्रबन्ध हो जाय, पर यह तो अपनी माताके पास रह कर स्वावलंबका पाठ पढ़ चुके थे। यह कब पिताके पास जाने लगे थे। जौनपुर रहते हुये थोड़ी ही अवस्थामें इन्होंने बहुत कुछ पढ़ लिया। इतिहास, कविता इत्यादि विषयोंमें निपुण हो गये और शेखसादी साहबकी कविताओंको कण्ठ कर डाला।

कुछ समय उपरान्त इनके पिताको भी इनकी कीर्ति सुनपड़ी और इनके गुणोंपर वह इतने मुग्ध होगये कि सारी जागीरका भार इन्हींको सौंप दिया। यह भी सुखसे अपने घरमें रहने लगे। परन्तु सच कहा है "दुष्टसंग जिन देई विधाता"। इनके सौतेले भाई सुलेमानका स्वभाव बड़ा खराब था। वह नित्त नया उपद्रव खड़ा किये रहता था, जिससे तंग आकर शेरशाह घर छोड़कर चल दिये और दिल्लीके बादशाह सिकंदरके यहां नौकर हो गये। पिताके मरनेपर फिरसे इन्हींको जागीर मिली। सन् १५२६ ईसवीमें सुलतान इब्राहीमके लड़ाईमें हारजानेपर यह जौनपुरके बादशाह मोहम्मद लोहानीके यहां चले गये। यहांपर कुछ काल तक तो यह बादशाहके कृपापात्र बने रहे; पर सुलेमानने यहां भी इन्हें सुखकी नींद न सोने दिया और अंतमें इनको दरबारियोंकी ईर्षाके कारण जागीरसे भी हाथ धोना पड़ा।

इसके बादसे शेरशाहने स्वावलंबका निराला ही ढंग निकाला। इन्होंने बाबरके सरदार जुनिदकी मददसे बिहार प्रान्तके लुटेरोंको इकट्ठा कर डांका डालना शुरू कर दिया। इससे बादशाह इतना तंग हुआ कि उसने इनको जागीर भी दे दी और बिहारका गवर्नर भी बना दिया। एक दिन डांकेमें यह नदीमें डूबते डूबते बचे थे। उसी दिनसे उस निषिद्ध कामको इन्होंने छोड़दिया। दूसरे साल १५२६ ईसवीमें मोहम्मद लोदीने बिहार प्रान्तपर धावा किया और शेरशाहने बाबरके विरुद्ध उनका साथ दिया; पर उनके हारजानेपर और सरदारोंके साथ बाबरसे इन्हें माफी मांगनी पड़ी। कुछ ही कालमें बाबर इनके गुणोंपर मुग्ध होगये थे। एक दिन भोजनके समय मांस काटनेकी कोई वस्तु पासमें न होतेहुये भी शेरशाहने अपनी युक्तिसे काम निकालडाला। इसपर बाबरने मन ही मन कहा कि इस सरदार द्वारा हमारे राज्य छीनेजानेका एक दिन अवश्य भय है। और ऐसा हुआ भी। बाबरके बेटे हमायूंके तख्त पर बैठते ही शेरशाहने अपनी शक्तिको बढ़ाकर उनसे सारा राज्य लेलिया। हमायूं जंगल जंगल भागते रहे और शेरशाह गद्दीपर डटे बिगडे हुये प्रान्तोंको पुष्ट करते रहे।

शेरशाह अपने शत्रुओंसे तो हर प्रकारका छलबल किया करते थे, किन्तु अपनी प्रजाको हर प्रकारसे सुखी बनानेका प्रयत्न करते थे। वह बड़े ज़बरदस्त काम करने वाले, मेहनती, थे और जिस

कामको उठाते थे इसे बगैर पूरा किये नहीं छोड़ते थे। जब वह जागीरदार थे तब क्या और जब बादशाह हुए तब क्या - सदा ही उनका यह देशकी अशान्तिको मिटानेका रहता था, जिसमें किसान लोग तथा कारीगर सुगमतासे अपना काम कर सकें और देशकी संपत्ति बढ़े। वह पूर्ण न्याय करते थे और स्वयं हरएक रिआयाकी उलाहना सुनते थे। शेरशाह जब बादशाह होगये थे तब भी सदा अपना काम नियमित रूपसे करते थे। वह रोज हर एक कामके लिए समय नियत कर लेते थे, जिससे कि वह बहुत सा काम कर सकते थे। वह बहुधा स्वयं राजकी हरएक संस्थाका निरीक्षण करते थे और मंत्रियोंको उपयुक्त सलाह देते थे। उन्होंने अपने राज्यमें ऐसा अच्छा प्रबन्ध कर दिया था कि राजकर्मचारीगण जबरन प्रजासे अनुचित रुपये नहीं वसूल कर सकते थे। शेरशाह शेरदिल थे। वह भली भांति जानते थे कि प्रजाको दुःख देकर वह कदापि सुखी नहीं हो सकते थे। [ "Poor peasants poor Kings"; "No revenue without justice to the peasants."] "यदि किसान गरीब है तो राजा गरीब रहेगा; यदि किसानके साथ न्याय नहीं होता तो कर भी नहीं वसूल होगा", इन बातोंको समझते हुये शेरशाहने बहुत से सुधार कर डाले थे।

उन्होंने अपने हर सूबेमें एक गवर्नर, एक खजान्ची, एक सेज वसूल कुनिन्दा और दो मोहर्रिर—एक हिन्दी और दूसरा उर्दूके लिए रखे थे। उन्होंने अपने गवर्नरों, सूबों, को सख्त हुक्म दे रखा था कि हर फसलपर पहले से ही भूमिका पैमाना ले लिया जाये और कर पैदावारके ही हिसाबसे लगाया जाय। यह नहीं जैसा कि बाज बाज गीदड़शाही सरकारमें होता है कि चाहे रिआया अकाल से भी पीड़ित क्यों न हो किन्तु कर जरूर भरे; चाहे बादशे सरकार सहायता ही क्यों न दे किन्तु वह तो मुर्दोंको बैसाखी देकर चलानेके समान होता है।

शेरशाहके राज्यमें यदि कर ज्यादा वसूल होता था तो लौटा भी दिया जाता था और किसी किस्मकी ज्यादती नहीं होने पाती थी। उन्होंने अपने राज्यके भीतरी हिस्सोंमें से चुंगी उठा कर केवल बाहर ही बाहर रहने दी थी, जिसमें धींगाधींगी नहीं होती थी। सड़कें अच्छी बनवाई थीं। उनमेंसे एक बहुत लम्बी (Grand trunk road) थी और अब भी है। यह सड़क पंजाबसे पूर्वी बंगाल तक जाती है। इन सड़कोंपर दोनों ओर पेड़ लगवा दिये गये थे और जगह जगह सराय भी बनवाई गई थीं, जिससे मुसाफिरोंको आराम पहुंचे। किन्तु उस समय विज्ञानकी काफी तरक्की न रहनेसे कच्ची सड़कें और इमारतें बरसातमें खराब हो जाती थीं। शेरशाहने डांकचौकी पत्र ले जाने को बना रखी थीं। सारांश यह कि उनके राज्यमें प्रजाको हर प्रकार से सुख शान्ति थी और इसीसे देश संपत्तिशाली था और महावीर शिवा जी के समान शेरशाह भी अपने सहयोगियोंसे बहुत बड़े चढ़े थे। वह और बादशाहोंके समान बड़े बड़े महलोंको बनवानेमें ही अपना गौरव नहीं समझते थे, किन्तु अपनी प्रजा के सुखी रखनेमें ही सच्चा सुख मानते थे। ऐसे महापुरुष ईश्वर करे फिर से इस देशमें जन्म लेकर भारत माता का उद्धार करें।

महावीर शिवाजीके समान शेरशाहका भी बर्ताव स्त्रियोंके प्रति बहुत नेक होता था। जब हमायूंकी रानी शेरशाहके पंजेमें पड़ गई थी तो उन्होंने बहुत आदर सम्मान सहित उनको हमायूंके यहां भिजवा दिया था।

लड़ाईमें शेरशाह अपने शत्रुको धोखा देनेमें नहीं हिचकते थे। यह नहीं कि राजपूतों की तरह जहां हुआ वहीं आंख मूंद कर बहादुरीके पुखारमें शत्रुओं से जूझ जाते थे, किन्तु जैसा अवसर देखते थे वैसी नीतिसे काम लेते थे।

# नक्षत्र संसार

[ ले०—पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार ]

( गताङ्कसे सम्बद्ध )

तिमिमण्डल (Cetus)—इस मण्डलका वर्णन विष्णु-पुराणमें तिमिरूपमें आया है। इसके ४ उज्ज्वल तारे हैं—(क) मीनकेतन, (ख) दर्दुर, (द) मार, और तिमिपुच्छ

त्रिशंकुमण्डल (crux)—इसका मुख्य तारा (क) विश्वामित्र है। यज्ञके प्रभावसे राजा त्रिशङ्कु सशरीर स्वर्ग गया था इन्द्रने इसे चाण्डाल जान कर ऊपरसे धक्का दे दिया। विश्वामित्रने ऊपर ही ऊपर इसको रोक दिया। तभीसे वह अन्तरिक्षमें लटका दीखता है।*

तक्षक मंडल (Draco)—उत्तरमें छोटे सप्तर्षि और बड़े सप्तर्षिके बोचमें यह तक्षक मंडल स्थित है। इसके मुख्य तारे (ग) स्पर्शमणि, (ख) नहुष, (ञ) आशीविष, (क) कंस हैं। इसके विषयमें नहुष राजा की कथाका स्मरण आता है। नहुष राजा अपने पुण्यके बलसे स्वर्गका राजा बन गया था। उसके आदरके लिए, उसके रथको खेंचनेके लिए, स्वयं सप्तर्षि लगे थे। परन्तु इसने मदमें आकर सप्तर्षिमें से अगस्त्यको मन्द गति देखकर 'सर्प सर्प' ( चल चल ) कहा इसपर क्रुद्ध हो महर्षि ने उसको शापसे सर्प ही बना दिया। तब से वह अजगर रूपमें गिरकर अपने इन्द्र-पद से च्युत हो गया। यह वही नहुष (ख) तारा है। इसी तक्षकका (क) कंस द्वापर युगमें ध्रुव था। इस प्राचीन कालिक सत्यका स्मरण करके एक वैचित्र्य अनुभव होता है। वह यह कि इसके तारे (क) कंसके ध्रुव होनेके ज़मानेमें सप्तर्षि मण्डल ही सबसे समीप रहता है। स्पष्टतया उसके रथमें जुड़े सात घोड़ोंकी भांति सप्तर्षि जुड़े दीखते हैं; मानों नहुष राजाकी सवारी खींच रहे हैं। अब पौराणिक गाथाका स्मरण करते हैं तो वह कथा एक वैज्ञानिक घटना हो जाती है। एक यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि जब यह ध्रुवपद से विचलित हो गया तब केवल तक्षक मण्डल या तानराज मण्डलका साधारण तारा गिना जाने लगा।

मयूर मण्डल या दक्षिण चित्र शिखण्डि (Pavo)—जैसे सप्तर्षि उत्तर कपालमें दर्शा आये हैं वैसे ही सात तारे दक्षिणके सप्तर्षि या दक्षिणके चित्र शिखण्डि कहाते हैं। इनका वर्णन रामायणमें किया है। विश्वामित्रने क्रोधमें आकर त्रिशंकुके लिए दक्षिणमें नये स्वर्ग की रचना की थी। उस समय उसने उत्तर कपालके सदृश दक्षिण कपालमें तारोंकी रचना की। इसीसे रामायणमें लिखा है कि विश्वामित्रने कोपमें आकर और भी तारोंकी रचना की।*

इस प्रकार प्राचीन नक्षत्र मण्डलोंका कुछ वर्णन करके अब हम कुछएक नक्षत्रोंका क्रमसे वर्णन करते हैं।

१. अश्विनी—मेषराशिमें तारा क (अमल Hamal) अच्छा उज्ज्वल है। इसके तीन तारे घोड़ेके मुखके आकारके हैं। इससे इसका नाम अश्विनी पड़ा है।

२. भरणी—इसी राशिका तारा ख शिरखाण (Shoratan) समीपके दो तारोंके साथ त्रिकोणका आकार बनाता है। यही भरणीके तीन तारे प्रसिद्ध हैं।

३. कृत्तिका—मेषराशिमें एक सुन्दर तारोंका गुच्छा कृत्तिका कहाता है। इसको देखकर

---

* शेष माहारयत्तीव तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
ऋषिमध्ये सतेजस्वी प्रजापतिरिवाऽपरः॥
अवाक्शिराः त्रिशङ्कुश्च तिष्ठत्वमर सन्निभः।
अनुयास्यन्ति चैतानि ज्योतींषि नृप सत्तमः॥
( वाल्मीकि रामा० आदि० )

* सृजन् दक्षिण मार्गस्थान् सप्तर्षीन परान् पुनः।
नक्षत्र वंशमपरमसृजत्क्रोधमूर्छितः॥
(वाल्मी० रामा० १, ६०, ६१)

पुराने कवियोंने बहुत सी कल्पनाएं की हैं। इनको अग्नि देवताके तारे कहते हैं। आंखसे इनमेंसे सात तारे स्पष्ट दीखते हैं; जिनको सम्भूति, अनुसूया, क्षमा, प्रीति, सन्नति, अरुन्धती और लज्जा के नामसे पुकारा जाता है*। यही क्रमसे पूर्वोक्त सप्तर्षियोंकी धर्मपत्नी हैं, एवं लोकमाताएं प्रसिद्ध हैं। कालिदासने इस पुञ्जमें छः ही तारे माने हैं। पुराणोंमें छही माताएं मानी हैं। यही स्कन्दकी माताएं थीं। स्कन्द साक्षात् शिवके पुत्र थे। पाठकगण कुछ कल्पनाका विस्तार कीजिये तो पता चलेगा कि कालपुरुष ( मृगशिरा ) या ओरायन साक्षात् शिव हैं। उसमें स्कन्दापस्मार स्वतः स्कन्द हैं और इधर कृत्तिकाएं उसको दूध पिलानेवाली छः माताएं विद्यमान हैं।

स्कन्दने बड़े होकर देवताओंकी सेनाका सेनानायक होकर तारकासुरको नाश किया था। वृषराशिमें ही एक तारा ( Alcyone ) देवसेना कहाता है। वृषके शिरोभागके पांच तारे स्वाहा या इलविलाके नामसे कहे जाते हैं।†

४. रोहिणी—अलदीबरण (रोहिणी) बड़ा प्रामाणिक तारा मशहूर है। इसकी दीप्ति वर्तमानमें दीप्ति गणनाकी इकाई मानी जाती है। इसके लाल रंगको देखकर प्राचीन विद्वानों ने इसका नाम लोहिनी ( रोहिणी ) रखा था। चन्द्रकी कान्तिका मार्ग बहुत कुछ इसके ऊपरसे निकलता है। इसीसे चंद्रका इससे विशेष अनुराग वर्णन किया गया है। वास्तवमें इसका रूप बृहस्पतिके सदृश उज्वल होनेसे इसको बृहस्पतिकी स्त्री कहा गया है। इसीके आधारपर चन्द्रको गुरुदारागामीका दोष देकर पुराण साहित्यमें कलङ्कित किया गया है।

* संभूतिरनुसूया च क्षमा प्रीतिश्च सन्नतिः।
अरुन्धती तथा लज्जा तत्पत्न्योलोक मातरः॥पद्मपुरा०

† इल्वला स्तच्छिरो देशे तारका निवसन्ति ये। अमरः
इल्वलाः पञ्चतारका इति क्षीरस्वामी।

रोहिणीका शकट भेद संस्कृतके विद्वान कभी नहीं भूलते। सूर्य यदि इस पञ्चतारामय रोहिणीका शकट भेद करके क्रमण कर जाय तो पृथ्वीपर भयङ्कर दुर्भिक्षकी सम्भावना होती है।

५. मिथुनराशि में (ख) सोम और ( क ) विष्णु दो तारे उज्ज्वल हैं। शेष ग, ठ, छ, इ—यह चारों तारे इलविला कहाते हैं। (ट) अनल, (घ) अनिल दो तारे और भी इसी राशिके हैं।

६ ओरायन या कालपुरुष मण्डलका (क) विशाख आर्द्रानक्षत्र है। इसका रंग गोल रुधिरके समान है। इसका एक तारा प्रजेश ( ट ) और और उसके साथी ( प, प ) दोनों मिलकर मृगशिरा कहाते हैं। इसमें एक स्कन्दापस्मार है। दूसरा मातृगण है।

इस मण्डल का ख तारा (रीगल) काणराज बड़ा प्रसिद्ध है। शेष चार ङ, ग, ढ, ञ, घ तारे क्रमसे अनिरुद्ध, कार्तिकेय, ऊषा, कार्तवीर्य और चित्रलेखा कहाते हैं।

अनिरुद्ध, ऊषा और चित्रलेखा तीनों ओरायनकी पेटी में हैं, जो लुब्धक किरातरूप शिवजीका छोड़ा हुआ पाशुपत बाण माना जाता है और जो मृगके बीच में आकर लगा है।

७. मृगव्याधमण्डलका क लुब्धक या आर्द्रा लुब्धक कहाता है। यही वैदिक कालका ज्येष्ठ श्वा है। अर्णवयानमण्डलमें क अगस्त्य है और ख मारीच है।

८. कर्कट राशि में क तोमर, घ गर्दभ है। गर्दभ ही योग तारा पुष्या कहाता है। M 44 मधुचक्र है। यह एक सुन्दर तारास्तबक है, जिसको देखनेसे जमा हुआ दानेदार शहदका सा ज्ञान पड़ता है।

शुनी मण्डल का क और ख क्रमसे प्रभाष और प्रत्यूष कहाते हैं।

९. सिंहराशि में क (Reguelur) ख्याति कहाता है। ख (Denebola) उत्तरा फाल्गुनीका योग तारा है। ग (Algeib) सिंह ककुत् या शिवा कहाता है। इसीको पूर्वाफाल्गुनी भी कहते हैं। इसी राशि में ज, ढ, ठ, क्रमसे अर्जुन, केशर और मणि कहाते हैं। इस में ख्याति, सिंह ककुत् और ङ, छ और मणि यह पांच तारे मघा नक्षत्र कहाते हैं।

१०. ह्रदसर्प मण्डल में क कालिय, ढ वासुकी और ख शेष हैं। इसी मण्डल में वासुकी ङ, ग, छ, द, यह पांच तारे आश्लेषाके कहाते हैं। इनका देवता सर्प ही है। अन्य नाम भी प्रायः सब सर्पोंके ही हैं।

११. कन्या राशि में क चित्रा (स्पाइका) अति उज्ज्वल तारा है। ग नाभि है। (ङ) द्राक्षा हरणी, ख जपजवा, घ आपः, छ जानु, क्र श्रीमाता, ञ आपोवत्स और ड द्रुपद है।

कन्याका स्वरूप नाव पर बैठी हाथ में धान और अग्निदीप लिये कुमारीका स्वरूप कल्पित है। कालिदासके मतसे चित्रा तारा ही उसकी नाक में लगे मोती के समान उज्ज्वल है।

करतल मण्डल में क कनिष्ठा, ख मणिबन्ध, ग तर्जनी, घ अंगुष्ठ और ङ अनामिका है। यही पांचों तारे हस्ता नक्षत्र कहाते हैं। त्रिशङ्कुमण्डलका वर्णन पहिले हो चुका है। उत्तर किरीट मण्डलमें (Corona Boealis) चिन्तामणि (ध) और (क) किहिनूर दो तारे विशेष हैं।

सर्पमण्डल (Serpens) में क भीष्म, ख सुरसा और ङ अश्व—यह तीन तारे उल्लेख योग्य हैं।

१२. ज्येष्ठा—वृश्चिक (Scorpo) में (क) पारिजात ही ज्येष्ठा कहाता है। (ट) शुक्र, (घ) दिव्य चञ्चला या अनुराधा, (ड) सारण, (ख) वालि (ध) सुग्रीव (द) द्रोण; (त) रयि, (ट) पञ्चजन या मूला (ध) विद्युत्—यह तारे विशेष उल्लेख योग्य हैं। इनमें इतिहासके अनुसार शुक्र, सारण रावणके मन्त्री थे; वालि, सुग्रीव वानर थे; द्रोण महाभारतके धनुर्धराचार्य थे।

मूला नक्षत्र वृश्चिकका मूल होनेसे मूल कहाता है। वृश्चिकके सारे तारोंकी आकृति विशाल वृश्चिकके समान है।† इसीके पुच्छके पासके कुछ एक तारे शङ्ख कहाते हैं। यह शंख आकाश गंगामें तैरता हुआ बड़ा भला मालूम होता है। इसीको पञ्चजन कहा गया है। विष्णुने इसी पञ्चजनको मार कर अपना पाञ्चजन्य दिव्य शंख बनाया था।

१३. अभिजित। वीणामण्डल (Lyra) में क तारा नीलमणि अभिजित है। ग शूलफलक और ख शेलक है। यह तीन तारे सिंघाड़ेके आकारके अभिजित कहाते हैं।

१४. पूर्व और उत्तर आषाढ़ा—धनुषराशिका ण उत्तराषाढ़ा और ड तुलसी पूर्वाषाढ़ा कहाते हैं। ग विभीषण है।

१५. वक—वकमण्डल (Cygnus) में क, वकपुच्छमें है और ख वकमुखमें। विशाल क्षीर गंगामें पंख फैलाये दिव्य वकको देख कर सचमुच स्वर्ग नदी की कल्पना सुख देती है।

१६. श्रवण—गरुड़मण्डल (Aquila) में क वासुदेव श्रवणका योग तारा है; ग कर्ण है ख श्येन है।

१७. शेफालि (Cepheus) मण्डलमें क स्वाधिष्ठा और ख अग्निमम कहाते हैं। पक्षिराज मण्डल (Pegasus) में ख भाद्रपदका योग तारा है, ग गोपद है।

१८. शतभिषग्—कुम्भ राशिमें व गान्धारी, क धृतराष्ट्र, ट दुर्योधन, और म विदुर—यह

---

† मौल भाजि नव तारकाङ्किते
मूलभे सुतनु शाख मूर्तिनि।
(—कालिदासः)

४ तारे मुख्य हैं। इनमें दुर्योधन एक तारकसमूह है। सैकड़ों तारे मानो सौ भाई हैं।

१६.रेवती-मीन राशिमें ८ तारा रेवतीका है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन ज्योतिषियोंने तारोंको खूब अच्छी प्रकारसे अपने विनोदका साधन बनाया था। सम्पूर्ण गगन मण्डलको अपनी प्रौढ़ कल्पनासे विभाग किया था; उनकी विशेष आकृतियोंको बनते देख कर उसीमें अपना प्राचीन इतिहास खचित किया और उनके ज्ञानके साथ साथ इतिहासके गौरव और मान प्रतिष्ठाके लच्चेपात्र यशस्वी पुरुषाओंको सदाके लिए उनकी कीर्ति सहित अमर कर रखा था। वर्तमानमें यह निर्णय करना बहुत कठिन है कि किन नक्षत्रोंका नाम किस युग और किस कल्पमें क्या था। कुछ नाम वैदिक कालसे अब तक चले आये हैं, कुछ पुराने लुप्त हो गये हैं; कुछ नवीन बन गये हैं।

हमने अपनी मतिके अनुसार जैसा भी अनुसन्धान हो सका पौर्वात्य नक्षत्र विज्ञानको पाठकोंके समक्ष रखनेका प्रयत्न किया है। इसमें अभी बहुत सी त्रुटियां शेष हैं। पाठकजन स्वतः विज्ञ होकर पूरा कर लेंगे।

चित्र १७

नोट-इस लेखका जो अंश मेषाङ्कमें छपा है, उसमें आफिसकी भूलसे प्रमाण नहीं दिये गये। अतएव प्रमाण यहां पर दे दिये जाते हैं। प्रमाणोंका लेखसे सम्बन्ध भी दिखला दिया गया है।

वर्तमान लेखमें तारोंके साथ क, ख इत्यादि अक्षरोंका प्रयोग किया गया है। प्रत्येक तारक समूहके तारोंके एल्फा, बीटा (ग्रीक भाषाकी लिपिके अक्षरोंके नाम) आदि नाम दे दिये गये

हैं। हमने उन अक्षरोंके लिए क्रमशः क, ख ग आदि अक्षर प्रयुक्त किये हैं। किसी भी तारोंके नक्शेमें देखनेसे कथन स्पष्ट हो जायगा।

१-पृष्ठ ३४, कालम १, पंक्ति ५—

* मेषः शिरोऽथ वदनं वृषभो विधातुः
वक्षोभवेन्मिथुनं हृदयं कुलीरः।
सिंहस्तथोदर मथो युवतिः कटिश्च
बस्तिस्तुला मृदधं मेहनमष्टमःस्यात्॥
धन्वी चास्योरुयुगं मकरो जानुद्वयं भवति।
जंघा द्वितयं कुम्भः पादौमत्स्यद्वयं चेति॥

२-पंक्ति ११—

शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेन ते हविषा विधेम॥
(अथर्व का० ६, सू० ८)

३ पंक्ति १३—

ये त्रय कालकञ्जाः दिविदेवा दिविश्रिताः॥

४ पंक्ति १५—

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
(ऋ० १०, १४, ११)

५. पंक्ति २२—

† हिरण्यमयी नौरचरद् हिरण्यबन्धनादिवि।
तत्र भूतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठ मतन्वत॥

६. पंक्ति २४—

अपां फेनेन नमुचेः शिर उदवर्तयः। (ऋग्वेद)

७ पृष्ठ ३४, कालम् २ पंक्ति ६—

इषुणा तस्य शिरश्चिच्छेद,इषुः शिरश्चेत्युभयमन्तरिक्षमुत्प्लुत्य नक्षत्रात्मनावस्थितं दृश्यते।
( शतपथ भाष्ये सायनः )

८. पृ० ३६, का० १, पंक्ति ३०—

म्लेच्छा हि यवना स्तेषु सम्यक्शास्त्रमिदंस्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किंपुनर्दैवविद्विजः॥
(वराह० वृ० स०)

९ पृष्ठ ३६, का० २, पंक्ति ३३—

तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुकः शुचिश्चायन मुत्तरं च
नभोनभस्योऽथ इषुः सहोर्जः सहःस हस्याविति दक्षिणस्य तु
(वायु पुराण)

१०. पृ० ३७, का० १, पं० ३१—

तारामयं भगवतः शिशुमाराकृतिः प्रभोः।
दिविरूपं हरेर्यत्तु तस्यपुच्छे ध्रुवः स्थितः॥

११. का० २, पं० ९—

तदुपरि नियतः प्रवहो वायु विचरति—
भमण्डल व्यापी। तेन भ्रमणं भानां
... ... ... ... ... ( आर्य भट्टः )

१२ पृ० ४०, का० १, पं० १४—

सप्तमे वैवस्वत मन्वन्तरे—
कश्यपो त्रिर्वसिष्ठश्चविश्वामित्रोऽथ गौतमः।
जमदग्निर्भरद्वाजः एते सप्तर्षयो मताः॥
( श्री भागवतम् )

१३. पृ० ४०, का० २, पंक्ति १४—

सुनीतिरपितेमाता त्वदासन्नातिनिर्मला
विमानेतारका भूत्वा तावत्कालं निवत्स्यति
(विष्णु० १, १२, ६४)

१४. पृ० ४१, का० १, पंक्ति अन्तिम

इत्येव मुक्त्वा भगवान् जगाम
दिशंसयाम्यां सहसाऽन्तरिक्षम्।
... ... ...
तत्राभमं रम्यतरं हि कृत्वा
सं शुद्ध जाम्बूनद तोरणान्तं
तत्राथनिक्षिप्य विदर्भ पुत्रीं
स्वमाभमं सौम्य वपुर्जगाम॥ (वामन पु०)

# वैज्ञानिकीय

### १—शकर बनानेके नये साधन

हमारे देशमें ईख इस बहुतायतसे पैदा होती है कि इस वैज्ञानिक युगमें भी हमलोग शकर बनानेके अन्य साधनों-पर कोई विचार ही नहीं करते हैं। हमारी अनभिज्ञता, काहिली, अनुद्यमशील प्रकृतिके ही कारण अन्य देश हमसे उस हालतमें भी आर्थिक अवस्थामें अच्छे हैं, जब प्रकृतिने उनको बहुत कम ऐसे साधन प्रदान किये हैं, जिनसे वह अपनी नित्यकी आवश्यकताओंको पूरा कर सकें। उद्यमशील होनेके कारण ही अन्य देशवासियोंने विज्ञान-की शरण ले आज दिन हमें हर तरह पर सांसारिक उन्नतिकी दौड़में पछाड़ रखा है। जर्मनी ने चुकन्दर ( Beet-root ) से चीनी बनाकर चीनी-का अपना निजका व्यापार खड़ा करलिया।

समय समय पर वैज्ञानिक अपनी खोजों द्वारा संसारको उसकी आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके नये नये साधन बतलाते रहते हैं। अबतक शकरकंदसे शकर बन सकती है, इस बातका ज्ञान संसारको प्राप्त था। इसके बाद Maple-tree से जो यूरोपके उत्तरी देशों में बहुतायतसे पैदा होता है चीनी निकालनेमें सफलता हुई। अब The Nation's Business नामक पत्र में जे० एन० बिशप ( J. N. Bishop ) ने एक लेख छपवाया है जिसका सारांश यह है कि कुम्हड़े और पेठे से भी शकर बनाई जा सकती है। आपने अपने प्रयोगों द्वारा यह स्थापित किया है कि एक एकड़ कुम्हड़े या पेठेकी पैदावारसे एक एकड़ बीटकी अपेक्षा अधिक चीनी प्राप्त हो सकती है। आपके प्रयोगोंसे कुम्हड़े या पेठेसे १००में ६ हिस्से चीनी मिल सकती है। यह चीनी बिलकुल सफ़ेद और ज़ायक़ेदार होती है। तरबूज़से भी चीनी निकालनेमें सफलता हो गई है।

### २—व्योम में चित्रकारी

पृथ्वी पर बैठे हुये अनेक प्राकृतिक दृश्योंके चित्र चित्रकारोंने बनाडाले, परन्तु इस हवाई जहाज़ोंके युग में उड़ते हुये जहाज़ों पर से पृथ्वीके प्राकृतिक दृश्योंका निराले और विचित्र ढंग (Perspective) पर चित्र खींचना इस युगकी एक निराली ही कला है। (Captain A. E. Cooper) केप्टिन ए० ई० कूपर जो बृटिश व्योम यान विभागके कर्मचारी हैं इस नई शैलीके आचार्य हैं। आपने लड़ाई के समय हवाई जहाज़ोंमें बैठे हुये बहुत से स्थानोंके बड़े ही अद्भुत दृश्योंके चित्र खींचे थे। पृथ्वी से अनेक उड़ती हुई चीज़ोंका चित्रांकित करना तो आज दिन बहुत ही सरल है। चित्रकारकी सिद्ध-हस्त-कलाको छोड़ ऐसे साधन मौजूद हैं, जिनके द्वारा बड़ी सुगमतासे आकाशमें उड़ती हुई चीज़ों-का चित्र लिया जा सकता है। परन्तु व्योम-यान में उड़ते हुये चित्रकारीका ब्रुश व तख्ता लिये हुये और जेबमें रंगोंका बक्स दबाये हुये पृथ्वी पर होनेवाली घटनाओं तथा यहां के अन्य नैसर्गिक दृश्यों-का चित्र खींचना बड़ा ही विस्मय-जनक और कौतूहलोत्पादक है। संसारमें इस नई कलाका अभी प्रादुर्भाव ही हुआ है। भविष्यमें इसकी बहुत कुछ उन्नति होगी, यह हमारा विश्वास है।

### ३—पानी पर चलनेवाली बाईसिकल

फ्रांसमें सदा नई नई बातोंकी खोज होती रहती है। वहांके निवासी हर बातमें विचित्रता लाना चाहते हैं। कला कौशल और सफ़र करनेके साधनोंसे लेकर प्रत्येक गृहस्थके जीवन संबंधी हर काममें वह यांत्रिक सुगमता स्थापित करना चाहते हैं। इसी देशमें पहले पहल गुब्बारोंकी ईजाद हुई, मोटर गाड़ी भी यहींसे चली, वायु-यानोंका जन्म-स्थान भी इसी देश में है। हवासे भरे यानोंका उड़ान यहीं से शुरू हुआ। इसी तरह आज कल पानी पर चलनेके लिए भी इस देशमें एक प्रकारकी बाईस्किल बन गई है। मालूम

होता है कि इस देशके निवासी वैज्ञानिक प्रकृति देवीसे सदा नये नये खेल खिलौने प्राप्त करनेके उद्योग में रहते हैं।

हाल में ही पेरिस नगरसे कुछ दूर ईंगिन (Enghien) स्थान पर पानी पर चलने वाली बाईसिकलों की दौड़ हुई थी। इस दौड़ में बड़ी ही विचित्र मशीनें देखनेको मिलीं। कुछ लोगोंने हवाई-जहाज़ोंके (Propellers) प्रेरक यंत्रों द्वारा अपनी मशीन चलाने का प्रबन्ध कर रखा था, कुछ ने (Marine screw) मेरीनस्क्रू लगाकर अपनी मशीनको चलाया और कुछ लोगोंने इन दोनों युक्तियों द्वारा अपनी मशीनकी चलन-शक्ति दृढ़ कर ली। परन्तु इन सब मशीनोंको छोड़ कर इनाम जिस मशीन वालेको मिला है उसकी मशीन बहुत ही सादा है। इस जल-साईकिलके पावदानों (Pedals) की हरकतसे प्रेरकयंत्रों (Propellers) में गति उत्पन्न होजाती है और इसके हत्थोंसे (Handles) सम्बन्ध रखनेवाली (Rudders) पतवार द्वारा मशीन इधर उधर चलाई जा सकती है।

४—पौन्स-विनेक पुच्छलतारा

यह तारा सन् १८१९में पौन्स नामक ज्योतिषी ने सबसे पहले मारसेलसकी (Observatory) वेधशालासे देखा था। इसके बाद एन्के (Encke) ने गणित द्वारा यह प्रमाणित किया कि इस तारेको सूर्य की एक प्रदक्षिणा करनेमें प्रायः ३ बरस और ६ महीने लगते हैं। बौन नगर (Bonne) की (Observatory) वेधशालासे सन १८५८ के मार्च महीनेमें विनेक (Winnecke) नामीज्योतिषी ने एक पुच्छल तारा देखा। पौन्सके तारे और इस तारेकी गति और कान्तिपथ (Orbit) की समता देखकर इन्होंने इसे और पहले तारे को एक ही मान लिया। अप्रैल सन् १८६९ में विनेक ने फिर इस सितारेको उदय होते देखा। इस लिये इसका नाम 'पौन्स-विनेक' पड़ा

ज्योतिषियोंके लिए यह पुच्छल तारा बहुत (Interesting) विनोदपूर्ण है, क्योंकि इसका व्योमपथ बराबर बढ़ता चला जा रहा है। जिस समय यह तारा पहली बार सन् १८१९ में देखा गया था उस समय इसके व्योमपथका वह भाग जो सूर्यके बहुत ही निकट था पृथ्वीके व्योमपथके अन्दर आ जाता था; इस वर्ष तो इसका कुछ भाग पृथ्वीके व्योमपथसे बिल्कुल सटा हुआ ही है या यों कहिये कि कुछ दूर तक पृथ्वी और इस तारे के व्योमपथ एक हो गये हैं। जून सन् १९१६ में जब यह तारा सूरजके समीप जा रहा था और पृथ्वीके व्योमपथ पर हो कर गुज़र रहा था, उस समय हमारी पृथ्वी सूर्यके दूसरी ओर थी। इस तारेके गुज़र जानेके ९ महीने बाद हमारी पृथ्वी इस स्थान पर हो कर गुज़री थी। परन्तु इस वर्ष इस तारेके गुज़र जानेके १० दिन बाद ही पृथ्वी भी उसी स्थानसे हो कर गुज़रेगी।

सन् १९१८ में यह तारा सूर्यसे बहुत दूरी पर था, परन्तु बृहस्पति गृहके यह बिल्कुल निकट हो कर गुज़र गया था। मालूम होता है कि इसी गृह के आकर्षणसे इसके व्योमपथ में यह तबदीली हुई है। इसी कारण बहुतसे ज्योतिषियोंका यह भी मत है कि संभवतयः हमारी पृथ्वी इस तारेके गुज़र जानेके एक महीने बाद उसी स्थानपर हो कर गुज़रेगी। पर यह भी संभव है कि हमारी पृथ्वी उस स्थानसे एक महीने बाद गुज़रे या इतने थोड़े समयके बाद गुज़रे कि हम इस तारेके अग्र भागसे बहुत ही निकट रह जायं या इससे टकरा जायं।

टकरानेसे क्या होगा ?

इस प्रश्नका यथार्थ उत्तर देना ज़रा कठिन काम है, पर तो भी लोगोंने अनुमान और कल्पना द्वारा इस त्रुटिको पूरा करने का प्रयत्न किया है। एक और भी कठिनाई है और वह यह है कि इन पुच्छल तारोंका अब तक हमें पूरा पूरा ज्ञान भी नहीं हो पाया है। हां, हमें निश्चित रूपसे इतना

जरूर मालूम है कि उल्काओंसे इन तारोंका बड़ा घनिष्ठ संबंध है। दोनों सूर्यके चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं। दोनोंका व्योम पथ भी समानाकार होता है। हमें यह भी मालूम है कि जब कभी हमारी पृथ्वी इन तारोंके पथपर हो कर गुज़रती है तो उल्कापात भी खूब होता है। बहुतसे वैज्ञानिकोंका मत है कि इन तारोंका अग्र भाग बहुत से उल्का समूहोंका बना हुआ है और यह उल्का समूह रेतके कणोंके बराबर कणोंसे बना है। जैसे जैसे पुच्छल तारा सूर्य की ओर बढ़ता जाता है उसके व्योम-पथमें यह समूह बिखर कर सहस्रों उल्का बखर जाते हैं ? और स्वयम् जगद्व्यापी आकर्षण शक्तिके कारण सूर्यके चारों ओर घूमने लगते हैं। तारेके गुज़र जानेके बहुत दिनों पश्चात् भी जब हमारी पृथ्वी इस व्योम-पथसे गुज़रती है तो बहुतसे छोटे बड़े उल्काओंसे इसका समागम हो जाता है। इनका वेग अधिक होनेके कारण जब यह हमारे वायु मंडलमें आ जाते हैं तो यह उत्तप्त हो कर प्रज्वलित (heated to incandescence) हो जाते हैं और कुछ बड़े बड़े उल्काओंको छोड़ कर प्रायः सभी उल्का पृथ्वीपर पहुंचने तक वायव्यो रूप हो जाते हैं। इसी घटनाका नाम उल्कापात है।

सन् १८९६ में जब हमारी पृथ्वी ६ महीने बाद उसी व्योम-पथसे गुज़री जिससे पौन्स-विनेक गुज़र चुका था तो बड़ा भारी उल्कापात हुआ था। इस वर्ष संभव है कि हमारी पृथ्वी १० दिन बाद ही उस व्योम-पथसे गुज़रे। अस्तु हम अनुमान करते हैं कि इस वर्ष उल्का पात का बड़ा मनोहर दृश्य देखनेको मिलेगा। हमारी पृथ्वी हेली आदि कई पुच्छल तारोंके पुच्छ भागमें होकर कई बार गुज़र चुकी है; परन्तु जहां तक हमें मालूम है इनके अग्रभागसे उसका कोई समागम नहीं हुआ है।

## प्राप्ति स्वीकार

निम्न लिखित सज्जनोंसे जो धन अप्रेल मासमें प्राप्त हुआ तदर्थ कोटिशः धन्यवाद—

प्रोफेसर चुन्नीलाल साहनी, एम. एस-सी., प्रयाग ... ... ५)

प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी., प्रयाग ... ... १२)

प्रोफेसर अन्नदा प्रसाद सरकार, डी. एस-सी प्रयाग ... ... १२)

## सूचना

किसी सज्जनने मनीआर्डर द्वारा ३=) विज्ञानके चन्देके भेजे हैं। कूपनमें कुछ लिखा नहीं था। नाम श्री० रत्नाराम गुरु है। उक्त सज्जनसे प्रार्थना है कि कृपया अपना पूरा पता लिख भेजें।

निवेदक
मैनेजर

## अप्रैलमासका हिसाब

### आय

| | |
|---|---|
| चन्दा सभ्योंका ... ... ... ... ... | २९) |
| पुस्तकों की बिक्री का ... ... ... ... | ५६=) |
| योग | ८५=) |
| ३१ मार्च को रोकड़ बाक़ी ... ... | १७१६।-)। |
| महायोग | १८०१॥)। |

### व्यय

| | |
|---|---|
| किराया दफ़्तर, मार्च तथा अप्रैल का ... ... | ६) |
| मुतफ़र्रिक ... ... ... ... ... ... | ६=) |
| टिकट ... ... ... ... ... ... | ।=) |
| योग ... ... ... ... ... ... ... | १५॥) |
| ३० अप्रैलको रोकड़ बाक़ी ... ... | १७८६)।। |
| महायोग | १८०१॥)। |

*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.*

पूर्ण संख्या ७५ | Reg NO A 708

भाग १३ | मिथुन १९७८। जून १९२१ | संख्या ३

Vol XIII. | NO. 3

# विज्ञान

## प्रयागकी विज्ञान परिषत्का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

[वार्षिक मूल्य ३) ] | [एक प्रतिका मूल्य

# विषय सूची

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग १३ } मिथुन, संवत् १९७८ । जून सन् १९२१ । { संख्या ३


## क्या मर्द औरतोंसे ज्यादा काम करते हैं ?

पाठको, यह मेरे और आपके, सबके, अनुभवकी बात है कि पुरुष बड़ा अभिमानी पशु है । मैंने जानबूझ कर पशु शब्दका प्रयोग किया है; क्योंकि विचारशील न होना पशुका प्रमुख लक्षण है । और मैं आपके सन्मुख यह सिद्ध कर दूंगा कि मनुष्य, चाहे वह कितनी ही शेखी मारे अथवा डींग हांके, व्यवहारमें निरा पुच्छहीन पशु है । यह बात उसके नित्यके जीवन, और व्यवहार तथा उसकी सभ्यतासे सिद्ध कर दिखाना आज मुझे अभीष्ट है । पहले मैं आजसे लाखों करोड़ों वर्ष पहलेकी बात आपसे कहता हूं । उस समय पृथ्वी-का अधिकांश बरफसे ढका हुआ था और हिमावरण शनैः शनैः पश्चिमकी ओर खिसका जाता था । उसी समय पुच्छहीन बन्दरोंका विकाश होकर मनुष्य जातिका जन्म हुआ था । उस ज़मानेमें मनुष्य वृक्षों-पर रहता था । आदिम मनुष्यकी मानसिक शक्तियों-को दो स्वाभाविक आवश्यकताएं अजीब ढांचेमें ढाल रही थीं और भावी उन्नतिका मार्ग अंकित कर रही थीं । वह दो आवश्यकताएं थीं क्षुधा और काम पिपासा । स्वभावसे ही मनुष्य फला-हारी है; परन्तु उचित जलवायुके अभावसे उस सुदूर कालमें पर्याप्त वानस्पतिक भोजन न मिलने से मनुष्य मांसभोजी बन गया । दूसरे बड़े बड़े बनचरों और महाकाय हिंसकों जैसे वाइसन, डिने-सौर, मैमथ, केवबियर आदिके भयसे मनुष्यको बहुत शीघ्र ही वृक्षोंको छोड़ गुफाओंकी शरण लेनी पड़ी । अब एक और नयी आवश्यकता उपस्थित हुई और वह थी आत्मरक्षा की । काम पिपासाने पुरुष और स्त्रियोंको साथ रहना सिखाया । पहले पहल पुरुषों और स्त्रियोंका समागम विशेष ऋतुओंमें ही हुआ करता था । शीतकालमें वह अलग हो जाते थे और दूसरे वर्ष वसन्तके पुनरागमनके समय लौट कर फिर मिलजाते थे । परन्तु कुछ दिनों बाद यह

बन्धन अधिक दृढ़ होगया। स्त्रीने पुरुषको अपनी स्वार्थपरता त्यागकर अपने मनको विस्तृत करनेका अवकाश दिया। उस प्रारम्भिक कालमें भी स्त्रीके रूप लावण्यने पुरुषोंपर मोहिनी डाली और उनकी उच्छृङ्खलताको कुछ कम कर सभ्यताका मार्ग दिखला दिया।

उस समयमें एक मनुष्य एक या एकसे अधिक, कई, स्त्रियां रखता था। जब सन्तान उत्पन्न होती थी तो थोड़े दिन बालकोंकी स्वाभाविक कोमलता और मधुरतासे मुग्ध होकर उनका लालन पालन मनुष्य करते ही थे, परन्तु बड़े होनेपर ईर्षा उत्पन्न हो उन्हें यह सुझाती थी कि कहीं यह तुम्हारी औरतें न ले भागें और स्वार्थपरता यह बतलाती थी कि जो शिकार करके लाओगे वह इन्हींके खिलानेमें खर्च हो जायगी। इन विचारोंसे प्रेरित हो कुटुम्बका मालिक बच्चोंको मारकर खाजाता था या भगा देता था। भगोड़े समय पाकर वृद्ध महोदय को मारनेकी चेष्टा करते थे और यदि सफलीभूत होतेथे तो उनके परिवारके मालिक बन बैठते थे।

जब तक छोटी शिकार मिलती रही, तब तक तो मनुष्यने छोटे छोटे कुटुम्बोंके रूपमें रहना उचित समझा, परन्तु जब छोटी शिकार मिलना बन्द हो गया और केवल बड़ी शिकार ही रह गयी तो उसे उनके मारनेमें औरोंकी सहायताकी आवश्यकता पड़ने लगी। इस बातने तथा हिंसक पशुओंसे रक्षा करनेकी अभिलाषाने मनुष्यको पहले पहल अपने साथ साथ दूसरोंके लिए उपाय करना सिखाया। इधर तो मनुष्य की आत्मरक्षाके लिए, संघ बनानेकी उपयोगिता मालूम होने लगी। उधर मातृस्नेहने यह गवारा न किया कि सन्तानकी हत्या की जाय और उनको मार भगाया जाय। अतएव स्त्रीने पुरुषोंपर प्रभाव डाला। उन्हें यह समझाया कि जब औरोंकी सहायताकी आवश्यकता रहती है तो अपने पुत्रोंको ही अपने पास रखो, पर यह शर्त करलो कि अपनी बांबी कहींसे छीनकर और जीतकर लावें। इस प्रकार स्त्रीने मनुष्यको सभ्य बनानेवाली पहली बात—धर्मका विचार अथवा नियमका आदर—मनुष्यको सिखलाई और सभ्यता की नींव—समाज—का सूत्रपात किया।

पिताकी शक्ति और माताकी ममताका सामना था। प्रेमकी विजय हुई। पशु बलको कुछ परमाजितकर उसे सभ्यताका स्त्रीने मार्ग दिखला दिया। धर्म या नीतिका भाव बुड्ढे और बालक दोनोंमें पैदा कर देना, स्त्रीका सबसे बड़ा मारकेका काम है। इच्छा, क्रोध और भयके भावोंके अतिरिक्त दूरदर्शिता, विचारशीलता और पर-हितरतता पहले पहल उच्छृङ्खल मनुष्यको स्त्रीने सिखायी।

समाज का पहला सिद्धान्त यह है कि मनुष्य आत्मसंयम सीखे और दूरदर्शितासे भावी सुख और संतुष्टिके द्वारपर वर्तमानमें अपनी इच्छाओंको बलिदान कर दूसरोंका भी ख़याल रखना सीखे। जब मनुष्यने यह पाठ सीखा तो युवक भी निर्भय हो रहने लगे और नीति और शिष्टाचारका भाव उनमें उत्पन्न होनेलगा। एक तरफ तो आत्मसंयमने उनकी चेतना शक्तिका विस्तार कर दिया जिससे उनके मानसिक उन्नतिका द्वार खुलगया, दूसरी तरफ समाज का बन्धन और शिक्षाप्रद प्रभाव दिनों दिन बढ़ता रहा और उनको दूसरोंकी इच्छा और भावोंका आदर सिखलाता रहा। इस प्रकार लोक-विचार (Public opinion) का समाजके सदस्यों पर अधिकाधिक अधिकार होने लगा।

जब मनुष्य जंगलोंमें शिकार करते फिरते थे तो स्त्रियां अपने निवास स्थानपर ही रहती थीं। अतएव जल वायुसे अपनी रक्षा करनेके इन्होंने अनेक साधन सोच निकाले और गृह-निर्माण विद्याका सूत्रपात किया। अधिक समय मिलनेसे कृषि, लेन देन और औषधोपचारका भी प्रचार स्त्रियोंने ही किया। चित्रकारी, संगीत आदि ललित कलाओंका आविष्कार भी स्त्रियोंने ही किया। इस बातको हठीले पुरुष भी मानते हैं, परन्तु उन्हें एक बातका बड़ा अभिमान है कि हम कमाऊ हैं, हमी अन्न

वस्त्र जुटाते हैं; इसलिए हम श्रद्धेय और पूज्य हैं। बहुत से पुरुषोंका यह मिथ्या विचार है कि हम ही गृहस्थीके मूलाधार और पोषणकर्ता हैं; हम ही सबकुछ करते धरते हैं; हम स्त्रियोंसे अधिक विचारशील, गुणवान, बलवान, मतिमान, परिणामदर्शी, उद्यमशील, विद्यासम्पन्न, चतुर, सहनशील, हैं। स्त्रियोंको स्वभावसे मूर्ख, संकीर्ण हृदय, अधिक खानेवाली, कम काम करनेवाली, मानते हैं। स्त्रियोंको 'सदा ताड़नाके अधिकारी', बेमोलके गुलाम, बेतनख्वाहके नौकर और बेदामका विषय वासनाके तृप्तकरने का साधन समझना बड़े फख्रकी बात समझी जाती है।

प्राचीन वैदिक कालमें स्त्रियोंका समुचित आदर होता था। मनुके समय तक स्त्रियां आदर और सम्मानकी पात्र समझी जाती थीं। जिस कुलमें नारियां प्रसन्न रहती हैं; तहां देवताओंका निवास रहता है; जहां स्त्रियां दुखी रहती हैं वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। स्त्रियोंका सदा वस्त्र और आभूषणोंसे सत्कार करना चाहिये। यह मनुका उपदेश था। प्राचीन कालमें स्त्रियोंका यहां तक सम्मान होता था कि स्त्रियोंपर हाथ उठाना, शस्त्र चलाना, कायरोंका काम समझा जाता है। अजेय भीष्मको मारना किसीके बूतेकी बात न थी। कूट राजनीतिके ज्ञाता कृष्णने पाण्डवोंको सलाह दी कि भीष्म ही बतला सकते हैं कि हम अमुक विधिसे मारे जायंगे। भीष्मने क्या अच्छी तरकीब बतलाई है। 'अर्जुन, शिखण्डी पूर्वमें स्त्री था. अपने स्थानपर उसे आगे खड़ाकर पीछे आप हो जाना। उसपर मैं बाण चलाऊंगा नहीं, अतएव अवसर पा मुझे मारलेना।" जान तक जाना मंजूर था, पर पूर्वमें जो स्त्री था, उसे मारना क्या, उसपर हाथ उठाना तक मंजूर न था।

परन्तु हिन्दू समाजके ह्रासके साथ ही साथ स्त्रियोंकी इज्जत कम होती गई। यद्यपि आज भी संसारमें पुरुष और स्त्रियोंके इतने अच्छे सम्बन्ध और परस्पर प्रेमभाव भारतके बाहर मिलने मुश्किल हैं; तथापि हम उस पुराने उच्च आदर्शसे बहुत गिर गये हैं। "जिस कुलमें स्त्रियां दुखी रहती हैं, वह कुल नष्ट हो जायगा।" यह मनु महाराजका वाक्य अक्षरशः सत्य है। हमारे देखते ही देखते, स्त्रियोंके असन्तुष्ट होते सैकड़ों खानदान खाकमें मिल गये। अब स्त्रियोंका दुख बढ़ता जाता है, कुलोंके बाद जातिकी बारी आती है। हिन्दुओ, यदि न चेते तो तुम्हारी जाति न कुछ दिनोंमें मर मिटेगी। स्त्रीपर स्त्रीका अत्याचार, पुरुषोंके अत्याचारसे भी ज्यादा है; परन्तु उसके लिए भी ज़िम्मेदार पुरुष हैं। यह उनका कर्तव्य है कि उचित प्रबन्ध करें।

### स्त्रियोंका महत्व

विज्ञानकी दृष्टिसे देखिये तो स्त्रियां ही समाजकी समुन्नति, वृद्धि और तारतम्यके लिए मुख्य साधन हैं। पुरुष केवल मज़दूर है, जिसका काम स्त्रीके लिए भोजन-वस्त्र लाने और घर बनानेका है। जातिकी रक्षाकी दृष्टिसे—कुलोंके सातत्यके विचारसे—पुरुषोंका इतना महत्व नहीं, जितना स्त्रियोंका है। पुरुष गौण हैं, स्त्री प्रधान है। मक्खियोंको देखिये। उनमें जहां नरने रानीके गर्भाधान किया कि बिचारा बेमौत मरा। फिर उसकी आवश्यकता नहीं। जब आवश्यकता पड़ती है, फिर नर पैदा कर लिया जाता है। मनुष्य समाजमें यद्यपि यह असम्भव है, तथापि इससे सिद्धान्त निर्णय हो सकता है।

दूसरे, माताके स्वास्थ्यका, उसके भावों और विचारोंका जितना प्रभाव सन्तानपर पड़ता है उतना पिताका नहीं। जिस समयसे गर्भाधान होता है और जबतक बालक दूध पीता रहता है, तबतक उनका सम्बन्ध विद्युत् धारा ले जानेवाले तार और चुम्बकका सा रहता है। तार भेजते समय, डैमो द्वारा तारमें चलनेवाली धारामें जैसे जैसे परिवर्तन होता है तैसे तैसे दिक्सूचक दायें बायें नृत्य करता है, अथवा टेलिफोनके परदेको नचाकर भिन्न भिन्न स्वर उत्पन्न करता है। ठीक उसी प्रकार

माताका प्रत्येक भाव, प्रत्येक बचन और प्रत्येक कार्यका प्रभाव गर्भस्थित बच्चेपर पड़ता है। इस बातसे भी स्पष्ट हो जायगा कि जातिकी दृष्टिसे माताका महत्व ही अधिक है। पुष्प समान कोमल बालकोंका लालन पालन करना कोमल हृदया माताओंका ही काम है। जो कुछ प्रेम सेवा परोपकार, दया, शील और शुद्धताके भाव मनुष्योंमें मिलते हैं वह केवल माताओंके प्रभाव से।

स्त्रियां जबसे उठती हैं, तबसे बरतन मलना, झाड़ू देना, खाना बनाना पतिकी सेवा और सन्तान की सुश्रूषा तथा देखरेख, कपड़ोंका सीना या रफू करना, छानना, बीनना, कूटना, दधिमन्थन, आदि अनेक काम सोनेके समय तक बराबर करती रहती हैं। इसपर भी पतिदेव सो जायं तब सोना और उनके पहले उठना—इसका ध्यान भी बिचारीको रखना पड़ता है। यदि दो चार बच्चे हो गये, -जिसके लिए स्त्रियां न जाने कितनी मिन्नतें माना करती हैं और कितने देवी देवता मनाया करती हैं, तो उसका कष्ट और भी बढ़ जाता है। उधर बाबू साहबको देखिये। कोट बूटसे सुसज्जित हो कर दस बजे दफ्तरमें पहुंचे। चार बजे तक कागज रंगे और अफसरोंकी दस पांच डांटें खाईं शामको आये शान जमाते हुए और दस बातें सुनाते हुए। गोया दफ़तरमें जो झिड़कें मिली थीं उनका प्रायश्चित्त हो रहा है। घर पर पहुंच कर स्त्री का घरके काममें हाथ बटालें तो बाबू साहबकी बातमें बट्टा लग जाय। प्रायः क्लर्क समुदायको देखा गया है कि उनका आफिस ही उनके जीवनका सर्वस्व है। दिनमें ४-६ घण्टे वहां काम करेंगे, पर दिन रात उसी की चर्चा, साहबकी अर्चा और ध्यानमें ही व्यतीत होता है।

आफिसकी बेगारके बाद, घरके काम काजमें यदि पुरुष हाथ बटाएं और साथ ही साथ प्रेमसम्भाषण भी होता रहे तो जो गृहस्थ जीवनका अपूर्व आनन्द मिलेगा वह स्वर्गके सुखसे किसी अंशमें कम न होगा। "गृहस्थी रूपी गाड़ीके पुरुष और स्त्री दो पहिये हैं।" उसके उचित रूपसे चलानेके लिए दोनों समान होने चाहियें, उनपर समान भार और समान उत्तरदायित्व रहना चाहिये, दोनोंके समान अधिकार और समान कार्य होने चाहियें। यद्यपि मेरा यह विश्वास है कि स्त्रीको पुरुषकी इच्छानुगामिनी होना चाहिये। बिना इसके गृहस्थीमें सुख और शान्ति नहीं रह सकती; तथापि मैं यह कहे बग़ैर नहीं रह सकता कि पुरुषोंने अपने मिथ्याभिमान से स्त्रियोंको पददलित कर रखा है और समाजकी गिरी हुई हालत उसीका नतीजा है।

पाठको, ऊपर जो कुछ बातें मध्यमश्रेणी के लोगोंकी कही गई हैं उनसे स्पष्ट हो गया होगा कि स्त्रियां काम बहुत ज्यादा करती हैं और सोना भी उन्हें कम नसीब होता है। रहा खानेका सो हम सब जानते हैं कि जो कुछ ईश्वरकी इच्छा और मर्दोंकी कृपासे बच रहता है उसे ही मिल बांटकर स्त्रियां खाती हैं। मर्दोंको अच्छेसे अच्छा खिला देना उनका अभीष्ट रहता है। देखिये कितना अत्याचार है। सबसे ज़्यादा काम करें, सबसे कम आराम करें और सबसे कम पौष्टिक पदार्थ खानेको मिलें। निम्न श्रेणीमें तो स्थिति और भी भयानक है। दिनभर तो स्त्रियां अपने पुरुषोंके साथ काम करती हैं। शामको जब घर लौटती हैं तो पुरुष हुक्का ले लेकर गप्पें लड़ाया करते हैं और स्त्रियां चूल्हा चेताती हैं। फिर रातको पतिको सेवा और बच्चोंकी खबर रखना उनका और भी फ़र्ज़ है।

अब तक तो हमने सब अन्दाजसे साधारण बातें लिखी हैं। अब देखें आधुनिक विज्ञान भी इस सम्बन्धमें कुछ कहता है या नहीं।

अमेरिका U. S. Government States relations Service ने इस बातकी वैज्ञानिक विधियोंसे जांच की है कि विविध प्रकारके घरके कामोंमें कितना परिश्रम पड़ता है और कितनी शक्तिका व्यय होता है। उदाहरणके लिए मान लीजिये कि एक स्त्री बच्चेको कपड़े पहनाती है। साधारणतः हम यह

समझ लेते हैं कि इसमें कुछ प्रयास नहीं पड़ता; परन्तु इसका ठीक ठीक नापना ही उपरोक्त जांचका अभिप्राय था। इसी प्रकार अन्य कामोंके विषयमें समझ लीजिये।

वैज्ञानिकोंने एक छोटीसी कोठरी बनायी, जिसमें हवा आ जा नहीं सकती थी। उसकी दीवारें कांचकी बनी हुई थीं। उसके भीतर एक बर्तन ओषजन से भरा रखा हुआ था, जिसमेंसे आषजन निकलती रहती थी और वायुको शुद्ध रखती थी। प्रबन्ध ऐसा किया गया था कि स्त्रीकी प्रश्वासवायु तक की भी जांच की जासकती थी। विशेष ध्यान इस बातपर दिया गया था कि जितनी गर्मी पैदा हो ठीक ठीक नाप ली जाय, क्योंकि जितना परिश्रम किया जायगा उतनी ही अधिक गरमी पैदा होगी या यों समझिये कि स्त्री रूपी एंजनके उत्पादित तापकी नाप ठीक ठीक हो सकती थी। पहले एक स्त्रीको इस कमरे के अन्दर जाकर कुर्सीपर शान्त भावसे बैठनेकी आज्ञा मिली। जो तापमापक आदि उस कमरेमें लगे हुए थे इतने सूक्ष्म-मापक थे कि यदि स्त्री हाथ उठाती थी तो भी उनमें स्पष्ट तापक्रमकी वृद्धि देख पड़ती थी। मालूम यह हुआ कि प्रति घंटे ६१ कलारी तापकी उत्पादित होती हैं। तदनन्तर उसे एक काठका बना हुआ बच्चा दे कर यह कहा कि इसे कई बार कपड़े पहनाओ और उतारो; जलदी करनेकी आवश्यकता नहीं है, साधारणतया जैसे काम करते हैं वैसे किये जाओ। नापका परिणाम यह निकला कि प्रति घंटेमें ८५ कलारी पैदा होती हैं। अतएव स्पष्ट है कि २४ कलारी इस काममें खर्च हुई।

यह परीक्षा बहुत उपयुक्त नहीं थी, क्योंकि गुड़ियाको कपड़े पहनानेमें उतना परिश्रम नहीं पड़ता जितना कि जीते जागते बच्चेको पहनानेमें पड़ता है। एक तो बालकका भार अधिक होता है, दूसरे वह हाथ पैर भी चलाता रहता है। मनोभावोंका जो प्रभाव शारीरिक क्रियाओंपर पड़ता है उसका विचार भी इसमें नहीं किया गया।

परन्तु अनेक व्यक्तियोंके साथ अनेक प्रयोगोंका जो परिणाम निकला वह यहां दिया जाता हैः—

शान्त भावसे बैठे रहनेके समय स्त्री ६० कलारी और पुरुष १०० कलारी पैदा करता है। अन्य कामोंमें इसके अतिरिक्त कितनी ताप पैदा होती है, नीचेकी सारिणीमें दिखलाया जाता है।

| काम | पुरुष | स्त्री |
|---|---|---|
| साधारण संचालन (Moderate exercise) | २४ | ७० |
| सवेग संचालन (Vigorous exercise) | ३६ | १३० |
| घोर परिश्रम (Hard labour) | ६० | २०० |
| भरसक परिश्रम (Utmost exertion) | १२५ | ४५० |

यह ध्यान रहे कि परिश्रमका दर्जा योशियोंकी सामर्थ्यानुसार माना गया था। अतएव जो पुरुषके लिए साधारण संचालन है वह स्त्रीके लिए घोर परिश्रम है। अतएव ऊपरकी सारिणीसे मालूम होता है कि पुरुष-बल स्त्री-बलसे प्रायः तिगुना है परन्तु स्त्रियां प्रायः मनुष्यसे $\frac{४}{५}$ खाती हैं। इस लिए स्त्रीकी यांत्रिक उपयोगिता मनुष्यकी अपेक्षा $\frac{५}{१२}$ ठहरी; परन्तु जब इस बातपर विचार किया जाता है कि स्त्रियां पुरुषोंकी अपेक्षा दुगुनेसे भी ज्यादा काम करती हैं, उनकी आवश्यकताएं कम हैं, उनका उत्तरदायित्व अधिक है, उन्हें कभी छुट्टी नहीं मिलती, तो यह मानना पड़ेगा कि उनकी उपयोगिता अधिक है। और सबसे महत्वका काम जो वह करती हैं जिसमें वह अनन्त शक्तिका उत्पादन करती हैं, अर्थात् सन्तानोत्पत्ति, जब उसके लेखे पर विचार किया जाता है तो एकाएक कहना पड़ता है कि मनुष्यका काम स्त्रीके कामके सामने, वैसा ही है जैसा पहाड़ के मुकाबिलेमें रामदाना।

साधारणतः स्त्रियां दिन रातमें इतना काम करती हैं कि उसमें १८२२ कलारी खर्च होती हैं। अर्थात् इतनी गर्मी खर्च होती है जितनी ६$\frac{१}{२}$ मनके

बोझको १२०० हाथ ऊंचा उठानेमें खर्च होती है।

स्त्रियोंके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है इसका पाठक स्वयम् निर्णय करलें।

---

## घरके बम्बेसे चिराग रोशन

इलेक्ट्रिक सप्लाइ कम्पनीके झंझटोंसे बचनेकी इच्छा रखने वालोंको एक खुशखबरी आज हम सुनाना चाहते हैं। प्रोफेसर कोलारडो (Prof Co-lardeau) एक विख्यात फ्रांसीसी भौतिक शास्त्री हैं। आपने बिजली पैदा करनेकी एक नई विधि निकाली है। आपका कहना है कि यदि पानीके रिज़र्वायर बम्बेसे २५० फुट ऊंचे हों तो "एक पन्थ दो काज" सिद्ध हो सकते हैं। बम्बेसे पानीका पानी लीजिये और बिजली भी पैदा कर लीजिये। बम्बेमें टरबाइन (Turbine) लगा कर उन्होंने डाइनेमो चला कर दिखला दिया। इतनी विद्युत् शक्ति पैदा कर दिखलाई कि एक ५०० बत्तीका और २०और १० से लगाकर २० बत्ती तकके लेम्प उन्होंने जलाये। संचायक घटोंका प्रयोग करनेसे प्रकाश बराबर मिल सकता है।

---

## वनस्पति-संसारमें विचित्रता

[ ले०—पं० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार ]

प्रकृतिके वस्तुतः परिणाम ही विचित्र हैं, ईश्वरकी माया ही अद्भुत है। क्या स्वतः और क्या परतः जो कुछ भी घटित हो जाता है उसमें निसर्ग (कुदरत) की विचित्रता ही मुख्य कारण हैं। वैज्ञानिक तो केवल उस विचित्रताका कारणानुसन्धान किया करते हैं। जैसे श्रीकृष्णकी माया से ही महाभारतके प्रतिपक्षी योद्धाओंका संहार हो गया था, अर्जुन तो केवल निमित्तमात्र थे। इसी प्रकार वैज्ञानिक चाहे कितने ही परीक्षण कर लें और कुछके कुछ नवीन आविष्कार कर लें तो भी वह प्रकृतिके अद्भुत विलासोंके प्रकट होनेमें निमित्तमात्र ही हैं। जैसे वर्तमान कालमें वैज्ञानिक प्रयत्न करके वनस्पति संसारकी अद्भुत बातोंको खोजकर बतलाते हैं प्राचीन कालमें भी वैसे ही बड़े बड़े वैज्ञानिकोंने विचित्रताएं आविष्कृत की थीं, जिनके कुछ एक नमूने पाठकोंके भेंट करते हैं।

(१) लाल कपास—कपासके पौधेकी जड़में जौ, तिल, हलदी और ढाकको कूट कर डाल दे और इन्हींके रससे सींचें तो लाल अङ्गारेके समान कपास उत्पन्न होती है।

(२) हरी कपास—सीम्बलकी छाल, हलदी, नील, तिरफला, कूठ और मद्यकी खाद कपासके पौधेकी जड़में नित्य दे; उसकी शाखा और तने पर इन्हींको कूटकर लेप करे और इन्हीके पानीसे सींचे तो तोतेके पंखोंके समान हरी कपास पैदा होती है।

(३) केलेके पेड़पर अनारका फल—अङ्कोल (पिस्ता) के पानीमें प्रथम सूअरके मांस और चर्बी को उबाले। उससे केलेके छोटेसे पेड़को ही सींचे, बड़ा होनेपर उससे अनारका फल उत्पन्न होगा।

(४) केलेके पेड़पर आमका फल—मनुष्यकी चर्बी और मांसमें हाथीके दांतोंका चूर्ण मिलाकर केलेके पौधेको पानीसे सींचें तो उसपर आमका फल लगेगा।

(५) सदाबहार आमकी बेल—पिस्तेके पानीमें बकरीका दूध डालकर उसमें ताजा मनुष्यका मांस उबाले और आमके पौधेको इस जलसे सींचें, और तिलोंकी खलको खादके रूपमें दें तो आमका पौधा बादमें अंगूरकी बेलके समान हो जाता है और सदा सब ऋतुओंमें फला करता है।

(६) गढ़े जितनी मूली—गढ़ेमें गाय और सूअरकी हड्डी और गोबर भरकर जला दे। फिर गढ़ेको साफ़ करके उसमें बालू भरकर मूली बो दे तो गढ़ेके समान ही मूली हो जाती है।

इस लेखकी बातें नीचे दिये हुए श्लोकोंके आधारपर दी गयी हैं।

यव तिल निशा पलाशैरुपचितमूला तदम्बुसिक्ताश्च
ज्वलदन लोपममसकृत् कर्पासी तूलकं सूते ॥११७॥
शाल्मलीत्वग्निशा नीली त्रिफलाकुष्ठमीधुभीः।
सकृल्लेपोपचारेण शुकपक्षनिभं भवेत् ॥११८॥
कोल शोणित मेदोभ्या मङ्कोल्लक्वथितेन च।
सिञ्चिता कदली सूते दाडिमीफलमुत्तमम् ॥२२२॥
नरमांसवसारक्तदन्तिदन्तविचूर्णितैः।
मिश्रितेनाम्भसा सिक्ता रम्भा चूतफला भवेत् ॥२२३
अङ्कोल्ल क्वथितं स्विन्नं नृमांसं छागदुग्धयुक्।
पिण्याकसहितं मूले सहकारस्य निक्षिपेत् ॥२२४॥
द्राक्षावल्लीसमाकारः सहकारः सदाफलः।
जायते निश्चितं धत्ते सर्वेषामद्भुतं यदि ॥२२५॥
गोकोजास्थिकरीषस्तु दग्धे गर्त्ते विशोधिते।
क्षिप्तं च वालुकापूर्णे मूलकं गत्तवद्भवेत् ॥२२०॥
( वृक्षायुर्वेद। शार्ङ्गधर पद्धतिः )

---

## आयंस्टीन

वैज्ञानिक संसारमें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो आयंस्टीनके नाम और युगान्तर कर देनेवाले कामसे परिचित न हो। वैसे तो गत १५ वर्षों से आयंस्टीनके कामकी धूम मच रही है, परन्तु २६ मई १६१६ से तो यूरोप और अमेरिकामें आयंस्टीनने एक महाद्भुत खलबली पैदा कर दी है। वह दिन उसके सिद्धान्तकी बड़ी भारी परखका था, उस परीक्षा में उसका सिद्धान्त 'बावन तोले पाव रत्ती' ठीक ठहरा।

आयंस्टीन जन्मसे मिश्रित स्विस-जर्मन है। १६०२ में ज्यूरिचके विश्वविद्यालयमें इन्होंने शिक्षा पायी। वहांसे पहले प्रेगको प्रोफेसर होकर गये और तत्पश्चात् राष्ट्रीय प्रुशियन विज्ञान परिषद्में १८००० मार्क प्रति वर्षपर अध्यापक नियुक्त हो गये। इस पदपर उन्हें केवल गवेषणा करना और कराना पड़ता है। इसी पदपर विख्यात भौतिक-रसायनी वान्ट होफ किसी समय काम करते थे।

इनके वैज्ञानिक कार्यका सविस्तर क्रमानुगत वर्णन यहांपर देना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि उनका काम विज्ञानके अनेक क्षेत्रोंमें हुआ है। पहली गवेषणा जिससे उनकी बड़ी ख्याति हुई 'ब्रौनियन गति' सम्बन्धी थी। इसका बड़ा रोचक वर्णन पेरिनकी पुस्तक "दी एटम्स" में दिया हुआ है।—

१८६३ में लार्ड केल्विनने "हर्ट्ज़ रिसर्चेज़ ओन इलेक्ट्रिक वेव्ज़" की भूमिकामें लिखा था कि "बहुत से कार्य कर्ताओं और अनुशीलकोंने वर्षों की मेहनतसे एक आकाशको सिद्ध कर पाया है, जिससे प्रकाश, ताप, चुम्बकत्व और विद्युत्की सभी बातें सरल हो जाती हैं।" परन्तु दश वर्ष बाद ही, उन्हें क्या ख्याल था कि जिस चीज़को वह अपने बड़े दीर्घ जीवनके पश्चात् इतनी महत्वकी बतलाते थे, उसीके विषयमें एक २७ वर्षका युवक ज़ोरके साथ कहेगा कि "ईथर (आकाश) का मानना अब अनावश्यक समझा जायगा।" दस वर्षके भीतर ही सैकड़ों वर्षो के कामके प्रकाशको अपने आविष्कारोंके तेजसे फीका कर देना आयंस्टीन जैसे उद्भट दार्शनिक का ही काम था।

आयंस्टीन बहुत ही सरल स्वभाव और शान्ति चित्तवाले पुरुष हैं। उनको देख कर कोई यह न कहेगा कि वह ऐसे अद्वितीय प्रभा सम्पन्न विद्वान् हैं। हालमें ही इनका स्वागत इंगलेण्डमें हुआ है। लार्ड हेलडेनके सभापतित्वमें इन्होंने व्याख्यान भी दिया है। इस अवसरपर लार्ड हेल्डेनने आपका परिचय इन शब्दोंमें कराया है, "न्यूटनके बाद सबसे बड़ा विद्वान् जो वसुंधरापर पैदा हुआ है आयंस्टीन है। ईश्वर करे बहुत दिनोंतक यह जीवित रहकर मनुष्यके ज्ञान क्षेत्रकी सीमा बढ़ाते रहें।" जब आयंस्टीन महोदय व्याख्यान देने खड़े हुए तो इनको देख कर लोगों को बड़ा ताअज्जुब हुआ। ऐसा सीधा सादा आदमी

चित्र १८—आयंस्टीन

भी वैज्ञानिक संसारमें हल चल मचा सकता है, यह किसीको विश्वास नहीं होता था। परन्तु जब चुने हुए शब्दोंमें, सुमधुर वाक्योंमें इनका व्याख्यान आरम्भ हुआ; जिस समय इनके अकाट्य तर्कद्वारा प्राचीन प्रौढ़ सिद्धान्तोंका खण्डन होने लगा; जब शताब्दियों पुराने ब्रह्म वाक्यके सदृश मान्य मत कार्डके घरके समान गिर कर गायब होने लगे; जब पुराने वैज्ञानिक इनके सामने बच्चोंके समान दीखने लगे, तब तो श्रोताओंकी आंखें खुल गयीं और वह मंत्र मुग्धसे, अङ्कित चित्रोंकी तरह, मालूम होने लगे। आयंस्टीन आरम्भमें जगद्-विख्यात उद्भट विद्वानों-के सामने कुछ स्वभावज नम्रताके कारण संकोचके वश सम्हल सम्हल कर तोल तोल कर शब्दोच्चारण करते प्रतीत होते थे, परन्तु शीघ्र ही तत्वदर्शिता-ने लज्जाशीलतापर विजय पाई और वह सच्चे सिद्धकी नाई उन्मत्त हो धारा प्रवाह व्याख्यान देने लगे। व्याख्यान उन्होंने अपनी प्यारी मातृभाषा जर्मनमें ही दिया।

पाठकोंके सन्मुख आज हम उसी सच्चे विद्या-नुरागीका चित्र उपस्थित करते हैं।

—रामानन्द त्रिपाठी।

## खत तोलनेका अद्भुत कांटा

एक बहुत ही सरल कांटा पत्र आदि हलकी चीज़ें तोलनेके लिए बड़ी सुगमतासे बनाया जा सकता है। इसके बनानेमें बहुत ही साधारण वस्तुओंका प्रयोग होता है। एक चौड़े मुंहका कांचका अमृतबान या आबखोरा पानी भरनेके लिए ले लीजिये। एक मामूली परखनलीमें थोड़ा सा सीसा या लोहेका बुरादा या गोलियां डाल दीजिये, जिसमें वह पानी-में छोड़नेपर सीधी तैरती रहे। नलीका मुंह काग से बन्दकर के तीन इंच या चार वर्ग इंचका दफ़्ती का टुकड़ा चिपका दीजिये। परन्तु यह ध्यान रहे कि काग दफ़्तीके बीचोंबीच रहे। ट्यूब को पानी-में तैराकर देख लीजिये कि कहां तक डूबती है। जहां तक डूबे वहां ट्यूबपर चिपकाये हुए कागज़ पर वाटरप्रूफ ड्राइंग इंकसे निशान लगा दीजिये। फिर भिन्न भिन्न बांट दफ़्ती पर रख कर अन्य तोलके चिन्ह कागज पर लगा लीजिये। अन्तमें सफेद चपड़ेकी वार्निश कागज़ पर उसकी रक्षाके निमित्त फेर दीजिये। चित्र सं० १९ से इस यंत्रकी बनावटका ज्ञान हो जायगा।
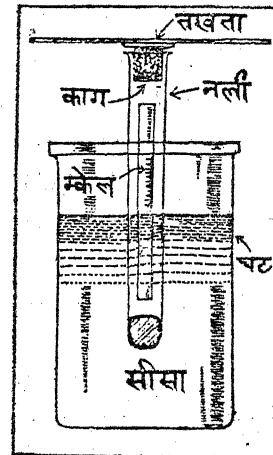
चित्र सं० १९

# चन्दन और चन्दनका तेल

(ले०—प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा, एम० एस-सी०, एफ० सी० एस०)

चन्दनका पेड़ दक्खिन हिन्दुस्तानके ऊंचे पहाड़ी जंगलोंके कुछ विशेष स्थानोंमें ही अधिकांश उगता है। यह मैसूर, कुर्ग और मद्रास प्रांतके कोयम्बटोर और सलेम ज़िलोंमें तथा नीलगिरि पहाड़ी और पश्चिमीघाटीमें पाया जाता है। बम्बई प्रान्तके गुजरात और डेकान जिलोंमें भी थोड़ा बहुत पाया जाता है। उत्तरी हिन्दुस्तानमें यह बोया जाता है। यहांकी भूमि इसके उपयुक्त नहीं है। आस्ट्रेलिया टापू और अमेरिकामें भी यह वृक्ष अब बोया जाता है, किन्तु वहांका चन्दन भारतके चन्दनके समान अच्छा नहीं होता। उसमें तेलका अंश भी कम होता है और तेलमें वह सब गुण नहीं पाये जाते, जिनके कारण वह औषधियोंमें प्रयुक्त होता है।

संस्कृत ग्रन्थोंमें तीन प्रकारके चन्दनका उल्लेख है। यह विभाग उनके बाहरी रङ्गपर किया गया है। श्वेत चन्दनको श्रीखण्ड कहते हैं। यह सबसे उत्तम समझा जाता है। दूसरे प्रकारका चन्दन पीला होनेके कारण पीत चन्दनके नामसे विख्यात है। तीसरे प्रकारका चन्दन लाल होनेसे रक्तचन्दन कहा जाता है। यह तीनों ही प्रकारके चन्दन अनेक कामोंमें आते हैं। हिन्दुओंके धार्मिक संस्कार और पूजा पाठकी सामग्रीमें इनका स्थान बहुत ऊंचा है। चन्दनका टीका शुभ अवसरपर हिन्दू लोग लगाते हैं। मनुष्योंके शवको चन्दनकी चितामें जलाना बहुत ही गौरवका विषय समझा जाता है। और जिनकी आर्थिक दशा अच्छी होती है वह अवश्य ही चन्दनका प्रयोग करते हैं। अग्नि उपासक पारसी लोग भी प्रति वर्ष अपनी दैनिक पूजामें मन्दिरोंकी पवित्र अग्निको जलता रखनेके लिए इसका प्रयोग करते हैं।

इसकी लकड़ी बहुत अच्छी होती है और उसपर नक्काशीका काम बहुत अच्छा किया जा सकता है। मैसूर राज्यमें इसकी बनी हुई अनेक विभूषित वस्तुएं जैसे कंघी, घड़ी रखनेके चौखटे, तसवीरोंके चौखटे, कास्केट इत्यादि बनती और बाज़ारोंमें बिकती हैं। इसका सबसे अधिक महत्वका प्रयोग आज कल तेल निकालनेमें होता है। लकड़ीमें ३० से ७० तक तेल रहता है और निकाला जा सकता है। इस तेलका सबसे अधिक भागका दवाओंमें और इतर बनानेमें प्रयोग होता है। इस तेलमें एक विशेषता है, जिसके कारण यह इत्र बनानेमें काम आता है। वह यह है कि सुगन्धित पुष्पोंके गन्धको यह तेल बहुत सरलता से खींच लेता है। गुलाब अथवा चमेली आदि सुगन्धित पुष्प यदि २४ घन्टे इस तेलमें डुबो कर रखे जायं तो उनकी खुशबू तेलमें खिंच आती है। इस प्रकार आठ दस बार ताज़े ताज़े पुष्पोंको उसी तेलमें डुबो कर रखनेसे उस पुष्पका इत्र तैयार हो जाता है। दवाओंमें ऊपरसे लगाने तथा खानेके लिए भी यह दिया जाता है। सूज़ाक (आतशक) की जितनी दवाइयां अंगरेजी मतानुसार मालूम हैं उनमें कोई भी इतनी गुणकारी नहीं, जितना यह चन्दन का तेल है। इसीसे पाश्चत्य देशोंमें इसकी बहुत मांग और खपत है। इसका स्वाद बहुत अरुचिकर होनेके कारण जिलेटिनकी बनी टिकियोंमें भर कर रोगियोंको खिलाया जाता है।

चन्दनका वृक्ष बारहमासी है। इसको कृत्रिम रीतिसे उपजाने को अर्थात् काश्त करनेकी जंगल विभागकी ओरसे, विशेष कर मैसूर राज्यमें, अनेक चेष्टाएं हो रही हैं। यह देखा गया है कि कृत्रिम रीति से उपजाये वृक्षमें तेलका अंश उतना अधिक नहीं रहता जितना अपने आप उगे हुए वृक्षोंमें होता है। अतएव कृत्रिम रीति से उपजाये चन्दनमें तेलका अंश बढ़ानेके भी अनेक प्रयत्न हो रहे हैं, किन्तु अभी

तक इसमें सफलता नहीं हुई है। पहले पहल १८६२ ई० में देखा गया था कि यह वृक्ष एक विशेष प्रकारके रोगसे आक्रमित होते हैं। रोगयुक्त शाखाओंसे जब डालियां निकलती हैं, तब पत्ते छोटे, मोटे और कड़े होते हैं और जैसे जैसे यह रोग बढ़ता जाता है, वैसे वैसे पत्ते छोटे छोटे होते जाते हैं। उनमें फूल नहीं लगते और कुछ समयके बाद वृक्ष सूख जाते हैं। यह बीमारी शाखा शाखा और वृक्ष वृक्ष फैलती है। इसे रोकनेके लिए एक साल (सन् १९०३ में) कुर्गमें २०,८०० वृक्ष उखाड़ डाले गये थे। मैसूर राज्यके जंगलमें १९०३ से १९१० तक ७००,००० से अधिक वृक्ष उखाड़ डाले गये। रुग्ण वृक्षोंमें कीटाणुओंकी उपस्थिति मालूम करनेके लिए जांच की गई थी; किन्तु उनमें कीटाणुओंका पता नहीं लगा। अभी तक इस बीमारीका ज्ञान लोगोंको बहुत कम प्राप्त हुआ है; यद्यपि इस विषयमें २० वर्षसे निरन्तर परिश्रम हो रहा है। चूंकि चन्दनके वृक्षको परिपक्व होने में प्रायः ४० वर्ष लगते हैं, यह अत्यन्त आवश्यक है कि इतने दिनों तक यह स्वस्थ दशामें रहे। इसके लिए जंगल विभागकी ओरसे बहुत व्यय हो रहा है और अनेक वैज्ञानिक इस विषय की खोज में लगे हैं। देखें कब तक इस रोगका यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है और कब उससे पीछा छूटता है।

चन्दनका व्यवसाय बहुत प्राचीन कालसे यहां हो रहा है। अरब और चीनी सौदागरोंके द्वारा प्राचीन कालमें यह इस देशसे बाहर जाता था। इस देशसे बाहर जानेवाला चन्दन अधिकांश मैसूर ही प्रान्तसे आता था। मैसूर और कुर्गमें राज्यका चन्दन पर इजारा है (State Monopoly)। मद्रास प्रान्तमें ऐसा नहीं है; किन्तु इस प्रान्तके चन्दनका बहुत अधिक भाग सरकारी जंगलोंमें ही है। गत यूरोपीय युद्धके पहले इन तीनों प्रान्तोंके जंगल विभागकी ओरसे नवम्बर और दिसम्बर मासोंमें चन्दनकी लकड़ियां नीलाम की जाती थीं। उनकी तादाद निम्न लिखित तालिकासे ज्ञात होगी।

| सन् | मैसूर राज्य | | | कुर्ग | | | मद्रास प्रान्त | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | तादाद | प्राप्त मूल्य | मूल्य फीमन | तादाद | प्राप्त मूल्य | मूल्य फीमन | तादाद | प्राप्त मूल्य | मूल्य फीमन |
| | मन | रु० | रु० | मन | रु० | रु० | मन | रु० | रु० |
| १९१०-११ | ६७१५७ | ११४६३२१ | १७ | ४९२३ | ८२७२८ | १६.८ | — | १२६१६० | — |
| १९११-१२ | ६८५४६ | १२५९३०१ | १९.६ | ४९२३ | ९९८४७ | २० | — | १४३०४३ | — |
| १९१२-१३ | ६५७७० | २२६७६५८ | ३४.४ | ५०३२ | ११४९९२ | २२.८ | — | २७१८७० | — |
| १९१३-१४ | ५८३९८ | २२५६८४३ | ३८.६ | ४४६१ | ११६१९३० | २६.३ | — | १५२३७५ | — |
| १९१४-१५ | ९०८५ | ३०६९७६ | ३३.७ | ८७० | २४१४३ | २७.७ | — | १७६१६२ | — |
| १९१५-१६ | ५४६७२ | १६,९९,६५७ | ३०.९ | १०३३६ | ३४४३०३ | ३३.३ | — | २४७२५६ | — |
| १९१६-१७ | ३६५३७ | २३०९४५१ | ६३ | ६१४७ | ३५५३५८ | ५७.८ | १०९८९ | ४८८१६५ | ४४.४ |
| १९१७-१८ | | नहीं बिका | — | ८१६० | ५२८९९१ | ६४.८ | ८०२४ | ५२३६९७ | ६५.४ |

उपरोक्त लेखसे यह विदित होता है कि सन् १९१३-१४ ई० में मैसूर राज्यको चन्दनकी बिक्रीसे प्रायः साढ़े बाईस लाखकी आमदनी हुई थी; किन्तु उसके बाद सन् १९१४-१५ ई० में—जिस साल लड़ाई छिड़ी—आमदनी कम होकर प्रायः ३ लाख ही रह गई। कुर्ग और मद्रास प्रान्तको इतनी घटी नहीं हुई। इतनी बड़ी घटीको देखकर मैसूर रियासत चुपचाप बैठनेवाली नहीं थी। वह इस घाटेको पूरा करनेका उपाय सोचने लगी। १९११ ई०में प्रायः २० रु० फी मन लकड़ीका दाम मिला था। उसके बाद शीघ्र ही १९१२-१३ ई० में दाम करीब करीब दूना होगया। इस विषयके अनुसन्धानसे मालूम हुआ कि वहांकी लकड़ियां जर्मन खरीद कर लेजाते थे और जर्मनीमें उससे तेल निकालते थे। जर्मन खरीदारोंकी आपसकी खैंचातानीसे लकड़ीका मूल्य एक ही वर्षमें प्रायः दूना होगया था। जब अंग्रेज और जर्मनोंके बीच लड़ाई छिड़ी, जर्मनोंका यहां आना बन्द होगया। लकड़ीके खरीदारोंकी कमी हो गई। अतएव मैसूर राज्यको घाटा हुआ। मैसूर सरकार तेल निकालनेका काम स्वयं हाथमें लेनेके विषयमें सोचने लगी। चन्दनसे तेल निकालनेका काम हिन्दुस्तानके लिए कोई नया नहीं है। बहुत प्राचीनकालसे यह काम होता चलाआता है, किन्तु जिस विधिका प्रयोग होता है वह बहुत ही भद्दी है। इस विधिसे सारा तेल लकड़ीसे नहीं निकल पाता। १०% से लगा २०% तक लकड़ीमें ही रह जाता है। इस विधिमें ईंधनका भी बहुत अधिक प्रयोग होता है। एक मन चन्दनसे तेल निकालनेमें प्रायः ५० मन तक ईंधन खर्च हो जाता है और उससे जो तेल निकलता है उसका रङ्ग सन्तोषदायक नहीं होता। इस भद्दी विधिसे अभी तक मैसूरके आसपास और कन्नौजमें तेल निकाला जाता है। जौनपुरमें भी तेल निकाला जाता था; किन्तु अब वहां यह व्यवसाय नहीं होता। कन्नौजका निकाला हुआ तेल अधिकांश इत्र बनानेमें ही काम आता है।

१९१३ ई०में मैसूर राज्यके औद्योगिक विभागकी सृष्टि हुई और तबसे चन्दनका तेल बनानेके प्रश्नपर विचार होने लगा। कुछ दिनों तक इसपर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, क्योंकि लकड़ीकी बिक्रीसे ही राज्यकी काफी आमदनी हो जाया करती थी और आयकी इतनी बड़ी रकममें हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा गया; किन्तु १९१४ ई० में जब अकस्मात् इसकी आमदनी बहुत कम हो गई तब इस प्रश्नपर बहुत गम्भीरता से विचार होने लगा। सौभाग्यवश बम्बईके धनकुबेर जमशेद जी नसेरवान जी ताता के धनसे स्थापित इण्डियन इन्स्टिट्यूट ऑफ सायंस (Indian Institute of Science) नामकी एक वैज्ञानिक संस्था मैसूर राज्यके अन्तर्गत बंगलोर नगर में विद्यमान थी। उसके रासायनिक विभागके अध्यापकोंकी सहायतासे इस विषयकी वैज्ञानिक ढंगसे जांच होने लगी और प्रायः एक वर्षके प्रयत्नसे इसमें पूरी सफलता प्राप्त हुई। जिस प्रकारका अच्छा तेल, अच्छे परिमाणमें और कम खर्चमें जर्मनी अथवा अन्य पाश्चात्य देशोंमें तैयार होता था उसी प्रकारका तेल तैयार करनेकी यहां आशा हो गई। १९१५ ई० में मैसूर दरबारने १७०० सेर तेल प्रतिमास तैयार करनेके लिए एक छोटा कारखाना एक लाख रुपयेसे खोलनेकी आज्ञा दे दी। उपरोक्त संस्थाके पास ही कारखाना खोलनेका स्थान निश्चय हुआ और कार्य आरम्भ हो गया। गत यूरोपीय युद्धके कारण बाहर से यन्त्रोंका मिलना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव था। इस लिए पुराने और यहांके ही बने यन्त्रोंसे काम चलानेका निश्चय हुआ। १९१६ की १० वीं मईको कारखानेमें काम शुरू हो गया। उस तारीखसे ३१ अक्तूबर तक ३६२०३ मन लकड़ी देग-भभके में तपाई गई और उससे प्रायः ६६३३० सेर तेल निकला। शीघ्र ही इस कारखानेको बढ़ानेकी आवश्यकता समझी गई और यह निश्चय हुआ कि जितनी लकड़ी मैसूर राज्यमें निकलती है, उस

सबका यहां ही तैल निकाला जाय। इस उद्देश्य-से बंगलोरका कारखाना शीघ्र ही बढ़ाया गया, जिसमें एक हजार सेरके स्थानमें ३००० सेर प्रति-मासके हिसाबसे तेल तैयार हो सके। इसके बाद शीघ्र ही एक दूसरा कारखाना मैसूर शहरमें बनाने का निश्चय हुआ, जहां १०,००० सेर तेल प्रतिमास तैयार हो सके। यह कारखाना भी १९१९ से चलना शुरू हो गया।

इन कारखानोंके खोलनेका समय बहुत ही अनु-कूल था। १९१४ ई० में यहांका चन्दनका तेल लण्डनमें प्रायः ३० रु० सेर बिकता था। १९१५ ई०में भाव प्रायः ४५ रु० सेरका होगया और १९१६ में जब पहले पहल मैसूरका तेल पहुंचा इसका भाव ६० रु० सेर होगया। इसके बाद भाव ७५ रु० सेरका होगया, जो युद्धके समय बराबर कायम रहा। इस मूल्यके बढ़ जानेसे मैसूर राज्यके इस उद्योगको दृढ नींवपर स्थापित होनेका अच्छा सुअवसर मिला। हालतक मैसूरमें जितना तेल तैयार होता था वह सब यूरोपमें ही भेज दिया जाता था; किन्तु अब जापान और अमेरिकासे भी इसकी मांग आरही है और वहां भेजा जा रहा है।

चन्दनके कारखानेमें अनेक मनुष्योंकी सहा-यताकी आवश्यकता पड़ती है। यन्त्रोंकी देख भाल-के लिए इंजीनियरोंका रहना अनिवार्य है। पगपग-पर ऐसे रासायनिकोंकी आवश्यकता पड़ती है, जो इस विधिको आदिसे अन्त तक देखे भाले हुए हों, इसके सिद्धान्तसे पूरे परिचित हों और उसकी कठिनाइयों का अनुभव किये हों। इसके अतिरिक्त अनेक कुलियोंकी ज़रूरत पड़ता है। ईंधनका बहुत अधिक मात्रामें खर्च होता है। एक सेर तेल तैयार करनेमें प्रायः ५०० सेर से ऊपर भापका व्यय होता है। स्रवणकार्य (देग-भपके से तेल निकालना) के अतिरिक्त नीचो लिखी बातोंका भी प्रबन्ध करना पड़ता है:—

(१) लकड़ीके छोटे छोटे टुकड़े करना, जिसमें भाप उनके अन्दर घुस कर तेल निकाल सके।

(२) भपकों के बीच ठंडे पानीके बहावको कायम रखना।

(३) यदि कारखाना दिन रात चलता हो तो प्रकाशका प्रबन्ध करना।

सौभाग्यवश मैसूर ऐसा स्थान है जहां विद्युत् शक्ति बहुत सस्ती मिलती है और इससे इन सब विधियोंमें अधिक व्यय नहीं होता।

किस विधिसे मैसूर राज्यमें तेल निकाला जाता है यह सर्वसाधारणको नहीं बतलाया जाता। यदि कोई व्यवसायी अथवा रासायनिक उस कार-खानेको देखने जाता है, तो उसे तो पहले देखने-की जल्दी आज्ञा ही नहीं मिलती और यदि किसी प्रकार आज्ञा मिल भी गई तो केवल ऊपरी चीजें ही उसे दिखा कर लौटा देते हैं, जिसमें विधिका पूर्ण ज्ञान उसे प्राप्त न हो जाय। लेखकको उपरोक्त वैज्ञानिक संस्थामें दो वर्ष तक अनुसन्धान करनेका अवसर मिला था और इसी बीचमें उस कारखानेके रासायनिक कर्मचारियोंके मेल मिलापसे उन विधियोंके पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ था। उसे वह विस्तार पूर्वक विज्ञानके पाठकों-के सामने उपस्थित करता है। रासायनिक दृष्टिसे उन विधियोंमें कोई विशेषता नहीं और न उनमें कोई विचित्र क्रियाएं ही हैं। तो भी मालूम नहीं कि इन विधियोंको गुप्त रखनेमें क्यों इतनी चेष्टाएं की जाती हैं।

जंगलसे काटकर प्रायः एक गज लम्बे टुकड़ों-में लकड़ियां कारखानेमें लाई जाती हैं। यहां ईंधनके ऐसे छोटे छोटे टुकड़ोंमें चीरी जाती हैं, तब वह पीसने-वाली कलमें (Crushing machine) डाल दी जाती हैं, जहां पिसकर छोटे छोटे टुकड़ोंमें बाहर निकल आती हैं। इस पीसनेवाले यन्त्रमें एक विशेषता होनी चाहिये और वह यह है कि लकड़ी इसमें न बहुत महीन पिस जाय और न बड़े बड़े टुकड़े ही रह जायं। लेखनी द्वारा यह बतलाना कठिन है कि टुकड़े कितने महीन हों यद्यपि नमूने द्वारा बहुत
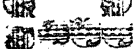
आसानी ऐसा बतलाया जा सकता है। टुकड़े बहुत लम्बे किन्तु पतले हों तो उसमें कोई हानि नहीं लेकिन अधिक मोटे न होने चाहियें। अधिक मोटे होनेसे उनमेंसे सारा तेल शीघ्र नहीं निकलता और यदि सारा तेल निकालनेका प्रयत्न किया जाय तो भापका अधिक व्यय होता है। टुकड़े यदि बहुत महीन बुरादेके से हों तब भी तेल निकालनेमें रुकावटें आ उपस्थित होती हैं, क्योंकि यह टुकड़े भापसे सट और जमकर भापके मार्गको रोक रखते हैं। इस कठिनताको दूर करनेके लिए कलसे निकले हुए टुकड़े बड़ी चलनी द्वारा बहुत महीन भागोंसे अलग किये जाते हैं और महीन भाग उसी रूपमें और और कामोंके लिये बेच दिये जाते हैं।

यह लकड़ियां ताम्बेकी बड़ी बड़ी देगों (Still)-में रखे जाते हैं। इनके पेंदे में छिद्र युक्त ताम्बेके मोटे पत्तर होते हैं। इन छिद्रोंके द्वारा भापका प्रवेश होता है। यह भाप ऊपर उठती और लकड़ियोंमें से निकलती हुई साथ साथ तेलको उड़ा ले जाती है। भाप और तेल ताम्बेके बने श्रेणीबद्ध भपकोंमें ठंडे जल द्वारा घनीभूत कराया जाता है। एक भपकेके स्थानमें अनेक छोटे छोटे भपकोंका प्रयोग आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। इन भपकोंके भीतरी भागमें यदि कलई की गई हो तो तेलका रङ्ग अच्छा रहता है, नहीं तो ताम्बेके स्पर्शसे यह कुछ अधिक हरा होजाता है। तेलका अधिक भाग स्रुत जलके ऊपर एकत्रित हो जाता है और वह शीघ्र ही पानीसे अलग किया जा सकता है, किन्तु इसका कुछ अंश पानी में इमलशनके (Emulsion)रूपमें रह जाता है। इस इमलशनको चूने द्वारा नष्ट कर तेलका अंश निकाल लेते हैं। इस विधिमें जो भाप प्रयोग होती है यदि वह परितप्त (Superheated) हो तो उसमें कम खर्च होता है और शीघ्रतासे सब तेल निकल आता है। भाप का तापक्रम प्रायः १३% शतांश हो तो अच्छा है। यह तापक्रम बैलर (Boiler) में दबाव बाढ़नेसे प्राप्त किया जाता है अथवा साधारण भापका विद्युत् द्वारा उत्तप्त नलों द्वारा पहुंचानेसे। स्रुत जलसे अलग किया हुआ तेल तब पूर्ण रूपसे सुखाया जाता और टीनोंमें बन्द कर चालान किया जाता है। प्रत्येक धानी कारखानेसे बाहर भेजे जानेके पहले एक दक्ष अनुभवी रासायनिक द्वारा जांची जाती है। रासायनिकसे इस अभिप्रायका प्रशंसा पत्र प्राप्त किया जाता है कि तेल अंगरेजी दवाइयोंमें प्रयोग होनेके उपयुक्त है। बिना ऐसा प्रशंसापत्र प्राप्त किये इंगलेण्डके एजेन्ट उस तेलको स्वीकार नहीं करते।

चन्दनके तेलका रासायनिक दृष्टिसे भी कुछ विचार करना आवश्यक है। इस तेलके अच्छे नमूनेमें सैकड़े पीछे ६५-६६ अंशतक मद्यसार सरीखा एक पदार्थ रहता है, जिसे सन्टलोल कहते हैं। यहां यह जानना चाहिये कि चन्दनको अंगरेजीमें सैन्डेल वुड कहते हैं। सैन्डलसे सन्टलोल शब्द निकला है। इस सेन्टलोलको हम लोग हिन्दीमें चन्दनोल कह सकते हैं। औषधियोंमें यही अवयव गुणकारी होता है। यदि यह चन्दलोल ६० फी सैकड़ेसे कम हो तो तेल औषधियोंमें प्रयोग किये जाने योग्य नहीं रहता। किसी किसी नमूनेमें इसका अंश ७० फी सैकड़े तक चला आता है। ऐसा तेल औषधिके लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता। केवल इत्र बनानेके काममें आता है अमेरिका और अस्ट्रेलियाके चन्दनसे बने तेलमें इसका अंश कम होनेसे ही उनका अधिक मूल्य नहीं मिलता। चन्दनोलका ६० फी सैकड़ेसे अधिक अंशवाले तेलका विशिष्ट गुरुत्व ०.६७३ से ०.६८५ तक होता है। ऐसा तेल ७० फी सैकड़ेके मद्यसारके ६ भागमें २० शतांश पर या उसके नीचे घुलनशील होता है। चन्दनोलके अतिरिक्त तेलमें चन्दनाल (Santalal) चन्दलीन और चन्दीन (Santalene and Santene) नामक कर्बोज और कुछ एस्टर्स रहते हैं।

---

# ज्वालामुखीके गर्भमें

प्रशान्त महासागरके एक टापूमें संसारकी हल चलसे बहुत दूर एक पर्वतके शिखर पर लकड़ीके मकानमें एक वैज्ञानिक रहता है, जिसने ज्वालामुखी संबंधी सारी घटनाओंका खोज लगाना और उनका ज्ञान प्राप्त करना अपने जीवनका लक्ष्य बना रखा है। इसका विश्वास है कि वह अपनी खोजों द्वारा ऐसे साधन ढूंढ निकालेगा, जिनकी सहायतासे भविष्यमें इन विनाशकारी पर्वतोंकी इस प्रलयकारी शक्तिपर मनुष्यका अधिकार हो जाय।

सन् १९११में प्रोफेसर जग्गर (Prof. Jaggar) ने हवाई द्वीपमें ज्वालामुखी संबंधी खोज करनेवाली एक समिति स्थापित की, जिसका नाम Hawaiian Volcano Research Association है। इस समितिने किलाइया पर्वत (Kilauea Volcano) पर एक छोटी सी लकड़ीकी साधारण इमारत बनवाकर अपनी खोजका काम शुरू कर दिया। इस पर्वतका पूरा पूरा हाल जाननेके लिए डाक्टर जग्गरने यह परमावश्यक समझा कि इसके गर्भमें पिघले हुये लावाके अग्निकुण्डका तापक्रम मालूम किया जाय। यह कार्य कितना दुष्कर था इसका अन्दाज़ा इस कल्पनासे किया जा सकता है। कुछ देर के लिए अपने काल्पनिक चक्षुओं द्वारा डेढ़ मील व्यासके एक ऐसे विशाल गढ़का कल्पना कीजिये, जिसकी सदा टूटकर गिरनेवाली सीधी खड़ी हुई दीवारें भूकम्पसे हरदम कांपती रहती हों और बड़ी भयानक तड़ाकेकी आवाजके साथ पिघली हुई तप्त चट्टानें टूट टूटकर गिररही हों और पिघले हुए लावाका यह अग्निकुंड अपनी डरावनी जीभ बाहर निकालकर इन उत्तप्त चट्टानोंको कवलितकर बड़ा भयानक डकारें लेकर चारों तरफ़ अपने हत्याकाण्डकी सूचना दे रहा हो। इस अग्निकुंडको अगर अग्नि सरोवर कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। यहांके निवासियोंने इस स्थानका नाम "चिरस्थायी अग्निकूप" रख छोड़ा है। यह अग्नि-सरोवर बड़ा विचित्र है। इसमें कभी बाढ़ आती है और कभी यह शान्त हो जाता है। कभी इसमें से भभकती हुई उत्तप्त अग्नि-ज्वाला निकलती है. कभी वायु में दहकते हुये लावा का फ़व्वारा छूटने लगता है और कभी विषैली दुर्गन्धपूर्ण गैसोंकी घटा घुमड़ घुमड़ कर छा जाती है तथा कभी परम डरावनी आवाज़ निकल कर अच्छे अच्छे वीरोंका हृदय दहला देती है। इस डरावने हृदय विदारक दृश्यका विचार कीजिये और डाक्टर जग्गरके तापक्रम नापनेके साहसपर ध्यान दीजिये। आप स्वयम् कह उठेंगे कि यह तो सरासर आंख मीच कर मौतके मुंहमें कूदना ही था।

परन्तु इस सब भयानक दृश्यों के रहते हुये भी इस तापक्रमकी जांचके लिए डाक्टर जग्गरने इस ज्वालामुखीके गर्भमें पैठ कर अपना कार्य सिद्ध करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया। इस कार्यके लिए उन्होंने विशेष प्रकारके तापमापक बनाये जिनमें स्टीलकी नलियोंमें पिघली हुई मिट्टीके बने हुये सीगर सूचियां (Seger cones) रखी हुई थीं। इन नलियोंको लावाके सरोवरमें कई स्थानोंपर डुबा कर वहांके तापक्रमकी जांच की जानी निश्चित हुई। डाक्टर साहब की सहायताके लिए कुछ युवक भी मौजूद थे। इन्हीं युवकोंमेंसे एकने इस महाभयानक दुःसाहस पूर्ण कार्यका वर्णन इस प्रकार दिया है:—

"इस अग्निकूपमें उतरनेके लिए रस्सियोंकी सीढ़ियां ही सुगम समझी गईं; क्योंकि किसी चट्टानके तिल भर हट जानेमें ही लावाके अग्नि सरोवरमें गिरते ही हमारे प्राणोंकी रक्षाका कोई मार्ग न था।

"हम लोग बड़ी सावधानीसे नीचे उतरे। इस कूपकी तह तक पहुंचनेमें कोई दुर्घटना नहीं हुई। हमारे नीचे अग्निकुंडमें धधकते हुये लावाकी

रौरव नदी बह रही थी। इसका हमारी इन्द्रियोंको पूर्ण अनुभव हो रहा था। लावाकी सतहसे चार फ़ुटकी दूरीपर पहुंच कर हम ठहर गये। यहां का दृश्य बड़ा ही विचित्र था। चारों तरफ़ अग्निके फ़व्वारे उठ उठ कर महा भयानक शब्द करते हुये गिर रहे थे। विषैली गैस न होनेपर भी सांस लेना कठिन था और गर्मी का तो कुछ ठिकाना ही न था।

"यहां पहुंच कर हम लोग सीढ़ीके सिरे पर झुक कर चिमट गये। थोड़ी ही देर बाद कुछ सावधान होकर हमने अपने पैरों तले भभकते हुये लावामें पाइप गाड़ दिये। बड़े वेगसे एक लहरने इन्हें तुरन्त ही एक तरफ़ बहा दिया और साथ ही हमें इस ज़ोरका धक्का लगा कि अगर हम सावधान न होते तो उसी दम अग्निके मुखमें पड़ स्वाहा हो जाते। इस नल से इतनी गर्मी निकली कि बड़े मोटे अग्नि-रक्षक दस्ताने पहने रहने पर भी हमारे हाथ झुलस गये। डाक्टर जग्गरने अपनी जान पर खेल कर न मालूम किस प्रकार ५ मिनट तक उस महा भयानक ताप को सहन किया। इस समय हम लोगों ने देखा कि ठीक हमारे ही पैरों तले एक बड़ा भयानक अग्निका फ़व्वारा उठनेवाला है, अस्तु इशारा करते ही हम लोग पलक मारते ही ऊपर निकल आये।"

इस प्रकार डाक्टर जग्गरने इस अग्नि सरोवरके प्रायः हर भागका तापक्रम मालूम कर लिया। अक्तूबर सन् १९१९में जब मौना लोआ (Mauna Loa) का स्फोटन (Eruption) हुआ उस समय भी अपनी जानपर खेल कर आपने उस स्थानसे लगभग ५० फ़ुटपर पहुंच कर पिघली हुई चट्टानका फ़ोटो लिया था, जो उस समय बड़े वेगसे दो हज़ार फ़ुट ऊंचा फ़व्वारा छोड़ कर अग्नि उगल रही थी।

इस प्रकार डाक्टर जग्गरने यह स्थापित कर दिया है कि ज्वालामुखी पर्वतोंके गर्भस्थित इन अग्नि सरोवरोंमें कभी आध घंटे बाद, कभी रोज़ाना, कभी महीने बाद, कभी छः महीने पीछे तथा कभी इससे भी अधिक समयके बाद समुद्रोंकी भांति ज्वार भाटा आता रहता है और यह विध्वंसकारी, विशालकाय अग्नि-कुंड बड़ी ही विचित्रतासे अपना प्रलयकारी कार्य सम्पादन करते हैं। डाक्टर जग्गरने अपनी खोजोंद्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि संसारके किसी देशमें ज्वालामुखी पहाड़ोंके विस्फोटनकी दुर्घटनाकी पूर्व-सूचना मिल सकती है और इस प्रकार उनके द्वारा होनेवाली प्रलयसे बहुत कुछ रक्षा हो सकती है।

—"वटिया"

---

## नीम का वृक्ष
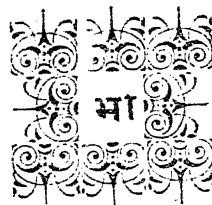
भारतवर्षमें शायद ही कोई ऐसी जगह हो जहां यह वृक्ष न पाया जाता है। इसी प्रकार इस देशमें शायद ही कोई ऐसा मनुष्य होगा जो इस वृक्षसे परिचित न होगा। परन्तु ऐसे मनुष्य संभवतः बहुत कम हैं जो इस वृक्षके उन परमोत्कृष्ट और परमोपयोगी गुणोंसे पूर्णतया परिचित होंगे जिन्हें प्रकृतिने इस वृक्षमें एकत्रित कर रखा है। आम, जामुन, अमरूद, संतरा, नीबू और लीची आदि वृक्षोंके पालनेमें जैसा परिश्रम किया जाता है तथा जिस प्रकार बहुत सा द्रव्य व्यय करके इनके बग़ीचे लगाये जाते हैं, उस प्रकार इस वृक्षके उपजानेमें न तो कोई इतना परिश्रम ही करता है न नीमके लिए बाग़ लगाये जाते हैं, परन्तु फिर भी यह वृक्ष इस देशमें खूब कसरतसे पाया जाता है। यह वृक्ष खुदरौ होता है। यह बहुत जल्द उपजता और बढ़ता है। इस वृक्षका प्रायः हर एक भाग चखनेमें तो बड़ा कड़वा होता है, परन्तु औषधिके लिए

इतना गुणकारी है कि अगर हम इस वृक्षको छोटासा औषधालय कहें तो अत्युक्ति न होगी। फोड़े, फुनसी, खून की खराबी तथा चीर फाड़के काममें वैद्य लोग नीमके पत्तोंका खूब इस्तैमाल करते हैं। इन्हीं पत्तोंको उबाल कर इनके पानीसे घाव धोते हैं। इनको पीस कर इनका लेप करते हैं। पत्तों की ही पुल्टिस बनाते हैं। खुजली हो जानेपर पत्तोंके उबाले हुये पानीसे स्नान कराते हैं। शीतला निकलनेपर इन पत्तियोंको रोगीके पास रखते हैं। छूतकी प्रायः सभी बीमारियोंमें नीमकी टहनियां रोगीके पास रखी जाती हैं। आंख दुखनेपर भी नीमकी पत्तियां पास रखते हैं। चैत, वैशाखके महीनोंमें जब ऋतु परिवर्तनसे प्रायः बच्चोंके शरीरपर फुनसियां निकल आती हैं, अगर सुबह शाम करीब आध पाव पानीमें ६ माशे नीमकी कोंपलें घोट कर पिला दी जाती हैं, तो बड़ा आराम होता है। कहा जाता है कि लुकमान हकीमने किसी कोढ़ीको नीमका अर्क पिला कर चंगा कर दिया था। संभव है कि इस अर्कमें कोई दूसरी औषधि मिला दी गई हो जिसे अब कोई नहीं जानता है। स्वादके भूखे लोग प्रायः स्वादिष्ट भोजन खाना ही पसंद करते हैं, परन्तु समझदार और बुद्धिमान इस बातका विशेष विचार रखते हैं कि भोजन इस प्रकारका हो, जिससे शरीरके हर अवयवको आनन्द प्राप्त हो तथा शुद्ध और अधिक रक्त उत्पन्न होने से स्वास्थ्यमें उन्नति हो। डाक्टरोंका अनुभव है कि मीठी और स्वादिष्ट चीज़ों की अपेक्षा कड़वी दवाएं ही अधिक उपयोगी होती हैं और स्वास्थ्यको भी फ़ायदा करती हैं; यही कारण है कि अधिक उपयोगी और रामबाण की तरह शीघ्र प्रभाव करनेवाली औषधियां प्रायः कड़वी ही होती हैं। इसी लिए कड़वा नीम बड़ा गुणकारी है। नीम की पत्तियां खानेसे मुंहसे खाना खानेके समय निकलनेवाली राल, जो खाने को घुला कर पचानेका काम करती है, अधिक निकलती है। इसी लिए पाचकेन्द्रिय खूब पुष्ट हो कर मनुष्योंके स्वास्थ्यको बढ़ाती है।

कुछ लोग नीमकी मुलायम कोंपलों और काली मिर्चको घोट कर ठंडाई बना कर पीते हैं। बालक नीमके कड़वे होनेके कारण इसके पत्ते घोट कर नहीं पीना चाहते हैं; इस लिए जिन बच्चोंको फोड़े फुनसी की बहुत शिकायत रहा करती है उन्हें नीमके पत्तोंके उबाले हुये पानीमें भिगोकर सायेमें सुखाया हुआ कुर्ता पहनानेसे भी बड़ा उपकार होता है। नीमसे मच्छड़ भी बहुत दूर भागते हैं, इस लिए जहां मच्छड़ बहुत होते हैं वहां नीमके पत्तोंको जला कर धुआं करनेसे सारे मच्छड़ भाग जाते हैं। बरसातमें गांवोंमें किसान लोग नीमके पत्तोंका धुआं करके अपने मवेशियों को मच्छड़ोंके आक्रमणसे बचाते हैं। हमारे देशमें मलेरिया ज्वर जो बरसातके बाद प्रायः भादों और आसौजके महीनोंमें बहुत फैलता है और नशेब और तराईकी जगहोंमें हर मौसममें मौजूद रहता है, इन्हीं मच्छड़ोंके कारण उत्पन्न होता है। जो लोग नीमके पत्ते घोट कर या उसका काढ़ा बनाकर पीते रहते हैं उनपर मलेरियाका प्रकोप कम हो पाता है। हैजा आदिक छूतकी बीमारियोंमें नीमके पत्तोंके उबाले हुये पानीसे मुंह हाथ धोने तथा उस पानीसे बर्तन और कपड़े भी धोनेसे कीटाणुओंका नाश हो जाता है।

नीमकी दातून नित्य करनेसे अजीर्ण नहीं होता, पाचन शक्ति पुष्ट होती है और साथ ही साथ दांतोंको खराब कर देनेवाले रोग दूर हो जाते हैं। मुंहमें भी किसी प्रकारका रोग नहीं रहता। कलकत्ता मेडिकेल कालिज की रासायनिक प्रयोगशालामें नीमसे एक ( Organic Acid) आङ्गारक अम्ल निकाला गया है जो पोटासियम धातुके संयोगसे एक प्रकारका लवण बनाता है, जिसे पोटासियम मारगोसेट कहते हैं। ( Venereal Diseases) सूजाक आदि रोगोंसे पीड़ित मनुष्योंके शरीरमें इसे इन्जेक्ट करनेसे बड़ा उपकार होता

है। नीमकी छालसे एक प्रकारका चमकीला गोंद भी निकलता है। यह भी औषधियां बनानेके काममें आता है।

निबौरी

नीमका फल निबौरी कहलाता है यह भी बड़ा उपकारी है। इससे तेल और खली बनती है। यह तेल जलानेके काममें भी आता है। परन्तु धुआं अधिक निकलनेके कारण प्रायः गरीब लोग ही इसका प्रयोग करते हैं। नीमके तेलसे साबुन भी बनाया जाता है। यह साबुन फोड़े, फुनसी, खुजली तथा दादके लिए बड़ा उपयोगी है। यह तेल कृमिनाशक भी है। अक्सर नीच जातिकी गरीब स्त्रियोंके सिरमें गंदगीके कारण जूं पड़ जाती हैं। उस समय निबौरियोंसे रगड़ कर धोनेसे या नीमका तेल डालनेसे इनका विनाश हो जाता है। इस तेलसे उन कीड़ोंका भी नाश हो जाता है जो फसलको हानि पहुंचाते हैं।

नीमकी खली

कृषकोंके लिए नीमकी खली परमोपयोगी वस्तु है। यह खाद देनेके काम आती है। इस खलीमें पौधोंके लिए खादके साथ उनमें लगनेवाले दीमक आदि कीड़ोंको भी मारनेका गुण मौजूद है। इस खलीको हर नाजकी फसलकी खादमें दिया जाता है; परन्तु इसका परिमाण फसल तथा नाजकी प्रकृतिके अनुसार घटा बढ़ा दिया जाता है। हमारे देशके कृषक अबतक इस उपयोगी खादकी उपयोगिता भली भांति नहीं समझते हैं। सरकारी कृषि विभाग की बहुत कुछ चेष्टाओं से अब कुछ लोग इसी खलीका खाद देने लगे हैं। अवधके किसानोंमें इसका प्रचार बढ़ता जाता है और वह इसकी उपयोगिताको समझने लग गये हैं। हमारे देशमें हर वर्ष करोड़ों मन निबौरी व्यर्थ जाती हैं। अगर हमारे देशके किसानोंको इस परमोत्तम खादकी उपयोगिता अच्छी तरह मालूम हो जाय तो वह प्रकृतिकी इस देनको इस प्रकार व्यर्थ न जाने दें। एक सेर निबौरीसे प्रायः डेढ़ पाव तेल और १० छटांक खली प्राप्त होती है।

हमें आशा है कि हमारे किसान बन्धु इस खादसे बहुत लाभ उठायेंगे और शीघ्र ही इस परमोपयोगी वस्तुको बुरी तरह व्यर्थ जानेसे बचाकर उसका यथार्थ उपयोग करेंगे।

—मनोरञ्जन दास

---

# कीटभृंग पकड़नेवाला अद्भुत जाल

संसारमें मांसाहारी पौदे बड़े ही विचित्र हैं, परन्तु इनमें भी कैलीफोर्नियाका (Darlingonia) डारलिङ्गोनिया नामक पौदा बड़ा अजीब है। आप लोगोंने तुंबी या गिलासके सदृश पत्तोंवाले पौधों (Pitcher Plants) का नाम अवश्य सुना होगा या उनका चित्र देखा होगा। पर इस पौधेके पत्ते भी बेढंगे होते हैं। इसकी जुड़ी हुई लंबी पत्तियां नलीका सा आकार बना लेती हैं और इनके सिरेपर एक छत्र सा बना रहता है। पत्तियों द्वारा बनी हुई इस नलीका द्वार बहुत छोटा और छत्रके नीचे बना होता है। इस नलीके ऊपर मीठा गाढ़ा शहद की तरह का रस निकला करता है। इसी रसको खानेके लिए कीट-भृंग इत्यादि यहांपर आ कर बैठ जाते हैं। द्वार छोटा होनेपर भी नली भीतरसे सकरी नहीं होती। छत्रके पास ही छोटे छोटे पारदर्शी सफेद झिंझरीदार धब्बे होते हैं। यह हवा आने जानेके लिए हैं। जब मक्खियां या अन्य कीट-भृंग रस पीनेके लिये आ बैठते हैं तो उनके पंख चिपक जाते हैं और वह छुटकारा पानेके लिए छटपटा कर इतने थक जाते हैं कि ढुलक कर नलीके तल भागमें जा गिरते हैं। यहां पहुंचते ही इनके शरीरका रस चूस कर यह दानव पौधा अपनी रक्त-पिपासा बुझाता है।

—हे० वर्मा

---

# जीवन कला

[ ले०—श्री० श्यामसुन्दर वर्मा, विशारद, साहित्योपाध्याय ]

मनुष्य जीवनका उद्देश्य क्या है, इसमें चाहे कितना ही मतभेद क्यों न हो, किन्तु यह तो सर्वदेशीय तथा सर्वकालिक अनुभव है कि मनुष्य जीवनमें सुख चाहता है—चाहे वह क्षणिक हो या स्थायी। मनुष्य कौन कौन सी वस्तुओंमें और उनके कितने परिमाणमें सुख समझता है इसमें प्रत्येक मनुष्यकी रायमें भेद है। कोई धन संग्रहमें ही सुख समझता है और कोई संग्रहीत धनके उड़ानेमें। कोई परिवार आदिकी वृद्धिमें सुख समझता है तो कोई उनके भरण पोषणमें। एक मनुष्य सुन्दर काव्य, चित्रों या मूर्तियोंके संग्रहसे प्रसन्न होता है तो कोई कला की उत्कृष्टतापर ही; चाहे संग्रह थोड़ा सा ही हो। इस अन्तिम उदाहरणसे ज्ञात होगा कि कुछ मनुष्य वस्तुओंकी परिमाण वृद्धिमें सुख समझते हैं और कुछ उनके गुणपर मुग्ध होते हैं।

यद्यपि मनुष्य जीवनमें सुख तो चाहता है; किन्तु अशिक्षा या कुसंस्कार आदिके कारण जानता नहीं कि सुख किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। एक मनुष्य यह देखकर कि बिना धनके संसार यात्रा कठिन है केवल धनके संग्रह करनेमें लग जाता है, किन्तु क्या उसे इच्छित सुख मिलता है? इसी प्रकार और वस्तुओंके संग्रह करनेवालोंकी बात है और उनकीभी जो एक ही वस्तुसे सारा सुख प्राप्त करनेकी आशा रखते हैं। लेकिन सुख किसीके लिए कहीं एकत्रित किया हुआ नहीं रखा है। वह तो बिखरे हुए रत्नोंके समान इधर उधर पड़ा हुआ है। जीवनयात्रामें चलते चलते यदि हम सचेत हुए तो उन्हें बटोर कर सुख प्राप्त कर सकते हैं। पाठको! आप विचार कर देखें तो आपको मालूम होगा कि हम लोग जीवन-यापनकी कला न जान कर कितने सुखसे वंचित रहते हैं। हम लोग अपने घरोंमें, गांवों, नगरों तथा बड़े बड़े शहरोंमें रहते तो हैं, किन्तु रहना नहीं जानते। घरोंको तो हमने नौकरोंके भरोसे छोड़ रखा है और नगरोंको म्यूनिसिपेल्टियोंके भरोसे। कुछ लोग कहेंगे कि भला घरोंकी बात तो हम मानते हैं लेकिन यदि नगरका भार म्यूनिसिपेल्टियोंपर न रहे तो फिर यह बनाई ही क्यों गई हैं। आक्षेप तो ठीक है किन्तु जब अवस्था ऐसी है कि लोगोंसे घरका काम तो होता नहीं और उसे नौकरोंके भरोसे छोड़ देते हैं तब भला यह कैसे आशा की जा सकती है कि वही मनुष्य म्यूनिसिपेल्टीमें बैठकर नगरका प्रबन्ध कर सकते हैं।

आदर्शको ठीक ठीक न समझनेके कारण हम लोग मान बैठे हैं कि सभी अवस्थाओंमें, सभी आश्रमोंके लिए अर्थात् गृहस्थके लिए भी, संसार मिथ्या और जीवन स्वप्नके समान है। किन्तु बात तो ऐसी है नहीं। एक गृहस्थका यह समझ कर बैठे रहनेसे कि संसार मिथ्या है और जीवन स्वप्न है, काम नहीं चल सकता। संसारको असार और जीवनको स्वप्नवत कहनेका यह अर्थ नहीं है कि हम इनकी सत्ताको ही न मानें और यही समझ कर कुछ करें धरें भी नहीं; किन्तु उसका तात्पर्य यह है कि हम संसारको प्रत्यक्ष जान उसे ही न सार मान लें और जीनेके लिए ही न रहने लगें अर्थात् हम संसारमें लिप्त न हों। परन्तु भ्रमके कारण हमने जीवनको स्वप्न ही मान लिया है और इसीलिए यद्यपि हम रहते तो हैं किन्तु रहना नहीं जानते।

जब तक हमारे आदर्शमें भ्रान्ति नहीं हुई थी तबतक हम भी रहना जानते थे। समाजको हमने अवस्थाके अनुसार चार आश्रमोंमें विभाजित कर दिया था। प्रत्येक आश्रममें किस प्रकारसे रहना चाहिये, यह सब जानते थे और वर्षोंके अनुभवके बाद उनको नियमका रूप दे दिया गया था, जिसका पता आज भी हमें मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र और चरक

सुश्रुत आदि आयुर्वेदके ग्रन्थोंसे लगता है। ब्रह्मचारीको गुरुकुलमें गुरुके समीप किस प्रकार रहना चाहिये, सादगीके साथ गुरु और गुरुपत्नीकी सेवा करते हुए किस प्रकार ज्ञानकी वृद्धि और शरीरकी शक्तिका संचय करना चाहिये; दण्ड-चर्मधारी वर्णीको कैसा, कितना और कब भोजन करना चाहिये, कैसे गुरु को "प्रणाम" आदि करना चाहिये और किस प्रकारका सम्बन्ध गुरु-पत्नी और अपने सखाओंसे रखना चाहिये—इनके भी कायदे थे। नियम केवल सख्ती और कायदेबन्दीके लिए नहीं थे; किन्तु उनके भावका आदर्श भी श्रीकृष्ण, गुरु सान्दीपन और सखा सुदामाके उदाहरणसे देखिये। धन्य हैं ऐसे गुरु शिष्य और धन्य हैं ऐसे मित्र।

गृहस्थोंके भी आचारको देखिये। तपस्वी ब्राह्मण चाणक्यका घर देखिये। एक छोटी सी साफ सुथरी कुटी शहरके बाहर बनी हुई है और छप्परपर यज्ञकी समिधाएं सूख रही हैं। यद्यपि वह चाहते तो उन्हें किसी बातकी कमी नहीं थी। फिर उसी मुद्राराक्षसमें राजा चन्द्रगुप्तके विशाल भवनका वर्णन पढ़िये। भव्य भवन की चित्रोंसे रंगी हुई दीवारें रत्नोंकी आभा से प्रकाशित हो रही हैं। सर्वत्र राजाका प्रताप, ऐश्वर्य और धनवैभव दिखाई दे रहा है। ब्राह्मणमंत्री राक्षसके गृह तथा उसके वैश्य मित्रके भवनके दर्शन कीजिये न केवल गृह ही वर्ण और आश्रमके अनुकूल थे; वरन् भोजन, वस्त्र आदि भी। कविकुलतिलक कालिदासके प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलमें ऋषियोंके आश्रमका चित्र देखिये वास्तवमें वह तीर्थस्थान थे। उनकी पवित्रता सराहनीय है।

आजकलकी पाश्चात्य जातियां भी रहना जानती हैं। हमलोग देखते ही हैं कि अंग्रेज लोग अपने घरमें और बाहर कैम्पमें, किस अच्छे ढंगसे रहते हैं। नौकरोंके रहते हुए भी अपने घरकी सफाई, वस्तुओंकी देखरेख और उनको ठीक तरहसे सजा सजा कर रखनेका काम स्वयं करते हैं। अपने बागमें खुरपी फावड़ेसे काम करते उन्हें शर्म नहीं लगती और न उनकी इज्जत ही घटती है। गरीब भी होते हैं तो भी भोजनकी कैसी व्यवस्था करते हैं। विलायतके मजदूर भी दिन भर काम कर जब शामको बागमें घूमने या होटलमें क्लबमें या नाटकघरमें जाते हैं तो मजदूर नहीं मालूम होते। कपड़ोंकी तड़क भड़कसे ही नहीं उनसे यदि आप बात चीत करें तब भी आप कठिनतासे पहिचान सकते हैं। वह भी अपने घरों और बैठकघरों (drawing rooms) को खूब सजा कर रखते हैं।

पाश्चात्य जातियोंके इस जीवनसे प्राचीन भारतके जीवनका मिलान कीजिये। भौतिक और आध्यात्मिक सभ्यतामें कितना अन्तर है, किस प्रकार पाश्चात्य जीवनमें बहुत करके "हम" जीनेके लिए ही रहते हैं। लेकिन भारतमें हम जीवनमें लिप्त नहीं होते थे। हमारी रहन सहनका ढंग हमारे जीवनके उद्देश्यमें साधन होता था। लेकिन पाश्चात्य देशोंमें अच्छी तरहसे रहना ही जीवनका उद्देश्य हो गया है। पश्चिममें कोई भी झोंपड़ीमें नहीं रहना चाहता; किन्तु भारतमें महाराज चन्द्रगुप्तके गुरु चाणक्य झोंपड़ीमें ही रहना पसन्द करते थे और राजा, महाराजा भी उनका मान करते थे और वहां नम्र होकर जाते थे। इस तुलनासे पाठक समझ गये होंगे कि हमें बेसमझेबूझे पाश्चात्योंकी रहन सहनका अनुकरण नहीं करना चाहिये।

इस लिए हमें स्वतंत्रतापूर्वक रहन सहनका ढङ्ग निश्चित करना चाहिये। न हमारा काम पाश्चात्योंके अनुकरणसे चल सकता है और न भूतकालके अन्ध अनुकरणसे। बीसवीं शताब्दीमें हमें रेल, तार, बिजली, जहाज आदिसे काम लेना है, हमें इनसे काम लेनेमें हिचकने तथा शर्मानेकी भी कोई जरूरत नहीं है।

जीवन अर्थात् रहन सहनका भी एक ढंग है। वह भी एक कला है। इसको हम आचार भी कह सकते हैं। हमारे भूत कालीन रहन सहनके ढंगोंको देख कर हिन्दू धर्म को आचार-प्रधान कहते हैं। इसीसे कि हम आचारको धर्मका सबंधनीय अंग समझते हैं हम जान सकते हैं कि यह कला कितनी आवश्यक है।

अभी तक हमारे पाठक यह न समझे होंगे कि रहन सहनके ढंग को हम जीवन कला क्यों कहते हैं। प्रथमतः शास्त्रीय विवेचनाके अनुसार यदि हम जानते हैं कि जीवनके कुछ नियम या सिद्धान्त हैं तो कोई कला भी ऐसी होनी चाहिये जिससे हम जान सकें कि जीवनके अमुक नियमों या सिद्धान्तोंके अनुसार अमुक अमुक काम करना चाहिये। अर्थात् जीवन चर्याके भी नियम (Precepts for Conduct) होने चाहिएं। जीवनके नियमोंको जाने बिना अथवा उनके प्रतिकूल चलने से हमारी जीवन यात्रा सुखपूर्वक समाप्त नहीं हो सकती।

बड़े खेद की बात है कि हिन्दीमें जीवन सम्बन्धी जीव-वैज्ञानिक (Biological) तथा मनोवैज्ञानिक (Psychological)नियमों या सिद्धान्तोंका ज्ञान करानेवाली पुस्तकें नहीं हैं और इसीलिए हम अपनी रहन सहनके ढंग की विवेचना नहीं कर सकते। यद्यपि हमारी सहायताके लिए "मनु" आदि धर्मशास्त्रोंमें तथा आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें जीवनचर्या तथा दिनचर्या अथवा आचार या जीवन कला सम्बन्धी नियम वर्तमान हैं तथापि उनके अनुसार विवेकपूर्वक हम नहीं चलते और वास्तवमें चल भी नहीं सकते; क्योंकि हमें उन नियमों या सिद्धान्तोंका ज्ञान नहीं है जिनके अनुकूल कि वह नियम बनाये गये हैं। और इसी कारण हमारी रहन सहनके ढंगमें इतना सांकर्य है। हमारे इस लेखका उद्देश्य केवल यही है कि विद्वानोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट हो और वह हमारे जातीय जीवनकी इस कमीको पूरा करनेका प्रयत्न करें

रहन सहनके ढंगको कला कहनेका हमारा दूसरा तात्पर्य यह भी है कि अन्य ललित कलाओं (संगीत, साहित्य, चित्रकारी, शिल्पकारी आदि) के समान इसमें सौन्दर्य और सुखका उपभोग कर चित्तको प्रसन्न कर सकते हैं। जैसा और कलाओंका आदर्श होता है वैसे ही इस कलाका उद्देश्य जीवनका परम साफल्य लाभ करना है।

इस विषयके सम्बन्धमें हम जीवनपर दो दृष्टियोंसे विचार कर सकते हैं अर्थात् वैयक्तिक दृष्टिसे जिसकी इकाई कि घर है और देशकी दृष्टिसे जिसकी इकाई (unit) ग्राम या नगर है। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि एक व्यक्ति की मुख्य आवश्यकताएं गृह, भोजन और वस्त्र हैं।

मनुष्य या जीव मात्र की सबसे पहिली आवश्यकता भोजन है। बिना भोजनके उनका अस्तित्व ही अधिक समय तक संभव नहीं है। इसी लिए हमें सबसे पहिले भोज्य पदार्थोंकी विवेचना करनेका ज्ञान होना चाहिये, जिससे हम भक्ष्याभक्ष्यका निर्णय कर सकें। फिर हमें यह जानना चाहिये कि उन्हें किस प्रकारसे खाना चाहिये और कब खाना चाहिये। भोजनके बाद वस्त्रका प्रबन्ध चिन्तनीय है। कौनसे वस्त्र किस प्रकार और कब पहिनने चाहिएँ। वस्त्रके बाद गृहका प्रश्न उपस्थित होता है। गृहनिर्माण कला भी जीवन कलाका एक अंग है और उसी प्रकार गृहप्रबन्ध भी। जब तक इन प्रश्नोंपर एक व्यक्तिके स्वास्थ्य और सुभीतेके लिए विचार किया जाय तब तक तो हमारा विचार वैयक्तिक हुआ और जब हम व्यक्तियोंके समुदायके हितको ध्यानमें रख कर विचार करने लगे तो हमारा विचार देशिक हो जाता है।

क्या ही अच्छा हो कि इन विषयोंपर अच्छी अच्छी छोटी पुस्तकें सरल, सुबोध भाषामें सस्ते मूल्यपर प्रकाशित हों, जिनसे कि स्त्रियां भी लाभ

उठा सकें। इन प्रश्नोंपर विचार करते समय इस बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि जीवन कला बहुत अंशोंमें जातीय (National) है। जातीय आचारपर विचार करते समय भूत और भविष्य-का वर्तमानसे आवश्यक तारतम्य रखनेका ध्यान रखना चाहिये। भूत और वर्तमान ही भविष्यका रास्ता दिखा सकते हैं। हम दिखा ही चुके हैं हमारे भूतकालीन आचारको जाननेकी हमारे पास अच्छी सामग्री है। विद्वानोंसे बताना नहीं होगा कि जातीयता अथवा राष्ट्रीयताके प्रश्नके साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः हमारी विनय है कि पाठक इस प्रश्नपर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे और एक दूसरेकी सम्मति प्राप्त कर किसी निर्णय-पर पहुंचनेका प्रयत्न करेंगे। इस विचारकी कोई आवश्यकता नहीं कि मनुष्य उस निर्णयके अनुसार चलेंगे या नहीं। चलें या न चलें इतना तो अवश्य होगा कि उनको इस प्रश्नपर विचार करनेमें सहायता मिलेगी।

—श्यामसुन्दर वर्म्मा

---

# जलगामी मोटरकार

विज्ञानकी बदौलत अब जलपर भी लोग उसी सुगमता और आरामके साथ मोटरोंपर सैर करते फिरते हैं जैसे खुश्की पर। इस प्रकार-की जो पहली मोटरें बनी थीं उनमें बहुत सी त्रुटियां थीं, परन्तु आज कल इस प्रकारकी नई मोटरोंमें हर प्रकारकी सुविधा कर दी गई है। जल विहारका आनन्द लूटनेके लिए यह मोटरें बड़ी सुगम और सुखदाई होती हैं। इनकी बनावट ठीक मोटरकारकी भांति होती है। ऊपरी हिस्सा शीशेका बना होता है। पहियोंकी जगह इस मोटर-में बेलनाकार तरिणी (Cylindrical Floats) लगी होती हैं। जैसे जैसे इस मोटरका वेग बढ़ता जाता है यह तरिणियां पानीकी सतह पर उठती आती हैं और जिस समय यह पूरे वेगसे दौड़ने लगती है तो इनकी सतहसे कहीं कहीं सम्पर्क मात्र रहता है। इसके चलानेका पहिया ठीक मोटर के पहियेकी तरह होता है और मोटरकी ही भांति इसमें गद्दीदार बैठकें होती हैं। जल-वायुयान में जिस तरहका प्रेरक यंत्र होता है इसमें भी वही लगा होता है। इसका पिछला भाग हमारी मोटर गाड़ियोंसे बिल्कुल विभिन्न होता है। यह दूर तक पूंछके आकारका बना होता है और ऊपरकी तरफ़को मुड़ा हुआ होता है। आप लोगोंने पुराने ज़मानेके उन जहाज़ोंका चित्र अवश्य देखा होगा जो लकड़ीके बने होते थे और प्रायः सभी देशोंमें सौ सवा सौ वर्ष पूर्व विद्यमान थे। जिस प्रकार इन जहाज़ोंका एक सिरा ऊपरको उठा हुआ होता था और उसपर प्रायः कोई मूर्ति होती थी ठीक उसी तरहका आकार इन मोटरोंके इस भाग-का भी समझिये।

इस मोटरमें एक सुगमता है। इसका ढाँचा बिल्कुल जुदा होता है। जब सैर करनेकी इच्छा हो पीपोंपर ब्रेसेस द्वारा इस ढाँचेको कस दो और जब चाहो इसे अलग निकाल लो। मोटरकारकी भांति इसका एंजिन भी सामनेकी तरफ़ बनाया जाता है। ८ से लेकर २० अश्व-बल तक के इसमें एंजिन लगाये जा सकते हैं। गाड़ीके पीछे वायु-दिग्दर्शक-यंत्र लगा होता है, जिससे हवाका रुख मालूम होता रहता है। मोटरकारकी भांति इसमें भी सामनेकी तरफ़ दो (Headlights) लालटेनें लगी होती हैं।

—"बटिया"
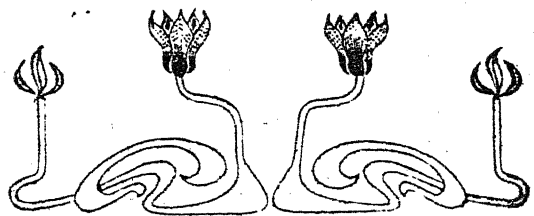
# सुगन्धित तेल
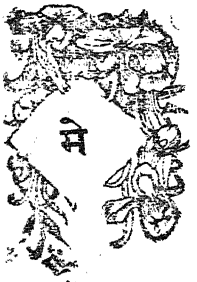
रे एक मित्र कई महीनेसे "सुगन्धित तेल" मांग रहे हैं। तेलकी सभी सामग्री मेरी मेज़-पर बहुत दिनोंसे पड़ी हुई है, किन्तु आलस्यके कारण मैं उनकी आज्ञाका पालन न कर सका। आज "विज्ञानके" पृष्ठोंमें लिख कर मैं "सुगन्धित-तेल" अपने मित्र और पाठकों-की सेवामें भेज रहा हूं। आशा है, इसे अंगीकार करेंगे।

सुगन्धित तेल बाज़ारमें दो तरहके आते हैं। रोग़ने गुल, बेला, चमेली आदि इत्र फरोशोंकी दुकानों पर बिकते हैं। इस प्रकारके तेलका व्यव-हार इस देशमें बहुत दिनोंसे होता आता है। इन्हें आदर्श तेल कह सकते हैं। इनके व्यवहारसे किसी प्रकारकी हानि नहीं होती। रोगीको भी इन तेलोंके लगानेसे फायदा ही होता है। इनके बनानेके लिए बहुत झगड़ा करनेकी आवश्यकता नहीं होती। जिस फूलका तेल बनाना हो उस फूलसे तिलको बसा देते हैं। जब एक बारके रखे हुए फूल सूख जाते हैं; तब उन्हें फेंक कर और ताज़ा फूल रखते हैं। कई बार ऐसा करनेसे तिल फूलकी गंधको सोख लेता है। इस तिलको पेरनेसे बढ़िया सुगन्धित तेल निकलता है। इसका रंग तिलके तेलका सा होता है। इस तेल-में ऊपरसे और सादा तिलका तेल मिला कर घटिया तेल बनाते हैं।

फलोंके तेल बनानेकी रीति यहांके लोगोंको बहुत दिनोंसे ज्ञात है। यह तेल बीमारियोंमें विशेष लाभ पहुंचाते हैं। आपने आंवले, आदि फलोंके तेलोंके नाम सुने होंगे। इन फलोंके अर्क पहले पानीमें उतारे जाते हैं और तब उनसे तेल बनाते हैं। मान लीजिये कि आपको आंवलेका तेल बनाना है। थोड़ेसे आंवले कूट कर छोटे छोटे टुकड़े कर लीजिये। उन्हें पानीमें भिगो कर कमसे कम रात भर छोड़ दीजिये। इतने समयमें उनका अर्क पानीमें उतर आयेगा। इस पानीको तिलके तेलके साथ मिला कर और एक कड़ाहीमें रख कर धीमी धीमी आंचपर गरम कीजिये। जब सब पानी जल जाय और केवल तेल बचा रहे (ख्याल रहे कि तेल जलने न पावे) तो कड़ाही-को आगपरसे उतार लेना चाहिये। ठंडा हो जानेपर यह तेल व्यवहारमें लाया जाता है। यों तो सभी फलोंके तेल फायदेमन्द होते हैं किन्तु आंवलेका तेल विशेष लाभ प्रद होता है। इसे नीरोग मनुष्य भी लगाते हैं। यह मस्तिष्कको ठंडा रखनेवाला, शिर-पीड़ाको दूर करनेवाला और नेत्रज्योतिका बढ़ानेवाला होता है।

दूसरे प्रकारके तेल जो हमें देखनेको मिलते हैं। वह बड़े बड़े विज्ञापन और भड़कीले नामवाले होते हैं। इनका आगमन इस देशमें विदेशी सभ्यता और विदेशी वस्तुओंके साथ साथ हुआ। बाल रखनेवाले शौकीनोंको यही तेल पसन्द आते हैं। किन्तु इनके व्यवहारसे स्वास्थ्यकी हानि, मस्तिष्ककी कम ज़ोरी, नेत्रज्योति-की क्षीणता, बालोंका कुसमय पकना और गिरना आदि लक्षण दीख पड़ते हैं। जो तेल जितना अधिक खुशबूदार होगा उतना ही हानिकारक भी होगा। अधिक और तेज़ बू रखनेवाले तेल साधारणतः किरासिनके तेल, व्हाइट आयल (White oil) ब्लूमलेस आयल (Bloomless), आदिके बने होते हैं। इन तेलोंकी जब बू उड़ जाय तब उनका गंधास्वादन कीजिये; नाक नहीं ठहरेगी। इस प्रकारके तेल बड़ी सरलतासे बनते हैं। तिल, सरसों, नारियल, रेंडी आदिके तेल भी कभी कभी ऐसे तेलोंके बनानेमें व्यवहृत होते हैं। इन तेलोंको काममें लानेके पहले साफ़ कर लेना पड़ता है।

तेल साफ करना

तेल साफ करनेकी जो विधि नीचे लिखी जाती है उससे प्रायः सभी तेल साफ किये जा सकते हैं। पहली रीतिको Tanking process कहते हैं। जिस तेलको साफ करना होता है उसे किसी पीपे या बड़े बरतनमें रख छोड़ते हैं। तेल में जो गर्द, मैल आदि रहते हैं नीचे बैठ जाते हैं और साफ तेल ऊपर चला आता है। काम में लानेके समय तेलको धीरेसे नितार लेते (Decant) हैं। मैल ज्योंका त्यों बरतनके पेंदेमें जमा रह जाता है। किन्तु इस प्रथासे तेल साफ करनेके लिए महीनों—कभी कभी बर्षों—लग जाते हैं। दूसरे कुछ तेल गर्दके साथ लगा रह जाता है जिसे निकालना सहज बात नहीं है।

तेल कपड़ेसे छान लेनेसे (Filter) साफ हो जाता है। छाननेमें समय कम लगता है और प्रायः सब तेल साफ होकर निकल आता है; बहुत थोड़ा बरबाद होता है। इस विधिका व्यवहारमें लानेसे बरतन भी बेकार पड़े नहीं रहते, जैसा कि पहली विधिमें होता है। (Filter Press) में तेल बड़ी आसानीसे छन जाता है। किन्तु यह सम्भव नहीं कि प्रेस सब कोई मंगा सके। इस लिए एक चलनीमें कपड़ा रख कर उसमें दूसरी छोटी चलनी रखते हैं और उसमें भी कपड़ा रखते हैं। इसमें छानकर तेल साफ किया जा सकता है।

तेल साफ करनेके ऊपर दो साधारण तरीके दिये गये हैं। अब दो रासायनिक विधि दी जाती हैं। रासायनिक विधियोंसे पाठक घबड़ायें नहीं। वह बड़ी आसान हैं; उनसे साधारण मनुष्य भी तेल साफ कर सकता है। गन्धकाम्ल (बाज़ारू नाम सलफ्यूरिक एसिड) और सोडा (कास्टिक) सस्ते पदार्थ हैं। यह सभी दवा फरोशोंके यहां मिल सकते हैं। यही तेल साफ करनेके काममें आते हैं।

डेढ़ या दो छटाँक तेज़ गन्धकाम्ल (Concentrated sulphuric acid) को छः साढ़े छः सेर पानी में मिला कर इस प्रकार चलाओ कि पानीसे ऐसिड एक दिल हो जाय। इस क्रियामें पानी कुछ गरम हो जायगा। जब वह ठंडा हो जाय तो उसे एक मन किसी तेलमें डाल कर अच्छी तरह मिलाओ। तेल जब कुछ हरा दीख पड़ने लगे तब उसे एक सप्ताहके लिए छोड़ दो। किन्तु प्रति दिन दो बार चला दिया करो। तेलका सब मैल और रंग नीचे बैठ जायगा। तेलको नितार कर गरम पानीसे दो तीन बार धोते हैं, जिससे सब तेज़ाब धुल जाता है। साफ सफेद तेल बनानेकी यह एक आसान विधि है।

यदि कास्टिक-सोडाका व्यवहार करना होता है तो ७४ बं० का घोल (solution) तेलमें डाला जाता है। यह घोल भी पहले गरम रहता है ठंडा हो जानेपर इसे इस्तेमालमें लाना चाहिये। तेलके साथ मिला कर छोड़ देनेसे एक प्रकारका लुआबदार पदार्थ और कास्टिक सोडा घोलका जो अंश बचा रह जाता है वह नीचे की सतहपर बैठ जाता है। तेल पानी पर तैरता रहता है उसे धीरेसे ढाल लेते हैं। तेलको पानीसे अच्छी तरह धोकर सब खार (Caustic) निकाल डालते हैं। कपड़ेमें नमक रख कर छाननेसे तेलका सब पानी निकल जाता है। जलकुण्डी (Water bath) पर गरम करनेसे भी पानीके अंश उड़ जाते हैं *

तेलमें पहले अम्ल या सोडा डाल कर पीछेसे जो महाशय पानी मिलावेंगे वह तेल साफ करनेमें सफल भूतनहीं होंगे। इस लिए इनका घोल बना कर तेलमें डालना चाहिये। अधिक एसिडके व्यवहारसे तेलका रंग कुछ लाल हो जाता है।

* यह दूसरी विधि वानस्पतिक तेलके साफ करनेके उपयुक्त नहीं है।—सं०

तेलका रंग उड़ाना

तेलका रंग उड़ानेका सबसे सरल उपाय तेलको शीशेकी बोतलमें रख कर धूप में रखना है। नारियलके तेलमें दो तोला नीबूका छिलका या तेजपात डाल कर बन्द बोतलमें धूप में पांच छः दिन तक रखने से उसकी बदबू दूर हो जाती है। हरी बोतलमें रेंडीका तेल धूपमें रखा जाता है। उसके रंग उड़नेमें दो तीन हफ्ते लगते हैं। बादाम और ज़ैतूनके तेलमें इस प्रक्रिया द्वारा कुछ गंधककी सी बू आ जाती है; किन्तु उन्हें गरम पानीसे धो देनेसे बू दूर हो जाती है। धूपमें रखनेके पहले तेलको छानलना आवश्यक है।

क्रोमिक एसिडके व्यवहारसे तेल ही नहीं किन्तु चर्बी भी बेरंग हो जाती है। क्रोमिक एसिडके बदलेमें पोटासियम क्रोमेट और गंधकाम्ल या शोरेका तेज़ाब काममें लाये जाते हैं। पशुओंकी हड्डियों की राख (Animal charcoal) में रंग और बू दोनों उड़ा देनेका गुण है।

जिस तेलको दवाका तेल बनाना हो उसे मोटे कपड़ेमें छान लेना ही बस होगा, क्योंकि और प्रक्रियाओं द्वारा उसका सार अंश निकल जाता है और उसके लगानेसे कुछ फायदा नहीं होता। डाक्टर, हकीम वैद्य आदि सुगन्धित तेल से यथा सम्भव बचनेकी सलाह देते हैं। होमियोपैथिक डाक्टरोंको तो सुगन्धि से सख्त नफ़रत है।

तेल साफ करने और बे रंग करनेके तरीके यहांपर विस्तार से इस कारण दिये गये हैं कि साबुन बनानेके समय भी किसी तेल को साफ और बेरंग करनेकी आवश्यकता होती है। मेरा विचार भविष्य में "साबुन बनाने" पर कुछ लिखनेका है। मैंने अपने उस लेखका यहांपर एक प्रकारसे सूत्रपात किया है।

तेल रंगना

सुगन्धित तेल लाल, पीले या नारंगीके रङ्गके साधारणतः पाये जाते हैं। तेलको लाल रंगनेके लिए रतनजोत (Alkanetroot) पतंग लाल चन्दन आदि पदार्थ काम में लाये जाते हैं। पीला रंग हल्दी, ऐन्नाटो (annato Ceed), गैम्बोज़ (Gamboge) आदि से निकलता है। नारंगीका रंग उपरोक्त लाल और पीले रंगके मिलाने से बनता है। (oil soluble colours) कई तेलमें घुलनेवाले रंग भी इस्तेमालमें लाये जा सकते हैं।

तेल पतला करना

कोई कोई तेल रंगने और सुगन्धित करनेके पहले पतला कर लिये जाते हैं। रेंडीका तेल गाढ़ा होता है, इसमें रेक्टिफाइड स्पिरिट मिलाकर पतला करते हैं। नारियलका तेल जाड़ेके दिनोंमें जम जाता है। इसमें तिलका तेल या नमक (Rock Salt) मिलानेसे वह बराबर तरलावस्थामें रहता है।

सुगन्धि

तेलको सुगन्धित बनानेके लिए इत्र, तेज़ गंधवाले तेल जैसे मुश्क, लैवेन्डर, चन्दन, पिपरमेन्ट वर्गेमिट, लवंग आदिके तेल काममें लाये जाते हैं। किसी फूलके दो तीन भाग, रेक्टिफाइड स्पिरिट और थोड़ा सा पानी मिला कर टपका लेने से (Distill) तेलको सुगन्धित बनानेके लिए अच्छी सुगन्धि बनती है। तेलमें डालनेके लिए सुगन्धि को पहले ग्लिसरीन या एलकोहल (Glycerine or alcohol) में मिला लेते हैं, तब तेलमें डालते हैं। जो लोग घर पर सुगन्धि नहीं बना सकते वह इसे कलकत्तेके एस. एल. ऐण्ड को०, ४ हास्पिटल स्ट्रीट, धर्मतल्लेसे मंगा लें। इत्रके व्यवहारसे बाल कुसमय सफेद हो जाते हैं। उससे यथा सम्भव बचना चाहिये। रतन जोत भी उपर्युक्त पतेपर मिलती है।

तेलको सुगन्धित बनाना

तेलमें सुगन्धि डालनेके पहले उसे रंग लेना चाहिये। तेलमें रतनजोत डाल कर १०—१५ दिन छोड़ देते हैं। दिनमें दो बार हिलाना भी आवश्यक है। उसके बाद उसे ब्लाटिंग पेपर या फिल्टर पेपर

से छान देते हैं। इस रंगीन तेलको बोतल या शीशीमें रखकर ऊपरसे आवश्यकतानुसार सुगन्धि डाल कर कार्क बन्द कर देते हैं। एक डेढ़ हफ्तेके बाद तेल तैयार हो जायगा। रंगीन व्हाइट पैरेफिन आयल (White paraffin oil) में भी कोई सुगन्धि या इत्र डालनेसे सुगन्धित तेल तैयार हो जाता है। दो तीन प्रकारकी सुगन्धि एक साथ मिला कर डालनेसे खुशबू अच्छी होती है।

सुगन्धित तेल बनानेके तरीके ऊपर दिये गये हैं। इनसे पाठक अवश्य कुछ लाभ उठावेंगे, किन्तु इस विषयमें एक बात और लिख देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं। आज कल सुगन्धित तेलोंकी बाज़ारमें भरमार है; किन्तु अच्छे खुशबूदार तेलके लिए अभी बहुत स्थान है और मेहनती आदमी उसे बेच कर खासा लाभ उठा सकते हैं। मेरी विनती है कि आप अपनी आमदनीके खयाल से देशकी भलाईको न भूल जायं। हमने अपने कर्तव्यका पालन किया है, इस लिए हमें सब प्रकारके तेलोंकी चर्चा करना पड़ी है। इन हानिकारक तेलोंको बना कर बेचनेका अख़तियार आपको है। आप देशके स्वास्थ्यपर नज़र रखकर जैसा भला समझें करें।

—रमेशप्रसाद

## नक्षत्र-संसार

( पाश्चात्य आलोचन )

[ ले०—पं० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार ]

विशाल गगन मण्डलकी यदि सच्ची छुटाका कुछ आनन्द किसीको लूटना हो तो शरत्के कृष्ण पक्षमें आकाशका निरीक्षण करे। भगवानकी अत्यन्त उज्ज्वल सृष्टिका अधिकतम विलास तभी होता है। अनन्त ज्योतियोंके समुद्रमें मानवीय बुद्धिकी धारताकी परीक्षा होजाती है। सौर जगतके अतिरिक्त अन्य जगतोंमें भी प्रकाशकी सत्ता प्रमाणित होती है और सहसा ऐसे प्रश्न उदय होते हैं कि उनका समाधान करना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है। उनके विषयमें जितना ज्ञान भी कर लिया जाय वह थोड़ा प्रतीत होता है। नक्षत्र क्या और कितने हैं? विद्वानोंने इनकी गणना किस प्रकार की है? इनके कितने प्रकार हैं? यह गतिशील हैं अथवा निश्चल? यदि चलते हैं तो कैसे और किस ओर? इनका कितना बड़ा आकार है? यह हमसे कितनी दूर हैं? इनकी रचना किस प्रकार की है? इनकी भी कोई सीमा है या इनका विस्तार अनन्त है? इनके भिन्न भिन्न रंग क्यों दिखाई देते हैं? ऐसे ऐसे नाना प्रकारके प्रश्न मानवीय बुद्धिमें बराबर उठा करते हैं। पौर्वात्य आलोचनमें इस विषयमें भारतीय विद्वानोंके मतका संक्षेपसे दिग्दर्शन अवश्य करानेका प्रयत्न किया था, परन्तु उससे उक्त सभी प्रश्न हल नहीं होते। इसी जिज्ञासाने पाश्चात्योंको ज्ञानमार्गमें खींचते खींचते बहुत दूर तक पहुंचा दिया है। सूक्ष्म विवेचनसे पाश्चात्योंने नक्षत्र संसारके विषयमें इतना अधिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है कि उसका शतांश भी पूर्वीय विद्वानोंको न था। अब उसीका दिग्दर्शन कराना इस निबन्धका उद्देश्य है।

स्वच्छ रात्रिमें वैज्ञानिक आंखोंके सामने कितने ही प्रकारकी अद्भुत वस्तुएं आती हैं, जैसे, नक्षत्र, नीहारिका, ग्रह, उपग्रह आदि। हम ग्रह उपग्रहोंको प्रसङ्गसे बाहर होने के कारण फिर कभीके लिए रख छोड़ते हैं। शेष नक्षत्र और नीहारिकाएं ही वर्तमान प्रसङ्गके मुख्य विषय हैं। इनमें भी क्रमसे नानाप्रकारके भेद प्रभेद होते चले जाते हैं, जिनका क्रमसे हम वर्णन करेंगे।

### नक्षत्रोंकी गणना और श्रेणीविभाग

नक्षत्रोंको सम्पूर्ण गगनमण्डलमें बिखरा हुआ देखकर उनकी गणना करना बड़ा दुरूह है। तो भी अभी वैज्ञानिकोंने आंखोंसे दीखनेवाले तारोंको यथा शक्ति गिनकर छोड़ा। नग्न निःसहाय चक्षुओंसे

इमें उत्तरीय और दक्षिणीय दोनों कपालोंमें कुल तारे एक बारमें ७००० से अधिक न दीख सकेंगे। दूर्बीनकी शक्तिके अनुसार तारोंकी संख्या बराबर बढ़ती चली जाती है। इनको विशेष क्रमबद्ध रूपमें अपने ध्यानमें रखनेके लिए मण्डलों या कांस्टेलेशनोंमें विभक्त कर दिया गया है।

भूमण्डल जिस प्रकार मनुष्योंकी बसायी छोटी मोटी बस्तियों, ग्रामों, नगरों, महानगरोंसे अङ्कित है, उसी प्रकार सम्पूर्ण गगनतल भी नाना प्रकारके छोटे बड़े तारोंमें विभक्त माना जा सकता है। जिस प्रकार भूतलको महाद्वीपों, द्वीपों, देशों, प्रान्तों, राज्यों और ज़िलोंमें बांट दिया गया है उसी प्रकार गगनतलको भी मण्डलोंमें बांट दिया गया है। उन्हीं को तारक मण्डल या कांस्टेलेशनके नामसे पुकारा जाता है। रामायणकालमें यही राशि और आश्रमोंमें बांटा जाता था। जिस प्रकार आश्विनी नक्षत्रराशि कहा जाता था। परन्तु बादमें क्रान्ति-वृत्तपर बसे मण्डल ही प्रायः राशिके नामसे कहे जाने लगे और इसी प्रसङ्गमें विद्वानोंका अन्य मण्डलोंपरसे ध्यान सर्वथा ही उठ गया। इससे अन्य सभी मंडल अपने नामों सहित लुप्तप्रायसे हो गये।

पाश्चात्य विद्वानोंने वर्त्तमानमें सम्पूर्ण गगनको मण्डलोंमें विभक्त कर डाला है। और उसकी खगोलिक पैमाइश कर डाली है।

इस विषयकी यथा सम्भव पूर्णरूपसे आलोचना करनेके लिए हम संक्षेपमें मण्डलोंका क्रमिक इतिहास दर्शाना चाहते हैं।

### मण्डलोंका क्रमिक इतिहास

इसमें सन्देह नहीं कि यूनानी विद्वानोंने नभःस्थ तारोंको मण्डलोंमें बांटते हुये उनका अनेक पशु पक्षी तथा उपयोगी पदार्थोंके आकारका कल्पित किया था। परन्तु इस कार्यका सर्वश्रेय यूनानी लोगोंको ही नहीं दिया जा सकता। इसकी खोज करनेवाले अनुशीलक और भी पुरानी सभ्यताओंको इसका श्रेय देने के लिए तय्यार हैं। ऐतिहासिकोंका विश्वास है कि बाबीलोनिया(मध्यलूनपुर) के निवासी या दजला, फ्रात् नदियोंके दुआबमें बसनेवाली अत्यन्त प्राचीन सभ्य जातियोंने वर्तमान नक्षत्र मण्डलोंका प्रथम आविष्कार किया था। उस प्रान्तमें सुमार, अकाद, और बाबिलोनियाके वासी लोग समय समयपर उन्नतिके शिखरपर रहे हैं। फोनीशी जातिके लोग व्यापार करते थे। वही यह सब उन्नति-द्योतक विद्याएं यूनान और मिस्रमें लाये थे। हिती लोग स्वतः लघुएशियामें आकर बसे और वहां से ही क्रमशः फारस, ईरान और भारतमें भी ज्योतिषका विस्तार हुआ है।

पहले कई लोगोंका विश्वास था कि नक्षत्र-मण्डलोंके नाम और उनसे सम्बन्ध कल्पित कथाएं यूनानी लोक-गाथाओंके आधारपर ही प्रचलित हुई हैं, परन्तु अब यह विश्वास सर्वथा जाता रहा है। परन्तु दजला फ्रातके दुआबमें से कीलक-लिपिके शिलालेख ऐसे प्राप्त हुए हैं, जिनमें बहुत-से तारों और तारकसमूहोंका बड़ा स्पष्ट वर्णन है। और बहुत सी यूनानी कथाएं प्रायः ज्योंकी त्यों मिलती हैं। इससे अनुमान होता है कि तारकमण्डलोंके सम्बन्धकी यूनानी कल्पनाएं तथा उनसे सम्बद्ध कथाएं श्याम जातिके (Sematic Race) साहित्यसे ली गई हैं।

इनके निर्गमस्थानका अधिक अनुसन्धान करनेके लिए यहां पर्याप्त अवकाश नहीं है, क्योंकि श्याम जाति तथा उसके समकालीन फोनीशी, सुमार, हिती, कनानी आदि नाना जातियोंका भी लुप्त इतिहास बड़ा ही मनोरंजक है। इसके अनुशीलनसे बड़े बड़े विचित्र रहस्य दृष्टिगोचर होते हैं। यहां अप्रासंगिक होनेसे उनका उल्लेख नहीं होसकता, तो भी इतना अवश्य कहेंगे कि जिस कालमें यह पश्चिमी प्रान्तोंमें बसी जातियां उच्च वैभवमें थीं उस समय भी भारतवर्ष इनसे किसी कदर कम न था। भारत देव-देश था। यह सब आसुर देश थे

उनमें आसुरी जातियोंका निवास था। इनका, दैत्य दानवीय कल्पका, इतिहास भी कभी पाठकोंको भेंट करेंगे।

बावीलनवालोंसे भी पहले उक्त दुआबमें सुमार और अकाद जातिके लोग बसे थे। वह सूर्यको वृद्ध मेष कहा करते थे। और सातोंग्रहोंको मेषके तारों के नामसे पुकारते थे। सभी तारोंके कोई नियत 'गोपालक' या रखवाले थे, जैसे ग्रहोंका रखवाला स्वाति नक्षत्र था। अकाद लोगोंने अपना ज्ञान बाबीलोनके लोगोंको सौंप दिया। उनके कीलक लिपिके अत्यन्त प्राचीन शिला लेख अद्यापि उपलब्ध हैं। असुर-अवनि-पाल बाबीलनका अत्यन्त प्रसिद्ध प्रतापी और विद्याप्रिय राजा हुआ है। उसके समयकी (६५० ई० पू०) तथा उससे भी पूर्वकी लेखमालाओं (३००० से ५०० ई० पू०) में इस सम्बन्धमें सृष्टि विषयक कथा बहुत मनोरंजक है। इसमें ३६ तारक मण्डलोंका उल्लेख है। १२ उत्तर कपालमें, १२ राशिचक्रमें और १२ दक्षिण कपालमें। इनको तीन समकेन्द्र चक्रोंमें बांटा गया था। उत्तर कपालको ६० अंशोंमें और राशि चक्रको १२० अंशोंमें और दक्षिण कपाल को जो सबसे बाहरकी ओर का चक्र था, २४० अंशोंमें बांटा गया था। ब्राऊन महाशयने कीलक शिला लेखोंके नामोंकी यूनानी नामोंसे तुलना की और बतलाया कि राशिचक्रके नाम ज्योंके त्यों हैं।

फोनीशी जाति अपने कालमें बड़ी व्यापारी जाति थी। उसका सामुद्रिक व्यापारमें बड़ा गहरा हाथ था। कदाचित् यह फोनिक लोग भारत के वणिक लोग थे। उनको सामुद्रिक यात्राके लिए नक्षत्र विद्याका बड़ा काम पड़ता था। उन्हीं से नक्षत्र विद्या सीधी यूनानियोंके हाथ आयी। अति प्राचीन यूनानी विद्वानोंने अपनी पुस्तकोंमें बराबर नक्षत्रमण्डलोंके नामोंका उल्लेख किया है तो भी नामी ज्योतिषियोंका पता ५, ६ शताब्दी ई० पू० में ही चला है। हिपारकस और अरातसने ४४ मण्डलोंका नाम लिया है। फिर १६०३में जान बेयर नामक जर्मन ज्योतिषीने दक्षिणके नक्षत्रों की आलोचना करके १२ नक्षत्र मण्डलों की और भी वृद्धि की। १६२७में जान शिलरने एक विचित्र प्रयत्न किया। वह यह था कि मण्डलोंके नाम उसने अपने ईसाई सन्त महन्तोंके नामसे रखना चाहा, परन्तु कुछ प्रचार नहीं हुआ। इसी प्रकार ई० वेजिलसने मण्डलोंके आकार यूरोपके राजवंशों के विशेष चिन्होंके अनुसार बनानेकी चेष्टा की, परन्तु वह भी व्यर्थ हुई। हां, इन प्रयत्नोंसे मण्डलों की संख्यामें कुछ वृद्धि अवश्य होती गयी। और अब सब नये पुराने मण्डल मिला कर कुल ८० हैं, जिनके हम क्रमसे नाम लिखते हैं और अपनी सुगमताके लिए प्रस्तुत लेखमें उपयोगके लिए, उन नामोंका उल्लेख करते हैं जो उनके वाच्यार्थ को दर्शाते हैं तथा मध्यकालीन भारतीय ज्योतिषियोंने भी अपनाये हैं।

| विदेशी नाम | देशी नाम |
|---|---|
| १ एन्ड्रोमीडा (Andromeda) | अन्तर्मदा |
| २ एयरपम्प (Air pump) | वायुयन्त्र |
| ३ एपस (Apus) | स्वर्ग शकुनि या भूम्राट मं० |
| ४ एक्वेरियस (Aquarius) | कुम्भ |
| ५ एकिला (Aquila) | पक्षिराट |
| ६ आरा (Ara) | वेदिकाहस |
| ७ आर्गो (Argo) | अर्णवयान, नौका |
| [इसके चार भाग हैं १ नौ पुच्छ २ नौ मुख ३ नौ वह ४ नौदण्ड] | |
| ८ एरीज़ (Aries) | (मेष) |
| ९ आरिगा (Auriga) | ब्रह्ममण्डल या क.र |
| १० बुटेस (Bootes) | अक्षपाल या भूनेश |
| ११ केमिलोपार्डस (Camelopardus) | जीराफ या क्रमेल |
| १२ कैन्सर (Cancer) | कर्कट |

| विदेशी नाम | देशी नाम |
|---|---|
| १३ केनिसवेनिटिकि ( Canis Venatici ) | सारमेय युगल |
| १४ केनिस मेजर (Canis major) | मृगव्याध या बृहत् श्वान |
| १५ केनिसमाइनर (Canis minor) | लघु श्वान् |
| १६ केप्रिकारनस (Capricornus) | मकर |
| १७ केस्मिपिया (Cassiopeia) | काश्यपी मण्डल |
| १८ सेन्टोरस ( Centaurus ) | महिषासुर या तुरगानन |
| १९ सीफियस (Cepheus) | शेफालिका |
| २० सीटस (Cetus) | तिमि |
| २१ केमिलियन (Chamœleon) | सरट, कृकलास |
| २२ सिरसिनस ( Circinus ) | वृत्त |
| २३ कोयलम (Coelum) | नभो मार्ग |
| २४ कोलम्बा (Columba) | कपोतिका |
| २५ कोमा बरेनिसज् ( Coma Berenices) | केशपाश |
| २६ कारोनाआस्ट्रेलिस ( Corona australis) | दक्षिण किरीट |
| २७ करोना बोरेलिस ( Corona Borealis) | उत्तर किरीट |
| २८ कारवस (Corvus) | काक, करतल |
| २९ क्रेटर (Crater) | कौस्य मण्डल |
| ३० क्रक्स ( Crux ) | त्रिशङ्कु |
| ३१ सिग्नस (Cygnus) | बक |
| ३२ डेल्फिनस (Delphinus) | महामत्स्य, श्रविष्ठा |
| ३३ डोरेडो ( Dorado ) | कनक मत्स्य, सुवर्णाश्रम |
| ३४ ड्रेको ( Draco ) | तक्षक, महानाग |
| ३५ एक्वुलस (Equuleus) | अश्वतर |
| ३६ एरांडनस ( Eridanus ) | यामी, सिन्धु |
| ३७ फारनेक्स (Fornax) | यज्ञकुण्ड, हसान्तिका |
| ३८ जेमिनि ( Gemini ) | मिथुन |
| ३९ ग्रस ( Grus ) | सारस |
| ४० हेरिकुलस ( Hercules ) | हरिकुलेश |
| ४१ होरोलोजियम(Horologium) | घटिका |
| ४२ हिड्रा ( Hydra ) | हृद्सर्प |
| ४३ इन्डस ( Indus ) | इन्दु |
| ४४ लेसर्टा (Lecerta) | गोधा |
| ४५ लिओ ( Leo ) | सिंह |
| ४६ लिओमाइनर (Leo minor) | लघुसिंह, सिंह-शावक |
| ४७ लीपस (Lepus) | शश |
| ४८ लिब्रा ( Libra ) | तुला |
| ४९ लूपस ( Lupus ) | शार्दूल |
| ५० लिङ्क्स (Lynx) | वनमाजार |
| ५१ लाइरा ( Lyra ) | वीणा |
| ५२ मेन्सा (Mensa) | चत्वाल |
| ५३ माइक्रोस्कोपियम (Microscopium) | क्षुद्रवीक्षण |
| ५४ मानोसिरोज् (Monoceros) | एकशृङ्गी |
| ५५ मस्का ( Musca ) | मक्षिका |
| ५६ नोर्मा ( Norma ) | मानदण्ड |
| ५७ आक्टेन ( Octans ) | अष्टांश |
| ५८ ओफियूकस (Ophiuchus) | सर्पधारी |
| ५९ आरायन (Orion) | कालपुरुष |
| ६० पेवो (Pavo) | चित्रमयूर |
| ६१ पेगसस (Pegasus) | पक्षिराज |
| ६२ पर्सियस (Perseus) | पारसीक |
| ६३ फीनिक्स (Phoenix) | सम्पाति |
| ६४ पिक्टर (Pictor) | चित्रकार |
| ६५ पिस्सस आस्ट्रेलिस (Piscis Australis) | दक्षिण मीन |
| ६६ पिसिस वोलान ( Pisces bolan) | मीन राशि |
| ६७ रेटिकुलम (Reticulum) | जाल |
| ६८ सेगिटा (Sagitta) | बाण |
| ६९ सेगिटेरियस (Sagittarius) | धनुष राशि |
| ७० स्कार्पियो (Scorpio) | वृश्चिक |
| ७१ स्कलपटर (Sculptor) | भास्कर |

| विदेशीनाम | देशी नाम |
| --- | --- |
| ७२ स्कूटम सोबिस्की | चर्म |
| ७३ सर्पन्स (Serpens) | सर्प |
| ७४ सक्स्टन्स (Sextans) | षष्ठांश |
| ७५ टारस ( Taurus ) | वृष |
| ७६ टेलिस्कोपियम (Telescopium) | दूरवीक्षण |
| ७७ टोकान (Toucan) | चञ्चुभृत् |
| ७८ ट्रायंगुलम ( Triangulum) | त्रिकोण |
| ७९ ट्रायंगुलम आस्ट्रेलिस (Triangulum Australis) | दक्षिण त्रिकोण |
| ८० उर्सामेजर ( Ursa major ) | महाऋक्ष, सप्तर्षि, चित्रशिखण्डि |
| ८१ उर्सामाईनर (Ursa minor) | लघुऋक्ष, लघुसप्तर्षि, शिशुमार |
| ८२ विर्गो (Virgo) | कन्या राशि |
| ८३ वुल्पेक्युला (Vulpecula) | जम्बुक, शृगाल |

इनके अतिरिक्त लगभग १७ हैं, जिनका बहुत ही गौण होनेसे यहां उल्लेख नहीं करते हैं।

इतना ही लिख देना पर्याप्त है कि इनमें से २८ उत्तर कपालमें हैं और १२ राशि चक्रमें हैं और शेष ४६ मण्डल दक्षिण कपालमें हैं।

इन नामोंमेंसे कुछ पुरानी कथाओंके चरित्र नायकोंके हैं, जैसे हर्कुलेस, पर्सियस, अण्ड्रोमीडा सीफियस आदि; कुछ मनुष्यकी बनाई वस्तुके नाम हैं, जैसे ट्रायंगुलम आदि; कुछ पक्षियों और पशुओंके नाम हैं; कुछ नदियोंके। परन्तु आश्चर्य यह है कि उनमें एक भी वनस्पतिका नाम नहीं है। इस गगन समुद्रमें न कमल हैं, न आम और न पीपल। कदाचित् इन नामोंके प्रथम प्रवर्त्तक काल्डियाके विद्वान् थे। उनकी दृष्टि सदा पशु संसारपर रहती थी; परन्तु वर्तमान ज्योतिषी अब गगनमें कुछ भी नहीं देखते। न सिंह, न मयूर, न घड़ियाल, प्रत्युत केवल ज्यामितिक आकृतियां ही दृष्टिगोचर होती हैं।

### तारोंका वर्णन

अब मण्डलोंसे उतर कर हम नक्षत्रोंपर आना चाहते हैं। प्राचीन विद्वानोंने बहुत से तारोंके भी पृथक् पृथक् नाम रखे थे। भारतीय विद्वानोंने स्वाति विशाख, विष्णु, सोम, लुब्धक ध्रुव आदि नाम रखे। इधर अरबी ज्योतिषियोंने आखिर-अल-नहर या अखरनर, इब्न-अल-जाज ( बीटलगीज़ ), अल-नासर, अलनायर (आल्टेयर) अल-दावरन ( अल-डीबरन) आदि नाना नाम रखे; जिनका बिगड़ा रूप यूरोपवालोंने भी अपनाया है। यह प्रयत्न भी तारोंका वर्गीकरण करनेमें नवीन विद्वानोंकी दृष्टि-से पर्याप्त न जंचा। यूरोपीय विद्वानोंने तारोंको गिननेका प्रयत्न किया और पता लगाया कि स्वच्छतम रात्रिमें चतुर आंख भी एक समयमें ७००० तारेसे अधिक नहीं देख सकती। इस प्रकार विशाल गगनमें अनेक समयोंमें निरीक्षण करनेपर भी कुल तारे जो चार्म चक्षुसे देख पड़ेंगे १२००० से अधिक नहीं हैं। पृथ्वीको घेरनेवाला वायुमण्डल भी तारोंके प्रकाशको बहुत हड़प कर जाता है। यदि यह वायुमण्डल भी न होता तो निश्चयसे तारे वर्तमानकी अपेक्षा भी ६, १० गुने दीखते। साधारण दूरबीनसे देखनेपर भी बहुत सी संख्या बढ़ जाती है। बड़े तारोंकी अपेक्षा छोटे तारोंकी संख्या बहुत अधिक है। इसीसे सारे तारोंका सम्पूर्ण प्रकाश भी चन्द्रके प्रकाशका मुकाबला नहीं कर सकता। तारोंका कुल प्रकाश चन्द्रके प्रकाश से ३० वां हिस्सा भी नहीं है।

प्रबलतर शक्तिशाली दूरबीनोंसे दीखनेवाले सभी तारोंकी संख्या यद्यपि ठीक ठीक नहीं कही जा सकती तो भी लग भग ६ करोड़ कूती गई है। यह न समझना चाहिये कि गगन मंडलमें तारोंकी संख्या अनन्त है, प्रत्युत विद्वानोंका सिद्धान्त है कि यदि तारे अनन्त होते तो आकाश नीला न हो कर सूर्यकी तरह चमकता होता।

## दीप्तिसे वर्गीकरण

अब स्वभावतः प्रश्न उठता है कि कोई तारे छोटे और कोई बड़े क्यों दीखते हैं। इसी प्रकार किसीकी दीप्ति अधिक और किसीकी कम क्यों है। यह आवश्यक नहीं है कि छोटा दीखनेवाला तारा अवश्य छोटा ही हो और बड़ा दीखनेवाला तारा बड़ा ही हो। आंखों से दीखनेवाले आकार, दीप्ति में न्यूनाधिकता होनेके कई कारण हैं—जैसे (१) तारेके पिंडका छोटा बड़ा होना (२) उसके प्रकाशका न्यूनाधिक होना (३) दर्शकसे तारोंकी दूरीका न्यूनाधिक होना। इन तीनों बातों मेंसे किसी एकका भी अभी पर्याप्त निर्णय नहीं हुआ है। तारोंका पिंड, वास्तविक प्रकाश और दूरी यह तीनों समस्याएं अभी तक ज्योंकी त्यों बनी हैं।

पुराने यूनानी ज्योतिषियोंने दीप्तिके आधारपर तारोंका वर्गीकरण किया था। और उनको ६ विभागों में बांटा था। १ से ६ठी दीप्तिके मध्यमें द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम दीप्तिके तारे कल्पित हैं। इनका विभाग भी मन माना ही कर लिया गया था। तो भी कुछ न्यूनाधिकताका भेद अवश्य था। प्रथम दीप्तिका तारा छठी दीप्तिके तारेसे १०० गुना अधिक प्रकाशमान होता है। इस प्रकारकी गणनासे दीप्तिका प्रत्येक वर्ग अपने समीपतम न्यून वर्गसे $२\frac{१}{२}$ गुना अधिक प्रकाशमान होता है। इस प्रकार १ ली दीप्तिका तारा २१ वीं दीप्तिके तारेसे १० करोड़ गुना प्रकाशमान होगा।

बादके विद्वानोंने इस वर्गीकरणमें दशमलव गणितका प्रयोग करके उसे भी सूक्ष्म कर दिया। इस प्रकार २.१, २.२, २.३ करते हुए २.९ के बाद ३ दीप्तिका नम्बर आता था और बहुतसे प्रथम दीप्तिके तारोंमें दशमलवी गणनासे कुछ कुछ अन्तर था। इस लिए प्रथम दीप्तिका तारा भी निर्णय करना आवश्यक हुआ। उससे अधिक दीप्तिवाले पिंडोंको-१ - २, - ३,के क्रमसे दर्शाना पड़ा।

वर्गीकरणमें सबसे अधिक काम आलोकचित्रण ने किया। फोटोकी प्लेटपर बराबर आनुपातिक क्रमसे प्रकाशित तारा बड़ा छोटा पड़ता था। इसीको मापकर उसकी दीप्तिका निर्णय किया गया। इसी प्रकार कतिपय विद्वानोंने अपनी दूरबीनके साथ सूक्ष्म प्रकाशमापक यन्त्रका प्रयोग करके दीप्तिका निर्णय किया।

## तारों और ग्रहोंमें भेद

तारों और ग्रहोंमें भेद पहचानने की बहुत अच्छी विधि यह है कि तारे टिमटिमाते हैं, परन्तु ग्रहोंके बिम्ब नहीं टिमटिमाते; प्रत्युत एक स्थिर प्रकाशसे चमका करते हैं। यह समझना बहुत भूल है कि दूरस्थ भड़कते सूर्य एकबार बहुत अधिक भड़क कर एक क्षणमें बुझ जाते होंगे या प्रतिक्षण इन्द्रधनुषीय रंगोंमें अपना रूप बदलते हैं। प्रत्युत इस प्रकारके टिमटिमानेका कारण कुछ दूसरा ही है। इसमें मुख्य कारण हमारा वायुमण्डल ही है।

ठीक सिरके ऊपर तारोंमें टिमटिमाहट लेशमात्र भी नहीं होती और ज्यों ज्यों वह क्षितिजके समीप आते जाते हैं त्यों त्यों उनमें टिमटिमाने, रंग बदलने और चमचमानेकी क्रिया अधिक दीखती जाती है। क्षितिजके समीप तारोंके प्रकाशको अधिक घने वातावरणमेंसे प्रवेश करना पड़ता है। गर्मीकी अपेक्षा शीतकालमें तारे अधिक चमचमाते हैं। उनका अधिक टिमटिमाना ही वातावरणमें जलीय अंशकी अधिक सत्ताका सूचक है। पहले विद्वान इन्हींके अधिक टिमटिमानेसे वर्षा और हिमोत्पातोंकी सम्भावना जान लेते थे। वायुमण्डलमें कहींका भाग विरल और कहींका घना होता है। अतः प्रकाश गुज़रता हुआ विचलित हो जाता है। भिन्न भिन्न रंगोंका विचलन भी भिन्न भिन्न मात्रामें होता है। अतः सब किरणें इकट्ठी न आकर फट जाती हैं, इसीसे नाना प्रकारके रंग दीखते हैं। ग्रहोंके पिण्ड अत्यन्त

समीप होनेसे उनकी किरण भी यद्यपि फटती है तो भी इनका पृथक् बिम्ब पूरा दीखता है; इससे कोई भेद नहीं जंचता। उनकी फटी फटाई किरणें फिर एकमें मिल जाती हैं और तारोंका विशेष बिम्ब दिखाई नहीं देता, प्रत्युत् प्रकाशकी रेखा केवल एक बिन्दुसे आती प्रतीत होती है। श्वेत प्रकाशके तारे अन्य नीले, पीले, लाल, नारंगी तारोंकी अपेक्षा अधिक टिमटिमाते हैं।

### विशाल सूर्य

साधारणतः देखनेसे यद्यपि नाना प्रकारके तारे दीखते हैं तो भी वह सभी सूर्य हैं। इन सभीकी अलग अलग जीवन दशा है। तो भी गगनके प्रत्येक विभागमें कुछ न कुछ तारे अपनी अपनी विचित्रता लिये हैं, जिनका दिग्दर्शन करा देना यहां अप्रासङ्गिक न होगा। जैसे—

१—अन्तर्मदा या ध्रुवमातामण्डलमें तीन अधिक चमकनेवाले तारे एक ही पंक्तिमें दीखते हैं। वह तीनों २ य दीप्तिके हैं। उनमेंसे एक (सुनीति) एक दम तीन तारोंका तिक्का है, उसमें से एक नारंगी और शेष दोनों हरे और नीले हैं। यह दोनों पहलेकी परिक्रमा करते हैं। मानों सुवर्णांग हंस-की सेवाशुश्रूषामें शुक और नीलकण्ठ दोनों लगे हों।

२—ध्रुवतारा २ य दीप्तिका है। उसका प्रकाश हमारे सूर्यसे ५० गुना अधिक है। इसके साथ एक और तारा सटा हुआ है।

३—कुम्भ राशिमें एक युगल तारा है। यह एक दूसरेकी परिक्रमा १६०० वर्षोंमें कर पाते हैं।

४—गरुड़ मण्डलमें एक परिवर्त्ती तारा है, जिसका प्रकाश सात दिनोंके अन्तरमें बराबर घटता बढ़ता रहता है।

५—ब्रह्ममण्डलमें सबसे बड़ा उज्ज्वल तारा ब्रह्महृदय है, जो हमारे सूर्यसे १०० गुना अधिक दीप्तिमान है और युगल है। यह दोनों एक दूसरे के गिर्द १०४ दिनोंमें परिक्रमा कर लेते हैं।

६—भूतेशमण्डलमें नक्षत्र स्वाति अत्यन्त उज्ज्वल रक्त वर्णका तारा है। यह हमारे सूर्यसे १२ सौ गुना अधिक तेजस्वी है। सूक्ष्म यन्त्रोंसे इसका ताप भी इस भूमण्डलपर अनुभव किया जा सकता है और वह अनन्त नभोमार्गमें २६० मील प्रति सेकंडके वेगसे गति कर रहा है।

७—तारा लुब्धक (सिरियस) श्वेत और अत्यधिक उज्ज्वल है।

८—शुनीमण्डलमें प्रभाष हमारे सूर्यसे ५ गुना अधिक तेजस्वी है। उससे आधे परिमाणका एक तारा उसकी परिक्रमा करता है।

इसी प्रकार प्रायः सभी नक्षत्र मण्डलमें कुछ न कुछ तारे अपनी विशेषता रखते हैं, जिनका विस्तृत वर्णन पृथक् किया जायगा। इनके अतिरिक्त तारकयूथ, त्रिक, चतुष्क, और पञ्चक और युगल, तारे हैं और साथ ही परिवर्ती, संघुलित, नीहारिका आदि नाना दृश्य दर्शनीय हैं। इनकी विवेचना आगे करेंगे। यहां इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि पुराने विद्वानोंने तारामण्डलोंका वर्गीकरण ही कर रखा था (किन्तु अब प्रत्येक छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े तारेका स्थान निर्णय करनेपर भी बड़ा बल दिया गया है। इसीसे उसमें होनेवाले किसी प्रकारके भी परिवर्तनका तुरन्त ज्ञान हो जाता है।

### तारोंकी रचना

पुराने यूनानी और हिन्दुस्तानी विद्वान् तारोंको राशियों और मण्डलोंमें विभक्त करके और उनके नाना परिचित और अपरिचित नाम रख कर ही सन्तुष्ट हो गये, परन्तु पाश्चात्य विद्वानोंको इतनेसे संतोष नहीं हुआ। इन्होंने इसका और भी अनुसन्धान किया। यह प्रश्न स्वाभाविक ही है कि क्या यह तारे स्वतः प्रकाशमान हैं या सूर्यके प्रकाश-

से प्रकाशित हैं या स्वतः सूर्य हैं। यदि स्वतः सूर्य हैं तो क्या अपने सूर्य नारायण के सदृश ही इनके पिण्डकी रचना भी है। या उससे भिन्न है। भिन्न है तो कितनी और सदृश है तो किन किन अंशोंमें। यह सभी प्रश्न तारोंकी पिण्ड-रचनाके विषयमें स्वभाविक हैं। विद्वानोंने अपने श्रमसे इन तारोंका रचनाकी दृष्टिसे एक अद्भुत वर्गीकरण किया है? जैसे सूर्यवर्ग व्याघ्रवर्ग, हीलियम वर्ग, आदि। अब हम इन वर्गीकरणका विशेष वर्णन करेंगे।

कोपर्निकसकी ब्रह्माण्ड कल्पनासे यह बात निस्सन्देह मानी जाने लगी थी कि तारोंकी दूरीके सामने पृथ्वीका क्रान्ति मार्ग और सौर परिवारका क्षेत्र कुछ भी नहीं है प्रत्युत उसको ब्रह्माण्डके विशाल आकारके सामने एक बिन्दु माना जा सकता है। इसीसे यह भी स्पष्ट होगया कि तारोंकी दीप्ति भी सूर्यसे कहीं बढ़कर है जो गणनातीत दूरी पर रहते हुए भी यहां तक बराबर प्रकाश पहुंचाते हैं। अब यह भी सत्य मान लिया गया है कि सभी तारे स्वतः प्रकाशमान विशाल सूर्य हैं। दूरबीनोंसे देखनेपर भी अभी तक तारोंका विशेष बिम्ब दीख नहीं पड़ा। केवल किरण पुञ्ज अनन्त दूरी पर-स्थित, बिन्दुओंसे आते हुये प्रतीत होते हैं।

रश्मिचित्रदर्शक यन्त्रने इस क्षेत्रमें निस्सन्देह बहुत चमत्कार दिखाया है। इस यन्त्रकी सहायता से तारोंकी भौतिक रचनाका पूरा पूरा ज्ञान होगया है और जो पहले केवल अनुमान कोटिमें था अब वह प्रत्यक्षमें परिणत हो गया है।

रचना दृष्टिसे वर्गीकरण

विज्ञानपत्रकी गत वर्षकी ७वीं संख्यामें हमने सूर्यकी रचनाका वर्णन करते हुए उसका तारोंमें स्थान तथा सतरंगी परीक्षाके आधारपर तारोंके सूर्य समान जीवनकी तरुण वृद्ध तथा मरणावस्था का संक्षेपसे विवरण दिया था। उसी प्रसङ्गमें हमने सूर्यके भिन्न भिन्न भागोंका वर्णन करते हुए हिरण्यकोष (फोटोस्फीयर), हिरण्यवसन और कन्दलका वर्णन किया था। तारोंके प्रकरणमें हम नये रूपमें उसको न लिखकर पाठकोंका ध्यान केवल उस लेखकी ओर दिलाया चाहते हैं।

१. सूर्य वर्ग

तारे निस्सन्देह सूर्य हैं। उनका हिरण्यकोष, हिरण्यवसन (क्रामोस्फीयर और कन्दल) (न्यूक्लियस) भी सूर्यके समान ही हैं। यद्यपि बहुत से तारोंकी रचना सूर्यसे कुछ अंशोंमें भिन्न भी है तो भी कुछ तारे सूर्य वर्गमें ही समाविष्ट हैं; क्योंकि उनके रश्मिचित्र सर्वथा सूर्यके समान ही काली धारियोंसे युक्त दीखते हैं। निस्सन्देह उनकी रचना भी सूर्यके ही समान होगी। यद्यपि इस वर्गके बहुत से तारे हैं तो भी इनमें कुछ कुछ वैयक्तिक भेद हैं और उनमें कुछ दीप्ति परिमाण आदिमें सूर्यसे बहुत अधिक बड़े हैं। सूर्य वर्गके तारोंके रश्मिचित्रमें निरन्तर लगातार एक ही क्रमसे आनेवाले रंगोंकी पट्टी होती हैं, जिसमें उज्ज्वल धारियां न होकर बहुत सी काली धारियां दृष्टि गोचर होती हैं।

इन नाना प्रकारकी काली तथा उज्ज्वल धारियोंकी न्यूनाधिकताके भेदसे तारोंके अन्य नानावर्ग कल्पित कियेगये हैं। सूर्यवर्गके रश्मिचित्रोंमें काली धारियों वाली पट्टियां संतत (कान्टिन्यूअस) होती हैं। क्योंकि यह दोनों घटनाएं सूर्य और तारेके आवरणोंके कारण दीखती हैं। तारों और सूर्यका ऊपरका शीत वातावरण अन्दरके अति प्रदीप्त हिरण्यकोशकी दीप्तिको ग्रस लेता है। इसीसे सूर्यवर्गकी सप्तरंगीमें उज्ज्वल धारियोंके स्थानपर काली धारियां प्रकट होती हैं। उनमें उज्जनकी भी ४ रेखाएं नीलपटिकापर स्पष्ट होती हैं।

यद्यपि सूर्य वर्गके सभी तारोंकी रचना सर्वथा समान है और सूक्ष्म निरीक्षणसे कदाचित् सूर्यके धब्बों और ज्वालाद्रिकों, ज्वालापटलों तथा अन्य सूर्यके पृष्ठपर होनेवाले भयकर उत्पातोंकी

सत्ता भी प्रमाणित हो सकती है तो भी इस वर्गके सब तारे समान आकारके नहीं हैं। अगस्त्य (कनोपस) तारा कदाचित् सूर्य वर्गमें सबसे बड़ा तारा है। इसका शरीर हमारे सूर्य देवतासे ६० लाख गुना बड़ा है। इसी प्रकार दूसरी ओर सप्तर्षि मण्डलके अरुन्धती तारेका पिण्ड सूर्यके शरीरका ३५०वां हिस्सा है। इसी प्रकार पिण्डके आकार भेदसे उनमें आकर्षण शक्तिका भी भेद अवश्य है। तो भी इनमें घटक द्रव्योंका तथा मौलिकोंका अनुपात समान होगा।

### १. लुब्धक वर्ग

सूर्य वर्गके तारोंका रंग कुछ सुनहरा सा होता है। सूर्यका ऊपरका वातावरण अन्तर्दीप्त हिरण्यकोष-के अत्यधिक चौंधियादेनेवाले प्रकाशकी तीव्रता-को कुछ कम कर देता है। यदि वह न होता तो उसका प्रकाश भी तीव्र नीला सा चमचमाता। इस प्रकारके नीले प्रकाशके तारे भी बहुत अधिक हैं। यह सूर्यवर्गीय तारोंसे भी अधिक हैं। कदाचित् ज्ञात तारोंमेंसे आधेसे भी अधिक इसी वर्गके हैं। इस वर्गका प्रमुख तारा व्याध मण्डलमें लुब्धक है। इसीसे इस वर्गका नाम लुब्धकवर्ग रखा गया है। इसका उज्ज्वल नील प्रकाश है। इसमें सूर्य वर्गके समान रश्मिचित्रमें काली धारियां बिलकुल नहीं होतीं। उज्जनकी सभी रेखाएं स्पष्ट हैं। कदाचित् इसका सारा वातावरण उज्जनका ही बना हुआ है। इस वर्गमें सबसे अधिक निरीक्षण लुब्धकका ही किया गया है। अन्य तारोंकी अपेक्षा यह बहुत समीप है। इसका प्रकाश हमतक दो वर्षमें पहुंचता है। और कुछ तारे इतनी दूर हैं। जिनका प्रकाश पहुंचनेमें सैकड़ों वर्ष भी पर्याप्त नहीं। लुब्धक अपने सूर्यसे २$\frac{1}{2}$ गुणा बड़ा है। इसकी दीप्ति २१ गुनी है, परन्तु शरीर पिण्डके अनुमानसे इसकी दीप्ति केवल ११ गुनी है। इस वर्गमें अत्यधिक उज्ज्वलता और प्रखर दीप्तिका भी यही कारण है कि इसका वातावरण सूर्यकी अपेक्षा घना नहीं प्रत्युत विरल है और अधिक पारदर्शक है। कदाचित् उनके अन्दरका कन्दल और हिरण्यकोश भी बहुत बड़ा हो।

कतिपय तारोंके वर्ग उक्त दोनों वर्गोंके मध्यमें हैं। लुब्धक वर्गमें उज्जनकी बहुलता है और धातु तत्वोंकी कमी है। नीचेके वर्गोंमें दोनोंका भिन्न भिन्न अनुपातमें मिश्रण पाया जाता है। इनको ही मध्यम वर्ग कहेंगे, जैसे प्रभाष तारा (प्रोसियन) लघुश्वान मण्डलमें है। इसमें कुछ गुण सूर्य वर्गके और कुछ गुण लुब्धक वर्गके हैं। इसको देखनेसे प्रथम यही सन्देह हो जाता है कि कहीं यह दो तारे तो नहीं हैं।

### २. कार्तिकेय वर्ग

गत २० वर्षोंमें ही एक और प्रकारके तारोंके वर्गका अनुसन्धान किया गया है। वह हीलियमवर्ग कहाता है। हम इसको कार्तिकेय वर्ग कहेंगे। इनका रश्मि चित्र बराबर अविच्छिन्न (continuous) होता है। यद्यपि उज्जनकी रेखाएं भी कुछ अंशमें होती हैं तो भी उनमें हीलियम की विशेष रेखाएं प्रकट होती हैं।

बहुतोंमें हीलियमके अतिरिक्त किसी प्रकारकी भी रेखा नहीं होती। इनकी बहुत अधिक समता नीहारिका स्तवकोंसे मिलती है। इस वर्गके तारोंमें नीहारिकाका आवरण अवश्य होता है। इस वर्गके बहुत से तारे आकाश गंगामें मिलते हैं। इसके अच्छे अच्छे नमूने ओरायन (मृगशिरा) मण्डलमें हैं। इसी मण्डलमें कार्तिकेय (बालट्रिक्स) तारा बहुत उत्तम नमूना है। इसी प्रकार काणराज भी इसी वर्गका तारा है। इनमें बहुत सा अंश नीहा-रिकाका होता है। इसके वातावरणकी बहुत ही कम घनता होती है। इनके प्रकाशका बहुत कम अंश बिलीन होता है। इसीसे इनका प्रखर नील-श्वेत प्रकाश-दीखता है।

यह प्रश्न स्वभावतः उत्पन्न होता है कि इन तीनों वर्गोंमें परस्पर इतना भेद क्यों हैं। लुब्धक और

कार्त्तिकेय वर्गके तारे सूर्य वर्गके तारेकी अपेक्षा क्यों इतने अधिक उज्ज्वल प्रकाशसे चमकते हैं। इसका सरल उत्तर कुछ पहले स्पष्ट हो गया है कि उनका वातावरण अपेक्षया विरल होनेसे प्रकाशको कम विलीन करता है, क्योंकि उनके वातावरणमें धातवीय गैसें नहीं होतीं। यहां वही प्रश्न फिर उठता है कि इन वर्णोंके तारोंके वातावरणमें क्यों धातवीय गैसें नहीं होतीं। यदि इन तारोंमें तापकी बहुत अधिकता हो तो धातवीय गैसोंको निःसन्देह ऊपर आना चाहिये। कदाचित् गुरुताके बलसे वह खिंचकर केन्द्रके समीप ही रह जाती हैं और वहां नाना काली धारियोंका कारण बनती हैं। परन्तु यह भी सन्तोषप्रद कारण नहीं। वस्तुतः धातवीय प्रतप्त गैसोंमें एक प्रकारका वैद्युतिक बल उत्पन्न हो जाता है जो उनको समान वैद्युतिक पिण्डसे परे भगाता है। इसीसे सूर्यकी धातवीय गैसें सूर्यके कन्दलसे उठकर गुरुताके बलको मात करती हुई वातावरण तक आ जाती हैं। परन्तु लुब्धक और कार्त्तिकेय वर्गके तारोंमें यह गैस वैद्युतिक बलके प्रबल न होनेसे ऊपर नहीं आतीं। इससे उनका तापांश भी सौरवर्ग की अपेक्षा न्यून प्रतीत होता है। हमारे सूर्यमें भी जब क्रमशः इस वैद्युतिक बलसे परे भागनेकी प्रतिक्रियाका ह्रास हो जायगा तब यह सूर्य नारायण भी काञ्चन प्रकाशको छोड़कर नीलमणिकी कान्ति दिया करेंगे; मानों पीताम्बर उतार कर साक्षात् घन श्याम नारायणका देह प्रकट होगा।

## ४. रोहिणी वर्ग

इसके पश्चात् हम रोहिणी वर्गके तारोंकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। इस वर्गके तारोंकी रचना बहुत कुछ सूर्य वर्गके तारोंके सदृश है तो भी इनको सूर्य वर्गमें डाला नहीं जा सकता; क्योंकि इनके रश्मिचित्रमें कुछ विशेषता पायी जाती हैं। इनके वातावरणमें बहुत ही अधिक प्रकाश लुप्त हो जाता है। सबसे अधिक विचलित होनेवाला नीला जामनी प्रकाश तो प्रायः लुप्त हो जाता है। धातवीय गैसोंके प्रकाश भी लुप्त हो जानेसे उनकी काली धारियां और भी गहरी हो जाती हैं। इस वर्गका सबसे अच्छा उदाहरण रोहिणी (एलडीबरन) है। इसका रंग लाल पीला है। इसकी दीप्त शक्ति भी बहुत अधिक है; तो भी प्रकाशके बहुत विलीन हो जानेसे इसको १म दीप्तमें रखा गया है। इसका तेजः सामर्थ्य हमारे सूर्य से ८८ गुनेसे भी अधिक है। इनके वातावरणमें धातवीय गैसें बहुत अधिक हैं। नीला प्रकाश सारा इसके घने वातावरणमेंसे निकल ही नहीं सकता।

## ५—पारिजात वर्ग

इसी वर्गके सदृश हम एक और वर्गकी रचना भी पाते हैं। इसको हम पारिजात वर्ग (एण्टेरियन स्टार्स) नाम देते हैं। इस वर्गके तारों की प्रायः सभी प्रकृति रोहिणी वर्गके समान है, परन्तु इनकी रश्मिचित्र पट्टिकाओंमें रेखाएं एक ओर बहती जाती हैं। उनका आकार कुछ भद्दा सा हो जाता है। हम इस घटनाका नाम रेखा—प्रवाहके नामसे लिख आये हैं। ऐसे बहुत कम तारे हैं, जिनकी सतरंगी पट्टिकामें रेखा प्रवाह दीखता है। इस प्रकारके तारोंकी भी दो कक्षाएँ हैं। दोनोंके रश्मिचित्रोंमें भौतिक रचना की विशेषताका कुछ विशेष ज्ञान नहीं होता। प्रथम कक्षामें रंगोंकी पट्टियां जामनी रंग-की ओरसे सीमित हैं परन्तु क्रमशः लाल रंग की ओर धीरे धीरे अपने साथके रंगमें प्रवाहित होकर मिल जाती हैं। इनके रश्मिचित्रको एक और रश्मिचित्र ढके रहता है। यह दूसरा आच्छादक रश्मिचित्र हिरण्यकोशके आवरण, वातावरण, का है, जिससे यह सर्वथा सूर्य की सतरंगीके समान होता है।

प्रथम यह कल्पना की गयी कि यह विशेष प्रकार की प्रवाहित धारियां मूल तत्वोंके यौगिकों की हैं तो भी विद्वानोंके चित्त को पूरा सन्तोष

नहीं हुआ। इतना निश्चय था कि इन तारोंके वातावरणमें बहुत से तत्वोंके तथा यौगिकोंके वाष्प मिले हैं, जिनका तापांश भी नाना प्रकारसे है। इसीसे अन्तःकन्दलका प्रकाश बहुत सा वातावरणमें ही विलीन हो जाता है। इसी कारण उनकी रश्मिचित्रपट्टिका को अन्य रश्मिचित्र ढके रहते हैं। और सभोंमें अपनी अपनी काली धारियां होने से बहुत ही अधिक धारियां हो जाती हैं। मि० फाउलर ने १९०४ में पारिजातवर्गके तारोंके रश्मिचित्रमें दीखने वाली प्रवाहित रेखाओंकी टिटेनियम-ओषितकी रेखाओंसे तुलना की। इस तुलनात्मक परीक्षणमें बड़ी भारी सफलता हुई; १० मेंसे आठ धारियां ज्योंकी त्यों मिलीं। इससे यह परिणाम निकला कि टिटानियम ओषित पारिजात वर्गके तारोंमें अवश्य विद्यमान है। इसी प्रकार सिलाजनकी तुलना भी की गयी। इस वर्गके तारोंमें कर्बनकी सत्ता नहीं पायी गयी।

इस वर्गके बहुत से तारे परिवर्त्ती हैं अर्थात् इन तारोंकी दीप्ति क्रमशः कभी बहुत घट जाती है और कभी अधिक हो जाता है। इसका उत्तम उदाहरण कालपुरुष मण्डल (ओरायन) में तारा विशाख (बीटल जेवस) है। इसीको आर्द्रा नक्षत्र कहते हैं। इसका वर्ण बिलकुल गीले रुधिरके समान उज्ज्वल लाल है। दूसरा उदाहरण वृश्चिकराशिमें पारिजात तारा है। इसीका दूसरा नाम ज्येष्ठा (अण्टेयर) कहा जाता है। इसीसे अंग्रेजीमें यह वर्ग अण्टेरियन कहाता है।

पारिजात और विशाख आदि इस वर्गके तारे निःसन्देह बहुत ही अधिक दूरीपर हैं। और इनका बहुत सा प्रकाश इनके वातावरणसे रुक जानेके कारण यहां बहुत कम आता है तो भी वह प्रथम दीप्तिके तारे गिने जाते हैं। निःसन्देह यह हमारे सूर्यसे कहीं अधिक बढ़कर तेजस्वी हैं। पारिजातका हिरण्यकोश हमारे सूर्यसे निःसन्देह ८०० गुना बड़ा होना चाहिये और समस्त पिण्ड तो २२ हजार गुना कूता गया है। इसी प्रकार आर्द्रा नक्षत्र पारिजातसे भी कहीं बड़ा है।

इसी वर्गका एक अत्यन्त अद्भुत एवं विस्मयजनक तारा तिमिमण्डल (सीटस) में मार (मीरा) है। यह उज्ज्वल लाल रंगका परिवर्ती तारा है। ऐसे तारोंके परिवर्ती होनेका कारण यह है कि इन तारोंके वातावरणमें कभी कभी बहुत बड़ी उथल पुथल होती है। कभी वातावरण एकदम घना होजानेसे तारेका प्रकाश मन्द होजाता है और वहीं आवरण शीतल होकर जब एक दम अधःपात क्रियासे कन्दल की ओर खिंच जाता है उस समय वातावरण कुछ विरल होजाता है। इससे तारेकी दीप्ति सहसा अधिक होजाती है। सूर्यसदृश पिण्डोंके वातावरणमें यह परिवर्तन बराबर होते हैं जो हमने अपने सूर्य विषयक लेखोंमें बड़ी स्पष्टतासे दर्शाये हैं। तारे की अधिक दीप्तिके समय प्रायः विरल वातावरणमें उज्जनकी राशि ही भड़का करती है। उक्त वर्गमें १५ प्रतिशत तारे परिवर्त्ती हैं। शेषोंमें भी प्रायः कुछ कुछ चिन्ह परिवर्त्ती होनेके पाये ही जाते हैं।

(असमाप्त)

---

# भारतवर्षका हमला जर्मनीपर

( कुछ आङ्कसे आगे )

[ ले० श्री० "जटायु" ]

वेद व्यास, कालिदास यह सब जन्मसे शूद्र थे, पर अपने शुभ कर्मोसे ही इन्होंने ब्राह्मणकी पदवी पाई और ब्राह्मणोंमें भी श्रेष्ठ माने गये। अर्थात् ऋषि कहलाये। स्मृतिका वाक्य है कि मनुष्य जन्मसे शूद्र होता है और अपने कर्मों द्वारा ब्राह्मणकी पदवी पाता है। इसका अर्थ यह है कि जन्मके समय सब मनुष्य एक श्रेणीमें होते हैं और इनमें से जो सभ्य पुरुष होते हैं वह

द्विज कहलाते हैं और असभ्य पुरुष जो केवल दास कर्म्म करने योग्य होते हैं वह शूद्र कहलाते हैं। द्विजोंमें जो विद्या प्रचार करते हैं वह ब्राह्मण कहलाते हैं, जो युद्ध विद्या सीखते हैं वह क्षत्री कहलाते हैं और जो वणिज व्यापार करते हैं वह वैश्य कहलाते हैं। समाजकी रक्षा सेवा और उन्नतिके लिए यह तीनों वर्ण आवश्यक हैं। एक पुस्तकालयकी एक अलमारीमें गणितकी पुस्तकें रख दीजिये; एकमें ज्योतिषकी, एकमें प्राणी-शास्त्रकी, एकमें समाज शास्त्रकी, एकमें अर्थ शास्त्रकी, एकमें न्यायकी, एकमें धर्म्म-शास्त्रकी और एकमें इतिहासकी। अब इसमें किसी एक अलमारीकी पुस्तकोंको किसी दूसरी अलमारीकी पुस्तकोंसे उत्तम अथवा निकृष्ट आप नहीं कह सकते। यह बात दूसरी है कि आपको किसी विषय से रुचि हो और उसकी पुस्तकें आपको विशेष प्रिय हों। इन अलमारियोंका एक दूसरेसे कोई मुकाबिला हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार द्विजोंके तीनों वर्णोंमें एक वर्णको दूसरेसे उत्तम नहीं सकते। इसका इतिहास साक्षी है। देखिये राम और कृष्ण को भगवानका अवतार कहते हैं। यह दोनों अवतार ब्राह्मण वंशमें नहीं हुए थे और कृष्ण तो ग्वालोंके वंशमें हुए जिनको सम्वत् १८०० व १६०० में अहीर कहते थे। और आश्चर्य्य है कि अहीर शूद्र माने जाते थे। यह प्रथा आर्य्योंके राज्यमें नहीं थी। देश भरमें जब बड़े बड़े श्रेष्ठ क्षत्रिय महाभारतमें कट कर नाश हो गये और राज काज उलट पलट हो गया तबसे भारतवर्षकी दशा बिगड़ती ही चली गई। यहां तक कि ब्राह्मणों क्षत्रियोंमें भी आपसमें मन मोटाव उत्पन्न हो गया। इसका फल यह हुआ कि सम्वत् ६०० से आर्य्योंका ह्रास होने लगा और भारतवर्षमें अनार्य्योंका राज्य फैलने लगा।

भारतेन्दु ने फिर पुरानी प्रथा पर समाजको भारतवर्षमें लानेका यत्न किया। हम यह लिख चुके हैं कि भारतेन्दुने सब प्रजाके बालकोंको बिना शुल्कके प्राथमिक शिक्षा देनेका हुक्म दिया था। इस कारण सब वर्णोंके बालक एक साथ शिक्षा पाते थे। इनमें जो अच्छी श्रेणीमें उत्तीर्ण होते थे उनको उच्च शिक्षा भी पाठशालाओंमें बिना शुल्क दी जाती थी। इन पाठशालाओंके विद्यार्थी अपनी अपनी रुचिके अनुसार महाविद्यालयोंमें तरह तरहके उद्यमों और विविध शास्त्रोंमें निःशुल्क शिक्षा पाते थे। शिक्षा समाप्त होनेपर अपनी अपनी योग्यतानुसार राज्य काज और समाज सेवा करते थे। जो शिक्षक का काम करते थे अथवा न्यायालय इत्यादिमें नियत होते थे शर्म्माकी पदवी पाते थे। और ब्राह्मण वर्ण माने जाते थे। जो पुलीस अथवा सेना विभागमें थे क्षत्रिय माने जाते थे और जो वाणिज्य व्यापार करते थे अथवा आर्थिक उद्यमोंमें लगे रहते थे वैश्य माने जाते थे। जो केवल समाजकी सेवा शुश्रूषा मात्र करने योग्य होते थे वह शूद्र कहाते थे।

सम्वत १८०० और १६०० में आर्योंकी मर्य्यादा बिगड़ गई थी; जो जिस वर्णमें उत्पन्न होता था वह उसी वर्णका माना जाता था। इससे भारतवर्ष अत्यन्त हीन दशा को पहुंच गया था और स्वार्थ अहङ्कार समाजमें छाया हुआ था। ब्राह्मणोंमें बहुत से अज्ञानी कूट नीतिज्ञ स्वार्थी और दुष्ट पैदा हो गये थे। क्षत्रियोंमें अधम लोभ और भय उत्पन्न हो गया था। वैश्योंमें सदैव दरिद्रता बनी रहती थी और दान पुण्य का किञ्चित् मात्र भी प्रचार नहीं रहा था। शूद्रोंमें विद्वान-पराक्रमी-पुरुषार्थी और उत्साही जीव उत्पन्न होना बिलकुल बन्द हो गये थे।

आर्योंकी यह पुरानी मर्यादा थी कि एक पुरुषके कई स्त्रियां हो सकती थीं। इतिहासमें विख्यात है कि दूसरे देशोंमें सब समाजोंमें यही प्रथा थी। उस समय अन्य देशकी योग्य कन्याओंका पाणिग्रहण करना बिल्कुल जाता रहा था। इसका फल यह हुआ कि भारतीयोंकी जन संख्या बिल्कुल कम हो गयी, यहां

तक कि भारत वर्षमें भी यह बहुत कम रह गये और अधिकांश दूसरे देशोंके मनुष्य फैल गये। भारतेन्दुने आर्योंकी संख्यामें उन्नति करनेके लिए आज्ञा दी कि एकसे अधिक स्त्रीसे विवाह करना जायज है। और शूद्रोंको छोड़ कर द्विजोंके लिए ऐसा करना आवश्यक हो गया था। इसी मतके अनुसार भारतेन्दु ने आज्ञा दी कि भारतीय जर्मनों-की कन्याओंसे बेधड़क विवाह करें। जो जर्मन अपनी कन्या किसी भारतीयसे ब्याह देता था, उसका बड़ा आदर होता था। इस प्रकार बड़े बड़े धनाढ्य जर्मनोंकी कन्याएं अधिकांश भारतीयों-को ब्याह दी गईं और इनसे जो सन्तान उत्पन्न हुईं वह भारतीय गोत्रकी कहलाईं। उनके लिए यह मर्य्यादा डाली गई थी कि जो कन्याएं उत्पन्न होती थीं वह केवल भारतीयोंके साथ ब्याही जाती थी और पुत्रोंको आज्ञा थी कि वह जर्मन कन्याओं अथवा भारतीय गोत्रकी कन्याओंसे विवाह करें।

डाकृर सहस्रबुद्धि अय्यर ने एक विचित्र यंत्र बनाया और एक रासायनिक वस्तु निकाली। उसके द्वारा स्त्रियोंके गर्भाशयमें ऐसा परिवर्तन कर देते थे कि जिससे इच्छानुसार जिस स्त्रीसे चाहें केवल बालिकाएं अथवा केवल बालक उत्पन्न हों। डाकृर अय्यरकी रीति जर्मनीमें अधिकांश प्रयोगमें लाई गई और इसका फल यह हुआ कि जो कन्याएं भारतीयोंमें ब्याही थीं उनसे बालक ही बालक उत्पन्न हुये और जर्मनीमें भारतीयोंके सन्तानकी संख्या दिन दुगनी रात चौगुनी फैलने लगी। जर्मन यह देख कर कि जिनकी कन्याएं भारतीय ब्याहते हैं उनका बड़ा आदर होता है, अपनी कन्याओंका विवाह भारतीयोंके साथ करने को बड़े उत्सुक रहते थे और जिनके कन्याएं नहीं होती थीं, उनको बड़ा दुःख होता था। बहुत से जर्मनोंने तो डाकृर अय्यर की सहायतासे बालकों-का होना अपने यहां बिल्कुल स्थगित कर दिया। जर्मनीमें भी वर्णाश्रम-धर्म फैल गया और भारती-जर्मन प्रजा में भी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र होने लगे। केवल अन्तर इतना था कि भारतके ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्य, आर्य्य ब्राह्मण, आर्य्य क्षत्रिय, आर्य्य वैश्य, कहलाते थे और जर्मनके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, जर्मन ब्राह्मण, जर्मन क्षत्रिय और जर्मन वैश्य कहलाते थे।

जर्मनके पादरियोंको भारतीय सभ्यताका प्रचंड रूपसे जर्मनीमें बढ़ना खटकने लगा और उन्होंने बहुत से जर्मनोंको बहकाया। उन्होंने कहा कि "यह सब भारती चटक मटक उसी प्रकारके तंत्र मंत्र-की रचना है जैसी कि मूसाको फ़राऊनके दर्बारमें दिखाई गई थी। जितने जर्मन भारतीयोंके अधीन अथवा सहकारी हो गये हैं वह सब नर्कमें जावेंगे।" जो जर्मन जनता भारतके शरणमें नहीं आई थी उससे इन्होंने कहा कि जर्मनीको छोड़कर हमारे साथ उसी प्रकार भाग चलो जैसे मिश्रकी कुछ जनता मूसाके साथ भाग गई थी। बहुतसे जर्मन पादरियोंको स्वप्नमें ईसा मसीह और कितने ही सेंट और फरिश्ते दिखलाई देने लगे। कोई पादरी कहता था कि मुझसे स्वप्न-में मसीहने अमेरिकाकी तरफ़ उंगली उठाकर कहा है कि मेरी भेड़ोंको अमेरिका ले जाओ। कोई पादरी कहता था कि इज़राईल फ़रिश्तेने मुझ-से स्वप्नमें कहा है कि सब्र करो, खुदा जर्मनीपर एक प्लेग भेजने वाला है, जिससे सब भारतीय और उनके जर्मन मित्र एक दम मर जावेंगे और जो सच्चे ईसाई हैं वही बचेंगे। इन सब बातों-का फल यह हुआ कि जर्मन प्रजामें बड़ी अशान्ति फैल गई और जो जर्मन जर्मनीसे भाग गये थे वह और भी अधिक कष्टमें पड़ गये। उनके चित्त बड़े दुःखित रहने लगे और उनको विश्वास हो गया कि जो बाइबिलमें लिखा है और जो पादरी लोग भी कहते हैं कि ईसाइयों का कष्ट दूर करनेके लिए मसीह फिर जन्म लेंगे वह अवतार अब प्रकट हुआ चाहता है। भारतेन्दुके जर्मन सचिवको यह अशान्ति देख कर बड़ी चिन्ता हुई।

भारतेन्दुके जर्मन सचिवका नाम राजेन्द्र बिहारी मलिक था। यह जर्मनके पुलिस विभागके चार्जमें थे। यह बड़े तीव्रबुद्धिके थे, और बड़े चालाक थे। मीठी मीठी बातें करके कैसा ही होशियार मनुष्य क्यों न हो, उसके हृदयकी बात निकाल लेते थे। इन्होंने ढूंढ़ करके और भली भांति जांच करके फज़ल उल्ला सहबानी नामके एक मनुष्यको बुलाया। यह फारसी, अरबी, हिन्दी, संस्कृत भाषाओंके अतिरिक्त जर्मन भाषा बहुत अच्छी तरह से जानते थे और बड़े बड़े जर्मन ग्रन्थोंकी टीका बड़ी सरलता से करते थे। पर भारतवर्षमें यह आज़ाद खयालके समझे जाते थे। मुसलमानी अथवा हिन्दू किसी मजहबपर इनका दृढ़ विश्वास न था। यह अपनी खिचड़ी अलग ही पकाया करते थे। मलिकने इनको बर्लिनमें बुलवाया और जो धार्मिक अशान्ति फैल रही थी उसके दूर करनेमें इनकी सहायता मांगी। इन्होंने कहा "अच्छा; यथाशक्ति हम आपकी सहायता करेंगे। हम किसीके धर्म्म के फन्देमें तो पड़ेंगे नहीं, पर हमें इस बातका अवश्य गौरव है कि आज एशियाई सभ्यताने यूरोपीय सभ्यता को नीचा दिखलाया है और जिस ऊंचे शिखरपर एशियाई सभ्यता चढ़ गई है उसको वहां अटल बनाये रखना मैं अपना परम धर्म समझता हूं। मैं जर्मनोंमें धार्म्मिक नपुंसकता फैलाने का अब यत्न करता हूं।" यह कहकर मौलाना सहबानी भारतवर्ष लौट गये।

मौलाना सहबानीने भारतवर्षमें आ कर अन्तरराष्ट्रीय सचिवको मलिक बाबूका पत्र दिया। इसके पश्चात् अपनेसे दो एक धार्मिक विचारके मनुष्योंको अपने साथ लिया और एक ब्रह्मज्ञानकी सुसायटी स्थापित की। उन्होंने हिन्दीभाषामें ब्रह्मज्ञानके नामका एक पत्र प्रकाशित किया और भारत जनताके आगे बड़े बड़े व्याख्यान देने आरम्भ किये। इन व्याख्यानोंमें इन्होंने जर्मन सभ्यताकी बड़ी प्रशंसा की और अपने व्याख्यानोंमें कहा कि कृष्ण और क्राइस्ट एक ही हैं, और कृष्ण क्राइस्टका अवतार है अथवा क्राइस्ट कृष्णका अवतार है; कलङ्की अवतार जर्म्मनीमें होने वाला है और भगवान जर्मनीमें प्रकट होंगे। इस पर भारतवर्षमें इनपर बड़े बड़े आक्षेप किये गये। इन्होंने कहा कि भारतवर्षके बुरे दिन आनेवाले हैं और भारतवर्ष सभ्यताके शिखरपरसे गिरेगा। भारतवर्षकी जनताने इनके व्यंग वाक्योंको पसन्द नहीं किया। यह भारतवर्ष छोड कर जर्मनी चले गये और वहाँ निवास करने लगे। जर्मनोंने इनका बड़ा आदर सत्कार किया। यह घर घर पूजे जाने लगे। नगर नगर में यह व्याख्यान देने लगे। जर्मन सभ्यता की बड़ी प्रशंसा करने लगे। जर्मन सैकड़ों इनके वाक्य सुनने आते थे। बड़े बड़े जर्मनजो कट्टर देशभक्त थे इनके चेले हो गये और इनकी सुसाइटीके मेम्बर हो कर इनके भक्त और सहकारी हो गये। मौलाना कहा करते थे कि भारतीय सभ्यता मत ग्रहण करो, अपनी सभ्यता छोड़ कर अपनी दशा मत बिगाड़ो। जर्मनीमें इन्होंने जर्मनोंका एक ब्रह्मविद्यालय स्थापित किया। इस विद्यालय में इन्होंने हिन्दी भाषा, इतिहास, न्याय, जर्मन भाषा, गणित—इत्यादिका पाठन-क्रम रखा और कहा कि विज्ञान, कृषि, वैज्ञानिक उद्यम इत्यादि द्वारा आर्थिक दशा सुधारनेके सांसारिक जालमें न फंसो; यह संसार असार है; अपनी आत्मिक दशा सुधारो; भारतीयोंकी तरहसे अपने को बिगाड़ो नहीं। कुछ धनाढ्य भारतीयोंको जर्मन ब्रह्मविद्यालयमें काम करनेको यह जर्मनी ले गये। भारतेन्दुके राजकर्मचारियोंसे इन्होंने जर्मनीमें बड़ा विरोध किया। इससे जर्मनोंका बहुत ही विश्वास बढ़ गया। इन्होंने अपने जर्मन शिष्योंसे कहा; "सत्यगुरू प्रकट होनेवाला है और श्वेतवर्णका होगा।" बहुत से जर्मन इन्हींको सत्यगुरू मानने लगे। इन्होंने सिखाया कि "सब धर्म्म एक हैं, किसी मनुष्यसे शत्रुता का भाव न रखना चाहिये। सब सभ्यताएं धर्मोंके आधारपर खड़ी होती हैं। जो भारतीय करते हैं, वह अपनी सभ्यताके आधारपर

करते हैं। वह अपने पूर्वजन्मके कर्मोंका फल भोग रहे हैं। जर्मनोंको अपने धर्म पर दृढ़ रहना चाहिये। शत्रुता बिलकुल छोड़ देनी चाहिये। आत्मा सुधारनी चाहिये। आगामी जन्मोंमें वह भी उसका फल भोगेंगे और उन्हींकी सभ्यता अवश्य संसारमें फैलेगी।" नाना प्रकारके जप तप योग और उपासनाएं इन्होंने गढ़ गढ़ कर जर्मनोंको सिखलाईं और बहुत से जर्मन इन्हींमें लिप्त रहने लगे। जहां कहीं किसी समाजको जर्मनीका हितकारी देखते थे और यह बढ़ती हुई मालूम देती थी उसीमें सम्मिलित हो जाते थे। बहुत से जर्मन इनको त्रिकालदर्शी मानने लगे और प्रायः समाजोंने इनको अपना नेता बनाकर बागडोर इनके हाथमें दे दी। मौलाना सहबानीके षड़यन्त्रका यह फल हुआ कि जर्मन पादरियोंका प्रभाव कम हो गया और बहुत सी जनता एक प्रकारकी धार्मिक नपुंसकतामें ग्रस्त हो गयी।

इस प्रकारसे जर्मनीमें शांति फैलगई और भारतीय राज्य सम्पूर्ण रीतिसे शक्तिशाली हो गया। अधिकांश जर्मन युद्धसे घृणा करने लगे। युद्ध विद्यासे तो उनका ध्यान बिलकुल हट गया। सांसारिक उद्यमोंको केवल पेट भरनेका साधन समझने लगे। उनकी व्यापारमें रुचि बिलकुल नहीं रही। इसका फल यह हुआ कि जर्मनीमें सम्पत्ति दिन प्रति दिन कम होने लगी।

भारतेन्दुके भूमिकरके सचिवने आज्ञा निकाली कि "जर्मनी विजयके साथ ही साथ जर्मनोंकी सब भूमि भारतेन्दुकी हो गई है। प्रत्येक कृषकको दश एकड़ भूमि दी जाय और इस प्रकार बांटनेके पश्चात् जो भूमि रह जाय वह ठीकेदारोंको दे दी जाय। यह ठीकेदार किसी प्रकारसे भूमिके मालिक नहीं होंगे। यह केवल एक प्रकारके राजा और प्रजाके बीचके दल्लाल होंगे, जो भूमिका कर वसूल करेंगे। करका पांच प्रति सैकड़ा इनके परिश्रमके बदलेमें इनको दिया जायगा।" यह सम्भव था कि वह बेईमानी करके राज्यको धोखा दें और कर वसूल करके खुद खा जावें, इस कारण प्रत्येक ठीकेकी कमसे कम करकी एक मात्रा नियत कर ली गई थी और ठीकेदारको अवश्य देनी पड़ती थी। इसके न देने पर ठीका छूट जाता था। इसके अतिरिक्त भूमिके कर और आय व्ययका हिसाब सर्कारी कर्मचारी रखते थे। समय समयपर जब कागज़ातसे ज्ञात होता था कि भूमिसे अधिक आमदनी होने लगी है तो पुराना ठीका तोड़ दिया जाता था और करकी मात्रा बढ़ाकर नवीन ठीका दिया जाता था। एक शर्त्त यह भी थी कि जब किसी स्थानपर कोई मनुष्य एक हलकी कृषि करने को उद्यत होगा ठीकेदारसे दश एकड़ भूमि लेकर उसको दे दी जायगी। कृषकोंको भूमि जन्म भरके लिए दी जाती थी और जबतक कि वह कर देते रहते थे उनसे भूमि नहीं छुटती थी। कृषकके मरनेपर उसकी सन्तानमेंसे केवल एकको भूमि मिलती थी। इस प्रकार सन्तानमें भूमिका बटवारा नहीं होता था, पर भारतीयों अथवा भारतगोत्रियोंको जो भूमि जागीरमें दी जाती थी वह उनकी मिल्कियत होती थी। उनको अख्तियार था कि वह जिस शर्तपर चाहें कृषकोंको दें अथवा छुड़ा लें और इसपर जो कर बंधता था जागीरदारको किसी प्रकारका उसपर इज़ाफ़ा नहीं देना होता था। जागीरोंका भी सन्तानमें बटवारा नहीं होता था। और जागीरदार इच्छानुसार जिस किसी को अपनी सन्तानमेंसे चाहे वारिस बना सकता था। भारतवर्षकी पूंजी वालोंको कुएं और नहरें बनानेमें अपनी सम्पत्ति व्यय करनेके लिए हर प्रकार की सुगमता दी जाती थी और सर्कारी कर्मचारियोंद्वारा इस सम्पत्तिका लाभ वसूल करनेका बहुत अच्छा प्रबन्ध कर दिया गया था।

( असमात )।

---

# अकबरकी राजधानी और दरबार

[ ले० —इतिहासरत्न पं० शेषमणि त्रिपाठी, विशारद ]

एक इतिहासकारने लिखा है कि मुगल सम्राटोंकी राजधानियोंके इतनी जल्दी परिवर्तन होते रहने का कारण यह भी था कि वह लोग मध्य एशियाकी भ्रामक जातिके वंशज थे। मुगल राजधानी दिल्ली, आगरा और लाहौरके केन्द्रोंमें घूमा करती थी। एवं मुगल सम्राटोंका बहुत समय तो खेमोंमें बीतता था। इन सम्राटोंकी छावनी इतनी दिव्य और प्रभामय होती थी कि उसका विवरण पढ़कर विस्मय होता है। मुगल छावनीको इतिहासकारोंने यथार्थतः "रमता दिल्ली" नाम दिया है। अकबरकी भी राजधानी सदा एक स्थानपर न थी। उसके समयमें साम्राज्यका मुख्य केन्द्र भिन्न भिन्न अवसरोंपर दिल्ली आगरा, फ़तहपुर सीकरी और लाहौरमें रहा। दिल्लीमें राजधानी बहुत कम कालके लिए रही, पर जहां तक ज्ञात होता है आगरेपर ही सम्राट्की विशेष ममता थी। आगरेके समीप सीकरी * को सम्राट्ने फ़तहपुर नाम रख कर १५७३ में अपनी राजधानी बनाया। पुनः १५८५ में राजधानीको मुहम्मद हाकिम मिर्ज़ा (अकबरका भाई और काबुलका सूबेदार) की मृत्यु एवं अन्य आवश्यक कारणोंसे पश्चिमोत्तरमें ले जाना पड़ा। लाहौर लगभग † तेरह वर्षों तक (१५८५-१५९८) साम्राज्यका केन्द्र रहा। उसके बाद सम्राट्की जीवनयात्राके अन्तिम दिनोंमें* आगरेमें ही राजधानी रही और वहीं ईस्वी १६०५ की १७ वीं अक्तूबरको अकबरका देहान्त हुआ। बर्नियरने अपनी भारत यात्राके वृत्तान्तमें दिल्ली और आगरेका अच्छा चित्र खींचा है। भग्नप्राय फ़तहपुर सीकरीसे उसे कोई काम नहीं था और लाहौर (१६६५) उसके समयमें अपनी पहली प्रभाको बहुत कुछ खो चुका था; क्योंकि लगभग दो तीन दशाब्दोंसे साम्राज्यकी राजधानी वहांसे बिल्कुल उठ गयी थी। एवं जिस दिल्लीका बर्नियरने वृत्तान्त लिखा है उसका निर्माण अकबरके बाद उसके पौत्र ने किया था। उसने दिल्लीके गढ़, मकानों सड़कों, हाटों और भवनों एवं मंसबदारों और सम्राट्के निवासादिके विवरणके साथ व्यापार इत्यादिके विषयमें भी लिखा है। आगरा भी बहुत बातोंमें दिल्लीके समान था, परन्तु बर्नियर लिखता है कि "हिन्दुस्तानके सम्राटोंका प्रायः निवासस्थान होनेके कारण अकबरके समयसे क्षेत्रफल, उमरावों और राजाओंके प्रासादोंकी अधिकता, लोगोंके पत्थर और ईंटोंके बढ़िया निजी गृहों की अधिकता, एवं कारवान सरायोंकी संख्या और सुविधामें दिल्लीसे भी आगरा (जिसे अकबरने निर्मित करके अकबराबाद नाम दिया था) बढ़ करके है।......................यहां दिल्लीकी समथल और चौड़ी सड़कोंकी कमी है ............पर उमरावों और राजाओंके भवनों एवं व्यापारियोंके पाषाण गृहोंके बीच बीचमें उद्यानों और वृक्षोंकी हरियावल देख कर नेत्रोंको अपार आनन्द प्राप्त होता है।" आगरेमें बर्नियरके समयमें डच लोगोंकी एक फैक्टरी और जेसुइट ईसाइयों-

* सूरदास ने अकबर के बुलानेपर कहा था 'कहा मोकों सीकरी सों काम !'

† अकबर ने शासन की बागडोर १५६० में अपने हाथमें ली थी। तबसे १३ वर्षोंके बाद लगभग तेरह साल तक फ़तेहपुर सीकरीमें और पुनः तेरह वर्षों तक लाहौरमें राजधानी रही। फिर आगरा राजधानी हुई और सात वर्ष बाद सम्राटका देहान्त हो गया। ज्ञात होता है कि राजधानीके स्थानका परिवर्तन भी निश्चित समयके बाद निश्चित व्यवस्थाके अनुसार होता था।

* इसीबीच कुमार सलीमने अपने पिताके विरुद्ध राजद्रोह करके इलाहाबादमें अपनी राजधानी बनाकर स्वयं सम्राट् बननेके निमित्त सिक्के भी अपने नामसे ढाले थे, पर पिताने पुत्रपर प्रायः प्रेमसे ही विजय प्राप्त कर ली,

का गिरजा घर विद्यमान था। जेसुइट ईसाइयों को अकबरने निमंत्रित किया था। वह वहां रहते और पचीस तीस ईसाई कुटुम्बोंको पढ़ाया करते थे। सम्राट् उन्हें वार्षिक सहायता देते थे और दिल्ली एवं लाहौरमें गिरिजाघर बनानेकी आज्ञा उन्हें दी थी। आगरेके* दुर्ग, राजभवन, एवं अन्य सरकारी गृह दिल्लीसे अधिक भिन्न न थे। किन्तु इतिहासकारोंने सबसे बढ़कर फतहपुर सीकरी-की करुण कथापर सम्वेदना प्रकट की है। सम्राट् ने बड़ी श्रद्धाके साथ सीकरीका निर्माण किया, पर तेरह चौदह वर्ष बाद ही उस प्रेम और भक्तिमय नगरको त्याग देना पड़ा! अकबरके देहावसानके पांच वर्ष बाद विलियम फिश्चने इसको हीन और विजन स्थितिमें पाया। तबसे सीकरी सदा निर्जन और परित्यक्त हीनावस्थामें रही है। फिर किसी सम्राट् ने फतहपुरको अपनी राजधानी नहीं बनाया। सीकरीका सात मीलका घेरा, सातों बाह्य फाटक इसके विचित्र भवन और राजप्रासाद, और फकीर सलीम चिश्तीकी मसजिद, एवं निर्मल संगमरमर का आश्रम, सब कुछ अबतक विद्यमान है। तुर्की सुलतानका भवन, फ़ैज़ी और अबुल फ़ज़लके गृह एवं सम्राट्के † ख़ाबगाह और‡ इबादतख़ाने (कुछ लोग कहते हैं कि आजकल जिसे 'दीवान-ए-ख़ास' कहते हैं वहीं पुराना इबादत खाना था) की अतुल प्रभा और विचित्र सुकोमल छविके साथ साथ पञ्चमहल (एक प्रकार का बौद्ध विहार) एवं प्रसिद्ध बीरबलके भवन, और मरियमकी कोठीके भित्ति-चित्रोंका अवलोकन करके नेत्रोंके सामने चञ्चल कालके पर्देमें साढ़े तीन शताब्दी पूर्वके भारत वर्षका विशाल स्वप्न उपस्थित हो जाता है। सीकरी, तेरे वक्षः स्थलपर विविध चित्र चित्रण और विचित्र कलाओंके अद्भुत सम्मिलन को देख कर तेरे निर्माताके विचित्र एवं विविध धर्मानुयायियोंको एक राष्ट्रीयमालामें ग्रन्थन करनेहारे अन्तःकरणका प्रत्यक्ष बोध होता है! अब सीकरीके राजप्रासाद तीन शताब्दियोंसे सूने पड़े हैं; पर सीकरीके अनन्य प्रेमी सम्राट्की राज्यव्यवस्था-पर जितना ही प्रकाश पड़ता जाता है उतनी ही उनकी भूरि भूरि प्रशंसा होती है। अतएव अब सम्राट्की राजधानीका विशेष विवरण न देकर सूक्ष्मतः अकबरी दरबारका भी दिग्दर्शन करना चाहिये।

मुख्य दरबारका वर्णन करनेके पहले हरमका भी सङ्केत कर देना उचित होगा; क्योंकि राजकीय हरम मुग़ल राजधानी और दरबारका एक महत्व पूर्ण अङ्ग था। हरमका घेरा इतना बड़ा था कि पांच सहस्रसे अधिक स्त्रियां उसके भीतर अलग अलग कमरोंमें रहती थीं। यह स्त्रियां कई समूहों-में विभक्त थीं और प्रत्येक समूहके लिए अलग अलग स्त्री दारोगा रहती थी और सम्पूर्ण हरम-की एक अलग अधिष्ठात्री होती थी। हरमका प्रबन्ध अच्छी तरह होता था। हरमके भीतरी भागमें स्त्रियां रक्षाके लिए नियुक्त थीं और राज-कीय कमरोंके पास विश्वस्त सेविकाएं रक्षा कार्यके लिए रहती थीं। फाटकके बाहर हरमके हिजड़े और फिर कुछ दूरपर राजपूत लोग नियत रहते थे। उनके बाद दरवाज़ोंपर द्वारपाल होते थे तथा सबके बाहर चारों किनारोंपर उमरा, अहदी एवं अन्यान्य सैनिक गण अपनी अपनी श्रेणीके अनुसार नियत थे। जब कभी उमराओंकी स्त्रियां या अन्य पवित्राचरण स्त्रियां हरममें जाना चाहती थीं तो उन्हें पहले हरमके अफ़सरोंसे आज्ञा लेनी पड़ती थी। कुछ कुलीन स्त्रियोंको अन्तःपुरमें एक मासतक रहनेकी आज्ञा थी।

* आगरेके दो परम भव्य मन्दिर—अकबरका समाधि मन्दिर और ताजमहल—अकबर के बादके बने हैं।

† सम्राट्का शयनागार।

‡ धार्मिक विवादालय।

सम्राट् हरमके प्रबंधपर स्वयं ध्यान रखता था। राजभवनमें रात्रिके समय अद्भुत रोशनी होती थी। पर चांदनीमें रोशनीकी कम आवश्यकता पड़ती थी और अंधेरी रातमें अधिक। इसके लिए भी नियम बंधे थे। दौलतख़ाने (सम्राट्का निवास स्थान) के सामने सम्राट्ने चालीस गज़ ऊंचे स्तम्भपर "आकाश दीया" लटका दिया था, जिससे सिपाही आदिको रातको अपने कार्यपर जानेमें बड़ी सुविधा होती थी। और (सिंहासन) छत्र, शैबान (या आफ़ताब गीर) और कौकबा, यह चार विविध रत्न खचित राज चिन्हौंके प्रयोग करनेका केवल सम्राट्को अधिकार था। आलम, तुमनतोक़, तुमनतोक़ और झण्डा दूसरे प्रकारके राज चिन्ह थे। सम्राट्के नक्क़ारखानेमें कुंवरशाह दमामा, नक्क़ारा, डुहुल, करनाई, सुरना, नफ़ीर सींग और सञ्ज का प्रयोग होता था। पहले रात्रिके आरम्भ और अन्त होनेके चार घड़ी पहलेसे नक्क़ारखानेमें वाद्यध्वनि होती थी; पर बादको आधी रात एवं सूर्योदयके एक घड़ी पूर्व वाद्यध्वनि की जाने लगी। सूर्योदयके एक घड़ी पूर्व सुरना बजता था, जिससे लोग जाग जाते थे। कुछ ठहरकर सूर्योदयके एक घड़ी बाद क्रम क्रमसे विभिन्न वाद्यध्वनियां आरम्भ होती थीं। फिर* मुर्सली इत्यादि सात प्रकारके स्वरोंका उद्धार करके सम्राट्को बधाइयां दी जाती थीं और सुन्दर वाक्यों तथा कविताओंका गान होता था। तब सुरना ध्वनिके बाद नक्क़ारखानेके स्फुरणका अन्त होता था। यही राज दरबारकी दैनिक प्रथा थी।

आईनकारने सम्राट्के समययापनकी रीतिका उल्लेख करते हुए लिखा है कि रात्रिके प्रथम भागमें सम्राट् दार्शनिकों और सूफ़ियोंसे गवेषणा करता था। इन गवेषणाओंमें ज्ञानका अच्छा प्रचार होता था। ऐसे अवसरोंपर इतिहासकार भी उपस्थित रहते थे। अकबर साम्राज्यका कार्य भी रातको करता था; एवं प्रातःकाल होनेके कुछ पूर्व गायकोंके मधुर गान सुनकर एकांतमें गम्भीरता पूर्वक ध्यान करता था। इसके बाद सभी श्रेणियोंके लोग कूनिश* करते थे और फिर हरमकी स्त्रियां सम्राट्को प्रणाम सत्कार करती थीं। इस बीच और भी अनेक काम होते थे; फिर सम्राट् आराम करने चले जाते थे। चौबीस घण्टोंमें सम्राट्को दो बार प्रजा देख सकती थी। प्रथम प्रातर्ध्यानके बाद सम्राट् "झरोखे" से सबको देख पड़ते थे। सभी श्रेणीके लोग उपस्थित होकर बिना किसी बाधाके सम्राट्को देख सकते थे। इसे "दर्शन" कहते थे। दूसरी बार वह ६ बजे प्रातःकाल अथवा कभी कभी सायंकाल या रात्रिको "दौलतखाने" में उपस्थित होते थे, जहां सभी लोग जा सकते थे। वह प्रायः दौलतखानेकी खिड़कीपर भी राज्यका कार्य करते थे। वहां बिना किसी बाधाके प्रार्थना पत्र आते थे और सम्राट् उनपर विचार करते थे। वहां कर्मचारियोंका कार्योंका भी निर्देश किया जाता था, एवं निष्पक्ष तथा समान न्यायका विधान होता था। दरबारकी सूचना ढोल पीट कर दी जाती थी जिसे सुनकर राजकुलके लोग तथा उमरा एवं अन्य लोग तुरन्त आते और कूनिश करके अपने अपने स्थानोंपर खड़े रहते थे। प्रसिद्ध विद्वान् लोग तथा चतुर कलाविद् उपस्थित होते थे। दारोगा और वितिकची लोग अपनी आवश्यकताओंको कहते और न्यायकर्त्ता लोग अपने विवरण उपस्थित करते थे। इतने समयतक चतुर खड्गधारी (gladiators), पहलवान तथा गायक, और गायिकायें उपस्थित रहती थीं। जादूगर इत्यादि भी अपनी चातुरी दिखलानेको उत्सुक रहते थे।

दरबारमें तीन प्रकारसे सम्राट्के प्रति प्रणाम सत्कार करनेकी प्रथा थी—कूनिश, तसलीम और

* सम्राट् संगीत एवं वाद्यका अच्छा पण्डित था। उसने कुछ आविष्कार भी किया था।

* कूनिशका विवरण आगे मिलेगा।

सिजदा। किन्तु 'सिजदा' के कारण कुछ लोग असन्तुष्ट थे; अतएव सम्राट्ने सभी श्रेणीके लोगोंको "दरबार-ए आम" में सिजदा करनेका निषेध कर दिया था। लेकिन निजी सम्मेलनके अवसरोंपर सम्राट्से बैठनेकी आज्ञा मिलनेपर लोग 'सिजदा' करते थे। 'कूर्निश' में दाहिनी हथेलीको ललाटपर रख कर सिरको आगेकी ओर झुकाते थे। 'तसलीम' का नियम इस प्रकार था। दाहिने हाथके पृष्ठ भागको भूमिपर रख कर धीरे धीरे उठाते थे; तब शरीरके बिलकुल सीधा हो जानेपर अपनी हथेलीको शिरस्त्राणपर रखते थे। सम्राट्के सम्मुख उपस्थित किये जानेपर, अवकाश लेनेपर, अथवा मंसब, जागीर, खिलअत (सम्मान वस्त्र) हाथी या घोड़ा पानेपर तीन तसलीम करनेका नियम था; किन्तु अन्य सभी अवसरोंपर, जब वेतन मिलता था या भेंट दी जाती थी, तो केवल एक तसलीम करनेकी प्रथा थी। 'सिजदा' हिन्दुओंके साष्टांगके समान होता था; किन्तु सिजदाकी प्रथा 'दरबार-ए आम' में बन्द कर दी गयी थी। जब सम्राट् सिंहासनपर आसीन होता था तब सभी लोग कूर्निश करके अपने अपने स्थानपर खड़े रहते थे। ज्येष्ठ कुमार सिंहासनसे एकसे चार गज़की दूरीपर खड़े होनेकी स्थितिमें अथवा दोसे आठ गज़की दूरीपर बैठनेकी स्थितिमें रहता था। दूसरा कुमार एक या डेढ़ गज़से छः गज़की दूरीपर खड़ा होनेके समय अथवा बैठनेके समय तीनसे बारह गज़की दूरीपर रहता था। इसी प्रकार तीसरा भी खड़ा होता या बैठता था; पर कभी कभी वह दूसरे कुमारकी बराबरीपर अथवा और भी निकट रहता था। लेकिन सम्राट् छोटे कुमारोंको प्रेमके साथ प्रायः समीप रखते थे। इसके बाद सर्वोच्च श्रेणीके लोग (प्रायः दीन इलाहीके अनुयायी) तीनसे पन्द्रह गज़की दूरीपर खड़े होते या पाँचसे बीस गज़की दूरीपर बैठते थे। इसके बाद उच्च श्रेणीके उमरा लोग साढ़े तीन गज़की दूरीसे एवं अन्य उमरा गण सिंहासनसे दस या $12\frac{1}{2}$ गज़की दूरीपर स्थित होते थे। अन्य सब लोग* 'यसल' में रहते थे; सैयाज़ ग्राही (पंखा) और दो एक सेवक सबसे निकट रहते थे। सिंहासनका सामना प्रायः खाली रहता था तथा दरबारके एक किनारे उमरा एवं राज कर्मचारी गण और दूसरे किनारेपर कुर, मुल्ला और उलमा इत्यादि रहते थे।

कभी कभी विशेष कार्योंके लिए भी दरबार होता था। कभी कभी किसी नियत तिथिको 'अञ्जुमन-इ दादो-दिहिश' होता था। इन अवसरोंपर प्रजा विविध निवेदन करती थी और निवेदन स्वीकार भी होते थे। नयी भरतीका भी यही समय था। भरती करनेवाले कर्मचारी अथवा बड़े बड़े अमीर रँगरूटोंको सम्राट्के सामने उपस्थित करते थे और पुराने कर्मचारियोंके वेतन वृद्धि इत्यादिपर भी विचार होता था। सम्राट्ने गजदल, हयदल एवं ऊँटों, खच्चरों और खच्चरोंके निरीक्षणका भी नियम बाँधा था। हाथियों और घोड़ोंके निरीक्षणपर अधिक ध्यान दिया जाता था। कुछ घोड़े तो सदा दरबारके सामने उपस्थित रहा करते थे। सम्राट् निरीक्षणके नियमोंमें सुधार भी किया करते थे। आइनकारने लिखा है कि "पहले सभी निरीक्षण उपयुक्त रीतिसे होता था, परन्तु अब घोड़ोंका रविवारको, ऊँट गाय, खच्चरका सोमवारको; सिपाहियोंका मंगलवारको; निरीक्षण किया जाता है। बुधवारको कोशसम्बन्धी और गुरुवारको न्याय सम्बन्धी कार्य होता है। शुक्रवारका दिन हरममें बीतता है और शनिवारको हाथियोंका निरीक्षण होता है।" सम्राट्† पशुयुद्ध (मृगयुद्ध

* यसल किनारों (wings) को कहते हैं।

† सम्राट्के यहाँ पाँच-छः हजार हाथी, १२ हजार अश्व, १ हजार ऊँट, लगभग ५ हजार मृग (शिकारी तेंदुए) थे—(फ़रिश्ता)

इत्यादि ) नृत्यादिका भी आयोजन करते थे। वह हर प्रकारसे मनुष्योंके इकट्ठा होनेकी* सुविधा करते थे जिसमें लाभ भी था। यही सब विशेषताएं मुग़ल दरबारमें देख पड़ती हैं। मुग़ल राजधानी और दरबारमें राजकीय गम्भीर कार्योंके सञ्चालनके साथ साथ चकाचौंध रत्नोंकी प्रभा, सशस्त्र और सुसज्जित दरबारियोंके एकत्र होनेकी अतुल छटा, एवं राजकीय प्रतापका प्रदर्शन इस देशकी दीन प्रजाको तो मुग्ध किये ही था विदेशियोंके भी नेत्र† मुग़ल दरबारको देख कर चौंधिया जाते थे। पर यह सब निरर्थक नहीं था। इसमें भी राजनीतिक श्रेय था। अतएव अबुलफ़ज़लके शब्दोंद्वारा इस परिच्छेदको यहीं समाप्त करते हैं। आईनकार लिखता है कि "सम्राट्ने अपने प्रयत्नसे दरबारको अभिलाषापूर्ण झगड़ोंकी भूमिसे परिवर्तित करके एक उच्च संसारके दिव्य मन्दिरमें परिणत कर दिया है और मनुष्योंके अहंकार और ममत्वको ईश्वरकी आराधनाकी ओर लगा दिया है।" धन्य है, दरबारमें भी उस क्षमताशील हाथकी प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है!

## जीतेजी जलाये जानेका डर
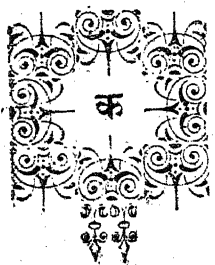
कभी कभी सुननेमें आता है कि "फलाना मर गया था, उसकी अरथी मरघटको लेजा रहे थे कि बीचमें ही वह जी उठा और उसे घर लौटा लाये।" एक बार हमने एक बुढ़ियाको देखा था जो मर कर जी उठी थी। उससे जब हमने पूछा कि तेरा इस बीचमें क्या हाल था तो बोली कि "कुछ आदमी मुझे पकड़ कर एक दर्बारमें ले गये, वहां एक मुन्शी बैठा था। वह कहने लगा कि तुम लोग ग़लत जीवको लाये हो। इसे ढकेल दो, अपने घर पहुंच जाय। धक्का लगनेपर जो मुझे होश आया तो चिल्ला उठी।" हिन्दुओंमें और भारतवर्षके मुसलमानोंमें भी मुरदेको बहुत देर तक नहीं रखते। घंटे या दो घंटेमें ही गाड़ या जलाकर छुट्टी पाते हैं। इस लिए ऐसी घटनाएं बहुत कम, होती हैं। इङ्गलैण्डमें ऐसी बहुत सी रोमांचकारी कहानियां मशहूर हैं, जिनमें या तो जनाज़ेमें रखा हुआ मुर्दा करवट लिये हुए पाया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि वह जी उठा था और उस बिचारेने दमघुट कर मर जानेके भयसे हाथ पैर पटके और निराश हो जान दे दी। यह भी सुना जाता है कि तहख़ानोंमें, रखे हुये मुर्दे कभी कभी अपनी उंगलियोंका मांस तक खा गये हैं, सम्भवतः केवल इस आशासे कि इन्हींके आधार दो चार दिन जीते रहें और इस समयमें कोई इनकी सुधि ले, आ संभाले और बचावे।

इन सब क़िस्सोंको सुनकर कुछ लोगोंको जीतेजी गाड़े जाने या जलाये जानेका बड़ा भय रहता है। भारतवर्षमें भी इस बातकी बहुत एहतियात करते हैं कि कहीं जीतेजी न जला दिया जाय। इसी ग़रज़से बच्चों, सिद्धों और सांपके काटे हुओंको जलाते नहीं। सांपके काटे हुएके विषयमें तो यह मशहूर है कि उसमें छः महीने तक जान रहती है। साधारण मुरदोंके मरते ही पैरके अंगूठे कसकर बांध देते हैं। जब दाहकर्म करते हैं तो खोलते हैं। इससे पता चलजाता है कि रुधिर संचार हो रहा है या नहीं। यदि नहीं होता तो डोरा खोलनेपर दबा हुआ स्थान सफ़ेद रहता है। यदि होता है तो डोरा खोलते ही सुरख़ी दौड़ जाती है। मरघटमें इसी लिए डोरा खोलते हैं और सबको मुरदेका मुंह दिखला देते हैं, जिसमें सब मुरदेको पहचान लें और जांच

---

* अलाउद्दीन खिलजीसे तुलना कीजिये। वह मनुष्योंके इकट्ठा होनेके मार्गमें रुकावटें डालता था।

† बर्नियरने दरबारका अच्छा विवरण दिया है।

लें कि दरअसल मरा है। देखनेवाले पूर्वानुभवसे यह भी जांच सकते हैं कि गला दबाकर, मर्म स्थानोंमें चोट मारकर, या विष आदि देकर तो हत्या नहीं की गयी है। अतएव स्पष्ट हो गया होगा कि हिन्दुओंको इन दो प्रथाओंमें कैसा वैज्ञानिक, सामाजिक और नैतिक रहस्य भरा हुआ है।

यदि यहांपर हम सच्ची मौतके चिन्होंपर विचार करें तो अनुचित न होगा।

### बीमारीसे घुल घुल कर मरनेवालेको भय नहीं है

पहले ज़मानेकी बनिस्बत आजकल इस विषयमें भूल बहुत कम हो सकती है। इसके दो कारण हैं, एक तो डाक्टरोंका बढ़ा चढ़ा अनुभव और कौशल और दूसरे जनताकी व्यापक शिक्षा। प्रायः मृत्यु इतने निश्चित रूपसे आती है कि भूल होना कठिन होता है। कई प्रकार के ज्वरोंमें जिनमें प्रायः रोगी मर हो जाता है, जैसे लाल बुखार (Scarlet fever), टाइफस ज्वर (Typhus), डिफथीरिया, न्यूमोनिया, इंफ्लूएंज़ा आदि, रोगीकी नाड़ी धीरे धीरे मन्द होती चली जाती है और अन्तमें बन्द हो जाती है, श्वास भी पहले धीमा होता जाता है और अन्तमें ऊपरला श्वास चलने और गड़गड़ाहट होने लगती है। रंग पीला पड़ने लगता है, हाथ पैर ठण्डे होने लगते हैं और अंतमें आंखें पथरा जाती हैं, फटी रह जाती हैं और हिचकी आकर काम तमाम हो जाता है। इस प्रकार जब मौत होती है तो निश्चय समझना चाहिये कि रोगी मर गया।

एक और प्रकार की मौत होती हैं जिसमें रोगी का अन्त दुबलताके और पोषण की हीनताके कारण होता है। हफ्तों या महीनों तक बीमार रहनेसे रोगी सूखकर कांटा हो जाता है। वह इतना दुर्बल हो जाता है कि उठ बैठ नहीं सकता या खाना नहीं खा सकता। ऐसी मौतें तपेदिक, बुढ़ापे या वातजन्य अथवा मानसिक रोगोंमें होती हैं। इनमें भी ग़लती होनेकी गुंजाइश नहीं है।

बहुत कम ऐसा होता है कि आदमी सहसा मर जाय। ऐसा प्रायः तभी होता है जब आदमीकी उम्र ज़्यादा होनेके कारण धमनियां बहुत दुर्बल हो जाती हैं अथवा जब बच्चोंका हृत्पिण्ड डिफथीरियाके विषसे कमज़ोर हो जाता है या जब टाइफस, ग्रिप आदिका रोगी दिखावटी तौर पर अच्छा होता मालूम पड़ता है। प्रसवकालमें अथवा शस्त्रोपचार होते समय भी कभी कभी एकाएक मृत्यु हो जाती है। ऐसे अवसरों-पर कभी कभी यह निश्चय करना कि वास्तवमें मृत्यु हो गई है कठिन हो जाता है। परन्तु चेहरेका पीला पड़ जाना, श्वासका धीमा होना और अन्तमें बन्द हो जाना, नाड़ीका वेग कम होना, फड़कना और बन्द हो जाना आदि ऐसे लक्षण हैं, जिनका अवलोकन करनेके बाद ग़लती करनेका भय नहीं रहता है।

### ग़लती कब होती है

जीते हुएको भी मरा हुआ समझ लेनेकी ग़लती निम्न लिखित अवस्थाओंमें की जा सकती है:-अफीम सार (morphine), क्लोरोफार्म, वेरोनल, अलकोहल, क़हवा, निकोटिन आदि विषोंके प्रभावसे मृत्यु होनेपर, किसी दुर्घटनाके हो जाने, लू लगने या दम घुटनेसे मरनेपर, हिस्टीरिया आदि मानसिक और वातजनित रोगोंके कारण मृत्यु होनेपर, इत्यादि।

उपरोक्त अवस्थाओंमें मरीज़ घण्टों निश्चेष्ट पड़ा रह सकता है, शरीर ठण्डा पड़ जाता है, नाड़ी और श्वास कर्म इतना धीमा हो सकता है कि उसका पता चलना ही कठिन हो जाय, चमड़ा पीला या नीला हो जाय, आंखें फटी हुई रह जायं और होंठ नीले पड़ जायं; चमड़ेमें सूई चूभा देने पर भी प्रतिक्रिया न हो; परन्तु ऐसा होता बहुत ही कम है। सारी उम्रमें डाक्टरोंको शायद एक आध बार ही ऐसा देखनेको मिलता होगा।

सच पूछिये तो मृत्युका कोई ऐसा लक्षण नहीं है जिसे देखकर यह निश्चय रूपसे कह सकते हों कि मृत्यु हो ही गयी है। तथापि जिन बातोंको देखकर निश्चेष्ट होनेके तीन चार घण्टेके बाद यह समझलेना अनुचित न होगा कि मृत्यु हो गई है नीचे दीये जाती हैं:—

( १ ) कठोरता—मरनेके बाद ही या दस घण्टेके अन्दर ही अन्दर शरीरके पट्ठे कड़े पड़ जाते हैं। गरदनके पट्ठोंसे यह कड़ा होना आरम्भ होता है। बादमें १०से लगा १२ घण्टेके बीचमें यह कठोरता गायब हो जाती है। यह कठोरता मृत्युका सच्चा चिन्ह है। कठोरता दो और कारणोंसे उपस्थित हो सकती है। एक तो सरदीसे, दूसरे बायटोंसे। जब कठोरता सरदीसे पैदा होती है तो चमड़ा भी तन जाता है और जिन अङ्गोंमें मांस पेशियां नहीं हैं वह भी कड़े पड़ जाते हैं, जैसे नासिकाग्र, कान, छाती आदि। परन्तु उपरोक्त कठोरतामें केवल पट्ठे कड़े पड़ते हैं; चमड़ा ढीला ही रहताहै। जब बायटोंके कारण पेशियां अकड़ती हैं तो उनमें एक विशेष प्रकारकी चेष्टा दृष्टिगोचर होती है। वह यह कि यदि पेशीको मोड़कर किसी स्थिति-में कर दिया जाय तो हाथ हटाते ही फिर वह पूर्ववत् हो जाता है; परन्तु मृत्यु होनेपर ऐसी चेष्टा का अभाव रहता है।

(२) मृत्युके धब्बे-मृत्यु होनेपर नीली झाईं लिये। हुए लाल अथवा बैंजनी रंगके धब्बे शरीरकी त्वचा-पर दिखाई पड़ने लगते हैं।

(३) आखोंका पिचकजाना—प्रकृतिकी चतुराईने आंख बड़े दबावके कारण बाहर को निकली हुई, गोल, चिकनी, आर्द्र और प्रकाशमान दिखाई देती है। जब अभ्यान्तरिक तरलों ( रुधिर आदि ) का दबाव मृत्यु होनेपर घट जाता है तो आखें पिचकी हुई विकृत आकृतिकी हो जाती हैं।

( ४ ) आखोंका पथराजाना—आंख क कौरनिया (१) स्वच्छ निर्मल प्रकाशमान होता है, परन्तु मृत्यु होनेपर ज्योतिहीन और अपारदर्शक हो जाता है। इसीको कहते हैं आखों का पथरा जाना।

(५) मट्टी खराब होनी—मृत्यु होनेके बादही शरीर का बिगड़ना आरम्भ हो जाता है। गरमी और नमी की वजहसे सड़ने का वेग बढ़ जाता है और ठण्ड, खुश्की अथवा स्वाभाविक या कृत्रिम रक्षकों (Preservatives) के प्रभाव से कम हो जाता है

( ६ ) नलोंका हरारंग—मृत्युके बादही पेटका रंग हरा हो जाता है, क्योंकि आन्तों में भरे हुए द्रव्यों में परिवर्तन हो जाता है।

यह सब मृत्युके अभ्रांत लक्षण हैं, परन्तु मृत्यु होने केकई घन्टे पीछे तक भी इन में एक या अधिकका प्रभाव हो सकता है अथवा चिन्ह इतने कम स्पष्ट हो सकते हैं कि उनका देखलेना असम्भव हो। ऐसी अवस्थामें बहुत जल्दी यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि वास्तव में मृत्यु हो गई है अथवा नहीं; क्योंकि यदि वास्तवमें मृत्यु नहीं हुई है तो बहुत जल्द इलाज कराना चाहिये, नहीं तो वैसे ही मृत्यु हो जायगी। अतएव कुछ परीक्षाएं यहां दी जाती हैं।

मृत्यु की परीक्षा

( १ ) यदि त्वचा को जलती हुई दियासलाई, कोयला अथवा गरम चपड़े से स्पर्श कराया जाय तो जीते हुए मनुष्यकी त्वचा पर प्रतिक्रिया-के कारण आंबले उठ आते हैं। यदि मृत त्वचापर यह परीक्षा की जाय तो आबला न पड़ेगा। खाल केवल झुलस कर अलग हो जायगी और उसके नीचेका श्वेत भाग दीखने लगेगा।

(२) अंगुली या अंगूठे बांधना—इसका पहले ही वर्णन किया जा चुका है।

(३)—वैद्युतिक परीक्षा—जब किसी जीवित पशु देह में बिजली के धक्के दिये जाते हैं तो पेशियां सिकुड़ती हैं और फड़कती हैं। परन्तु मृत्यु होने के प्रायः तीन घण्टे बाद फड़कन बिलकुल नहीं होती।

(१) कनीनिका।

हिन्दुओंमें पहली और दूसरी परीक्षा अनन्त कालसे होती चली आई है; पाश्चात्य देशोंके इने गिने मनुष्यों को अब यह बातें सूझने लगी हैं।

—रतनलाल।

## धन्यवाद

निम्न लिखित सज्जनोंसे जो धन मई तथा जून मासमें परिषद्के चन्देका प्राप्त हुआ है तदर्थ कोटशः धन्यवादः—

श्रीमान् हिज़हाइनेस महाराजा साहब बहादुर छतरपुर ... ... ... १२)

प्रो० चुन्नी लाल साहनी, एम- एस-सी, म्योर कालेज, प्रयाग ... ... ४)

श्री मान् पं. विशन नारायण भार्गव, मालिक मतबए मुंशी नवलकिशोर लखनऊ १५०)

—:o:—

## मईका हिसाब

### आय

| | |
|---|---|
| चन्दा सभ्योंका ... ... ... ... | १४) |
| मुत्फर्रिक ... ... ... ... ... | ४५॥) |
| योग | ५६॥) |
| ३० अप्रैलको रोकड़ बाकी ... ... ... | १७८६)। |
| महायोग | १८४५॥)। |

### व्यय

| | |
|---|---|
| तन्खाह क्लर्कको अप्रैलकी ... ... | १८) |
| छपाई ताप १००० प्रति ... ... ... | ८५॥) |
| मुत्फर्रिक ... ... ... ... ... ... | ।) |
| पेशगी क्लर्कको ... ... ... ... | ५) |
| डाक खर्च ... ... ... ... ... | १) |
| | १०६॥) |
| ३१ मई को रोकड़ बाकी | १७३५॥)। |
| महायोग | १८४५॥)। |

## जूनका हिसाब

### आय

| | |
|---|---|
| सभ्योंका चन्दा ... ... ... ... | १५२) |
| मुत्फर्रिक ... ... ... ... ... | १०६।≡) |
| पुस्तकोंकी बिक्री ... ... ... | १०१॥।)॥ |
| | ३६३≡)॥ |
| ३१ मईको रोकड़ बाकी | १७३५॥)। |
| | २०६८॥।≡)॥। |

### व्यय

| | |
|---|---|
| किराया मकान मई मासका ... ... ... | ४॥) |
| क्लर्कको ... ... ... ... ... ... | १०) |
| जान डिकसन को पेशगी ... ... ... ... | २५) |
| मैनेजर हिन्दी साहित्य प्रसको पेशगी छपाई विज्ञान ... ... ... | ३००) |
| ट्रस्ट बोर्डको ... ... ... ... ... जमीन की कीमत का एक अंश | ६३४) |
| मुत्फर्रिक ... ... ... ... ... | ४७)॥ |
| खरीद कागज़ ... ... ... ... | १०३॥≡) |
| डाक खर्च ... ... ... ... ... ... | १) |
| साहित्य भवन ... ... ... ... | ८४॥≡) |
| | १२०८।=)॥। |
| रोकड़ बाकी ३० जूनको | ८६०॥–)। |
| | २०६८॥।≡)॥। |

—o—

## दांत क्यों किटकिटाते हैं ?

इन छोटे छोटे पट्ठोंपर जो जबड़ोंका ऊपर नीचे उठाते हैं सर्दीका जब प्रभाव पड़ता है, तब वह स्वयम् ऊपर को उठ जाते हैं; जबड़े भी खिंच जाते हैं और बादमें अपने भारके कारण गिर जाते हैं। जब यह क्रिया बड़ी जल्दी जल्दी होती है तो कहते हैं कि दांत किटकिटाते हैं।

पर स्मरण रखना चाहिये कि इसमें दांतों-का दोष कुछ नहीं है. न दांत किसी प्रकार इसके लिए उत्तरदायी हैं। दांतोंका तो नाम यों ही बदनाम है। असलमें यह उन पेशियोंका काम है जो मुंहको बोलते समय खोलती हैं।

इस क्रियाका संचालन इच्छा शक्ति या मस्तिष्क द्वारा नहीं होती। वह बाह्य कारणोंसे प्रेरित होती है। वास्तव में वह बायटों (Spasm) का एक रूपान्तर है। जिस प्रकार संखिया आदि विषोंके खानेसे अथवा आभ्यन्तरिक शरीरजन्य विषोंके प्रभावसे बायटे आते हैं, उसी प्रकार सरदी लगनेसे उपरोक्त पट्ठोंमें बायटे आते हैं, जिनका परिणाम दांत किटकिटाना है।

—:o:—

## वानस्पतिक बन्दूकबाजी

मनुष्य बन्दूक चलाकर और तोपें दागकर अपनी जातिका ध्वंस करनेमें ही अपना गौरव समझता है, परन्तु वनस्पति संसारमें बम्बबाज़ी या बन्दूकबाज़ी जातिकी रक्षा और वंश वृद्धिके लिए की जाती हैं। विज्ञानके पाठक कुछ दिन हुए विज्ञान* में 'बीजोंका प्रवास' शीर्षक अत्यन्त रोचक लेख पढ़ चुके हैं। उस लेखमें बीजोंके वितरणके अनेक साधन और विधि दिखलाई गयी थीं।

हरिद्वारके आसपास एक घुआ जातिका पौदा होता है, जिसका नाम खुम्ब है। जड़के पास इसमें एक गांठ होती है और उसके ऊपर कुकरमुतेकी सी छत्री होती है। कहते हैं कि बिजली गिरनेसे छत्री तो जल जाती है और बादमें जो गांठ या गोला सा रहता है वह फटनेपर अद्भुत हुलासकी सी रज बर्साता है।

इसी जातिका एक यूरोपमें पौदा होता है, जिसे लाइकोपरडन (Lycoperdon) कहते हैं। इसका चित्र यहां दिया जाता है। इसकी गांठ क्या, बम्बका गोला होता है। जहां सूर्यकी किरणें पर्याप्त समय तक इसपर पड़ी कि बम्ब छूटा। सौभाग्यवश स्फोटन के समय ही एक चित्रकारने
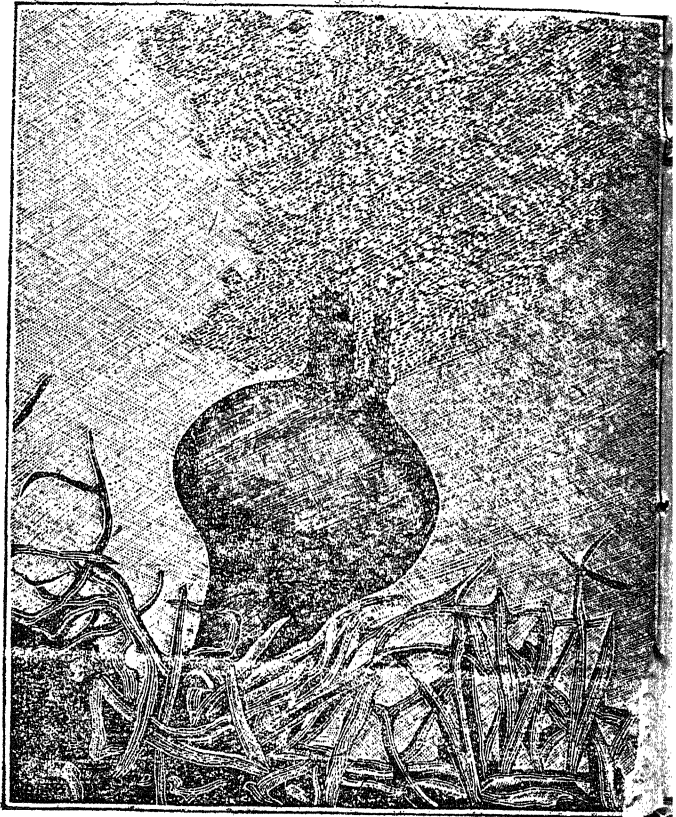
(चित्र सं० २०)

इसका चित्राङ्कन कर लिया। वही छटा इस (चित्र सं० २०) चित्रमें दिखलाई गई है। तप्त होने पर भीतरके दाने फैलते हैं। इस प्रकार दबाव बढ़नेसे गांठ फट जाती है और दानोंका वितरण दूर दूरतक होता है।

# विज्ञान परिषद् प्रयागके पदाधिकारी

## सभापति

रायबहादुर मुं० गोकुलप्रसाद, एम.ए., एल-एल.बी., जज हाई कोर्ट, प्रयाग

## उपसभापति

महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथझा, एम.ए., डी.लिट., प्रिंसिपल संस्कृत कालेज, काशी

माननीय पं० मदनमोहन मालवीय, बी.ए., एल-एल.बी., प्रयाग

श्रीमान् एस. एच. फ्रीमेण्टल, जे. पी., आई-सी. एस., सी.आई.ई., मेरठ

श्रीमती एनी बेसण्ट, पी. टी. एस., मद्रास

रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ, एम.ए., सी.आई.ई., मेम्बर स्टेट कौंसिल, जयपुर

श्रीमान देवेन्द्रनाथ पाल, एम.ए., प्रिंसिपल गवर्मेण्ट कालेज, फैज़ाबाद

## प्रधान मंत्री

लालासीताराम, बी.ए., एफ.ए.यू., प्रयाग।

प्रो० सतीशचन्द्र देव, एम.ए., म्योरकालेज प्रयाग

## मंत्री

प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी., म्योरकालेज, प्रयाग

प्रो० चुन्नीलाल साहनी, एम. एस-सी., गवर्मेंटकालेज, झांसी

## कोषाध्यक्ष

प्रो० व्रजराज, एम.ए., बी. एस-सी., एल-एल.बी. कायस्थपाठशाला कालेज, प्रयाग

## अन्तरंगी

रायसाहिब, डा० अम्बोदाप्रसाद सरकार, एम.ए., डी. एस-सी., म्योरकालेज, प्रयाग

प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी., कायस्थ पाठशाला कालेज प्रयाग

श्री० पुरुषोत्तमदास टण्डन, एम.ए., एल-एल. बी., वकील हाईकोर्ट, प्रयाग

प्रो० जगद्विहारीसेठ, बी. एस-सी. (आनर्स), एम. एस-सी., प्रयाग

बाबूश्यामसुन्दरदास, बी. ए., कालीचरण हाईस्कूल, लखनऊ

श्री० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., विशारद गवर्मेंट हाईस्कूल, रायबरेली

प्रो० रामदासगौड़, एम.ए., काशी.

पं० श्री कृष्ण जोषी, फौरिन मिनिस्टर, नाभा

बाबू शिवप्रसाद गुप्त, रईस, बनारस

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए० द्वारा सुदर्शन प्रेसमें मुद्रित, तथा विज्ञान परिषद्, प्रयागसे प्रकाशित।

*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.*

पूर्ण संख्या ७६ | Reg. N0 A 708

भाग १३ | कर्क १९७८। जुलाई १९२१ | संख्या ४

Vol XIII. | NO. 4

# प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३) ] [ एक प्रतिका मूल्य ।)

# विषय-सूची

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग १३ } कर्क, संवत् १९७८ । जुलाई सन् १९२१ । { संख्या ४

## छोटेसे दिलकी करामात

बड़ा शोर सुनते थे पहलूमें दिल का !
जो चीरा तो यक क़तरए खून निकला ॥

कविकी ऊपर दी हुई उक्तिमें कितनी यथार्थता है ? या बिचारे दिलको केवल मुट्ठीके बराबर आकारमें जान कर ही उसने उसे तुच्छ समझ लिया और एक क़तरे खूनका अधिकारी क़रार दिया । यह दिलके साथ संगदिलीका व्यवहार करना कहां तक न्याय संगत है, इस विषय पर ही पाठको हम विचार करेंगे ।

जब आपका अङ्ग प्रत्यङ्ग सुषुप्तिका आनन्द लूटता है, तब भी इस विचारे दिलको आराम नहीं मिलता । यह दिन रात, बारहों महीने, छहों ऋतु-ओंमें बराबर अपना काम करता रहता है । प्रत्येक मिनटमें इसको ७५ स्पन्दन करने पड़ते हैं । इस हिसाबसे एक घण्टेमें ४५००; एक दिनमें १०८००० और एक वर्षमें ३९०००००० स्पन्दन इसको करने पड़ते हैं । यदि मानलें कि मनुष्य ७५वर्ष जीता है तो उम्रभरमें इसे २ अरब और ७३ करोड़ बार स्पन्दन करना पड़ता है ।

यदि संसारकी जनसंख्या हम १७०००००००० मानलें तो कुल मनुष्योंके दिल प्रत्येक मिनटमें १२७०००००००००० बार धड़कते होंगे । यह तो इस तुच्छ, नाचीज़ की कार्यतत्परता है, पर क्या केवल भूनकी तरह इसे फड़कनेमें ही मज़ा आता है ! या यह इतना चुलबुला है कि इससे निचला बैठा ही नहीं जाता ?

पाठको, दिल क्या है शरीर रूपी घड़ीका लट-कन है । जबतक यह लटकन चलता रहता है घड़ी चलती रहती है; यह दूसरी बात है कि सर्दी, गर्मी पाकर सुस्त या तेज़ हो जाती हो । जिस प्रकार संशोधित (compensated) लटकन बनाये जाते हैं, जिनपर सरदी गर्मीका प्रभाव नहीं पड़ता,

जो घड़ीकी आयु पूरी होने तक काम देते रहते हैं, ठीक उसी भांति हृत्पिण्डका परिमार्जन धर्म द्वारा होता है। धर्मके अनुशीलनसे यह रोग मुक्त हो जाता है।

हृत्पिण्डके चार विभाग हैं—दो क्षेपक कोष्ठ और शेष दो ग्राहक कोष्ठ कहलाते हैं। वास्तवमें हृत्पिण्ड मांसनिर्मित कमरा है, जो रक्तसे भरा रहता है। यह कमरा एक खड़े हुए मांसके परदे द्वारा दाईं और बाईं दो कोठरियों में बंटा हुआ है। इन दोनों कोठरियोंका परस्पर कोई संबंध नहीं है, प्रत्येक कोठरी दुमंज़िली है, ऊपरके भागको ग्राहक और नीचेके भागको क्षेपक कहते हैं। दोनों मंज़िलोंके बीचकी छत क्या है—एक तरहके चोर दर्वाज़ोंका सिलसिला है, जो केवल नीचेकी तरफको खुलते हैं। दाईं तरफके भागमें तीन त्रिभुजाकार किवाड़ लगे हैं; पर बाईं तरफ केवल दो; अर्थात् दाएं ग्राहक और क्षेपक कोष्ठोंके बीचमें तीन किवाड़ लगे हैं, परन्तु बाएं क्षेपक और ग्राहक कोष्ठोंके बीचमें केवल दो हैं।

इन चार कोष्ठोंकी बनावटमें और भी भेद है। ग्राहक कोष्ठोंकी दीवारें क्षेपक कोष्ठकी दीवारोंसे पतली होती हैं, पर बाएं क्षेपक कोष्ठकी दीवारें दाहिनेकी दीवारोंसे दुगनी तिगुनी मोटी होती हैं। यह तो स्पष्ट हो ही गया होगा कि कपाटोंकी रचनाकी विशेषताके कारण रुधिर ऊपरसे नीचेको ही जा सकता है। नीचेसे ऊपरको नहीं चढ़ता।

इन कोठरियोंमें नेचरका तिलिस्म बन्द है। $४\frac{१}{२}$ इंच लम्बे, $४\frac{१}{२}$ इंच चौड़े और $२\frac{१}{२}$ इंच मोटे माँस के छिछड़ेकी चार कोठरियोंमें, जिनका कुल वज़न $३\frac{१}{२}$ छटाँक होगा जो रहस्य भरा है उसको देख नेचर-नटी के नचानेवाले नटवर परमात्माकी महिमा सराहे बगैर नहीं रहा जाता। यह एक एक कोठरी एक एक तिलिस्म है, जिसकी रचना और रहस्य का हाल अब पेश करेंगे।

दाहिने ग्राहक कोष्ठमें दो नलियां लगी रहती हैं, एक ऊपरके भागमें, दूसरी निचलेमें। यह शिराएं हैं, जिन्हें उच्च और निम्न महाशिरा कहते हैं। सिर, छाती तथा अन्य ऊपरके भागोंमें से रुधिर उच्च शिरा द्वारा आता है और पेट आदि नीचेके हिस्सोंमें से निम्न शिरा रक्त लाती है। यहांसे यह रुधिर नीचेकी कोठरी, दक्षिण क्षेपक कोष्ठ, में जाता है।

दक्षिण क्षेपकमें एक नली लगी है, जिसकी एक शाखा दाएँ फुप्फुस और दूसरी बाएँ तक जाती है। इसी नलीको फुप्फुसीया धमनी कहते हैं। जहां से यह चलती है, उस सिरे पर भी एक कपाट लगा रहता है जो रुधिरको धमनीमें तो जाने देता है पर लौटने नहीं देता। यहां से रुधिर फुप्फुसोंमें पहुंचकर साफ होता है और बाएं ग्राहक कोष्ठमें लौट आता है।

बाएं ग्राहक कोष्ठमें चार शिराएं आकर मिलती हैं, जिनमें दो दाहिने फुप्फुससे और दो बाएँसे आती हैं। जब रुधिर ग्राहकमें पहुंचता है तो कपाट खुल जाते हैं और रुधिर क्षेपकमें उतर जाता है।

बाएँ क्षेपकके पिछले हिस्सेमें एक मोटी नली, वृहत् धमनी, लगी हुई है। इसीमें से सब धमनियां निकलती हैं और शरीरका पोषण करती हैं। इनमें होता हुआ रुधिर शिराओंमें पहुंचकर फिर पूर्वमें दिखलाई हुई विधिसे भ्रमण करता है। हृत्पिण्ड फैलता है और फिर सिकुड़ता है। इस प्रकार के एक बार फैलने ( प्रसार ) और सिकुड़ने ( आकुंचन ) को एक स्पन्दन कहते हैं। एक आकुंचनमें हृत्पिण्ड प्रायः $१\frac{१}{२}$ छटांक रुधिर निकालता है। इस भांति एक मिनटमें प्रायः ७ सेर रुधिर हृत्पिण्ड साफ करानेके लिए भेजता है और इतना ही साफ किया हुआ रुधिर संचारके लिए

शरीरमें भेजता है। एक घण्टेमें १०$\frac{१}{२}$ मन, दिनरात में २५२ मन और एक वर्षमें प्रायः १००००० मन रुधिर हृत्पिण्ड फुप्फुसमें भेजता है और उतना ही शरीरमें !

यदि संसारके मनुष्योंके हृत्पिण्डोंको मिला कर एक बृहद् हृत्पिण्ड बनादें तो उसकी ऊंचाई प्रायः मिश्रकी बड़ी मीनारसे [ ४८१ फुट ] अधिक बैठेगी और उसके द्वारा पम्प किया हुआ रक्त एक वर्षमें एक ऐसे तालाबको भर देगा, जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और गहराई, प्रत्येक, ५२८४० फुट होगी।

—:o:—

## गैस मसालेसे मद्यसार ( Alcohol )

मोटर चलाने वालोंके लिए वह वास्तवमें बड़े महत्वका दिन होगा जब पेट्रोलको छोड़ कर वह निरे मद्यसारसे ही अपनी मोटर चला सकेंगे। मद्यसार सब जगह और सब समय आसानीसे बन सकता है; उधर पेट्रोलके लिए इने गिने देशों का मुंह ताकना पड़ता है। यह सब जानते हैं कि गैस मसाला, केलसियम कर्बिद, बड़ी आसानीसे बन सकता है। चूनेके पत्थर और कोयलेको विद्युत् भट्टेमें तपाना भर पड़ता है। केलसियम कर्बिदसे एसेटिलीन गैस, गैससे इथेल्डिहाइड और अन्तमें मद्यसार बनाया जा सकता है। यह कृत्रिम मद्यसार जर्मनी और स्विजरलेण्डमें युद्धके समयमें पेट्रोल के स्थान पर काम आने लगा था। हालमें फ्रांसमें भी इस संबन्धमें प्रयोग हुए हैं। प्रयोगोंसे मालूम हुआ है कि १ सेर मद्यसारके लिए १·६ सेर गैस मसाला और ·४५ सेर उज्जन चाहिये। यह गणना केवल सैद्धान्तिक है। वस्तुतः २० प्रतिशत मात्रा प्रत्येक पदार्थकी बढ़ानी पड़ती है।

यदि कार्बाइड बहुत सस्ता मिलने लगे तो सम्भव है कि कृत्रिम मद्यसार बहुत सस्ती बनने लगे।

—————

# नागार्जुन

( ले०—प्रो० फूलदेव सहाय वर्म्मा, एम. एस-सी., एफ. सी. एस. )

अर्वाचीन पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और सभ्यतासे लोगोंका ध्यान कुछ फिरसा गया है और भारतवर्षकी प्राचीन शिक्षा पद्धति और सभ्यताकी ओर अधिकाधिक आकर्षित होता जाता है। जिस पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और सभ्यतापर अभी तक लोग लट्टू हो रहे थे और जिसके प्रकाश से लोगों की आंखोंमें चकाचौंध पैदा हो गयी थी, जिससे अन्य सभ्यताओंके गुणदोष देखने और विचारनेमें अशक्य थे, वही अब लोगों की दृष्टिमें इस देशके लिए उपयुक्त ही नहीं वरन अनेक अंशोंमें हानिकारक और यहां के लोगोंकी सत्ता को मिटा देनेवाली जंचती है। निस्सन्देह यह हर्षका विषय है कि लोग इन बातोंको अब अधिकाधिक सोचने और समझने लग गये हैं और अपने प्राचीन ग्रन्थों और सामग्रीके द्वारा उन बातोंके खोज निकालनेमें लगे हैं जिनकी सहायतासे हम लोग इस भूमण्डल पर आधुनिक जातियोंकी समानता करनेके योग्य हो सकें। यदि हम लोग अपनी प्राचीन सभ्यताके सहारे उन शक्तियोंके प्राप्त करनेमें सफल हो सकें, जिनसे आधुनिक शक्तिशाली जातियोंमें हम लोगोंकी गणना होने लगे तो वह निस्सन्देह हम लोगोंके लिए एक बड़े ही गौरव और सौभाग्य की बात होगी। आज कल ऐसा ही उद्योग चारों ओर हो रहा है। किन्तु इसमें सफलता प्राप्त करनेके लिए यह आवश्यक है कि हम लोग उन विघ्न बाधाओंसे बचें जो मार्गमें अड़चनें उपस्थित करनेवाली हैं।

सबसे पहली बात जो स्मरण रखनेकी है वह यह है कि हम लोगोंको अर्वाचीन पाश्चात्य शिक्षापद्धति और सभ्यतासे घृणा नहीं करनी चाहिये। हम लोगों की सभ्यता बहुत प्राचीन है। उसे आधुनिक समयके

अनुकूल और उपयुक्त बनानेके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उसमें समयोचित परिवर्तन किए जाय। जो नियम अथवा पद्धति एक सहस्र वर्ष पूर्व इस देशकी अवस्थाके अनुसार उपयुक्त और सर्वोत्कृष्ट थी उसका उसी रूपमें आजकल प्रयोग करना सरासर भूल और मूर्खता है। यह उतना ही हास्यास्पद है जितना कुछ आर्य्य समाजियोंका यह कहना कि संसारकी सारी विद्याएं वेदमें ही भरी हुई हैं। प्रस्तुत लेखकको सन्देह है कि प्राचीन सभ्यताके उपासक इस परिवर्तनकी आवश्यकताको स्वीकार करेंगे और उसमें उचित परिवर्तन कर समयानुकूल बनाना पसन्द करेंगे। इसीमें मुझे भय और असफलता प्रतीत होती है।

कई लोगोंका विचार है कि आधुनिक भौतिक विज्ञान भी प्राचीन रीतिसे ही पढ़ा और पढ़ाया जाय। ऐसे विचार वाले मुख्यतः दो भूल करते हैं। एक तो वह जानते नहीं कि प्राचीन रीति क्या है।

हमारे पूर्वज भौतिक विज्ञानका कितना ज्ञान रखते थे, इसका भी उन्हें पूरा परिचय नहीं। जिस समय देश की आबादी बहुत कम थी, भूमि की उर्वरा शक्ति बहुत बढ़ी चढ़ी थी, थोड़ेसे शारीरिक परिश्रमसे उदर पूर्तिके लिए काफी अन्न फल मूल पैदा हो जाया करते थे, जिस समय जीवन-संग्राम (Struggle for existence) का नामोनिशान नहीं था, स्वच्छ वायुमें लोग विहार करते थे, उस समयके नियम यदि इस समय जब देश की आबादी कई गुना बढ़ गई है, भूमि की उर्वरा शक्ति दिन प्रति दिन घट रही है, अनवरत परिश्रम करने पर भी अनेक लोगों को भर पेट भोजन नहीं मिलता और जीवन कलह (Struggle for existence) दिन प्रति दिन तीव्र हो रही है और जब लोग परतंत्रता की बेड़ीमें जकड़े हुए हैं, उपयुक्त समझ लेना निरी मूर्खता नहीं तो और क्या है। हमारे शास्त्र कारोंका भी कथन है कि समयके अनुसार नियम बदलना रहता है। पुरानी 'लकीरका फकीर' बनना हर देश और समाजमें निर्बलताका चिह्न समझा जाता है। यदि हम लोग उन देशोंके इतिहासोंकी आलोचना करें, जो एक समय बहुत ही उन्नतिशील और समृद्धिशाली थे, किन्तु आज पतितावस्थामें हैं, तो स्पष्ट-रूपसे मालूम होगा कि उनकी अधोगतिका मुख्य कारण उनका समयानुकूल न चलना ही था। यदि समयानुकूल अपने देश और समाजके नियमको बदलते रहते तो कभी वह इस हेय अवस्था को प्राप्त नहीं होते। ऐसे देशोंसे हम लोगोंको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और उनसे लाभ उठानेका प्रयत्न करना चाहिये।

दूसरी बात जिसमें लोग भूल कर बैठते हैं वह यह है कि भौतिक विज्ञान किसी एक देश अथवा जातिसे सम्बन्ध नहीं रखता। जो वस्तु एक जाति अथवा देशके लिए चान्दी है वह दूसरेके लिए चान्दीके सिवा और कुछ नहीं हो सकती। प्राकृतिक नियम जिस पर भौतिक विज्ञान खड़ा है सब देशोंके ही लिए एक हैं। हमारे पूर्वजोंको बहुत सी रासायनिक बातोंका ज्ञान था, इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि वह वैसेही रसायन शास्त्रके ज्ञाता थे जैसे आज कल हुआ करते हैं। हमारे पूर्वजोंको रसायन की बातें कहां तक मालूम थीं, इसका ठीक ठीक पता लोगोंको अभी तक नहीं लगा है; क्योंकि इस विषय की जितनी पुस्तकोंका ज़िक्र प्राचीन ग्रन्थोंमें मिला है वह सब पुस्तकें अभी तक प्राप्त नहीं हुई हैं। किन्तु जो जो पुस्तकें प्राप्त हुई हैं उनसे यह पता अवश्य लगता है कि जिन जिन बातोंका पाश्चात्य वैज्ञानिकों को दो सौ वर्ष पहले ज्ञान नहीं था वह सब बातें हमारे पूर्वजों को हज़ारों वर्ष पूर्व मालूम थीं। यही नहीं वरन, अनेक रासायनिक बातें हमी लोगोंसे पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने सीखीं।

आज एक ऐसे ही महान पुरुष के विषयमें हम कुछ लिखेंगे, जिसने हज़ारों वर्ष पहले इस पवित्र

भूमिमें जन्म धारण कर मनुष्य मात्रके ज्ञानकी वृद्धि की थी। उनका नाम नागार्जुन है। आप बौद्ध धर्मावलम्बी थे। माध्यमिक दर्शनके संस्थापक अथवा संग्रह कर्ता आप ही कहे जाते हैं; किन्तु प्रस्तुत लेखकको दार्शनिक नागार्जुन से काम नहीं। उसे केवल रासायनिक नागार्जुन से सरोकार है। अतएव वह नागार्जुनके दार्शनिक विचारोंके विषयमें कुछ नहीं लिखेगा। आपका किस समय इस भूमिमें जन्म हुआ, इसका निर्णय करना सहज नहीं। यह एक बहुत ही विवाद ग्रस्त विषय है। इतिहासकारों और पुरातत्व वेत्ताओंके लिए खोज करनेका यह एक अच्छा विषय है। तो भी एक दो बातें इस सम्बन्धकी यहां कह देना अनुचित नहीं होगा।

पाश्चात्य विद्वानोंके मतसे ईस्वी सनकी पहली शताब्दी में कनिष्कके शासन कालमें आपका जन्म हुआ था। कल्हन मिश्र द्वारा लिखित काश्मीरके इतिहास "राजतरङ्गणी" के अनुसार नागार्जुन शाक्यसिंहके सन्यास लेनेके १५० वर्ष बाद हुये। शाक्यसिंह ईसासे पहले चौथी शताब्दीके अन्त और तीसरी शताब्दीके आरम्भमें हुये थे, यह सब जानते हैं। राजतरङ्गणीमें लिखा है कि "तब इस देशमें तीन राजा थे, जिनका नाम हुष्क, जुष्क और कनिष्क था। इन तीनोंने तीन शहर हुष्कपुर, जुष्कपुर और कनिष्कपुर बसाये थे।......इन प्रभावशाली राज्योंमेंसे काश्मीरका अधिकांश भाग बौद्ध धर्म्मानुयायियोंके अधिकारमें था। उस समय शाक्यसिंहके पूर्ण निर्वाण प्राप्त करनेके १५० वर्ष बाद देशमें देशके अधिष्ठाता स्वरूप एक बोधिसत्व रहते थे जिनका नाम नागार्जुन था।"

चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट इत्यादि वैद्यक ग्रन्थोंमें नागार्जुनका कहीं ज़िक्र नहीं पाया जाता। इससे यह सन्देह होता है कि दार्शनिक और रासायनिक नागार्जुन एक ही हैं अथवा दो। नागार्जुन ने औषध और रसायन विषयोंपर आरोग्यमंजरी और रस रत्नाकर नामक ग्रन्थ लिखे हैं। रसरत्नाकरमें कुछ रासायनिक क्रियाएं सम्भाषणके रूपमें नागार्जुन और शालिवाहनके बीचमें दी हुई हैं। यह शालिवाहन कौन थे, इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता। शालिवाहनके स्थानमें एकमात्र हस्तलिखित ग्रन्थमें शत् वाहन अथवा शद् वाहन पाठ भी मिलता है। इस शद् वाहनके नाम नागार्जुन ने कुछ चिट्ठियां भी लिखी थीं। यह चिट्ठियां तिब्बत और चीनसे प्राप्त हुई हैं। संस्कृतमें जो चिट्ठियां लिखी गई थीं और जिनका नाम "सुहल्लेख" दिया हुआ है वह अभी तक प्राप्त नहीं हुई हैं। चीनी भाषामें, जो सो-तो-पो-हो हैं वही शद्वाहन हैं और यह सम्भव है कि उन्होंने १७२—२०२ ई० तक राज्य किया हो। इनका नागार्जुनका समकालीन होना कुछ असम्भव नहीं प्रतीत होता। अनेक संस्कृत ग्रन्थोंमें भी शद्वाहनका नाम पाया जाता है। शद्वाहन और उनके वंशज ईस्वी सनके ७३ साल पहलेसे ईस्वी सनके २१८ साल बादतक दक्षिणमें राज्य करते थे; यह ऐतिहासिक खोजसे मालूम होता है।

ह्वेनसेंगने भी अपने भ्रमण वृत्तान्तमें—वह ६२९ ई० और बादमें भी यहां आये थे—नागार्जुनका उल्लेख किया है और लिखा है कि उड़ीसाके दक्खिन पश्चिम महानदीसे सिञ्चित देश कोशलाके राजा शत्वाहनके मित्र थे। इस वृत्तान्तसे यह सन्देह नहीं रहता कि नागार्जुन ह्वेनसनके पहले हुये थे, किन्तु नागार्जुनका उल्लेख अलबरूनीने किया है। अलबरूनी एक विश्वसनीय अरब लेखक हैं, जिन्होंने अनेक ऐतिहासिक बातें ११वीं शताब्दीमें लिखी थीं। वह लिखते हैं; "सोमनाथके नज़दीक दैहिक किलेके निवासी सोना बनानेकी कलाके प्रसिद्ध प्रवर्तक नागार्जुन थे, उन्होंने इस कलामें बहुत प्रवीणता प्राप्त की थी और इस विषयकी सारी बातों का संग्रह कर एक अतुल्य पुस्तक की रचना की। वह हम लोगोंके समयसे प्रायः सौ वर्ष पहले हुए थे"।

यदि अलबरूनीकी बातें मान ली जायं तो नागार्जुनका होना ९ वीं शताब्दीके पहले नहीं प्रमाणित होता; किन्तु इस विषयमें अलबरूनी की बातें कहां तक मान्य हैं, यह प्रोफेसर सेको (जिन्होंने अलबरूनीके अरबी ग्रन्थको प्रकाशित कराया है) के निम्नलिखित कथनसे विदित होगा। "यह शिक्षित अरब साधारणतः एक बहुत ही विश्वसनीय व्यक्ति हैं। पर इन्होंने हिन्दुस्तानके उस भागके ब्राह्मणोंसे समाचार संग्रह किया था, जहां ११ वीं शताब्दीमें बौद्धधर्म्मके प्रत्येक चिह्न लुप्त हो गये थे और इसीसे उनको नागार्जुनके विषयमें झूठी खबरें मालूम हुईं। समयके प्रभावसे भी उस समय नागार्जुन विषयक बातें ठीक ठीक मालूम न हो सकीं"।

नागार्जुनके नामसे अनेक अद्भुत चमत्कारोंका ग्रन्थोंमें उल्लेख है। लोगोंका ऐसा विश्वास था कि आपमें कुछ दैवी शक्तियां वर्तमान थीं। तिब्बती ग्रन्थोंमें आपके सम्बन्धकी अनेक बातें लिखी हुई हैं और उनके आधारपर हरिनाथने बौद्ध धर्म्मका इतिहास लिखा है, जिसमें नागार्जुनका निम्न लिखित वर्णन है।

विदर्भ देशके एक धनाढ्य निःसन्तान ब्राह्मणको एकबार स्वप्न हुआ कि यदि वह सौ ब्राह्मणों को खिलावे और दानदे तो उसके एक पुत्र उत्पन्न होगा। इस स्वप्नके अनुसार उसने ईश्वरकी पूजा और प्रार्थना की और सौ ब्राह्मणोंको भोज दिया। दस मास बाद उसके एक पुत्र पैदा हुआ। उस धनी ब्राह्मणने ज्योतिषियोंको बुलाकर बालकके ग्रह दिखलाये। उन लोगोंने कहा कि "बालक सब प्रकार भाग्यवान है, किन्तु वह एक सप्ताहसे अधिक जीवित नहीं रहेगा। यदि आप सौ भिक्षुकोंको भोजन करावें तो वह सात वर्ष तक जीवित रह सकता है। तदुपरान्त वह किसी प्रकारसे जीवित नहीं रह सकता।" सात वर्ष जब समाप्त होनेको आये तो माता पिता बहुत दुःखित हुये। पुत्रकी मृत्यु देखनेसे बचनेके लिए उन्होंने बालकको एक एकान्त स्थानमें कुछ नौकरोंके साथ भेज दिया। जिस समय वह बालक अपना शोक पूर्ण एकान्त जीवन व्यतीत कर रहा था एक दिन महा बोधिसत्व अवलोकितेश्वर भेष बदल कर वहां आये और उस बालकको मगधके नालेन्द्र मठमें ले जाकर रखनेकी अनुमति दे गये जहां उन्होंने बतलाया कि वह मृत्युके भयसे रक्षित रहेगा। इस आज्ञाको शिरोधार्य्य कर वह उस प्रसिद्ध विहारको गया और द्वारापर पहुंच कर अपनी गाथा सुनाई।

उस समय उस मठके मुख्य अधिष्ठाता श्रीसरहभद्र थे। उन्होंने नागार्जुनको भिक्षुक बना लिया। इसके अनेक वर्ष बाद वहां एक बहुत बड़ा अकाल पड़ा। मठके भिक्षुक सब बड़े दुखी हुये। इससे मठके अधीश्वरको बड़ी चिन्ता हुई। अनेक भिक्षुकों के भरण पोषणके लिए धनकी आवश्यकता पड़ी। इसका वह उपाय सोचने लगे। अन्तमें उन लोगोंने समुद्र पार एक टापूमें नागार्जुनको एक बड़े महात्मा से जो सुवर्ण बनाने की कलामें बड़े दक्ष थे, यह कला सीखने के लिए भेजना निश्चय किया। नागार्जुन उसके लिए तैयार हुये और वहांसे रवाना हुये। उन्हें समुद्र पार जाना था। साधारण रीतिसे पार जाना असम्भव था। उन्होंने एक उपाय सोचा। अपनी दैविक विद्याके बलसे एक जादूके वृक्षके दो पत्ते लेकर उनकी सहायतासे समुद्र पार हो उस महात्माके सम्मुख वह जा खड़े हुये। ऐसे स्थानमें, जहां मनुष्य का जाना असम्भव था, नागार्जुनको देख कर उस महात्माके आश्चर्य्यकी सीमा न रही। उस महात्माने नागार्जुनसे वहां आनेका कारण पूछा और यह पूछा कि कैसे आये। नागार्जुनने सब बातें कह सुनाईं और उन पत्तोंमेंसे केवल एकको दिखाया; और एकको छिपा रखा।

उन्होंने उस महात्मासे सोना बनानेकी कलाको सीखनेकी प्रार्थना की। महात्माने उनकी प्रार्थना स्वीकार करली, किन्तु इस शर्त पर कि उस पत्ते को जिसकी सहायतासे वह उस द्वीपमें आया था उस महात्माको दे डाले। महात्माके ऐसे करनेका उद्देश्य यही था कि वह नहीं चाहते थे कि नागार्जुन इस कलाको सीखकर जम्बुद्वीपमें वापस जाय और वहां के लोगों को यह कला सिखाये। नागार्जुनने यह शर्त मानली और थोड़े समयमें उस कलाको सीखकर दूसरे पत्तेकी सहायतासे अपने देशको लौट आये। नालेन्द्र वापस आकर वह उस कलाकी सहायतासे धनोपार्जन करने और भिक्षुकोंका भरणपोषण करने लग गये। धर्म्माचरणसे उन्हें सिद्धि भी प्राप्त हुई।

उत्तर कुरुकी यात्रासे लौटकर नागार्जुनने अनेक चैत्य और मन्दिर बनवाये और विज्ञान, औषधि, ज्योतिष और रसायन पर अनेक ग्रन्थ लिखे। उन्होंने सरहभद्रकी मृत्युके पश्चात्, उस मठके अधिष्ठाताके पद पर आरूढ हो बड़ी योग्यता और अनवरत उत्साहके साथ कर्तव्य पालन किया।

अनेक ग्रन्थ नागार्जुनके लिखे कहे जाते हैं, किन्तु यह सन्देह जनक है कि वह सब उनके लिखे हों। चारों वेदोंके संग्रहकर्ता और अठारहों पुराणोंके रचयिता व्यास कहे जाते हैं, किन्तु यह सब पर विदित है कि यह कथन कहां तक मान्य है। नागार्जुनकी और पुस्तकोंके वर्णनका जैसा पहले कहा जा चुका है यह स्थान नहीं है। यहां केवल एक ग्रन्थ रसरत्नाकरमें लिखी बातोंका वर्णन किया जायगा, जिसका रसायनसे सम्बन्ध है। यह रसरत्नाकर अभी छपा नहीं है। इसकी केवल हस्तलिखित कापी मिली है। यह ग्रन्थ अधिकांश बौद्ध तन्त्रोंसे परिपूर्ण है, किन्तु बीच बीचमें रसायन क्रियाओंका वर्णन है। उस वर्णनसे स्पष्टविदित होता है कि उस समय रासायनिक बातें कितनी मालूम थीं। इस पुस्तकमें मुख्यतः तीन बातोंका वर्णन है। पहले चान्दीसे सोने बनानेकी अनेक विधि दी हुई हैं। यह सम्भव है उन विधियोंसे चान्दीका रंग सोनेके समान होजाता हो अथवा चान्दीका कोई धातु-मिश्रण ( alloy ) सोनेके रूप रङ्गका बन जाता हो। दूसरे अनेक धातुओंकी साधारणतः किन्तु विस्तारपूर्वक केवल पारेकी शोधन विधि दी हुई है। इससे विदित होता है कि उस समय पारेका प्रयोग औषधियोंमें बहुत अधिक होता था। यहां यह बात स्मरण रखने योग्य है कि पाश्चात्य देशोंमें औषधके लिए पारेका प्रयोग बहुत प्राचीन नहीं है। तीसरे इस पुस्तक में अनेक यन्त्रोंका वर्णन है, जिससे मालूम होता है कि इन यन्त्रोंका व्यवहार उस समय बहुत अधिकतासे होता था, किन्तु उन यन्त्रोंका सविस्तर वर्णन कहीँ नहीँ मिलता। नागार्जुन लिखते हैं —

> कोष्ठिका वक्रनालश्च गोमयं सारमिन्धनम्।
> धमनं लोह पत्राणि औषधं काञ्जिकं विड़म् ॥
>
> कन्द्राणि विचित्राणि * ... ...
> सर्वमेलयनं कृत्वा ततः कर्म्म समारभेत् ॥

अर्थात् निम्न लिखित यन्त्रोंको इकट्ठा कर रासायनिक क्रिया प्रारम्भ करनी चाहिये—कोष्ठी, वक्रनाल, गोईठा, लकड़ी, धमनी और लोहेका पत्र।

अब मैं रस रत्नाकरसे कुछ बातें उद्धृत कर इस लेखको समाप्त करता हूं।

"राजवर्त सिरीष पुष्पके रसके साथ मिश्रण करनेसे एक गुञ्जा चान्दी का सौ गुने सुवर्णमें परिवर्तन हो जाता है।

"पलास रससे शोधित पीत गन्धक गायके गोईठेकी आग पर तीन बार पकानेसे चान्दीको सुवर्ण बना देता है।

"हींगुलु ( Cinnabar ) भेडीके दूध और अम्ल

* हस्त लिखित ग्रन्थमें पाठ पढ़ा नहीं जाता।

के साथ कई बार पकाने पर चान्दीको कुंकुमके सदृश सुवर्णकी चमक दे देता है।

"चपल (ताम्बेको एक मट्टी) और और खनिज तीन दिन तक नीबूके रसमें डुबा रखनेसे शुद्ध हो जाते हैं।

"तांबा, पृथ्वीके क्षार (यहाँ शायद शोरेसे मतलब है) भेड़ीके दूध, घी और सौलहवाँ हिस्सा तेलके साथ पिघलानेसे चन्द्र बिम्बके सदृश शुद्ध हो जाता है।

"मक्षिका और विमला (यह दो ताम्बेकी मट्टी हैं)—मक्षिकाको मधु, एरण्डीके तेल, गायके मूत्र, घी और कदलीके रसमें बार बार डुबोनेसे शुद्ध तांबा तैयार हो जाता है।

"विमलाको फिटकरी,कसीस (Green Vitriol) सोहागा और सैंजनके निचोड़के साथ मसलने और अन्तमें बन्द बर्तनमें मक्षिकाके भस्मके साथ (मक्षिका क्षार संयुक्त) तप्त करनेसे "चन्द्रार्क" रूपमें ताम्बा निकल आता है।"

इस पुस्तकमें निम्न लिखित यन्त्रोंका भी ज़िक्र है—

"शिला यन्त्र, पाषाण यन्त्र, भूधर यन्त्र, वंश यन्त्र; नलिका यन्त्र, गजदन्त यन्त्र, दोला यन्त्र, अधः पातन यन्त्र, भुवः पातन यन्त्र, पातन यन्त्र; नियामक यन्त्र, गमन यन्त्र, तुला यन्त्र, कच्छप यन्त्र, चाकी यन्त्र, बालुका यन्त्र, अग्निसोम यन्त्र, गन्धक त्राहिक यन्त्र, मूषा यन्त्र, तण्डिका यन्त्र; कमभाजन यन्त्र, घोणा यन्त्र, गड़ाभ्रक यन्त्र, नारायण यन्त्र, जालिका यन्त्र, चारण यन्त्र।"

---

## जब थको पानी पीलो

जब थकावट मालूम हो थोड़ा थोड़ा पानी पीलेना चाहिये। पानीसे वह सब विषैले पदार्थ पतले पड़ जाते हैं जो श्रमके कारण पैदा हो जाते हैं। अतएव वह शरीरको उतनी हानि नहीं पहुंचाते और शीघ्र ही शरीरके बाहर निकलजाते हैं।

## दो ऐतिहासिक रत्न

हाल में ही भारत सरकारने मेसर्स क्रिस्टी-की दूकानसे दो रत्न खरीदे हैं, जिनका भारतीय इतिहाससे बड़ा भारी सम्बन्ध है। इनमेंसे एक तो छल्ला और दूसरा प्याला है। तख्त ताऊस, कोहेनूर और अन्य रत्नोंके साथ जिनका मूल्य प्रायः १,३१२,५००,००० रुपयेसे अधिक था, इन्हें भी नादिरशाह फारिस लेगया था।

जब शाह शुजाने भागकर पञ्जाब केसरी रणजीत सिंहकी शरण ली तो उन्होंने कोहेनूर तथा उपरोक्त दोनों रत्न रणजीत सिंह जीको दे दिये। १८४९ में लाहौरके राजकीय कोषमें यह तीनों रत्न पाये गये थे। कोहेनूर तो इंगलैण्डके राजकीय कोषमें जा पहुंचा और सम्राटके मुकुटकी द्युति दमका रहा है, परन्तु बाकीके दो रत्न वहांसे उड़े और बादमें लार्ड डेलहौसीके पास मिले। कहते हैं कि उन्होंने यह किसी व्यक्तिसे, जिसके हाथ वह लूटमें लग गये थे, मोल ले लिये थे और अब तक उनके वंश में ही चले आते थे।

छल्ला एक ही पत्थरका बना हुआ है। वह बायें अंगूठेमें पहननेके कामका है, जिसमें कमानकी प्रतिचाकी चोटसे तीर छोड़नेपर अंगूठा बचा रहे। प्याला भी एक ही एमेरल्ड से तराश कर बनाया गया है। यह सोनेमें बिठलाया गया है, जिसपर लाल (Rubies) जड़े हुए हैं। सम्भवतः यह किसी महाराजाके इत्रदान या फुलेलदान की शोभा बढ़ाने के लिए बनाया गया था।

इस प्रकार देहलीसे १६५० में प्रस्थान कर प्रायः३०० वर्ष बाद फिर यह रत्न वहीं आ पहुंचेंगे।

---

## नीबूमेंसे दुगना रस निकालिये

नीबू निचोड़नेके पहले आगपर रखकर खूब गरम कर लीजिये। ऐसा करनेसे रसकी मात्रा प्रायः दुगनी निकलेगी।

## श्रीमती क्यूरी का सम्मान

श्रीमती बीबी क्यूरीका नाम वैज्ञानिक संसारमें विख्यात है। इन्होंने अपने पतिके साथ सबसे अधिक आश्चर्य जनक पदार्थ रेडियमका आविष्कार किया था। जिस समय इन्होंने २५० मन पिचब्लेएडो नामक मट्टीसे महीनों के परिश्रम के बाद पाई भर रेडियम ब्रमिद बनाया था उस समय उन्हें खयाल भी न था कि यह कैसे कैसे क्षेत्रोंमें काम आसकेगा। कुछ लोगोंका खयाल था कि श्रीमती क्यूरी का पर्याप्त सम्मान नहीं हुआ है। इसी की कमी पूरी करनेका विचार अमेरिका की महिलाओंने किया। हालमें ही जब श्रीमती क्यूरी अमेरिका गईं तो अमेरिकाकी महिलाओंकी ओरसे संयुक्त राज्यके राष्ट्रपतिने एक ग्राम रेडियम उनको भेट किया। एक ग्राम एक माशेसे कुछ ही अधिक होता है, अतएव एक ग्रामको सुनकर शायद आपको खयाल आये कि क्या ज़रासी चीज़ भेट की गई, परन्तु वस्तुतः उस एक ग्रामका मूल्य १३००००० रु० से भी ज्यादा है।

इस भेटके ग्रहण करनेके बाद श्रीमती जी ने कोलेरेडोमें स्थित संसारके सबसे बड़े रेडियम निकालनेके कारखानेका निरीक्षण किया।

---

## भारतवर्षका हमला जर्मनीपर

( ले०—श्री० "जटायु" )

हम यह वर्णन कर चुके हैं कि किसी समय गङ्गाजीके तटपर कानपुर नगर बसा था। कानपुर ज़िला दक्षिणमें यमुनाजीके तट तक फैला था। गङ्गाजीके तटपर उत्तरमें उन्नावका ज़िला था और उन्नावके ही ज़िलेसे मिला हुआ लखनऊका ज़िला था। लखनऊ गोमतीके तटपर दक्षिणकी ओर था। अब यह सब क्षेत्र यमुनाजीसे लेकर गोमतीजी तक ब्रह्मावर्त्तका ज़िला कहलाता है। ब्रह्मावर्त्तके सामने गङ्गाजीके तटसे लेकर कई कोस तक ब्रह्मावर्त्त राजधानीकी म्यूनीसिपेलटी है। ब्रह्मावर्त्त नगरके गङ्गा के घाटोंसे खड़े हो कर देखने पर उसपार जहांतक कि दृष्टि जाती है शीशे के पटे हुए मकान दिखलाई देते हैं। वायुयानोंपर चढ़कर नीचेकी ओर देखने पर सड़कोंके अतिरिक्त सब सपाट शीशा बिछा हुआ दिखलाई देता है। यह सब भारतीयोंके खेत हैं। अधिकांश कृषक बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटीके कृषि महाविद्यालयके उत्तीर्ण विद्यार्थी हैं। यहां विज्ञान द्वारा कृषिकर्म्म होता है। इन शीशेके खेतोंमें हर प्रकार के फल फूल और तरकारियां बारहों मास मिलती हैं। यहां गगरेके समान बड़े बड़े लाल दानेके मीठे अनार होते हैं। इन अनारोंका छिलका ऐसा पतला है, जैसे आलुओं का। इनके दाने अंगूरके दानोंके समान हैं। दानोंमें बीज केवल नाममात्रको है। अनारको छील कर दानोंको मुट्ठीमें लेकर मुंहमें फांक कर चबा लीजिये। जैसे नाममात्रको तर्बूजमें फोग निकलता है उससे अधिक इनमें नहीं निकलेगा।

इन खेतोंके खर्बूज़े इतने बड़े हैं कि मनुष्य दोनों हाथोंमें एक खर्बूज़ेसे अधिक नहीं ले सकता। तर्बूज़ इतने बड़े होते हैं कि प्रायः एक तोलमें एक मनके बराबर होता है। तर्बूज़ काटने पर उसके अन्दरसे चार पांच सेर रस निकलता है। खर्बूज़े और तर्बूज़ इतने मीठे हैं कि हलवाई खोआ मिला कर बिना शक्कर डाले बर्फी बनाते हैं। एक प्रकार का खर्बूज़ा मनुष्यकी मुट्ठीके बराबर छोटा होता है। एक एकड़ भूमिमें इसकी फसल एक हज़ार मन होती है। कई एक शर्करालय गन्नेके स्थानपर इन्हींसे शक्कर निकालते हैं।

गन्ने दस दस हाथ लम्बे होते हैं और बीजसे उपजाये जाते हैं। एक एक गन्ना मनुष्यकी जांघकी बराबर मोटा होता है। उसमें इतना रस भरा होता है और छिलका इतना पतला होता है कि अगर काग चोंच मारदे तो गन्नेमें छेद होकर रस

बहने लगता है और उसके आस पास कई गज तक कीच हो जाती है। ककड़ियां मनुष्यकी उंगलियोंके बराबर मोटी और दो हाथ लम्बी होती हैं। किसी खेतमें ककड़ियां बिलकुल सीधी होती हैं; किसी में सर्प की सी टेढ़ी, किसीमें सर्पिलाकार।

सेब और नाशपातियां सेर सेर भरकी होती हैं। बीज इनमें नाममात्र को होता है। कृषिमहाविद्यालयके आविष्कारोंसे इनमें नाना प्रकार की सुगन्ध उत्तपन्न कर दी गई हैं। किसीमें केवड़ेकी सुगन्ध आती है; किसीमें गुलावकी और किसीमें तुलसीकी पत्तियोंकी सी।

यहां जो अनन्नास उत्पन्न किया जाता है उसमें अंखुए नहीं होते। इस कारण केवल छिलका छीलकर खा लेते हैं। रंग, स्वाद, बनावटके अनुसार अलग अलग बगियोंमें तीस हजार किस्मके आम बोये हैं और यह ऐसे अद्भुत हैं कि सब संसारमें घर घरमें इनकी चर्चा होती है। हर प्रकार के फलके स्वादके आम हैं। किसी वृक्षके आमोंमें सेवका सा मज़ा है। किसीमें नारंगीका स्वाद है, किसीमें केलेका जायका है। किसीमें अनार की बहार है, तो किसीमें गन्नेकी लज़्ज़त। किसी किसी वृक्षका आम ऐसा खट्टा है कि उसको कुचल कर उसका रस घड़ेमें रख लीजिये और सिर्केके स्थान पर प्रयोग कीजिये। खीरा, ककड़ी, केला, नारंगी इत्यादि सैकड़ों प्रकार के फल होते हैं और यह इतने होते हैं कि धनाढ्य और निर्धन सब मोल लेकर खा सकते हैं।

संसारमें जितने किस्मके पुष्प होते हैं यहाँ बारहों मास पैदा होते हैं। भारतीय विद्वानोंके आविष्कारोंसे इनमें अद्भुत परिवर्तन कर दिये गये हैं। कुछ पुष्प ऐसे हैं कि जब गङ्गा उसपार खिलते हैं तो इस पार नगर भरमें सुगन्ध फैल जाती है। प्रातःकाल जब नगरनिवासी गंगा स्नान करने जाते हैं तो सुगन्धसे आनन्द मय हो जाते हैं। प्रतिदिन एक सहस्र पुष्पोंकी माला सायंकालके समय वायुयानों द्वारा बर्लिन भेजी जाती है। प्रातःकाल भारतेन्दु सन्ध्या करते समय इसको पहनते हैं। भारतेन्दु किसी समय प्रसन्न होते हैं तो यह माला उतार कर किसी जर्मन प्रजाको दे देते हैं। वह जर्मन अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता है।

ब्रह्मावर्त्तके बागीचोंमें हर रंगका गुलाब है। एक गुलाब ऐसा है कि जिसकी पंखुड़ियां काले रेशमी वस्त्र की सी हैं। एक गुलाब ऐसा है कि जिसकी हरएक पंखुड़ी जुदा जुदा रंगकी है। यह सब मिलकर ऐसा रंग बिरंगी मालूम पड़ती हैं कि मानों इन्द्र धनुष पेड़ पेड़ पर छटा दिखला रहे हैं। एक बेला यहाँ के बागीचोंमें एक लाख पंखुड़ियों का होता है। यह मनुष्यकी मुट्ठीके बराबर बड़ा है और लक्खी बेला कहलाता है। यहाँ बेला चमेली, चम्पा और जुही, हरे, पीले और लाल रंगकी भी होती हैं। यहां एक जुही करीब दस-फुटके ऊंची होती है और सालभर इससे सहस्रों पुष्प झड़ा करते हैं।

यहां के इत्र बनानेवाले भी संसार भरके गुरू माने जाते हैं। इनके इत्रोंकी सुगन्ध वस्तु पर कई सप्ताह रहती है और कपड़े पर किसी प्रकार धब्बा नहीं पड़ता। एक इत्र है कि जिसका नाम पाटवी है। वस्त्र पर यह लगाया जाय तो जब तक वस्त्र रहता है सुगन्ध आती रहती है। धोनेसे नहीं छूटती। पर अचम्भेकी बात यह है कि शुक्लपक्षमें वस्त्रसे चम्पाकीसीसुगन्ध आती है और कृष्णपक्षमें गुलाबके पुष्पकी सी। एक इत्र और है जिसका नाम अजूबा है। यह वेंकटम चिन्तामणि रामस्वामी नैडूके कारखानेमें बनता है। इसको वस्त्रपर लगाने से पहले सप्ताहमें बेलेकी, द्वितीय सप्ताहमें गुलाबकी, तीसरेमें चमेलीकी; चौथेमें मालतीकी सुगन्ध आती है। इसके पश्चात् आपही आप सुगन्ध जाती रहती है। जितने इत्र बनाये जाते हैं वह तीन श्रेणीमें बिकते हैं। वायुयानी, वस्त्रानी, भोजरानी

वायुयानी इत्र शीशीकी डाट खोलकर कमरेमें केवल किसी स्थान पर रख दिये जाते हैं और घर भर सुगन्धित हो जाता है। वस्त्रानी इत्र वस्त्रपर लगाये जाते हैं; वस्त्रके समीप खड़े होनेसे सुगन्ध आती है। भोजनानी इत्र खट्टे, मीठे, फीके, सीठे, कडुए, नमकीन, चिरपिरे किसी प्रकारके भोजन-में डालनेसे भोजन सुगन्धित हो जाता है और आग पर पकानेसे यह उड़ते नहीं और न भोजन-का स्वाद बिगडता है।

भारतवर्षमें कृषिकर्म भी अद्भुत होता है। बनारस हिन्दूयूनीवर्सिटीके विद्यार्थियोंके आविष्कार-ने आश्चर्यजनक परिवर्त्तन पैदा कर दिया है। चौधरी गूजरसिंहने एक ऐसा हल बनाया है कि जिसके द्वारा भूमि जोतनेसे एक हाथ गहरी भूमि केवल एक जुताईमें मैदेके समान हो जाती है। यहां सम्पूर्ण कृषिकर्म बिजलीकी सहायतासे होता है। बैल नहीं काममें लाते हैं। गौ माता समझी जाती है; इस कारण बैलोंसे परिश्रम कराना पाप समझा जाता है। मुंशी निगमचन्द भटनागर पशु चिकित्सक हैं। उन्होंने एक ऐसी नवीन रीति निकाली है कि जिसके द्वारा नर अथवा मादा पशु इच्छानुसार पैदा करा सकते हैं। इस कारण अधि-कांश गौएं ही भारतवर्षमें मिलती हैं।

खेतोंमें बीज कलोंसे बोये जाते हैं और निकाई गोड़ाई भी कलोंसे होती है। जब सिंचाई करनी होती है कलोंसे जल वृष्टि कर देते हैं। फ़सल पक कर तय्यार होने पर कलोंसे खेत काटे जाते हैं और उसाई, मड़ाई इत्यादि सब कलोंके द्वारा ही होती है। यहां कृषकोंका सिद्धान्त यह है कि मनुष्य देह बड़ी कठिनाईसे मिलती है। न जाने कितने पूर्व जन्मोंके पुण्य इकट्ठा होते हैं जब आत्मा मनुष्यका शरीर धारण करती है। इस कारण मनुष्यको पशु तुल्य मानकर कठिन परिश्रम लेना और पशुओंके समान उससे बोझा उठवाना अथवा कोई कड़ा काम लेना बड़ा पाप समझा जाता है। इस कारण कृषिकर्ममें मनुष्य केवल कलें चलानेके लिए नौकर रखे जाते हैं। चुनना, बीनना, पछो-रना, फटकना, कपासकी बुंडी तोड़ना, फलों और पुष्पोंका तोड़ना, सब कलों द्वारा होता है।

सन् १९०० में सब प्रकारके रंग ऊन, सूत, रेशम इत्यादि रंगनेके लिए इतने सस्ते पश्चिमी देशोंसे आने लगे थे कि भारतवर्ष के वानस्पतिक रंगोंका बिकना एकदम बन्द होगया था। बनारस-के कृषि महाविद्यालयके लाला रंग लालने इस ओर ध्यान दिया और कृषि महाविद्यालयके फ़ार्मोंमें वृक्षोंको बोकर रासायनिक रीतिसे इनमें ऐसी उन्नति की कि एक एक वृक्षसे मनों रंग होने लगा और सब संसार में भारतवर्षके रंग घर घरमें दीखने लगे।

पण्डित मुकन्दराम मिश्रने अद्भुत आविष्कार किये हैं। बाज़ारमें जो मिश्री बिकती है वह ईख शर्करा है। गन्नेमें और और फलोंमें जिनमें मिठास होती है ईख शर्कराके साथ साथ दाख शर्करा अर्थात् अंगूरी शक्कर बहुत होती है; पर इसमें दाना नहीं पड़ता। मिश्रीके साथ इसको निकाल कर बेंचनेकी कोई रीति नहीं मालूम थी। इन महा-शयने एक ऐसी रासायनिक रीति निकाली, जिसके द्वारा शकरकन्द, गाजर, चुकन्दर, खर्बूजा इत्यादि-की शर्करासे मिश्री बनाली जाती है। इस कारण भारतवर्षमें इतनी सस्ती शकर होने लगी है कि सब संसारमें इन्हींकी शकर खाई जाती है।

भारतवर्षमें कपास का ऐसा महीन रेशा होता है जैसा कि मकड़ीके जाले का तार। एक बालिश्त लम्बा रेशा होता है। प्रति एकड़ लगभग दश मन कपास होती है। कपासका रेशा इतना पुष्ट होता है कि इससे महीनसे महीन कपड़ा बुन सकते हैं। इस कपाससे एक बड़ी सुन्दर मलमल बनती है। इसका नाम सूर्य्य किरण है। इसके एक गज़के अर्ज़का चालीस गज़ लम्बा थान लपेटकर स्त्रियों-की आरसीमें दर्पणके स्थान पर रख लिया जा सकता है।

कृषि महाविद्यालयके फार्म पर भेड़ें ऐसे महीन ऊनकी उत्पन्न की गई हैं कि इनके ऊनसे मलमलके से महीन वस्त्र बनते हैं। चौधरी भगतरामने एक ऐसी रासायनिक विधि निकाली है कि जिससे ऊन बना लेते हैं और कपाससे रेशम बना लेते हैं। इन दोनों व्यवसायोंके भी अनेक कारखाने हैं।

भारतवर्षमें चमड़ेका प्रयोग करना बिलकुल बन्द हो गया है। एक समय हीरामन मोतीलाल छुनछुनियाँ एक मारवाड़ी वैज्ञानिकने भारतीयोंको व्याख्यान देकर समझाया कि "गौ माताकी देहसे जो वस्तुएं प्राप्त होती हैं, उनका हम बराबर प्रयोग करते रहते हैं. पर जो वस्तुएं गौ हिंसा बिना प्राप्त नहीं हो सकतीं उनका नहीं प्रयोग करते। क्योंकि उनके प्रयोग करनेमें वैसा ही पाप है जैसा कि गो हत्यामें। इसी कारण गो मांस नहीं खाते! अगर कोई कहे कि तुम हत्या न करो हम मार कर देंगे तो भी प्रयोग करना पाप समझा जायगा, क्योंकि पापमें सहयोग देना उतना ही पाप है। अब एक बड़े आश्चर्यकी बात यह है कि यह जान कर भी कि चमड़ा बिना गो-हत्या किये नहीं प्राप्त हो सकता,हम चमड़ेका प्रयोग करते हैं। पशुका चमड़ा पशुके मांससे बहुत अधिक मूल्य पर बिकता है; इस कारण मांसकी अपेक्षा चमड़ेके लालच सेही लोग हिंसा करते हैं। अतएव चमड़े का प्रयोग वर्जनीय है।" जब यह भारत वर्षमें चर्चा हो रही थी कि कोई वस्तु चमड़ेके स्थान पर प्रयोग करनेके लिए निकालनी चाहिये. रघुनाथ भास्कर तिलकने एक नई रीतिसे किरमिच आयल क्लाथ, रबड़, कार्क और मूंजसे ऐसा सुन्दर पदार्थ बनाया कि उसके सामने चमड़ेकी वस्तुएं तुच्छ मालूम होने लगीं और चमड़ेका प्रयोग एकदम बन्द हो गया।

कृषि महाविद्यालयके डेरी फ़ार्म पर ऐसी गायें पैदा की गयीं कि जिनसे एक वक्तमें एक मन दूध दुहा जाता था। भैंसें ऐसी थीं कि जिनके दूधसे सेर भरमें पाव भर मक्खन निकलता था। गेहूं, ज्वार, बाजरा, मक्का, इत्यादि प्रति एकड़ दो दो सौ मन होती थी।

चुन्नीलाल हीरालाल शीतलवादके शीशे और चीनेके बर्तन संसारके वैज्ञानिकोंकी मंडलीमें आश्चर्य्य फैलाये हुए थे। इन बर्तनोंको आग पर रख कर गर्म करके लाल कर देने पर भी बर्तन कभी नहीं चिटकता था। यदि आग परसे उतार कर तुरन्त बर्फ़में डाल दीजिये तो भी नहीं चिटकता था। हाथसे बर्तन गिर पड़े तो बर्तन टूटता नहीं था। जैसे पीतलके बर्तनमें गड्ढा पड़ जाता है, उसी प्रकार इसमें भी गड्ढा पड़ जाता था।

बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटीके प्रोफेसर जहांगीरजी रुस्तमजी ताताने एक ऐसी इस्पातका कारख़ाना चलाया था कि इसके बने चाकू, उस्तरे, कैंची इत्यादिको बार बार शान नहीं चढ़ानी पड़ती थी। छुरे और चाकूको आग पर गर्म्म करनेसे धार नहीं मारी जाती थी। किसी कड़ी वस्तु पर इनके पड़ जाने पर धार नहीं टूटती थी। अगर बहुत कड़ी वस्तु होती थी तो धार काग़ज़की तरह मुड़ जाती थी और सिल्ली पर चढ़ानेसे फिर सीधी हो जाती थी।

मैंने मारुतसुतसे पूछा कि महाराज भारतीय तो बड़ी हीन दशामें थे। इन्होंने इतने थोड़ेसे समयमें इतनी उन्नति कैसे करली! मुझको बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता है; शायद भक्त हितकारी वृन्दाबन विहारीने ही यह सब किया होगा।

मारुत सुत मुसकराये और बोले,-"हाँ, रामकी अनुग्रह बिना तो कुछ नहीं हो सकता। प्रातः स्मरणीय श्रीलक्ष्मणजी महाराजने श्रीस्वामी नाथको स्वयम् परिश्रम करके लङ्का जानेको कहा था। "दैव दैव आलसी" पुकारा करते हैं। जबसे भारतीयोंने स्वाधीन और स्वतन्त्र होकर विद्या प्रचार करनेका निश्चय किया उसी दिनसे इस उन्नतिका अंकुर जम गया। दूसरी बात यह है कि भारत वर्षमें महाविद्यालयोंमें वैज्ञानिक बाज़ीगरोंकी तरह

से विज्ञानके खेल तमाशे विद्यार्थियोंको दिखलाया करते थे। जो वैज्ञानिक किञ्चित तीव्र बुद्धिके थे भी यह पश्चिमी अहंकारी वैज्ञानिकोंके समान सृष्टिकी रचनाको टटोला करते थे। इस कारण अन्धकारकी भूल भुलैयोंमें पड़े रहा करते थे। बनारसमें एक खिलौना बनता है जो देखनेमें एक डिब्बेका सा होता है। इसे खोलो तो इसके अन्दर एक और डिब्बा निकल आता है। इसी प्रकार डिब्बेके अन्दर डिब्बा निकलता चला जाता है। वही दशा इस संसारकी है। जब भारतीय वैज्ञानिकोंको यह भली भाँति निश्चय हो गया कि नाना प्रकारके अन्वेषणों द्वारा खोज करनेसे सृष्टि असीम ज्ञात होती है, अनगिनती डिब्बोंके अन्दर डिब्बे निकलते चले आते हैं और उतना ही श्रम बढ़ता जाता है, तो उन्होंने यह व्यर्थका परिश्रम छोड़ दिया और एक और ही कार्य प्रणालीका अनुसरण किया जो परमगोपनीय है। जबसे उनका यह विश्वास हुआ कि विज्ञान मनुष्यके जीवनमें केवल आनन्द देनेके और उसको संसारमें सबल बनानेके लिए है उसी दिनसे भारत वर्षमें उन्नति ऐसे वेगसे होने लगी जैसे पहाड़ी नदियोंमें बाढ़ आती है।"

यह सुन मैंने सिर झुका कर उन्हें दण्डवत की और कहा कि ज्ञान और भक्तिमें तीनों कालोंमें आपसे बढ़ कर कौन भेद जान सकता है।

## नीबूके रसका त्वचापर प्रभाव

नीबूका रस खानेपर हाज़िमा दुरुस्त करता ही है; परन्तु मुंह, गले, बांह और हाथोंपर लगानेसे त्वचाको नरम, साफ और चमकदार बना देता है। चमड़ा साफ हो जाता है और रोम-रंध्र सिकुड़ जाते हैं। फोड़े फुंसियोंके जो रंग बिरंगे निशान त्वचापर पड़ जाते हैं, उन्हें भी नीबू-रस मिटा देता है। मुंहासे और गुमड़ियोंको भी यह अच्छा कर देता है।

## क्या शुतुर्मुर्ग़ भी गरजता है?

सिंहका गरजना विख्यात है। लोग समझते हैं कि सिवा शेर और उसके सजातीय जीवोंके अन्य जानवर गरजते नहीं; परन्तु अब मालूम हुआ है कि शुतुर्मुर्ग़ भी गरजता है। वस्तुतः शुतुर्मुर्ग़का गरजन सिंहके गरजनसे इतना मिलता है कि दोनोंमें भेद करना कठिन हो जाता है। यह डाक्टर लिविंगस्टोनको अफ़रीका के जंगलोंके अनुभवसे मालूम हुआ। परन्तु शेर रातको गरजता है और शुतुर्मुर्ग़ केवल दिनमें।

## प्राचीन-शस्त्र-कला

### खड्ग-परीक्षा

नकुल अपने ग्रन्थमें लिखते हैं—खड्गसे लक्ष्मी और राज्य प्राप्त होता है। खड्गसे यश प्राप्त होता है। खड्गसे बैरियोंका नाश किया जाता है। उसी खड्गका निरूपण हम यत्न पूर्वक करते हैं[1]।

### लोहोंके लक्षण

पूर्व मुनि श्रेष्ठों ने जिस प्रकार लोहोंका लक्षण कहा है, वह हम बतलायेंगे। लोहे निरङ्ग और साङ्ग भेदसे नाना प्रकारके हैं[2]।

### निरङ्ग

निरङ्ग लोह काञ्चि और पाण्डि आदिक नाना प्रकारके होते हैं। रस क्रियामें यह बहुत श्रेष्ठ समझे जाते हैं। इनके बनाये भस्म आदिसे बहुत से रोगोंका नाश होता है[3]।

---

(१) खड्गाल्लक्ष्मीस्तथा राज्यं यशः खड्गादवाप्यते।
खड्गाद्वैरिविनाशश्च यत्नात्तमभिदध्महे॥
(नकुलस्य)

(२) लोहानां लक्षणं वक्ष्ये यथोक्तं मुनि पुंगवैः।
निरङ्गसाङ्गभेदेन ते लोहा विविधा मताः॥
(लोहार्णव)

(३) निरङ्गाः काञ्चि पाण्ड्यादि भेदाद्बहुविधामताः।
रसकर्मसु ते शस्ता नाना व्याधिविनाशनाः॥

साङ्ग

साङ्ग लोह प्रायः खड्ग आदिके काम आता है अब उनके नाम और भेद बतलायेंगे[४]।

रोहिणी—जिसके छोटे छोटे दाने हों, रंग हलका नीला हो, वह रोहिणी लोह कहाता है। इसके काटने या तोड़नेमें बहुत अधिक कष्ट होता है[५]।

नील पिण्ड—नीले पिण्डके सदृश लोह नील-पिण्ड कहाता है।[६]

मयूरग्रीवक—मोरकी गर्दनके रंगवाला लोह मयूरग्रीवक कहाता है[७]।

मयूरवज्रक—नागकेसरके फूलके सदृशरंग वाले लोह को शास्त्रज्ञ मयूरवज्रक कहते हैं[८]।

तित्तिराङ्ग—जिस लोहकी बनाबट तीतरके पंखों की कान्तिवाली हो वह तित्तिराङ्ग कहाता है। यह बहुत अधिक मूल्य वाला होता है। यह बहुत अग्निसे गरम करके तय्यार किया जाता है[९]।

सुवर्णवज्रक—जिसका स्वर्णके सदृश रंग हो वह लोह स्वर्णवज्रक कहाता है। उसका बहुत मूल्य होता है और गुण भी उसमें बहुत अधिक होते हैं[१०]।

आलान—खूब घना सूक्ष्म शरीर वाला बहुत अधिक पकाये जानेपर जो लोह शैवलवर्णका तय्यार किया जाता है वह आलान कहाता है[११]।

मौसलवज्र:—जिसके दोनों पार्श्व श्वेत हों और शेष सारा सोनेकी तरह कान्तिसे चमके; जिसकी सीमाएं धूमके सदृश नीली आभावाली होवें वह लोह मौसलवज्र कहाता है[१२]।

कंकोलवज्रक—जिसके अग्रभागपर मृणाल या कमलकी जड़ (बिस) के सदृश छेद हों; उसको वज्रकी परीक्षा करनेवाले कंकोलवज्रक कहते हैं[१३]।

ग्रन्थिवज्रक—जिसमें बहुत सी गांठें ही गांठें दीखती हों वह ग्रन्थिवज्रक कहाता है। वह बहुमूल्य होता है[१४]।

इसके बाद पाण्डि नामक प्रकार भेद लोहके नाना प्रकार कहे जाते हैं।

पाण्डिके भेद

(१) धवलगिरि—जिसको काटनेसे चान्दीका सा चमकता श्वेत रंग दिखाई दे और स्वतः भी श्वेत हो वह धवलगिरि पाण्डि कहाता है[१५]।

---

(४) वर्तयन्ते प्रायशो यस्मात्तांगा खड्गादिकर्मसु।
नामभेदेनचिन्हानि लोहानामभिदध्महे॥

(५) सुद्राङ्गं सुदृढं यस्य नीलमीषत् प्रतीयते।
रोहिणीं तां विजानीयात् तत्क्षणे बहुवेदनाम्॥

(६) नील पिण्ड समाङ्गंच नील पिण्डं विदुर्बुधाः॥

(७) मयूर कन्ठ संस्थानमङ्गं यस्य प्रतीयते।
मयूर ग्रीवकं लोहं तं विदुर्मुनिपुंगवाः॥

(८) नागकेसरपुष्पाभमङ्गं यस्य प्रतीयते॥
मयूर वज्रकं प्राहु लोहशास्त्रविदोजनाः॥

(९) यस्मिंस्तित्तिर पत्राभमङ्गं लोहे प्रतीयते।
दुर्लभं तन्महामूल्यं तित्तिराङ्गं सुपाकजम्॥

(१०) सुवर्ण सदृशाकारा त्वङ्गभूमिः प्रतीयते।
सुवर्णवज्रकं विद्याद् बहुमूल्यं महागुणम्।

(११) अविच्छिन्न सुसूक्ष्माङ्गं दुर्वाभागं सुपाकजम्॥
यस्मिन् शैवालमालानमाहुस्तंमुनिपुंगवाः॥

(१२) शुक्लं पार्श्व द्वयं यस्य मध्ये स्वर्ण समांगकम्।
धूमश्यामसीमसंस्थानं मौसलं वज्रकं विदुः॥

(१३) मृणालनालप्रतिमं विवरैरग्र संस्थितैः।
कंकोलवज्रकं प्राहुः स्वर्णकं दत्रचिन्तकाः॥

(१४) अङ्गं प्रतीयते यत्र बहुग्रन्थिसमन्वितम्।
दुर्लभं तन्महामूल्यं ग्रन्थिवज्रकमुच्यते॥

(लोहार्णवस्यैते)

(१५) रूप्यपत्रसमा भूमिरङ्गं श्वेतं प्रतीयते।
तं धवलगिरिं पाण्डिं पंडिताः प्रवदन्ति हि॥

(२) कालगिरिपाण्डि—जिसके पतले पतले काले रंगके पत्रे हों और सुवर्णके रंगकी तलवार बने। वह लोह कालगिरिपाण्डि कहाता है १६।

(३) जिसकी धार श्वेत हो और बीचका काजलके सदृश हो और सारा काले वर्णका हो, उसको कज्जलवज्रक कहते हैं १७।

कुटीरक—जिसका शरीर चान्दीके पत्रेके सदृश चमकदार हो और तलवार काली बने, वह कुटीरक कहाता है। उसका प्रहार लगने पर शरीर सूज जाता है १८।

केतकिवज्र—जिसकी तलवार केतकीके पत्रके सदृश तेज़ धारवाली हो उसको केतकि वज्र कहा जाता है। उसमें बहुत गुण होते हैं १९।

कान्तिलोह—निरंगलोह, जो सुवर्णकी कान्ति-वाला कुछ कुछ नील आभा लिये हुए हो, कान्ति लोह होता है। उसमें बहुत अधिक गुण होते हैं और बहुत मूल्यवाला होता है २०।

दमन वज्र—जिसका रूपरंग दमन (वृक्ष के पत्तेके सदृश हो, उस तेज़ धार वाले लोहेको दमन वज्र कहा जाता है २१।

डाहुनीवज्रक—जिसका ऊपरका रंग काला तथा काटने पर सुवर्ण की सी कान्ति वाला हो और कुछ थोड़ा वज्रके सदृश हो उसको डाहुनी वज्रक कहते हैं और दूसरे आचार्य उसीको काल भी कहते हैं २२।

नकुलांग—जिसकी बनावट ऊपरको उठी हो और रंग पीला भूरा सा हो, उसको नकुलांग कहते हैं। उसके स्पर्श से सर्प मर जाता है २३।

क्षुद्रवज्रक—सीमा भाग तक जिसका रंग काला हो और छोटा छोटा कुण्डलका सा हो उसको नागार्जुन मुनि क्षुद्रवज्रक कहते हैं २४।

उपरोक्त सब लक्षण बने खड्गमें ही परखने चाहियें। इसके आगे भी खड्गको ही मुख्य रखा गया है।

देवताओंका राजा इन्द्र राक्षसोंकी छातियां फाड़ने-के लिए बड़ी भारी तलवार बना कर बहुत प्रसन्न हुआ। वह तलवार खूब कठोर अन्दरसे ठोस, बीचके भागमेंसे मोटी, मोटी तेज तीखी धारवाली थी२५।

तलवारोंके प्रकार

वामन—वह महान तलवार वामन कहाती है जिसके लोहेका तार न खिंच सके, काटनेमें गहरा काटे और जिसके ऊपर किसी प्रकारका काला दाग़ न हो२६।

---

(१६) तन्वी पत्रावली काला सौवर्णाङ्गासिपत्रिका।
प्राहुः कालगिरिं पांडिं लोहशास्त्रविशारदाः॥

(१७) धाराशुभ्रा भवेद् यस्य मध्यं कज्जलसंनिभम्।
कृष्णैरङ्गैश्चितं गात्रं विद्यात् कज्जलवज्रकम्॥

(१८) सूक्ष्मं रजतपत्राभमङ्गं कृष्णासिपत्रिका।
कुटीरकः समाख्यातस्तत्क्षते श्वयथुर्भवेत्॥

(१९) केतकीपत्रसदृशमङ्गं यस्य प्रतीयते।
विद्यात् केतकिवज्रं तु तीक्ष्णधारं महागुणम्॥

(२०) निरङ्गं रौप्य पत्राभमीषन्नीलनिभं च यत्।
दुर्लभं तन्महा मौल्यं कान्तिं लोहं प्रचक्षते॥

(२१) अंगं दमनपत्राभमङ्गे यस्मिन् प्रतीयते।
विद्याद्दमनवज्रं तु तीक्ष्णधारं महागुणम्॥

(२२) कृष्णभूमिसुवर्णाभमीषद् वज्रांगसंगतम्।
डाहुनीवज्रकं विद्यात् कालसंज्ञमथापरे॥

(२३) ऊर्ध्वंगं कपिलाभासमङ्गं यस्मिन् प्रतीयते।
नकुलाङ्गं तुतं विद्यात् स्पर्शतस्याहिनाशनः॥

(२४) आसीमा कालिका यस्य क्षुद्राङ्गं कुण्डलीकृतम्।
क्षुद्रवज्रकनामानं प्राह नागार्जुनोमुनिः॥
(खड्गकोश)

(२५) अन्तर्गाढं छिद्रहीनं विशालं
मध्येस्थूलं स्थूलधारातितीक्ष्णम्।
रक्षोवक्षश्छेदनार्थं महान्तं
कृत्वाखड्गं देवराजोतिहृष्टः॥

(२६) वामनाख्यं महान्तं येन तन्तुर्न जायते।
छेदे गाढं चिन्हहीनं प्राहुः खड्ग विचक्षणाः॥

भङ्गपत्र—जिसके घिसकर रंगड़नेपर चमकते हुए पृष्ठमेंसे अपना शरीरका प्रतिबिम्ब दीखसके, खड्गके विचक्षण लोग, उसको भङ्गपत्र खड्ग कहते हैं२७।

महिष—जिसका अंग एरण्डके बीजके सदृश प्रतीत हो, वह नीलमेघकी कान्तिवाला महिष खड्ग कहाता है२८।

गजादिवज्र—जिसके अंगपर मेघके सदृश स्निग्धकान्ति वाली रेखा फैली हुई हों, जिसकी धार तीखी और बहुत सूक्ष्म होनेसे रुधिरके साथ छूते ही शरीरमें घुस जावे, जिसका स्पर्श किया हुआ जल पीनेसे ही सब प्रकारकी व्याधियां शान्त हो जावें, वह प्रविष्ट होती हुई सेनाको भी शान्त करनेवाली तलवार गिरिशके कथनानुसार गजादि वज्र कहाती है २९।

जिस खड्ग को प्राप्त होकर राजा अपने सब शत्रुओंके समूहों को ठण्डा करके, अपने सम्पूर्ण कुलों को कृतार्थ करके सम्पत्ति बढ़ा कर अपने इष्ट अभिप्रायको सिद्धकरकेसम्पूर्ण पृथिवीका शासन करता है; जिसमें लक्ष्मी स्थिर चित्त होकर बसती है; ऐसी खड्ग की राजा लोगोंको-सम्पूर्ण दुनिया के मालिक काम देव को वश करके-पूजा करनी योग्य है३०।

इसके बाद खड्गो के गुण वर्णन किये जायंगे। जिनका ज्ञान करके पण्डित लोग खड्गों का विवेचन कर सकेंगे ३१।

खड्गों के गुण

खड्गको विना ज्ञान के धारण करने से शुभ सम्पत्ति नष्ट होजाती है। और उसका शास्त्रानुकूल ज्ञान प्राप्त करके रखने से सम्पूर्ण शुभसम्पत्ति प्राप्त होती है। इसलिए खड्गों के गुण जिस प्रकार पूर्वके श्रेष्ठ मुनियोंने कहे हैं मैं भी कहूंगा३२।

जिस जिसका जो जो चिन्ह हो वह बहुत सुन्दर हो उस खड्ग को उत्तम और सम्पत्ति देनेवाला कहते हैं ३३।

जिस खड्गमें स्वाभाविक अर्धचन्द्र का आकार हो उसमें चाहे हजारों दोष भी हों तो भी उक्तगुण अन्धेरे को चन्द्रकी तरह नाश कर देता है ३४।

जिस खड्गपर गदा, चक्र, शूल डमरू और मण्डलके चिन्ह स्वभावतः हों, ऐसा खड्ग राजाओं को भी कठिनता से प्राप्त होता है ३५।

---

(२७) घृष्टे यस्मिन् भवेद् खड्गे शरीरं प्रतिबिम्बितम्।
भङ्गपत्राभिधं खड्गं प्राहुः खड्ग विचक्षणः॥

(२८) ऐरंडबीजप्रतिममङ्गं यस्मिन् प्रतीयते।
महिषाख्यः सवै खड्गो नीलमेघसमच्छविः॥

(२९) यस्याङ्गे स्थूलरेखा घनसदृशरुचिः सर्वतो व्याप्य तिष्ठेद्। धारा तीक्ष्णाति सूक्ष्मा प्रविशति रुधिर स्पर्श मात्रेण खड्गः॥ यस्याम्भः पीयमानं शमयति निखिलं व्याधिमाधिं समग्राम्। वैरिश्रेणीं विशन्तीं प्रवदति गिरिशोवज्रमेतद् गजादि॥

(३०) यं प्राप्य क्षितिपः समग्रधरणीं शास्ति प्रशान्त द्विषद, सार्थः सार्थः कृतार्थी कृत निखिल कुलः संपदा वर्धमानः। यस्मिं लक्ष्मीः स्थिरात्मा भवतिरतिपतिं सर्वलोकाधिनाथं हत्वातस्मात्प्रयत्नादयमतुलगुणः पूजनीयो नरेन्द्रैः।

(३१) गुणदोषाश्च खड्गानां वक्ष्यन्ते क्रमशो मया।
यान् विज्ञाय बुधः कुर्यात्खड्गजालविवेचनम्।

(३२) अविज्ञातो धृतः खड्गः शुभसम्पत्ति नाशकः।
विज्ञातः सकलैश्वर्यं दायको भवति प्रभोः।
तस्मात्तेषां गुणान् वक्ष्ये यथोक्तं मुनिपुंगवैः॥
(शार्ङ्गधर पद्धति)

(३३) यस्य यस्य तु यच्चिन्हं तच्चेत्सर्वाङ्ग सुन्दरम्।
तं खड्गमुत्तमं प्राहुः सर्वसम्पत्तिकारकम्॥
( लो० र० )

(३४) अर्धचन्द्राकृतिर्यस्मिन् खड्गे स्वाभाविकी भवेत्।
अपि दोष सहस्राणि हन्ति चन्द्रस्तमो यथा॥
( लो० र० )

(३५) गदा चक्रं तथा शूलं डमरुर्मंडलं तथा।
यत्र स्वाभाविकंखड्गे सखड्गो नृपदुर्लभः॥
( लो० र० )

जिस खड्गका वर्ण सब एकसा ही हो और एक ही लक्षण हो वह खड्गराज कहाता है। राजा को उसे शुभ करनेवाला समझना चाहिये ३६।

पीला, नीला काला, सचुबीजके आकार-वाला और अनारके दानेके सदृश कान्तिवाला खड्ग बहुत उत्तम समझा जाता है ३७।

जिस खड्गपर नीमके पत्ते कूटकर सान लेप किया जाता है वह बहुत मनोहर शब्द (मधु) के रंगकी कान्तिवाला खड्ग देवोंको दुर्लभ होता है ३८।

जिस के प्रहार करने पर मनोहर ध्वनि उत्पन्न होती है, वह शत्रुओंका नाश करनेवाला खड्ग बहुत उत्तम समझा जाता है ३९।

जिस खड्गमें प्रहार करनेपर कांसेकी सी ध्वनि उत्पन्न हो गिरिश आचार्य उसको शुभ-की वृद्धिकरनेवाला खड्गोंमें उत्तम बतलाते हैं ४०।

वह खड्ग बहुत ही उत्तम और पूजाके योग्य है जिसमें अपने देहका प्रतिबिम्ब दीखे। यदि उसका आकार अर्धचन्द्र का हो तो देवता भी उसकी पूजा करते हैं। यदि उसमें नाना प्रकारके रंगों की कान्ति झलके तो शत्रुके नाश का एक मात्र कारण होता है और लक्ष्मीके प्रवाह पर पुलके सदृश तथा सम्पूर्ण शत्रुकुलोंके नाश करनेमें धूमकेतुके सदृश होता है ४१।

जिन खड्गोंमें जो जो लक्षण कहे गये हैं यदि वह लक्षण शुद्धरूपसे हों तो राजाकी सम्पत्तिको बढ़ाते हैं और यदि मिश्रित हों तो शत्रुकी सम्पत्ति बढ़ती है ४२।

जिसके अधोभागमें लक्षण हों, जो बीचमेंसे चमकता हो, श्रेष्ठ पुरुष अपने हितके लिए ऐसे खड्गको स्वयं नहीं लेते ४३।

जिसके अग्रभागपर जो चिन्ह हो और बीच-में और नीचे न हो, ऐसी खड्गको शास्त्रके जाननेवाले मध्यम गुणवाली खड्ग कहते हैं ४४।

जिसके निचले आधे भागमें तो चिन्ह हों और अगले आधेमें न हो, उसको अधम (नीच) खड्ग कहते हैं। उससे राजाओंको वस्तुतः भय होता है ४५।

(३६) एकवर्णो भवेयस्तु लक्षणैकेन संयुतः।
स खड्गराजो नृपतेर्विज्ञेयः शुभकारकः॥
(लो० र०)

(३७) पीतं नीलं तथा कृष्णं सचुबीजाकृतिं तथा।
यच्च दाडिमबीजाभं तद्वज्रं प्रवरं विदुः॥
(लो० र०)

(३८) निम्बकल्कोद्भवेद् यत्र दिवागात्रं विलेपितः।
मधुगो मधुवर्णाभः स खड्गो देवदुर्लभः॥
(लो० र०)

(३९) आहते यत्र मधुरो ध्वनिः समुपजायते।
पूज्यः स खड्गो नृपतेः शत्रुसंक्षयनाशनः॥
(लो. र.)

(४०) कांस्यस्वन इवाभाति यस्मिन् खड्गे हतेध्वनिः।
खड्गोत्तमं तं वदति गिरिशः शुभ वर्धनम्॥
(लो. र.)

(४१) यस्मिन् खड्गे शरीरं प्रतिफलति यथा खड्ग-राजोऽभिवन्द्यो, वन्द्योऽयं देववृन्दैरपि यदि समभेदर्धचन्द्रोपमानः। नाना वर्णैर्युतश्चेत्स भवति नृपतेः शत्रुनाशैकहेतुः, सेतुर्लक्ष्मीप्रवाहे निखिल रिपुकुलध्वंसने धूमकेतुः॥ (लो. र.)

(४२) खड्गेषु लक्षणं यद् यद् येषु येषु प्रकाशितम्।
तच्छुद्धं प्रभुसम्पत्यै मिश्रितं शत्रुसम्पदे॥

(४३) यस्याधो दृश्यते चिन्हं मध्ये येन प्रकाश्यते।
स्वहितार्थं न गृह्णन्ति तं खड्गं नरपुंगवाः॥

(४४) यस्याग्रे दृश्यते चिन्हं मध्ये नाधोऽपि दृश्यते।
खड्गं मध्यगुणं प्राहुः खड्गशास्त्रविशारदाः॥

(४५) अधोर्धे लक्षणं यस्य परार्धे नैव दृश्यते।
अधमः सभवेत् खड्गः क्षितीशानां भयावहः॥

ऊपरके आधेमें जिसके चिन्ह हों और निचले आधेमें न हों, प्रवीण मतिवाले बुद्धिमान् उसको मध्यम खड्ग कहते हैं ४६।

जिस खड्गमें चाहे सारे शरीर पर ही चिन्ह हों पर तिरछे हों, वह खड्ग अधम कहाता है। राजा उसको दूरसे ही छोड़ दे ४७।

जिस खड्गमें निचले आधेमें तिरछे चिन्ह हों ऊपरके आधेमें न हों; खड्गके विद्वान् लोग उसको न बुरा ही (अपकृष्ट) कहते हैं और न उत्तम (प्रकृष्ट) ही कहते हैं ४८।

जिसके निचले आधेमें एक वर्ण हो और ऊपरके आधेमें दूसरा; ऐसा वर्णसंकरवाला खड्ग राजाके भयको बहुत बढ़ा देता है ४९।

जिस खड्गके प्रहार करनेपर कौए के सदृश स्वर निकले; अं या आ की आवाज़ निकले वह खड्ग श्रेष्ठ पुरुषोंको न लेना चाहिये ५०।

इस प्रकार खड्ग शास्त्रका सम्पूर्ण अभिप्राय गिरिश आचार्य का मत अवलम्बन करके राजा के प्रधान मन्त्री (शार्ङ्गधर) ने यह ग्रन्थ बनाया।

लोह के भेद

खड्ग बनानेके लिए लोहे को प्रधान तथा उत्तम कहा है। खटी खट्टर, ऋषिक वंश, शूर्पारक, विदेह, मुख्य रख कर खड्गोंमें जो विशेषता होती है, उसका वर्णन यहां किया जाता है ५१।

खटीखट्टर देशके लोहके बने खड्ग दर्शनीय होते हैं। ऋषिकदेश के खड्ग शरीरको काटनेवाले, मर्मपर आघात करनेवाले तथा भारी होते हैं। वंश देशके खड्ग तीखे तथा कट या टूट नहीं सकते। शूर्पारक देशके खड्ग मज़बूत, दृढ, होते हैं। विदेह देशके खड्ग कमज़ोर दूसरेकी मारको न सहनेवाले ऊपरसे चमकीले होते हैं। अङ्ग देशके खड्ग तीक्ष्ण सुन्दर और अच्छे दृढ होते हैं। मध्यम ग्रामके खड्ग हलके और तीखे होते हैं। चेदि देशके खड्ग निर्मल और हलके होते हैं। सहग्रामके खड्ग खूब तेज़ और हलके होते हैं। चेदिदेशके खड्ग व्रण आदि रहित निर्मल और तीखे होते हैं। कालञ्जर देशके खड्ग बहुत देर तक चलनेवाले होते हैं ५२।

अंग, मध्यमग्राम, वेदि, सहग्राम, चीन, कालंजर, इन देशोंमें लोहा उत्पन्न होता है और प्रत्येक देशके लोहेमें जुदी जुदी विशेषताएं होती हैं। लोहेको

---

(४६) ऊर्ध्वार्धे लक्षणं यस्य नाधोर्धे लक्षणं भवेत्।
तं खड्गं मध्यमं प्राहुः प्रवीणमतयो बुधाः॥

(४७) तिर्यग् यस्य भवेच्चिन्हमपि सर्वाङ्गगोचरम्।
खड्गाधमं तं नृपति र्दूरादेव विवर्जयेत्॥

(४८) तिर्यक् चिन्हमधोऽर्धे स्यादुपर्यर्धेन वा भवेत्।
नापकृष्टं न प्रकृष्टं तं प्राहुः खड्गकोविदाः॥

(४९) अधोऽर्धे वर्ण एकः स्याद् ऊर्ध्वार्धे भिन्न वर्णकः।
वर्णसंकरवान् खड्गो नृपाणां भयवर्धनः॥

(५०) आहते यत्र खड्गे स्याद् ध्वनिः काकस्वरोपमः।
अं आकारध्वनिर्वा स्यात् स वर्ज्यो नरपुंगवैः॥

इति निखिलमुदारमर्थसार्थं प्रणिहितमेकमिहैव खड्गशास्त्रे।
गिरिशमतमिदं निषेव्य चक्रे क्षितिपतिमन्त्रिसमूहचक्रवर्ती॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि खड्गलक्षणमुत्तमम्।
प्रधानदेहसंभूतं दैत्यास्थिभिररिंदम॥

(५१) लोहं प्रधानं खड्गार्थे प्रशस्तं तद्विशेषतः।
खटीखट्टरऋषिकवंशशूर्पारकेषु च॥
विदेहेषु तथाङ्गेषु मध्यमग्राम चेदिषु।
सहग्रामेषु चीनेषु तथा कालञ्जरेषु च॥
लोहप्रधानं तज्ज्ञानं खड्गानां शृणु लक्षणम्।

(५२) खटीखट्टरजाता ये दर्शनीयास्तु ते मताः॥
कायच्छिदस्त्वार्षिका ये मर्मघ्न गुरवस्तथा।
तीक्ष्णाश्छेदसहा वंशा दृढाः शूर्पारकोद्भवाः॥
अप्रहाश्चैव विज्ञेयाः प्रभावन्तो विदेहजाः।
अङ्गदेशोद्भवास्तीक्ष्णाः सुहस्ताः सुदृढास्तथा॥
लघवश्च तथा तीक्ष्णाः मध्यमग्राम सम्भवाः।
अनारा लघवस्तीक्ष्णा चेदिदेशसमुद्भवाः॥
सहग्रामोद्भवाः खड्गाः सुतीक्ष्णा लघवस्तथा।
निर्व्रणा निर्मलास्तीक्ष्णाश्चेदिदेशसमुद्भवाः॥
कालञ्जराः कालसहास्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्।

परिमाण भेदसे खड्गों लक्षण

परिमाण भेदसे खड्गोंके भेद किये गये हैं, वह इस प्रकार से हैं :—

५० अंगुलका खड्ग श्रेष्ठ कहा गया है। उससे भी आधा मध्यम कहा गया। इससे छोटा खड्ग बनाना न चाहिये। इसी प्रकार नियत परिमाणसे अधिक भी न बनावे और न ऐसा जिसका पृष्ठ कटा हुआ और मैला हो ५३।

जिस खड्गका लम्बा मनोहर घण्टीका सा शब्द सुनायी दे उसका धारण करना श्रेष्ठ कहा है ५४।

अन्योन्य लक्षण

पद्मपत्रकी कान्तिवाला खड्ग भी बहुत उत्तम कहा जाता है। और विशेषतः करवीर और पलाश पत्रके सदृश अग्रवाला भी बहुत उत्तम होता है ५५।

मिट्टी, घी, श्वेतकमल या लालकमल की सी गंधवाले और गुलाबीकमलकी सी कान्तिवाले, और आकाशके सदृश नीलवर्णवाले खड्ग उत्तम समझे जाते हैं ५६।

खड्गोंपर सम अंगुलों २, ४, ६, ८ इत्यादि पर स्थित व्रण (खुर्च) अच्छे समझे जाते हैं। लक्ष्मी, वृक्ष, पर्वत, लिंग और पद्मके आकारके व्रण, उत्तम समझे जाते हैं ५७।

इसी प्रकार अन्य मङ्गल पदार्थोंके आकारके व्रण यदि पृष्ठ वंशके पास हों तो अच्छे हैं। अन्य तथा विषम अंगुलोंपर स्थित काक और उलूकके सदृश आकार और रंगवाले कभी अच्छे नहीं होते ५८।

खड्गके साथ व्यवहार

खड्गमें मुख न देखे, खड्गको व्यर्थ कोशसे बाहर न निकाले। खड्गका मूल्य जाति तथा देश न कहे। झूठे हाथसे न छुए। रातके समय सिरहाने रखके न सोए। दिनके समय गन्ध मालादि सुन्दर वस्तुओंसे उसकी पूजा करे ।५९

मणि और सुवर्णसे सजाकर उत्तमखड्ग राजाको चन्दनके चूर्णसे युक्त सदा कोशमें रखे और उसकी अपने शरीरकी तरह प्रयत्नसे रक्षा करे ६१।

श्रीविष्णु धर्मोत्तरमें कहे गये खड्गके शुभाशुभ चिन्हेंको राजा लोग अच्छी प्रकारसे जानकर अपनी प्रसन्नताके लिए खड्ग ग्रहण करें ६२।

---

(५३) शतार्धमंगुलानां तु श्रेष्ठं खड्गं प्रकीर्तितम् ॥
तदर्धं मध्यमं ज्ञेयं ततो हीनं न कारयेत् ।
प्रमाणाभ्यधिकं चैव च्छुत्रवंशं तथैव च ॥
दीर्घः सुमधुरः शब्दो यस्य खड्गस्य भार्गव ।
किंकिणीसदृशस्तस्य धारणं श्रेष्ठमुच्यते ॥

(५५) खड्गः पद्मपलाशाभो मण्डलाग्रश्च शस्यते ।
करवीरपलाशाग्रसदृशश्च विशेषतः ॥

(५६) महीघृतसुगन्धाश्च पद्मोत्पलसुगन्धिनः ।
वर्णतश्चोत्पलाकाराः स्वर्णा गगनस्य च ॥

(५७) समाङ्गुलस्थाः शस्यन्ते व्रणाः खड्गेषु भार्गव ।
श्रीवृक्षपर्वताकारा लिङ्गपद्मनिभाश्च ये ॥

(५८) मांगल्यानां तथान्येषां सदृशा ये च भार्गव ।
काकोलूकसवर्णाभा विषमांगुलिसंस्थिताः ।
वंशानुगाः प्रशस्ताश्च न शस्तास्ते कदाचन ॥

(५९) खड्गे न पश्येद् वदनं वृथा विवृणुयाच्च ।
न चास्य कथयेन्मूल्यं जातिं देशं कथंचन ॥
उच्छिष्टो न स्पृशेत् खड्गं निशि कुर्यान्न शीर्षके ।
दिवा च पूजयेदेनं गन्धमाल्यादिसंपदा ॥

( ६० )—खड्गं प्रशस्तं मणिहेमयुक्तं
कोशे सदा चन्दनचूर्णयुक्तम् ।
संस्थापयेद्भूमि तिः प्रयत्ना-
द्रक्षेत्तथैनं स्वशरीरवच्च ॥

( ६१ )—श्री विष्णुधर्मोत्तरभाषितानि
चिह्नानि खड्गस्य शुभाशुभानि ।
विज्ञाय भूमीपतयः सदैव
संधारयेयुः सुमुदे कृपाणम् ॥

# घूरेमें लक्ष्मीका वासा
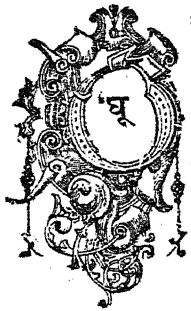
'घूरेमें लक्ष्मीका वासा,' यह बड़ी पुरानी कहावत है। यह तो नहीं कह सकते कि यह कहावत कबसे और किस घटनाके कारण प्रचलित हुई, पर अनुमानसे काम लेकर यह अवश्य कह सकते हैं कि सम्भवतः कृषिमें खादके प्रयोगसे इसका सम्बंध है। गांवोंमें जो कूड़े करकटका ढेर इकट्ठा होजाया करता है उसीको खादके काममें ले आते हैं। और यह तो सभी जानते हैं कि बिना खाद खेती असम्भव है। पर खेतीको छोड़ अन्यत्र इस कहावतका चरितार्थ कर दिखाना आधुनिक विज्ञानका काम है। इसके अनेक उदाहरण दिये जासकते हैं। उनका वृत्तान्त और इतिहास अत्यन्त रोचक और उत्साहजनक है। जिस अनवरत परिश्रम और एकाग्रचित्तासे वैज्ञानिकोंने विविध गन्दी और एक समय निरुपयोगी समझे जानेवाली चीज़ोंसे अनेक उपयोगी और बहुमूल्य पदार्थ निकाले हैं, उसका विचार करते हुए पुराने ज़मानेके तपस्वियोंका खयाल आजाता है।

जब हम तरह तरहके उपयोगी पदार्थोंको काममें लाते हैं तो हम अपनी सभ्यताको सराहते हैं और यह फ़ख़ करते हैं कि अब मनुष्य जीवन कितना सुखमय हो गया है। परन्तु यह हमको कभी खयाल नहीं आता कि कितनी मेहनतसे इन चीज़ोंको निर्माण विधियोंका आविष्कार हुआ होगा और इसके बनाने में अनुपयोगी पदार्थ कूड़ा करकट और फ़ुज़ला कितना बचता है और उसका क्या किया जाता है। केवल वैज्ञानिकोंको ही यह खयाल तंग किया करता है और वही गौण पदार्थोंका कोई न कोई उपयोग निकालनेमें लगे रहते हैं। जन साधारणको तो जीवनकी दौड़में ठहरकर इन बातों पर विचार करनेकी फ़ुरसत ही नहीं है।

एक छोटा सा उदाहरण लीजिये। इन्जनोंमें करोड़ों मन कोयला जलता है। लाखोंमन भस्म उसमेंसे बच रहती है। इस भस्मको हटाना तक कारखानोंके मालिकोंके लिए मुश्किल हो जाता है। यदि कोई मुफ़्तमें उठा लेजाय तो वह बड़े खुश हों बल्कि अपने पाससे उल्टा कुछ दे दें। परन्तु हालमें ही इसका एक उपयोग निकल आया है। चूनेके साथ रेत मिलाई जाती है। यदि न मिलाई जाय तो दीवारें फट जायं और पुख़्ता न बनें। हालमें ही इंजीनियरोंने यह बतलाया है कि रेतके स्थान पर इस राखका उपयोग हो सकता है। उधर रेत लानेका खर्चा कम हुआ, इधर कारखानों की सफाई सस्तेमें होगई।

अन्यत्र अनुपयोगी पदार्थोंके ढेरों बच जानेका कारण यह है कि इष्ट पदार्थ प्रकृतिमें अन्य पदार्थोंके साथ मिला हुआ पाया जाता है। अतएव उसके निकालनेके बाद जो अवशिष्ट रहता है उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल होजाता है। इसके अतिरिक्त भी एक कारण है। वह यह है कि किसी व्यवसाय का उद्देश्य है किसी खास चीज़का बनाना, पर बीच बीचमें अन्य गौण पदार्थ बन जाते हैं। इनसे पीछा छुड़ाना मुश्किल होजाता है। वैसे तो जब तक दुनिया कायम है तब तक कूड़े करकटके ढेर बने ही रहेंगे, परन्तु यदि वह हमारी दृष्टिसे परे रहें, हमें किसी तरहका कष्ट न पहुंचावें तो हमें उनका रहना नागवार न गुज़रेगा। परन्तु फैक्टरियोंमें जहां लाखों मन कूड़ा करकट प्रतिमास निकलता हो वहां उसके फेंकनेकी ही नहीं फिकर रहती प्रत्युत उससे रुपया पैदा करनेकी भी उत्कण्ठा रहती है, क्योंकि आखिरकार वह निकला तो उसी मालमेंसे है जिसमें दाम खर्च हुए हैं। इन दोनों बातोंने रासायनिकोंका गौण पदार्थोंके विविध उपयोगोंको ढूंढ निकालनेके लिए बाधित किया। सौभाग्यवश कईबार ऐसा भी हुआ है कि

गौण पदार्थोंके मूल्यने मुख्य पदार्थ बनानेके घाटेको पूरा कर दिया और व्यवसायोंको जीवित रखा। इसका सबसे अच्छा उदाहरण सोडाकी लेब्लेंक विधि है, जिसका वर्णन आगे चलकर करेंगे। अब कुछ उदाहरण देनेसे ऊपर दी हुई बातें स्पष्ट हो जायंगी।

#### लोहेका मैल

'ताताका लोहेका कारखाना' शीर्षक लेखमें लोहेके बनानेका पूरा पूरा हाल दे चुके हैं। उसको पढ़नेसे ज्ञात होगा कि वात-भट्ठेमें लोहेका पत्थर, कोक, चूना और मट्टीके साथ डाला जाता है। भट्ठेमेंसे केवल दो पदार्थ निकलते हैं। एक पिघला हुआ लोहा, दूसरा पिघला हुआ मैल (स्लैग)। यह मैल राख और कांचके बीचका पदार्थ है। ग्रेट ब्रिटेनमें प्रति वर्ष लोहेके कारखानोंमें लगभग ५ करोड़, ६० लाख मन मैल निकलता है। इसको कारखानेसे बाहर फेंकनेमें कितना व्यय होता होगा? आदर्श तो यह होता कि खानोंमें यह डाल दिया जाता, परन्तु इतना व्यय करना कठिन है। इस लिए या तो इसके ढेरके ढेर लगते चले जाते हैं और वस्तुतः मैलकी पहाड़ियां बनती चली जाती हैं या यह समुद्रमें डाल दिया जाता है।

यह किसीको कभी आशा न थी कि ऐसा निकम्मा पदार्थ कभी किसी काममें आ सकेगा। वह तो केवल उर्वर भूमि और सुहावनी प्राकृतिक छटाको विकृत करनेके कामका समझा जाता था। परन्तु वैज्ञानिकोंने उसे काममें लानेकी तरकीब निकाल ही डाली है। सड़क बनाने या ऊसर भूमिको उर्वर बनाने और सीमेंट (स्लेगसीमेंट) बनानेके काममें तो यह आता ही है, परन्तु एक चमत्कारिक पदार्थ भी इससे बनाया जाता है, जिसे "स्लेग वूल" कहते हैं। इसे 'ग्लास वूल' का भाई कह सकते हैं। दोनों रूईके सदृश होनेके कारण "वूल" कहलाते हैं। पिघले हुए मैल पर जब भापकी पतली पतली धार छोड़ी जाती है तो इसके छोटे छोटे विन्दु उचट कर इधर उधर गिरते हैं प्रत्येक विन्दुके साथ एक लम्बा पतला तन्तु भी लगा रहता है। बादमें तन्तुओंको काट कर अलग कर देते हैं। तन्तुओंका ढेर ऊनके ढेरका सा प्रतीत होता है और ऊनके सदृश तापकुचालक होनेके अतिरिक्त जलता नहीं है। इस लिए भाप-नलियों, बैलरों आदिके ऊपर लपेटनेके काम आता है।

#### इस्पात का मैल

इस्पात पिघले हुए लोहेमें बनाई जाती है। पहले उसमें हवा फूंकी जाती है, जिससे लोहा शुद्ध हो जाता है। तदुपरान्त उसमें अन्य पदार्थ इस मात्रामें मिला देते हैं कि कर्बनकी पर्याप्त मात्रा पहुंचनेसे लोहा इस्पातमें बदल जाय। नरम लोहे या पिग्आयरनमें अन्य पदार्थोंके साथ फोस्फोरसका भी अंश रहता है। इसे हटानेके लिए "परिवर्तक" यंत्रके अन्दर चूनेकी तह चढ़ा देते हैं। हवा फूंकनेसे फोस्फोरसका ओषिद बन जाता है और तब यह चूनेके साथ मिल जाता है। इस प्रकार क्रिया समाप्त होने पर जब "परिवर्तक" की तह निकाली जाती है तो उसमें चूनेका फोस्फेत रहता है। अतएव वह खादके काम आजाता है। प्रति वर्ष प्रायः ४२ करोड़ मन मैल यूरोपमें निकलता है और बिक जाता है। मैलको बहुत बारीक पीसकर खेतमें डाल देते हैं।

#### सोडा-व्यवसायके गौण पदार्थ

जितने उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, उन सबसे अधिक रोचक और महत्व पूर्ण सोडा व्यवसायका है। निर्माणकर्ताओंको एक बार नहीं बल्कि दो बार एक अत्यन्त घृणित गौण पदार्थने दिवालिया होते होते बचाया। एक गौण पदार्थका महत्व तो मुख्य पदार्थसे भी बढ़ गया है।

सोडा प्रकृतिमें भी भूमि पर जमा हुआ मिलता है। इसीको जमा करके रेहके नामसे बेचते हैं,

परन्तु रेहमें अन्य बहुत से पदार्थ मिले रहते हैं और वह इतनी मिलती भी नहीं कि सब काम चल जायं। फ्रांसीसी राजविप्लवके समयमें बाहरसे सोडाका आना बिलकुल बन्द हो गया था। नेपोलियन ने एक बड़ा भारी पारितोषक उस व्यक्तिको देनेकी घोषणा की जो नमकसे सोडा बनानेकी विधि निकाले। लेब्लेंक नामी व्यक्तिने यह तरकीब निकाली, परन्तु विचारेको पारितोषक न मिला और उसने हताश हो आत्महत्या करली। उसकी विधि संक्षेपसे यहां दी जाती है।

( १ ) नमकको गंधकाम्लके साथ गरम करते हैं, :—

२ सो ह + उ$_{२}$ ग ओ$_{४}$ = सो$_{२}$ ग ओ$_{४}$ + २ उ ह

( २ ) पहली क्रियामें जो पदार्थ बना वह कोयलेके चूर्ण और चूनेके पत्थरके साथ गरम किया जाता है। ऐसा करनेसे एक पदार्थ बन जाता है जिसे "ब्लेक एश" या "काली राख" कहते हैं। यह सोडा और केलसियम गंधिदका मिश्रण होता है।

सो$_{२}$ ग ओ$_{४}$ + २ क = सो$_{२}$ ग + २ क ओ$_{२}$

सो$_{२}$ ग + के का ओ$_{३}$ = सो$_{२}$ क ओ$_{३}$ + के ग

( ३ ) अन्तमें इस "काली राख" को पानीमें डाल कर सोडाको घुला कर निकाल लेते हैं; शेष अनघुल पदार्थ जो बचता रहता है वह "सोडा-फोग" कहलाता है।

अब स्पष्ट होगया होगा कि सोडा बनानेमें दो पदार्थ और बन जाते हैं:—एक तो नमकका तेजाब, दूसरे सोडाफोग ( Alkali waste )। यही सोडा-व्यवसायकी गौण उपज हैं। इन दोनोंका ही इतिहास अत्यन्त मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है।

जब सोडा व्यवसाय आरम्भ ही हुआ था, लवणाम्लका मूल्य कुछ नहीं समझा जाता था, क्योंकि वह काममें न आता था। अतएव उसके अबखरोंको चिमनियोंमेंसे निकल कर हवामें मिल जाने देते थे। इसका बड़ा भयंकर परिणाम हुआ। आस पासकी वनस्पति और कृषिका सत्यानाश होने लगा। वायुमें श्वास लेना मुश्किल हो गया। लोहेके ताले, कुण्डियाँ, सकलें, छप्पर, नालियां और औज़ार कागज़के कार्डबोर्डकी तरह थोड़े ही कालमें गलने लग गये। अतएव चारों तरफ त्राहि त्राहि मच गयी। और 'सोडा व्यवसाय' के लोग जानी दुश्मन हो गये।

इस उत्पातका कारण था लवणाम्लके भारी अबखरोंका पृथ्वीपर उतर आना और पानी या नमी पाकर घुल जाना और चीज़ोंको गला देना। वायुकी दुर्गन्धका कारण भी यही अबखरे थे। पहले निर्माण कर्ताओंने सोचा कि यदि ५०० फुट ऊंची चिमनियां बना दें तो अबखरे हवामें ऊपर ही ऊपर उड़ जायंगे और किसीको हानि न पहुंचायंगे। परन्तु यह ख़याल ग़लत निकला। अबखरे पूर्ववत नीचे उतर कर पर्देकी तरह नगरों और जंगलोंपर पड़ने लगे और वनस्पति गायब होने लगी। लोगोंको इससे इतनी फ़िक्र हुई कि एक तरह का तैरनेवाली भट्टी बना कर पेटेंट कराई गयी, जिसमें अच्छे मौसममें उसे समुद्रमें ले जायं और वहीं सोडा बनायें।

कुछ समय पश्चात् लोगोंको यह सूझी कि इन अबखरोंको पानीमें क्यों न घुला लें। यदि अबखरे किसी चिमनी अथवा टावरमें होकर निकाले जायं जिसमें कोक भरा हो और कोकपर से पानी बराबर बहता रहता है तो सब अबखरे घुल जायंगे। परन्तु इस प्रकार सब अबखरे घुलते नहीं थे, अतएव जब सोडाके कारखाने बढ़ गये तो फिर पहलेकी सी दशा हो गयी। १८६०में प्रत्येक सप्ताहमें प्रायः २८ हज़ार मन लवणाम्ल इंगलेण्डके कारखानोंमेंसे निकलता था। इससे अनुमान हो सकता है कि कितनी हानि होती होगी। इसके अतिरिक्त जो लोग अबखरोंको घुला भी लेते थे उनके पास अम्लका घोल इतना बच रहता था कि वह उसका किसी प्रकार प्रयोग नहीं कर सकते थे। अतएव वह किसी पासकी

नदीमें बहा देते थे। यहां एक और कठिनाई हुई। सब मछलियां अम्लके प्रभावसे मरने लगीं। फिर जनतामें वही हलचल मच गयी।

अब कारखानेके मालिकोंके लिए बड़ी समस्याका सामना था। वह करते तो क्या करते; परन्तु सौभाग्यवश थोड़े ही दिनोंमें वैज्ञानिकोंके परिश्रमसे यह मालूम हो गया कि यह अवखरे लवणाम्लके हैं, जो वास्तवमें एक अत्यन्त उपयोगी और बहुमूल्य पदार्थ है। अतएव निर्माणकर्ता खुशी खुशी उसके रत्ती रत्ती भर अवखरोंपर जान देने लगे और अवखरोंका पूरा पूरा घुलानेका प्रयत्न करने लगे। जिस पदार्थसे पीछा छुड़ानेके लिए निर्माणकर्ता कुछ साल पहले बहुत कुछ दे डालते, वही उन्हें अब पारस दिखाई देने लगा। और वास्तवमें निकला भी पारस; क्योंकि उसने इस व्यवसायको सोलवे-अमोनिया-विधि और वैद्युतिक विधिसे सोडा बनानेके व्यवसायोंके सामने खड़े होनेमें समर्थ किया।

स्वभावतः यहांपर यह प्रश्न उठता है कि ऐसा परिवर्तन कैसे हो गया? लवणाम्लका इतना महत्व कैसे बढ़ गया? इसका मुख्य कारण था १८६१ में कागज़परके महसूलका उठ जाना। महसूल उठ जानेसे कागज़ बननेमें बड़ी तरक्की होने लगी। पहले रुई और चिथड़ोंसे कागज बनाया जाता था, परन्तु इनका पर्याप्त मात्रामें मिलना मुश्किल होगया। अतएव कागज़ बनानेके नये नये साधन ढूंढ़ निकाले गये। तिनका, लकड़ी, एस्पार्टो घास आदिसे कागज़ बनने लगा, पर इनके साथ बड़ा कठोरताका व्यवहार करना पड़ता था। उन्हें कास्टिक सोडाके साथ गलाना और ब्लीचसे बेरंग बनाना पड़ता था, पर ब्लीच पैदा होता था लवणाम्लसे। इस प्रकार सोडा व्यवसायके दोनों निर्मित्त पदार्थ—गौण तथा मुख्य—महत्वके पदार्थ हो गये। सोडासे कास्टिक सोडा बनता था और लवणाम्लसे क्लोरीन (हरिण) अथवा ब्लीच। अब तो लवणाम्लके अवखरे इतने पूर्णतया घुला लिये जाते हैं कि शायद १ घनफुट हवामें रत्तीके पांचवें भागके अनुमान पाये जाते हों।

शायद हमारे पाठक समझने लग गये होंगे कि लवणाम्लका यह प्रबंध करदेनेसे निर्माण कर्ताओंको लाभ और जनताके स्वास्थ्य और कृषि तथा उद्यानोंकी रक्षा होगयी होगी और सब सन्तुष्ट हो गये होंगे। परन्तु बात यह नहीं थी हम देख चुके हैं कि अन्तमें 'सोडा फोग' बचता है, जिसमें चूनेका केलसियम और गंधकाम्लका गंधक रहता है। इसमें गंधक ऐसा पदार्थ है जिसको निकाल कर बेचनेसे लाभ हो सकता है. परन्तु उस ज़मानेमें कोई विधि मालूम न थी और सोडा-फोगको फेंक देते थे। प्रति दिन प्रायः २८ हज़ार मन फोग निकलता था और फेंक दिया जाता था। इसपर जहां पानी पड़ा या नमी पहुंची कि मनोहर सुगंधवाली उज्जन गन्धिद गैस निकलने लगी। इस गैसकी महिमा पाठक विज्ञान ....में पढ़ चुके होंगे। अनुमान कीजिये कि जहां लाखों करोड़ों मन केलसियम गंधिद जमा हो और उसमेंसे यह गैस निकले तो कैसी बहार हो। यद्यपि फोगको कहीं कहीं ज़मीनमें गाड़ देते थे, तथापि गैस बिना निकले मानती न थी।

इधर तो निर्माणकर्ताओंको यह कठिनाई थी उधर सोलवे ने एक नयी विधि—अमोनिया विधि—निकाल डाली, जिससे लेब्लेंककी विधिको मुकाबला करना था। इस विधिसे सोडा बनानेमें न तो लम्बे चौड़े कारखानेकी ज़रूरत पड़ती थी, न जटिल यंत्रोंकी; और पदार्थ भी बहुत शुद्ध बनता था।

अतएव लेब्लेंक विधिको त्यागनेमें ही और अमोनिया-विधिको ग्रहण करनेमें ही पूंजीवाले कल्याण समझने लगे। परन्तु लवणाम्लके मूल्यने इन्हें सहारा दिया। फिर तो यह जी तोड़कर इस बातका भी प्रयत्न करने लगे कि फोगमेंसे गन्धक

कनालनेकी कोई तरकीब निकल आवे, तबतो पाएडुवालेको मारलेंगे। १८८८में एक ऐसा उपाय निकल आया और पांच वर्ष बाद ही इंगलैण्डमें ही ६८०००० मन गंधक निकाल कर बेचा गया।

इस प्रकार हम देख चुके हैं कि गौण पदार्थोंके सदुपयोगके कारण ही लेब्लेंक विधिसे आज कल भी सोडा बनाया जाता है, नहीं तो न जाने कब इसका अन्त हो गया होता। आज कल वैद्युतिक विधि और निकल आई है। देखें इसका प्रभाव लेब्लेंक विधि पर कैसा पड़ता है।

---

## संयुक्त प्रान्तमें जंगल लगाना

[ ले०—"एल० ए-जी०" ]

संयुक्त प्रान्तमें कृषि और जंगलात आर्थिक और व्यापारिक उन्नतिके प्रधान साधन हैं, परन्तु ऐसे बहुत कम लोग होंगे जो यह जानते होंगे कि कृषि पर जङ्गलातका कितना प्रभाव पड़ता है। प्रायः लोगोंका ऐसा विश्वास है कि जंगली जन्तु और जानवरोंके कारण जंगलोंसे दूर रहना ही उत्तम है। इस लेखमें लोगोंके उपरोक्त विवादोंको बदलने और जंगलातकी उपयोगिता दिखलानेका प्रयत्न किया जायगा।

### जंगलोंसे लाभ

भूमिके वह भाग जहां पर मनुष्योंका निवास नहीं होता प्रायः जंगलोंसे ढके रहते हैं। जब मनुष्य वहांपर बसना चाहते हैं तो कृषि, स्वास्थ्यरक्षा और अन्य आवश्यकताओंके कारण जंगलोंका काटना आरम्भ कर देते हैं। यह कार्यक्रम शताब्दियोंसे जारी है। देश ज्यों ज्यों उन्नति करते जाते हैं त्यों त्यों जंगल भी लुप्त होते जाते हैं। अब केवल उन्हीं स्थानोंपर जंगल पाये जाते हैं जहांकी भूमि कृषि योग्य नहीं है; पर अन्य स्थानोंके जंगलोंके नष्ट हो जानेसे यह भी नष्ट होते जा रहे हैं। जंगलोंका प्रभाव जलवायुपर बहुत पड़ता है ऐसा विश्वास किया जाता है कि वर्षाके बादल समुद्रकी ओरसे आते हैं और ज़मीनपर बरसते चले जाते हैं यहां तक कि वह एक ऐसे स्थानपर समाप्त हो जाते हैं जहांसे आगे वर्षा नहीं होती। जंगलके आस पासकी हवा और ज़मीन खुले मैदानकी अपेक्षा अधिक नम होती है और बराबर नमीके निकलते रहनेके कारण वहांकी वायुमें नमी छाई रहती है। जब बारिशवाली हवा ऐसे स्थानपर हो कर गुज़रती है तो उसमें नमी और मिल जाती है। इससे बारिश और आगे बढ़ती चली जाती है इस विचारके अनुसार जंगलोंकी भौगोलिक स्थिति बड़े महत्वकी है।

जंगल अपनी छाया, जड़ोंके जाल और नीचे पड़ी रहनेवाली पत्तियों द्वारा वर्षाके जलको धरातल पर शीघ्रताके साथ बहने नहीं देते। इससे मिट्टी बहने नहीं पाती और पानीको भी ज़मीनके अन्दर प्रवेश करनेका अवसर मिलता है; जिससे कि कुओं और नदियोंको लगातार पानी मिलता रहता है। इस लिए जंगलोंकी सत्ता विशेषतः पहाड़ोंपर पानीके वेगको और नदियोंकी बाढ़को रोकनेके लिए बड़ी लाभदायक होती है। इससे मैदानोंमें बहुत कम हानियां होती हैं।

### जंगलोंका आर्थिक महत्व

इस प्रान्तके क्षेत्रफलका केवल आठ प्रतिशत जंगलोंसे आच्छादित है, परन्तु व्यवसायिक और घरेलू आवश्यकताओंके लिए आज कलके विद्वानोंके मतानुसार यह काफी नहीं है। उन्नतिशील देशोंमें प्रायः यह क्षेत्रफल बीस प्रतिशत होता है। इस प्रान्तकी व्यवसायिक उन्नतिके मार्गमें जंगलोंका दूर होना और लकड़ीका महंगा मिलना बड़ी रुकावट डाल रहा है। गत महायुद्धने जंगलोंकी उपयोगिता और उनकी रक्षाकी आवश्यकता भली भांति दर्शा दी है। जर्मनीमें व्यवसायिक नगरोंके

पास तक जंगल चले गये हैं और उनके निकट ही होनेसे कच्चा सामान बड़ी सुगमतासे प्राप्त होजाता है। पहले जो चीजें अन्य देशोंसे आती थीं उनमें-से बहुत सी वहींके जंगलोंसे प्राप्त होने लग गई हैं और पिछले कई वर्षोंसे जंगलकी आमदनी दूनी हो गई है।

जंगलोंके कटजानेका परिणाम

इन प्रान्तोंको जंगलोंका भौतिक और आर्थिक महत्व बतलानेके बाद यह दिखलाना चाहते हैं कि जंगलोंके अनियमित कटनेके क्या क्या प्रभाव इन प्रान्तों और संसारके अन्य देशोंपर पड़े हैं।

किसी समय सहारा और अरबके रेगिस्तान संसारमें सबसे अधिक हरे भरे थे। इनके अतिरिक्त ईरान, ट्रिपली, पैलिस्टाइनकी भी यही दशा थी। परन्तु आज कल इन देशोंमें अपनी समस्त जन-संख्याके पालन करनेकी भी शक्ति नहीं है। हम इतिहासमें ईरानके जंगलों और वैबीलोनके चश्मोंका हाल पढ़ते हैं। वैबीलोनके पुराने बन्द इस बातको प्रकट करते हैं कि पानीके बहावसे मिट्टीके कटजाने और ज़मीनके सोतोंके नीचे उतर जानेके रोकनेके लिए प्रयत्न किया गया था; परन्तु उससे स्थायी लाभ नहीं हुआ। पहाड़ोंपरसे आनेवाले पानीकी बाढ़ हर साल बढ़ती गई, नदियोंकी तली नीचे कटती ही गई और अन्तमें सिंचाई असम्भव हो गई; क्योंकि नहरों या नदियोंमें, ऊपरके पानीको वशमें किये बिना, पानीका लगातार बहाव नहीं रहता। अब इस बातके ऊपर विचार करेंगे कि संयुक्त प्रान्तमें जंगलोंके कट जानेका कहाँ तक प्रभाव पड़ा है, इसके लिए इस प्रान्तके उस भागपर विचार करेंगे जहां हो कर जमुना नदी बहती है।

जमुनाकी घाटी

जमनोत्तरीके पांच मील उत्तर और हिमालयकी चोटी बन्दर पंचके आठ मील पश्चिममें देशान्तर ३१·२ पर जमुना नदीका उद्गम है। यह त्रिवेणी तक ८६० मील लम्बी है। इसकी १७ सहायक नदी हैं; जिनमें से ५ हिमालयसे, तीन शिवालिकसे, तीन विंध्याचलसे, एक सतपुरासे और ५ दुआब (गंगा और जमुनाके बीचकी भूमि) के मैदानसे निकलती हैं। यदि पाठक नकशे द्वारा जंगलोंकी स्थितिको देखें तो उन्हें पता चलेगा कि उनके पानीको नियमित रूपसे बहानेके लिए जंगलोंकी कितनी कमी है। कहीं कहींपर तो उसका चिन्ह मात्र भी नहीं है। इस कमीके अतिरिक्त बहुत से जंगल पशुओंके चरनेके लिए खुले हुए हैं। इससे छोटे छोटे पौधे और ज़मीन परकी घास अपनी छोटी दशामें ही समाप्त हो जाती है, या मिट्टीकी कमीसे मर जाती है। फ़ल यह होता है कि अन्तमें जंगल नष्ट हो जाते हैं। जिस किसीने देहरादून और सहारनपुरके ज़िले देखे होंगे वह यह जाने बिना न रहा होगा कि हिमालय और शिवालिकसे आनेवाली बाढ़ने कितनी हानि पहुंचाई है। सहारनपुरकी तराईके बहुत से गांवोंमें तो गत ५० वर्षसे बराबर जोतने योग्य ज़मीन घट रही है। पहाड़ी नदियां बराबर अपनी जगह बदल रही हैं और पुराने स्थानोंपर पत्थरोंके टुकड़े छोड़ जाती हैं। यदि इन जगहोंपर मवेशियोंका चरना बन्द कर दिया जाय तो शीसम और खैरके वृक्षोंका जंगल शीघ्र पैदा हो जाय, जिससे बाढ़की तेज़ीके रोकनेका प्राकृतिक प्रबन्ध भी हो जायगा। अभाग्यवश इन जंगलोंका एक बड़ा भाग पशुओंके चरनेके लिए खुला रहता है, जिससे प्रतिवर्ष छोटे छोटे पौधे नष्ट होते रहते हैं और नदीका पाट बढ़ता जाता है। इसके साथ ही साथ बाढ़की तेज़ी भी बढ़ती जाती है। आस पासकी पहाड़ियोंपरकी वनस्पति भी मिट्टीके बह जानेके कारण हीन दशाको प्राप्त होती जाती है। इन बाढ़ोंसे सिंचाईके लिए जो बन्द बनाये जाते हैं वह भी टूट जाते हैं। ऐसा होनेके कारण इंजीनियर लोग बड़े चिन्तित रहते हैं। ऐसी दशा प्रायः जमुनाकी प्रत्येक पहाड़ी सहायक नदीकी है।

गत ५०० वर्षमें इटावेके निकट बाढ़ और कटाव के कारण यमुना नदीकी तली लगभग ६० फुट नीची हो गई है। इसके साथ ही साथ कुओंके स्रोत भी नीचे हो गये हैं। जाड़ेके दिनोंमें इस नदी-का धरातल आस पासकी भूमिका अपेक्षा १२० से २०० फुट तक नीचा हो जाता है। ऐसा होनेसे यह प्रान्त निचुड़ता जाता है और कुओंमें कभी कभी २०० फुट तक नीचा पानी पाया जाता है। आगरा, इटावा और जालौनके ज़िलेमें यमुनाके किनारे इतने निचुड़ गये हैं कि सिवाय रेगिस्तानी वनस्पतिके और कुछ नहीं पाया जाता और वह भी कम होती जाती हैं। केवल इटावेके ज़िलेमें ही ऐसी सूखी ज़मीन २५० एकड़के हिसाबसे प्रति वर्ष बढ़ती जाती है। किनारोंपर वनस्पतिके न होनेसे और ऊँचे धरातलसे पानीके बहकर आने-से मिट्टी बराबर कटती चली जाती है। ऐसा होने-से खड्ड बनते जाते हैं। यह खड्ड प्रायः कृषि-योग्य भूमिके पाससे ही आरम्भ हो जाते हैं और वहांपर उनकी गहराई कभी कभी अस्सी अस्सी फुट तक पाई जाती है। इसके अनन्तर अन्य खादरों-से मिलते हुये नदीके साथ मिल जाते हैं। इटावे-के ज़िलेमें खादरोंका क्षेत्रफल लगभग १,२०,००० एकड़ है। ज़मींदारोंको इस भूमिसे कुछ भी लाभ नहीं है, क्योंकि इसमें चारे तकके लिए घास बहुत कम होती है। साधारण वर्षाऋतुमें भी इनमें काश्त नहीं होती। नदीके अतिरिक्त और कहीं पीने तक-को पानी भी नहीं मिलता, जिसके कारण सूखेके सालोंमें लोग गांव छोड़ कर चले जाते हैं। देखने-से यहांकी भूमि उपजाऊ ज्ञात होती है; परन्तु ऊंची नीची और सूखी होनेके कारण कृषिके योग्य नहीं होती। वर्षाका जल ७ इंच तक प्रवेश कर पाता है। इसके पश्चात् मिट्टी सोते तक बिलकुल सूखी निकलती है। इस समय जो वृक्ष वहांपर दिखाई देते हैं वह बहुत पुराने हैं और उनकी जड़ें नमीके नीचे उतरनेके साथ ही साथ बढ़ती चली जाती हैं। नये पौदे वर्षा ऋतुके समाप्त होनेके कुछ दिनों बाद ही मर जाते हैं।

भूमिका सूखते जाना बड़ा हानिकारक है। लाखों रुपया व्यय करके नहरों द्वारा इसे अस्थायी रूपमें दूर भी कर सकते हैं; परन्तु यदि मिट्टी इसी प्रकारसे कटती रही तो नहरोंका ठहरना भी कठिन हो जायगा। इटावेके ज़िलेमें किसी ज़माने-में सालका जंगल पाया जाता था। यह बात वहाँ-के कई गांवोंके नामोंसे प्रगट होती है, जैसे साखी सकटौली, सखुआ, साखूपुर। इतिहासमें भी बाद-शाह बाबरके इन जंगलोंमें शिकार खेलनेका उल्लेख है। सालको नम जल वायुकी आवश्यकता है। समयका ऐसा फेर हो गया है कि हिमालयकी तराईसे लेकर सतपुड़ा पहाड़ तक अब साखूके वृक्ष ही नहीं दिखाई पड़ते। यमुनाके तलीके नीचे हो जानेका प्रमाण ऊख पेरनेके पत्थरके कोल्हूओंसे भी मिलता है। किसी समय वहांपर ऊख होती थी; परन्तु अब पानीके नीचे हो जानेसे सिंचाई ही नहीं हो सकती, और ऊखको अधिक पानीकी आवश्यकता होती है।

### खादरका सुधार

इन बेकार ज़मीनोंसे चारा और ईंधन (जलाने-की लकड़ी) उत्पन्न करनेका सरकारने कई बार विचार किया है। इस बारेमें सबसे पुरानी रिपोर्ट जंगलातके इंस्पैक्टर जनरल डाक्टर ब्रैंडिसकी है। इसमें जंगल लगानेके लिए निम्न लिखित बातें बतलाई गई थीं :—

(१) आगसे रक्षा करना।
(२) पशुचरानेकी रोक टोक करना।
(३) लकड़ी न काटने देना।
(४) खाली स्थानोंपर नये वृक्ष लगाना।

इसके पश्चात् बेकार ज़मीनका क्षेत्रफल जानने-का प्रयत्न किया गया था, परन्तु काम अधिक व्यय साध्य होने के कारण स्थगितकर दिया गया। १८८२ में इटावेके कलक्टर मि० फिशरने उन ज़मीं-

दारोंको जिनकी कि ज़मींदारीमें खादर ज़मीनें थीं एकत्रित किया। वह ईंधन और चारेका जंगल लगाने और ज़मीनको कटनेसे बचानेके लिए अपनी ज़मीन देनेको तैयार हो गये। इसके साथ ही साथ यह भी निश्चय हुआ कि इस कार्यमें जो व्यय होगा वह भी उन्हें ही देना पड़ेगा और जो लाभ होगा वह भी व्यय और क्षेत्रफलके अनुसार बांट दिया जावेगा। प्रबन्ध कलक्टरने अपने हाथमें रखा और उसी सालसे कार्य आरम्भ हो गया। चरना बन्द कर दिया गया। ज़मीन देशी हलसे जोती गई और बबूल, शीशम और नीमके बीज बो दिये गये। बारिशके पानीको रोकने और ज़मीनके सोतोंको ऊपर लानेके लिए उपयुक्त स्थानोंपर बन्द डाल दिये गये। कागज़ातके देखनेसे यह पता चलता है कि घासके बेचने, चराईके दाम वसूल करने और हलकी लकड़ियोंके काटनेसे ही लागतसे अधिक धन प्राप्त हो गया था। यह काम बहुत अच्छी तरहसे जारी रहा। बबूलकी पैदावार इतनी घनी हुई कि उसकी छाल का ठेका १—२ रुपयो एकड़के हिसाबसे चमड़ेकी रंगाईके लिए एक कारखानेके मालिकने ५० वर्ष के लिए ले लिया।

इसके अतिरिक्त १९०१ में काल्पी शहरके निकट कानपुरके चमड़ेकी रंगाईके कारखानोंको बबूलकी छाल जुटानेके लिए कुछ खादर लिये गये।

### इटावेके प्रयोग

सन् १९१२ में प्रान्तिक सरकारने खादरकी ज़मीनोंको चारे और ईंधनके लिए जंगल लगा कर सुधारनेका विचार किया। इसके लिए बेकार ज़मीनोंकी पैमाइश की गई और यह निश्चय हुआ कि चम्बल और जमुनाके किनारे जो जमीन इटावेके ज़िलेमें है उसको पहिले ठीक करना चाहिये। इस बार सरकारने अपनी ही लागत लगानेका विचार किया और जमींदारोंके साथ यह समझौता हो गया कि मालगुज़ारीके साथ इस कार्यकी लागत चुका देनेपर ज़मीन उनको वापिस कर दी जायगी। इस प्रकार लगभग २२,००० एकड़ ज़मीन इस कार्यके लिए ली गई और अधिक ज़मीन लेनेका वादा कर लिया गया। प्रथम दो वर्षके प्रयोगोंने यह प्रकट कर दिया कि चारे और ईंधनके लिए जंगल लगाया जा सकता है। इमारतके कामके लिए लकड़ी पैदा हो जानेकी भी आशा है। व्यापारिक दृष्टिसे भी यहांपर लगा हुआ जंगल बड़ा लाभ दायक होगा। क्योंकि लकड़ीकी माँग, चमड़ेकी रंगाईके लिए छाल और ईंधनकी आवश्यकता बढ़ती ही जाती है। इनसे स्थानिक नये व्यवसायोंकी वृद्धिकी भी पूर्ण आशा है।

खादरकी ज़मीन बही हुई मिट्टीकी बनी होती है। कणोंके अनुसार यह भिन्न भिन्न स्थानोंपर भिन्न भिन्न प्रकारकी है। इस ज़मीनकी जुताईकी सदा आवश्यकता होती है, क्योंकि कणोंके बारीक होनेके कारण वायु अन्दर प्रवेश नहीं कर पाती और सूखनेपर चट्टानके समान कड़ी हो जाती है। ऐसी ज़मीनोंमें वानस्पतिक उत्पत्तिके लिए प्रयत्न करना प्रथम लक्ष्य होना चाहिये। ऐसा तभी सम्भव है जब कि वायु और जल अन्दर प्रवेश कर सकें। इसके लिए ज़मीनको तोड़ना चाहिये। इससे वायु भी अन्दर जाने लगेगी और नमी भी प्रवेश कर सकेगी। ज़मीनको दुबारा कड़ा न होने देना चाहिये। ऊँची नीची ज़मीन होनेके कारण सिंचाई करना असम्भव होगा। कई वर्ष तक जुताई जारी रखना ठीक न होगा, क्योंकि आयकी अपेक्षा व्यय अधिक होगा। २ वर्षकी जुताईमें मूल्यवान वृक्ष लगाये जा सकते हैं। एक बार जंगल लग जानेपर नीचेकी भूमि वृक्षोंकी जड़ों द्वारा टूट जायगी और नमी और वायु सरलतासे प्रवेश कर सकेगी। छांहसे ज़मीन कड़ी न पड़ने पायेगी। धरातलपर पड़ी हुई पत्तियोंके कारण वर्षाका जल शीघ्रतासे न बहने पावेगा। बहा हुआ पानी बन्दोंसे या ऊँची ज़मीनोंपर

बनी हुई खाइयोंमें रुक जायगा। जंगलके लग जाने तक पशुओंको चरनेके लिए न आने देना चाहिये, क्योंकि उनके आनेसे वृक्षोंके टूट जानेके अतिरिक्त उनके चलनेसे ज़मीन कड़ी पड़ जाती है और जुताईका प्रभाव जाता रहता है। जुताईके लिए सबूल हल बहुत लाभ दायक हैं; परन्तु बहुत सा काम हाथसे भी करना पड़ता है। लाहौरके निकट चंगामंगा नामी लगाया हुआ जंगल संसार भरके लगाये हुये जंगलोंमें सबसे अच्छा है और सिंचाईपर अवलम्बित है। इटावेका जंगल जुताईपर ही निर्भर है। इस समय यह कहना कठिन है कि किसमें अधिक लाभ होगा; परन्तु इटावेके जंगलके वृक्ष अधिक बलशाली और कीटादि व्याधियोंसे बचे हुये हैं।

ज़मीनके जोतने और नमीके रहनेसे बेकार घास नष्ट होती जा रही हैं और उनकी जगह चारेके योग्य घास उग आई हैं। घासके बढ़ जानेके कारण मिट्टीका कटना बिलकुल बन्द हो गया है। नई तोड़ी हुई ज़मीनपर कई प्रकारके जंगली वृक्षोंके बीज बोये गये हैं और उनके पैदा हो जानेसे यह प्रकट हो गया है कि सागौन, शीशम, कम्हार (Gmelina arborea) और बबूलकी जातिके मूल्यवान वृक्ष लगाये जा सकते हैं। पिछले दो वर्षोंमें बोये हुए वृक्ष इतने घने हो गये हैं कि उनमें होकर चलना कठिन है। बहुत से वृक्ष जो कि १९१५ में बोये गये थे २० फुटसे भी अधिक बढ़ गये हैं और ईंधनके योग्य हो गये हैं।

अब तक जो काम हो चुके हैं उनसे यह प्रकट होता है कि नमी अधिक प्रवेश करने लग गई है और मिट्टीका बहना पूर्णतः बन्द हो गया है। खादरके सिरेपर जंगललगाना आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि इससे ज़मीनका कटना रुक जाता है। खादरोंके वह भाग जिनकी मिट्टी कटती नहीं समय समय पर जोत देनेसे चरागाहका काम दे सकते हैं। गांवोंकी चरागाहों की ज़मीनोंको बारी बारीसे सुधारनेसे जंगल मवेशियोंके चरनेसे बचाये जा सकते हैं, यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है। मार्च १९१७ तक १३२५ एकड़ खादरमें जंगल लगाया जा चुका है। इसमें ७८,३६८ रु० व्यय हुआ है। प्रति एकड़ लगभग ६० रुपये व्यय हुये हैं। व्यय और भी घटाया जा सकता है और खादर लाभ सहित ईंधन और चारेके जंगल लगानेके काममें लाये जा सकते हैं। आरम्भमें कई वर्ष तक इन जंगलोंकी ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है, क्योंकि उस समयमें उसके शत्रु अधिक होते हैं।

खादरोंके सुधारनेका काम अकालके दिनोंके लिए बड़ा उपयुक्त है, क्योंकि यह किसी समय बन्द किया जा सकता है और इसके बदलेमें लगा हुआ जंगल भविष्यमें कुल व्ययको पूरा कर देगा।

लेखककी रायमें खादर सुधारना उसी प्रकार है जिस प्रकार कि रोगके मुख्य कारणको दूर किये बिना उससे होनेवाला कष्ट दूर कर देना। प्रधान कारण नदियोंके उद्गमस्थानपर जंगलोंका नष्ट होना है, जिसे रोकना चाहिये। पिछले कई वर्षसे हिमालयके जंगलोंके बचाने और बढ़ानेका प्रयत्न किया जा रहा है, परन्तु अभी बहुत कुछ करना बाकी है। यदि इस ओर ध्यान न दिया जायगा तो बैबीलोनकी सी दशा यहां भी हो जानेकी सम्भावना है। शैम्पोलिनने उत्तरी अफ्रीकाके रेगिस्तानोंकी ओर संकेत करके लिखा है कि क्या प्रकृतिके विरुद्ध किये गये किसी अन्य पापका इतना भयंकर परिणाम होता है जितना कि भूमिके वन्य वस्त्रोंके हरण करनेका होता है।

---

## पौधोंको अमोनिया दीजिये

जब गमलोंमें पानी देने लगें तो उसमें दो चार बूंद अमोनियाकी भी डाल लीजिये। ऐसा करनेसे पौधोंकी खूब बाढ़ होगी और उनमें फूल भी जल्दी आयेंगे।

# बालकका हाथ देखकर उसके उपयुक्त कर्मपथ ढूंढना

सामुद्रिक शास्त्र अत्यन्त प्राचीन है। वैमाता लिलारमें कुछ अंक और हाथमें कुछ रेखाओं द्वारा मनुष्यका भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ लिख देती है। भालके अंक तो कोई विरले ही पढ़ पाते हैं, हां हाथकी रेखाओंके समझनेका दावा बहुतोंको होता है। हमें आज पुराने सामुद्रिकसे सरोकार नहीं है, हम केवल श्रीमती पर्ल जे. पार्करके अध्ययनका कुछ हाल लिखना चाहते हैं। इन्होंने रेखाओंपर ध्यान नहीं दिया है, किन्तु हाथकी आकृति, अंगुलियोंकी रचना और अंगूठोंकी बनावटपर विचार करके मनुष्योंके चरित्र, स्वभाव, योग्यता और रुचिका ठीक ठीक पता लगा लेना सम्भव बतलाया है।

श्रीमतीजीने पन्द्रह वर्ष पर्यन्त जीवनके सभी क्षेत्रोंके मनुष्योंके हाथोंके छापोंका अध्ययन किया है। उनका कहना है कि बच्चेकी हथेलीमें उसके चरित्रका रहस्य भरा होता है, जिसको उचित रीतिसे उद्घाटित करके उसके कुसंस्कारोंका बहिष्कार किया जा सकता है, उसकी विविध कुशलताओंका विकाश किया जा सकता है, उसके उपयुक्त सुख-प्रद कार्य-पथ निर्धारित किया जा सकता है; और सो भी बिना उसके आनन्दमें किसी प्रकारकी बाधा पहुंचाये या उसके माता पिताकी मानसिक शान्तिको भंग किये।

नीचे दिये हुए नमूने श्रीमतीजीके सहस्रों चित्रोंमेंसे छांट लिये गये हैं। बच्चोंका वास्तविक चरित्र जाननेमें भूल करनेका परिणाम प्रायः यह होता है कि उनका जीवन नष्ट हो जाता है और राक्षसीवृत्ति—पाप कर्म करनेकी प्रवृत्ति—हो जाती है। ऐसे बालक ही प्रायः पापकर्मी—जरायम पेशा—निकलते हैं। प्रत्येक स्कूल, पुलिस कोर्ट, सुधार संस्थामें यदि एक हाथका पारखी रखा जाय तो मुहताजखानों और पश्चात्ताप-गृहोंके रहनेवालोंकी संख्या बहुत कम हो जाय। प्रत्येक पुरुषका जीवन-ग्रन्थ उसका हाथ है और उसका एक एक अक्षर आप्त-वाक्यके समान मान्य है। थोड़ा सा परिश्रम करके प्रत्येक व्यक्ति हाथ देखना सीख सकता है।

### आरम्भ कैसे करना चाहिये ?

किसी बालकके लक्षण और उसकी प्रकृति जाननेके लिए उसके हाथका मिलान इस लेखमें दिये हुए चित्रोंसे कीजिये। और यह निश्चय कर लीजिये कि वह किस प्रकारका है अथवा दो या अधिक प्रकार भेदोंकी मिलावटका है। अन्तिम दशामें जो प्रकार भेद बहुत स्पष्ट है उसीके अनुकूल मुख्य लक्षण मिलेंगे। तदनन्तर अंगुलियों और अंगूठोंका भी निरीक्षण और परीक्षण करना चाहिये। अब भिन्न भिन्न प्रकारके हाथोंका वर्णन करेंगे।

### वर्गाकार हाथ

इसी हाथको कार्यकुशल अथवा उपयोगी हाथ भी कहते हैं। इसकी पहचान वर्गाकार हथेली और वर्गाकार अंगुलियोंके छोर हैं। प्रायः चारों अंगुली एक समान लम्बी होती हैं।

वर्गाकार हाथ पार्थिव पदार्थोंमें अभिरुचिका द्योतक होता है। ऐसे हाथवाले प्रायः अच्छे
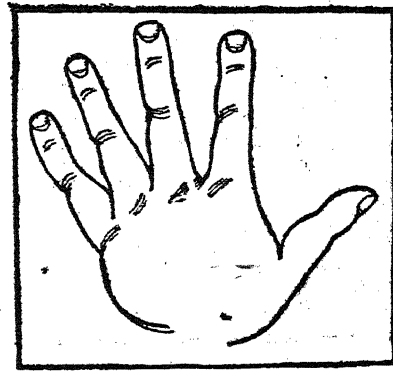
चित्र २१—वर्गाकार हाथ

काम काजी आदमी होते हैं। वह कामको मुख्य और मज़े उड़ानेको गौण समझते हैं। वह निय-

प्रित रीति और व्यवस्थासे काम करते हैं। वह नियम और क्रमके बड़े पक्षपाती होते हैं। एक बार जहां उन्होंने कोई काम सीख लिया कि फिर उसे भूलना तो जानते ही नहीं। वह परिवर्तनशील नहीं होते। जिस कामके करनेकी वह एक बार ठान लेते हैं फिर उसका पीछा पूर्ण सफलता प्राप्त करने तक नहीं छोड़ते। वह अक्सर कोई धंधा या व्यवसाय चुन लेते हैं और उसीमें जीवन व्यतीत कर देते हैं और जहां जन्मते हैं वहीं मर भी जाते हैं।

### दीर्घाकार हाथ

इस हाथके लक्षण वर्गाकारके गुणोंसे बहुत से अंशोंमें उलटे होते हैं। चंचल, कर्मशील, परिवर्तन प्रेमी, देशाटन और हलचल प्रिय—यह दीर्घाकार हाथवालेके कुछ गुण हैं। वह लीक लीक चलना नहीं चाहता, सदा नई राह निकालना उसको रुचिकर होता है। दीर्घाकार हाथ, यंत्र-निर्माण-कर्ता, समुद्र-यात्रा-प्रेमी और देशान्वेषण-कारीका लक्षण है, जिसके लिए मार्गनिदर्शन करना उतना ही सहज है जितना बतखके लिए तैरना।
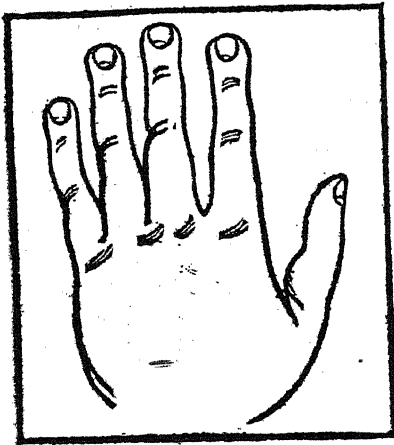
चित्र २२—दीर्घाकार हाथ

जिन बालकोंके दीर्घाकार हाथ हों उनमें रचनाशक्ति बहुत होती है। उन्हें यदि सामग्री दे कर कह दिया जाय कि जो चाहो बनाओ तो वह बड़े प्रसन्न होंगे; नहां तो वह ऐसी शरारत करेंगे कि सब स्कूलको तंग कर मारेंगे। उनकी शक्तिको रोकना सम्भव नहीं है। हां उसको अच्छी प्रणालीमें डालना सम्भव है। ऐसे हाथ अक्सर जेलखानोंमें मिलते हैं, जिसका एक मात्र कारण माता पिताकी मूर्खता है।

इस प्रकारके हाथकी पहचान यह है कि एक तरफसे यह बाहरको निकला रहता है। कभी कभी तो कलाई और कनिष्ठकाके बीचमें यह बिलकुल अर्धचन्द्राकार होता है। उंगलियोंके सिरे बहुत चौड़े होते हैं; मानों किसी बेलनसे दबा दिये गये हों।

### दार्शनिक हाथ

इसका प्रमुख लक्षण लम्बाई है। उसकी हथेली लम्बी और सकड़ी होती है; उंगलियां अस्थिपूर्ण होती हैं। इसको प्रज्ञावान हाथ कहते हैं। जिसका ऐसा हाथ होगा वह किसी ऐसे काममें लगा होगा जिसमें बुद्धि या प्रज्ञाका बहुत काम पड़ता होगा।
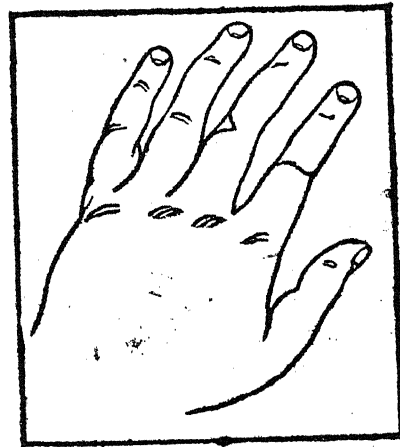
चित्र २३—दार्शनिक हाथ

ऐसे आदमी अ-कार्यकुशल, व्यवसायकी योग्यता न रखनेवाले और आदर्श प्रेमी होते हैं।

यह स्वभावसे ही परोपकारी होते हैं। जो कुछ काम वह करते हैं दूसरोंके भलेके लिए करते हैं। उनको रुपयेका तो कभी खयाल भी नहीं आता और अपनी सफलताका हिसाब रुपये आने पाइयोंमें वह कभी नहीं लगाते। ऐसे लोगोंको प्रायः देखा गया है किसी बड़े काममें आजन्म लगे रहते हैं और मरते हैं तो मुहताजखानेमें। यदि माता पिताको अथवा शिक्षकोंको आरम्भमें ही यह बात मालूम हो जाय तो उनपर ऐसे सुधारक प्रभाव डाल सकते हैं कि प्रौढ़ होनेपर बालककी मानसिक शक्तियां तुली हुई—विवेचना पूर्ण—हों।

सूच्याकार अथवा कला-प्रिय हाथ

अंगुलियोंके सिरे गोल और हथेलीका ऊपरी भाग सूच्याकार होता है। यह कला, संगीत, आदि प्रत्येक सौन्दर्य मय कार्यमें रुचिका द्योतक होता है। ऐसे हाथवाले उसी कार्यक्षेत्रमें सफल होते हैं जहां वह अपना कला-कौशल दिखा सकते हैं।
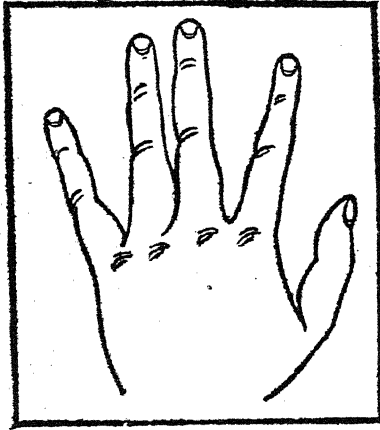
चित्र २४—सूच्याकार हाथ

इस प्रकारके हाथ दो तरहके होते हैं। एक तो कठोर और दृढ़। यह तो कार्य-कुशल पुरुषोंके होते हैं। दूसरे नरम और गुदगुदे; यह शोभा मात्रके लिए होते हैं, इनसे काम नहीं होता; बल्कि विलासप्रियता, व्ययशीलता, सुख-प्रियताकी ओर उनकी रुचि होती है। बहुतसे पाप-कर्मोंके हाथ इस प्रकारके होते हैं। स्वभावतः यह लोग पाप बुद्धि नहीं होते; किन्तु जन्मसे उनमें कुछ दुर्बलताएँ होती हैं, जिनका सुधार बचपनमें करके उनका जीवन उपयोगी बनाया जा सकता है।

मिश्रित हाथ

इसका वर्णन करना कठिन है। जिस प्रकार दो जीवन एकसे नहीं होते उसी प्रकार कोई दो हाथ एक जैसे नहीं होते। चित्रमें एक ऐसा साधारण हाथ दिया जाता है। हथेली कई प्रकारोंकी मिलावट है, प्रत्येक उंगली भी एक निराले ढङ्गकी ही है। यह हाथ परिवर्तन-शील और चञ्चल स्वभाववालेका है। ऐसे आदमी सब कामोंका थोड़ा थोड़ा ज्ञान रखते हैं, परन्तु निपुण किसीमें नहीं होते। वह विशेषज्ञ तो नहीं होते परन्तु असफल भी नहीं होते। उन्हें परिस्थिति बाधित नहीं करती; वह प्रत्येक काम एक खास ढङ्गसे ही सदा करते हैं, चाहे उस कामको उन्होंने पहले किया हो या न किया हो।
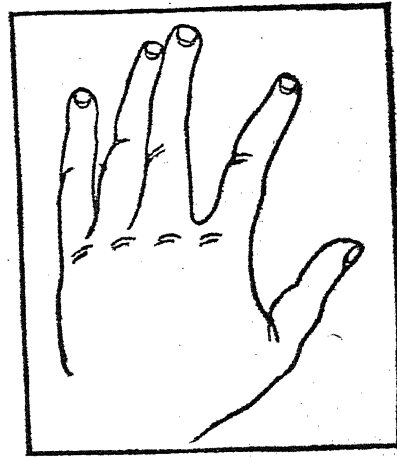
चित्र २५—मिश्रित हाथ

अंगूठे और अंगुली

लम्बा अंगूठा प्रज्ञाका सूचक है। यदि अंगूठा सीधा और सुदृढ खड़ा होता है तो बुद्धि और

व्यवसायी योग्यताका द्योतक होता है। परन्तु यदि वह लचलचा है और हाथसे समकोण बनाता है तो व्ययशीलताका चिन्ह होता है। यदि अंगूठा पहले पोरवेके बिलकुल भीतर आ जाता है तो तेज़ मिज़ाजीका लक्षण समझना चाहिये।

अंगूठेके पासवाली अंगुली अभिमान, शक्ति और उत्साहकी उंगली है। यह बीचकी अंगुलीके अन्तिम पोरवेके तीन चौथाई तक पहुंचती हो तो समझना चाहिये कि उपरोक्त सब गुण पर्याप्त परिमाणमें प्रस्तुत हैं। परन्तु यदि वह छोटी हो तो समझना चाहिये कि गुण दुर्बल हैं और उन्हें पुष्ट करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इस एक दुर्बलताके कारण अनेक जीवन नष्ट हो गये हैं।

बीचकी अंगुली धर्म और विज्ञान की है। यह लम्बी हो तो गहन, विचारशील प्रकृति की द्योतक होती है, जो सदा जीवनके गूढ रहस्योंके उद्‌घाटनमें लगी रहती है।

तीसरी अंगुली कला कौशल और कार्य कुशलताकी है। इसका समस्त हाथके सम्बन्धमें विचार करने से पता चलेगा कि यह किस प्रकार प्रयुक्त होगी। यह उंगली बहुत लम्बी हुई तो दाव लगानेवाली प्रकृति की द्योतक होती है। बहुत से पेशेवर जुआ खेलनेवालोंकी यह अंगुली बीचकी अंगुलीके बराबर ही लम्बी होती है।

छोटी अंगुली, कनिष्ठका, व्यवसायकी अंगुली है। यह पासकी अंगुलीके दो तिहाईके बराबर होनी चाहिये। यदि यह उतनी लम्बी न हो तो व्यवसायिक बुद्धिकी कमी बतलाती है। यदि यह बहुत लम्बी हो और उसके मूलके पास एक गुणन चिन्ह बना हो तो बेईमानी को सूचक होती है।

—गंगाप्रसाद, बी० एस-सी०

---

# लौंगका तेल

[ले०—श्री० ज्योतिस्वरूप गुप्त और श्री० विष्णुस्वरूप गुप्त]

व्यवसाय और वाणिज्यके विचारसे भारतवर्ष बहुत पिछड़ा हुआ है। यहां लौंगके तेलका खर्च (Consumption) बहुत ज्यादा है, परन्तु उसके बनानेका कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। यह तेल दवाइयोंमें, कुछ द्रव्योंके तैयार करनेमें, (artificial vanilin) कृत्रिम वेनिलिनकी तिजारतमें और जानवरोंकी खास खास बीमारियोंमें बहुत काम आता है। हमारे देशमें लौंग मसालेमें और पानमें बहुत खाई जाती हैं, पर बड़े खेदकी बात है कि न तो उसकी पैदायश काफ़ी तौरसे होती है और न रत्ती भर तेल निकाला जाता है। मेरा विश्वास है कि अगर भारतीय वैज्ञानिक थोड़ी सी भी कोशिश करें तो लौंगकी काश्त भी खूब बढ़ जावे और तेल भी इतना निकलने लगे कि सिर्फ हमारे ही कामके लिए काफ़ी न हो, बल्कि हम अन्य देशोंको भी भेज सकें और धन कमा सकें। अगर अभी लौंगकी पैदावारकी तरफ हम ध्यान न देना चाहें और विलायतों पर ही निर्भर रहना चाहें तो बाहरसे लौंगोंके तिनके मंगवाकर गरीब और भूखे मज़दूरोंसे तेल ही निकलवा कर अपने काममें ला सकते हैं और अन्य देशोंको भेज सकते हैं। युद्धसे पहले यह तेल ६ रु० सेर बिकता था पर युद्धके समयमें यह ३६ रु० सेर बिकने लगा और आज कल भी एक सेर तेल २४ रु० में मिलता है।

लौंग बड़ी गरम चीज़ है। इस लिए यह अफरीकामें पैदा होती है और ज़नज़ीबार और पेमा प्रान्तोंकी ही पैदावारसे सारे संसारको लौंग मिलती है। अन्दाजन ५२,००० एकड़ जमीनमें कोई ४७ लाख लौंगके दरख्त होंगे। पेमामें जो दरख्त, ६० ८० साल तकके पुराने हैं, पर ज़नज़ीबार

में १८७२ ईसवीमें बड़ी तेज़ आंधी चली और सब दरख़्त नष्ट हो गये, इसलिए वहांके वृक्ष ५० सालसे कम उम्रके हैं। अफरीकामें प्रायः ७०,००,००० सेर लौंग होती हैं, पर १९११—१२ में १,५०,००० सेर ही लौंग हुई और १९१८—१९ में १,५०,००० सेर।

एक एकड़में १०० दरख़्तके लगभग लगाये जा सकते हैं और ६० साल पुराने वृक्षमेंसे तक़रीबन ४ सेर लौंग पैदा होती हैं।

प्राचीन कालमें केवल लौंगोंसे ही तेल निकाला जाता था, पर बादमें जर्मनीके वैज्ञानिकोंको मालूम हुआ कि लौंगोंके वृक्षकी शाखों और तिनकों (जिनसे लौंग शाखाओंसे लगी होती हैं) के स्रवणसे भी वैसा ही तेल निकल सकता है। उन्होंने यह चतुराई की कि अफरीकामें जिन तिनकोंको कूड़ा करकट समझ कर फेंक देते थे, बल्कि जिनके फेंकनेमें व्यय और करना पड़ता था, उनको उठवा कर मँगवाने लगे और उनमेंसे तेल निकालने लग गये। तेल निकालनेमें तिनके फूल जाते हैं और लौंगकी डन्डी से लगने लगते हैं। अतएव यह लोग फिर यह चतुराई करने लगे कि उन्हें बम्बई भेजने लग गये। यहांके व्यापारी लौंगोंमें इन्हें मिला मिलाकर हम लोगोंके हाथ बेचने लग गये। जर्मनीवालोंको लौंगोंके तिनकोंके कुछ दाम तो देने पड़ते ही नहीं थे, सिर्फ थोड़ा सा बटोरनेमें व्यय करना पड़ता था, जो तिनकोंको बेचनेसे वसूल हो जाता था। अतएव तेल उन्हें मुफ़्तमें मिल जाता था। कानपुरमें गैंडरे और मुकरजीने लौंगोंके तिनकोंका तेल निकालनेका प्रयोग कुछ दिन हुए किया था। ज़नज़ीबारसे तिनके मंगाये तो कानपुरमें ६) मन पड़े। तिनकोंको रात भर भिगोया। फूले हुए तिनकोंका भाप द्वारा तेल निकाला। ६ घंटेमें तेल निकल आया। ४$\frac{1}{2}$ % तेल निकला।

तेल निकालनेके लिए बहुत मामूली चीज़ोंकी ज़रूरत है। तांबेपर लौंगके तेल और उसकी भापका बहुत असर होता है। इस लिए वह हिस्से जो तेलसे या उसके वाष्पसे स्पर्श करें ताम्बेके नहीं बनाने चाहियें और अगर ताम्बेके ही बरतन काममें लाये जावें तो उनपर कलई करा देनी चाहिये। लेखकका विचार है कि अगर धात का बरतन काममें लाया जाय तो उसपर कलई करा लेनी चाहिये। मामूली स्रवणके लिए एक ताम्बेकी देग एक गज लम्बी और दो फुट व्यासवाली काफी है। उसमें एक बहुनल-संयुत भपका जिसके भीतर कलई हो रही हो लगा देना चाहिये। भपके को दो ताम्बेके ढक्कनदार ग्राहकपात्रसे जोड़ देना चाहिये। पात्रोंमें साईफन नली लगी रहनी चाहिये। दबाव १०-१५ पौण्ड रखना चाहिये। तेल भारी होता है, अतएव ग्राहक पात्रोंके पैंदेपर जमा होना शुरू हो जायगा। पानी ऊपर रह जायगा और साइफन द्वारा दूसरे बरतनमें चला जायगा।

तेल जो निकलता है वह पीलेसे रंगका होता है और हवामें रखनेसे गहरा पीला हो जाता है। अगर कुछ गरम किया जाता है तो भूरा होने लगता है। यह गंध और गुणमें असली लौंगके तेलके बराबर होता है। इसके सूंघनेसे धांस सी उठती है। लगानेपर खालमें जलन पैदा कर देता है।

कानपुरमें जो तेल निकाला गया था, उसका उबालविन्दु लौंगके तेलके बराबर था। उसका विशिष्ट गुरुत्व १·०५ के करीब २३-३७° श पर था और उसमें यूजीनोलकी मात्रा ७२% थी।

अगर इन अंकोंको रसायन कोषमें दिये हुए लौंगके तेलके अंकोंसे मिलाया जाय तो मालूम होगा कि यह तेल किसी तरह असली लौंगके तेलसे कम नहीं है और इस लिए कोई वजह नहीं कि यह उसी कीमतपर न बिके। फरक सिर्फ उतना होगा कि लौंगमेंसे तेल २५ % निकलता है और तिनकोंमेंसे ४$\frac{1}{2}$ या ६ %

इन सब बातोंसे नतीजा यह निकलता है कि यह व्यवसाय बहुत लाभदायक होगा और इसके लिए मामूली सामान जैसा यहां अकसर अत्तारों के पास होता है बहुत काफ़ी है। न इसमें बहुत हुशियार रासायनिकोंकी ज़रूरत ही है। खर्च भी बहुत कम पड़ता है। अगर अफरीकासे भी ६) रुपये मन के हिसाबसे तिनके मंगावें तो कोई ६ या ७ रु० सेर अच्छा ताज़ा तेल पड़ सकता है। अगर हम तेलको अन्य देशोंको भेजें और १ शिलिंग को ८ आनेके ही बराबर समझें तो भी १०—१२ रुपये सेरका फायदा हो सकता है। आशा है कि कोई वैज्ञानिक इस कामको उठायेंगे और देशको लाभ पहुंचायेंगे।

---

## वल्दियतका सबूत

संसारमें बहुत सी बातें हैं जिनमें विश्वास केवल अनुमान अथवा जन-श्रुतिके आधारपर करना पड़ता है, परन्तु उनमेंसे कोई भी ऐसी साधारण बात नहीं है जैसी वल्दियत। बात बातमें पिताका नाम बतलाना समाजका नियम सा हो गया है। भारतमें तो खैर समाजका संगठन इस ढंगका है कि प्रायः पिताका पता निश्चय रूपसे ही चल जाता है और माताके मातृत्वमें तो शायद ही कभी सन्देहको स्थान मिल सकता हो, परन्तु यूरोपीय देशोंमें जहां पशुवृत्ति अभी बहुत प्रबल है, जहां मनुष्य अभी अर्द्धशिक्षित हैं—धर्म और नीति की दृष्टिसे, गो भौतिक दृष्टिसे उन्होंने बहुत उन्नति की है—मां बापका ठीक पता चला लेना कठिन हो जाता है। पर क्या पूरब और क्या पच्छिम अनादि कालसे अब तक अनेक झगड़े ऐसे पैदा होते रहे हैं, जिनमें यह सिद्ध करना पड़ता है कि माता पिता कौन थे।

कहते हैं कि पुराने ज़मानेमें माताको चमड़ेकी आंगी पहना देते थे। यदि वात्सल्य भावके वेगसे दूधकी धार उसे बेधकर बाहर निकल आती थी, तो समझते थे कि वही असली माता है। यदि किसी बालकको देख कर हृदयमें प्रबल प्रेम तरंगें उठने लगें तो सम्बन्ध माना जाता है। लव और कुशको देखकर रामचन्द्र जीके हृदयमें जो भाव-तरंग-माला उठती और लय होती थी, उसका वर्णन बाल्मीकिने बहुत अच्छी तरहसे किया है।

बादशाह सुलैमानके पास एक बार दो स्त्रियां एक बालक लेकर आईं और उनमेंसे प्रत्येकने यह दावा किया कि बालक मेरा है। सुलैमानने आज्ञा दी कि बालकको चीर कर दो टुकड़े कर दो और प्रत्येकको एक एक दे दो। एक स्त्री तो राज़ी हो गई, पर दूसरी रोने लगी। सुलैमानने तब बालक दूसरी स्त्रीको दिलवा दिया। यह कथा भी हमारे पूर्व कथनको पुष्ट करती है।

शताब्दियोंसे सुलैमानकी चतुरताकी सराहना होती चली आई है और उसके निर्णयको सभी न्यायसंगत मानते आये हैं। पर गूढ़ दृष्टिसे देखा जाय तो पता चलेगा कि दूसरी स्त्री बालकके लालन पालन करनेके अधिक योग्य थी, परन्तु सम्भव है कि यह वास्तविक माता न हो। वैज्ञानिकोंको यह सन्देह उत्पन्न होता है। सुलैमानका न्याय उचित था; पर सच्चा था या नहीं यह कहना कठिन है।

राजा दुष्यन्त अपनी स्त्री शकुन्तला और पुत्रको नहीं पहचान सका। सम्भव था कि शकुन्तलाको उसके सौन्दर्यपर मुग्ध हो ग्रहण भी कर लेता, परन्तु बालकको कैसे ग्रहण करता। यह कथा कालीदासने कितनी रोचक और प्रशंसनीय ढंगसे लिखी है। परन्तु नाटकका अन्तिम भाग वैज्ञानिक दृष्टिसे निरी मिथ्या प्राकृतिक कल्पना मात्र है। स्वेडिश नाटककार स्ट्रिंडबर्गने भी "पिता" नामक नाटकमें नायिका द्वारा नायकके हृदयमें यह सन्देह पैदा करा दिया है कि पुत्र उसके

द्वारा उत्पन्न नहीं हुआ। नाटकमें एक डाक्टर द्वारा यह कहलाया गया है कि विज्ञान इस विषयमें कुछ नहीं कहता। इसी भांति अस्पतालोंमें बच्चोंके बदल जाने की सम्भावनाको सच्चा मान अनेक नाटक और उपन्यासों की रचना हुई है।

यदि विचार किया जाय तो पता चलेगा कि लोगोंका अभी तक यह विश्वास रहा है कि यद्यपि पशुओं और मनुष्योंके रक्त कणोंमें अन्तर है, परन्तु मनुष्य मनुष्यके रक्त कणोंमें कोई भेद नहीं है। स्वस्थ और अस्वस्थ मनुष्योंके रुधिरोंमें कुछ अन्तर अवश्य होगा, परन्तु उनके गुण एकसे होंगे।

परन्तु वास्तविक बात कुछ और ही है। यह पता पहलेपहल गत महायुद्धमें चला। एक मनुष्यकी शिराओंका रुधिर दूसरेकी शिराओंमें डालना सम्भव और बिना जोखिमका काम समझा जाता था; परन्तु शर्त यह थी कि जिसका रुधिर निकाला जाय वह इस हानिको सहसके। रुधिर अन्तर्सिंचनसे ( transfusion ) कभी कभी मृत्यु हो जाती थी, किन्तु इसका कारण अन्यत्र ही ढूंढा जाता था। परन्तु युद्धमें पता चला कि कुछ रुधिर ऐसे होते हैं कि मिलते नहीं। उन्हें एक दूसरेका शत्रु समझना चाहिये। जब कभी उन्हें मिलानेकी कोशिश की जाती है तो रोगी मर जाता है। यह बात जान लेनेके बाद, रुधिर अन्तर्सिंचन करनेके पहले यह देखने लग गये कि उनके एकसे गुण हैं या नहीं। तबसे केवल इस कर्मके कारण कोई मृत्यु नहीं हुई।

ऊपर दी हुई घटनासे यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि सब आदमियोंके रुधिर एक जैसे नहीं होते। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि एकसे नहीं होते तो उनमें किस प्रकारका अन्तर होता है। इसका उत्तर डा० अविराम (Dr. Abram) ने यह दिया है कि रासायनिक दृष्टिसे तो खून एक ही प्रकारका होता है, परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्योंके रक्त-कणोंके कम्पन भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। उन्होंने एक यंत्र कम्पन-दर्शक (Oscillophore) भी बनाया है, जिससे कम्पनोंकी गति और परिमाण मालूम हो जाता है।

इस यंत्रके प्रयोगसे यदि एक बालक और मनुष्यके रुधिरके कम्पन एक समान मिलें तो समझ लेना चाहिये कि बालक उस मनुष्यकी सन्तान है। डा० अविरामका तो यह दावा है कि मनुष्यकी लिङ्गभेद, जाति और स्वास्थ्यकी दशाका पता इस यंत्रसे चल सकता है। मनोभाव, कामवासना और मरणसमय ( कई वर्ष पहलेसे ही ) का पता लगाना सम्भव है। डा० महोदयने अपने बहुत से प्रयोगोंका वर्णन किया है। एक आदमीने उनके पास अपने रुधिरका नमूना भेजा। उसकी परीक्षा करनेपर उन्होंने यह निर्णय किया कि माके पक्षसे तो वह डच, इटेलियन और स्वेदिश है और बापके पक्षसे आयरिश और इंगलिश। पूछनेपर बात ठीक निकली।

---

## मक्खीके डंकमेंसे कितना विष निकलता है ?

जब मक्खी डंक मारती है तो उसमेंसे प्रायः एक रत्तीके १२ हजारवें भागके बराबर द्रव निकलता है। इस द्रवमें प्रायः दो तिहाई पानी रहता है। शेष विष रहता है। यदि माशे दो माशे विष डंक मारनेपर त्वचामें प्रवेश करता तो सोचिये कि क्या मज़ा आता ?

---

## वायुयानमें संसार-भ्रमण

स्मिथ भ्रातृद्वय-सर रौस स्मिथ तथा सर कीथ स्मिथ-एक वायु यानमें बैठकर भूमण्डलकी परिक्रमा करनेका विचार कर रहे हैं।

---

# नक्षत्र संसार

## ( पाश्चात्य आलोचन )

### ( गताङ्क के आगे )

[ ले०—श्री० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार ]

६—कर्बन वर्ग

रचना दृष्टिसे यह एक और भिन्न प्रकारके तारे पाये गये हैं। यह तारे कई स्थानोंपर यूथरूपमें पाये गये हैं। प्रायः आकाशगंगामें इस वर्गके तारे पाये गये हैं। इनके रश्मिचित्रोंमें रंगोंकी पट्टिकाएं लाल रंगकी तरफसे स्पष्ट रेखासे नियमित हैं और जामनीकी ओरको बहती जाती हैं। इनमें तीन ही पट्टिकाएं होती हैं। यद्यपि यह कर्बनके कारण ही हैं, पर तो भी उसके साथ उज्जनके संसर्गका भी अनुमान किया गया है; क्योंकि इस वर्गकी सतरंगीमें उज्जनकी रेखाके चिन्ह सर्वथा दिखाई नहीं देते। कदाचित् सारी उज्जन कर्बनके साथ मिल कर कर्बोज्ज बनानेमें व्यय हो गयी है। इसमें सबसे अधिक प्रमाण भी यह है कि उपरोक्त तीनों पट्टियाँ मद्यसार तथा अन्य कर्बोज्जोंके जलनेपर भी दिखाई देती हैं।

कर्बन वर्गके तारोंमें सिनोजनके चिन्ह भी मिलते हैं। सोडियम और लोहा भी पाया जाता है। यह सुन कर अचम्भा होता है कि इस वर्गकी विशेषताएं धूमकेतुओंमें भी ज्योंकी त्यों पाई जाती हैं। इनके बहुत से गुण गैसमय तथा नीहारिकामय तारोंसे भी मिलते हैं। इस वर्गके तारोंका प्रकाश लालेकाला सा होता है, जिससे इनके बहुत ही घने वातावरणकी सूचना मिलती है।

इस वर्गके कुल १२८ तारे गिने गये हैं और ८ के सिवाय शेष सभी यन्त्रोंसे दीखते हैं।

इन सभी वर्गोंपर दृष्टि डालनेसे प्रतीत होता है कि सभी सूर्य वास्तवमें अपने जीवनकी भिन्न भिन्न दशाओंका उपभोग कर रहे हैं। कोई बालक है, कोई नवयुवक, कोई तरुण है, कोई गतयौवन, कोई वृद्ध है तो कोई आसन्नमरण और कोई सर्वथा मृत है। इसका विशेष रहस्य आगे खोलेंगे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि नीहारिका ही इन सबकी माता है। कार्तिकेय वर्गके तारोंपर निहारिकाके चिन्ह दीखते हैं; मानों उन्होंने अभी माताकी गोद नहीं छोड़ी है। अभी यह माताके आँचलमें ही खेलते हैं। वह ५, ६ वर्षके बालककी नाईं हैं। सौर जीवनमें अभी उन्होंने प्रवेश किया है। इसके पश्चात् लुब्धक वर्गीय नवयौवनकी दशामें हैं। इनका वातावरण बहुत घना नहीं; मानों अभी त्वचा कोमल और घनी नहीं है और सुकुमार है। इसीसे कान्तिमें भी मनोहर एवं उज्ज्वल हैं। इसके बाद हमारे सूर्यनारायण हैं। इनके वर्गीय बान्धवोंका अभी पूर्ण यौवन है। इनकी देह सौवर्ण कान्तिवाली है। इससे उतर कर रोहिणी वर्ग है, यह प्रौढ दशामें है। इससे उतर कर पारिजात वर्ग है। इस पर जराकी कुदृष्टि लग सी गई है। इससे उतर कर कर्बन वर्ग है। इस वर्गपर बुढ़ापेके चिन्ह प्रकट हो गये हैं। अब इस वर्गके लिए काशीवास ही उचित है। इसके आगे आनेवाला असुरवर्ग और शेष है, जिसका वर्णन आगे करेंगे। उनको हम मृत सूर्य या असुर कह सकते हैं। उनमें कान्ति सर्वथा दूर हो गयी है; मानों उनका देवत्व ही दूर हो गया है। ऐसी अवस्थामें उनका अन्त कैसे होता है, यह भी बड़ा विस्मयजनक है।

७—मायावती वर्ग

रचनाकी दृष्टिसे तारोंके कतिपय वर्ग दर्शा आये हैं, जिनमें सूर्यवर्ग, कार्तिकेय वर्ग, लुब्धक वर्ग, रोहिणी वर्ग, पारिजात वर्ग और कर्बनवर्गका वर्णन किया जा चुका है। अब अन्य कतिपय वर्गोंका भी उल्लेख करते हैं। प्रस्तुत वर्ग परिवर्ती तारोंका है। हम इस वर्गका नाम मायावती वर्ग रखेंगे।

प्रथम दीप्तिके तारोंमें से सबसे अधिक उज्ज्वल तारा पारिजात ( ज्येष्ठा अन्टेयर ) है। यह अत्या-

धिक उज्ज्वल रुधिरमय लाल रङ्गका है। इससे कुछ उतर कर आर्द्रा (विशाख) नक्षत्र रोहिणी (अलडीबरन) और स्वाति (आर्कटूरस) का है। मिश्र देशके प्राचीन ज्योतिषी टालेमीने लाल रङ्गके तारे गिनाते हुए ज्येष्ठा, आर्द्रा, रोहिणी और स्वाति— इन चारके साथ साथ मिथुनके तारे सोम और महाश्वान या व्याघ्र मण्डलके तारे लुब्धकका भी उल्लेख किया है; परन्तु इन दोनोंमेंसे अब एकभी लाल नहीं माना जाता। सोम कुछ पीतवर्ण है, परन्तु लुब्धक सर्वथा नील-श्वेत है। क्या इन दोनों तारोंने अब अपने वर्ण परिवर्तन कर लिये हैं ?

कुछ लोगोंका विचार है कि टालेमीकी सारणीमें सोम और लुब्धकका उल्लेख कदाचित् पिछले नकल करनेवालोंके प्रमादसे ही हुआ है। परन्तु इसके विरुद्ध भी प्रमाण मिलता है। टालेमीके बादके लेखकोंने भी माना है कि लुब्धक रक्त वर्णका है। हामर सेनेका, सिसेरो, होरेस आदिने इसे लाल या अग्निके सदृश उज्ज्वल वर्णका माना है; परन्तु अब और ईसासे १ शताब्दी पूर्व तकके कालसे भी लुब्धकको किसीने लाल नहीं माना। इन २० सदियोंके बीचमें कोई भी ग्रन्थकार लुब्धकका लाल होना नहीं मानता। इससे यही माना जा सकता है कि लुब्धकने अपना वर्ण परिवर्तन कर लिया है। यह बात भी सम्भव है कि वर्णन करनेवाले कवियोंकी भाषा प्रायः भिन्न भिन्न होती है। साधारण दो द्रष्टाओंकी आँख एक वस्तुको भिन्न भिन्न देख सकती हैं। इस लिए जब तक वैज्ञानिक दृष्टिसे किसीके विषयमें निर्णय न लिखा जाय तब तक प्रामाणिक नहीं माना जासकता। इसी प्रकार अपने अपने ज़मानेके भिन्न भिन्न प्रकारके यन्त्र तथा वायुमण्डलकी विशेष परिस्थितिके कारण भी मतभेद होना सम्भव है।

तो भी हमें बहुत से तारोंका वर्णपरिवर्तन दिखाई देता है। जैसे पारसीक (पर्सियस) मण्डलमें तारा मायावती (अलगोल) को फारसी ज्योतिषी अलसूफीने लाल रंगका बतलाया है; पर वह वर्तमानमें शुद्धश्वेत है। परन्तु परिवर्ती तारा होनेसे कभी कभी लाल रंगका भी दीख सकता है। १८४१ में विद्वान शिमिट्ने इसे रक्तपीत वर्णका देखा। वह बादमें श्वेत दीखने लगा। इसी प्रकार महाऋक्ष मण्डलमें टी (T) और शेफालिका मण्डलमें एस (S) तारे भी श्वेतसे लाल रंगमें बदलते हैं। बदलनेवाले तारे प्रायः लाल रंगके ही हैं।

बहुत से ऐसे युगल तारे पाये गये हैं, जिनमेंसे छोटा साथी प्रायः रंग बदलता है और बड़ा एकसा रहता है। जैसे अन्तर्मदा मण्डलमें एक युगल है, जिसमें एक पीला और दूसरा हरा है; एक काश्यपीय मण्डलमें युगल है, जिसमें एक पीला दूसरा गुलाबी है; शेफालिकामें एक युगल है जिसमें एक नारंजी दूसरा गहरा लाल है; बक मण्डलमें एक युगल ऐसा ही है; इत्यादि।

इसी प्रकार रंग परिवर्तन करनेवाले तारे जिनके विषयमें निश्चय हो गया है लगभग ४ सहस्र हैं। इनमें से कई नियत कालमें रंग बदलते हैं, परन्तु बहुत से अनियमित रीतिसे बदलते हैं। दूसरे नियमित कालमें बदलते हैं, परन्तु उनका काल ३ घण्टे १२ मिन्टसे लेकर ६१२ दिन तक होता है।

नियत कालकी मात्रामें परिवर्तनशील तारोंकी भी दो श्रेणियां हैं। एक दीर्घकाल परिवर्ती (Long period variable) जिनकी कालावधि १५० से ४१५ दिनोंके बीचमें है। यद्यपि यही अवधि १२० से ६१२ तक भी बढ़ जाती है। दूसरी श्रेणी स्वल्पकाल परिवर्ती तारोंकी है। इनकी अवधि ५० दिनसे कमकी है। और कइयोंकी १० से भी कम है और कुछ एक तारोंके परिवर्तनकी कालावधि दोनों श्रेणियोंके मध्यमें है। परन्तु दोनों श्रेणियोंकी भौतिक रचनामें भेद है और दोनों में रंग परिवर्तन होनेके कारणोंमें बहुत बड़ा भेद है।

दीर्घ-काल-परिवर्त्ती तारोंमें सबसे प्रसिद्ध तारा मायावती है। इसका पता सबसे प्रथम १५७६ में लगा। पहले यह एक संकुचित तारा (Nova)

समझा जाने लगा। १६३६ तक इसका कुछ विशेष रहस्य नहीं जाना गया। १६६७ में महाशय वोइलोने इसके परिवर्तनकी अवधि ३३३ दिन नियत की, परन्तु यह तारा पूरी माया करता है। कभी दो सप्ताह और कभी तीन सप्ताहकी कमी और अधिकता भी होजाती है। इसकी नियत कालावधि नहीं है। इसी प्रकार कान्तिमें बढ़ता बढ़ता कभी कभी यह प्रथम दीप्तिका हो जाता है। सर हर्षलने १७७६ में इसे रोहिणीके तुल्य कान्तिका पाया और कुछ ही कालके बाद वह पांचवीं दीप्तका हो गया; कभी कभी ९वीं तथा १० वीं दीप्ति तक भी उतर जाता है और साधारण आंखोंसे दीखना तक बन्द हो जाता है। १७८३ में इसका पता दूरबीनसे भी न लगा। सचमुच यह मायावी तारा है। इसीसे इसको मिथ्या दन्त कथामें मेडुसा राक्षसीका शिर कहा है। संस्कृतमें इसको मायावती कहा है। इस प्रकारके सभी परिवर्त्ती तारे मायावती वर्गमें गिने गये हैं।

अपनी न्यूनतम दीप्तिके ११२ दिनोंके बाद यह कान्तिमें बढ़ने लगता है और बढ़ते बढ़ते द्वितीय दीप्ति तक आजाता है। इस वृद्धिमें उसे ११० दिन लग जाते हैं। इस उज्ज्वल स्थितिमें वह कई सप्ताह रहता है। और फिर घटते घटते उसी हीनता तक पहुंच जाता है। परन्तु घटनेमें उसे चढ़नेकी अपेक्षा दुगना काल लगता है। यद्यपि यह तारा बराबर बदलता रहता है तो भी अधिकतम उज्वलताका काल २ सप्ताह है और न्यूनतम कान्तिका काल ३ सप्ताह है।

दीर्घकाल परिवर्ती वर्गका दूसरा प्रसिद्ध तारा वक मण्डल ( सिग्नस ) में है। वह अपने न्यूनतम कान्तिकालसे अधिकतम कान्तिकालमें ६०० गुना अधिक उज्ज्वल होता है। इस परिवर्तनमें उसे ४०६ दिन लगते हैं। इसी प्रकारके दीर्घकाल परिवर्ती लगभग ७५ तारे और भी देखे गये हैं।

इन दीर्घकाल परिवर्ती तारोंके सप्तरंगी परीक्षणसे ज्ञात हुआ है कि इनमें कान्तिके बढ़ने और घटने के साथ साथ भौतिक परिवर्तन भी बराबर होते हैं। परिवर्ती तारोंमें कान्तिका बढ़ जाना तारेके घटकद्रव्यका एकदम भड़कना ही है। दूसरे तारेकी कान्तिका क्रमशः घटना फिर शनैः शनैः बढ़ना और फिर एक सीमातक पहुंच कर घटना प्रारम्भ हो जाना, यह ह्रास और वृद्धिका चक्र बिल्कुल सूर्यके पृष्ठ पर धब्बोंके बढ़ने घटनेके चक्रके सदृश प्रतीत होता है।

परिवर्ती तारोंकी उज्ज्वलतम दशामें उनकी सतरंगीमें उज्वल धारियां भी प्रकट होती हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि उनके वातावरणमें उज्ज्वल गैसें भी विद्यमान होती हैं। इधर हमें पता है कि सूर्यमें धब्बोंकी अधिकतमताकी दशामें अंशुवलय ( करोना ) में भी बड़ी अधिक कान्ति होती है। परन्तु इस सबके होते हुए भी-चाहे सूर्यके धब्बोंके ह्रास-वृद्धिके चक्र और तारोंकी कान्तिके ह्रासी वृद्धिके चक्रकी घटना समान हो—उनके कालक अवधिमें बहुत वैषम्य है।

इस वर्गके सभी तारे लाल हैं। इनकी सतरंगीमें प्रायः उज्जनकी उज्ज्वल धारियां भी प्रकट होती हैं। इसके अतिरिक्त हृदसर्पका आर (R) तारा परिवर्ती है। उसका परिवर्तन काल निरन्तर घटता जाता है। १७०८ में उसका परिवर्तन काल ५०० दिन था और १८९१ में घटकर ४२० दिन रह गया। इसके विपरीत महाऋक्ष मण्डलका एस (S) परिवर्ती है। उनका परिवर्तनकाल निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इसी मण्डलका टी, सिंह को आर, आदि भी बड़े अनियमित परिवर्ती तारोंके नमूने हैं। सबसे अधिक परिवर्तन काल ब्रह्ममण्डलके एक तारेका है। उसका काल ६०१ दिन है।

स्वल्पकालपरिवर्ती तारोंमें परिवर्तन थोड़े ही कालमें तथा नियमित रूपसे होता है। इनके परिवर्तनका कारण भी पहलोंकी अपेक्षा भिन्न है। इन सभी तारोंमें प्रत्येक युगल है। इनका एक सहचर तारा भी साथ होता है और प्रत्येक अपने ढंग.

का होताहै। हम मुख्य चार नमूने लेते हैं। १. मायावती; २. शेलक ( B लिरा ); ३. ज़ीटा मिथुन, ४. डेल्टाशेफालिका। इन चारों वर्गोंमें १म मायावती वर्ग है। इस वर्गके तारोंमें परिवर्तनका कारण सदा सहचर तारेसे लगा हुआ ग्रहण है। इस लिए इस वर्गको हम ग्रस्त-परिवर्ती कहेंगे। इनकी कान्ति अधिक कालतक स्थिर रूपसे रहती है और फिर नियत कालमें घटना शुरू होती है। नियतकाल परिस्थितियोंमें सहचर पिण्ड एक नियत समय पर उसके आगे आने लगता है और मुख्य तारे को ग्रसने लगता है। ऐसे तारोंको बड़ी गूढ़ दृष्टिसे परखा जा रहा है। यदि दोनों तारे समान पिण्ड और समान कान्तिके हों तब तो एक ही ग्रास कालमें दो बार समान न्यूनतम कान्ति रहेगी। यदि दोनोंके पिण्ड समान हों, परन्तु एक कान्तिहीन मृतपिण्ड हो, जैसे मायावतीका सहचर, तो एक समयमें एक बार खग्रास होगा। यदि दोनों पिण्ड समान न हों और दीप्ति भी विषम हो तो प्रत्येक ग्रासमें कान्ति भिन्न भिन्न होगी।

यदि छोटा अधिक कान्तिवाला हो और साथी बड़ा परन्तु हीन कान्तिवाला हो तो भी हीन कान्ति अधिक देर तक रहेगी। यदि बड़े काले पिण्डको आच्छादन करनेवाला छोटा दीप्तिमान पिण्ड होगा तो दीप्तिमें कोई परिवर्तन नहीं आयेगा। सहचर युगलोंमें ग्रासके कारण परिवर्तन तभी दृष्टिगोचर होता है जब कि सहचर पिण्डोंकी एक दूसरेके प्रदक्षिण करनेका मार्ग हमारी दृष्टिके ही धरातलमें हो।

इसका सबसे अच्छा उदाहरण स्वतः मायावती है। इसकी कान्तिके ह्रासके इस सत्य कारणका, यार्क निवासी एक गूंगे बहरे ज्योतिषी जोन गोडरिकने १७८३ में, पता लगाया। यह सहचरयुगल तारा है। स्वतः एक कार्तिकेय वर्ग ( होलियम स्टार ) का तारा है। उसकी प्रदक्षिणा करनेवाला एक बड़ा भारी मृत सूर्य है जो हमारे चन्द्रके सदृश सर्वथा कान्ति हीन घोर काला है। मायावतीके पिण्डका व्यास १० लाख मीलसे भी अधिक है अर्थात् वह हमारे सूर्य से सवाया है, परन्तु सहचर ( असुर ) का परिमाण ठीक ठीक ज्ञात नहीं हुआ; क्योंकि उसका पिण्ड मायावतीके पिण्डके ठीक ठीक ऊपरसे ढकता हुआ नहीं गुज़रता। पण्डित वोगलने इसका व्यास ८३० हजार मील कूता है, जो सत्यतासे बहुत परे नहीं है। इन दोनों पिण्डोंके केन्द्रोंकी दूरी लग भग सवा तीस लाख मील है अर्थात् दोनों पिण्डोंके पृष्ठ एक दूसरेसे २५ लाख मील दूर ही हैं। यद्यपि दो महापिण्डोंका इतना समीप होना असम्भव जान पड़ता है तो भी नक्षत्र-संसारमें ऐसे बहुत से नमूने हैं।

अब हम दूसरे शेलक वर्गको लेते हैं। इसमें कान्तिकी वृद्धि तो समान रूपसे दो बार होती है परन्तु क्षय काल समान नहीं है।

इसी प्रकार ज़ीटा मिथुनमें क्षय और वृद्धि दोनों समान भावसे हैं। डैल्टा शेफालिकामें क्षय दोनों समान हैं पर वृद्धि में विषमता है। इन तीनों वर्गोंमें इतना भेद क्यों है, इसमें भी एक बड़ा गूढ़ रहस्य है। इन सभी वर्गोंके तारे सहचर युगल हैं; परन्तु परस्पर ग्रास नहीं होता, प्रत्युत वह एक दूसरेके अत्यन्त समीप हैं या परस्पर चुम्बन कर रहे हैं। और प्रदक्षिण भी करते हैं। इस दशामें वह अत्यन्त समीप होनेसे एक दूसरेके वातावरणों पर बड़ा गहरा प्रभाव डालते हैं। जैसे चन्द्र के अति समीप होनेसे भूमिके समुद्र पृष्ठमें बड़ा विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है और समुद्रमें ज्वार भाटा उत्पन्न होता है उसी प्रकार वह दोनों परस्पर समीप हैं और एक दूसरे के वातावरणों और हिरण्यकोशस्थ प्रातप्त पृष्ठोंपर बड़ा प्रभाव डालते हैं। वह एक दूसरेसे खिंचे रहनेसे सदा दो लम्बूतरे अण्डोंके आकारमें एक दूसरेका प्रदक्षिण करते

हैं। परन्तु क्रान्तिमार्ग दृष्टि रेखाके धरातलमें न होने से एक दूसरे को ढकते नहीं दिखाई देते। जब दोनों पिण्डोंका लम्बूतरा आकार एक सीधी रेखामें आजाता है तब बहुत उज्ज्वल दीखते हैं। जब दोनोंका शंकुभाग दृष्टिमें आता है तब न्यून प्रकाश हो जाता है। यदि दोनों समान दीप्तिके होंगे तो एक प्रदक्षिणमें दो बार अधिकतम कान्ति होगी। यदि कान्तिमें विषमता होगी तो कान्तिका ह्रास भी विषम होगा। मिथुनकेज़ीटामें दोनों पिंड समान कान्तिके हैं। 'शेफालिकाका डेल्टा' विषम कान्तिका युगल है। मि० मायरकी इस विशेष स्थापनाको अभी प्रबल नियत सिद्धान्तरूप से अपनाया नहीं गया है। अभी इसपर बहुत सी शंकायें उठ सकती हैं। दूसरे, सतरंगी परीक्षाओंमें भी बहुत से ऐसे विचित्र परिवर्तन देखे गये हैं जिनका सरलीकरण केवल इतना मानलेनेसे पूरा नहीं हो। कदाचित् युगलोंके क्रान्ति मार्ग और पारस्परिक आकर्षणोंसे कुछ विशेष भौतिक परिवर्तन उपस्थित होता हो।

इसके अतिरिक्त अब हम पाठकोंका ध्यान एक और वर्गकी ओर खेंचना चाहते हैं। कई एक तारकसंघोंमें बहुत से तारे परिवर्ती पाये गये हैं; परन्तु उनमें न युगल होनेका ही कोई चिन्ह है, जिससे उनकी कान्तिके परिवर्तनमें ही कोई ग्रहणादि कारणकी कल्पना हो और न अन्य कोई दिखाई पड़ता कारण है। वह केवल एक बार सहसा अभिज्ज्वलित होते हैं और फिर शनैः शनैः धीमे पड़ जाते हैं। उनको हम संधुक्षित तारे कह सकते हैं। यह एक प्रकारके अस्थायी तारे हैं।

### ८-संधुक्षित वर्ग ( Nova )

इस वर्गके तारे समय समय पर भिन्न भिन्न स्थानोंमें प्रकट हुए हैं और फिर सदाके लिए शान्त हो गये हैं।

| | |
|---|---|
| १३४ ई० पू० | वृश्चिक राशिमें |
| १२३ ई० | सर्पधारी मण्डलमें |
| ३८६ ई० | धनुष राशिमें |
| ३८९ ई० | गरुडमण्डलमें |
| ३९३–८२७ ई० | वृश्चिक राशिमें |
| १०१२ ई० | मेषमें |
| १२०३ ई० | वृश्चिकमें |
| १५७२ ई० | काश्यपीयमें |
| १६०४ ई० | सर्पधारीमें |
| १६७० ई० | शृगालमें |
| १९०१ ई० | पारसीकमें |

३८९ ई०का संधुक्षित तारा अपनी कान्तिसे शुक्रके समान ३ सप्ताह तक चमक कर शनैः शनैः शान्त हो गया। १९०१ में विद्वान एन्डरसनने पारसीक मण्डलमें एक तारा देखा था। यह दो दिनोंमें ही चमक कर उत्तरकपालका उज्ज्वलतम तारा हो गया और फिर घटता घटता दो ही वर्षमें १२वीं दीप्तिका हो गया। इस वर्गके तारे प्रायः आकाशके किसी विशेष देशमें ही सदा भड़का करते हैं। यह सभी प्रदेश प्रायः आकाश गंगामें ही विद्यमान हैं। १६वीं सदीके प्रसिद्ध ज्योतिषीने १५२२ की ११ नवम्बरको काश्यपीय मण्डलमें एक संधुक्षित तारा देखा। प्रथम यह अत्यन्त उज्ज्वल श्वेत प्रकाशसे चमका और कान्तिमें शुक्रसे भी अधिक हो कर बृहस्पतिके समान हो गया। यह इतना चमका कि मेघाच्छन्न रात्रिमें भी चमकता था! कई एक ने इसे दुपहरके समय भी देखा। परन्तु यह सब शान इसकी कुछ कालके लिए थी। ३ सप्ताहके बाद इसका क्षय प्रारम्भ हो गया। १५७४ की मार्चमें वह सदाके लिए लुप्त हो गया। प्रायः इस वर्गके सभी तारोंकी यही गति होती है।

इन संधुक्षित तारोंके प्रकट होनेका क्या कारण है, इस प्रसङ्गमें श्रीमती एनीस क्लार्ककी कल्पना

बड़ी ही रोचक है। आपकी सम्मतिमें तारे अपने क्रान्तिमार्गपर भ्रमण करते हुये किसी भी नीहारिकाके आवरणमें घुस जाते हैं और वहां संघर्ष तथा प्रबल तापसे उसी प्रकार जल जाते हैं जैसे पृथ्वीके वातावरणमें प्रविष्ट होते हुये उल्कापिण्ड जलकर चमकते हैं। मि० हरम महाशय इस घटनाके स्पष्टीकरणमें यह कहते हैं कि कोई भी असुर तारा या मृत नक्षत्र पिंड किसी नीहारिके पिण्डमें प्रविष्ट हो जाता है तभी वह ताप और संघर्षसे सहसा भड़क उठता है। मृततारोंकी गति, उनका मार्ग आदि कुछ भी जाना नहीं जासकता। केवल इन संयुक्त ताराोंकी घटनासे इन मृत पिंडोंका रहस्य कुछ समझमें आता है। केवल तीनप्रकारसे इन असुरोंकी गतिका पता चलता है।

१. युगल सहचरोंमेंसे एक असुर हो तो वह उसके ग्रहणका कारण होता है। और स्वतः श्याम निष्कान्ति शरीर होनेसे दूसरेकी चमकमें भी बाधक होता है।

२. युगल सहचरोंके ही प्रदक्षिण करते हुए तारोंकी उचित कांतिमें भेदका कारण होता है।

३. जिन युगल तारोंकी गति और मार्ग जान लिया गया है उनकी गतिमें भी बाधा करता हुआ देखा गया है। खैर कुछ भी हो यह मृत सूर्य या प्रेत सूर्य अपने सूर्य-जीवनको समाप्त करनेके बाद आसुरी वृत्तिसे श्याम काय धारण किये हुए विचरा करते हैं और आकाश गंगामें तथा अन्यत्र विहार करती हुई नीहारिका वत अप्सराओंपर जब अपना बल दिखाते हैं तभी उनके तपोव्रत तेजसे इनका देह धधक उठता है और इस प्रकार शापग्रस्तोंकी तरह इन प्रेतसूर्योंकी अन्त्येष्टि हो जाती है।

कभी कभी यह प्रेत सूर्य किसी किसी अपने जैसे विशाल सच्च सूर्यसे भी टकरा जाते हैं और अपने और दूसरे सौर जगतोंमें बड़ा त्रास उत्पन्न कर देते हैं। मानों दैत्य सचमुच उस समय अमरावतीमें सकर इन्द्रका आसन डुला देता है। ऐसी अवस्थामें या तो वह आप ही खण्ड खण्ड होकर जल जाता है या उस सौर जगतका ही विध्वंस कर डालता है।

---

# वृक्षोंमें जीवकी सत्ता

## आर्ष सिद्धान्तकी विजय

(ले०—पं० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार)

भारतीय ऋषियोंका प्राचीन कालसे यही सिद्धान्त रहा है कि इस संसारमें आ-ब्रह्म स्तम्ब पर्यन्त जीवका विकाश है; अर्थात् ब्रह्मासे लेकर कीट, पशु, पतङ्ग तक और स्थावरोंमें वृक्षोंसे लेकर घास आदि सूक्ष्म तृणों पर्यन्त जीवका राज्य है। इसकी सत्यताका प्राचीन ऋषि बहुत अनुभव करते थे। चरक ऋषिने जीवसंसारका विभाग करते हुए उसको चार भागोंमें बांटा है—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिद्; और लिखा है कि वही शाखाओं और प्रशाखाओंमें बंटकर बहुत सी योनियोंमें चले जाते हैं।* इसी प्रकार उनका और भी आगे विभाग करते हुए चरक एवं सुश्रुत मुनि कहते हैं कि वनस्पति, वानस्पत्य, ओषधि और वीरुध् आदि नाना जातियां स्थावर संसारमें हैं। इसी प्रकार चक्रपाणि कहते हैं कि लता, गुल्म, और दूर्वा आदि भी उन्हींके भेद हैं। वृक्ष वनस्पति पीपल, बड़, पिलखन आदि हैं, जिनमें बिना फूलके फल लगता है। वानस्पत्य, जैसे आम, में फल और फूल दोनों लगते हैं। ओषधि फल पक जानेपर स्वतः सूख जाती हैं; जैसे धान, अनाज, दाल और अन्य मौसमी बूटियां। वीरुध् या लताओंकी बेलें फैलती हैं; जैसे खरबूज़े और तरबूज़की बेल। चक्रपाणिने वीरुधोंके दो भाग किये

---

* भूतानां चतुर्विधायोनिर्भवति। जरायु-अण्ड-स्वेद-उद्भिदः। एकैकायोनि। अपरि संख्येय भेदा भवति भूतानामाकृ विशेषापरिसंख्यानात। (चरकः)

हैं, लता और गुल्म। लता जो फैलती हैं और गुल्म जिनका झुण्ड लगता है। ओषधिके दो भेद हैं (१) प्रति वर्ष फल देनेवाली और (२) प्रतिवर्ष फल देकर सूख जानेवाली। स्पष्ट है कि भारतके विद्वानों ने वनस्पति संसारका भी वैज्ञानिक रीतिसे बड़ा अनुसंधान किया था। अब यह देखना है कि वृक्षोंमें जीवकी सत्ताके विषयमें उन्होंने किस प्रकारका विचार किया है।

बौद्ध विद्वान धर्मोत्तरने अपने ग्रन्थ न्याय-विन्दुटीकामें पौधोंका सोना जागना स्वीकार किया है। वह कहते हैं कि रातके समय वृक्षोंके पत्तोंका सिकुड़ना और सिमटना ही वृक्षोंका सोना है। *

आस्तिक विद्वान उदयनाचार्य कहते हैं कि, वृक्षादि वनस्पतियोंमेंसे भी प्रत्येकमें एक एक जीव अपने कर्मोंके फलका भोगनेवाला उस स्थावर शरीरमें मालिकके रूपमें ही रहता है। इसके बहुतसे प्रमाण हैं–वह जीते हैं, मर जाते हैं, सोते हैं, जागते हैं, उनको रोग हो जाते हैं, उनके रोगोंके दूर करनेके लिए औषधका प्रयोग करने-पर वह अच्छे हो जाते हैं। अपने समान जातिके वृक्ष तरुलता आदिको सन्तान रूपसे पैदा करते हैं। अनुकूल वस्तुके समीप आते हैं और प्रतिकूल वस्तुओंसे हटते हैं। फलतः शरीरधारी जीवोंमें जो क्रियाएं और घटनाएं होती हैं सभी वृक्षोंमें भी दिखाई पड़ती हैं। †

जैन विद्वान् गुणरत्नने अपने षड्दर्शनके भाष्यमें वृक्षोंके जीवनके विषयमें विशेषताओंका उल्लेख इस प्रकार किया है—

(१) वृक्षोंमें विशेष कालतक बालकपन और यौवनका प्रादुर्भाव होता है। (२) उनकी जीवन भर विशेष नियमानुकूल वृद्धि होती है। (३) उनमें निद्रा, जागरण, संकोच, विकास, स्पर्श करनेपर मुरझाना, अपने आश्रय लेनेके लिए विशेष प्रदेशको पकड़ना आदि नाना क्रियाएं और गति देख पड़ती हैं। (४) घाव हो जानेपर वह मुरझा जाते हैं या उनका विशेष अंग सूख जाता है। (५) भूमिकी प्रकृतिके अनुकूल भोजन अपने अन्दर लेकर पचा लेते हैं। (६) वृक्षायुर्वेदमें लिखे अनुसार अनुकूल और प्रतिकूल भोजन देनेसे वृक्ष अधिक फलते और फूलते और मुरझा भी जाते हैं। (७) वृक्षोंके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। (८) नाना प्रकारके औषधोपचार और भिन्न भिन्न प्रकारके जलों-से सींचनेसे वह फिर चंगे हो जाते हैं। (९) वृक्षोंमें भी रस कभी बढ़ जाता है और कभी सूख जाता है। (१०) जिसका फल और बीज न लगता हो पुष्प न आते हों, फलतः उनकी सन्तति न होती हो उनपर भी विशेष भोजनसे फल, फूल और बीज लगते हैं। जिस प्रकार स्त्रीके गर्भाशयमें वीर्यसे गर्भ धारण होता है और बालक उत्पन्न होता है, उसी प्रकार वनस्पतिके शरीरमें भी गर्भ पूर्ण होनेपर पुष्प फलादि उत्पन्न होते हैं। *

वैशेषिक दर्शनपर व्याख्या लिखनेवाले आचार्य शंकरमिश्र अपने वैशेषिकोपस्कारमें लिखते हैं कि वृक्षोंमें घाव लगते हैं और स्वतः भर भी जाते हैं; यही उनके चैतन्य शरीर होनेका प्रमाण है। (भग्न-क्षतसंरोहणे च। उपस्कार)

गुणरत्नाचार्यने ऐसी वनस्पतियोंके नाम लिखे हैं जिनमें सोने और जागनेकी क्रियाएं स्पष्ट दीखती हैं, जैसे शमी (खेजड़ा), प्रपुन्नाट (टांकला या पुनवाड़), सिद्धेसर, कासुन्दक (कसौंदी), बबूल, अगस्त्य, आंवला। इन वृक्षोंकी पत्तियां रातके समय सिमट जाती हैं और दिनके समय फैल जाती हैं।

---

* स्वापः रात्रौ पत्र संकोचः।

† वृक्षादयः प्रतिनियतभोक्त्रधिष्ठिताः जीवनमरणस्वप्नजागरणरोगभेषजप्रयोग वीजसजातीयानुबन्धानुकूलोपगम प्रतिकूलापगमादिभ्यः। प्रसिद्धशरीरवत् (उदयनः पृथ्वी निरूपणम्)

* विशिष्टदौहृदादिमत्त्वं विशिष्टस्त्रीशरीरवत् यथा स्त्रीशरीरस्य तथाविधदौहृदपूरणात् पुत्रादिप्रसवनं तथा वनस्पति शरीरस्यापि तत्पूरणात्पुष्पफलादि प्रसवनं।

लज्जावतीलता और अन्यान्य इसी वर्गके पौधे हाथसे छूनेसे ही संकुचित हो जाते हैं और कुछ कालके बाद फिर खिल उठते हैं। *

चरकमें कुटज वृक्षके (इन्द्रजौ) स्त्री और पुरुष दो भेद किये हैं। बड़े बड़े श्वेत फूलोंवाला नर होता है और लाल नीले फूलोंवाला इन्द्रजौ मादा होता है। राजनिघण्टुमें नर मादा और नपुंसक तीनों भेद माने गये हैं। †

चैतन्यके विषयमें प्राचीन शास्त्रकारोंका सिद्धान्त है कि वृक्षोंमें चैतन्य अर्थात् सुख दुःखके अनुभव करनेकी सामर्थ्य अन्दर ही छिपी होती है; जैसे महाभारतका श्लोक है।

"अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःख समन्विताः।"

चक्रपाणि अपने ग्रन्थ 'भानुमति' में वृक्षोंको चेतनावान् मानते हैं। तामस आवरण होनेसे उनको भी शास्त्रके उपदेशकी अवश्यकता बतलाते हैं। "वृक्षास्तु चेतनावन्तोऽपि तमश्छन्नज्ञानतया शास्त्रोपदेशविषया एव।"

उदयनाचार्य भी उनकी अप्रकट मन्द अन्दर छुपी चेतनाको स्वीकार करते हैं। "अतिमन्दान्तः संज्ञितया"।

महाभारतमें भीष्म ने स्थावरों की चेतनताका बड़े ही रोचक रूपमें वर्णन किया है। और वृक्षोंमें ज्ञानेन्द्रियोंका भली प्रकार होना बतलाया है जैसे—

"गर्मी लगजानेसे पौधों और वृक्षोंके पत्ते त्वचा, फल और फूल कुम्हला जाते हैं और झड़ जाते हैं। इससे उनमें स्पर्श ज्ञान है। वायुके झकारोंसे, बिजुलीके गिरनेसे और बिजलीके एकदम कड़कनेसे भी वृक्षोंके पत्ते फल और फूल झड़ जाते हैं। शब्द श्रोत्रेन्द्रियसे ही ग्रहण किया जाता है; इससे प्रतीत होता है कि वृक्ष सुनते भी हैं। बेलें वृक्षोंपर लिपट जाती हैं और अपने ठीक ठीक मार्गपर गति करती हैं। बिना देखे ठीक मार्गपर नहीं जाया जा सकता; इससे वृक्ष देखते हैं। अपने पूर्वकृत पुण्य पापोंसे और नाना प्रकारके धूपादि सुगन्धयुक्त पदार्थोंसे रोगहीन हो जाते हैं और उनके फूल भी खिल जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि वह सूँघते भी हैं। अपने पैरोंसे (जड़ोंसे) नाना प्रकारका जल पीलेते हैं। इससे उनके रोग पैदा भी हो जाते हैं और रोग दूर भी हो जाते हैं। इससे उनकी रसना इन्द्रिय भी है। जिस प्रकार कमलकी दण्डीको मुखमें रखकर उसका एक सिरा पानीमें रखकर ऊपर वायु खेंचनेसे पानी वायुके दबावसे ऊपर चढ़ता है उसी प्रकार वृक्षोंके पैरों (जड़ों) से

उष्मतो म्लायते पर्णं त्वक् फलं पुष्पमेव च।
म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते॥
वाय्वग्न्यशनि निर्घोषैः फलं पुष्पं विशीर्यते।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः॥
वल्ली वेष्टयते वृक्षं सर्वतश्चैव गच्छति।
नह्यदृष्टुश्च मार्गोऽस्ति तस्मात्पश्यन्ति पादपाः॥
पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैर्धूपैश्चविविधैरपि।
अरोगाःपुष्पिताः सन्ति तस्माजिघ्रन्ति पादपाः।
पादैःसलिलपानाच्च व्याधीनाञ्चापि दर्शनात्।
व्याधि प्रतिक्रियत्वाच्च विद्यते रसनं द्रुमे॥
वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोर्ध्वंजलमाददेत्।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिवति पादपः॥
सुख दुःखयोश्च ग्रहणात् छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यते॥
शान्ति पर्वे, महाभरतः॥

---

* समीप्रपुन्नोटसिद्धेसरकासुन्दकवप्पूलागस्त्यामलकीकतिप्रभृतीनां स्वापाविवोधतः।
"लज्जालूप्रभृतीनां हस्तादिसंसर्गात् यत्र सङ्कोचादिका परिस्फुटक्रिया उपलभ्यते॥" (गुणरत्न)

† बृहत्फलश्वेतपुष्पैः पुमान्, स्यावारुणानुपुष्पी स्त्री —असित कुटज (चरकः)॥ अनूपादि प्रथमो वर्गः स्त्रीपुनपुंसकत्वेन त्रैविध्यं स्थावरेष्वपि। (राज निघंटु)

भी पानी वायुके साथ साथ ऊपर चढ़ता है। यही वृक्षोंका जलपान है। वृक्ष सुख और दुःखका अनुभव करते हैं। एक बार काट देने पर भी फिर फूट पड़ते हैं। इससे (मुझे) ऐसा ही प्रतीत होता है कि वृक्षों में चेतन जीव है। वह जड़ और अचेतन नहीं हैं। शार्ङ्गधरने अपनी पद्धतिमें वृक्षायुर्वेदका प्रतिपादन करते हुये वनस्पति संसारका बड़ा ही विनोदजनक वर्णन दिया है।

"वृक्षोंको भी मनुष्योंके समान वात पित्त कफके कारण रोग उत्पन्न हो जाते हैं। वात विकारसे वृक्ष कृश रहता है, लम्बा होता जाता है या नाटा ही रह जाता है, पत्ते छाल आदि रूखी रहती हैं और नींद नहीं आती, उसकी चेतना न्यून हो जाती है, उसके फल और फूल भी नहीं लगते।" *

"वृक्षकी छाल उखड़ जानेसे वृक्षको नींद नहीं आती, उसके देहसे मच्छीकी सी गन्ध आती है, नयी कोंपलें नहीं निकलतीं. कीड़ियां लग जाती हैं, यही रोग अधिक पानी पी जाने और खाद अधिक डालनेसे और अजीर्ण होनेसे हो जाता है।" †

फलतः वृक्षायुर्वेदमें भी वृक्षोंका सोना जागना और रोगी रहना और स्वस्थ रहना आदि चैतन्य प्राणीके धर्म बड़ी उत्तमतासे बतलाये गये हैं। भारतीय प्राचीन कवियोंके काव्योंमें वृक्षोंकी चेतनताके और भी अद्भुत नमूने पाये जाते हैं। बकुल और अशोक वृक्ष अपने पास स्त्रियोंकी स्थितिको
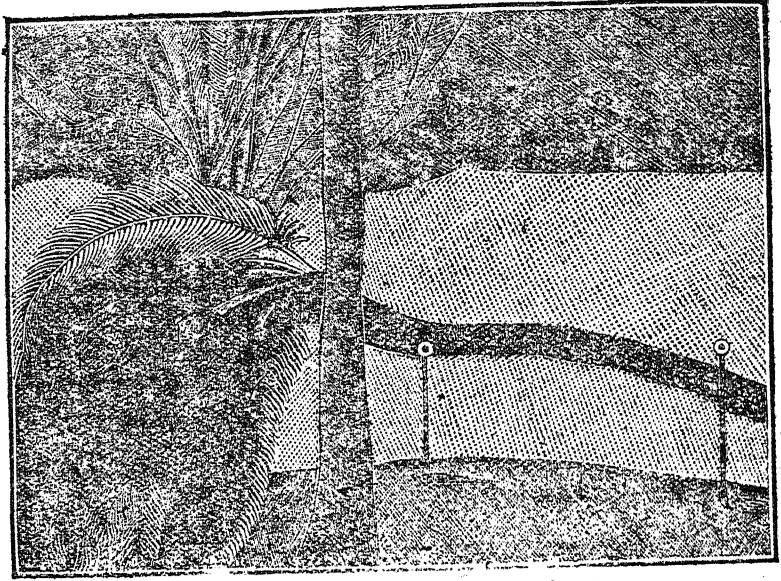
चित्र २६—वृक्ष शाम को डंडवत कर रहा है।

बहुत पसन्द करते हैं। ऐसी अवस्थामें दोनोंकी नयी नयी पत्र कलिकाएं खिल जाती हैं।

यह सब प्राचीन विद्वानोंके आनुभविक सिद्धांतका वर्णन कर दिया। अब वर्तमान युगमें भी वृक्षोंके चैतन्य विषयक सिद्धान्तको बड़ी पुष्टि मिली है। भारतके सुपुत्र श्रीजगदीशचन्द्र वसुने इस आश्चर्यजनक सिद्धान्तको सर्वथा नवीन वैज्ञानिक साधनासे पुष्ट कर दिखाया। वसु महोदयने अपने ग्रन्थमें एक अद्भुत खजूरका वर्णन किया है।

"बंगालमें फरीदपुरके पास एक खजूरका पेड़ है। उसकी दैनिक गतियोंको देखकर बड़ा विस्मय होता है। ऐसी रहस्यमय घटना अभी तक कहीं भी देखी नहीं गयी है। सायंकालके समय जब मन्दिरके घण्टे घड़ियाल बजते हैं, मानो भक्तजनों

---

* नराणामिव वृक्षाणां वातपित्तकफाद्गदाः ॥
सम्भवन्ति निरूप्यातः कुर्यात् तद्दोषनाशनम् ॥ १७५ ॥
कृशोदीर्घो लघूरूक्षो निद्राहीनोऽल्पचेतनः ।
न धत्ते फलपुष्पाणि वातप्रकृतिकस्तरुः ॥ १७७ ॥

† अनिद्रता मत्स्यसुगन्धिता च
प्रवालहानिः सपिपीलिकात्वम्।
त्वग्भ्रंशनाद्वा विकृतादजीर्णा—
त्तरोर्भवेत्तत्र चिकित्सनीयम् ॥ १९१ ॥
( उपवनविनोदः ॥ शार्ङ्गधर पद्धित। )

को प्रार्थनाका आदेश देते हैं, तो यह खजूरका पेड़ भी झुकजाता है—मानों भूमिपर साष्टाङ्गदण्डवत करता हुआ लेट जाता है ( चित्र २६ ) और प्रातःकाल सूर्य उगते ही फिर उठकर पूर्ववत् खड़ा हो जाता है। प्रति दिन यही खड़े होने और लेटनेकी क्रिया देखी जाती है। इस घटनाको दैवी-घटना समझा जाता है। इससे सैकड़ों यात्री आकर्षित होकर बड़ी श्रद्धासे खजूरका दर्शन करनेके लिए आते हैं। कहा जाता है उस वृक्षपर चढ़ाई भेंट पूजासे ही बहुत से रोगोंमें बड़ा अद्भुत लाभ हो जाता है।"

फिर सिर झुकाकर लेटने लग जाता था। उसका तना अधिकसे अधिक १ गज़ एक गिरहके लगभग उठ जाता था। उसके सभी पत्ते जो प्रातःकालके समय ऊपरको उठे रहते थे सायंकालके समय बिखरेबालोंकी तरह भूमिकी ओर झुक जाते थे और गर्दन जो प्रातःकाल अर्ध चन्द्राकार ऊपरको उठी होती थी सायंकालको सीधी हो जाती थी या उलटी तरफ झुक जाती थी। फलतः पेड़की पत्तियां तो कई गज़ गिरती और उठती थीं।

वृक्ष जीवित दैत्यके समान जंचता था। वह मनुष्यकी दुगनी ऊंचाईसे भी कितना ही अधिक ऊंचा होता हुआ भी सायंकालको अपने उच्च शिखरको झुकाकर भूमिपर रखता था, मानों भक्तिभावसे प्रेरित होकर देवताको प्रणाम करता था।
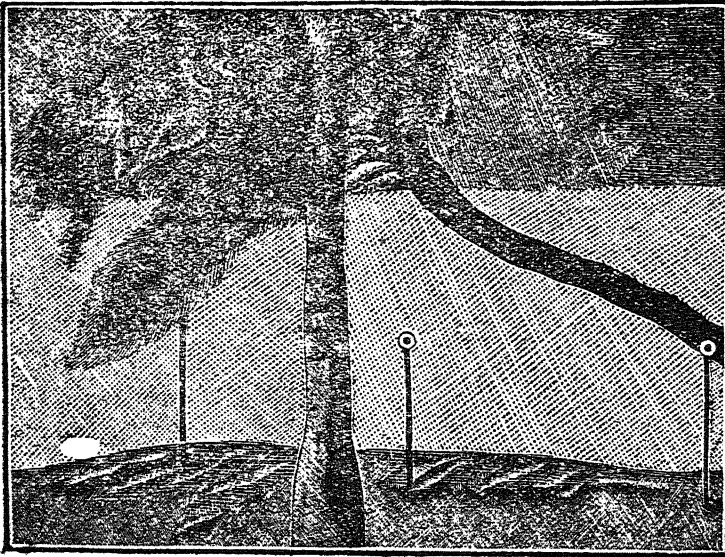
चित्र २७—वृक्ष प्रातःकाल उठकर खड़ा हो गया है। लगे हुए गजोंसे झुकने और उठनेके परिमाणका पता लग सकता है।

हमारे वैज्ञानिक वीर वसुने इस अद्भुत भक्त वृक्षका दर्शन स्वयं फरीदपुर जाकर किया। वसु महोदयने इस रहस्यमय गुत्थीको सुलझानेके लिए बहुत समय लगाया और अन्ततः सफलता प्राप्त की।

अपने यन्त्रोंका उस वृक्ष पर-प्रयोग करनेके लिए वसु महोदयको पेड़के मालिकसे आज्ञा लेनी पड़ी। क्योंकि उसका यह विश्वास था कि कहीं विदेशी अशुद्ध उपकरणोंके स्पर्शसे उस वृक्षका दिव्य भाव नष्ट न हो जाय। इन अन्ध विश्वासोंको दूर करनेके लिए यही बतलाना पड़ा कि सब यन्त्र वसु महोदयके कारखानेके बने हैं। आख़िरकार एक ब्राह्मण पुत्रके हाथसे उन यन्त्रोंका वृक्षसे स्पर्श कराया गया।

यह खजूरका वृक्ष अच्छा बड़ा था। वह लगभग १० हाथ ऊंचा और एक फुट मोटा था। पहले कभी वायुके प्रबल झकोरोंने उसकी जड़ कुछ हिल चुकी थी और उसका तना सीधा न रहकर अपनी सीधी ऊंचाईसे ६०° झुक गया था। वह प्रातःकालके समय जितना खड़ा हो सकता था उतना उठ कर खड़ा हो जाता था। और सायंकालके समय

इस घटनाका वास्तविक रहस्य जाननेके लिए निम्न लिखित बातोंका जानना आवश्यक था।

(१) वृक्षकी दिन और रातमें कितनी गति होती है और कब वह पूरा खड़ा होता है और कब पूरा लेटजाता है।

(२) क्या यह उठने और लेटनेकी क्रिया इसी वृक्षमें है या सर्व साधारण वृक्षोंमें भी होती है?

(३) इस गतिका क्या कारण है?

(४) प्रकाश और भापका क्या प्रभाव पड़ता है?
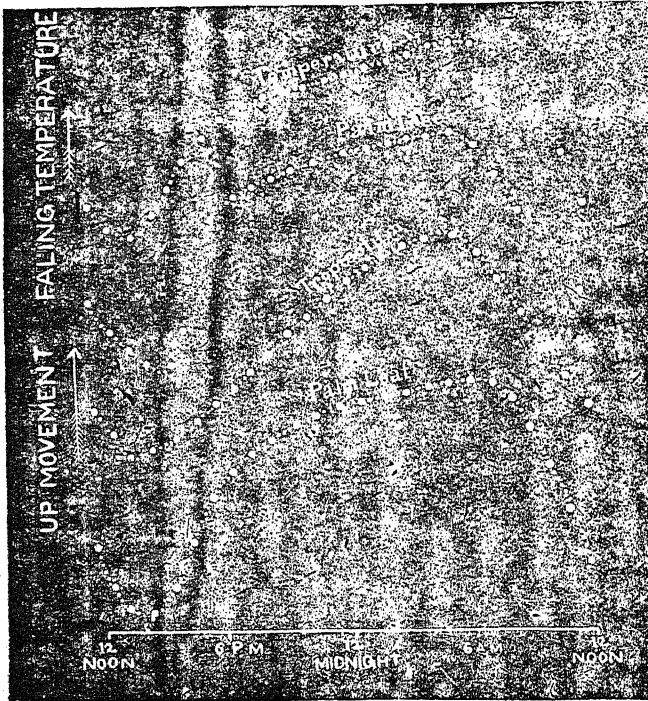
चित्र २८—खजूर के पेड़ और पत्ती होपिओलके उतार चढ़ावका तापक्रम (ऊपर का वक्र) के उतार चढ़ावसे संबंध।

(५) वृक्षकी इस क्रियामें देह रचना सम्बन्धी क्या विशेषता है?

(६) क्या किसी दैहिक अंशमें भेद आनेसे गति होती है?

वसु महोदयने इस वृक्षकी गतिको देखनेके पश्चात् अपने उद्यानमें लगे एक टेढे बालविटप-पर भी परीक्षण किया और देखा कि उसमें भी उसी प्रकारकी गति होती है। अब यही निर्णय करना शेष था कि यह परिणाम केवल भूमि-की गुरुता और घटते बढते तापक्रमके कारण तो नहीं होता।

वसु महोदयने पता लगाया कि गुरुतासे पैदा हुए विक्षोभके कारण वृक्षकी शाखाएं नीचे झुकती ही नहीं प्रत्युत गुरुताके विरुद्ध ऊपरको भी उठती हैं। तापके कम होनेपर वह अधिक झुकती हैं।

इस प्रकार उनमें खम (वक्र) पैदा हो जाता है। तापके बढ़नेसे पृथ्वीकी ओरको झुकनेकी प्रवृत्ति कम हो जाती है और खम चपटा होकर कम हो जाता है। अतएव तापके बढ़ने ज्यादा और तापके कम होने पर वह अधिक झुकती हैं। फलतः तापके न्यूनाधिक होनेसे नियमानुसार शाखाओंकी ऊपर नीचेकी गति होती है। दिनमें सबसे अधिक ताप मध्याह्नोत्तर तीन बजे होता है; सबसे कम ताप प्रातःकाल ६ बजे सूर्योदयके समीप होता है। पेड़के विशेष भाग मध्याह्नोत्तर तापके घटनेके साथ साथ बराबर झुकने लगते हैं और प्रातः ६ बजे तक पूरे झुक जाते हैं। उसके बाद फिर शनैः शनैः उठना शुरू करते हैं। सैकड़ों वृक्षोंकी इसी प्रकारकी दैनिक उतार चढ़ावकी गति (जिसका अभी तक कोई कारण ज्ञात न था) तापानुसारी नमनोन्नमन (झुकना और ऊपर उठना) के सिद्धान्त (Thermal Geotropism) से स्पष्ट होती थी।

तिस पर भी एक यह सन्देह बना रहता है कि यह गति केवल तापका परिणाम है या वृक्षके अंगोंकी विशेष रचना भी इसमें कारण है? इस सन्देहकी तभी निवृत्ति हो गयी जब कि एक वर्ष-के बाद वसु महोदयके पास पूर्वोक्त खजूरके वृक्ष-की मृत्युका समाचार पहुंचा और तबसे उस वृक्ष-की वह सब गतियां होनी बन्द हो गयीं।

सोने जागनेके विषयमें वसु महोदयने यह निर्णय किया है कि वनस्पति शनैः शनैः सोती है और शनैः शनैः जागती है। दुपहरके समय पूरी जागृत होती है। अर्ध निशातक वैसी ही जागृत रहती है और फिर शनैः शनैः शिथिल होने लगती है और प्रातः काल तक पूरी सो जाती है। उस समय उसके देहमें किसी प्रकारके स्पर्श करने और विक्षोभ देनेसे भी कोई चेतनाका लक्षण नहीं मिलता।

इस प्रकार वसु महोदयने वर्त्तमानके अनात्म-वादी वैज्ञानिक संसारमें वृक्षोंकी चेतनताके सिद्धा-न्तको पुनः प्रमाणित करके आर्ष विज्ञानको फिर संसारमें विजयी कर दिया है और भारत माता और आर्षसाहित्यका गौरव फिरसे जगा दिया है।

---

# सूर्यका पुत्र हीलियम

जब सूर्यका प्रकाश कांचके त्रिपार्श्वमें होकर निकलता है तो वह सात रंगोंमें विभक्त हो जाता है। यदि यह प्रयोग एक अंधेरे कमरेमें किया जाय और त्रिपार्श्वमेंसे निकला हुआ प्रकाश दीवारपर पड़ने दिया जाय तो एक सतरंगी पट्टिका या रश्मि-चित्र दीख पड़ता है। यदि एक त्रिपार्श्वके स्थान-पर कईका प्रयोग करें तो इस मनोहर पट्टिकामें काली धारियां नज़र आने लगती हैं। इन्हीं काली धारियोंको देख कर और उनकी स्थिति नाप कर सूर्यके वायुमण्डलमें विद्यमान मौलिकोंका पता लगा सकते हैं। संवत् १९२५ वि. में जर्मन वैज्ञानिक डा० जेंससन (Dr. Janssen) ने कुछ ऐसी धारियां सूर्यके रश्मि चित्रमें देखीं जो किसी ज्ञात मौलिकसे नहीं मिलती थीं। सर नौरमेन लौक-यरने उसी वर्ष यह घोषणा की कि यह धारियां एक अज्ञात मौलिककी हैं जो केवल सौर मण्डल-पर विद्यमान है। इसका नाम उन्होंने सूर्यपुत्र "हीलियम" रखा।

इस घटनाके २७ वर्ष बाद १९५२ वि० में रेमसे महोदय खनिजोंमें छिपी हुई गैसोंकी परीक्षा कर रहे थे। उसी परीक्षणमें क्लीवीयेट (Cleveite) नामक खनिजसे निकाली हुई गैसोंमें हीलियमका पता चला। तदनन्तर उन्होंने उसे ही नहीं बल्कि उसके कई और भाइयोंको वायु-मण्डलमेंसे पकड़ बुलाया।

हीलियम आदर्श त्यागी है

यदि त्यागियोंको आदर्श त्यागी देखनेका शौक है तो वह हीलियम है। यह एक प्रकारका वायव्य पदार्थ है जो अत्यन्त निर्मोही है। यह किसीसे वैर प्रीति करना नहीं जानता। सदा एक रस, 'वीत-राग भय क्रोध', मद-मोह-मत्सरसे विमुक्त नारद मुनिकी तरह अनन्त वायुमण्डलमें रमता रहता है। (अन्य मौलिकोंके साथ यौगिक नहीं बनाता।) वायुमें इसकी अत्यन्त कम मात्रा है। १००० ००० भाग वायुमें इसके मुश्किलसे १ या २ भाग होते हैं। तथापि यह वायुमेंसे ही निकाला जाता है।

सं० १९७५ वि० तक एक घन फुट हीलियमका मूल्य ४५००० रु० था, परन्तु जबसे यह प्राकृतिक गैसोंमेंसे निकाला जाता है तबसे इसके दाम ≡) घन फुट हो गये हैं।

गुब्बारोंमें थोड़े दिन पहले तक उज्जन और कोल गैस काममें आती थी। परन्तु इनके काममें लानेमें बड़ी जोखिम रहती है, क्योंकि दोनों गैस

जलनेवाली हैं और जो कहीं ओषजन उनके साथ जलनेके पहले मिल गई तो बड़े जोरका धड़ाका होता है। हीलियमका यदि इनके स्थानपर व्यवहार करें तो इन बातोंका डर न रहे। हां एक बात अवश्य है कि उज्जनसे हीलियम दुगना भारी पदार्थ है। अतएव उसकी उत्थापन शक्ति (lifting power) ऊपर उठानेकी शक्ति उज्जन से कम है; प्रायः ६२% है। परन्तु यह कमी और मूल्य की अधिकता जाखिमके कम हो जानेके सामने कुछ भी नहीं हैं। दूसरे हीलियमको गरम और ठंडा करके उत्थापन शक्ति बढ़ा घटा सकते हैं। ऐसा उज्जनके साथ करना बड़ा दुस्साहस क्या गुस्ताखी होगी, क्योंकि श्रीमती जीके मिज़ाज बिगड़े तो जानके लाले पड़ जाते हैं। हीलियम थैलोंमेंसे उज्जनकी अपेक्षा बहुत धीरे धीरे निकलता है, इस कारण भी उज्जनसे अधिक कामका है।

हीलियमके वैज्ञानिक उपयोग

हीलियमका द्रवीभवन-तापक्रम बहुत नीचा है। द्रव उज्जनकी सहायतासे जो नीचेसे नीचा तापक्रम पैदा कर सकते हैं वह केवल शून्य से (–२७२°श) से लगभग २०° ऊंचा होता है, पर द्रव हीलियमको शून्यमें उड़ने देनेसे –२७२°श तकका तापक्रम पैदा कर सकते हैं। इस प्रकार यद्यपि केवल शून्यका तो अभी तक हमें कुछ अनुभव नहीं हुआ है, परन्तु सूर्यपुत्रके प्रतापसे उसके एक डिग्री तकका हम अवश्य अनुभव कर पाये हैं।

यदि हीलियम बहुत मात्रामें मिलने लगे तो निम्न-तापक्रमोंपर गवेषण बड़े पैमानेपर सर्वत्र होने लगे और मनुष्यके ज्ञानकी सीमा और भी विस्तृत हो जाय।

केवल शून्यका तापक्रम सम्भवतः बड़ी बड़ी विचित्रता दिखलायेगा। परमशान्ति और परम निस्तब्धता इस तापक्रमपर उपलब्ध हो सकेगी। पदार्थोंके गुण भी इस तापक्रमपर अद्भुत रीतिसे बदल जायंगे। सम्भव है कि रेडियम आदि विकीरक रासायनिक पदार्थ भी इस तापक्रमपर सब तेज़ी भूल जायं और परिवर्तन होना बंद हो जाय।

कुछ लोगोंका खयाल है कि यदि ओषजनके साथ कुछ हीलियम मिलाकर गोते खोरोंको दिया जाय तो कर्बन द्विओषिदके फेफड़ोंसे अधिक पूर्णतासे निकलनेके कारण पानीके अन्दर रहनेका समय बढ़ सकता है।

आधुनिक रसायन

रसायन बनानेवाले लोहा आदि साधारण धातुओंको सोनेमें परिणत करना चाहते थे। यद्यपि आधुनिक रसायन शास्त्र यह तो करके नहीं बतला सका है, परन्तु एक पदार्थका दूसरेमें परिवर्तन होना सिद्ध कर चुका है। कुछ ऐसे पदार्थ हैं जो सदा टूटते रहते हैं जैसे रेडियम, यूरेनियम, थोरियम आदि। इन पदार्थोंको विकीरक कहते हैं। इनके टूटनेमें तीन प्रकारकी धाराएं इनमें से निकलती हैं—

(१) क-धारा—इन्हें एल्फा रेज़ कहते हैं। इनमें बहुत छोटे छोटे धनविद्युत्से विद्युन्मय कण रहते हैं।

(२) ख-धारा—इन्हें बीटा-रेज़ कहते हैं। इनमें ऋण विद्युत्के अत्यंत छोटे कण—विद्युत्कण या इलेक्ट्रोन—होते हैं।

(३) ग-धारा—इन्हें गामा रेज़ भी कहते हैं। यह अत्यन्त सूक्ष्म तरंगान्तरवाली तरंगावली होती है, जो बीटा-कणोंके निकलनेपर पैदा हो जाती है।

जहां कहीं एल्फा-कण निकलते हैं, हीलियम अवश्य पाया जाता है। वास्तवमें एलफा-कण विद्युन्मय हीलियमके परमाणु ही होते हैं। इसी लिए जिन चट्टानोंमें विकीरक पदार्थ विद्यमान होते हैं, उनमें हीलियम भी मिलता है। बहुत सी चट्टानों, खनिजों, मट्टियों, प्राकृतिक गैसों और स्रोत जलोंमें हीलियम मिलता है। यही कारण था कि रेमसेको हीलियमके दर्शन पहले क्लीवीएटमें हुए। उनसे पहले एक इटेलियन वैज्ञानिक पामियरी (Pamieri) ने वेसूवियसकी चट्टानोंके टुकड़ोंके रश्मिचित्रोंमें हीलियमका होना सम्भव बतलाया था।

---

# विज्ञान परिषद् प्रयागके पदाधिकारी

## सभापति

रायबहादुर मुं० गोकुलप्रसाद, एम.ए., एल-एल.बी., जज हाई कोर्ट, प्रयाग

## उपसभापति

महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथझा, एम.ए., डी.लिट., प्रिंसिपल संस्कृत कालेज, काशी

माननीय पं० मदनमोहन मालवीय, बी.ए., एल-एल.बी., प्रयाग

श्रीमान् एस. एच. फ्रीमेएटेल, जे. पी., आई-सी. एस., सी.आई.ई., मेरट

श्रीमती एनी बीसेएट, पी. टी. एस., मद्रास

रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ, एम.ए., सी.आई.ई., मेम्बर स्टेट कौंसिल, जयपुर

श्रीमान देवेन्द्रनाथ पाल, एम.ए., प्रिंसिपल गवर्मेण्ट कालेज, फैज़ाबाद

## प्रधान मंत्री

लाला सीताराम, बी.ए., एफ.ए.यू., प्रयाग

प्रो० सतीशचन्द्र देव, एम.ए., म्योरकालेज, प्रयाग

## मंत्री

प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी., म्योरकालेज, प्रयाग

प्रो० चुन्नीलाल साहनी, एम. एस-सी., गवर्मेंटकालेज, मांसी

## कोषाध्यक्ष

प्रो० ब्रजराज, एम.ए., बी. एस-सी., एल-एल. बी. कायस्थपाठशाला कालेज, प्रयाग

## अन्तरंगी

रायसाहिब, डा० अन्नोदाप्रसाद सरकार, एम.ए., डी. एस-सी., म्योरकालेज, प्रयाग

प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव., एम. एस-सी., कायस्थ पाठशाला कालेज प्रयाग

श्री० पुरुषोत्तमदास टण्डन, एम.ए., एल-एल. बी., वकील हाईकोर्ट, प्रयाग

प्रो० जगद्विहारीसेठ, बी. एस-सी. ( ओक्स ), एम. एस-सी., प्रयाग

बाबू श्यामसुन्दरदास, बी.ए., कालीचरण हाईस्कूल, लखनऊ

श्री० महाबीरप्रसाद, बी. एस-सी., विशारद गवर्मेंट हाईस्कूल, रायबरेली

प्रो० रामदासगौड़, एम.ए., काशी.

पं० श्री कृष्ण जोषी, फौरिन मिनिस्टर, नाभा

बाबू शिवप्रसाद गुप्त, रईस, बनारस

# विज्ञान पुस्तक भण्डार

सब प्रकारकी हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत और फारसी की पुस्तकें हमारे यहांसे बहुत किफायत पर मिलती हैं। पुस्तक लिखनेवालोंके सुभीतेके लिए पुस्तकोंके सम्पादन और छपाईका भी प्रबन्ध हमने किया है। नये पुस्तक लिखनेवालोंको तो इस प्रबन्धसे विशेष लाभ होगा ही, क्योंकि वह आरम्भमें प्रेसकी कठिनाइयों से बचेंगे और किफ़ायत से काम करा सकेंगे; पुराने लिखनेवालोंको भी अपना अमूल्य समय बचाना अब सम्भव हो गया है। हमारे प्रबन्ध से पुस्तक छपवानेमें उन्हें बड़ा सुभीता होगा।

निवेदक
मनोहरलाल भार्गव, मैनेजर।

---

### उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग—दूधकी शुद्धता, बनावट और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।)। २. ईख और खांड-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड बनानेकी रीति ।-)। ३. करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ।॥)। ४. संकरी करण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति -)। ५. सनातन धर्मरत्न त्रयी—धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।)। ६. कागज़ काम, रद्दीका उपयोग-)। ७. केला-मूल्य -)। ८. सुवर्णकारी-मूल्य ।) ९. खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ।॥)। १०. नींबू नारंगी, ११. काल समीकरण मध्यम स्पष्टकाल ज्ञान, १२. निज उपाय-औषधोंके चुटकुले, १३. मूंगफली=)॥। १४. कृत्रिम काष्ठ =)मूल्य -) १५. आलू मूल्य ।)

इनके सिवाय, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, क्ष्मगणितोपयोगी सूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), नामक ग्रन्थ छप रहे हैं।

मिलनेका पता:—पं० गंगाशंकर पचौली—भरतपुर वा बूंदी

यह दवा बालकोंको सब प्रकारके रोगोंसे बचाकर उनको मोटा ताज़ा बनाती है। कीमत फी शीशी ॥)

दादको जड़से उड़ानेवाली दवा। कीमत फी शीशी ।)

मंगानेका पता—सुख-संचारक कंपनी मथुरा

पं. सुदर्शनाचार्य्य बी० ए० द्वारा सुदर्शन प्रेसमें मुद्रित, तथा विज्ञान परिषद्, प्रयागसे प्रकाशित।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ७७
भाग १३
Vol XIII.

सिंह १९७८। अगस्त १९२१

Reg No A 708
संख्या ५
No. 5

# विज्ञान

## प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी,



प्रकाशक
विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३) ]

[ एक प्रतिका मूल्य ।)

# विषय सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति॥ तै० उ०।३।५॥

भाग १३ } सिंह, संवत् १९७८। अगस्त, सन् १९२१ { संख्या ५

## पशु, बर्बर और मनुष्य

जब एक मनुष्य दूसरेको कोई बुरा काम करता हुआ देखता है तो उसपर अपनी अप्रसन्नता, अपना क्रोध, प्रकट करनेके लिए उसे "पशु, बर्बर" इत्यादि अपशब्दों द्वारा तिरस्कृत करता है। परन्तु क्रोध शान्त होनेपर उससे यह प्रश्न किया जाय कि भाई "पशु, बर्बर और मनुष्य"में क्या भेद है, क्या समझ कर तुम इन शब्दोंका प्रयोग दूसरोंपर घृणा प्रकट करनेके लिए करते हो, तो प्रायः सभी मनुष्य, वह भी जिनकी ज़बान-पर यह शब्द रात दिन चढ़े रहते हैं, बग़लें झांकने लगेंगे और कोई समुचित उत्तर न दे सकेंगे।

गोरोंने तो बर्बर शब्दके अतिरिक्त असभ्य, अवनत, अशिक्षित अनेक शब्द और निकाल लिये हैं और समझते हैं कि वह खुदाई फौजदार और जगत-शिक्षक हैं। संसारकी काली और पीली जातियोंको शिक्षा दीक्षा देकर उन्हें मनुष्य बनाने-का ठेका ईश्वरने उन्हें सौंप दिया है और ईसू मसीह तो सच्चे धर्म और सभ्यताका प्रचार करके इन डूबी हुई जातियोंको उबार लेनेका काम उनके गले मढ़ गये हैं। वास्तवमें उन्होंने की भी बड़ी वफ़ादारी है। आस्ट्रेलिया देश सारेका सारा सफेद कर दिया, प्रकृतिकी भूलसे जो काले छींटे वहां पड़ गये थे, उन्हें देवीके रोगियोंके उतारे हुए कम्बलों-से ऐसा साफ किया कि साबुन भी मैले कपड़ेको क्या करेगा। अमेरिकामें भी वही सफाई की है। जो कुछ काले बचे कुचे रह गये हैं उनकी वह काया पलट की है कि बड़ी मुश्किलसे पहचाने जासकते हैं, पर उनकी भी काट छांट जारी है। गोरे इतने उदारहृदय हैं कि एक पीली जातिकी जातिको गोरोंमें गिनने लग गये हैं और उसके पूर्वीय देशको पश्चिममें। खैर, हमें तो वैज्ञानिक दृष्टिसे देखना यह है कि इन तीनोंमें वास्तविक अन्तर क्या है।

प्राणिशास्त्रकी दृष्टिसे तो हम केवल दो ही विभाग कर सकते हैं—मनुष्य और पशु। पशुओं-की जाति और उपजाति अनेक हैं, पर मनुष्य सब एक ही उपजातिके हैं। चाहे कृत्रिम जातियोंमें वह भले ही विभक्त हों, पर प्रकृतिके दरबारमें वह

सब एक ही उपजातिके समझे जाते हैं। चाहे आप हवशीको लें और उसका संयोग एक गोरांगनासे करादें और चाहे गोरांगको लेकर हवशिनसे संयोग करादें; दोनों दशाओंमें गर्भाधान हो सकता है-यही एक उपजातिके होनेका सबसे बड़ा प्रमाण है। पशु और मनुष्यमें संयोग करादेनेसे गर्भाधान नहीं हो सकता। परन्तु कुछ पशु ऐसे हैं, जैसे पुच्छ-हीन बन्दर, जो मनुष्यसे बहुत मिलते जुलते हैं। प्रो० लिंकीविक्ज़का कहना है कि यदि मनुष्यका बालक बन्दरोंमें छोड़ दिया जाय तो वह उनकी ही तरह-से चलने फिरने और बोलने चालने लगेगा और बड़े होनेपर बन्दरियोंसे संभोग कर सन्तानोत्पत्ति कर सकेगा। उनका कहना है कि जिस प्रकार क्रमशः विकाश होनेसे बन्दरसे मनुष्यकी उत्पत्ति हुई है उसी प्रकार अधःपतन होनेसे मनुष्यसे बन्दर बन सकते हैं और पुच्छहीन बन्दर उन जातियोंके अवशेष हैं जो एक समय संसारमें वैभवशाली और पराक्रमी हो चुकी हैं। इसका पूर्ण वर्णन अन्यत्र मिलेगा।*

अब बड़ी कठिनाईका सामना है। जो मनुष्यमें और पशुओंमें विभाजक रेखा थी उसका सर्वथा विलोप होगया। अब तो सब अंधाधुंध अंधेर दिखाई पड़ता है। प्रत्येक पदार्थकी पहचान उसके गुणोंकी परीक्षासे होती है। इसलिए इन सबके गुणोंकी परीक्षा करके देखना चाहिये। एक बात तो स्पष्ट ही है कि बर्बर आकार, विकार, स्वभाव, आदिमें मनुष्यसे अधिक मिलते हैं अतएव उनकी गणना मनुष्योंमें ही की जायगी, न कि पशुओंमें। प्राणिविद्याकी दृष्टिसे जो अन्तर सभ्य मनुष्य और पशुओंमें है, वही बर्बर और पशुओंमें भी है। परन्तु बर्बराति बर्बर मनुष्य और पशुमें क्या भेद है, यह प्रश्न इतना सहज नहीं जितना कि वैसे ही प्रतीत होता है। डार्विनने "मनुष्यका अवतरण" नामक ग्रन्थ जब रचा था, तो इस प्रश्नपर बड़ा वादविवाद और शास्त्रार्थ हुआ था। उस समय इस प्रश्नके हल करनेका सरल उपाय मस्तिष्कोंके

* देखिये "मनुष्य में छिपा हुआ बन्दर" शीर्षक लेख।

### मस्तिष्कभार

भारकी तुलना करना समझा जाता था। लोगोंका कहना था कि सभ्य यूरोपियन और बर्बरातिबर्बरके मस्तिष्कोंमें महद् अन्तर है, परन्तु बर्बरके मस्तिष्क और गौरिल्ला बनमानसके मस्तिष्कके भारमें बहुत कम अन्तर है। हक्सलेने जांच करके यह निकाला कि गौरिल्लाके मस्तिष्कका भार २० औंस; झाड़ी-वासी ( Bush man ) जैसे निम्न श्रेणीके बर्बरका ३२ औंस और यूरोपियनका ६५ या ६६ औंस होता है।

पर क्या इस तुलनासे वस्तुतः कोई ठीक परि-णाम निकल सकता है? क्या इससे मनुष्य, बर्बर और बानरमें जो अन्तर है उसका कुछ हिसाब मालूम हो सकता है? टिटमौस नामक पक्षीका मस्तिष्कभार शरीरके अनुपातमें यूरोपियनसे अधिक होता है; स्त्रियोंका मस्तिष्कभार पुरुषोंसे कम होता है, पर क्या कोई कह सकता है कि पुरुष स्त्रियोंसे अधिक बुद्धिमान और चतुर होते हैं। अथवा टिटमौस अधिक चैतन्य होता है? सच पूछिये तो लम्बी पूंछवाले टिटमौस तो इतने बेव-कूफ होते हैं कि उनकी पूँछ घोसलोंमेंसे इतनी निकली रहती है कि नटखट लड़के उनको सदा खींचा करते हैं, पर उनमें अकल नहीं आती। क्या "कुल्लुन तवीलुन अहमकुन" वाली बात यहां भी ठीक है।

### औज़ारों या हथियारोंका प्रयोग

इसके अतिरिक्त और भी कई बातोंकी तुलना करके बर्बर और पशुमें विभेद करनेका प्रयत्न हुआ है। प्रायः मनुष्यकी सभी जातियोंमें (races) किसी न किसी प्रकारके औज़ारों और हथियारोंके काममें लानेकी प्रथा चली आती है। परन्तु पशु भी अस्त्रोंका प्रयोग करते हैं जैसा कि नीचेके उदाहरणोंसे प्रकट होगा।

डा० वालेसका कथन है कि पुच्छहीन बन्दर जैसे ओरंग-यूटेन आत्म-रक्षाके उद्देश्यसे लकड़ी और फलोंको फेंकता है। "यह सत्य है कि मनुष्यको लक्ष्य करके वह नहीं फेंकते, किन्तु नीचे-को डालते हैं।......एक बार एक मादा वृक्षपर चढ़ गयी और वहांसे भारी भारी टहनियों और फलोंकी दस मिनट तक निरन्तर वर्षा करती रही, जिससे पेड़के पास तक जाने की हिम्मत न पड़ी। ऐसा जान पड़ता था कि उसे बड़ा क्रोध आ रहा है। वह तोड़ती थी और फेंकती थी और साथ ही साथ घोर शब्द करती थी।" श्री० पाम भी ऐसी ही एक घटनाका उल्लेख करते हैं। एक बार वह एक बन्दरको जीवित पकड़नेका प्रयत्न कर रहे थे। उन्हें उसकी मारसे बचनेका बड़ा प्रयत्न करना पड़ा। वह चार बजे तक उसे घेरे रहे, परन्तु वह हरी टहनियां और लकड़ीके टुकड़े तोड़ तोड़कर फेंक रहा था। अन्तमें उन्होंने उसे मार देनेका ही निश्चय किया।

बनमानुस ही बैरियोंपर पत्थर नहीं फेंकते किन्तु और दूसरे बन्दर भी शाखा, पत्थर, ढेले, आदि आक्रमणकर्ताओंपर बड़ी फुरतीसे फेंकते हैं।* अतएव स्पष्ट है कि यह पशु सात आठ वर्षके बालकके समान पत्थर इत्यादि फेंककर आत्म-रक्षा कर सकते हैं।

आत्म रक्षाके अतिरिक्त पत्थर आदिका उपयोग

फलोंको फोड़कर मींगी निकालनेमें भी चिम्पेनज़ी पत्थरोंका उपयोग करते देखे गये हैं। इस बातमें वह रिवर ड्रिफ़्ट मेन ( River Drift man ) के समान हैं। इसी प्रकार एक पालतू बन्दर था, जो न केवल फलोंको तोड़नेके लिए पत्थर काममें लाता था, बल्कि काम हो चुकनेपर उसे घासमें छिपा भी आता था। इससे ज्ञात होता है कि उसे कुछ कुछ 'सम्पत्ति' और "स्वत्व"का खयाल होने लगा था। ईलियट महोदय लिखते हैं कि उन्होंने एक बन्दर-को एक लकड़ी छेदमें डालकर उससे डांडीका† काम लेते देखा था। हार्टमेन महोदयने एक और बन्दरका हाल लिखा है। वह अपने रक्षकके जूते छिपा कर रख दिया करता था। जब रक्षक उसको पकड़नेको दौड़ता था तो बन्दर जूता निकालकर उसके सिरपर फेंक देता था। "उसका जूता और उसीका सिर"‡।

पक्षियों का अस्त्र सम्बन्धी ज्ञान

ऊपर जितनी घटनाएँ लिखी हैं उनमें मनुष्य-की सी बुद्धिमत्ता टपकती है। यह चतुराई बनमा-नुसोंको छोड़ कुछ पक्षियोंमें भी पाई जाती है।

राजकाक ( Rook ) बालूतके फलोंको (acorns) पृथ्वी या पत्थरपर पटक पटक कर तोड़ते हैं। थ्रुस पक्षी शम्बूकों ( snail ) को ले जाता है और चट्टानोंसे टकरा कर उन्हें तोड़ता है। कभी कभी तो वह किसी चट्टान विशेषको चुन लेते हैं और सदा उसीपर शिकार ले जाकर तोड़ कर खाते हैं।

इससे भी अधिक रुचिकर कुछ चिलिके(Chile) समुद्री पक्षियोंका वृत्तान्त होगाः—"वहां दक्षिणी द्वीप समूहोंपर घना जङ्गल उग रहा है, परन्तु समुद्र तटपर बहुत ऊँचे वृक्षहीन करारे खड़े हैं। जो समुद्री पक्षी मछली और शम्बूक जातीय जीवोंका भक्षण कर निर्वाह करते हैं, वह दैनिक तरङ्गोंसे समुद्र तट पर फेंके हुए प्राणियोंको उठा-कर ले जाते हैं और करारोंपर इकट्ठा करते हैं। कोषोंमेंसे नरम खाद्य निकालनेमें वह बड़ी चतु-राई दिखाते हैं। कोषको वह सावधानीसे देखा करते हैं। जहां वह खुला कि उन्होंने उसमें लकड़ी या कत्तल लगा दी। फिर वह खुलाका खुला रह जाता है और पक्षी महोदय आनन्दसे भीतर भरा मसाला चट कर जाते हैं।" जो यात्री इस प्रदेशमें होकर निकलते हैं, यह तमाशा अपनी आंखों देख सकते हैं।

* हार्टमेन कृत 'Anthropoid Apes' पृष्ठ २४१

† [ The Romance of Savage life pp. २० ]

‡ पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृष्ठ २७६

कुछ पक्षी कोषके तोड़नेकी एक और भी तरकीब करते हैं। वह शिकारको पकड़कर ऊपर उड़ जाते हैं और पर्याप्त ऊँचाईपर पहुंचनेपर कोषको डाल देते हैं और फौरन पर बांधकर तेज़ीसे उसके ऊपर गिरते हैं। कोष पृथ्वीपर गिरकर ज्योंही टूटता है त्योंही पक्षी वहां पहुंचकर उसे खा जाते हैं ?

कुछ और बातोंपर विचार

हम देख चुके हैं कि मस्तिष्क अथवा हथियारोंके प्रयोगपर विचार करके हम मनुष्य, बर्बर और पशुओंमें स्पष्ट भेद नहीं जान सकते। उनमें भेद है तो परिमाणका, न कि प्रकारका। अतएव अन्य बातोंपर भी विचार करना आवश्यक है। जो भेद विद्वानोंने बतलाये हैं यह हैं:—

१—कोई पशु बोलता नहीं है।

२—आदमी ही पिछली टांगोंपर चलता है।

३—पढ़ना, लिखना और हिसाब लगाना मनुष्यको ही आता है।

४—न्याय, नीति और कर्तव्यका ख्याल मनुष्यको ही होता है। कुछ मनुष्योंमें धार्मिक भाव भी होते हैं।

अब इन्हीं बातोंपर विचार करना है। आइये देखिये हमारे समान रूपधारी बनमानुस इन बातोंमें हमारा कितना साथ देते हैं।

१—भाषा

बहुतसे प्रयोग किये गये हैं, जिनसे पता चलता है कि पशुओंकी भी भाषा होती है। हालमें फोनोग्राफने इस विषयकी गवेषणामें बड़ी सहायता की है। इस विषयमें एक लेख सरस्वतीमें निकला था वह पाठक पढ़ चुके होंगे; माडर्न रिव्यूमें भी एक लेख निकला था। अतएव यहांपर विस्तृत वर्णन करना उचित नहीं है। मुर्गियोंकी भाषा, जहां तक मालूम है, २० शब्दोंकी बनी हुई है। वहशियोंकी भाषा भी ऐसे ही असंस्कृत शब्दोंकी क्या, चीखों या खटकोंकी, बनी होती है। उनकी भाषाकी पदावली बहुत संकीर्ण होती है। परन्तु पशुओंसे अधिक होती है, क्योंकि नीचातिनीच बर्बरके भी कुछ भाव ऊंचेसे ऊंचे पशुसे भी अधिक विकसित और जटिल होते हैं।

२—पिछली टांगोंपर चलना

प्रायः मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो पिछली टांगोंपर खड़ा हो गया है, सदा खड़ा ही चलता है और जिसने अपने अगले पैर अन्य कामोंके लिए स्वतंत्र कर दिये हैं। मनुष्यके मेरुदण्डके खममें परिवर्तन हो जानेसे अनेक लाभ हुए हैं, बल्कि यदि यह कहा जाय कि उसकी सारी उन्नति इसी घटनाकी बदौलत है तो अत्युक्ति न होगी। इसका सविस्तर वर्णन अन्यत्र दिया जायगा। कई जानवर पिछली टांगोंपर खड़े हो सकते हैं जैसे बन्दर और गिलहरी। वह कुछ दूर पिछली टांगोंपर चल भी सकते हैं, परन्तु न बिलकुल सीधे खड़े ही हो सकते हैं और न सुविधा पूर्वक कुछ समय तक चल ही सकते हैं। गिबन जातिका बन्दर मनुष्यसे इस बातमें बहुत मिलता है, परन्तु उसके खड़े हुए जिस्मका कारण टहनियोंसे लटके रहनेकी आदत है, अतएव चलनेका काम अब भी उसके चारों पैर करते हैं। डा० बरो ( Dr. Burrough ) लिखते हैं कि गिबन हाथोंको सिरपर रखकर और उन्हें कुहनी और कलाईपर खम देकर अपने शरीरको ऐसा साध लेते हैं कि मज़ेसे मटकते हुए दौड़ते चले जाते हैं। इस प्रकार भी उन्हें हाथोंसे स्वतंत्रता पूर्वक काम लेना मुश्किल हो जाता है। चिम्पैंज़ी भी पीठपर हाथ रखकर या गर्दनपर हाथसे हाथको पकड़कर, पिछली टांगोंपर खड़ा हो कर चल सकता है। बन्दर नचानेवाले बन्दरोंको इसी प्रकार प्रायः चलाया करते हैं। औरंग-यूटेन लकड़ीके सहारे चल सकता है, क्योंकि उसके हाथ पैर अन्दरको मुड़े होते हैं। गोरीला कभी कभी उसी प्रकार चलता है जिस प्रकार हाथोंका सहारा लेकर वह लोग चलते हैं जिनकी टाँगे बंध जाती हैं अर्थात् रोगके कारण फैल नहीं सकतीं।

मनुष्यके खड़े हो जानेसे उसके हाथकी अंगुलियों और अंगूठोंमें अद्भुत परिवर्तन आ गया है। वास्तवमें अंगूठा मनुष्यकी विचार शक्तिकी प्रौढ़ताका द्योतक है। पैरका अंगूठा मनुष्यका उतना उपयोगी नहीं है जितना कि बन्दरोंका होता है, पर उसको साधा जा सकता है। बेल्जियममें एक हथकटा चित्रकार था, जो अपना काम पैरके अंगूठेमें कूंची पकड़कर करता था। इसी प्रकार बनमानुसोंकी हाथसे काम लेना सिखाया जा सकता है। बन्दरोंको तमाशेमें लकड़ी उठाकर बन्दरियोंको मारते सबने देखा होगा। चम्मच उठाकर प्यालेमेंसे चाय पीना, ताला खोलना या बरमेसे छेद करना उन्हें सिखाया जा सकता है। जिस चिम्पेंज़ीको अन्तिम काम सिखाया था वह बड़ा चालाक था। वह अलमारी खोलकर चीनी चुरा कर खा जाता था और बादमें आलमारी पूर्ववत बन्द कर देता था।

३—लिखना, पढ़ना, गणित

अभी तक किसी पशुको लिखना पढ़ना नहीं सिखा सके हैं, पर ऐसे मनुष्य भी बहुत हैं जिनको लिखना पढ़ना न आता है, न उनके सिखानेमें सफलता होती है। पर यह बात अवश्य है कि लिखना पढ़ना सीखनेकी सामर्थ्य उनमें होती है। प्रायः बर्बर लोग लिखना पढ़ना नहीं जानते। कुछ घटनाओं जैसे शिकार खेलना, नावमें चलना, सूर्य आदिका उदय अस्त होना, इत्यादिका वह भट्टी, पत्थर, हड्डी इत्यादिपर खुदाई करके उल्लेख कर देते हैं, पर साधारणतया लिखना या पढ़ना उन्हें नहीं आता। जब भाषा ही उनकी इतनी पिछड़ी हुई है तो लिखना पढ़ना कैसे आ सकता है।

डा० हर्म्सने लिखा है कि जब वह लिखने बैठते थे तो देखा देखी उनका पालतू चिम्पेंज़ी भी कभी कभी क़लम उठाकर दवातमें डुबोता और कागज पर किलकिल कांटे बनाया करता था। यही पशु* गीले कपड़ेसे आईनेभी साफ किया करता था।

* हार्टमेन—पृष्ठ २७१

श्री० बुचनरके आधार पर यह कहा जाता है कि आस्ट्रेलियाके कुछ निवासी† चारसे अधिक नहीं गिन सकते। ब्राज़िलके कुछ बर्बर तीनसे अधिक नहीं गिन सकते हैं, उनकी भाषामें ४के लिए शब्द नहीं है। पर ऐसे बहुत से मनुष्य मिलेंगे जो २० तक नहीं गिन सकते, पर जो लाखोंका लेन देन करते हैं। भारतमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे। प्रायः स्त्रियां और कुछ सतजुगी बूढ़े बीससे अधिक नहीं गिन सकते। बड़े बड़े पण्डित भी ऐसे मिलेंगे जो गणितके अध्ययनके दोषी नहीं हैं।

कुछ जानवर भी चार तक गिन सकते हैं। इसका पता बड़े मनोरञ्जक ढंगसे चला। केप कोलोनीमें बोस्क बर्ग (Boschberg) के जङ्गलोंमें बन्दरों (बेबून) के झुण्डके झुण्ड रहते हैं। यह जानवर जब मौक़ा पाते सोमरसेट ईस्ट (Somerset East) के खेतोंमें चले आते हैं और खेतीको तहस नहस कर जाते हैं। यदि कोई आदमी खेतमें जाकर छिप रहता है तो वह नहीं उतरते। उनके पकड़नेकी तर्कीब बस यही है कि पांच आदमी जावें, उनमेंसे एक वहां रह जाय और चार चले आवें। बन्दर समझते हैं कि सब लौट गये और उतर आते हैं। इससे पता चलता है कि उन्हें चार तक तो गिनना आता है, परन्तु ४ और ४से अधिक उनके लिए सब अनन्त है और यकसां है।

डा० रोमेनीज़ने एक चिम्पेंज़ीको ५ तक गिनना सिखाया था। ५ और १० के बीचमें वह गल्ती कर जाता था। यही ज़ूका प्रसिद्ध सैली (Sally) चिम्पेंज़ी था।

४—नीति और धर्मका भाव

शकर चुराकर आलमारी पूर्ववत बन्द कर देनेवाले बन्दरका हाल हम पहले लिख चुके हैं। गड़रियोंके कुत्ते जो भेड़ बकरियोंको मारकर खानेके आदी हो जाते हैं रात्रिके समय हत्याकर चुकनेपर

† डार्विन—Descent of man; टेलरकृत Primitive culture: पृष्ठ २४२।

जब घर लौटते हैं तो बड़ी सावधानीसे पंजे और मुंह परसे रुधिरके चिन्ह धो डालते हैं। यह दो घटनाएं पशुओंकी बुद्धिमत्ताकी ही प्रमाण नहीं हैं वरन् यह भी प्रकट करती हैं कि अनुचित कार्यको छिपानेकी इच्छा उनमें मौजूद है: यह दूसरी बात है कि उस कामको वह बुरा मालिकके नाराज़ होनेके भयके कारण समझते हैं। परन्तु तो भी मालिकका खुश करना—अपने लाभके लिए ही सही—वह अपना कर्तव्य समझते हैं।

बिंजारोंके कुत्तोंका हाल बहुत सुननेमें आया है। कभी कभी तो मालिकके क़त्लका हाल उन्होंने सैकड़ों कोस आकर बतलाया है और उसके सम्बंधियोंको वहां तक पहुंचा दिया है, जहां वह मार कर गाड़ दिया गया था। कुत्ता बरफ़में दबे हुए आदमियोंको निकाल लानेका हाल भी अक्सर सुननेमें आया है। इन कामोंमें यह जानवर बड़ी चतुराई दिखाते हैं।

बनगाय, हाथी, बन्दर बड़े बड़े गिरोहोंमें रहते हैं, परन्तु इनकी तुलना मनुष्य समाजसे नहीं की जाती, क्योंकि प्रत्येक समाज कुटुम्बोंका संग्रह होता है, परन्तु इन गिरोहोंमें एक कुटुम्ब ही होता है। जो सबसे ज़बरदस्त नर हुआ वही दस बीस स्त्रियोंका मालिक कुछ बच्चों सहित एक गिरोहमें रहता है। कुटुम्बका भाव उनमें पैदा नहीं होता। बनमानुसोंमें कुटुम्बका भाव तो पैदा हो जाता है, परन्तु समाज बनाना उनके लिए अस्वाभाविक है। बच्चोंपर प्रेम, स्त्री और बच्चेकी रक्षा करनेका दायित्व, उनके लिए अपनेको जोखिममें डाल देना, बच्चों और स्त्रियोंसे काम लेना और सेवा-कराना, और ठीक समयपर काम न होते देख क्रोध और अप्रसन्नता प्रकट करना तथा अपराधीको दण्ड देना आदि बातें बनमानुस करते देखे गये हैं।

वान कोपेन फेल्स ( Von Koppen fels ) ने एक बार एक गौरिला कुटुम्बको देखा। नर आरामसे एक स्थानपर तकिया ( सहारा ) लगाये बैठा था। मादा और दो बच्चे पासके ही एक पेड़से फल तोड़ तोड़कर लाते थे और उसे देते थे। जहाँ वह काममें सुस्ती दिखाते या अपने लिए ज़्यादा भाग रखकर उसे थोड़ा देते, वह गुर्राता था और कभी कभी चपत भी जड़ दिया करता था। जब उसे क्रोध आ जाता है तो बच्चे तो दूर ही रहते हैं। पर मादा साहस कर मनानेके लिए आगे बढ़ती है और फलफूल देती है। उधर नर मुंह फाड़, हाथ उठा, भौंह नचा अपनी अप्रसन्नता प्रकट करता हुआ नखरे दिखाता है। जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो उनमें डटकर लड़ाई होती है और विजेता अधिकारी होता है। विजित जङ्गलमें भाग कर सन्यास ले लेता है। गृहस्थीका प्रबन्ध और देखभाल करनेमें कुलपति बड़ा कुशल होता है। नर पेड़के नीचे सोता है, जिसमें कोई पेड़पर चढ़े तो मार कर भगा दे और मादा और बच्चे टहनियोंमें घोंसलेमें सोते हैं।

जब कभी कोई नव आगन्तुक आकर शान्ति भङ्ग करता है तो मादा बच्चोंको लेकर भाग जाती है। गौरिला पहले यह देख लेता है कि कुटुम्बीजन रक्षित स्थानमें पहुंच जायंगे, तब वहांसे टलता है; किन्तु उसका कोई पीछा करता है तो वह ठहर कर वैरीपर आक्रमण करता है। वह पहले डराता है। वह वज्रके समान गर्जन करता है। तदनन्तर झपट कर बढ़ता है, पर बीचमें ही ठहर कर घोर गर्जन करता है और बड़े ज़ोरसे छाती पीटता है, जिससे जुझाऊ बाजेका सा शब्द निकलता है। इस समय उसके माथेकी झालर बड़े वेगसे ऊपर चढ़ती और उतरती है और उसके बाल खड़े हो जाते हैं और वह बारंबार दांत निकाल कर डराता है। फिर वह कुछ और आगे बढ़कर दुबारा यह सब तमाशा दिखाता है, जिसे देख अच्छे अच्छे बहादुरोंके कलेजे हिल जाते हैं। यदि शिकारी भाग खड़ा हुआ तो गौरिला लपक कर उसे पकड़ लेता है और चीर कर चूर कर देता है। यदि न भागा तो गौरिला उसके पास आठ दस गज़की दूरीपर पहुंचकर सर्व कद खड़ा हो जाता है। उसके

आजानुवाहु, बड़े बड़े भयानक जवड़े, डरावनी सूरत, विशालवक्ष और फुलाये हुए गाल, उसे मूर्तिमान कालके सदृश बना देते हैं। यह और भी संकटका समय होता है, क्योंकि बन्दूक चलानेका यही समय होता है। यदि निशाना चूका या बन्दूक हाथ से छूटी तो गौरिला बन्दूकको पकड़ कर उसके टुकड़े टुकड़े कर डालता है या चबाकर चपटा कर देता है*। सच पूछिये तो गौरिला सच्चे क्षत्रियकी नाईं लड़ता है। पहले दूरसे ही भगा देनेका प्रयत्न करता है, तब वार करता है।

बनमानुसोंका अपत्य स्नेह

अपत्य स्नेहमें बनमानुस मनुष्यसे किसी प्रकार कम नहीं हैं। सन्तानकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त बन-मानुस जान तक झोंक देते हैं। डा० सेवेजने एक बहुत ही करुण कथाका वर्णन किया है। वह एक बनमानुसोंके कुटुम्बकी शिकार करना चाहते थे। उन्हें एक नर, मादा और दो बच्चे (एक नर और एक मादा) दिखलाई दिये। वह झपट कर पति और सन्तान सहित पेड़से उतर कर झाड़ीमें घुस जाना चाहती थी। उसने किया भी ऐसा ही, किन्तु नर बच्चा वहीं रह गया। इस कारण उसकी सहायतार्थ लौट आयी, पेड़पर चढ़ गयी और बच्चेको गोदमें उठा लिया, उसी क्षण उसपर गोली चलाई गयी और वह मर गयी। यह काम यदि बर्बरों और पशुओंका न था तो किसका था! इस प्रकार एक बार हब्श देश (Abyssinia) में ब्रीह (Brehm) के कुत्तोंने बेवूनोंके एक झुण्डको घेर लिया था। बुड्ढे नर उतर आये और कुत्तोंको दांत दिखा दिखा कर डराते और दूर भगाते रहे, यहां तक कि सब मादा और बच्चे रक्षित स्थान-पर पहुंच गये। परन्तु एक बच्चा एक बड़े ढोकेपर चढ़ गया था, उसे कुत्तोंने चारों ओरसे घेर लिया, बच्चा पुकार उठा। उसकी पुकार सुनकर एक बड़ा बैवून उतर आया और उसने कुत्तोंको डराकर भगा दिया। यह बच्चा भी जब उपयुक्त स्थानपर पहुंच गया, तो वह लौट गया।

स्वामिभक्ति, कृतज्ञता और प्रेमके भाव भी पशुओंमें पाये जाते हैं। घायल सवारोंको घोड़े रणभूमिसे ले भागते हैं और अच्छे स्थानपर पहुंच उनकी रक्षा करते रहते हैं। इस बातके प्रमाण रूप अनेक कथा और कहानियां हैं। लेखकके पास एक बैल था, जिसका नाम सांवलिया था। जब यह मरा तो इसकी जोड़ीके बैलने खाना दाना त्याग दिया और पाँच छः दिनके अन्दर ही मर गया। कुत्ते बिल्लीका वैर मशहूर है, परन्तु लेखकके घर-में ही टिपुआ कुत्ता और भूरी बिल्ली पली हुई थी। दोनोंका बड़ा प्रेम था। एक बार एक बालक घरमें उत्पन्न हुआ तो दोनों सोहरमें खाटके पास बैठे रहते थे और बालककी चौकसी किया करते थे।

एक बार पशु उद्यानमें (Zoological gardens) एक आदमी एक पिंजरेकी सफाई कर रहा था। उसी समय उसपर एक बैवून टूट पड़ा। उसी पिंजरेमें एक छोटा अमेरिकन बन्दर रहता था, जो बैवूनसे बहुत ज्यादा डरता था। उसने जो देखा कि बैवून उस रक्षकको मार ही डालेगा तो झपट कर उसपर जा गिरा और नोचने, काटने और चिल्लाने लगा। इसका यह प्रभाव हुआ कि बैवून-ने उस मनुष्यको छोड़ दिया। इस प्रकार उस छोटेसे बन्दरने अपने रक्षकके प्रति कृतज्ञता दिख-लाई और उसकी जान बचाई।

ड्रेस्डनके पशुउद्यानमें एक बन्दर रहता था। उसे जीर्ण ज्वर हो गया था। मरनेके समय उसने डा० शौफ (Dr Schopf) की गर्दनमें बाहें डाल दीं। वह उनकी तरफ देखता रहा, उसने उनको तीन बार चूमा और हाथमें हाथ रख कर आंख बन्द करलीं और सदाके लिए सो गया।

औरंग-यूटेन अपने बच्चोंको नदियों और नालों-में लेजाकर न्हिलाया करते हैं। बच्चे जब तक

* उन प्रान्तोंमें प्रायः फलीतेदार बन्दूकें ही प्रचलित हैं, जो मामूली पैपके टुकड़ोंकी बनी होती हैं।

छोटे होते हैं नहानेके समय चीखा करते हैं, परन्तु बड़े होनेपर नहाना पसन्द करते हैं। सुनते हैं कि मनुष्य ही ऐसा जानवर है जो हंसना जानता है, परन्तु यह कथन सत्य नहीं जान पड़ता। हमारे पास एक बंदरिया थी। जब उसे पुचकारते थे तो छातीसे सिर लगाकर चिपट जाती थी और जब उसके गुलगुली करते थे तो उसके गालोंमें शिकन पड़ जाती थीं और दांत निकल आते थे। क़हक़हा लगाना बेशक मनुष्य ही को आता है, पर एक प्रकारसे हंसना बन्दर भी जानते हैं।

पशुओंमें भी बालक और बढ़ेके पहचान लेनेकी शक्ति होती है। मेरे पास एक बिल्ली थी। उसकी एक बालक, जिसकी दो वर्षसे कम उम्र थी, बुरी गत किया करता था। उसको उठाता था, फिर पटक देता था; कभी उसके पेटपर बैठ जाता था; उसके मुंहमें हाथ दे देता था; पर वह कभी उसे काटती न थी।

सारांश

सभ्य मनुष्य, बर्बर और पशुओंमें विभेद करना बड़ा मुश्किल है; विशेषतः बर्बर और सभ्य मनुष्यमें तो कुछ खास तौरका फ़र्क़ बतलाना बड़ा मुश्किल है। तथापि जिन बातोंपर अभी तक विचार किया है, उनकी यहां सारिणी दे देना उचित होगा।

| | |
|---|---|
| मनुष्य सीधा चलता है। | बन्दर तीन वर्षके बालककी नाईं काँपते और ठोकर खाते चलते हैं। |
| मनुष्यके पास औज़ारहोतेहैं। | बन्दर आदि भी कुछ औज़ारोंका प्रयोग करना जानते हैं। |
| कुछ बर्बरोंमें नीतिका भाव होता है। | कुछ बन्दरोंमें साहस, प्रेम, कृतज्ञता शौच आदिके अंकुर पाये जाते हैं |
| बर्बर तीन चार तक गिन सकते हैं। | कुछ बन्दर चार या पांच तक गिन सकते हैं |
| बर्बरोंके दाँतका दर्द नहीं होता। | कुछ बन्दरोंके दांतका दर्द होता है। |

हमने विस्तार पूर्वक पशुओंके नैतिक भावों, उनके आचार, विचार और व्यवहारोंपर विचार किया है। अबतक यह स्पष्ट हो गया होगा कि पशु मनुष्योंसे बहुत मिलते जुलते हैं। तथापि कोई भी मनुष्य ऐसा न होगा जो मनुष्य और पशुमें अन्तर न समझता हो और एक को दूसरेसे पहचाननेमें किसी प्रकारकी भूल करे। हाथ, पैर, आंख, कान, नाक, आदि पशुओंमें और मनुष्योंमें प्रायः एकसे हैं। क्षुधा, पिपासा, कामवासना, भय, आदि दोनोंमें समान हैं, बल्कि इन बातोंमें पशु मनुष्यसे बढ़कर हैं। पशुओंको न कब्ज़ सताता है; न गर्मी, आतशक, प्रमेहादि रोग होते हैं। उनका आहार, विहारका समय और परिमाण दोनों निश्चित हैं। मनुष्यके लिए कोई नियम नहीं है। यह उसकी श्रेष्ठता तथा क्षुद्रता दोनोंका द्योतक है। श्रेष्ठताका इसलिए कि अपने बुद्धि बलसे उसने प्रकृतिके नियमोंको तोड़ा गो नियमोल्लङ्घनकी उसे सज़ा भी खूब मिली है; क्षुद्रता इसलिए कि उसमें सम दम पशुओंके समान भी नहीं हैं। अब हमको देखना यह है कि सभ्यमनुष्य और बर्बरोंमें क्या अन्तर है।

बर्बर वह मनुष्य हैं जिन्होंने सांसारिक आधिभौतिक और आध्यात्मिक उन्नति बहुत कम की है। उनकी भाषा कम विकसित, भाव संकुचित, दृष्टि परवेष्टित है। उनका सारा समय प्राकृतिक घटनाओंसे लड़ने झगड़नेमें ही व्यतीत हो जाता है। उनके सब काम, उनका खाना, पीना, काम करना अधिकांश पशुओंके समान सीधा सादा, सरल ढंगका है। उसकी नाप तौल कलारियोंमें हो सकती है, परन्तु सभ्य मनुष्य हम उसे कहेंगे जो सर्वव्यापिनी शक्तिको काममें लाकर अपनेको अनन्त शक्तिधारी बना सकता है। इसके अनेक साधन हैं। एक तो वह साधन है जिसका अवलम्ब आजकलके वैज्ञानिक कर रहे हैं; एक वह साधन था, जिसको प्राचीन भारतने अपनाया था और जिसकी ओर आधुनिक सभ्यता झुक रही है। उसीके कारण मनुष्यत्वके सच्चे आदर्शको हिन्दुओंने जाना था,

उसका साक्षात्कार किया था और उसीके पुण्य बलसे आजतक हिन्दू जाति जीती जागती खड़ी है। आधुनिक सभ्यता बहुत ओछे दर्जेकी है। वैयक्तिक दृष्टिसे देखा जाय तो अधिकांश मनुष्य पशुओंसे भी गये गुज़रे मिलेंगे, जिन अत्याचारोंका उल्लेख इस लेखके आरम्भमें किया गया है, जो अत्याचार जर्मनोंने किये, जो अत्याचार डायर और ओडायरने भारतमें किये, जो अत्याचार ईस्ट इण्डिया कम्पनीने भारतके उद्योग धंधोंके मिटानेके लिए किये, जो अत्याचार अफरीकामें हब्शियोंपर और अमेरिकामें रेड इण्डियन्सपर हो रहे हैं, जो अत्याचार बेलजियन्सने कोङ्गो फ्रीस्टेटमें किये, जो अत्याचार यूनानी लोग तुर्कोंपर कर रहे हैं और जो अत्याचार सबल निर्बलोंपर कर रहे हैं, वह सभ्य मनुष्यको शोभा नहीं देते। वैयक्तिक अंतःकरण ओछा हो तो हो पर जहां समाजका अन्तःकरण दूषित हो, तहां परिस्थिति बड़ी भयानक समझनी चाहिये। भारतवासियो, तुम हो सच्ची सभ्यताके अधिकारी, तुम पश्चिमी सभ्यताके नक़लची न बनो। उसमें जो कुछ भलाइयां दीखें उन्हें ग्रहण करलो और अपनी सम्पत्तिको सम्हाल कर सच्ची सभ्यताका आदर्श संसारके सामने रखो। प्राचीन भारतमें प्रत्येक व्यक्तिका अन्तःकरण शुद्ध सभ्यताके रंगमें रँगा था; इसी कारण उस प्राचीन सभ्यताकी नींव बाक़ी है। उसपर पश्चिमी सभ्यताकी सीमेंटसे एक विशाल भवन फिर निर्माण किया जा सकता है। जबतक उसका निर्माण न होगा, तबतक सभी मनुष्य बर्बर समझे जायंगे, वैसे दिखावटी तौरपर जो सभ्य मनुष्य और बर्बरमें अन्तर है वह हम पहले ही बतला चुके हैं। पाश्चात्य सभ्यताने भी बड़े बड़े मनुष्य पैदा किये हैं, जो बहुत उच्च कोटिके हुए हैं, पर जन साधारणमें जो बर्बरता छिपी है वह जब तक न निकलेगी तब तक सच्ची सभ्यताका युग न आयेगा।

---

# मनुष्यमें छिपा हुआ बन्दर

[ ले०—श्री० रतनलाल, एम० ए० ]

एक बार एक लड़के से "नर और बानर" विषयपर निबन्ध लिखनेको कहा गया। उसने लिखाः—"सभी बन्दरोंसे निकले हैं, परन्तु आज कल उनमें आपसमें केवल इतना अन्तर है कि कुछ दूसरोंकी अपेक्षा (कूदनेमें) आगे निकल जाते हैं"। यह विकाशवादके एक मुख्य सिद्धान्तके व्यक्त करनेका बड़ा मनोरञ्जक ढंग है। इसी सिद्धान्तका उपयोग हालमें प्रोफेसर लिंकीविक्ज़ (Prof. Linckewicz) ने एक अनोखे ढंगपर किया है, जिसका कुछ हाल उनके उद्धृत किये हुए विचारोंसे मालूम हो जायगा।

न्यूगिनीके अपरिचित जंगलोंके गुप्त स्थानोंमें सैर करनेके पश्चात् कुछ मनुष्य कुछ दिन हुए लौटे थे। उन्होंने एक अद्भुत प्रकारके मनुष्योंका वृत्तान्त प्रकाशित किया है। वह हैं तो मनुष्य परन्तु चलते हैं बन्दरों अथवा बनमानुसोंकी नाईं। यह लोग दलदली प्रदेशमें रहते हैं। इसीसे उन्हें खड़े होकर चलनेका अवसर ही नहीं मिलता। दलदली स्थानोंमें जहां पानी भरा है वहां भी किश्तियां तक चलाना कठिन है। इन बानर-सदृश नरोंने रहनेके लिए कुटियां वृक्षोंपर बनाई हैं। सदा केवल ऊपरके भागमें स्थित ज्ञानेन्द्रियोंसे ही काम लेते रहनेके कारण उनका नीचेका शरीर (टांगें) प्रायः निर्जीव हो गया है। हाथ और वक्षस्थल तो साधारण मनुष्यों जैसे ही हैं, परन्तु टांगें दुर्बल और सूखी हुई हैं। वह खड़े नहीं हो सकते, अतएव वह बन्दरोंकी नाईं अथवा उन मनुष्योंकी तरह जिनकी टांगें रह जाती हैं चलते हैं। इस आविष्कारसे भी उक्त प्रोफेसरके विचारोंको पुष्टि मिलती है।

प्रोफेसर लिंकीविक्ज़का कहना है कि "यही नहीं समझना चाहिये कि मनुष्यकी बन्दरोंसे उत्पत्ति हुई है, वरन् बन्दर एक अत्यन्त प्राचीन मनुष्य कुलसे उत्पन्न हुए हैं, जो किसी कालमें

अत्यधिक सभ्यता-सम्पन्न हो जानेसे बादमें असभ्य हो गये और तदनन्तर अत्यन्त नीच कोटिके बर्बर। यहीं उनके अधःपतनका अन्त नहीं हुआ। वह निरे बन्दर हो गये।

संसार आजकल विकाशके दूसरे दौरमें है। यदि आधुनिक कृत्रिम भूठी सभ्यताका परित्याग न करके वर्तमान विनाशक प्रवृत्तिको न छोड़ दिया जायगा तो आगामी २००० वर्षमें समस्त भूमण्डल बन्दरोंसे ही आबाद दीख पड़ेगा।

प्रोफेसर महोदयका कथन है कि चीन, मिश्र, भारत, इटली आदि देशोंमें पुरातत्व विषयक आविष्कारोंसे पूर्णतः सिद्ध हो चुका है कि एटलांटिक महासागरसे भी अधिक प्राचीन सभ्यता उस समय विद्यमान थी जब संयुक्तराज्य अमेरिकाकी जगहपर समुद्र कलोलें कर रहा था। तब प्राथमिक बन्दरसे विकाश द्वारा मनुष्यकी उत्पत्ति हुए केवल ५००० वर्ष हुए थे, परन्तु वह मनुष्य जाति आधुनिक सभ्यताकी अपेक्षा न जाने कितनी अधिक उन्नति कर चुकी थी। उस प्राचीन सभ्यताकी प्रणाली इस समयसे बहुत भिन्न थी। उनके उपकरण हमारे साधनोंसे भिन्न थे। जैसे टेलीफोनका काम वह लोग टेलीपार्थीसे निकाल लिया करते थे। मान लीजिये कि भारतके एक व्यापारीको चीनसे सौदा मंगाना था, तो वह यहीं ही आंख बंदकर ध्यानावस्थित हो संकल्प शक्ति द्वारा चीनके किसी व्यापारीको सूचना दे देता था। यह शक्ति अब केवल थोड़ेसे हिन्दू योगियोंमें पाई जाती है। उस समयके लोग ग्रहों और तारों तक आ जा सकते थे। होते होते इन लोगोंकी इतनी उन्नति हो गयी कि यह मनुष्यताकी सीमाका उल्लंघन कर गये, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनकी बुद्धि उलट गयी और वह प्रायः बावले हो गये। इस घटनाके छः सात शताब्दी बाद ही दुनिया भरमें बावले ही बावले होगये, जिन्होंने अपने पूर्वजोंके बनाये हुए शहरोंको बरबाद कर दिया, उनकी खड़ी की हुई सभ्यताको मलियामेट कर दिया और आपसमें घमासान युद्ध कर करके बहुत से कट मरे। जो शेष रहे वह निरे बन्दर हो गये।

यदि किसी नव शिशुको लिया जाय और उसे पन्द्रह वर्ष तक बन्दरोंमें छोड़ दिया जाय तो वह बन्दरोंकी सब आदतें सीख जायगा। बन्दरोंकी सी फुर्ती तो उसमें न मिलेगी, परन्तु वह बंदरियोंसे संभोग कर सन्तानोत्पत्ति कर सकेगा। अतएव बन्दरोंको वज्रमूर्ख मनुष्य समझना चाहिये, जिनकी कायापलट सैकड़ों वर्षों तक बने पागल रहनेके कारण हो गयी है।

---

# शरीरकी साधारण रचना

भेड़ बकरियोंकी तरह हमारे शरीरके भी दो मुख्य भाग हैं।—(१) मध्य शरीर, जिसके अन्तर्गत सिर गर्दन तथा धड़ हैं। (२) शाखा शरीर, जिसमें दो ऊर्द्ध शाखाएँ वा हाथ और दो निम्न शाखाएँ टाँगें शामिल हैं। मध्य शरीर खोखला होता है, और इसके अन्दर कितने ही अवयव बन्द रहते हैं। शाखाएँ ठोस होती हैं और अधिकतर मांस पेशियोंसे बनी हुई होती हैं।

### मस्तक वा सिर

सिरके दो भाग किये जा सकते हैंः—(१) कपाल (खोपड़ी) जिसके अन्दर मस्तिष्क (दिमाग़) रहता है, (२) मुखमण्डल (चेहरा) जिसमें नाक, आंख, कान आदिके अतिरिक्त (जो वस्तुतः मस्तिष्कके अवयव हैं) जीभ, दांत आदि आहार सम्बन्धी अवयव रहते हैं।

### ग्रीवा

ग्रीवा (गर्दन) यद्यपि ठोस मालूम होती है, तथापि इसके अन्दर सामने टेंटुआ वा स्वांसकी नली, उसके पीछे आहार-नली और उसके पीछे पृष्ठ बंसका एक भाग रहता है। इसके अतिरिक्त दोनों तरफ़ ख़ूनके आने जानेकी नलियां भी गर्दनमें से होकर गुज़रती हैं।

धड़

धड़के भी दो भाग किये जाते हैं-(१) ऊपरके भागको वक्ष (सीना) कहते हैं, और इसके अन्दर फुफ्फुस (फैफड़े) और हृत्पिण्ड (दिल) बन्द रहते हैं; (२) उदर गुहा (पेट) जिसके अन्दर आमाशय (मेदा), अन्त्र (आंत), यकृत (जिगर), प्लीहा (तिल्ली), वृक्क (गुर्दे), वस्ति (मसाना) आदि कितने ही अवयव बन्द रहते हैं। दोनों गुहाओंके बीचमें एक चौड़ी पेशी लगी हुई है, जिसको वक्षोदर-मध्यस्थ-पेशी कहते हैं।

त्वचा वा खाल

सारा शरीर त्वचासे ढका हुआ है। यह एक लचकदार और मज़बूत ग़िलाफ है जो शरीरकी रक्षा करता है। इसके लचकदार होनेके सबबसे ही हम जोड़ोंपरसे अपने अङ्गोंको मोड़ सकते हैं। बुढ़ापेमें इसकी लचक कम हो जानेके कारण ही झुर्रियां पड़ जाती हैं।

मेदोधरा कला

खालको हटानेसे नीचे एक सफ़ेद रङ्गकी मोटी और नर्म चर्बीदार झिल्ली मिलती है, जिसको मेदोधरा कला कहते हैं। स्त्रियों और शिशुओंमें यह पदार्थ (चर्बी) ज़्यादा होनेसे उनका अंग नर्म और सुडौल होता है। शरीरके अन्य भागोंमें भी मेद पाया जाता है, जैसे कि हृत्पिण्ड और गुर्दे आदिके ऊपर। मेदका अधिक बढ़ जाना भी रोग समझा जाता है।

सौत्रिक कला

पाठकोंने क़साईको दूकानपर चर्बीकी झिल्लियां देखी होंगी। इनको कढ़ाईमें तपानेसे इनमेंसे चर्बी पिघल कर निकल आती है और एक रेशेदार चीज़ भुंजकर अलग हो जाती है। वास्तवमें मेदोधरा कला एक रेशेदार झिल्ली (सौत्रिक कला) है, जिसके अन्दर चर्बी पैदा हो जाती है। पर शरीरके अन्य स्थानोंमें ऐसी चर्बीकी सौत्रिक कलाएँ भी पाई जाती हैं जो सुशिर कला कहलाती हैं। इन्हींसे कोमल अवयवोंका ढांचा बनता है। मांस पेशियों-पर भी एक इसी प्रकारकी चमकदार झिल्ली चढ़ी रहती है, जिसको प्राचीन 'मांस-धरा-कला' कहते थे।

अन्य कलाएँ

जैसे कि शरीरका बाहरी भाग त्वचासे ढका हुआ है, उसी तरह उसकी अन्दरकी गुहाओं या नलियोंपर एक और प्रकारकी कोमल झिल्लीका अस्तर चढ़ा हुआ है। आंख, नाक, टेंटुआ, फेफड़े-की नलियां, मुंह, मैदा और आंतोंकी नलियोंके अन्दर श्लेश्मा (बलग़म) रहनेके कारण (जो चर्मकी हालतमें बहुत बढ़ जाता है) इन बाहर खुलनेवाली नालियोंके अस्तर करनेवाली झिल्लियां 'श्लैष्मिक कला' कहलाती हैं। पर जोड़ तथा शरीरके अन्य बन्द गुहाओं (जैसे की उदर गुहा, वक्ष गुहा, आदि) के अन्दर एक और प्रकारकी चिकनी चीज़ रहनेके कारण उनकी अस्तर करने वाली झिल्लियों-को स्नैहिक कला कहते हैं।

अस्थि-संस्थान

शरीरका ढांचा अस्थियोंसे बना होता है। इसके द्वारा शरीरकी आकृति स्थिर रहती है। शरीरमें प्रायः २०० हड्डियां हैं। जो आपसमें जुड़कर कङ्काल (ढांचा) बनाती हैं। इसके द्वारा कहीं कहीं ऐसे कोष्ठ बन जाते हैं कि जिनके अन्दर कोमल अङ्गोंकी रक्षा होती है, जैसे कि खोपरीमें मस्तिष्क, वक्ष गुहामें फुफ्फुस और हृत्पिण्ड और पेडूके अन्दर वस्ति (मसाना) गर्भाशय आदि। ऐसे कोष्ठ प्रायः चपटी हड्डियोंसे बने हुए होते हैं और उनमें हरकत नहीं होती या बहुत ही कम होती है, पर शरीरकी बहुत सी हड्डियां लम्बी होती हैं, जो पेशियोंसे बंधे रहनेके कारण ढेंकली वा डांड़ी यंत्रोंकी तरह कार्य करती हैं और बहुधा वेगसे गति उत्पादन करती हैं। कहीं सिमई तोड़नेके 'घोड़ी' यन्त्रकी तरह (जो कि ढेंकलीका एक रूपान्तर है) थोड़ी शक्तिसे अधिक सुगमतासे काम करनेमें सहायता देती है, जैसे कि पैरको उंगलियोंके बल खड़े होनेमें। इसी कारण अस्थियोंके कुछ जोड़ सचेष्ट होते हैं और

कुछ अचेष्ट। पृष्ठ वंश आदिके जोड़ोंको हम अल्प चेष्ट कह सकते हैं।

सचेष्ट संधियां कई प्रकारकी हैं। अकसर किवाड़ोंके कब्जेकी तरह हरकत करती हैं जैसे नीचेका जबड़ा, कोहनी और टखनोंके जोड़, उंगलियोंके पोखे आदि। कुछ किवाड़ोंके चूल्हों वराईकी तरह कीली पर घूमती हैं जैसे कि सिर पीठके बांसे पर। पर कूल्हे और कन्धोंके जोड़ोंकी बनावट ऐसी विचित्र है कि वह आगे पीछे अन्दर दाएं बाएं, चक्करदार और रईकी तरह हरकत भी कर सकते हैं।

जोड़ोंपर अस्थियां मज़बूत सौत्रिक तन्तुओंके बन्धनोंसे ऐसी बंधी रहती हैं कि उनमें हरकत होनेपर भी वह अपनी जगहपर कायम रहती हैं। इन बन्धनियोंको 'स्नायु' कहते हैं। कभी कभी जोड़ोंपर अधिक ज़ोर पड़नेसे स्नायु बन्धन खिंच जाते हैं, जिसको हम 'मोच' आना कहते हैं, वा कभी टूटकर अस्थियां अपने स्थानको छोड़ देती हैं, जिसको हम हड्डीका 'उतर' जाना कहते हैं।

हड्डियोंके टूटनेसे अङ्गकी आकृतिमें फर्क पड़ जाता है और उसमें अप्राकृतिक चेष्टा पैदा हो जाती है। हड्डीके टूटने वा उतर जानेसे वा मोच आनेसे दर्द और सूजन हुआ करती है।

मांस-पेशी तथा मांस-तन्तु

शरीरका अधिक भाग मांस पेशियोंसे बना होता है, जिसको लोग गोश्त कहते हैं। शरीरके भिन्न भिन्न भागोंमें इनकी शक्लें भिन्न भिन्न प्रकारकी होती हैं। वक्ष और उदर गुहाके बीचमें एक चौड़ी पेशी (वृक्षोदर-मध्यस्थ पेशी) गुम्बदकी तरह लगी हुई है। इसी प्रकार उदरकी दीवारें चौड़ी चौड़ी पेशियोंसे बनी हैं, परन्तु शाखाओंमें अकसर पेशियां तर्कांकार (तकलेकी शक्लकी) होती हैं, जिनको कसाई 'मछलियां' कह कर बेचता है।

पहले ही बता चुके हैं कि मांस पेशियोंपर एक स्वच्छ सौत्रिक तन्तुका गिलाफ (मांसधरा कला) चढ़ा रहता है, जिसको उतारनेके बाद कसाई मांसकी बोटियां बनाता है। इसके उतारनेके पश्चात् पेशीके मध्य भागमें बारीक बारीक गुलाबी तन्तु दिखाई देंगे, जो कि 'मांस तन्तु' कहलाते हैं। परन्तु पेशीके सिरे एक और प्रकारके सुफेद बेलचक और मज़बूत रेशों (सौत्रिक तन्तु) से बने होते हैं और कण्डरा कहलाते हैं। इनके द्वारा पेशियां प्रायः अस्थियोंसे बंधी रहती हैं।

मांस-तन्तु न केवल रबरकी तरह कुछ लचकदार होता है बल्कि इसमें स्वयं सिकुड़ने और फैलनेकी शक्ति होती है। इसीसे शरीरमें चेष्टायें (हरकतें) होती हैं। केंचुए आदि बे हड्डीके कीड़ोंकी सुस्त हरकतें उनके बारीक मांस तन्तुओंके संकोचपर निर्भर हैं, परन्तु हड्डी वा उसी तरहके सख्त धातुओंमें बंधे रहनेके कारण चिऊंटी भींगा मछली तथा हड्डीदार जन्तुओंकी चेष्टायें अपेक्षतया बहुत तीव्र होती हैं।

मांस-तन्तुके भेद

यद्यपि मांस अधिकतर पेशियोंके रूपमें ढांचेसे जुड़ा हुआ रहता है तथापि शरीरके अन्य अवयवोंमें एक और प्रकारके सूक्ष्म मांसतन्तु पाये जाते हैं। पाठक आंतोंकी दीवारोंमें मांस तन्तुके स्तरको स्पष्टतया देख सकते हैं। फेफड़ोंके अन्दर भी मांसतन्तु मौजूद हैं। इसीलिए यह अङ्ग कभी कभी खानेके काममें आते हैं।

उपर्युक्त अङ्गोंपर विचार करनेसे मालूम होगा कि मांस तन्तु दो प्रकारके होते हैं। एक वह जो कि हमारी साधारण पेशियां बनाते हैं, और हमारे इच्छाधीन कार्य करते हैं; और दूसरे वह जो अवयवोंकी दीवारोंमें सूक्ष्म तन्तुओंके आकारमें रहते हैं और उनमें चेष्टा पैदा करनेपर भी वह हमारे इच्छाधीन नहीं हैं। इसीलिए एकको 'ऐच्छिक' और दूसरे को 'अनैच्छिक' मांस तंतु कहते हैं।

खाद्य

मांसका प्रधान कार्य हम देख चुके हैं कि गत्युत्पादन है। पेशियोंको शरीरका 'इञ्जन' समझना चाहिये, जो हड्डी रूपी पुर्ज़ोंको चलाकर वेगसे गति

पैदा करती हैं। अब यह प्रश्न उठता है कि इस गतिके लिए शक्ति कहांसे आती है। विचार करनेसे मालूम होगा कि इञ्जिनकी तरह हमारी शारीरिक शक्ति भी एक प्रकारके ईंधनपर निर्भर है, जिसको हम खाद्य कहते हैं। पर इञ्जिनके ईंधन और हमारे खाद्यमें एक फर्क़ यह है कि ईंधनके द्वारा तो केवल अग्नि वा तेज ही पैदा होता है, जिसकी शक्ति गतिमें परिणत हो जाती है, परन्तु खाद्यसे इसके अतिरिक्त शरीरका पोषण तथा उसका वर्धन होता रहता है। अतएव हमारे खाद्य द्रव्योंके दो बड़े भेद किये जा सकते हैं। एक वह जो केवल ईंधनकी तरह गत्युत्पादक हैं और दूसरे वह जो धातुओंको बढ़ाते हैं वा क्षय-प्राप्त धातुओंकी पूर्ति करते हैं।

पाठकोंने देखा होगा कि जब हमारे बैल वा घोड़े बहुत चलते हैं तो हम उनको ऊपरसे रातब देते हैं, जिसमें अधिकतर गुड़ और तेल होता है। यह दोनों पदार्थ अग्नि उत्पादक पदार्थ हैं; अतएव शक्ति पैदा करनेवाले हैं। 'मण्ड' या निशास्ता जो अनाजोंमें बहुधा पाया जाता है रासायनिक दृष्टिसे गुड़की तरह चीज़ है। अतएव मण्ड शर्करा और घृत, तैल आदिको 'हम ईंधन खाद्य' कह सकते हैं, पर मांस, अण्डेकी सुफ़ेदी, दूधका पनीर आदि पदार्थ (जो जलानेसे बू देते हैं) धातु वर्द्धक-खाद्य हैं कि जिनसे शरीरकी पुष्टि होती है। दालके अन्दर भी निशास्तेके अतिरिक्त बहुत सा माँस जातीय पदार्थ रहता है। जल और लवण आदि खनिज पदार्थ भी धातुओंके बनानेमें सहायता देते हैं। यह सब धातु उपादक पदार्थ हैं।

आहार संस्थान

शरीरमें इन खाद्य द्रव्योंको पचानेके लिए बड़ा ही विचित्र प्रबन्ध है। खाद्य द्रव्योंको हम मुंहमें चबा कर न केवल कुचलते वा पीसते हैं बल्कि मुंहके अन्दर कई ऐसी ग्रन्थियां हैं, जिनके रस (लाला वा थूक) द्वारा खाद्यका मण्ड वा निशास्ता शर्करामें परिणत होने लगता है। मुखसे ग्रास एक नलीके द्वारा आमाशयमें पहुँचता है जो कि उदर गुहाके अन्दर एक थैली है। इस पाक-स्थलीके दूसरे सिरेसे ७ गज़ लम्बी एक पतली नली है, जिसको क्षुद्रान्त्र कहते हैं। क्षुद्रान्त्र बहुत सी गेंडलियोंमें उदरगुहाका अधिक भाग घेरे हुए है। जहां क्षुद्रान्त्रका अन्त होता है वहाँसे एक मोटा टुकड़ा आंतका आरम्भ होता है, जिसकी लम्बाई क़रीब २ गज के है और बृहत् अन्त्र कहलाता है। इसका अन्तिम सिरा मलद्वारमें खुलता है।

आमाशयको दीवारोंके अन्दर सूक्ष्म ग्रन्थियोंके द्वारा एक और प्रकारका अम्ल रस बनता है, जिसमें खाद्यके माँस जातीय पदार्थ द्रव होजाते हैं। यह कार्य ३। ४ घंटेमें होता है और यहांसे यह द्रवीभूत पदार्थ थोड़ा थोड़ा करके क्षुद्रान्त्रके अन्दर उतरता जाता है। क्षुद्रान्त्रके ऊपरी भागमें दो अलहदा ग्रन्थियोंके रस भी खाद्य द्रव्योंके पचानेके लिए आ मिलते हैं। इनमेंसे एक ग्रन्थिका नाम यकृत (जिगर) और दूसरीका नाम ग्रहणी (लबलबा) है। ग्रहणीका रस पित्तकी सहायतासे खाद्यके सारे अवयवोंको पचा डालता है, अर्थात् न केवल घृत तैल आदिको, बल्कि अबतक अपचित मण्ड तथा मांस जातीय पदार्थ भी इसके द्वारा गल जाते हैं। क्षुद्रान्त्रकी दीवारोंके अन्दर भी बहुत सी सूक्ष्म ग्रन्थियां रहती हैं, जिनके रसमें कुछ मण्डके पचानेकी शक्ति होती है।

क्षुद्रान्त्रसे द्रवीभूत खाद्य द्रव्य थोड़ा थोड़ा करके बृहदन्त्रमें उतरता जाता है, जहां अधिकतर जलका शोषण होता है और गाढ़ा मल बनना आरम्भ होता है। इसीलिए प्राचीन क्षुद्रान्त्रको 'पक्वाशय' और बृहत् अन्तको मलाशय कहते थे। पर याद रखना चाहिये कि आमाशय तथा क्षुद्रान्त्रकी दीवारोंमेंसे भी बहुत सा पौष्टिक पदार्थ शोषित होकर रक्त स्रोतोंमें मिल जाता है, जो कि शरीरके प्रायः सभी भागोंमें फैले हुए हैं।

मल

हम पहिले बता चुके हैं कि खाद्यसे ही शरीरका पोषण होता है और इसीके धीमे धीमे जलनेसे शरीरके अन्दर शक्ति और गर्मी पैदा होती है जो कि जीवनके लिए अत्यावश्यक है। पर साथ ही इसके जलनेसे कुछ ऐसे पदार्थ पैदा होते हैं जो शरीरके लिए अपकारी हैं। इनको हम 'मल' कहते हैं। 'मल' तीन प्रकारका होता है। एक वह जिसको हम साधारणतः विष्ठा कहते हैं। यह खाद्यका अपाच्य या अपचित भाग है। इसको हम इञ्जिनके बेजले हुए कोयलोंके सदृश समझ सकते हैं।

दूसरे प्रकारका मल हमारे वृक्कों ( गुर्दों ) में से एक प्रकारके लवणके आकारमें घुला हुआ निकलता है। इसको यूरिया ( मूत्र लवण ) कहते हैं, जो कि खाद्यके धातु वर्द्धक अवयवोंके शरीरमें सम्पूर्णतासे जल जानेसे पैदा होता है। यूरिया ( मूत्र लवण ) यकृत ( जिगर ) के अन्दर बनता है और रक्तस्रोतोंके द्वारा वृक्कों ( गुर्दों ) में जा, छनकर अलहदा हो जाता है। इस मलकी हम इञ्जिनकी राखसे तुलना कर सकते हैं, जो कोयलेके पूरे जल चुकनेपर बच रहती है।

तीसरा मल कर्बन-द्वि-ओषिद वायु है। इसके निकालनेका प्रधान अङ्ग फुफ्फुस ( फेफड़ा ) है। इञ्जिनसे भी वायु इसी प्रकार निकलता है। शरीरकी रासायनिक क्रियाओंमें बहुतसा जल भी बनता है, जो त्वचा आदि भिन्न भिन्न अङ्गोंसे निकलता रहता है।

रक्तवाहक संस्थान

खून एक तरल धातु है, जिसके द्वारा न केवल शरीरका पोषण होता है बल्कि इसीसे इसके मल भी धुलते रहते हैं। तरल होनेके कारण खून नालियोंके अन्दर बहता है, जिनको रक्तस्रोत (रग ) कहते हैं। रग तीन प्रकारकी हैं। एक वह जो हृत्पिण्डसे खूनको ज़ोरसे बाहर फेंकती हैं और 'धमनी' कहलाती हैं। इन्हींकी फड़कती हुई गति कहीं कहीं दबानेसे उङ्गलियोंको मालूम होती है और 'नाड़ी' ( नब्ज़ ) कहलाती है। दूसरी वह जो कि सारे शरीरके खूनको इकट्ठा करके हृत्पिण्डकी तरफ ले जाती हैं। इनको 'शिरा' कहते हैं। शिराओंके मोटे जाल कहीं कहीं त्वचाके नीचे नीले नीले दिखाई देते हैं। तीसरी क़िस्म वह है जो कि अंतिम धमनी और शिराओंके बीचमें बहुत बारीक जाल बनाये रहती हैं। इनको 'केशिका' कहते हैं। इन्हींकी बारीक दीवारोंसे रक्तका पौष्टिक पदार्थ छनकर शरीरके सब भागोंमें और उनका मल शोषित हो कर रक्तमें चला आता है।

रक्त सारे शरीरमें चक्कर काटता रहता है। इसका कारण यह है कि शिरा और धमनियां हृत्पिण्डसे जुड़ी रहती हैं। हृत्पिण्ड एक मांसका बना हुआ 'पम्प' है और अपने दबावसे धमनियोंके द्वारा रक्तको बाहर फेंकता है और शिराओंके द्वारा रक्त लौटकर इसमें जमा होता रहता है।

हृत्पिण्डके दो भाग हैं, एक दाहिना और दूसरा बांया। फिर हर भागके दो दो खाने हैं। ऊपरवालेकी दीवारें पतली होती हैं और 'ग्राहक कोष्ठ' कहलाती हैं। नीचेवालोंकी दीवारें मोटी होती हैं और यह "क्षेपक कोष्ठ" कहलाते हैं। शरीरका मैला खून दो शिराओंके द्वारा दाहिने 'ग्राहक कोष्ठ' में आनकर गिरता है और वहांसे दायें क्षेपककोष्ठमें चला जाता है। दोनोंके बीचमें ऐसी किवाड़ियां लगी हुई हैं कि क्षेपक कोष्ठके सिकुड़नेपर वह एक और मार्ग ( फुफ्फुसी या धमनी) द्वारा फेफड़ोंमें पहुंच जाता है, पर दाहिने ग्राहक कोष्ठमें लौट नहीं सकता। फेफड़ोंके अन्दर हवाकी नालियां भी होती हैं। अतएव रक्तका दूषित भाग कर्बनद्विओषिद हवामें आ जाता है और हवाकी कुछ ओषजन रक्तमें मिल जाती है।

फेफड़ोंमें से रक्त शुद्ध होकर चार शिराओंके द्वारा बायें ग्राहक कोष्ठमें पहुंचता है और वहांसे उसी तरह बायें क्षेपक कोष्ठमें उतर जाता है।

बायें क्षेपक कोष्ठके सुकड़नेसे रक्त महा धमनी द्वारा तमाम शरीरमें फैल जाता है। महा धमनीकी शाखाएँ ऊपर शिरको, दोनों तरफ हाथोंको और मध्य शरीरके भिन्न भिन्न अवयवोंको जाती हैं। फिर फटकर इसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं, जो कूल्हेके अवयवोंको प्रशाखायें देती हुई टांगमें फैल जाती हैं।

यह बात याद रखनी चाहिये कि महा धमनी तथा फुफ्फुसीया धमनियोंके मुँहपर भी ऐसी किवाड़िया हैं कि जो रक्तको पीछे लौटने नहीं देतीं। इसीसे रक्त सारे शरीरमें चक्कर काटता रहता है।

नाड़ी मण्डल वा वातसंस्थान

रक्त स्रोतोंकी तरह शरीरमें एक और प्रकारके तन्तुओंका जाल फैला हुआ है जिसको नाड़ी* वा 'वातसूत्र' कहते हैं। इन्हींसे भिन्न भिन्न प्रकारका बोध होता है। त्वचामें नाड़ियोंका जाल ऐसा घना है कि बारीकसे बारीक सुई चुभने पर भी हमें तकलीफ होती है। इन्हींके द्वारा हमें वेदनाके अतिरिक्त, गर्मी, सर्दी, चिकनापन, खुदरापन आदि स्पर्शका ज्ञान होता है। त्वचाकी तरह हमारे शरीरमें और भी विशेष ज्ञानेन्द्रियां हैं, जैसे आंख, नाक, कान और जिह्वा। इनसे भिन्न भिन्न प्रकारकी संज्ञाएँ विशेष नाड़ी काण्डोंके द्वारा हमारे मस्तिष्कको पहुंचती हैं। अतएव इन नाड़ियोंको हम 'संज्ञावाही' कहते हैं, कारण शरीरमें एक और प्रकारकी नाड़ियां भी हैं जो मस्तिष्क (दिमाग़) और सुषुम्ना ( रीढ़का गूदा) आदि नाड़ी केन्द्रोंसे उत्पादित प्रेरणाओंको हस्त, पाद आदि 'कर्मेन्द्रियों' में ले जाकर उनसे भिन्न भिन्न चेष्टाएं ( हरकत ) कराती हैं। इन पश्चादुक्त नाड़ियोंको 'चेष्टावाही' कहते हैं।

नाड़ी मण्डलकी इस विचित्र क्रियाको समझनेके लिए एक उदाहरण लीजिये। मान लीजिये कि किसीकी उंगलीमें सुई चुभ जाती है। पहिले तो वह सहसा हाथको सिकोड़ लेता है, फिर विचार करनेके बाद सुईको निकालनेकी चेष्टा करता है। इस घटनामें पहिले सुई चुभनेकी वेदना नाड़ीकाण्ड वा वातरज्जुओंके द्वारा सुषुम्ना ( रीढ़के गूदे ) में पहुंचती है, जहां इस संज्ञाके जवाबमें प्रतिकारके लिए, बिना विचार उत्पन्न हुए ही हाथ फ़ौरन हट जाता है। इसके अनन्तर सुषुम्नासे यह वेदना रूपी संज्ञा मस्तिष्कमें पहुंचती है जहां इसका सम्यक् ज्ञान होता है और यह भी विचार किया जाता है कि इसका क्या स्थायी प्रतिकार किया जाय, जैसे कि सुईको पकड़ कर निकालना आदि। सुषुम्ना वा मस्तिष्ककी यह प्रेरणाएँ चेष्टावाही नाड़ियोंके द्वारा कर्मेन्द्रियोंको पहुंचती हैं। इससे स्पष्ट है कि सुषुम्नाके अन्दर भी मस्तिष्ककी तरह संज्ञा बोधक तथा गत्युत्पादक केन्द्र हैं, पर उनमें मस्तिष्ककी तरह विचारशक्ति नहीं है। ऐसी चेष्टाओंको जिनमें विचार नहीं हुआ है 'परावर्तित क्रिया' कहते हैं।

उपर्युक्त नाड़ी मण्डलकी क्रिया द्वारा हमारा सम्बन्ध अधिकतर वाह्य जगतसे क़ायम रहता है, जैसे सुईके चुभनेसे हाथ हटा लिया, सर्पको देखा भाग गये, इत्यादि। परन्तु इनके अतिरिक्त शरीरके अन्दर एक और नाड़ी मण्डल भी है जो हमारे आभ्यान्तरिक अवयवोंमें सहयोग बनाये रखता है; जैसे दौड़नेपर न केवल पेशियोंकी बल्कि हृत्पिण्ड तथा फुफ्फुस आदि अवयवोंकी क्रिया भी साथ ही वेगसे होने लगती है। कारण यह है कि यह भिन्न भिन्न अवयव एक प्रकारकी "सामवेदनिक" नाड़ियों द्वारा परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं।

शरीरमें इन सामवेदनिक नाड़ियोंकी दो मालायें हैं, जिनको प्राचीन इड़ा और पिंगला कहते थे। इन्हींकी शाखाएँ हृत्पिण्ड, नाभी आदि प्रदेशोंमें सूक्ष्म जाल बनाये हुए हैं। यह बात बड़े आश्चर्यकी है कि हमारे पूर्वज इन नाड़ी चक्रोंको

---

* प्राचीन धमनी स्पन्दनको भी 'नाड़ी' ( नाली ) कहते थे। और वात सूत्रोंमें भी किसी शक्तिके प्रवाहके कारण इनको भी नाड़ी कहते थे। पर हम वात सूत्रोंको ही नाड़ी कहेंगे यद्यपि यह नालीदार नहीं होते।

न केवल जानते ही थे, बल्कि इनकी क्रियाओं पर भी अधिकार रखते थे यह साधारण अवस्थामें हमारी इच्छाधीन नहीं होते। यदि कोई इनको अपने वशमें लासकेतो वह शरीरकी गुप्त शक्तियोंके द्वारा अलौकिक घटनाओंको कर दिखा सकता है। संभवतः योगी अपनी सिद्धियां इन्हींके द्वारा प्राप्त करते हैं।

परिशिष्ट

उपर्युक्त शरीरकी स्थूल कथासे यह बात प्रकट हो गई होगी कि शरीरकी मुख्य क्रियाओंको सम्पादन करनेके लिए कितने ही अवयवोंकी आवश्यकता होती है; जैसे चेष्टा (हरकत) के लिए पेशियों तथा अस्थियोंके सहयोगसे चेष्टा सम्बन्धी अवयव मण्डली बनती है। इसी तरह पौष्टिक क्रियाके लिए मुख, आमाशय, अन्त्र आदि अवयवोंका वर्णन किया गया है। ऐसी अवयव मण्डलीको "संस्थान" भी कहते हैं। हर संस्थानके भिन्न भिन्न अवयव न केवल एक दूसरेको अपने नियत कार्यके करनेमें सहायता देते हैं बल्कि शरीर की यह भिन्न भिन्न संस्थाएँ यथा, चेष्ट, पौष्टिक, मल-त्याग, संज्ञा-संस्थान आदि एक दूसरेको ऐसी सहायता करते हैं, जैसे किसी राज्यमें एक विभाग दूसरेकी करता है। यदि ऐसा न होता तो इस असहयोगके कारण शरीरका अवश्य ही पतन हो जाता। हमने बचपनमें एक कहानी पढ़ी थी कि हाथ पाँवने पेटके साथ लड़ाई करके उसको खुराक नहीं पहुंचाई, जिसका नतीजा यह हुआ कि वह खुद भी सूख गये।

यह भिन्न भिन्न अवयव जिनका वर्णन हम पहिले कर चुके हैं भिन्न भिन्न प्रकारके पदार्थोंसे बनते हैं, जैसे कि अस्थि मांस रक्त मेद आदि। इनको प्राचीन 'धातु' कहते थे। परन्तु अणुवीक्षण यन्त्रसे मालूम हुआ है कि यह धातु भी अति सूक्ष्म खण्डोंसे निर्मित हैं जिनको "जीवकोष्ठ" कह सकते हैं। इन कोष्ठोंकी आकृति इनके कार्यके अनुसार भिन्न भिन्न हुआ करती है। इसीलिए रक्तके कोष्ठोंको जो गोल होते हैं "रक्त कण" कह देते हैं और मांसके कोष्ठ जो कि लम्बोतरे व तर्कांकार होते हैं उनको "मांस तन्तु" कहते हैं। परन्तु वास्तवमें यह सबके सब भिन्न भिन्न प्रकारके जीव कोष्ठ होते हैं। जान्तव कोष्ठोंमें उद्भिज कोष्ठोंकी तरह प्रायः कोष्ठ प्राचीर नहीं होती, पर दोनोंमें सादृश्य बहुत सा है। जिस पदार्थसे यह कोष्ठ बनते हैं उसका नाम जीवन-मूल रखा गया है: यह एक बहुत ही जटिल कर्बनका यौगिक है, जिसमें कर्बनके अतिरिक्त ओषजन उज्जन, नत्रजन, गन्धक और स्फुर भी सम्मिलित रहते हैं।

---

## बालोंकी दो पराकाष्ठा

हवशियोंके बाल अत्यन्त चपटे और घूंघरवाले होते हैं। परन्तु मोनगोलियन आदमियोंके गोल और सीधे होते हैं। यही दो बालोंकी पराकाष्ठा हैं।

---

## दीर्घजीवनके इच्छुक विवाह करें

नकशों, अंकों और गणनाओंसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि विवाह करना सांसारिक संभोग और आनन्दके लिए अनिवार्य है। पर क्या यह केवल नकशोंमें अन्धविश्वास, अथवा मिथ्या-विश्वास अथवा हृद्गत भावोंका प्रभाव मात्र है कि मनुष्य इस परिणामपर पहुंचा है? जीवन-सूचियोंके अध्ययनसे तो यह जान पड़ता है कि हर काल और हर देशमें विवाहित मनुष्य अविवाहितोंकी अपेक्षा अधिक दीर्घजीवी होते हैं। पर इसमें वास्तविक तथ्य कितना है? इसका कारण क्या है? साधारण युक्तियोंसे तो यह कहा जा सकता है कि जहां दो मनुष्य एक दूसरेकी सहायता करने, दुख मिटाने और बांटनेके लिए होते हैं वहां दोनोंका भार हलका हो जाता है और प्रसन्नता और आनन्द स्वास्थ्य और जीवनकाल दोनोंको बढ़ा देते हैं। पर क्या कोई प्रायोगिक साधन भी है जिससे इस बातकी पूरी पूरी जांच की जा सकती? डा० पर्ल इस बातकी जांच कर रहे हैं? देखें क्या परिणाम निकलता है।

# भारतवर्षका हमला जर्मनीपर

[ ले०—श्री० "जटायु" ]

लीप्ज़िगसे भागकर खिसिर अल्टनवर्ग पहुँचे। वहां आस्ट्रियाकी रक्षामें एक दिन ठहरे और फिर वहांसे आस्ट्रियाकी सेना और अपनी बचीकुची सेना सहित भागकर पूर्व दक्षिणकी ओर जर्मनीकी सीमापर तीस कोसपर जो पहाड़ियाँ हैं उनमें जाकर छिप रहे।

जिस समय भारतीयोंका हमला लीप्ज़िगकी ओर हो रहा था उसी समय भारतीय सेना हैनोवर, स्टारगार्ड और पोज़नकी ओर बढ़ रही थी। लीप्ज़िग ख़ाली कराने से दो दिन पहले स्टारगार्ड और पोज़न ख़ाली करा लिया था। अभी भारतीय सेना एल्ब नदी तो पार कर गई थी पर हैनोवर नहीं पहुंची थी कि भारतेन्दुने हुक्म दिया कि बर्लिन और लीप्ज़िग, पोज़न और स्टारगार्डके मध्यमें जितना देश है उसमें भारतीय राज्यका प्रबन्ध हो जाय और स्टारगार्डकी ओरकी सेना समुद्र तक बढ़कर कोलबर्ग बन्दरगाहपर अधिकार जमा ले।

जर्मन-आस्ट्रिया सीमापर स्थित शिखरोंपर पहुंच कर खिसिर और आस्ट्रियाके कमांडरोंमें सलाह होने लगी, आस्ट्रियाका कमांडर भारतीय सेनाके कोलबर्गकी तरफ़ बढ़नेकी ख़बर पा चुका था। उसने जर्मन सेनापतिको सलाह दी कि अपने जंगी जहाज़ोंको कोलबर्गमें एकत्रित होकर तोपोंसे भारतीयोंका मुक़ाबिला करनेका हुक्म दो। और वह स्वयम् खिसिर और खिसिरके सैनिकों तथा अपनी सेनाको लेकर जंगी मोटरकारोंपर चढ़ कर फ्रांसकी ओर चल दिया। फ्रांसकी सीमापर फ्रांसकी भी सेना उसको मिली। यहां खिसिरको ख़बर मिली कि अमेरिकासे तीस लाख सैनिक और दस हज़ार वायुयान जर्मनीकी सहायताको आरहे हैं। हिसाब लगानेसे मालूम हुआ कि एक सप्ताहमें अमेरिका, फ्रांस, आस्ट्रिया और जर्मनीके कुल सैनिक मिलाकर पचास लाख हो जायंगे और बीस हज़ार वायुयान हो जायँगे। खिसिरको सूचना मिली कि बर्फ़ पड़ने लगी है, इस कारण रूसी सेना कठिनाईसे एकत्रित हो सकती है; उसके आनेमें विलम्ब होगा, पर रूसी जहाज़ सहायताके लिये कोलवर्गकी ओर चल पड़े हैं। खिसिरने अपनी, आस्ट्रियाकी और फ्रांसीसी सेनाको जो बीस लाखके लगभग थी जर्मनीके दक्षिण और पश्चिमके भागोंमें फैलाना आरम्भ कर दिया।

भारतेन्दुने अमेरिकाकी सेनाके आनेकी सूचना जर्मन दूतोंसे पाकर अपने वायुयानोंको हुक्म दिया कि अमेरिकाकी ओर उड़कर जायं और सेनाके आनेकी ख़बर लावें। उधर भारतीयोंने मेज़बर्ग और ब्रंसविक अपने अधिकारमें कर लिये और हैनोवरकी ओर बढ़ चले। भारतेन्दुने सेनाके एक भागको फ्रैंक फ़ोर्टकी ओर बढ़नेका हुक्म दिया।

खिसिरने फ्रांसीसी कमांडरको फ्रैंकफ़ोर्टमें छोड़ दिया और आस्ट्रियाके कमांडरको अपने साथ ले हैनोवर पहुंचा। वहांसे वह ब्रंसविककी ओर गोला बरसाने लगा और दस हज़ार छोटी छोटी तोपें हैनोवर, गार्टिजन, श्वास बर्गसे ब्रंसविक और मेजबर्गकी ओर भेजी। हैनोवरसे गोले आते देख भारतीय नगर छोड़ वायुयानोंमें चढ़ गये और जर्मनके वायुयानोंको तोड़ तोड़कर गिराने लगे। इस प्रकार दिन भर वायुयानोंकी लड़ाई रही, पर हैनोवरसे बराबर गोले आते रहे। शाम हो गई तो सर्चलाइटों द्वारा वायुयानोंको ढूंढ़ ढूंढ़कर आक्रमण किया। इस प्रकार रात भी योंही लड़ाईमें व्यतीत हो गई। दूसरे दिन जब प्रातः काल हुआ तब जर्मन वायुयान एक भी दृष्टि न आया। इस एक दिन और रातकी लड़ाईमें जर्मन पक्षके पांच हज़ार वायुयान तहस नहस हो गये। इस युद्धमें केवल एक ही भारतीय वायुयान नष्ट हुआ। यह वायुयान अंधेरेमें उड़ा जा रहा था। एक नगरके ऊपर पहुंच कर इसने

अपनी सर्चलाइट खोल दी और नीचेकी ओर देखने लगा। इतनेमें दो जर्मन वायुयान जो कुछ ऊंचे उड़ रहे थे पीछेसे आगये और भारतीय वायुयानके पङ्खोंपर गोले गिराकर उसके पङ्ख तोड़ दिये। पङ्ख टूटनेके पश्चात् जब तक भारतीय सैनिकोंको शत्रुके वायुयानोंके पास होनेका पता चले तब तक वायुयान टूट कर नीचे गिरने लगा। छः भारतीय सैनिक जो इसमें बैठे थे अपनी पीठके गुब्बारोंकी सहायतासे वायुयान छोड़ कर अलग हो गये और वायुमें उड़ने लगे। उन्हें नीचेकी ओर कालेकाले धुएंके समान एक स्थानपर कुछ वृक्ष दिखलाई पड़े। यह उनकी ओर उड़ चले और बहुत चुपकेसे वृक्षोंपर उतर आये। यह किसीका बाग़ीचा था। उसमें बाग़ीचेके मालिकने एक भागमें कुछ वृक्ष लगाकर अङ्गलका नमूना बना रखा था। रातके बारह बज गये थे। चारों दिशाओंमें सन्नाटा था। पशु पक्षी मनुष्य कोई किसी तरफ़ दिखलाई नहीं पड़ता था। कभी कभी उल्लूका शब्द सुनाई पड़ता था। यह थोड़ी ही देर इन पेड़ोंपर रहे होंगे कि नीचेसे एक पहरे-वाले संतरीका शब्द सुनाई दिया। एक भारतीय सैनिक शब्दकी तरफ़ दबे पांव बढ़ गया। इसने देखा कि कोई मनुष्य संतरीसे बातें कर रहा है। इतनेमें चार पांच मनुष्य और जङ्गलसे निकल कर सन्तरीके पास आगये। चार पांच मिनटके वार्तालापके पश्चात् संतरी अपने पहरेपर ही खड़ा रहा और शेष मनुष्य जङ्गलमें चले गये। भारतीय सैनिक ने यह सब हाल अपने शेष साथियोंसे कहा। भारतीय सैनिकोंको निश्चय होगया कि जिस अरण्य खंडके ऊपर वह उतरे थे उसमें जर्मन सैनिक छिपे थे। एक भारतीय सैनिक वृक्षके ऊपरसे नीचेकी ओर उतरा और उसने आखें फाड़ फाड़ कर बगीचे की ओर देखा, पर उसे कुछ नहीं दिखाई दिया। बड़ा घोर अंधेरा छाया हुआ था। इतनेमें एक जर्मन सैनिकने सिगरेट पीनेके लिए दियासलाई जलाई; उसने देखा कि एक तोपसे सुसज्जित मोटरकार वृक्षोंमें छिपी हुई है और उसके आसपास थोड़ेसे सैनिक भूमिपर सो रहे हैं और जिस सैनिकने सिगरेट जलायी है वह पहरा दे रहा है। यह दशा देखकर भारतीय सैनिक अपने साथियोंकी ओर ऊपर चढ़ गया और जो हाल देखा था वर्णन किया। भारतीयोंमें सलाह हुई कि तोपको छीन लेना चाहिये, पर आक्रमण करनेके पहले यह जानना आवश्यक था कि कितने सैनिक वृक्षोंमें छिपे हैं। एक बाहर पहरेपर है, एक तोपपर पहरा दे रहा है और छः सो रहे हैं, पर यह ठीक नहीं मालूम था कि इधर उधर कहीं और तो पहरेपर नहीं हैं। सलाह यह हुई कि पहले उजाला करके जितने सैनिक दिखाई देते हैं उनपर शस्त्र चलाना चाहिये और नीचे न उतरना चाहिये; अगर और कोई सैनिक आस पाससे आता न दिखाई दे तब उतर कर तोपको अपने अधिकारमें कर लेना चाहिये।

हम एक समयपर देख चुके हैं कि कैसे एक भारतीय सैनिकने एक कार्तूससे हवाई छोड़कर, सिगनेल देकर, अपनी सहायताके लिए भारतीय वायुयान बुला लिया था। यह हवाई कार्तूस साधारण कार्तूसोंसे दुगने लम्बे होते हैं और गोली-के स्थानपर इनमें एक लम्बी लकड़ीकी खूंटीसी लगी हुई होती है। टोपीपर चोट मारनेसे यह छूटते हैं। जहांपर यह छोड़े जाते हैं आकाशमें बहुत ऊंचे तक एक लाल धुआंकी सी धारा प्रकट हो जाती है जो अत्यन्त प्रकाशमान मालूम देती है। अगर इन कार्तूसोंकी खूंटी निकाल कर फेंक दें और टोपीकी तरफ़से इन्हें पृथ्वीपर पटक दें तो इनमेंसे दो तीन मिनट तक बिजलीका सा प्रकाश निकलता रहता है।

भारतीय सैनिकोंने आपसमें सलाह करके हवाई कार्तूससे खूंटी निकाल कर एक सैनिकके हाथोंसे एक कार्तूसको टोपीकी तरफ़से मोटरकार-पर फिंकवाया। कार्तूस गिरते ही दिनका सा प्रकाश हो गया। प्रकाश होते ही जो सैनिक सो रहे

थे ऐसी फुर्तीसे उठ खड़े हुये मानों वह पहलेसे ही पहरेपर थे और खड़े होते ही सबोंने अपनी अपनी बन्दूकें हाथोंमें सम्हालीं। जो जर्मन पहरेपर बाहर खड़ा था वह भी तोपकी ओर आगया और एक और पहरेवाला जो भारतीयोंको नहीं मालूम था बाईं ओरसे आ मिला। जितने समयमें यह सब हुआ उससे कितना ही अधिक समय इस वर्णनमें लगा है। यह सब घबराये हुए खड़े थे और प्रकाशसे इन सबके नेत्र चकाचौंध हो रहे थे कि इतनेमें एक जर्मनने इस प्रज्वलित कार्तूसकी ओर अपनी बन्दूक तानी। यह देखकर भारतीयोंने ऊपरसे इन सबपर धड़ाधड़ गैसके तमञ्चे चलाये। आठों जर्मन सैनिक बेहोश होकर गिर पड़े। फिर घोर अंधियारा छागया; पर तुरन्त ही एक टेलीफोनकी घंटीका शब्द सुनाई दिया। सब भारतीय सैनिक नीचे उतर आये। उन्होंने देखा कि तोपकी मोटर-कारके पीछे एक और गोले बारूदकी मोटरकार है। उसीसे घंटीका शब्द निकल रहा है। एक सैनिकने जो कुछ जर्मन भाषा जानता था टेली-फ़ोनको कानसे लगा लिया। कोई पूछता था कि यह प्रकाश कैसा हुआ और गोली किसने दागी। भारतीयने उत्तरमें कहा कि चुप रहो, काम बिगड़ जायगा। भारतीय सैनिकोंने यह विचारा कि इस मोटरकारका केन्द्र कहीं पास ही है, इस कारण जो कुछ करना हो तुरन्त करना चाहिये। इन्होंने तुरन्त जो कुछ रस्सी, कपड़े, पट्टियां इत्यादि आसपास मिलीं उनमें बेहोश जर्मनोंको, उनकी पीठपर उनके हाथ बांधकर और एक पैरसे दूसरे पैर को बांध-कर, वृक्षोंसे दूर ले जाकर सबको एक दूसरेसे अलग अलग डाल दिया। इतनेमें किसीके आने-की उन्हें आहट मालूम हुयी। सब भारतीय तुरन्त वृक्षोंके ऊपर चढ़ गये। इन्होंने ऊपरसे क्या देखा कि पश्चिमकी दिशासे एक मोटरकार आ पहुंची। उसमेंसे दस बारह मनुष्य उतरे और मोटरकारके समीप खड़े होगये। एक मनुष्य कुछ आगे बढ़ा और उसने सीटी बजाई। सीटीका कोई उत्तर न मिला तो वह आगे बढ़कर वृक्षोंमें आया और इधर उधर अंधेरेमें तोपके चारों ओर घूमने लगा। कुछ समय पश्चात् उसने अपनी पाकटसे बुल्सआई लालटैन निकाली और उसके प्रकाशकी सहायता-से उसने चारों ओर और ऊपर वृक्षोंमें देखा, पर कुछ नहीं दिखाई दिया। उसने जो बाहर सैनिक खड़े थे उन्हें बुलाया। यह आनकर पहरेपर खड़े हो गये और तोपको इन्होंने अधिकारमें ले लिया। लालटैनवाला सैनिक, जो कोई नायक ज्ञात होता था, टेलीफ़ोनपर जाकर कुछ बातें करने लगा। भारतीय सैनिक वृक्षोंके ऊपरसे चुपचाप तमाशा देखते रहे। पन्द्रह बीस मिनटमें चार मोटरकार और आ उपस्थित हो गये। इनमेंसे लगभग पचास सैनिक उतर पड़े और एक नायकके पीछे पीछे वृक्षोंके झुंडमें आये। इस नायकसे और जो नायक यहां पहलेसे उपस्थित था कुछ बातें हुईं। इसके पश्चात् इस नायकने कुछ आर्डर दिया; इसपर तुरन्त एक मोटरकार लगभग एक मीलके पीछे हट गई। इसने सर्चलाइट खोल दी, जिससे इस अरण्यखंडमें दिनका सा प्रकाश हो गया और सैनिक और नायक चारों ओर खोये हुये जर्मनोंको ढूंढ़ने लगे। बीच बीचमें नायक कभी कभी अपनी सीटी बजा देता था। जब ढूंढ़ते हुये जर्मन सैनिक उधर पहुंचे जिधर भारतीयोंने जर्मनोंको बांधकर फेंका था उन्हें कराहनेका सा शब्द सुनाई दिया। जब इन्होंने पास जाकर देखा तो एक जर्मनको हाथ पैर बंधे हुये पृथ्वीपर पड़ा पाया। तुरन्त इन्होंने उसे खोल दिया। यह अपने पैरोंपर खड़ा हो गया और इसे नायकके पास ले आये। नायकने इससे इसकी दुर्दशाका वृत्तान्त पूछा। इसने कहा, "कि मैं स्वयम् आश्चर्यमें हूं। मैं तोपके पास सो रहा था कि इतनेमें एक हल्का पड़ाका सा छूटा। इस शब्दके सुनते ही मेरी आंख खुल गई और मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ। तोपके ऊपर एक बड़ा प्रकाश सा दिखलायी दिया। मैं बन्दूकपर हाथ

रखकर सोच ही रहा था कि जहां तक मेरे ज्ञानमें आता है ऊपरकी ओरसे एक पिस्तौलकी बाढ़ दगी और मैं अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। इसके पश्चात् मुझे ज्ञात नहीं कि किसने मेरे हाथ पैर बांधे और कौन मुझे उठाकर वहां डाल आया। जब मुझे चेत हुआ तो मुझे सैनिककी सीटी दूर-पर बजती सुनाई दी। मैं चिल्लाकर पुकारनेका विचार रहा था कि मुझे कुछ मनुष्योंकी चाप मालूम दी। हाथ और पैर बंधे बंधे दर्द करने लगे थे और मैं पीड़ासे कराह रहा था। सम्भव है कि मेरा कराहना सुनकर यह सैनिक मेरे पास आये हों।"

दोनों नायकोंमें कुछ बातचीत हुयी, जिसका फल यह हुआ कि जिधरसे इस सैनिकको यहां उठा लाये थे बहुत से मनुष्य उधर शेष खोये हुये जर्मनोंकी खोजको भेजे गये और नायकने सर्च-लाइटको किञ्चित वृक्षोंकी ओर ऊंचा करनेका आर्डर दिया। दोनों नायक और बहुत से सैनिक आंखें फाड़ फाड़कर ऊपर वृक्षोंकी शिखरोंकी ओर देखने लगे। कुछ पक्षी जो वृक्षोंमें बसेरा ले रहे थे इस तीव्र प्रकाशसे और मनुष्योंके चलने फिरनेके शब्दसे भयभीत हो कर अपने प्राण बचानेके लिए सर्चलाइटकी ओर उड़ भागे। इनके उड़नेसे जो खड़खड़ाहट हुयी एक आध सैनिकने शब्दकी दिशामें एक आध फ़ैर भी कर दिया। एक नायकने कुछ सैनिकोंको पेड़ोंपर चढ़कर खोजनेका आर्डर दिया। भारतीयोंने कुछ दूरपर सामने एक जर्मनको वृक्षपर चढ़ता देखा, तो पिस्तौलका फ़ैर किया। पिस्तौलका शब्द गूंज उठा और जर्मन बेहोश होकर नीचे पृथ्वीपर गिरा और चूरचूर होगया। तुरन्त ही इस वृक्षपर चारों ओर-से जर्मन फ़ैर करने लगे। समय पाकर भारतीय अपने अपने गुब्बारोंको तान ऊपरकी ओर उड़ चले। सर्चलाइटके प्रकाशके कारण कुछ जर्मनोंने इनको उड़ता देखा, पर जब तक वह अपने साथि-योंको निश्चय करनेके लिए इनकी ओर आकर्षित करें यह रात्रिके कारण दृष्टि से बाहर हो गये।

चार ही पांच मिनट यह आकाशमें उड़े होंगे कि इन्हें एक बिना शब्दका वायुयान उड़ता दीख पड़ा। इससे इन्होंने पहचाना कि यह भारतीय है। तुरन्त एक भारतीयने एक हवाई कार्तूस निकाल कर छोड़ा, जिससे जहां यह उड़ रहे थे कुछ समय-के लिए एक प्रकाश सा उत्पन्न हो गया। प्रकाशको देखकर वायुयान उस स्थानपर आया और उसने भारतीयोंको उसपर चढ़ा लिया। प्रकाशके देखते ही जर्मनोंने सर्चलाइट ऊपरकी ओर उठाई। इन भारतीयोंने तुरन्त वायुयानसे हाथसे इशारा करके कहा कि उन वृक्षोंमें एक तोप और जर्मन छिपे हैं। वायुयानने इन वृक्षोंके आस पास दो तीन छींकके गोले गिरा दिये, जिससे जर्मनोंमें घोर छींकका रोग उत्पन्न होगया और वह खोजना भूल गये। इसके पश्चात् सर्चलाइटपर गोला गिराकर सर्चलाइट और मोटरकार दोनोंको नष्ट कर दिया और तत्पश्चात् भारतीयोंको लेकर यह सेनापतिके पास उड़ आया। सेनापतिने इनकी वीरताकी बड़ी प्रशंसा की और जो शत्रुके हालात ज्ञात हुए, उनकी रिपोर्ट भारतेन्दुके पास भेजदी।

भारतेन्दुने आर्डर दिया कि एक बार बिजली-खंडन वायुयान शत्रुकी सेनाके ऊपर उड़ाकर इन-के टेलीफ़ोन मोटर इत्यादि सब बन्द कर दो और जहां जहां मोटर तोपें छिपी हैं टेलीफ़ोनके जासूसी वायुयान द्वारा उनके स्थानोंको ज्ञात करके तोपों-को नष्ट कर दो।

बोसका वायुयान आगे आगे उड़ाकर कुछ वायुयानोंने जर्मनकी आकाशी तोपोंके स्थान जान लिये। इसी समय जब कि युद्ध हो रहा था श्रीयुत हनूमान प्रसाद गुप्ताने बोसके वायुयानमें एक अत्यन्त उपयोगी परिवर्तन किया। हम यह तो बतला ही चुके हैं कि बोसका वायुयान बेतारके बिजलीके यंत्रोंकी सहायतासे बिना किसी वायुयानके उड़ सकता था। श्रीयुत गुप्ताजी ने इसमें एक यह नई बात करदी कि इसमें दो भंडार बमके गोलोंके और ज्वालाके गोलोंके और जोड़ दिये। इन भंडारों-

को पेंदीमें एक एक ढकन लगा हुआ है। ऊपर-वाला वायुयान बेतारके बिजलीके यंत्रकी सहायता-से जिस ढकनको चाहे खोल सकता है अथवा बन्द कर सकता है। ज्वालाके छोटे छोटे गोले सैकड़ों भंडारमें रख लेते हैं। जब किसी स्थानपर बोसके वायुयानको उड़ता देख कर जर्मन आ-काशी तोप छोड़ते हैं तो भारतीय अपने वायुयान-से ज्वालाके गोलेंके भण्डारका ढकन खोल कर एक गोला नीचे टपका देता है। गोलेके पृथ्वीपर गिरते ही उस स्थानपर प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकाशकी सहायतासे वायुयान जान लेता है कि तोप पर गोला गिरानेके लिए उसको अपना यंत्र किधर उड़ाना चाहिये। जब यंत्र ठीक तोपके ऊपर उड़ता है तो उस समय बमका गोला गिरा कर तोप नष्ट कर दी जाती है। इस प्रकार बोस-गुप्ताके वायुयानोंकी सहायतासे सब जर्मन आ-काशीय तोपें नष्ट कर दीं। इस रणक्षेत्रमें भार-तीयोंके केवल दो बोस-गुप्ता वायुयान नष्ट हुये।

इस प्रकार जब जर्मनके पांच छः सहस्र वायु-यान, सब आकाशी तोपें और मोटरकारकी तोपें नष्ट होगईं, जर्मन सैनिकोंके पैर उखड़ गये। जा-बजा भगदड़ पड़ गई। जर्मन सेना नायक अधि-कांश अपनी अपनी सेनाओंको छोड़ कर और अपने बाल बच्चे लेकर कोई फ्रांस चल दिया, कोई अमे-रिका चल दिया, कोई इटली, कोई आस्ट्रिया, कोई आस्ट्रेलिया। हज़ारों सैनिक अपने अपने घर चल दिये। उन्होंने अपनी अपनी वर्दियां सब जला डालीं। कोई साधारण कृषकका, कोई व्यापारीका, कोई खोमचेवालेका और कोई दूकानदारका काम करने लगे। इस प्रकार बहुत से सेनाके केन्द्र जन शून्य होगये और वहांसे खिसिरको किसी प्रकारकी सूचना मिलना बन्द हो गयी। खिसिरको बड़ा विस्मय और आश्चर्य होने लगा।

इस प्रकार भारतीयोंने हैनोवर, हम्बर्ग, गार्टिनजन, गाथा-कोबर्ग और इनके बीचके सब स्थान अपने अधिकारमें कर लिये और पूर्वमें कोलबर्ग, ब्रम्बर्ग, पोज़न, ब्रिस्ला-स्थानों और बर्लिनके मध्यका क्षेत्र भारतेन्दुके अधिकारमें आगया। जब भारतीय कोलबर्गपर पहुंचे तो उन्हें मालूम हुआ कि वहां पोर्टके आगे समुद्रमें जर्मन और रूसी जहाज़ एकत्रित हैं और कोलबर्गकी तरफ़ गोले फेंक रहे हैं। समुद्रके तटसे ३० कोस तक भूमि-पर उनके गोले बरस रहे हैं। रानाने अपने वायु-यानोंको भेजा और उनके द्वारा यह ज्ञात किया कि शत्रुके कितने जहाज़ हैं और कहां कहांपर हैं। इसके पश्चात् भारतेन्दुकी आज्ञासे भारतवर्षसे उन्होंने वह तोप मंगाई जिसका नाम प्रलय था। इसकी बनावट बड़ी विचित्र थी। यह दस भागोंमें विभाजित हो जाती थी और एक एक भाग एक एक वायुयानमें लादकर दस वायुयानों द्वारा २४ घन्टेमें इसे बर्लिन पहुंचा दिया गया। बर्लिनमें यह सजा कर रखी गई। भारतेन्दुने बिना किसी रोक टोकके अपनी जर्मन जनताको इसके दर्शन करनेकी आज्ञा दे दी। दिन भर यह बर्लिनमें रखी रही। इसके पश्चात् यह कोलबर्ग पहुँचाई गई। साधारण तोपकी तरहसे इसमें पहिये नहीं हैं। जिस तरहसे दुनाली बन्दूक बनी हुई होती है उसी प्रकार यह भी दुनाली बनी है। पर इसमें नाल दायें बायें नहीं लगी हैं बल्कि ऊपर तले लगी हैं। इसको जहां लगाना होता है एक पक्का सीमेंटका चबूतरा बनाकर और चबू-तरेपर एक खड़ा और एक लेटा लोहेका पहिया गाड़ कर इन पहियोंके बीचमें एक पेटीसी रखते हैं और इस पेटीपर तोपकी नलियां कस देते हैं। इस प्रकारसे कसते हैं कि तोपोंके नाल एक दूसरे-के ऊपर रहती हैं। इन नालोंमें एक एक मनका गोला आता है। ऊपरके गोलेमें चालीस सेर सेर भरके डाइनेमाइटके कार्तूस होते हैं। नीचेकी नालमें केवल ठोस गोला भरा होता है। इसका चलाना भी बड़ा विचित्र है। पहले ऊपरका गोला छूटता है और दस कोस आकाशमें चढ़ जाता है इसके पश्चात् नीचेका गोला छूटता है और वह

ऐसा समय बांध कर छोड़ा जाता है और सच्चा निशाना होता है कि यह पीछेसे जाकर ऊपरके छूटे हुए गोलेको ठेल देता है, जिससे यह तीस कोस और ऊपर चढ़ जाता है और समुद्र अथवा पृथ्वीपर सौ कोसपर जाकर गिरता है; पर जब पृथ्वीसे यह एक मीलके ऊपर होता है तब फट जाता है और चालीसों कार्तूस चार मीलमें छिटक कर गिरते हैं। इनमें इतना वेग होता है कि अगर पृथ्वीपर गिरें तो जैसे सुई कपड़ेको छेदती है उसी प्रकार यह पन्द्रह फुट ज़मीन छेद कर धँस जाते हैं और अगर किसी जहाज़ पर गिरें उसमें इस पारसे उस पार छेद कर जलमें ठण्डे हो जाते हैं। इनका निशाना लेनेकी भी अपूर्व रीति है। जिस स्थानपर इनको गिराना होता है उसके ऊपर वायुयान जाकर उड़ने लगता है। पहला गोला अटकलसे छोड़ दिया जाता है और वायुयान दूर्बीनसे देखता है कि किधरको गोला गिरा। अगर गोला जहाज़के आगे निकल गया है तो वह बेतार के तार द्वारा तोपवालोंको सूचना देता है कि कुछ पीछे डालो।

इस प्रकार दो तीन गोले छोड़कर दो रूसी और चार जर्मन जहाज़ डुबो दिये गये। रूसी और जर्मन एडमिरेलोंको जब आक्रमण करनेके लिए तोपका स्थान न मालूम हुआ तो अपने अपने जहाज़ लेकर विवश हो युद्धस्थलसे चल दिये। अब भारतेन्दुने उत्तर समुद्रके तट तक देश अपने अधिकारमें कर लिया और तत्पश्चात् पश्चिममें फ्रांसकी सीमा तक और जर्मन समुद्र तक बढ़नेकी आज्ञा दी।

खिसिर और फ्रांस तथा आस्ट्रियाके कमांडर मिलकर सोच विचार करने लगे और यह निश्चय किया कि जब तक अमेरिकाकी सेना और वायुयान न आजायँ युद्ध स्थलसे हट जाना चाहिये। इस कारण आस्ट्रियाका कमांडर स्विटज़रलेन्डके पहाड़ोंमें जा बैठा और खिसिर फ्रांसके कमांडरको लेकर कैले चला गया और अमेरिकाकी सेनाकी प्रतीक्षा करने लगा। ( असमाप्त )

# राक्षस-जातिका इतिहास

इतिहास प्रसिद्ध सूर्यवंशीय रघुपति रामचन्द्रके नामसे कौन अनभिज्ञ है। इसी प्रकार उनके प्रतिद्वन्दी राजा लङ्कापति रावणको कौन नहीं जानता। इतिहासका कार्य इन दोनों ही प्रसिद्ध वीरोंका चरित्र चित्रण है। जिन प्रसिद्ध पुरुषोंके चरित्र प्रदर्शनके लिए बड़े बड़े ऐतिहासिक ग्रन्थ बहुत बड़ी संख्यामें विद्यमान हैं, उनका बारबार उल्लेख करना रुचिकर भी नहीं होता। परन्तु-जिनके चरित्रोंको विचित्र होते हुए भी दैववश विरले ही लेखकोंने बड़े संक्षेप तथा असम्बद्ध रूपमें लिखा है उनको इकट्ठा करके क्रमबद्ध रूपमें रखना प्रत्येक इतिहासकारको अच्छा लगेगा।

वर्तमानमें प्राचीन इतिहासका सर्वथा विलोप हो जाना बड़ा ही खेद कर माना जा रहा है। बड़े बड़े प्रयत्नसे विलुप्त इतिहासको शृङ्खलाबद्ध करनेके लिए देशीय और विदेशीय विद्वान कटिबद्ध होकर इतिहासका मर्म खोजनेमें लगे हैं। कालक्रमसे जो नगर खण्डहरके रूपमें भूमिकी तहोंमें लीन हो रहे थे, विक्रमशील ऐतिहासिक अनुवेषक उनके सुखपूर्वक कारण-लयको न सहन करते हुए मानों पुनः जागृत करना चाहते हैं। टूटेफूटे खण्डहरोंकी वह इस प्रकार रक्षा कर रहे हैं, जिस प्रकार पूज्य देवता तथा भक्तिपात्र राजाकी सेवा की जाती है। पुराने ऐतिहासिक मूर्त्तिखण्डों, अस्थियों, द्वारों, कपाटों, स्तम्भों, विजयस्तम्भों तथा शिलाखण्डों, शिलालेखों, सिक्कों, ग्रन्थों और चित्रोंकी भी अद्भुतालयोंमें ऐसी रक्षा की जारही है जैसी कदाचित् उनके वैभवकालमें भी स्वप्नमें भी उपलब्ध नहीं हुई होगी। सो यह सब किसलिए? केवल इसलिए कि वर्त्तमान और भविष्य कालके विद्वान यह जान लें कि अमुक अमुक कालमें इस भूमिपर ऐसी ऐसी वैभवशाली जातियाँ रह चुकी हैं।

ऐतिहासिक खोजका सिलसिला न केवल भारतवर्षके कतिपय भागोंमें ही जारी है, जैसे विजयनगर, इन्द्रप्रस्थ, तक्षशिला, सांची, सारनाथ, यलोरा, अजन्ता आदिमें, प्रत्युत सभी देशोंमें प्रायः पुरानी जातियोंके अद्भुत चरित्र जाननेकी प्रबल अभिलाषासे खुदाईका काम जारी है।

कुछ वर्ष पहले अमेरिकाके मैक्सिको, कैलिफ़ोर्निया आदि अनेक विभागोंमें उन ऐतिहासिक स्थानोंका जीर्णोद्धार प्रारम्भ हुआ जो शनैः शनैः भूगर्भमें धंसते चले जा रहे थे। यह ऐतिहासिकके लिए बहुत ही चित्ताकर्षक सिद्ध हुआ है। जिन स्थानोंके आदिम निवासियोंको जङ्गलमें वन्य पशुओंकी तरह अज्ञानमय जीवन बिताते हुए वर्तमान गौर वर्ण जातियोंने देखा उनके विषयमें विद्वानोंकी पहले यही कल्पना हुई कि कदाचित सभ्यताके क्रमिक विकाशकी प्रथम सीढ़ीपर खड़ी हुई यही जातियां हैं, जिनको घर बनाना, नगर बसाना, शिल्पकी उन्नति करना आदि स्वप्नमें भी नहीं आया। परन्तु वर्तमानमें जीर्णोद्धारके प्रयत्नसे अब यह विचार पलट रहा है। अब यह माना जाने लगा है कि यह सब जातियां प्राचीन कालमें बहुत उन्नति कर चुकी थीं; परन्तु बादमें उनका निरन्तर अधःपतन होने लगा और जो शेष भाग अब बचा है जङ्गली पशुओंकी नाईं जीवन बिता रहा है।

जैसे किसी दुःखी हीन, दीन, कष्टमें पड़े, भाग्यहीन व्यक्तिको देखकर चित्तमें यह जाननेकी उत्सुकता उत्पन्न होती है कि यह कैसे विपत्तिमें फंस गया, क्यों इसपर कष्ट आये, इसका पूर्व इतिहास क्या है, उसी प्रकार इन आरण्य-जातियोंको कालके प्रबल चक्रमें पिसते हुए देखकर भी यही उत्सुकता उत्पन्न हो उठी है कि इनका पूर्व चरित्र जाना जाय। इसीलिए अमेरिकाके गम्भीर बनोंमें जा जाकर निरन्तर जीवनको सङ्कटमें डालकर पुराने खण्डहर और धरती खोदी जारही है। यह सब उसी उत्सुकताका विलास मात्र है। बड़ी गहरी खोजसे अपूर्व सम्पन्न जातिकी सभ्यताका पता लगा है जिसको 'माया सभ्यता'* नाम दिया गया है। इस लुप्तप्राय प्राचीन गड़ी हुई सभ्यताके विषयमें अद्भुत अद्भुत कल्पनाएं की जा रही हैं, जिनको सुनकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। हमारा यह दृढ संकल्प है कि 'विज्ञान'के पाठकोंके सामने इस सभ्यताका जितना विवरण मालूम है उपस्थित करें।

परन्तु इसको सहसा प्रारम्भ कर देनेके पहले उस देशका प्राचीन इतिहास जानना आवश्यक है। जैसे नाटक घरमें सहसा प्रवेश करनेवालेको पहली कथाके ज्ञानके बिना कोई भी दृश्य विनोद जनक नहीं भासता, उसी प्रकार अमेरिकामें नये खोदे हुए खंडहरोंके दृश्य देखना भी रुचिकर न होगा, जब तक कि उससे पूर्वके विषयमें कुछ कथा प्रसङ्ग ज्ञात न हो जायगा।

वहांकी लुप्तप्राय सभ्यताका नाम 'माया सभ्यता' रखा गया है। उस मानव जातिको माया जातिके नामसे पुकारा जाता है। परन्तु कदाचित् अमेरिकाके भूखण्डोंको खोदनेमें तथा माया जातिके अद्भुत चरित्रोंको खोज निकालनेमें व्यग्र विद्वान माया जातिकी वास्तविकताका पूरा पूरा निर्णय नहीं कर सकेंगे, जब तक कि उनको पूरा मूल भाग उपलब्ध नहीं होगा। इस नामको सुन और पढ़कर हमें बड़ा ही आश्चर्य हुआ है कि पाताल (नाग लोक) में माया जातिका पता चला है। इसीसे प्रेरित होकर हम पाठकोंको इस जातिका इतिहास अत्यन्त प्रचीनकालसे लेकर वर्तमानमें जितना भी मालूम हुआ है यथामति सुसम्बद्ध रूपमें सुनाना चाहते हैं।

भारतवर्षमें मय नामक दैत्य बड़ा शिल्पी हुआ है। वह राक्षस जातिका विश्वकर्मा अपने समयमें बड़ा प्रसिद्ध था। इसके हस्तकौशलका जीताजागता नमूना इन्द्रप्रस्थमें खड़ा हुआ युधिष्ठिरका क़िला है, जिसको देखते ही यद्यपि ऐतिहासिकोंकी आखें

---

* Maya civilisation.

मारे विस्मयके पलक झपकना भूल जाती हैं और जिसको देखकर नवीन सभ्यताके गर्वसे फूले हुए भी गौरवर्णके हरिवर्षीय विद्वान दांतों तले अँगुली दबाकर रह जाते हैं। निष्पक्षपात ऐतिहासिक होकर राग द्वेषके प्रवाहमें बह जाना बड़ी भारी भूल है। भारतवर्षकी सर्वसाधारण, जनता, की दृष्टि प्रायः इसी रागद्वेषके अञ्जनसे अंज चुकी है। अतः वह एक पक्षको विशाल देखकर दूसरे पक्षकी विशालताको देखनेमें दत्तावधान ही नहीं हुआ चाहती। भारतीय जनताका चित्त दैत्य, दानव और राक्षस, इन नामोंको सुनकर कुछका कुछ ही समझती है। भारतीय कथाओंको सुनकर भी उक्त तीनों नामोंसे यही प्रतीत होता है कि यह नाम बड़े भयंकर जंगली लोगोंके हैं, जिनको कपड़े पहनना, सौम्य भोजन करना, सभ्यतापूर्वक रहना, मकान बनाना, बड़े बड़े राज्यस्थापन करना, बड़े नगर बसाना, व्यापार करना, शिल्प तथा कला कौशल आदि काम नहीं आते थे। ऐसा समझा जाता है कि यह लोग जंगलोंमें रहते, पशुओंको शिकार करके मारते और खाते, और अपने शत्रु मनुष्यों तकका मांस खाजाते होंगे; एवं हिंसक, असभ्य और बड़े भीषण हुआ करते होंगे। यही विचार प्रायः इन नामोंसे उठा करते हैं, जिनके प्रतिरूप अब अफ्रीकामें हबशी, अमेरिकामें नीग्रो और रेड इन्डियन लोग, एवं आस्ट्रेलिया तथा मलीशियाके द्वीप समूहोंकी आदिम नीच जातियां (Aborigini[illegible]) हैं।

परन्तु प्रिय पाठक गण, यह विचार करना विचारशील ऐतिहासकोंकी दृष्टिसे बड़ी भूल है। थोड़ा सा भी प्रयत्न कीजिये भारतके कुछ भागोंमें ही खोजिये तो मालूम होगा कि भारतके सूर्य और चन्द्रवंशीय राजकुलोंकी सन्तान पहाड़ोंमें चौहान और राजपूत नाम धारणकर अब इस अधोगतिको प्राप्त हो गयी है कि जिसको देखकर उनकी प्राचीनकालकी यौधिष्ठिरी राज्यशोभा और रामचन्द्रीय राज्यलक्ष्मीका अनुमान करना दुष्कर है। इसी प्रकार प्रसिद्ध राजपूतोंके वंशीय वर्त्तमानमें खानाबदोशोंके रूपमें सैकड़ोंकी तादादमें घूमते फिरा करते हैं, जो सिकलीगरोंका काम करके जीवन निर्वाह करते हैं। इसी प्रकार अब किरात और भीलोंको देख कर या हबशी और रैड् इन्डियनोंकी दुरवस्था देखकर—उनके प्राचीन वैभवशाली राज्य तथा सभ्यताकी उपेक्षा करना विवेकको सर्वथा शिथिल कर देनेके समान है।

प्राचीन दैत्य दानव और राक्षस जाति एवं इन्हींके सहचर लोग यक्ष, किन्नर, गुह्यक, सिद्ध, नाग, प्राचीन कालमें बड़े सभ्यतासम्पन्न, वैभवशाली, भव्य और दिव्य हो चुके हैं, जिनका इतिहास हमें हमारे साहित्यमें छिटका हुआ मिलता है, जिसको खोज निकालना हमारा कर्त्तव्य है। वेद, ब्राह्मण तथा रामायण और महाभारत और इसके अनन्तर कितने ही पुराणोंमें भी उक्त जातियोंके विषयमें बहुत सी ऐतिहासिक घटनायें उपलब्ध होती हैं, जिनको एकत्र संग्रह करलेनेसे बड़ा भारी नवीन इतिहास तैयार हो सकेगा।

इस गम्भीर कष्ट साध्य गवेषणामें हम पाठकोंको सहसा डालना नहीं चाहते। बिथुरे हुए भागोंमें हम पीछेसे हाथ लगावेंगे और उनपर पृथक् आलोचना करेंगे। प्रथम सुगमताके लिए इतिहासके तन्तुओंके उलझे हुए गोलेको उलट पुलट कर कोई एक सूत्रका अग्र पकड़ लेना चाहिये और सावधानीसे उसको खींचना चाहिये। इस प्रकार क्रमशः सभी सूत्रोंकी संगति सुगम हो जायगी।

हमें यह मानना ही पड़ता है कि राम यदि रावण जैसे त्रैलोक्य विजयी दर्पिष्ठ शत्रुका नाश न करते तो आज उनका नाम लेवा और पानी देवा भी कोई न होता। परन्तु हम देखते हैं कि रामके नामपर भारतमें बसी हुई सम्पूर्ण आर्य जातिका जातीय खून उबल उठता है। रामके विजयपर जातीय रगोंमें विजयका रस फड़कने लगता है। इसका कारण यह है कि यह एक

जातिकी दूसरी जातिपर बड़ी भारी विजय थी, जिसमें कदाचित् विजित जातिका सर्वस्व बलि चढ़ चुका था। कमसे कम गर्वीली शानकी छटा फिर राक्षस जातिकी कभी न चमकी।

आंखें खोलकर देखनेसे तो यह प्रतीत होता है कि उधर रावणके बाद राक्षस जाति चिरकालके लिए ठंडी हो गयी और इधर रामके बाद कोशल-राज्यको सुख निद्रा आई। उधर लङ्काका वैभव चूर्ण हो गया, इधर अयोध्याकी दीवारोंपर भी घास जमने लगी।

रामायण काल एक ऐतिहासिक स्वर्णीय काल था, जिसमें देश और विदेश दोनोंमें बड़ी स्पर्धासे वैभवमें, सभ्यतामें, विचारोंमें, सेना संघर्षमें तथा विजय-लक्ष्मी-लाभमें बड़ा आन्दोलन हो रहा था। हरएक जाति अपनी प्रतिस्पर्द्धिनी जातिको अवसर पाकर कुचल डालना चाहती थी, ग्रस लेना चाहती थी, सर्वथा उखाड़ डालना चाहती थी। उस समयके स्वयंवर लड़ाइयां छेड़नेके लिए निमित्तमात्र थे और संघर्ष खाती हुई जातियाँ जोश ख़रोशके साथ रणके दंगलमें उतर आती थीं। प्राचीन कालमें ऐसे बहुत से अवसर आये हैं, जो यथा स्थान दिखाये जायेंगे।

भारतवर्षके वाङ्मय साहित्य भण्डारमें कितने ही कल्पोंका इतिहास गुंथा पड़ा है। हरएक पुराण-कारने उन इतिहास सूत्रोंको धर धर लपेटा और कस कस कर गाँठे लगाईं, पर इस बातका विचार न किया कि इनको सुलझाना बहुत कठिन हो जायगा। उनके प्राथमिक अविवेकका फल अब भुगतना पड़ रहा है, तो भी हम उन पुराणकार तथा कथाकथक लोगोंको धन्यवाद देते हैं, क्योंकि यदि वह ऐसा न गूँथते तो कदाचित् यह सूत्र हमारे हाथसे सदाके लिए विलुप्त हो जाते।

देव, दैत्य, दानव, राक्षस, यक्ष, किन्नर, सिद्ध, गुह्यक, नाग और मानव यह प्राचीन कालमें जातियोंके बड़े बड़े विभाग थे। इनमेंसे दैत्य, दानव, राक्षस, यक्ष—यह चार जातियां प्रायः पारस्परिक सम्बन्धोंसे सम्बद्ध रहती थीं। देव और किन्नर पर्वतप्राय देशोंमें निवास करते थे और गान विद्याके प्रेमी थे। सिद्ध, गुह्यक और नाग पर्वतों, बनों, गुफाओं और कन्दराओंमें बसते थे, जिनके विषयमें यथावसर विस्तृत वर्णन किया जायगा। मानव लोग प्रायः भारतमें या जम्बू-द्वीपमें बसते थे।

संक्षेपतः शिल्प तथा कौशलमें मानव लोग बड़े पिछड़े हुए तथा श्रमशील रहे हैं। देवता अलौकिक शक्तियोंसे युक्त रहते थे। दैत्य, दानव, राक्षस, यक्ष, किन्नर, नाग आदि लोग मायाप्रिय गुप्त गृहोंमें वास करनेवाले, बहुरूपधारी तथा आश्चर्योत्पादन और शिल्प-चातुर्यमें सिद्धहस्त होते थे। इन बातोंके उदाहरण अन्यत्र दिखाये जायंगे। यही लोग प्रायः पाताल लोक, नागलोक, सिद्धलोक आदि स्थानोंपर बसा करते थे। हमारा साहित्य यही साक्षी देता है।

अब कदाचित् माया सिविलाइज़ेशन या माया सभ्यताके पाताल या अमेरिकामें पाये जानेका स्पष्ट प्रसङ्ग पाठकोंके ध्यानमें आगया होगा। हमारे प्रयोजनकी सिद्धिमें सबसे मुख्य ग्रन्थ, वेद, ब्राह्मण, रामायण, महाभारत, पुराण, कुछ एक प्राचीनकालके ज्योतिषके ग्रन्थ और शिल्पशास्त्रके ग्रन्थ सहायक होंगे, जिनका उद्धरण हम यथावसर देते जायेंगे।

वर्तमानमें जिस प्रकार परस्पर सभी देशों और जातियोंका पारस्परिक लेन देन, मेल जोल और लड़ाई झगड़े होते ही रहते हैं और ऐतिहासिक लेखक एकका हाल लिखते समय उसके साथ सम्बद्ध अन्य जातियों और देशोंके प्रसंगागत कार्यों और व्यवहारोंको छोड़ नहीं सकता, प्रत्युत उनका वर्णन या उल्लेख यथावसर करता ही है, ठीक उसी प्रकार प्राचीन इतिहासोंमें हम एक जातिके विषयमें पढ़ते हुए उक्त सभी जातियोंके व्यवहारप्रसङ्ग, लेन देन, बातचीत, लड़ाई झगड़े व्यापार विनिमयादिका उल्लेख पाते हैं और इन

सबको देखकर और वर्तमानके साथ तुलना करके कुछ भी विस्मय नहीं प्रत्युत बड़ा ही विनोद होता है—यहाँ तक कि एक दूसरेके प्रति पारस्परिक आलोचनात्मक विचार भी वैसे ही राग द्वेषयुक्त पाये जाते हैं जैसे वर्त्तमानमें जातियोंके परस्परमें हैं। यह तुलनात्मक भावना हमें अगली ऐतिहासिक आलोचनामें बड़ा भारी राजमार्ग दिखायगी।

सबसे प्रथम राक्षस जातिका इतिहास ही सबसे अधिक घटनासम्पन्न दीखता है। वैदिक कालमें देव दैत्योंके पारस्परिक युद्धों और राजनीतिक संघर्षोंका बड़ा भारी प्रसङ्ग रहा। परन्तु कालचक्रके पलटेने ऐसा दृश्य दिखाया कि मानव जातिकी स्पर्द्धा राक्षस जातिसे ठन गयी, जिसका रामायण कालमें अन्त होता है। उसके बाद फिर मानव ही मानवोंका इतिहास सुनाई पड़ता है—चाहे वही जाति आपसमें युद्ध नाटकके पात्र बनी हों, परन्तु ऐतिहासिक नामावलीके ठप्पे बदल गये।

राक्षस जातिका उद्भव

अब हम राक्षस जातिका इतिहास प्रारम्भ करना उचित समझते हैं। पाठकोंसे प्रार्थना है कि प्राचीन देशों, पर्वतों, जातियों, वंशों, नगरों और बनोंके नामोंपर विशेष ध्यान दें, क्योंकि आगे तुलनात्मक विचारका सबसे बड़ा आधार यही होगा।

हमें जितना भी इस विषयमें जहांसे उपलब्ध होगा उसको जहां तक हो सकेगा पूराका पूरा देनेकी कोशिश करेंगे, क्योंकि इसी इतिहासके आधारपर अन्य सभ्यताओंके विशेष अङ्गोंपर आलोचना की जायगी।

पौलस्त्य-वंशोत्पत्ति

रामायणमें रामकथा प्रसंगसे राक्षसोंके कार्य व्यवहारोंका जो स्थान स्थानपर वर्णन आया है, उसका उल्लेख करना अभी उचित न समझकर पहले राक्षस वंश उत्पत्तिका हाल लिखेंगे। रामायणके उत्तरकाण्डके प्रथम सर्गसे ही राक्षसोंके इतिहासका प्रक्रम छेड़ा गया है।

लङ्का विजयकी बधाइयां देनेके लिए चारों दिशाओंसे ऋषि लोग आये। कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव, मेधातिथिका पुत्र कण्व, स्वस्त्यात्रेय, नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, अत्रि, सुमुख, विमुख, पूर्व और दक्षिणसे आये। पश्चिमसे नृषंगु, कवषी, धौम्य, कौषेय उत्तरसे; जमदग्नि, भरद्वाज और सप्तर्षि आये। इन्होंने महाराजा रामचन्द्रके द्वारपर आकर द्वारपालसे अपने आनेकी सूचना रामचन्द्र तक भिजवायी। द्वारपालके सूचना देते ही ऋषियोंको शीघ्र लिवा लानेकी आज्ञा मिल गई। महाराजा रामचन्द्रने सब ऋषियोंको बड़े आदर सत्कारसे अर्घ्यपाद्य आसन तथा गोदान देकर अभिवादन किया और बड़े बड़े अच्छे ऊंचे सोनेके चित्र विचित्र आसनोंपर ऋषिवरोंको बिठलाया।

रामके कुशल प्रश्न पूंछनेपर सबने अपना कुशल क्षेम कहा और बोले, "बड़ा सौभाग्य है कि आपने शत्रुओंको मारा और दर्शन दिये। आपने दुनियाके दिल दहलानेवाले रावणको मार डाला। उस रावणका मारना आप जैसे धनुर्धारीके लिए कुछ भी बड़ी बात न थी। आप हाथमें धनुष लेकर तीनों लोकोंको विजय करनेमें समर्थ हैं। रावणको मारकर सीता, भाइयों और माताओंके साथ हम आपको विजयी देख रहे हैं, यह सौभाग्यकी बात है। जिससे बड़ा क़द्दावर मिलना कठिन था वह भीमकाय कुम्भकर्ण* आपने मार डाला। प्रहस्त, विकट, विरूपाक्ष, महोदर, अकम्पन, दुर्धर्ष—यह राक्षस ( निशाचर ) आपने मार दिये। देवताओं और मनुष्योंके लिए यमराजके सदृश त्रिशिरा और अतिकाय आदि बड़े बड़े बलशाली राक्षस आपने मार डाले। बड़े भाग्यसे वह रावण जिसको देवता भी न मार सकते थे आपके साथ लड़ाईमें आ उतरा और मारा गया। रावणका मारना तो कोई बड़ी बात न थी; पर आपने रावणके पुत्र इन्द्र-

---

* यस्य प्रमाणाद्विपुलं प्रमाणं नेहविद्यते।
वा० रा० उ० का० अ० १, २२।

जितका भी मुकाबला किया। कालके सदृश आक्रमण करनेवाले मेघनादके हाथसे आप बच आये और विजय लाभ भी आपको मिला! अहो इन्द्रजितके वधको सुनकर हम बड़े खुश हुए। वह बहुत मायाएं† करता था। उसको दुनियामें कोई देहधारी नहीं मार सकता था। आपको बधाई है।"

इस प्रकार बधाइयां मिलनेपर विस्मयसे रामने पूछा, "हे ऋषियो, कुम्भकर्ण, रावण, आदि बड़े बलशाली राक्षसोंको छोड़कर रावणके पुत्र इन्द्रजित्की इतनी प्रशंसाके पुल क्यों बांधे जा रहे हैं। उसका क्या बल और क्या पराक्रम है? वह रावणसे भी बढ़कर कैसे हुआ? यह मैं जानना चाहता हूं, यदि आप कह सकें और छिपाने योग्य कोई बात न हो तो कहिये और बतलाइये उसने इन्द्र देवोंके राजाको भी विजय किस प्रकार किया? उसको वर किस प्रकार मिले? पुत्र पितासे भी किस प्रकार बढ़ गया।"

रामके यह वचन सुनकर महर्षि अगस्त्य बोले—"हे राम, उसके बड़े तेजोबलका वृत्तान्त सुनो, जिससे वह अपने शत्रुओंको मार डालता था, परन्तु शत्रु उसको न मार सकते थे।* मैं रावणके कुल, जन्म, वरदान आदि सभीके विषयमें कहता हूं।

पूर्वकालमें कृतयुगमें पुलस्त्य नामका ब्रह्मर्षि साक्षात् पितामह ब्रह्माके सदृश हुआ। उसके गुण और शील आदिका क्या कहना, वह ब्रह्माका पुत्र ही कहाता था। ब्रह्माका पुत्र होनेसे ही वह देवताओंका बड़ा प्यारा था। शुभ और मनोहर होनेसे सारे लोग ही उससे प्रेम करने लगे। धर्मके कार्योंमें लगा हुआ वह महर्षि मेरु पर्वतके एक पार्श्वपर तृणविन्दुके आश्रममें रहने लगा। वहां ही स्वध्याय आदि द्वारा जितेन्द्रिय होकर तपस्या करता था। उसके आश्रममें ऋषियोंकी और नागोंकी कन्यायें, राजर्षियोंकी पुत्रियां और अप्सरायें खेलती खेलती आजाया करती थीं। वहांके बन सदा ही हरे तथा फूलोंसे भरे रहते थे। इसलिए बारह मास यह कन्याएं आकर वहां ही खेला करती थीं। वह वहां आकर गातीं बजातीं और नाचती हुई विचारे मुनिके तपमें विघ्नका कारण हुआ करती थीं।

एक बार महामुनि बड़े कुपित होकर बोले— "जो मेरी आँखके सामने आयगी उसीके गर्भ रह जायगा।" वह सब इस वचनको सुनकर ब्रह्मशापके भयसे, डरकर, फिर उस स्थानपर न फटकीं, परन्तु राजर्षि तृणविन्दुकी कन्याने इस बातको सुनकर अनसुनी कर दी और निर्भय वहां ही जाकर विचरने लगी। उसके साथ वहां कोई सहेली न आयी थी। इधर ब्रह्मर्षि बैठे बैठे स्वाध्याय कर रहे थे।

कन्याने वेदकी ध्वनि सुनकर ब्रह्मर्षिका तेजसे तमतमाता हुआ देह देखा और उसके तेज प्रभावसे कन्याका सारा शरीर पीला पड़ गया। वह डरकर अपने पिता तृणविन्दुके आश्रममें आयी। पिताने सोचा कि प्यारी पुत्रीका शरीर ऐसा पीला क्यों हो गया और इसका कारण पूछा। कन्या बोली—"पिता! मुझे इसका कारण ज्ञात नहीं। एक पुलस्त्य नामके महर्षिके आश्रममें मैं अपनी सखी सहेलियोंको खोजनेके लिए गयी थी, मैंने वहाँ किसीको भी न पाया। पर मेरा यह रूप रंग बदल गया, मैं भयके मारी यहाँ ही लौट आयी।" राजर्षि तृणविन्दुने अपने ध्यान बलसे देख लिया कि ऋषिका ही यह शाप है।

राजा अपनी कन्याको साथ लेकर ऋषि पुलस्त्यके पास आया और बोला—"भगवन् यह मेरी कन्या अपने ही गुणोंसे अलंकृत है। यह लो स्वयम् आयी हुई भिक्षा। जब आप तप करते

† अवध्यः सर्वभूतानां महामायाधरो युधि।
उ० का० १, २७

* शृणु राम यथावृत्तं तस्य तेजोबलं महत्।
जघान शत्रून् येनासौ न च वध्यः स शत्रुभिः॥
उ० का० २, २

करते थक जाया करेंगे तो आपकी निश्चयसे यह सेवा शुश्रूषा किया करेगी।"

राजाको ऐसा कहते सुनकर कन्याको लेनेकी इच्छासे उत्तर दिया—'बाढम्, बहुत अच्छा, स्वीकार है।' राजा इस प्रकार कन्या दान देकर अपने आश्रममें आगया और कन्या अपने गुणोंसे पतिको संतुष्ट करती हुई रहने लगी। उसकी शुश्रूषासे, शील और आचारसे, संतुष्ट हो कर प्रसन्नतासे ऋषि बोले—"सुश्रोणि! तेरी गुण सम्पत्तियोंसे मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ। इसलिए मैं तुझे अपने सदृश हम दोनोंके वंशोंको चलानेवाला पौलस्त्य नामसे प्रसिद्ध होनेवाला पुत्र देता हूं। मेरे यहाँ वेदाध्ययन करते हुए तैंने वेदोंका श्रवण किया, इससे उस पुत्रका नाम विश्रवा होगा।"

इस प्रकार कन्या बड़ी प्रसन्न हुई और शीघ्र ही उसने विश्रवा नामक पुत्रको जना। वह यश और धर्मसे युक्त होकर वेदोंको पढ़कर व्रत और आचारका पालन करता हुआ पिताके सदृश तपस्वी हुआ।

### यक्षेश्वर धनदकी उत्पत्ति

संस्कृतमें कुवेर, धनद, धनेश्वर, यक्षराज, यक्षेश्वर तथा राजराज यह सब कुवेरके ही नाम हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे कुवेर रावणका इस प्रकारका भाई था कि दोनोंका रेतोधा पिता एक ही था, जैसा अगली कथासे स्पष्ट होगा। यहां पौलस्त्य वंशके क्रमसे प्रथम कुवेरकी उत्पत्ति दर्शाना आवश्यक है।

"इसके बाद पुलस्त्यका पुत्र विश्रवा स्वल्पकालमें ही अपने पिताके सदृश तपस्वी धर्मनिष्ठ व्रत पालनमें लग गया। इस प्रकार सद् आचार देखकर महा मुनि भरद्वाजने अपनी पुत्री देववर्णिनीका विश्रवासे विवाह कर दिया। उससे विश्रवाका एक अद्भुत पुत्र उत्पन्न हुआ जिसको देखकर पितामह (बाबा) ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए। उसकी कल्याणवती बुद्धिको देखकर ब्रह्माने कहा कि यह धनाध्यक्ष अर्थात् धनोंका मालिक होगा। यही उसका नाम भी रख दिया। यह विश्रवाके पुत्र होने से वैश्रवण कहाया।

वैश्रवण धनेश्वरने आश्रममें रहते हुए विचार किया कि मैं सदा धर्मका ही आचरण करूंगा, धर्म से ही परम गति है। इस प्रकार वहाँ उसने कठिन व्रतोंको धारण करके हज़ारों वर्ष कठिन तप किया। हज़ार वर्ष जलपर ही जिया। हज़ार वर्ष वायु मात्रपर, १००० वर्ष निराहार। इस प्रकार नाना विधानों से कितने सहस्रों वर्ष उसने तपमें ही व्यतीत कर दिये। इस तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्मदेव अन्य देवताओंके सहित वर देनेके लिए उपस्थित हुए और बोले—"हे सुव्रत तेरे इस कामसे मैं संतुष्ट हूं। तू बर माँग। तू वरके योग्य है।" तब वैश्रवण बोला—"भगवन्, मैं लोकपाल बनना चाहता हूं। ब्रह्माने 'तथास्तु' कहकर कहा कि "तू यम, इन्द्र, वरुण, इनके समान पद चाहता है तो सब खज़ानोंका स्वामी बनजा। यह सूर्यके सदृश चमचमाता पुष्पक विमान ले, इसके ऊपर चढ़कर देवताओंसे किसी प्रकारसे तू कम न रहेगा। तेरा कल्याण हो अब हम जाते हैं।" यह कह कर ब्रह्मा देवताओं सहित अपने स्थानको लौट आये।

ब्रह्माके चले जानेपर धनेश्वर अपने पिताके प्रति कहने लगा—"भगवन्, पितामह ब्रह्माने हमको बर तो दे दिया परन्तु रहनेके लिए कोई मकान नहीं दिया। तो ऐसा कोई निवास स्थान देखकर दीजिये, जिससे किसी अन्य देहधारी प्राणीको कष्ट न हो।"

पुत्रकी यह बात सुनकर मुनि बोले—"सुनो, दक्षिण समुद्रके किनारे त्रिकूट नामका पर्वत है। उसकी चोटीपर इन्द्र नगरीके सदृश विशाल लङ्का नामकी नगरी है, जिसको पहले राक्षसोंके निवासके लिए विश्वकर्माने बनाया था। तू वहाँ ही बस, निःसन्देह तेरा वहाँ ही कल्याण होगा। लङ्का नगरी बहुत सुन्दर है। उसका सुवर्णका कोट और खाइयां हैं। यन्त्रोंसे चलनेवाले शस्त्रोंसे घिरी हुई लंकाके द्वारोंपर सोने और जवाहि-

रातका तोरण खचित है। विष्णुके भयसे पीड़ित होकर राक्षस लोग उसको छोड़कर रसातल (पाताल) में भाग गये हैं, अतः अब वह खाली पड़ी है। उसका अब कोई मालिक नहीं है। पुत्र जा तू आनन्दसे वहां ही रह।"

पिताका वचन सुनकर विश्रवाका पुत्र कुवेर लङ्कामें जा बसा। उसके शासनसे प्रसन्न और हृष्ट-चित्त होकर हज़ारों नैऋत्य लोग उस लंकामें जा बसे। वह सब नैऋत्योंमें श्रेष्ठ वैश्रवण समुद्र रूप खाई से घिरी लङ्कामें आनन्द से रहने लगा। और मौके मौकेपर वह पुष्पक विमानपर चढ़कर अपने माता पिताको भी देख आता था।

देवता और गन्धर्व और ऋषि उसकी स्तुतियाँ करते थे। उसके महलोंमें अप्सरा नाचती थीं। उसके अपने शरीरसे सूर्यकी सी किरणें निकलती थीं।"

राक्षसोंकी उत्पत्ति

अभी तक इस बातका उल्लेख नहीं किया गया कि राक्षस वंश उत्पन्न किस प्रकार हुआ। इतना तो अवश्य पता चल गया कि यक्षोंका राजा धनद कैसे उत्पन्न हुआ; पौलस्त्य रावणका पूर्वज किस प्रकार उत्पन्न हुआ। परन्तु कुवेरकी कथामें राक्षसोंका लङ्काको छोड़कर पाताल जाकर बसना कितनी बड़ी ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख है। एक जातिकी जाति अपने निवासस्थानको किस प्रकार छोड़कर दूसरे देशमें जा बसी। अब उसी राक्षस जातिका उद्भव दर्शानेका यहां प्रयत्न करते हैं।

रामने अगस्त्यकी कथा सुनकर बड़ा आश्चर्य किया कि लंकामें राक्षस पहले किस प्रकार आये होंगे। इस शंकाको दूर करनेके लिए मुस्कुराते हुए राम पूछने लगे कि, "भगवन्, हमने सुना था कि राक्षस पुलस्त्य वंश से उत्पन्न हुए हैं, परन्तु अब मालूम होता है कि राक्षसोंके कई और वंश हैं। उनका पूर्वज कौन है? विष्णुने उनको क्यों भगाया? यह सब बड़ा अद्भुत इतिहास है, विस्तार पूर्वक कहिये।"

रामका प्रश्न सुन मुस्कुराकर अगस्त्य बोले—"सुनो, ब्रह्माने सबसे प्रथम जलोंको पैदा किया। उन जलोंकी रक्षा करनेके लिए प्राणियोंको पैदा किया। वह सभी प्राणिवर्ग "हम क्या करें?" "हम क्या करें!" कहते हुए भूख और प्याससे पीड़ित होकर ब्रह्माके पास आये। प्रजापतिने सबको देख कर हँसकर कहा, "सुनो तुम लोग रक्षा करो।" यह सुनकर कुछ एकने कहा "रक्षा करेंगे" और कुछ एकने कहा "हम यज्ञ पूजा करेंगे।" यह सुनकर प्रजापतिने पहलोंको राक्षस और दूसरोंको यक्ष बना दिया। उन्हीं राक्षसोंमें हेति, प्रहेति नामक दो भाई राक्षसोंके बड़े सर्दार थे। प्रहेति धार्मिक होने से तपोवनमें चला गया और हेतिने यत्नपूर्वक गृहस्थाश्रमको धारण किया। उसने कालकी भगिनी भया नामक कन्यासे विवाह किया। उससे विद्युत्केशनामक बड़ा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। हेतिने अपने पुत्रके युवा होनेपर उसका सन्ध्याकी कन्या सालकटंकटासे विवाह किया। उसका पुत्र सुकेश नामक हुआ। सुकेश अपने बहुत ही बाल्यकालमें अपने मुखमें मुट्ठी दिये हुये रो रहा था कि वहां शंकर पार्वती सहित अपने नान्दीपर चढ़े हुए आ निकले। उसे रोता देखकर उनको दया आई और उसे वर दिया कि तू अपनी माताके सदृश बड़ा हो जा। पार्वतीने सभी राक्षसियोंको यह वर दिया कि उनके शीघ्र गर्भ होगा और बालक शीघ्र बढ़कर बड़ा हो जायगा।

राक्षस वंशकी वृद्धि

ग्रामणी नामक गन्धर्वने अपनी कन्या परम सुन्दरी वेदवतीका विवाह सुकेशसे किया। सुकेशके वेदवतीसे ३ पुत्र उत्पन्न हुये माल्यवान, सुमाली और माली। तीनों बड़े ही प्रतापी, बली तथा विजयी थे। उन्होंने अपने पिताके वरकी चर्चा सुनकर स्वयं भी वरप्राप्तिकी इच्छासे कठोर घोर व्रत धारणकर तपश्चर्याके लिए मेरु पर्वतपर चले गये।

सत्य, ऋजुता और शमसे युक्त उनके तपोव्रतोंसे तीनों लोक कांप उठे। तब प्रसन्न होकर चतु-

मुख ब्रह्मा वर देनेके लिए प्रकट हुये। तब वह बोले; "भगवन्, यदि तपसे प्रसन्न होकर वर देना चाहते हो तो हमें यह वर दो कि हमें कोई जीत न सके; हम सब शत्रुओंको मार सकें। हम चिरकाल तक जीवें; परस्पर मिलकर सामर्थ्यवान् रहें।" ब्रह्मा तथास्तु कहकर चले गये।

वह सब वर प्राप्त करके देवता और असुरोंको तंग करने लगे। देव, ऋषि, चारण, सिद्ध—सभी दुखित होकर निराश्रय हो गये। इधर इन तीनों राक्षसेश्वरोंने विश्वकर्माको बुलाकर कहा कि तुम देवताओंके मकान बनाते हो। हमारा भी अमरावतीके सदृश निवासस्थान बना दो। विश्वकर्माने उनके लिए दक्षिण समुद्रके किनारेपर स्थित सुवेल नामक पर्वतके शिखर पर ३० योजन चौड़ी, १०० योजन लम्बी सोनेकी दीवारसे घिरी हुई, सोनेके द्वारोंसे सजी, लङ्का नामक नगरी तैयार करदी। वह राक्षसपुंगव उसी लंका नगरीमें आनन्दसे रहने लगे। उसमें उन्होंने सैकड़ों नौकर रखे।

इसी अवसरपर नर्मदा नामक गन्धर्वीकी ३ कन्यायें थीं। उसने उनका विवाह इन तीनों राक्षसेश्वरोंसे कर दिया। माल्यवानकी भार्या सुन्दरीसे ८ पुत्र वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त और एक कन्या अनला नामक हुई। सुमालीकी भार्या केतुमतीसे १० पुत्र प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिका मुख, धूम्राक्ष, दण्ड, सुपार्श्व, संह्रादि, प्रघस और भासकर्ण और चार कन्याएं राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और कुम्भीनसी हुई। तीसरे पुत्र मालीकी भार्या वसुदासे ४ पुत्र हुए अनल, अनिल, हर और सम्पाति।

इस प्रकार वंश क्रमसे बढ़ते हुए राक्षसगण आनन्दसे लंकामें राज्य करते थे।

देवोंका हाहाकार

राक्षसोंने मदोन्मत्त होकर देव, ऋषि, तपस्वियों पर भरपूर दिल खोलकर अत्याचार करना प्रारम्भ किया। देवता भयसे व्याकुल होकर त्राहि त्राहि पुकारते हुए महादेवकी शरणमें गये और बोले "सुकेशके पुत्रोंने वरोंसे उन्नत होकर हमारे घर तोड़ दिये और आश्रम उजाड़ दिये हमें स्वर्गसे निकाल दिया और वहाँ आप आनन्द करते हैं। वह आप ही विष्णु रुद्र ब्रह्मा, इन्द्र, यम, वरुण, सूर्य, चन्द्र बनकर देवताओंकी तरह विहार करते हैं। सो भगवन् हमको अभय दो।"

शंकरने सुकेशपर प्रसन्न होकर वर दिया था सो उसका विचार करके शंकर बोले कि, "मैं उनको न मारूंगा। सलाह मात्र दे सकता हूं। यही फर्याद लेकर विष्णुके पास जाओ।" देवता लोग महेश्वरको जय कह कर विष्णुकी शरणमें उपस्थित हुए और बोले कि "सुकेशके पुत्रोंने भगवन् हमारे स्थान खोस लिये हैं। वह त्रिकूट पर्वत पर बनी लङ्कामें बैठे हमें तंग करते हैं। सो हमारे लिए उनका नाश कर दीजिये। हम आप ही की शरणमें हैं।"

उपजाप

विष्णुने उनको अभयदान देकर विदा किया। देवताओंकी इस कार्यवाहीको माल्यवान ने ताड़ लिया और अपने दोनों भाइयोंको बुलाकर बोला, "देव और ऋषियोंने मिलकर शंकरसे शिकायत की है कि सुकेशके पुत्र हमें तंग करते हैं। राक्षसोंसे तंग आकर हम अपने घरोंपर भी चैनसे नहीं बैठ सकते। सो हमारे कारण राक्षसोंको मार दीजिये। परन्तु शंकरने ऐसा करनेसे इंकार किया और उनको विष्णुके पास भेजा। उन्होंने नारायणके पास जाकर अपना दुःख कहा और उसने उनको अभय दान दिया है। अब हमारे बधकी विष्णुने प्रतिज्ञा की है। अब जो कुछ करना हो सोच लो। पूर्व कालमें हिरण्यकशिपु, नमुचि, कालनेमि, संह्राद, राधेय, बहुमायी, लोकपाल, यमलार्जुन, हार्दिक्य, शुम्भ, निशुम्भ यह सभी बड़े बड़े पराक्रमी असुर और दानव कभी युद्धमें नहीं हारे। सभीने सौ सौ यज्ञ किये, सभी मायाके पण्डित थे। सभी अस्त्र कुशल थे। सभी शत्रु इनसे डरते थे, पर नारायणने सभीको मारा। अब सोच लो कि क्या हो सकता है। नारायणका जीतना बहुत टेढ़ी खीर है।"

मालयवानका वचन सुनकर दोनों भाई बोले, "हमने स्वाध्याय किया, दान दिया, यज्ञ किये, धन कमाया, नीरोग आयु प्राप्त की, धर्मकी स्थापना की। शस्त्रों द्वारा देवोंके सागरको मथन करके शत्रुओंको जीता। सो हमें मृत्युसे भय नहीं।"

नारायण, रुद्र, इन्द्र, यम, यह सभी हमारे आगे आनेसे भय खाते हैं। विष्णुके द्वेशका कोई कारण नहीं। देवोंके भड़कानेसे विष्णुका मन चल गया। तो आज ही सब मिलकर देवोंको ही कतल कर डालते हैं, जिन्होंने यह सब शरारत की है।"

युद्धप्रसंग

उन्होंने इस प्रकारकी सलाह करके सेनाको तय्यार करके, युद्धकी अन्तिम घोषणा कर दी और लंकाको छोड़कर देव लोक पर जा चढ़े। देव लोग अपनी पुरी छोड़ कर भाग गये।

देव दूतोंने राक्षसोंके धावेका समाचार विष्णु-को दिया। समाचार पाते ही नारायण अपने धनु-षबाण शस्त्रादि लेकर तय्यार हो। गरुड़पर चढ़ कर, दिव्य कवच पहनकर तरकस बांधकर, कमरमें तलवार लटका कर बहुत वेगसे राक्षसोंकी ओर चल दिये। (असमाप्त) —जयदेव।

---

## स्वर्ग कितनी दूर है?

संसारमें सबसे अधिक तेज़ीसे चलनेवाली वस्तु प्रकाश है। एक सैकण्डमें यह १८६००० मील चलता है। पृथ्वीकी परिधि २४००० मील है। अतएव प्रकाश पृथ्वीकी परिक्रमा एक सैकण्ड-के आठवें भागमें लगा सकता है। यदि आपके पाससे चलकर प्रकाश पृथ्वीकी परिक्रमा देनेके लिए दौड़े तो जितने समयमें आप मुड़कर पीछेकी तरफ़ देखेंगे उससे पहले ही वह लौट आयेगा।

आप सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि एक सैकण्डमें १८६००० मील चलनेवाला प्रकाश एक वर्षमें कितनी दूर चलेगा। हिसाब लगानेसे पता चलता है कि एक वर्षमें प्रकाश ५८६५६६६००००००० मील चल सकता है। अब आप मानलें कि किसी दैवी सिद्धिसे आप प्रकाश किरणोंपर सवार होकर चल सकते हैं तो आपको ज्ञात दूरतम तारे तक पहुंचनेमें २००००० (दो लाख) वर्ष लगेंगे। अतएव यदि यह मानलें कि जहां पदार्थमय संसारका अंत होता है वहां स्वर्गका आरम्भ है तो स्पष्ट हो जाय गा कि स्वर्गके पास तक पहुँचनेमें कमसे कम २००००० वर्ष लग जायंगे।

परन्तु धार्मिक ग्रन्थोंके अवलोकनसे पता चलता है कि क्षणमात्रमें आत्मा स्वर्गमें पहुंच जाती है। अंजीलमें तो स्पष्ट रूपसे ईसूने लिखा है कि १२ घण्टे बाद स्वर्गमें मिलेंगे। अर्थात् स्वर्ग तक पहुंचनेमें १२ घण्टेके लगभग लगते हैं। इससे क्या समझा जाय? या तो स्वर्ग कोई ऐसा स्थान है जो यहीं कहीं आसपासमें मौजूद है या आत्माकी गति प्रकाशसे भी १४६०००००० गुनी अधिक है।

---

## गिरगट
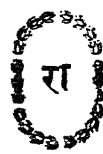
राजपूतानेकी मेवनियाँ मुहर्रमके दिनोंमें एक गीत गाया करती हैं "गिरगट म्हारो बैरिया जिन सैन चलायो, मकड़ी म्हारी मांवसी जिन जाला पूर्‌यो।" सुनते हैं कि मुसलमानोंके कुछ बुज़ुर्ग दुश्मनसे हारकर भागे जा रहे थे। जब उन्होंने देखा कि दुश्मन करीब आगया है, तो वह एक गड्ढेमें छिप रहे। वहां एक गिरगट भी था, वह बराबर गड्ढेकी तरफ़ देखता था। यह देख दुश्मनोंने चाहा कि गड्ढेकी तरफ़ बढ़कर तलाश करें, पर उन्होंने दूरसे देखा कि ग़ारके मुंह पर मकड़ीका जाला तना हुआ है। इससे उन्होंने अनुमान किया कि इस ग़ारमें कोई न होगा। इसी घटनाको लक्ष्य करके उपरोक्त गीत बना। प्राकृतिक-जीवन-निरीक्षकको इस गीतकी एक पंक्तिसे दो प्राणियोंके स्वभावके विषयमें दो महा अद्भुत बातें मालूम होती हैं-एक तो गिरगटके

सैन चलानेकी बात, दूसरे मकड़ीकी उद्यमशीलता। आज हम गिरगटके विषयमें दो चार बातें लिखेंगे।

रंग बदलना

गिरगट इच्छानुसार रंग बदल सकता है। एक ही समयमें उसके शरीरपर कई रंग दिखलाई दे सकते हैं। कभी कभी कोई रंग उसके शरीरपर दौड़ता हुआ भी दीख पड़ता है। प्रायः यह रंग बदलकर अपने शरीरका रंग प्राकृतिक छटाके अनुकूल बना लेता है, जिस कारण उसके वैरी, हिंसक प्राणी, उसको दूरसे नहीं देख पाते। अतएव रंग बदलना उसकी रक्षाका एक साधन है। यह गुण अन्य कई प्राणियोंमें भी पाया जाता है जैसे कुछ छिपकलियां।

गिरगटके पैर

इसके पैर अंगुलियां प्रायः दो विपरीत शाखाओंमें विभक्त रहती हैं। सामनेके पैरोंकी अंगुलियोंकी भीतरकी शाखामें तीन और बहिर्मुख शाखामें दो होती हैं, पर पिछले पैरमें संख्या बदल जाती हैं। इस विचित्रताके कारण इस प्राणीमें पकड़नेकी शक्ति बड़ी ज़बरदस्त है।

गिरगटकी आंख

इसकी आंखकी रचना सृष्टिमें सबसे निराली ही है। आखें मस्तकमेंसे बाहरको उभरी हुई रहती हैं। उनको ढकनेके लिए एक दानेदार पलक होता है जिसमें पुतलीके लिए एक छेद होता है। सबसे अधिक विचित्रता इसमें यह है कि जिस आंखको चाहता है उधर घुमा सकता है। अगर एक आंखसे वह सामनेको देखता है तो दूसरीसे पीछेको या ऊपरको देख सकता है। अतएव आखें घूमनेमें स्वतंत्र हैं, एक आंख दूसरीके घूमनेमें बाधक नहीं होती।

दृष्टि-क्षेत्रका दुहरापन और पलकके छोटे छिद्रके एक साथ रहनेका क्या विशेष लाभ है इसका रहस्य अभी नहीं खुला है। हां एक बात अवश्य है कि ऐसी सुस्त और ढीले स्वभावके प्राणीको जितनी भी सहायता आंखसे मिलसकती थी, प्रकृतिने उसका प्रबंध कर दिया है।

व्रतधारी गिरगट

गिरगटको मूर्तिमान आलस्य कहना अत्युक्ति न होगी। अतएव शिकार करनेका परिश्रम न करके प्रायः भूखा रह जाना ही इसे पसन्द होता है। पुराने स्वभाव निरीक्षकोंने इसके आलस्य और लम्बे लम्बे उपवास करनेकी शक्तिसे धोखा खाया और यह समझे कि यह पवन ही पीता है। अनेक कवियोंने भी इसी भ्रमवश इसका चरित्र चित्रण ठीक नहीं किया।

सुस्तकी फुर्ती

वह है तो इतना सुस्त, पर जब शिकार पास आ जाती है तब इसकी फुर्ती अनोखी होती है। इसकी जीभ क्या है यमको फांस है। चलती वह इतनी तेज़ है कि आंखकी मजाल नहीं कि उसे देखसके। छोटेसे मुखड़ेमेंसे जब यह जीभ निकल कर शिकारपर गिरती है तो सात या आठ इंच तक लम्बी हो जाती है। इसके छोरपर दो समानान्तर पट फैलकर बन जाते हैं। इन पटोंपर चिपकीला द्रव लगा रहता है। बस जहां यह पट चिमटेके दो भागोंकी तरह कीड़ेपर दो तरफसे पड़े कि विचारा उनमें चिपक कर खिचता चला आता है और उदर दरीमें समा जाता है। ज़बानका निकलना और अन्दर घुस जाना इतने समयमें होता है कि केमरेकी सहायतासे ही उसका हाल जान पाते हैं। जो प्राणी एक एक कदम सैकड़ों बार सोच सोच कर रखता प्रतीत होता है, उसकी यह फुर्ती विस्मयजनक है।

---

## कार्बन पेपरकी जीवन वृद्धि

दफतरोंमें खतोंकी नकल करने या टैपराइटरसे एक ही बारमें कई प्रतियां छापनेके लिए कार्बन पेपरका प्रयोग होता है। कुछ दिनोंमें इसमें सिलवटें पड़ जाती हैं या मसाला उखड़ा सा दीखने लगता है। उस समय इस्त्री करदी जाय तो

फिर कुछ दिनों तक वह कामके योग्य हो सकता है। दो कागज़ोंको लेकर उनके मसालेदार भाग मिलाकर रखो और एक कागज़से उन्हें ढक दो, इसी कागज़ पर इस्त्री फेरनेसे कागज़ ठीक हो जायंगे।

# ❀ खेतीके प्राण और उसकी रक्षा

## खेतीके काम और यंत्र

[ ले०—श्री० एल० ए—जी० ]

### सिंचाईके यंत्र

हम लिख चुके हैं कि जब पानी सीधा खेतमें पहुंच जाता है तो तोड़का और जब किसी यंत्र द्वारा उठाकर खेतमें पहुंचाया जाता है तो डाल-का कहलाता है। पानीको उठानेके लिए खेतकी ऊँचाईके अनुसार भिन्न भिन्न प्रकारके यंत्र काममें लाये जाते हैं:—

## (क) २ फुटसे ५ फुट तककी ऊंचाईके लिए यंत्र

१. वेड़ी परोहा या भोका।

वेड़ी बांसकी बनी हुई होती है और परोहा या भोका चमड़ेका। जिस खेतमें पानी डालना होता है उसके निकट एक गड्ढा बना देते हैं। इसे नादा भी कहते हैं। इसमें नहरसे पानी आकर इकट्ठा होता रहता है। जहांपर किसी तालाब या पोखरसे सिं-चाईके लिए पानी लिया जाता है वहांपर पोखरके किनारे नादा बना देते हैं। इसको दो आदमी चलाते हैं। उनका मुंह एक दूसरेके सामने रहता है। जहांपर वह खड़े होते हैं वह जगह पैथा कह-लाती है और जहांपर उठा कर पानी डालते हैं उसे छलार कहते हैं। इसको दिन भर चलानेके लिए चार आदमी होते हैं। दो दो यारीसे काम करते हैं। चलाते समय वेड़ी या परोहेको तिरछा पानीमें डालते हैं, जिससे कि वह जल्दी भर जाता है और पैरोंपर ज़ोर देकर ऊपर उठाते हैं। जब वेड़ी या परोहा छलारके पास पहुंचता है तो दहिने हाथकी रस्सी कड़ी कर देते हैं, जिससे कि कुल पानी निकल जाता है। जब खेत बहुत ऊँचा होता है तो भिन्न भिन्न ऊँचाइयोंपर नादे बना लेते हैं। एक नादेसे दूसरेमें और दूसरेसे तीसरे और अंतमें खेतमें पानी पहुंचा देते हैं। इससे दिन भरमें आधा एकड़ खेत भर लेते हैं। ( चित्र ३१ तथा ३२ )
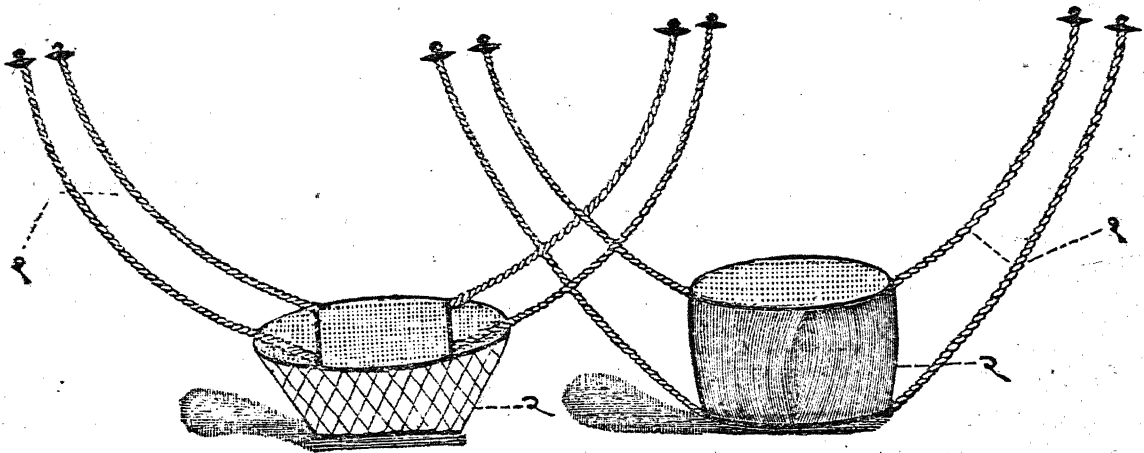
चित्र ३१—वेड़ी। १—जोती; २—टोकरी।

चित्र ३२—परोहा या भोका। १—जोती; २—परोहा।

२. चेन पम्प

चेन पम्प (चित्र ३३) को पानीके हौज़के ऊपर रख

❀ विज्ञान भाग १२की संख्या ४के पृष्ठ २०७से सम्मिलित।

देते हैं। चौखटेके बगलवाले तख़्तोंपर चलानेवाले खड़े हो जाते हैं। दोनों हाथोंसे दस्तोंको पकड़ कर पहियेको घुमाते हैं। पहियोंके घूमनेसे ज़ंजीर नलमें होकर ऊपरको उठने लगती है, जिससे कि परनालेमें पानी आने लगता है और खेतकी नालीमें चला जाता है। पानी ऊपर हवाके दबावके कारण आता है। ज़ंजीरमें जो तवे लगे रहते हैं उनसे नलकी हवा निकल जाती है और उस ख़ाली जगहमें बाहिरकी हवाके दबावके कारण हौज़का पानी चढ़ आता है। पहियेके तेज़ीसे घूमनेके कारण पानी लगातार आने लगता है। इस यंत्रको झटकेके साथ न चलाना चाहिये। इसके लिए
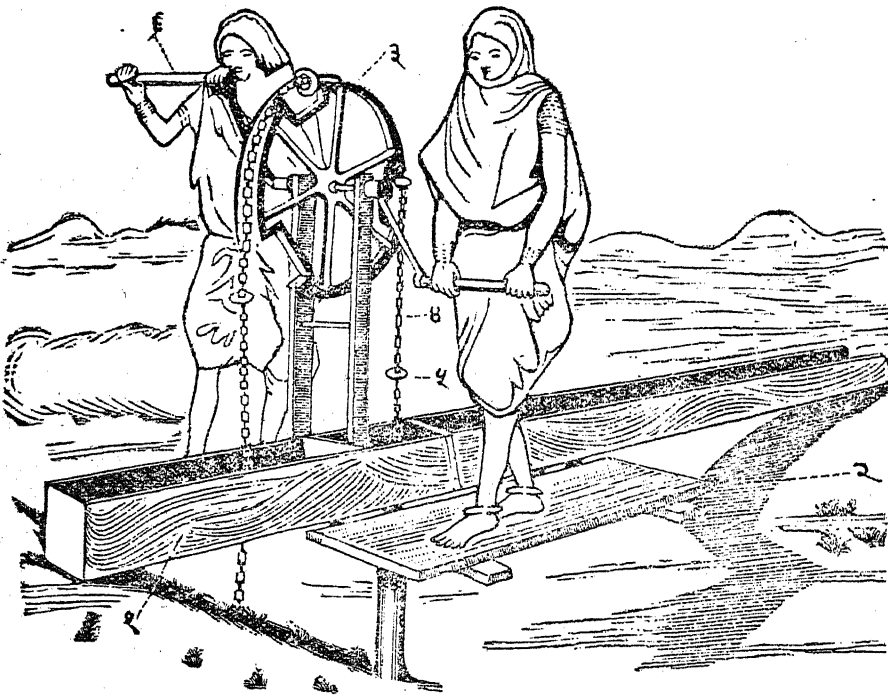
चित्र ३३—चेन पम्प। १–परनाला; २–तख़्ता ३–पहिया; ४–ज़ञ्जीर; ५–तवा; ६–दस्ता।

चार आदमियोंकी ज़रूरत होती है। दो दो आदमी बारी बारीसे काम करते हैं। एक दिनमें लगभग एक एकड़ खेतकी सिंचाई इससे हो जाती है। ५ फुट तककी ऊँचाईके लिए नलका व्यास ४½ इंचसे ५ इञ्च तक होना चाहिये। अधिक ऊँचाईपर भी पतला बल लगा कर इससे काम ले सकते हैं, परन्तु लाभदायक नहीं होता। इसके अतिरिक्त ज़ंजीर टूट जानेपर बड़ी गड़बड़ी होती है।

### ३. बल्देव बाल्टी

चित्र ३४ के देखनेसे इसका काम भली भाँति समझमें आ जाता है। इसमें दो लम्बी बाल्टियां लगी रहती हैं। हरएक बाल्टीके पेंदेमें एक सूराख़ होता है जिस पर एक ऐसा ढक्कन लगा रहता है जो केवल ऊपरको खुलता है। जब बाल्टी पानीमें जाती है तो पानीके दबावसे यह ढक्कन ऊपरको उठ जाता है और जब बाल्टी ऊपर उठने लगती है तो बाल्टीके अन्दरके पानीके दबावसे यह ढक्कन बन्द हो जाता है। इन बाल्टियोंका एक सिरा चौखटेमें कब्ज़ेसे जड़ा रहता है और दूसरा सिरा रस्सीमें बंधा रहता है। यह रस्सी गरारीके ऊपर होती हुई बैलकी पाटमें बंधी रहती है। दोनों बाल्टियोंमें रस्सी इस प्रकारसे बांधी जाती है कि बैलके घूमनेसे जब एक बाल्टी पानीके बाहिर आती है दूसरी पानीमें चली जाती है। इस यंत्रके चौखटेको एक हौज़पर रखते हैं, जिसमें कि पानी लहर या किसी अन्य जलाशयसे आता रहता है। चौखटेके पास थोड़ी सी ज़मीन बैलके घूमनेके लिए होती है। दिन भरमें १ एकड़ ज़मीन इससे सींच सकते हैं। दो बैलोंकी आवश्यकता होती है। इनमेंसे प्रत्येक बारी बारीसे काम करता है। हांकनेके लिए एक

लड़केकी ज़रूरत होती है। इस यंत्रको एक स्थान-से दूसरे स्थानपर ले जानेमें कुछ दिक़त होती है।

चित्र ३४—बल्देव बाल्टी। १—बाल्टी; २—रस्सी; ३—चौखटा; ४—बाल्टीके पेंदेका ढकनदार लिड; ५—गरारी; ६—पाट; ७—खम्भा; ८—गरारी।

चित्र ३५—१—पेंच; २—दस्ता; ३—चौखटा; ४—जल।

४. अरकीमीडियन स्क्रू (Archemidian screw)

यह पेच नुमा लकड़ीका बना हुआ होता है। इसे पानीमें तिरछा लगाते हैं। इसके नीचेकी धुरी एक लकड़ीके खूंटेपर रखी रहती है। धुरीके ऊपरके सिरेपर दस्ता लगा रहता है और यह धुरी एक लकड़ीकी चौखटपर रखी रहती है। दस्तेके घुमानेसे पानी ऊपर चढ़ने लगता है और पेचके ऊपरी सूराखोंमेंसे निकलने लगता है। इसको दो आदमी चला सकते हैं। दिन भर काम करनेके लिए ४ आदमियोंकी ज़रूरत होती है। लगभग एक एकड़ ज़मीन इससे दिन भरमें सींच सकते हैं। (देखिये चित्र ३५)

५. डबल गियर चेन पम्प (Double gear chain pump)

इस यंत्र ( चित्र ३६ ) में दो चेन पम्प लगे रहते हैं जो बैलों द्वारा चलते हैं। यह वहांपर लगाये जाते हैं जहांसे कि इस यंत्रके हटानेकी ज़रूरत नहीं होती। इसका ठीहा (stand) पक्का बनाया जाता है। इसकी पाटके सिरोंपर एक एक बैल लगाया जाता है। दो लड़के बैलोंको हांकते रहते हैं। दिन भरके लिए २ जोड़ी बैलोंकी ज़रूरत होती है। इनसे डेढ़ एकड़ तक सींच लेते हैं।
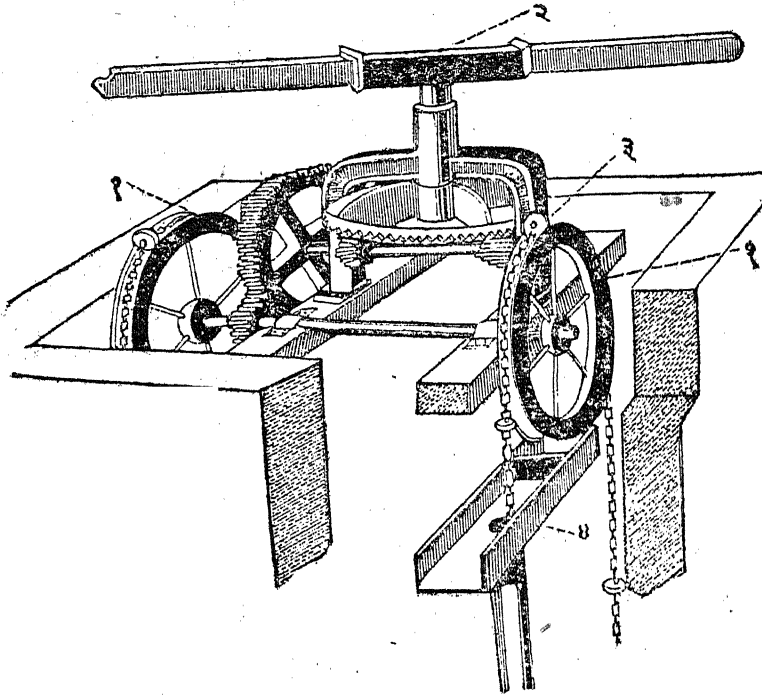
चित्र ३६—डबल गियर चेन पम्प। १—चेन पम्प; २—पाट; ३—गीअरिंग; ४—परमाला।

## (ख) कुओंमेंसे पानी उठानेवाले यंत्र

### १. ढेकली

( चित्र ३७ ) इससे १५-२० फुट गहरे कुओंसे पानी निकाल सकते हैं। यह प्रायः नदीके किनारेकी खेतीकी सिंचाईके काम आती है। बागोंमें भी इसका इस्तेमाल करते हैं। दो आदमी बारीबारीसे इससे पानी निकाल सकते हैं। दिन भरमें लगभग ½ एकड़की सिंचाई इससे की जा सकती है।

### २. चर्सा

चर्से ( चित्र ३८ ) से १०० फुट गहरे कुए तकसे पानी निकालते हैं। एक चरसे को निकालनेके लिए एक या दो जोड़ी बैल काम करते हैं। एक जोड़ी बैलसे जब पानी निकालते हैं तो इसे लागौर कहते हैं। इस रीत्यानुसार बर्त (रस्सी) हमेशा बैलोंके जूएमें बंधी रहती है और दिन भरमें कम पानी निकलता है। दूसरी रीति कीलीकी है। इसमें बैलोंकी जोड़ी बारीबारीसे काम करती है। जब चर्सा पारछेमें आ जाता है तब जूएसे बर्तको अलग कर देते हैं। दूसरी जोड़ी औरे ( जगत ) पर खड़ी रहती है। बैलोंको हांकनेवाला रस्सीको पकड़े दौड़ता हुआ जगतके ऊपर चला आता है। चर्सेके भर आनेपर ऊपरवाले बैलोंके जूएमें बर्त लगाकर उन्हें हांक देता है। तब तक दूसरी बैलोंकी जोड़ी ऊपर आ जाती है। इसमें काम पहिलेकी अपेक्षा ड्योढ़ा होता है। पहिली रीतिसे लगभग ⅙ और दूसरी से ¼ एकड़ दिन भरमें सींच लेते हैं। बैलोंकी जोड़ियोंके अतिरिक्त ३ आदमियोंकी ज़रूरत होती है।

### ३. सूँड़िया पुर

यह एक जोड़ी बैलसे ही चलाया जाता है। इसमें लेनेवाले आदमीकी ज़रूरत नहीं होती। इससे दिन भरमें ⅙ एकड़ सींच लेते हैं। इसे कम गहरे कुओंमें इस्तेमाल करते हैं। ( चित्र ३९ )

चित्र ३७—ढेंकली १—थूनी; २—बल्ली; ३—डोल; ४—कुआं; ५—धरातल।

चित्र ३८—चर्सा। १—चर्सा; २—गराड़ी; ३—बर्त (रस्सा); ४—पारछा; ५—कुआं; ६—जगत; ७—धरातल।

### ४. रहट

यह यंत्र कुएके मुंहपर लगाया जाता है। इसमें एक बड़ा पहिया होता है, जिसकी धुरी कुएके किनारोंपर चौखटेमें लगी रहती है। पहिये पर एक माल चढ़ी रहती है, जो कि कुएके अन्दर पानीमें डूबी रहती है। इस मालमें मिट्टीके छोटे छोटे घड़े या टीनकी छोटी छोटी बाल्टियां लगी रहती हैं। इस पहियेकी धुरीको एक दांतदार पहिया घुमाता है। इस दांतदार पहियेकी धुरीमें एक पाट लगी रहती है, जिसे बैल घुमाते हैं। इस बड़े पहियेके घुमानेके प्रबन्धको गियरिंग (Gearing) कहते हैं। मालवाले पहियेके घूमनेसे पानी बर्तनोंमें ऊपर आता जाता है और परनालेमें गिरता जाता है। इसको चलानेके लिए एक जोड़ी बैल और एक आदमीकी आवश्य-

कता होती है। दिन भरमें लगभग ½ एकड़ से ¾ एकड़ तक सींच लेते हैं।
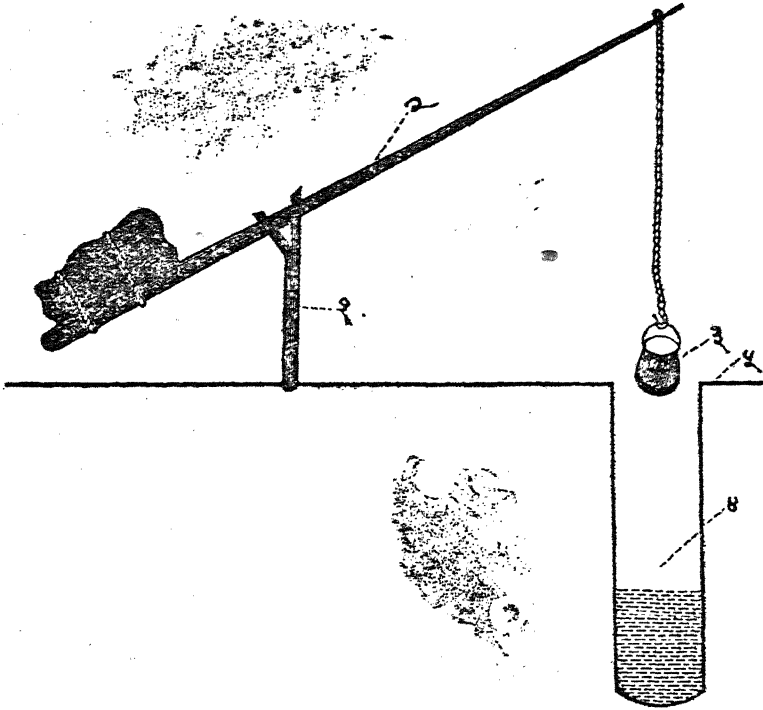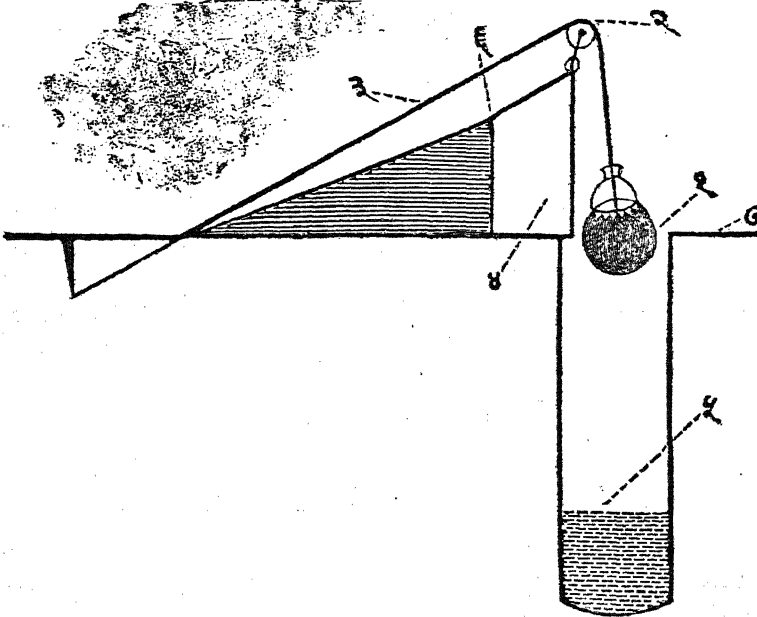
ट्यूबवेल बनवानेमें कमसे कम ८०००) लगते हैं। पानीकी मिक़दार ज़मीनकी तहों और मज़दूरोंके मिलनेपर इसके बनवानेकी क़ीमत घटती बढ़ती रहती है। किसी झील या तालाब या नहरमेंसे पानी उठानेके लिए यह बहुत उपयुक्त होते हैं। इनका विशेष वर्णन जाननेके लिए एग्रीकलचरल इंजीनियर कानपुरको लिखना चाहिये। आजकल मशीनोंकी कीमत घटती बढ़ती रहती है, इसलिए पूरा हाल उन्हींको लिखनेसे ज्ञात हो सकता है।
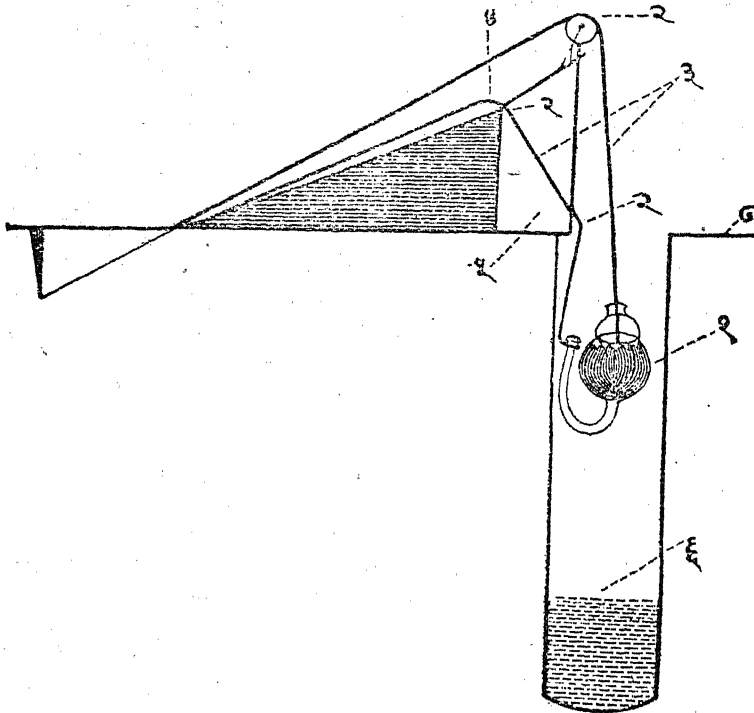
चित्र ३९—तूँड़िया पुर। १—तूँड़िया पुर; २—गरारी; ३—रस्सी; ४—जगत; ५—पारछा; ६—कुआ; ७—धरातल।

(ग) इंजनसे सिंचाई

उपरोक्त यंत्रों द्वारा थोड़े क्षेत्रफलकी सिंचाई की जा सकती है। अधिक ज़मीनकी काश्त करनेके लिए इंजनकी सहायतासे सिंचाई कर सकते हैं। प्रायः तेलसे चलनेवाले इंजन इस कामको कर सकते हैं। यह मामूली पक्के कुओं (चित्र ४०) में भी लगाये जा सकते हैं; परन्तु उनमें काफ़ी पानी होना चाहिये, जिससे इंजनके चलनेपर पानीका तोड़ा न पड़ने पावे, आजकल लोहेके नल ज़मीनमें गला कर भी कुए बनाये जाते हैं। इन्हें ट्यूब वेल्स (चित्र ४१) ( Tube wells ) कहते हैं। इनसे ४–५ एकड़की सिंचाई दिन भरमें हो सकती है। छोटा इंजन लगभग ३००० रुपयेको मिल सकता है।

---

## मक्खी

[ ले०—श्री० शङ्करराव जोशी ]

मक्खी ( Diptera ) द्विपक्ष वर्गका कीड़ा है। इस वर्गके कीड़ेके दो पंख होते हैं। दूसरे दो पंखोंके बदले इस वर्गके प्राणीके बालके समान महीन अवयव होते हैं। इन अवयवोंकी सहायतासे वह उड़ते समय अपने शरीरपर पूरा काबू रख सकते हैं। इन अवयवोंके द्वारा प्राणी दिशा बदल सकता है। अंगरेज़ीमें इन अवयवोंको बैलेन्सर्स (Balancers) या हाल्टर्स (Haltors) कहते हैं। हम इन्हें 'कर्ण' नाम देते हैं।
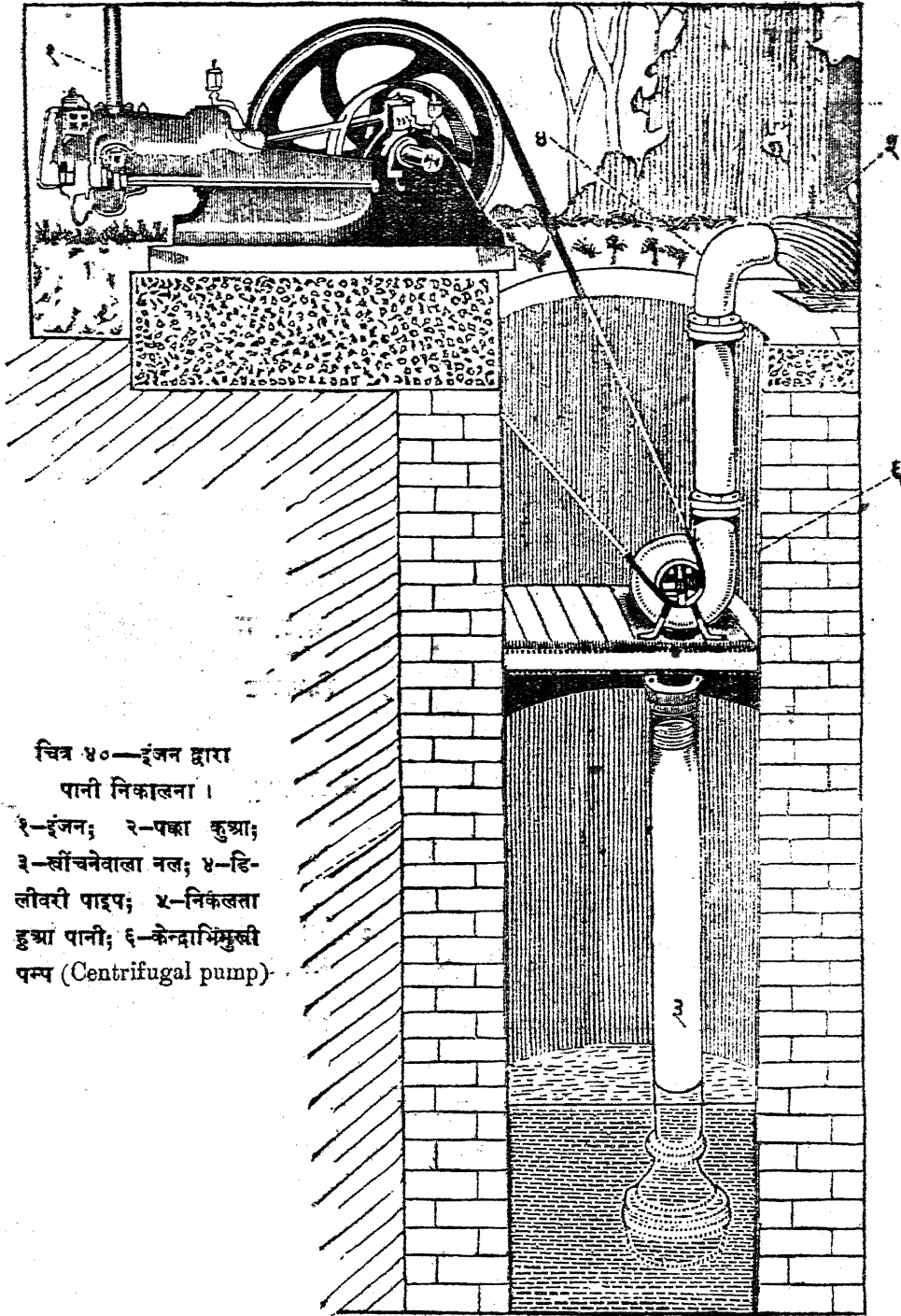
चित्र ४०—इंजन द्वारा पानी निकालना। १–इंजन; २–पक्का कुआं; ३–खींचनेवाला नल; ४–डिलीवरी पाइप; ५–निकलता हुआ पानी; ६–केन्द्राभिमुखी पम्प (Centrifugal pump)
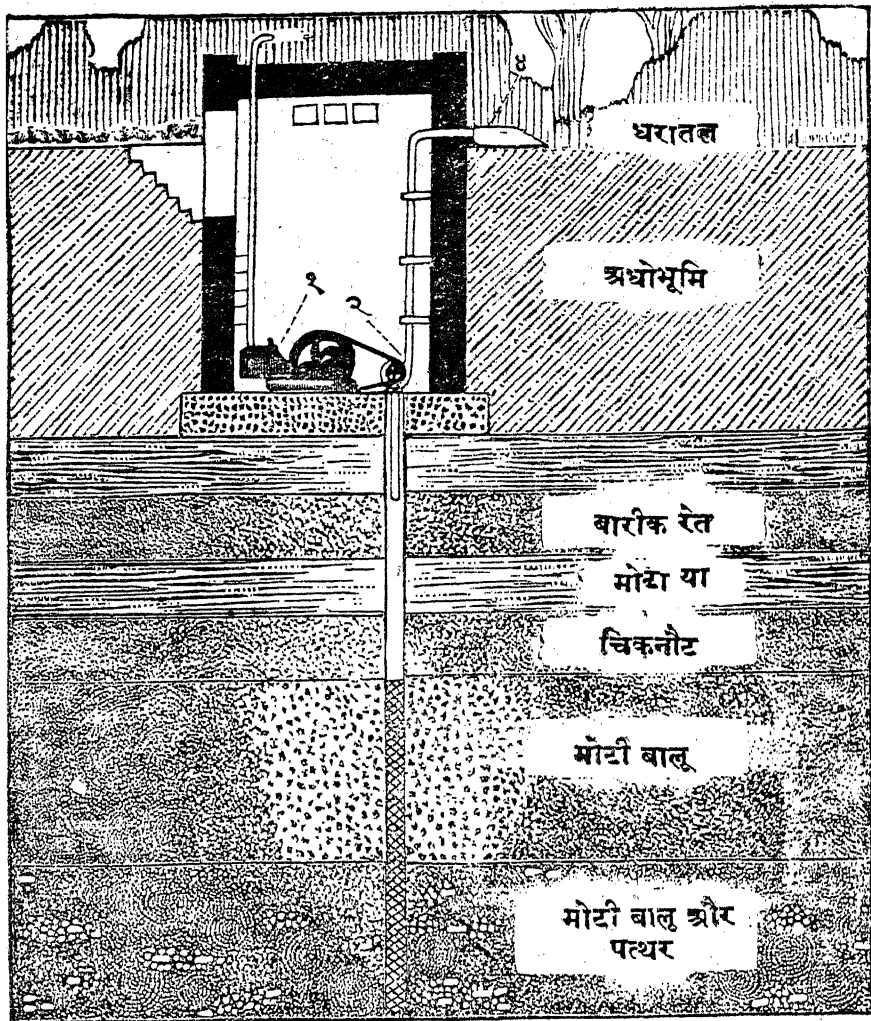
चित्र ४१—ट्यूब वेल

१—इंजन; २—सेंट्रिफ्यूगल पम्प; ३—नल; ४—निकलता हुआ पानी।

इस वर्गके प्राणी तरल पदार्थपर अपनी जिन्दगी बसर करते हैं। इसीसे ईश्वरने इनका मुख सूंड़के आकारका बनाया है। इनकी स्पर्शेन्द्रियमें तीन जोड़ होते हैं। शरीरके सब अवयव लम्बे और पतले होते हैं। अतः वह बड़ी सरलतासे बहुत तेज़ उड़ सकते हैं।

भूपृष्ठ और अन्तरिक्षमें, सब जगह, इनका अस्तित्व पाया जाता है। गहन अरण्य, समतल मैदान, खेत, नदीतट और घर, कहीं भी देखिये इस वर्गके प्राणी ज़रूर पाये जायंगे। इस वर्गके कुछ कीड़े शाकाहारी, कुछ मनुष्यके रक्तपर जीवन निर्वाह करनेवाले और कुछ मल मूत्रादिपर निर्वाह करनेवाले हैं।

इस वर्गके कीड़ोंकी संख्या बहुत बड़ी है। यह कीड़े मल मूत्रादि एवं सड़े गले पदार्थ भक्षण करते हैं। इससे यह लाभ होता है कि इन पदार्थोंसे होनेवाले अनर्थोंसे मानव जातिकी रक्षा होती है।

इन प्राणियोंकी बाढ़ बड़ी तेज़ीसे होती है। लीनियस नामक विद्वान्ने पता लगाया है कि यदि तीन मक्खियोंकी प्रजा और एक शेर अलग अलग प्राणी खाने लगें तो मक्खियोंकी ही जीत होगी। हम यहां वर्ग एवं उपवर्ग और जातियों और उपजातियोंके झमेलेमें न पड़ कर उन्हीं कीड़ोंपर विचार करेंगे, जिनसे हम ज़्यादा परिचित हैं।

मक्खी और डांस ही दो ऐसे प्राणी हैं जिनसे हम ज़्यादा परिचित हैं। अतएव हम इन्हीं दो कीड़ों पर विचार करेंगे। इस लेखमें मक्खीपर विचार किया जायगा।

मक्खियां कई प्रकारकी होती हैं। चर्मचक्षुसे देखनेवालेको सब प्रकारकी मक्खियां एक सी मालूम होती हैं और इसीलिए हम सबको 'मक्खी' ही कहते हैं। अंगरेज़ीमें भी सब प्रकारकी मक्खी को fly संज्ञा दीगई है, तथापि भिन्न भिन्न रँगकी मक्खियोंको भिन्न भिन्न नाम दिये गये हैं। किन्तु हिन्दी भाषामें हम उन सबको एक ही नामसे पुकारते हैं। अमरकोषकारने मक्खियोंकी नामावली दी है; उसमें 'नीला' नाम भी पाया जाता है। संभव है अंगरेज़ी भाषाका 'ब्ल्यू बाटल' और संस्कृतका 'नीला' शब्द एक ही जातिके निदर्शक हों। हम 'ब्ल्यू बाटल' नामक मक्खीको 'नीला' और 'ग्रीन बाटल' नामक मक्खीको 'पलांशा' संज्ञा देते हैं।

घरी मक्खी ( House fly ) का रंग साधारण सफेद होता है। अणुवीक्षण यंत्रसे देखनेसे उनके शरीरपर सफेद बालोंके गुच्छे नज़र आते हैं और उसकी पीठका ऊपरी भाग काला होता है। इसलिए उसका रंग कबरा दीख पड़ता है। उसके मुंहपर भी सफेद बाल होते हैं। मक्खीकी आंखें पहलूदार और लाल रंगकी होती हैं। मक्खीके डंक नहीं होता और यही कारण है कि वह किसीको काटती नहीं। वह मनुष्यके शरीरपरका पसीना आदि मैल अपनी जीभसे चाटती है, जिससे मनुष्यको गुदगुदी होती है और इसे ही हम मक्खीका काटना कहते हैं।

दूसरी जातिकी मक्खी को (Musca Domestica Minor ) लघुगृह मक्षिका कहते हैं। पहले और दूसरे प्रकारकी मक्खीके पंखों और पंखोंकी नसों (veins) में फर्क होता है। आंखोंसे यह फर्क मालूम नहीं हो सकता तथापि अणुवीक्षण यंत्रकी सहायतासे मक्खी पहचाननेमें दिक्कत नहीं होती। लघुगृहमक्षिकाके पंखोंके मूलके पासकी खाल पारदर्शक होती है। खिड़कीके कांचपर बैठी हुई मक्खीके इस पारदर्शक भागमेंसे प्रकाश आता हुआ साफ़ नज़र आता है। इसलिए यह मक्खी पहचानी जा सकती है। मक्खीके इस पारदर्शक भागका क्या उपयोग होता है, इस बातका ठीक ठीक उत्तर देना असंभव सा है। घरोंमें पाई जानेवाली मक्खियोंमें इस जातिकी मक्खियोंकी संख्या ज़्यादा होती है, जिनमें अधिकांश नर ही होते हैं; मादाएं कम पाई जाती हैं। हम इसका साधारणतया 'लघु मक्षिका' नामसे ही उल्लेख करेंगे।

तीसरी जातिकी मक्खीको ( stomoxys calcetrans ) तीक्ष्ण मुखी काटनेवाली मक्खी कहते हैं।

अमरकोषमें दंशी नामक एक प्रकार की मक्खीका नाम पाया जाता है। शायद यह वही हो। अतः हम इस जातिकी मक्खीको 'दंशी' संज्ञा देते हैं। दंशी और खरी मक्खीमें वैसे कुछ भी फ़र्क नहीं मालूम होता; किन्तु दोनोंके मुखके आकारमें बहुत फर्क होता है। दंशीका मुख भालेके समान लम्बा होता है और वह उसे नरदेहमें चुभाकर रक्तपान करती है। हम ऊपर लिख आये हैं कि लघु मक्षिका और खरी मक्खी काटती नहीं किन्तु दंशी मक्खी काटती है। खरी मक्खीकी अपेक्षा दंशी छोटी होती है। चुपचाप बैठे रहनेपर दंशीके पर एक दूसरे से मिलते नहीं। इसके शरीर पर सफेद रंगके घने बाल होते हैं। इसके नेत्र खरी मक्खीके नेत्रोंसे कम लाल होते हैं।

ऊपर हमने साधारणतया घरोंमें पाई जाने-वाली मुख्य मक्खियोंका ही विवेचन किया है। किन्तु आगे चलकर हम घरोंमें कभी कभी पाई जानेवाली मक्खियोंपर भी विचार करेंगे।

नीला ऊपर कही हुई सब मक्खियोंसे बड़ी है। उसका रंग चमकीला नीला होता है। उड़ते समय इसके पंखकी आवाज़ भारी होती है। दूसरी मक्खियोंके समान इसकी आंखें भी लाल रंगकी होती हैं। मुख पर घने सफेद बाल होते हैं। नीला-को कच्चा मांस बहुत पसंद है। यह कच्चे मांसपर ही अण्डे रखती है।

हम ऊपर जिन मक्खियोंके सम्बन्धमें लिख आये हैं, वह सब जगह पाई जाती हैं। ऊपर लिखी हुई मक्खियोंके सिवा और भी कई जाति-की मक्खियां हैं किंतु वह शहरोंमें नहीं पाई जातीं; गांवोंमें पाई जाती हैं।

मक्खियां कई जातिकी हैं। किन्तु उनकी शरीर रचना बहुत कुछ मिलती जुलती है। सब जातिकी मक्खियोंके मुख्य मुख्य अवयवोंकी रचना करीब करीब एकसी है। अतएव उन सबकी शरीर रचनाके सम्बन्धमें यहां कुछ नहीं लिखते। नीला सब मक्खियोंसे बड़ी है, अतएव उसके अवयव भले प्रकार देखे जा सकते हैं।

द्विपक्ष वर्गके अन्य कीड़ोंकी तरह मक्खीके भी दो पंख होते हैं। मक्खीके बैठनेपर पंख एक दूसरे पर आ जाते (Overlap) हैं। पंख अर्ध पार-दर्शक होते हैं और उनपर छह बड़ी और कुछ छोटी नसें होती हैं। जुदी जुदी जातिकी मक्खियों-के पंखोंकी नसोंकी रचना जुदी जुदी होती है। नीलाके परोंकी नसें नलिकाके समान पोली होती हैं। मक्खी इन्हींके द्वारा श्वासोच्छ्वासकी क्रिया करती है। अणुवीक्षण यंत्रसे देखनेसे मक्खीके परोंपर रोएं नज़र आते हैं। नसोंपरके रोएं अन्य रोओंसे कुछ लम्बे होते हैं और अनुमान किया जाता है कि यही उनकी श्वासोच्छ्वास करनेकी इन्द्रियां हैं।

उड़ते समय मक्खी अपने पंख जलदी जलदी हिलाती है, जिससे आवाज़ निकलती है। अनु-मान किया गया है कि मक्खी अपने पंख एक सेकंडमें ३५० बार हिलाती है। नीला मक्खीके उड़नेपर जो आवाज़ होती है, वह पंखोंके हिलने-से नहीं होती; कारण कि पंख, सिर और पांव काट डालनेपर भी उसकी छातीमेंसे आवाज़ निकलती हुई पाई गई है। विद्वानोंका तर्क है कि इस प्राणी-की छातीमें अन्य कोई ऐसा साधन होगा जिसमें-से यह शब्द निकलता है। कीटक शास्त्रवेत्ता कुछ विद्वानोंका मत है कि मक्खीकी छातीमें एक महीन पड़दा होता है, जिसके हिलनेसे यह शब्द होता है।

मक्खीकी छाती बहुत मज़बूत होती है। मक्खी-के शरीरके तीन भागोंमें से बीचका भाग ज़्यादा मज़बूत होता है और इसी भागपर पंख होते हैं पंखोंके पास ही मक्खीके दो कर्ण होते हैं। यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता कि यह कर्ण मक्खीके किस काम आते हैं। कुछ विद्वानोंका मत है कि यह मक्खीको श्वासोच्छ्वासकी क्रिया करनेमें सहायता पहुंचाते हैं। कुछ विशेषज्ञोंका

यह भी मत है कि वह शायद उन्हें उड़नेमें सहायता देते हैं।

मक्खीके पांवकी रचना अजीब ढंगकी है। पांवका तीसरा भाग (Tarsi) पांच टुकड़ोंके जोड़से बना है। इन पांच भागोंमेंसे आखिरी भागपर दो हुक होते हैं। इन हुकोंके नीचेके भागपर मांसोपधान (pulvilli) होते हैं। इन अवयवोंका चलनेमें बहुत उपयोग होता है। मांसोपधान गोल होते हैं और उनके किनारेपर अति महीन बाल होते हैं। मक्खी, किसी स्थान पर—चाहे वह कांचके समान चिकना ही क्यों न हो—बड़ी तेज़ीसे चलती है। पांवके हुक मक्खीको इस काममें बिलकुल सहायता नहीं पहुंचाते। मांसोपधान ज़रूर मदद देते हैं। हर एक मांसोपधानके बालोंकी संख्या करीब १२०० के होती है। यह बाल नलिकाकी तरह पोले होते हैं। इनमेंसे एक प्रकारका द्रव पदार्थ हमेशा निकलता रहता है, जिससे बालोंके सिरे हमेशा गीले रहते हैं। चलते समय इन बालोंका रस उस पदार्थपर लग जाता है, जिसपर कि मक्खी चल रही है। इस कारण मक्खीके पैर उस वस्तुसे चिपट जाते हैं। अतः पैर फिसलने नहीं पाते। पैर उठानेपर उस पदार्थके सूखनेसे काला दाग़ पड़ जाता है।

मक्खीकी छाती और सरको जोड़नेवाला भाग बहुत ही महीन होता है। अतएव मक्खी अपना सर चारों ओर सुगमतासे हिला सकती है। हमारे पाठकोंने मक्खीको सर हिलाते हुए अवश्य देखा होगा।

सरके मानसे मक्खीके नेत्र बहुत बड़े होते हैं। मादाके नेत्रोंकी अपेक्षा नरके नेत्र ज़्यादा बड़े होते हैं। नरकी दोनों आंखोंके बीचमें बहुत थोड़ा अन्तर होता है। कुछ जातिकी मक्खियोंके नेत्र आपसमें मिले होते हैं। मिली हुई आँखों वाली मक्खीको (Holoptic) अखिल नेत्री कहते हैं। आँखे षट्कोणवाली एवं पहलूदार होती हैं। इन पहलुओंकी गिनती करना असंभव है। आंखोंके ऊपरका भाग कुछ ऊपर उठा हुआ होता है, जिसपर तीन छोटी छोटी आंखे होती हैं। इन्हें 'औसेली' (Ocelli) कहते हैं। यदि इन तीन आंखोंको तीन विन्दु मान कर इन्हें सरल रेखाओं द्वारा मिलादें तो एक त्रिकोण बन जाता है। इस त्रिकोणके बीचके भागमें दो बड़े बाल होते हैं। इन बालोंके बीचकी खाली जगहमें बारीक विन्दु होते हैं, जिनकी संख्या १७००-१८०० तक होती है। हम इसे मक्खीकी घ्राणेन्द्रिय कह सकते हैं। मक्खीकी घ्राणेन्द्रिय बहुत तीक्ष्ण होती है।

मक्खीका मुख शुण्डाकार होता है। मक्खीको पकड़ कर उसका पेट दबानेसे सूंड बाहर निकल आती है। मक्खी अपनी सूंड पुस्तकके पन्नोंकी तरह समेट कर रखती है। मक्खी अपनी इच्छानुसार सूंड बाहर निकाल सकती और भीतर कर सकती है। सूंडके सिरेपर एक अवयव होता है। यह अवयव जिस तरफ सूंड़से जुड़ा होता है उसकी दूसरी तरफ करीब ६० (नलिकाके रूपके) अवयव होते हैं। यह एक प्रकारके तरल पदार्थसे, जिसे मक्खीका थूक कह सकते हैं, भरे रहते हैं। मक्खी अपनी इच्छानुसार इसका उपयोग कर सकती है। मक्खी अपनी सूंड से तरल पदार्थ पी सकती है। यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वह शक्करके समान पदार्थको कैसे खाती है? रूमर नामक प्रख्यात विद्वानने लिखा है कि वह शक्करके समान पदार्थमें थूक मिलाकर सूंडसे हिलाती है और तब शरबत बनाकर उसे पी लेती है। रूमरने एक जगह लिखा है कि मैंने महत्प्रयाससे यह शरबत लेकर चाखा है।

मक्खीका स्थित्यन्तर

ऊपर गृह मक्षिका (House fly) लघुमक्षिका, दंशी, नीला आदि भिन्न भिन्न जातिकी मक्खियोंके सम्बंधमें लिख आये हैं। इन सब जातिकी मक्खियोंके पहले तीन स्थित्यन्तर एकसे होते हैं।

मक्खियां अन्डे ऐसे स्थान पर रखती हैं कि जहां अन्डेमेंसे निकलनेके बाद इल्लियोंको काफ़ी भोजन मिल जाता है।

नीला अपने अण्डे कच्चे या उबाले हुए मांसमें रखती है। यह प्राणियोंके शरीरपर जख्ममें अण्डे रखती है। (Sarcophaga Carvaria) मांस मक्षिका नामक मक्खी मांस भक्षण करती है। यह कच्चा या उबाला हुआ कैसा ही मांस क्यों न हो, थोड़ेमें ही चट कर जाती है। यह मक्खी घरोंमें-बहुत कम पाई जाती है। इसकी पीठपर काले और सफेद पट्टे होते हैं। यह भी मांसपर ही अण्डे रखती है। परन्तु लघुमक्षिका अपने अण्डे सड़ी हुई वनस्पति-पर रखती है। गृहमक्षिका और दंशी गोबर और लीदमें अण्डे रखती है।

मक्खियोंकी कीटावस्था बहुत जलदी पूरी हो जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि अण्डे-मेंसे निकलते ही इल्लीको बिना परिश्रम किए खूब खाने को मिल जाता है। पैदा होते ही इल्लीको खानेके सिवा दूसरा कुछ काम नहीं रहता। अण्डे रखनेके थोड़े ही समय बाद उनमें से इल्ली निकल आती है। मांस मक्षिकाके अण्डे तो उसके उदरमें ही फूटते हैं। अण्डोंके बदले इल्लियां ही माताके उदरमें से बाहर निकलती हैं।

मक्खीका अण्डा लम्बा होता है। उसका रंग राख कासा होता है। अण्डे एक दूसरेसे चिपके रहते हैं। इल्लीके न तो पैर ही होते हैं और न आंखें ही। उनका आकार बालकके कान सा होता है। इल्लीके मुखमें दो अँकुड़ियां होती हैं, जिन्हें वह दाँतकी तरह काममें लाती हैं। कोशावस्थामें यह अँकुड़ियां गिर जाती हैं और कोशमेंसे मक्खीके निकल आनेपर वह उसमें पाई जाती हैं। मक्खीकी कोशावस्था एक सप्ताहमें पूर्ण हो जाती है। इस अवधिमें वह दो बार त्वचा बदलती है। कीटावस्था और कोशावस्थाकी अवधि न्यूनाधिक उष्णतापर निर्भर करती है। ज़्यादा ठंढ पड़नेसे कीटावस्था और कोशावस्थामें कीड़ेकी बाढ़ रुक जाती है और वह अचेतसे पड़े रहते हैं। उष्णता बढ़नेपर उनकी बाढ़ पुनः शुरू हो जाती है।

मक्खीकी कोशावस्था पतंग आदि अन्य कीड़ोंकी कोशावस्थासे बिलकुल भिन्न है। पतंगकी इल्ली अपने मुँहमें से धागा निकालकर कोश बनाती है। परन्तु मक्खी ऐसा नहीं करती। कीटावस्था पूर्ण हो जानेपर इल्लीकी त्वचा धीरे धीरे कड़ी हो जाती है और उसका रंग और आकार बदल जाता है। कोशावस्थामें मक्खी निश्चेष्ट पड़ी रहती है, हिलती डोलती नहीं।

कोशावस्थामें भी मक्खी अपनी आँखोंके ऊपरके भागको नीचे ऊपर कर सकती है। कोशावस्था पूर्ण हो जानेपर मक्खी अपनी शक्तिका उपयोग कर इस भागको नीचे ऊपर करती है। इस आघातसे कोश फट जाता है और मक्खी बाहर निकल आती है। कोशसे बाहर निकलनेपर थोड़े समयमें इस भागका चमड़ा कड़ा हो जाता है, जिससे उस भागकी उक्त शक्ति नष्ट हो जाती है। पंख भी सूख जाते हैं, जिससे मक्खी उड़ने लगती है।

मक्खीकी आयु बताना संभव नहीं। शीतकालमें मक्खीकी शक्ति क्षीण हो जाती है। उसके पांवकी शक्ति कम होजाती है और पंख भी कमज़ोर हो जाते हैं। यही कारण है कि शीतकालमें मक्खियां बहुत कम पाई जाती हैं। वह अपने प्राण बचानेके लिए ऐसे स्थानमें छिपकर बैठ जाती हैं जहां ठंढ उनको तकलीफ नहीं पहुंचा सकती। गरमीके मौसममें उनको बन आती है।

ऐसे कई प्राणी हैं जो मक्खीके रक्तपर जीवन निर्वाह करते हैं। इनका आकार हवामेंके त्रसरेणुओंके समान होता है। इन्हें मक्षिका-बग ( माइट ) कहते हैं। इनकी बुक स्कार्पियन नामक एक जाति है, जो कभी कभी मक्खीके शरीरपर पाई जाती है। इसी वर्गका एक और प्राणी मक्खीके शरीरपर पाया जाता है। इस प्राणीका मुख लम्बा होता

है और रंग लाल। इस प्राणीके एक बार शरीरके कोमल भागमें अपनी सूंड़ चुभोकर बैठ जानेपर उसे वहांसे हटाना मक्खीके लिए असंभव हो जाता है।

एक और प्राणी मक्खीके पेटमें रह कर जीवन बिताता है। यह प्राणी महीन बालके आकारका होता है किन्तु इसकी लम्बाई तीन इंच तक होती है। एम० फोरसेंट नामक व्यक्तिने एक मक्खीके पेटमें इस प्राणीको देखा था। इस प्राणीके पेटमें रहनेसे मक्खीका पेट फूल जाता है, किन्तु इससे उसको कुछ भी तकलीफ़ नहीं होती।

पृथ्वीपर कुछ ऐसी वनस्पतियां भी हैं, जिनके बीज हवामें उड़ते रहते हैं; एवं योग्य स्थान पाते ही जमकर उग आते हैं। बरसातमें अकसर सीलदार जगहोंपर एक सफेद पपड़ी सी जम जाती है। यह भी एक प्रकारकी वनस्पति ही है। इसे घुआ अथवा गोमयज (फंगस) कहते हैं गोमयज जातिकी एक प्रकार की वनस्पतिके पोषणार्थ मक्खीके शरीरका रस आवश्यक होता है। इसके बीज हवामें उड़ते रहते हैं। यह बीज मक्खीके शरीरपर चिपकनेपर अंकुरित होजाते हैं और तब जड़ देहमें प्रवेश करती है। ज्यों ज्यों जड़ें बढ़ने लगती हैं मक्खी कमज़ोर होती जाती है और तब कुछ दिन बाद वह मर जाती है।

गृहमक्षिका एक बारमें सौ सवा सौ अण्डे देती है। मांसमक्षिका एक समयमें ३०० से ६०० तक अण्डे रखती है। पूर्णावस्था प्राप्त होनेके पहले मक्खीका सब जीवन स्वच्छ वायुमें ही व्यतीत होता है। किन्तु पूर्णावस्था प्राप्त होनेपर वह अपना निवास स्थान छोड़कर घरोंमें चली जाती है। इसका कारण बताना संभव नहीं।

हमने किसी अंगरेज़ी ग्रंथमें यह बात नहीं देखी कि मक्खीके पंख पेटमें जानेसे मनुष्यको उलटी हो जाती है। एक संस्कृत कविने लिखा है—

त्यक्त्वापि निजप्राणान् परहित विघ्नं खलः करोत्येव।
कवले पतिता सद्यो वमयति मक्षिकान्न भोक्तारम्॥

मनुष्य प्राणीके लिए घी शक्तिवर्द्धक माना गया है। कहा भी है "घृतमायु"। परन्तु यही घी मक्खीके लिए विषका काम देता है। घीमें गिरते ही मक्खी इस लोककी यात्रा पूरी कर परलोक सिधार जाती है। घीकी गंध तक वह सह नहीं सकती।

ऊपर हमने मक्खियोंके सम्बंधमें लिखा है। अब हम द्विपक्ष वर्गकी उन मक्खियों (fly) के सम्बंधमें लिखेंगे जो घोड़ा, बैल, भेड़, आदि प्राणियोंके शरीर पर पाई जाती है। हिन्दी भाषा भाषी इन्हें 'बघई' कहते हैं, किन्तु यूरोपके कीटक शास्त्रवेत्ताओंने इन्हें भिन्न भिन्न नाम दिये हैं। आगे चल कर हम उन्हीं बघइयों पर विचार करेंगे, जो भारत वर्षमें पाई जाती है।

### घोडे परकी बघई (God-bly)

यह बघई सारे एशिया खंडमें पाई जाती है। फ्रांस और इटलीमें भी इसका अस्तित्व पाया जाता है; किन्तु इंगलैडमें इसका अभाव सा है; हमारे अधिकांश पाठक इसके वाह्य स्वरूपसे अवश्य ही परिचित होंगे और यही कारण है कि इसके वाह्य स्वरूपका वर्णन यहां नहीं किया गया है।

मादाका पेट नरके पेटसे लम्बा होता है। यह अपने अण्डे घोड़ेके शरीरपर ऐसे स्थानपर रखती है जहां घोड़ेका मुंह सहज ही पहुँच सकता हो। अण्डे शरीरपर चिपके रहते हैं। अंग चाटनेपर यह अण्डे घोड़ेके मुँह में चले जाते हैं और तब दाने या घासके साथ उसके पेटमें पहुँच जाते हैं। इस प्रवासमें बहुत से अंडे नष्ट हो जाते हैं। प्रतिशत दो चार अण्डोंसे ज्यादा घोडेके पेटमें शायद ही पहुँचते होंगे। अंडे सफेद होते हैं। अंडे घोड़ेके पेटमें ही पकते हैं और उनमेंसे इल्ली निकल आती है। इल्लीका पोषण भी घोड़ेके पेटमें ही होता है। वहां उसका पोषण भिन्न भिन्न द्रव्यों और वायुसे होता है। घोड़के पेटमें तैयार होनेवाली गैस इतनी विषैली होती हैं कि उनमें मनुष्य एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। किन्तु यही गैस इल्लीका जीवन है।

इल्लीका आकार लम्बा होता है। उसके शरीर-पर छोटे छोटे हुक होते हैं जिनकी सहायतासे वह घोड़ेकी अँतड़ीसे चिपकी रहती है और लीदके साथ बाहर नहीं निकल जाती। जब घोड़ेके पेटमें यह कीड़े बहुत ही ज्यादा हो जाते हैं तब उसे अवश्य तकलीफ़ होती है। ऐसी अवस्थामें डाक्टर रेचक औषधिका प्रयोग करते हैं, जिससे अधिकांश कीड़े लीदके साथ बाहर निकल आते हैं।

शायद पाठकोंको यह जानकर अत्याश्चर्य होगा कि घोड़ेके पेटमें कीड़े तो रहते हैं किन्तु उनसे उसे तकलीफ़ नहीं होती। परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि कीड़े तो मनुष्यके पेटमें भी पाये जाते हैं, किन्तु जब तक इन कीड़ोंकी संख्या ज्यादा नहीं हो जाती, मनुष्यको उनसे अधिक तकलीफ़ नहीं होती।

कीटावस्था पूर्ण होनेपर इल्ली लीदके साथ बाहर निकल आती है। और ज़मीनमें छेद कर उसमें रहती है। वहीं वह अपनी कोशावस्था बिताती है। कोशावस्था पूर्ण होनेपर पूर्ण बाढ़को पहुँची हुई मक्खी कोशसे बाहर निकलकर इतस्ततः संचार करने लगती है। कोशसे बाहर निकलनेके बाद नर और मादाका संयोग होता है और तब मादा घोड़े-के शरीरपर अण्डे रखती है।

बैलपरकी बघई ( Botfly )

इस मक्खीका सर घोड़ेपर पाई जानेवाली बघईके सरसे बड़ा होता है और उसपर पीले रंग-के बाल होते हैं। छाती पीली होती है और उसपर काली रेखाएं होती हैं। पंख धूम्रके रंगके होते हैं।

यह मक्खी बैलकी त्वचामें छिद्र कर उसमें अण्डे रखती है। मक्खी शरीरपर अण्डे रखती है, यह बात मालूम होते ही बैल घबरा उठता है और भयभीत हो जाता है। वह पूंछ उठाकर पानीकी तरफ़ भागता है। इन मक्खियोंके उड़नेकी आवाज़ सुनकर बैल भयभीत हो जाता है। *

* इस वर्णनको पढ़कर हमें तो यही मालूम होता है कि इस जातिकी बघई भारतवर्षमें शायद ही पाई जाती हो।

यह मक्खी जवान बैलके शरीर पर अण्डे रखती है; कारण कि तरुण बैलकी त्वचा कुछ मृदु होती है। अण्डे बैलके शरीरकी गरमीसे ही पकते हैं। और तब इल्ली बाहर निकल आती है। प्रारंभमें इल्ली छोटी होती है किन्तु बादमें बड़ी हो जाती है। जहां इल्ली रहती है, वहां ज़ख्म हो जाता है। ज़ख्मके भीतर पीप भर जाती है और उसीपर इन इल्लियोंका पोषण होता है। श्वासोच्छ्वासके लिए इल्लीको बाहरकी हवाकी ज़रूरत होती है। अतः वह ज़ख्मके खोखले भागमें एक छेद बना लेती है। इस छेदमेंसे उसे काफ़ी हवा मिलती रहती है। कोशावस्था बितानेके लिए इल्लीको प्राणीके शरीरमेंसे बाहर निकलना पड़ता है। इसलिए वह उक्त छेदको बड़ा कर बाहर निकल आती है। बैलके शरीरमेंसे बाहर निकलनेपर इल्ली पत्थरके नीचे या मट्टीके अन्दर घुसकर अपने शरीरके चारों ओर कोश बनाती है। कोशावस्थाकी अवधि समाप्त होजानेपर पूर्णावस्थाको प्राप्त हुई मक्खी, बघई, बाहर निकल आती है और तब वह इधर उधर उड़ने लगती है। पूर्णावस्था प्राप्त होनेपर नर मादाका संयोग होता है और मादा तब अण्डे देती है।

भेड़ परकी मक्खी ( Breeze fly )

यह मक्खी भेड़के शरीरपर रहती है। इस लिए उसे उक्त नाम दिया गया है। इस मक्खीका सर घोड़ेके शरीरपर रहनेवाली मक्खीके सरसे बड़ा होता है, किन्तु रोएं कम होते हैं। इसकी स्पर्शेन्द्रिय काली और सर नीला होता है; पेटका रंग कुछ सफेदी लिये काला होता है और उसपर काले पट्टे होते हैं।

यह मक्खी अरबिस्तान, फारस, और ईस्ट इण्डीज़ द्वीप समूहोंमें पाई जाती हैं। यह भेड़की नाकमें अपने अण्डे रखती है। इस मक्खीसे भेड़ें बहुत डरती हैं। वह एक दम एक ही तरफ़ मुंह उठा सर नीचा कर खड़ी हो जाती हैं। गरमीके

दिनोंमें तो बेचारी भेड़ें घास पत्तोंमें नाक छिपाये रखती हैं।

हम ऊपर लिख ही आये हैं कि मादा भेड़की नाकमें अण्डे रखती है। अण्डेमेंसे इल्ली निकलती है। इस इल्लीके अग्रभागमें दो नख होते हैं। इन्हीं नखोंकी सहायतासे इल्ली भेड़के मग़ज़में पहुँच जाती है। मग़ज़में पहुँच जानेपर वह एक वर्ष तक वहीं रहती है और तब नाकके मार्गसे बाहर निकल आती है। बाहर निकल आनेपर वह मट्टीके अन्दर कोशावस्था बिताती है। एक मास तक कोशावस्थामें रहनेपर पूर्ण बाढ़को प्राप्त हुई मक्खी बाहर निकल आती है।

ट्रिस्टी मक्खी ( Triste fly )

यह मक्खी मध्य अफ्रीकाके ज़ैम्बिसी नदीके तटवर्ती प्रदेशोंमें पाई जाती हैं। इसीलिए इसे ज़ैम्बिसी मक्खी भी कहते हैं। अंगरेज़ीमें इसे 'ट्रिस्टी' कहते हैं। इसी मक्खीके कारण मध्य अफ्रीकामें मनुष्य नहीं बस पाते। मनुष्यका जीवन खेतीपर निर्भर होता है और बैल घोड़ा आदिके बिना तो खेतीका काम चल ही नहीं सकता! परन्तु यह प्राणी तो मक्खीके दिली दुश्मन हैं। इस मक्खीके काटते ही बेचारे यमलोक सिधार जाते हैं। कुत्तेपर तो इसकी इतनी टेढ़ी नज़र है कि काटते ही फौरन उसकी जान निकल जाती है। यह मक्खी काटती तो मनुष्यको भी है किन्तु इससे विशेष कष्ट नहीं होता। काटनेपर कुछ खुजली चलती है, अवश्य। खच्चर, गधे और बकरेको भी इससे कम तकलीफ़ होती है। जब तक गायका बछड़ा अपनी माताके दूधपर रहता है तब तक मक्खी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। किन्तु घासका तिनका मुंहमें लेने लगनेपर मक्खीके काटनेसे उसके प्राण पखेरू शरीर पिंजरसे उड़ जाता है। कुत्ता दूधपर ही क्यों न रखा जाय, किन्तु मक्खीके काटनेपर वह जी नहीं सकता।

इस मक्खीके काटनेपर पशुकी क्या दशा होती है, इस सम्बंधमें एक पुस्तकमें लिखा है—

मक्खीके काटनेपर प्रथमतः उस स्थानपर कंडू चलती है, किन्तु कुछ दिन बाद बैलकी नाक और आँखें सूजने लगती हैं। बाल खड़े हो जाते हैं। कभी कभी नाभि भी सूज जाती है। जिस बैलको मक्खी काटती है, वह खाना पीना नहीं छोड़ता; परन्तु धीरे धीरे उसकी ताक़त घटती जाती है। उसके स्नायु भी कम ताक़त होते जाते हैं। अन्तमें दस्त होने लगते हैं। दस्त शुरू होते ही वह खाना पीना छोड़ देता है और तब शीघ्र ही मर जाता है। हवामें एकदम गरमी या सरदी बढ़ जानेसे जानवर तत्काल मर जाता है। हवामें एक दम फर्क नहीं हुआ तो वह दो चार महीने बीमार रहकर मरता है।

पाठको, शायद आप सोचते होंगे कि यह मक्खी बहुत बड़ी होती होगी। किन्तु यह मक्खी गृह-मक्षिकासे अधिक बड़ी नहीं होती।

---

## देव और विहारी

बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि हिन्दी विद्वानोंका ध्यान अपने यहाँके सत्कवियोंकी समालोचनाकी ओर आकृष्ट होने लगा है। संवत् १९७५ में विद्वद्वर पं० पद्मसिंह शर्म्मा कृत् विहारी सतसईपर भाष्य, तथा हालमें ही उक्त ग्रन्थकी ही स्पर्द्धामें रचित 'देव और विहारी' नामक तुलनात्मक समालोचना-ग्रन्थका प्रकाशन इस वर्द्धमान राष्ट्र-सद्प्रवृत्तिका प्रमाण है। प्रथम ग्रन्थकी उत्तमता अथवा सदोषताके सम्बन्धमें अनेकों टीका-टिप्पणियाँ हो चुकी हैं। आज दूसरी पुस्तकके विषयमें हम पाठकोंसे कुछ निवेदन करना चाहते हैं।

भूमिकामें ब्रजभाषा-दुर्बोधताकी वृद्धिके कारणोंका निदर्शन करते हुए तथा कवितामें भाषा-माधुर्य्यके प्रभावके विषयमें लिखते हुए हमारी समालोच्य पुस्तकके रचयिता महाशय आगे चलकर शर्म्माजीपर विहारीके पक्षपाती होनेका

लांछन लगाते हैं। हमारी समझमें नहीं आता कि शर्म्माजीको विहारीका पक्षपाती बनने की क्या ख़ास ज़रूरत अटकी थी। इसमें सन्देह नहीं कि शर्म्माजी विहारीपर मुग्ध हैं, तथा विमुग्धताकी विवशतामें अपने प्रिय कविकी प्रशंसा उन्होंने मुक्तकण्ठसे की है। परन्तु यह बात उन्होंने ही अकेले की हो सो नहीं। विहारीकी कीर्ति और लोकप्रियताका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि उसकी कवितापर पचीसों टीकाएँ हुईं और उसे गद्य संस्कृत टीकाका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। हां, 'देव और विहारी'को आदिसे अंत तक पढ़ जानेपर हमें यह अवश्य जान पड़ा कि इसके लेखकने 'देव' के सम्बन्धमें अंधभक्ति तथा पक्षपातका परिचय दिया है। लेखकके कथनानुसार ही उनके पिता देवके बड़े भक्त थे और जहां तक हमें ज्ञात है, तथा जहां तक 'मिश्रबन्धु-विनोद' से भी प्रमाणित होता है, उनके पूज्यपाद दादा (सगे नहीं) पं० श्यामविहारी मिश्र तथा पं० शुकदेवविहारी मिश्र आदि भी 'देव' के बड़े भक्त हैं। इस दशामें लेखक के हृदयमें 'देव' कविके प्रति असाधारण भक्तिभावका सञ्चार अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। अस्तु। किन्तु शर्म्माजीके पक्षपातसे हिन्दी प्रेमियोंकी तो कोई हानि नहीं हुई, उलटा उन्हें 'देव और विहारी' जैसा अमूल्य रत्न अनायास ही प्राप्त हुआ। अतएव यदि उनके पक्षपाती होनेकी बात सच्ची भी हो तो कमसे कम इस दृष्टिसे तो उनका पक्षपात निंदनीय नहीं कहा जा सकता।

'देव और विहारी' का हम हृदयसे स्वागत करते हैं और लेखक महाशयको हिन्दी-प्रेमियोंकी ओरसे उनके परिश्रमके लिए कोटिशः धन्यवाद देते हैं। परन्तु हमें खेद है कि वह यह पूर्ण प्रकारसे प्रमाणित नहीं कर सके कि 'देव' विहारीलालसे बड़े कवि हैं। स्थान स्थान पर उन्होंने सहृदयता और विज्ञताका परिचय दिया है सही, परन्तु कितने ही स्थलोंमें उन्होंने ऐसी भद्दी भूलें की हैं, तथा देवका बड़प्पन इस प्रकार प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है कि स्वकार्य्य-साधन सम्बन्धी उनकी उद्विग्नताको देखकर अवाक् रह जाना पड़ता है। उदाहरणके लिए दोनों कवियोंके निम्न लिखित छंदों पर पाठक दृष्टि डालनेकी कृपा करें।

१-बतरस-लालच लालकी मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौंहन हँसै, देन कहै नटि, जाय॥
—विहारी

कंपत हियो; न हियो कंपत हमारो; यों
हँसी तुम्हैं अनोखी नेकु सीतमैं ससन देहु।
अम्बर हरैया हरि, अम्बर उजेरो होत
हेरि कै हँसै न कोई; हँसै तौ हँसन देहु॥

देत दुति देखिबेको लोयनमें लागी रहै
लोयनमें लाज लागै; लोयन लसन देहु।
हमरे बसन देहु, देखत हमारे कान्ह
अजहूँ बसन देहु, ब्रजमैं बसन देहु।
—देव

मिश्रजीने विहारीलालके 'बतरस दुर्ग' पर देवको विजय प्राप्त करायी है, परन्तु सहृदय जन देखें कि इन दोनों छंदोंमें कितना अंतर है और विहारीलाल 'देव' से कितने बड़े हुए हैं। मज़ाक दोनों छंदोंमें किया गया है परन्तु पहले मज़ाकका मज़ा चखिये और दूसरे मज़ाककी कटुताका भी अनुभव कीजिये। विहारीकी नायिकाने इस लालचसे कि मोहनसे बात करके रस लूटनेका मौक़ा मिल जाय, उनकी मुरलीको छिपा कर कहीं रख दिया और इनके इस ताड़ जानेपर कि उसीने ऐसा किया होगा, पहले तो उसने सौगन्ध खाई, फिर भौंहों द्वारा हास्य किया, तथा देनेका वादा किया, किन्तु अन्तमें इनकार कर गई। इस हास्य में कितना रस है, कितनी मिठास है, कितनी लज़्ज़त है। उधर देवजीके मनमोहनको इस तरह तंग होते देखकर उनको बदलेकी सूझी'। जाड़ेका प्रभातकाल जब कि गोपिकाएँ शायद कोई व्रत रखकर यमुनामें स्नान करने गई थीं मज़ाकके

लिए चुना गया। उन्हें नहानेमें मस्त देखकर उन्हों-ने उनके सब चीर छिपा दिये। सोचनेकी बात है कि सबेरा पूरी तरहपर हुआ ही चाहता है, सर्वसाधारणका आना जाना शीघ्र ही आरम्भ होने वाला है, तथा 'कंपत हियो' की पुकार वह बेचारियां पानीमेंसे कर रही हैं, किन्तु देवजीके बहादुर श्याम उत्तर दे रहे हैं 'न हियो कम्पत हमारो'। यह हास्य नहीं है, घोर निर्लज्जता है; यह खेल नहीं है, यह सख़्त डाकाज़नी है; इस तरहकी बेहयाईके लिए तो घोर दंड मिलना चाहिये। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि दोहा कवित्तसे बढ़ गया है।

विहँसति सकुचति सी दिए कुच आंचर विच बांह।
भीजे पट तटको चली न्हाय सरोवर मांह॥
—विहारी

पीत रंग सारी गोरे अंग मिलि गई देव
　　श्रीफल उरोज आभा आभासै अधिक सी।
छूटी अलकनि झलकनि जल बूंदनि की
　　विना वेंदी बंदन बदन सोभाविकसी॥
तजि तजि कुंज-पुंज ऊपर मधुप-पुंज
　　गुंजरत मंजु बरबोलै बाल पिक सी।
नींबी उकसाय नेक नैनन हँसाय हंसि
　　ससिमुखी सकुचि सरोवर ते निकसी॥

विहारीकी नायिका स्नान करनेके अनन्तर सहज ही हँसती हुई, तथा पटके भीगे होनेके कारण 'कुच आंचर विच बांह' देकर उन्हें आभा-सित होनेसे रोकती तथा संकुचित होती हुई सरोवरमें नहा कर तटको चल रही है। क्या ही मोहन दृश्य है! कैसा मधुर वर्णन है! ४८ मात्राके दोहेमें कितने चातुर्य्य और कौशलके साथ कितना मिठास और सौन्दर्य्य भर दिया है। उधर देवजीकी नायिकाको भी देख लीजिये। उसकी साड़ी उसके अंगसे सट गई है और उसके श्रीफल ऐसे उरोजोंकी आभा आभासित हो रही है। छूटी अलकोंमें जल-बूंदें झलक रही हैं और वेंदी, बन्दन विना भी उसकी शोभा खिल रही है। उसके ऊपर भौंरे गूंज रहे हैं और वह कोयलकी तरह बोल रही है। देवजी को जितनी बातें सूझ सकीं उन्होंने उनसे अपनी नायिकाका सौन्दर्य संवारा, किन्तु अंतमें आकर सारा खेल ही विगाड़ दिया क्योंकि वह कहते हैं।"........ हँसि ससि मुखी सकुचि सरोवर तें निकसी।" जिसका आशय यह है कि उनकी नायिकाके हँसने और सकुचनेकी क्रियाका अंत उसके सरोवरके निकलनेके पहिले ही हो गया अर्थात् वह बहुत गम्भीर बदन होकर चली। फिर वह बेचारी विहारीकी 'विहँसति सकुचति' नायिकासे किस प्रकार बाज़ी मारनेका दावा कर सकती है? देव-जीकी नायिकाकी यह थोड़ी हँसी और संकोच भी इस कारणसे है कि नीबी उकसानेकी क्रियामें उसे सुरतिका स्मरण हो आया है। जौहरी विहारीने थोड़ेमें जो कुछ कह दिया, जैसी सुन्दरी पद्मिनी मुग्धा नायिकाका चित्र खींच दिया, वैसा 'देव' जी इतने बड़े छंदमें भी न कर सके, तिस पर भी मिश्रजी ने देवको विजय बधाई दे ही दी। इस परिश्रमसे क्या लाभ हुआ। आगे देखियेः—

नई लगन कुलको सकुच विकल भई अकुलाय।
दुहूं ओर ऐंची फिरै फिरकी लौं दिन जाय॥
—विहारी

सूरति जो मन मोहनकी;
　　मन मोहनी कै थिर ह्वै थिरकी सी।
देव गुपालको नाम सुने
　　सियराति सुधा छतियां छिरकी सी।
नीके झरोखा ह्वै झांकि सकै नहिं
　　नैनन लाज घटा घिरकी सी।
पूरन प्रीति हिये हिरकी;
　　खिरकी खिरकीन फिरै फिरकी सी॥
—देव

हमारी समझमें नहीं आता कि उक्त दोहेको 'देव'के सवैयासे घट कर क्यों बताया जाता है।

'देव'जी की नायिकाकी समस्त कठिनाई यही तो है कि वह "नीके झरोखा ह्वै झांकि सकै नहिं" परन्तु क्या विहारी लालकी नायिकाकी कठिनाई-से उसकी कठिनाई गुरुतर है। विहारीकी नायिकाके सामने तो प्रेमके अस्तित्व अर्थात् करने न करनेका सम्बन्धी मूल प्रश्न ही आ जाता है। वह व्याकुल हो कर सोच रही है कि यह नई लगन बढ़ने दी जाय अथवा अपने उच्च वंशकी मर्य्यादा-का ख़याल करके उसे रोका जाय। देवकी नायिका यदि आज दुःखिनी है तो कल ऐसा मौक़ा मिल सकता है जब, यदि उसे गुरु जन-संकोच आदिके कारण झरोखे पर झांकनेकी सुविधा नहीं मिलती तो, उसके घरवाले बाधा डालनेके लिए न मौजूद रहें, कहीं चले जायं; और यदि 'लाज घटा' केवल मोहनके साथ है तब तो कोई बात ही नहीं क्य कि यह झिझक दो घड़ीकी है। परन्तु विहारीकी नायिकाकी चिन्ता वास्तवमें करुणाजनक है, क्योंकि पहले तो उसके लिए यही तय करना महा कठिन है कि वह 'कुल-सकुच'को त्यागे अथवा 'नई लगन'को। फिर यह तय कर लेने-पर भी परित्यक्त वस्तुके लिए जीवन भर पछतावा बना रहना संभव है। 'पूरन प्रीति हिरकी'की अपेक्षा 'नई लगन'को स्वयम् मिश्रजी प्रकृष्ट बताते हैं। 'दुहूं ओर ऐंची फिरै'का सानी पद 'देव'जीके सवैयामें वह कहीं बताते ही नहीं। फिर हम कैसे मान लें कि दोहा सवैयेसे गिरा है?

यह तो हुआ वह ढङ्ग जिसके द्वारा मिश्रजीने 'देव'को विहारीसे बढ़ानेकी चेष्टा की है। इस प्रकार इस ग्रंथका मूल उद्देश्य ही नहीं सिद्ध होता। पं० पद्मसिंह शर्मा तो सतसईपर भाष्य लिख रहे थे, अतएव वह तो समस्त संसारके कवियोंसे तुलना करनेके लिए वाध्य न होकर अपने कर्त्तव्यको वहीं समाप्त हुआ समझ सकते थे, जहां उन्होंने दोहेका सौन्दर्य्य-निदर्शन कर दो चार कवियोंसे तुलना कर दी तथा अपने प्रिय कविकी बारी-कियां दिखला दीं। उनके भाष्यके लिखे जानेसे विहारीका कोई ऊँचा स्थान नहीं होगया, उन्हें तो योंही ऊँचा स्थान प्राप्त है और मिश्र बन्धुओंके द्वारा 'शोहदा' आदि पदवियोंसे विभूषित किये जानेपर भी उनकी लब्ध कीर्त्तिपर धब्बे पड़नेकी आशङ्का नहीं है। परन्तु विहारीके यशःह्रासकी आशङ्काका विरह हमें 'देव' पर दया करनेके लिए विवश करता है।

पुस्तककी उपयोगिताके सम्बन्धमें हम इतना-ही निवेदन करेंगे कि हिन्दी-संसारमें इसका स्वागत होना चाहिये। ग्रन्थमें कितनी ही और खटकनेवाली बातें विद्यमान हैं, जो विस्तार भय-से हम यहां नहीं लिख रहे हैं, परन्तु उनसे उसका मूल्य नहीं घटता क्योंकि

No roses there are but thorns surround them,
But bees for juice rare ever around them.

—गिरीश दत्त

## परिषद्‌का जुलाईका हिसाब

आय

| | |
|---|---|
| सभ्योंके चन्देका | १००) |
| मुत्फर्रिक खाते | ५०) |
| पुस्तकों की बिक्री | ५१॥।) |
| योग | २०१)॥। |
| ३० जून को रोकड़ बाक़ी | ८९०॥-)॥१ |
| महायोग | १०९२।-)१ |

व्यय

| | |
|---|---|
| कलर्ककी तनखाह | १७) |
| खरीद पुस्तक | १≡) |
| केश सार्टीफिकट | ६५०) |
| बट्टेखाते डाले ( श्री० सालिग्राम वर्मा को जो किताबें भेजीं ) | ६॥) |
| पुस्तकें शिक्षा विभागको भेजीं | ३-) |
| मुत्फर्रिक | ॥।≡)॥। |
| डाकव्यय | ३) |
| योग | ६८१॥।≡)॥। |
| ३१ जुलाई को रोकड़ बाक़ी | ४१०।-)॥१ |
| महायोग | १०९२।-)॥१ |

# विज्ञान परिषद् प्रयागके पदाधिकारी

## सभापति

रायबहादुर मुं० गोकुलप्रसाद, एम. ए., एल-एल. बी., जज हाईकोर्ट, प्रयाग

## उपसभापति

महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट., प्रिंसिपल संस्कृत कालेज, काशी
माननीय पं० मदनमोहन मालवीय, बी. ए., एल एल. बी., प्रयाग
श्रीमान् एस. एच. फ्रीमेण्टेल, जे. पी., आई-सी. एस., सी. आई. ई., मेरठ
श्रीमती एनी बीसेण्ट, पी. टी. एस., मद्रास
रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ, एम. ए., सी. आई. ई., मेम्बर स्टेट कौंसिल, जयपुर
श्रीमान् देवेन्द्रनाथ पाल, एम. ए., प्रिंसिपल गवर्मेण्ट कालेज, फैज़ाबाद

## प्रधान मंत्री

लाला सीताराम, बी. ए., एफ. ए. यू, प्रयाग
प्रो० शतीश्चन्द्र देव, एम. ए., म्योरकालेज, प्रयाग

## मंत्री

प्रो० सालिग्राम भार्गव एम. एस-सी., म्योरकालेज, प्रयाग
प्रो० चुन्नीलाल साहनी, एम. एस-सी., गवर्मेण्ट कालेज, झांसी

## कोषाध्यक्ष

प्रो० ब्रजराज, एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल., बी. कायस्थ पाठशाला कालेज, प्रयाग

## अन्तरंगी

रायसाहिब, डा० अबोदाप्रसाद सरकार, एम. ए., डी. एस-सी., म्योरकालेज, प्रयाग
प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी., कायस्थ पाठशाला कालेज, प्रयाग
श्री० पुरुषोत्तमदास टण्डन, एम. ए., एल एल. बी., वकील हाईकोर्ट, प्रयाग
प्रो० जगद्बिहारी सेठ, बी. एस-सी. (ऑक्सन), एम. एस-सी., प्रयाग
बाबू श्यामसुन्दरदास, बी. ए., कालीचरण हाईस्कूल, लखनऊ
श्री० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., विशारद गवर्मेंट हाईस्कूल, रायबरेली
प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., काशी
पं० श्रीकृष्ण जोशी, फौरिन मिनिस्टर, नाभा
बाबू शिवप्रसाद गुप्त, रईस, बनारस

सूरजप्रसाद खन्नाके प्रबन्धसे हिन्दीसाहित्य प्रेसमें मुद्रित, तथा विज्ञान परिषद्, प्रयागसे प्रकाशित।

Approved by the Director of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ७८ | Reg No A 708
भाग १३ | कन्या १९७८। सितम्बर १९२१ | संख्या ६
Vol. XIII | No. 6

# विज्ञान

## प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी,



प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

[वार्षिक मूल्य ३) ] [एक प्रतिका मूल्य ।)

## विषय सूची



---

## वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम ए, तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. एम. ... ।)।

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला—प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

१—पशु पक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालग्राम वर्मा, बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैननासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ... ।=)

७—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी. ए., एल-टी. ... ... ... ।)

८—क्षयरोग— ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस. ... -)

९—दियासलाई और फास्फोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

१२—कपास और भारतवर्ष—ले० प्रो० तेजशङ्कर कोचक, बी. ए. ... ... =)

१३—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१४—हमारे शरीरकी कथा—ले० डा० बी. के. मित्र, एल. एम. एस. ... ... -)॥

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १३ { कन्या, संवत् १९७८ । सितम्बर, सन् १९२१ { संख्या ६

## आहारके उपादान

[ ले०—श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ]

आहारसे हमारा शरीर बनता है। अतएव हमारे आहारके उपादान वही पदार्थ हो सकते हैं जिनसे शरीर निर्मित है। जिस आहार (आहार्य्य) में ऐसे पदार्थ न हों वस्तुतः उसे आहार कहना ही अनुचित है। आहारका जो उद्देश्य है, यदि उससे वह पूरा नहीं होता-शारीरिक ह्रासकी पूर्ति, वृद्धि अथवा तापोत्पादनादि कार्यों की सिद्धि नहीं होती—तो फिर उससे लाभ ही क्या ? यों खानेके लिए तो अफ़ीम, तम्बाकू, कोकेनादि भी खाते हैं; किसी किसी को चूल्हेकी मिट्टी, राख, पिंडोल एवं इसी प्रकारके अन्य कितने ही पदार्थ खानेकी आदत भी पड़ जाती है; परन्तु इन पदार्थोंको खाद्य पदार्थोंकी तालिकामें स्थान प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि इस प्रकारके पदार्थोंसे न तो क्षयपूर्ति ही होती है और न शारीरिक वृद्धि इत्यादि ही।

अतएव आहारके उपादानोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए हमें सबसे प्रथम शरीरके रासायनिक संघटन-बनावट-पर विचार करना होगा, क्योंकि उपरोक्त कथनानुसार शरीरके बनानेवाले रासायनिक पदार्थ ही आहारके उपादान हो सकते हैं।

### (क) पाश्चात्य मत

समस्त पदार्थोंको प्रधानतः दो श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है:—(१) मौलिक (Elements); (२) यौगिक (Compounds)।

सोना, लोहा, ताँबा, गन्धक, नत्रजन, कर्बन इत्यादि मौलिक पदार्थ हैं, अर्थात् यह पदार्थ दो वा ततोधिक पदार्थोंके मेलसे नहीं बने; और न इनमेंसे किसी एक पदार्थको लेकर, केवल उसी अकेलेसे, दो वा अधिक सरल पदार्थ बन सकते हैं।

यौगिक पदार्थ—वह हैं कि जो दो वा ततोधिक मौलिक पदार्थोंके संयोगसे बनते हैं; जैसे जल एक यौगिक पदार्थ है, जो उद्जन और ओषजनके संयोगसे बनता है। इसी प्रकार ईंट, पत्थर, लकड़ी, वृक्ष, नमक, मेवे, एवं भांति भांतिके अनाज इत्यादि असंख्य यौगिक पदार्थ हैं।

अद्यावधि संसारमें कुल ८५ मौलिकोंका पता चला है। इनमेंसे हमारे शरीरमें १६ मौलिक पाये जाते हैं। परन्तु इन १६ में से कर्बन, नत्रजन, उज्जन और ओषजन, यह चार पदार्थ ही प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित पदार्थ भी पाये जाते हैं:—

| | |
|---|---|
| ( ५ ) गन्धक | ( ११ ) लीथियम |
| ( ६ ) फासफोरस | ( १२ ) फ्लोरीन |
| ( ७ ) सोडियम | ( १३ ) क्लोरीन |
| ( ८ ) पोटासियम | ( १४ ) अयोडीन |
| ( ९ ) केलसियम | ( १५ ) शिलाकन |
| ( १० ) मग्नीसियम् | ( १६ ) लोह |

शरीरस्थ मौलिक पदार्थोंमें केवल एक ओषजन ही ऐसा पदार्थ है कि जो हमारे शरीरमें मौलिक और यौगिक दोनों रूपोंमें विद्यमान है। शेष सम्पूर्ण पदार्थ यौगिक रूपमें ही पाये जाते हैं।

शारीरिक १६ मौलिक पदार्थोंसे निर्मित जो यौगिक पदार्थ हमारे शरीरमें मिलते हैं उन्हें शरीर-तत्वज्ञ विद्वानोंने ५ प्रधान श्रेणियोंमें विभक्त किया है।

( १ ) आमिष ( मांस ) जातीय पदार्थ (Proteids or nitrogeneous प्रोटीड्स यानत्रजनीय)

( २ ) स्नेह या वसा जातीय पदार्थ (Fat फैट)

( ३ ) कर्बोज अर्थात् श्वेतसार जातीय पदार्थ (Carbohydrates)

( ४ ) लवण † ( Salts )

( ५ ) जल

अतएव हमारे आहारके उपादान भी यही पाँच प्रकारके पदार्थ हो सकते हैं।

( १ ) प्रोटीड अथवा मांस जातीय पदार्थ—इनमें नत्रजनकी प्रधानता होती है। इस प्रकारके पदार्थोंसे प्रधानतः क्षयप्राप्त मांसकी पूर्ति, वृद्धि और पुष्टि होती है। इसी लिए इस प्रकारके पदार्थोंको मांसोत्पादक (Flesh-former) आहार कहते हैं।

प्रोटीड शरीरके प्रत्येक कणका प्रधान उपादान है, अतएव शारीरिक ह्रासकी पूर्ति और शारीरिक वृद्धि और पुष्टिके लिए प्रोटीड अत्यन्त आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त शरीरस्थ नाना प्रकारके रस भी प्रोटीड्सकी सहायतासे ही उत्पन्न होते हैं।

जिनके भोजनमें प्रोटीड्सकी न्यूनता होती है वह सदैव कृश और निर्बल रहते हैं। उनकी मांस पेशियां निर्बल लिचपिची और पतली होती हैं।

शारीरिक परिश्रम करनेवालोंकी अपेक्षा वकील, बैरिस्टर, लेखक, अध्यापक, विद्यार्थी, सम्पादक इत्यादि मानसिक कार्य करनेवालोंके लिए इस प्रकारके पदार्थोंकी विशेष आवश्यकता होती है। युवाओंकी अपेक्षा शिशुओंके भोजनमें भी मांस जातीय पदार्थ अधिक आवश्यक हैं, क्योंकि यह समय शरीरका वर्द्धन-काल होता है और शारीरिक वृद्धिके लिए आहारका मांस जातीय उपादान ही विशेष प्रयोजनीय है।

प्रोटीड स्थावर और जंगम दोनोंमें ही पाये जाते हैं। पाशव पदार्थोंमेंसे मांस, मछली, अण्डे इत्यादिमें प्रोटीड् अधिक मात्रामें पाये जाते हैं। मांसादिमें प्रोटीडका आधिक्य होनेपर भी इनमें लवण और स्नेह जातीय पदार्थ न्यूनाधिक परिमाणमें पाये ही जाते हैं, परन्तु इनमें शर्करा जातीय पदार्थ प्रायः नहीं होते। वानस्पतिक पदार्थोंमें सूखे मेवे और दालों इत्यादिमें प्रोटीड पदार्थोंका आधिक्य होता है। कुछ दालोंमें तो प्रोटीडांश मांसादिसे भी अधिक होता है, जैसे मसूरकी दालमें। यद्यपि प्रोटीडसे न्यूनाधिक ताप भी प्राप्त होता है तथापि उनका मुख्य कार्य क्षयपूर्ति और शारीरिक वृद्धि करना ही है। जिस प्रकार शारीरिक धातुओं ( मांसादि ) के निर्माणके लिए मांसोत्पादक आहारकी आवश्यकता है उसी प्रकार शारीरिक ताप और शक्ति उत्पन्न करनेके लिए—

† लवण उन पदार्थोंको कहते हैं जो क्षार अथवा धातुओं और अम्लों ( तेज़ाबों ) के संयोगसे बनते हैं।

(२) वसा जातीय और (३) कर्बोजों की भी आवश्यकता है। इन दोनों प्रकारके पदार्थोंमें नत्रजनका अभाव एवं कर्बन, उज्जन तथा ओषजनका आधिक्य होता है। इन पदार्थोंका प्रधान कार्य ताप और शक्ति उत्पन्न करना है। अनपढ़ ग्रामीण मनुष्य भी शक्ति प्राप्त करनेके लिए शर्करा जातीय पदार्थोंको ही अधिक उपयोगी समझते हैं। मज़दूर और किसानादि थक जानेपर शरबत पीकर पुनः स्फूर्ति प्राप्त कर लेते हैं। जब बैल कड़ी मञ्ज़िल करके आते हैं तो थकान दूर करनेके लिए उन्हें घास, भूसा इत्यादि चारा अधिक परिमाणमें न देकर घृत, तैलादि स्नैहिक पदार्थ एवं गुड़ आटा इत्यादि कर्बोजमय पदार्थ ही दिये जाते हैं। अतएव बलोत्पत्तिके लिए प्रोटीडमय पदार्थ जैसे मांस, अंडे इत्यादिको अधिक उपयुक्त समझनेवाले पढ़े लिखे लोगोंको अपने इन अनपढ़ भाइयोंसे इस विषयका सत्य ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

रेलके इञ्जिनमें जो कार्य कोयलेसे सिद्ध होता है वही हमारे शरीरमें स्नेह और कर्बोज पदार्थोंसे पूर्ण होता है; एवं उसमें लोहे पीतल आदि धातुओंकी जैसी आवश्यकता है वैसी ही हमारे शरीरको मांसोत्पादक पदार्थोंकी है। अन्तर केवल इतना ही है कि इञ्जिनके एक बार बनकर तैय्यार हो जानेके बाद रोज़ रोज़ उसकी मरम्मतके लिए लोहा पीतल आदिकी आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु शरीरके टूटे फूटे सेलोंकी मरम्मत, क्षयपूर्ति, पुष्टि और वृद्धिके लिए मांसोत्पादक उपादानकी आवश्यकता प्रति दिन ही बनी रहती है।

मानसिक परिश्रम करनेवालोंकी अपेक्षा शारीरिक परिश्रम करनेवालों (यथा मज़दूरों, सिपाहियों, किसानों और लुहारों) के लिए उक्त दोनों प्रकार (स्नेह और श्वेतसार तथा शर्करा जातीय) पदार्थोंकी विशेष आवश्यकता होती है। शीतकाल एवं शीत प्रधान देशोंमें भी शारीरिक ताप स्थिर रखनेके लिए यह पदार्थ अधिक प्रयोजनीय होते हैं।

यह दोनों प्रकारके पदार्थ परस्पर एक दूसरेके कार्यकी पूर्ति कर सकते हैं। अर्थात् यदि भोजनमें स्नैहिक पदार्थ न्यून हों और उनके स्थानमें श्वेतसार तथा शर्करा जातीय पदार्थोंका भाग अधिक हो तो बिना किसी प्रकारकी हानिके हमारा काम चल सकता है। इसी प्रकार श्वेतसार और शर्करा जातीय पदार्थोंकी न्यूनता स्नैहिक पदार्थोंकी अधिकतासे पूर्ण हो सकती है। परन्तु श्वेत सार और शर्करा जातीय पदार्थोंकी अपेक्षा स्नैहिक पदार्थोंसे कहीं अधिक ताप और बल उत्पन्न होता है। १ माशा स्नैहिक पदार्थ जितनी शक्ति या जितना ताप उत्पन्न कर सकते हैं उतनी ही शक्ति या उतना ही ताप उत्पन्न करनेके लिए २·३ माशा श्वेतसार एवं शर्करा जातीय पदार्थोंकी आवश्यकता होती है। अतएव ताप या शक्तिका एक नियत परिमाण प्राप्त करनेके लिए स्नैहिक पदार्थोंकी अपेक्षा २१/३ गुने श्वेतसार एवं शर्करा जातीय पदार्थ चाहियें। अतएव मानसिक परिश्रम करनेवालोंको अधिक मात्रामें शर्करा जातीय पदार्थोंका उपयोग करके आमाशय पर अधिक भार न पड़ने देना चाहिये। प्रत्युत उनके लिए स्नैहिक पदार्थ ही अधिक उपयोगी हो सकते हैं। हाँ निर्धन मनुष्य अपना कार्य श्वेतसार और शर्करा जातीय पदार्थों से चला सकते हैं।

पिछले पृष्ठोंमें जिस दहन क्रियाका वर्णन किया गया है उसमें प्रधानतः उक्त दोनों प्रकारके पदार्थ ही सहायता देते हैं। यही पदार्थ शरीरके भीतर ओषजनसे मिलकर मन्द गतिसे जलने लगते हैं। यद्यपि मांसोत्पादक उपादान भी आभ्यान्तरिक दहन क्रियामें सहायक होता है, परन्तु उसकी सहायता अत्यल्प परिमाणमें होती है। उपरोक्त पदार्थोंके अतिरिक्त मानवी आहारमें (४) लवण जातीय उपादानका होना भी आवश्यक है। लवण जातीय उपादानसे अस्थियाँ पुष्ट होती हैं। एवं पचन-क्रियामें सहायता मिलती है। इसके अति-

रिक्त रक्त आदि धातुओंके निर्माणके लिए भी लवणोंकी आवश्यकता होती है।

अनेक प्रकारके अन्न, हरे शाक, फल एवं आहार के अन्य सभी पदार्थोंमें प्रायः न्यूनाधिक मात्रामें साधारण लवण अर्थात् नमक रहता है। अतएव कुछ खाद्योंमें प्रत्यक्षरूपसे नमक न मिलाया जाय तब भी कोई हानि नहीं हो सकती। परन्तु समस्त पदार्थोंमें नमक पर्याप्त मात्रामें नहीं होता, इसी-लिए आहारकी विभिन्नताके अनुसार न्यूनाधिक मात्रामें नमक उपयोगमें लाया जाता है।

मानवी-देहके लिए साधारण ( खनिज ) लवण अर्थात् नमकके अतिरिक्त अन्य लवणों-की भी आवश्यकता होती है, जो हरे शाकों और फलोंके सेवनसे प्राप्त हो सकते हैं। फलोंमें जो अम्ल और लवण रहते हैं वह मनुष्यके लिए बहुत लाभदायक होते हैं; विशेषतः बच्चोंको फल न मिलें तो उन्हें स्कर्वी रोग हो जाता है या टांगें टेढ़ी हो जाती हैं। मस्तिष्कसे काम लेनेवालोंको गेहूंका फा-स्फोरस और सेवोंके लवण बड़े लाभदायक होते हैं।

५ जल—शरीरमें रक्त परिभ्रमणके लिए जलकी भी आवश्यकता होती है। हमारे शरीरमें १०० भागमें लगभग ६४ भाग जलके ही होते हैं; यह जल रक्तको तरलावस्थामें रखता है, एवं शरीरके भीतर प्रति दिन नाना प्रकारके जो दूषित पदार्थ उत्पन्न होते हैं वह जलके साथ मिलकर मूत्र और पसीने आदि-के रूपमें सुगमता पूर्वक शरीरसे बाहर निकल जाते हैं। मूत्र एवं पसीने आदिके रूपमें जो बहुत सा जल निकल जाता है उसकी न्यूनताका अनुभव होना ही प्यास प्रतीत होना है। एवं जलपान करनेसे वह कमी पूरी हो जाती है; तब प्यास भी शान्त हो जाती है। जो साधारण जल हम पीते हैं उसके अतिरिक्त हरे शाकों, फलों एवं अनाजोंमें भी बहुत सा जलीय अंश होता है जो उक्त कमीकी पूर्तिमें सहायता करता है।

उपरोक्त विवेचनसे प्रकट है कि हमें स्वास्थ्य-रक्षाके लिए प्रोटीड, कर्बोज, स्नेह, लवण और जल–इन पांचों प्रकारके पदार्थोंको यथोचित परि-माणमें प्राप्त करनेके उद्देश्यसे नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंको सेवन करते रहनेकी आवश्यकता है। क्योंकि केवल दूधके अतिरिक्त कोई भी ऐसा खाद्य पदार्थ नहीं है कि जिस एक ही पदार्थमें आहारके समस्त उपादान यथोचित परिमाणमें पाये जाते हों। हाँ; दूधमें यह समस्त उपादान पाये जाते हैं; परन्तु उनका अनुपात इस प्रकार होता है कि जो केवल बच्चोंके लिए ही उपयोगी हो सकता है। शिशुओंके लिए जिन उपादानोंकी अधिक आवश्यकता होती है वह दूधमें अधिक परिमाणमें विद्यमान रहते हैं, एवं जिनकी कम परिमाणमें आवश्यकता होती है वह कम पाये जाते हैं। यही कारण है कि शिशु केवल दूधपर ही जीवन धारण कर सकते हैं; परन्तु युवा मनुष्योंका केवल दूध पीकर अधिक समय तक जीवित रहना कठिन है। †

(ख) प्राच्यमत

प्राच्य-भारतीय शरीर-शास्त्र-विज्ञोंके मतानुसार हमारा शरीर पञ्च महाभूतों ( आकाश[१], वायु[२], जल[३], अग्नि[४], पृथ्वी[५] ) से निर्मित है; एवं संसारके अन्य समस्त पदार्थ भी इन्हीं पञ्च महाभूतोंके संयोग-से निर्मित हैं। परन्तु समस्त पदार्थोंमें महाभूतों-का परिमाण समान नहीं होता। किसी पदार्थमें किन्हीं महाभूतोंका आधिक्य होता है और किसीमें अन्य किन्हींका। जैसे यदि एक पदार्थमें जलका आधिक्य है तो दूसरेमें अग्निका; इत्यादि। इसी प्रकार संसारके समस्त पदार्थोंमें पञ्च महाभूतोंकी न्यूनाधिकता पाई जाती है।

† बालकोंकी पाचनशक्ति कोमल होती है, इसी कारण उन्हें बड़े पतले खाद्यकी आवश्यकता होती है। युवा मनुष्यका काम इतने पतले पदार्थसे नहीं चल सकता, अतएव छैना, रबड़ी, खोआ बनाकर दूधका उपयोग कर सकते हैं।—सं०

महाभूतोंकी न्यूनाधिकताके कारण ही भिन्न भिन्न पदार्थोंमें स्वादकी विभिन्नता पाई जाती है। किसी पदार्थका स्वाद मीठा होता है, किसीका खट्टा, किसीका चरपरा, इत्यादि।

समस्त पदार्थोंमें जो स्वाद पाये जाते हैं प्राचीन आचार्योंने उन्हें प्रधानतः छः प्रकारका माना है। (१) मधुर (मीठा), (२) अम्ल (खट्टा), (३) लवण (नमकीन), (४) कटु (कड़वा), (५) तिक्त (चरपरा), (६) कषाय (कसैला)।

आयुर्वेद शास्त्रमें यह छः प्रकारके स्वाद "षट-रस" के नामसे विख्यात हैं। इनमेंसे—

१ मधुर रसमें पृथ्वी और जलका,
२ अम्ल " अग्निका,
३ लवण " जल और अग्निका
४ कटु " वायु और आकाशका
५ तिक्त " वायु और अग्निका
६ कषाय " वायु और पृथ्वीका आधिक्य होता है।

शारीरिक पञ्च महाभूतोंकी स्थिति ठीक रखने (स्वास्थ्य रक्षा) के लिए हमें षट-रस-युक्त पदार्थ सेवन करते रहनेकी आवश्यकता है। यदि छहों रसोंका सेवन न करके केवल १ वा २,३ रसोंका ही अधिक सेवन किया जाय तो शरीरमें उन महाभूतोंका, कि जो उस या उन रसोंमें अधिकतासे रहते हैं, आधिक्य होकर अन्योंकी न्यूनता हो जायगी, एवं ऐसी दशामें स्वास्थ्य कदापि स्थिर नहीं रह सकता। हां यह आवश्यक है कि ऋतु-भेदके कारण प्रकृतिमें जो साधारण परिवर्तन होते रहते हैं उनके अनुसार आहारमें भी फेरफार होता रहे। अर्थात् जिस ऋतुमें जो महातत्व स्वभावतः ही शरीरमें वृद्धिलाभ करते हैं उस ऋतुमें उन महातत्वोंके आधिक्यवाले रसोंका सेवन अल्प मात्रामें करना चाहिये। एवं अन्य रसोंका अधिक। महर्षि वाग्भट कहते हैं—

नित्यं सर्वं रसाभ्यासः स्व स्वाधिक्यमृतावृतौ।
वाग्भट

इसके अतिरिक्त, जो समस्त मनुष्योंके शरीरोंमें पञ्च महाभूतोंका परिमाण समान नहीं होता और इसी विषमताके कारण मनुष्योंकी भिन्न भिन्न प्रकृतियां (स्वभाव, मिज़ाज) दृष्टिगोचर होती हैं। इसलिए भोजन करनेमें प्रकृतिका भी विचार कर लेना आवश्यक है। प्रधानतः तीन प्रकारकी प्रकृतियां मानी गई हैं, (१) वात-प्रधान, (२) पित्त प्रधान, (३) कफ प्रधान। जिस प्रकारकी प्रकृतिवाले मनुष्योंमें जिन महाभूतोंका आधिक्य होता है उन्हें उन महाभूतोंको बढ़ानेवाले रसोंका सेवन अल्प मात्रामें एवं अन्योंका अधिक परिमाणमें करना उचित है। ऋतु और प्रकृति-भेदके अनुसार आहार-व्यवस्थाका वर्णन किसी आगामी प्रकरणमें किया जायगा। यहां केवल इन छहों रसोंकी प्रयोजनीयता और इनके गुणोंपर विचार किया जाना ही उचित प्रतीत होता है।

१ मधुर रस—यह रस प्रायः सभी प्रकारकी प्रकृतिवाले मनुष्योंके लिए हितकर होता है। परन्तु पित्त-प्रधान-प्रकृतिवाले मनुष्योंके लिए विशेष हितकर होता है। कार्यकारिणी शक्ति मुख्यतः मधुररसयुक्त पदार्थोंसे ही उत्पन्न होती है; अतएव आयुर्वेद शास्त्रने अन्य समस्त रसोंकी अपेक्षा इसके अधिक सेवनका परामर्श दिया है। यथा—

आजन्म सात्म्यात् कुरुते धातूनां प्रबलं बलम्।
बाल वृद्ध क्षत क्षीण केशेन्द्रियौज साम॥
प्रशस्तो, बृंहणः, कंठ्यः, स्तन्य, सन्धान कृद्गुरुः।
(चरक)

अर्थात्—मधुर रस सदैव सात्म्य (हितकर), बलवर्द्धक एवं बालवृद्ध, ज़खमी और क्षीण पुरुषोंके लिए विशेष हितकर है। केश, समस्त इन्द्रियों, ओज * और कण्ठके लिए लाभदायक है। स्तनोंमें

* ओज—शुक्रके सारांशका नाम ओज है; बल, पुष्टि, धृति, मेधा, सामर्थ्यादि अन्ततः जीवन भी ओजके ही आश्रित है; ओजके नाशसे मृत्यु और उसकी वृद्धिसे समस्त शक्तियोंकी वृद्धि होती है।

दुग्ध वृद्धि करता है एवं सन्धान कारक (टूटी हुई अस्थि आदिको जोड़नेवाला घावको भरने वाला) हैं, परन्तु पचनेमें भारी होता है।

मधुर रसके अत्यधिक सेवनसे—खांसी, श्वास, वमन, कंठरोग रक्त-विकार, मधु मेह (ज़िया वेतस, Diabetes डायाबेटीज़) * उदरकृमि इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं।

२ अम्ल रस—पाचक, अग्निवर्द्धक, रुचिकारक, उष्ण, कफ़ नाशक एवं लघु-शीघ्र पचनेवाला है।

अम्ल रसके अधिक सेवनसे—दन्त रोग, नेत्र रोग, कण्ठ तथा छातीमें दाह, रक्तपित्त (नाक, कान आंख, मुख, मेढ़्-लिङ्ग आदिसे बिना किसी आघात इत्यादिके रक्त बहना) एवं शरीरमें शिथिलता उत्पन्न होती है। अम्ल रसमें आग्नेय गुण अधिक होता है, अतएव यह वीर्यको तरल और नेत्र ज्योतिका ह्रास करता है; एवं उत्तेजक है।

३ लवण रस—पाचक, मल शोधक और उष्ण होता है। अस्थियोंको पुष्ट एवं शिराओं-रक्तकी नालियों—के खिंचाव, तनाव तथा स्रोतोंके अवरोध (बन्द होना) को दूर करता है और स्वेद उत्पन्न करता है। लवण रसके अधिक सेवनसे—खुजली, कोढ़, तृषा, दौर्बल्य, नेत्र ज्योतिका ह्रास एवं सन्धियोंमें शिथिलता उत्पन्न होती है। यह विशेषतः पुंस्त्व-शक्ति नाशक है—नपुंसकता उत्पन्न करता है। कहा गया है—"क्षारःपुंस्त्वोपघातिनाम्" अर्थात् पुंस्त्व-नाशक पदार्थोंमें क्षार सबसे प्रधान है।

४ कटुरस—विष, कृमि, पित्त, तृषा, मूर्छा, कुष्ठ, ज्वर, मतली (जी मिचलाना-वमनेच्छा) दाह एवं रक्त विकार नाशक है। क्लेद (रतूबत) और मल-मूत्रका सुखानेवाला है। कटु रसके अधिक सेवनसे वातव्याधि (अनेक प्रकारके वायु रोग) धातु-क्षय, नसोंमें तनाव एवं अरुचि उत्पन्न होती है।

५ तिक्तरस—अग्नि दीपक, पाचक, मल-मूत्र शोधक, कफनाशक एवं उष्ण और रूक्ष (गरम, खुश्क) है। सन्धि बन्धनोंका ढीलापन, उत्साह-नाश, शुक्र-क्षय, धातुतारल्य, तृषावृद्धि, एवं शिराओंमें संकोच उत्पन्न करता है। अधिक सेवनसे कृशता, दाह, निर्बलता, मूर्छा, नेत्र ज्योतिका ह्रास, कम्पन एवं पीठ, कमर इत्यादिमें दर्द उत्पन्न करता है।

६ कषाय रस—कफ-पित्त-नाशक, मलावरोधक (काबिज़), क्लेद-शोषक (रतूबतको खुश्क करने वाला) एवं वसाका सुखानेवाला है। इसका स्वभाव रूक्ष है। अधिक सेवनसे हृदयमें पीड़ा, अङ्गोंमें संकोच (तनाव) अफ़ारा एवं कम्पन इत्यादि उत्पन्न करता है।

हमारे प्रत्येक खाद्य पदार्थमें उपरोक्त छहों रसोंमेंसे एक वा ततोधिक रस अवश्य ही होते हैं। एवं अधिकांश पदार्थोंके गुण उन पदार्थोंके रसके अनुकूल ही होते हैं। परन्तु कहीं कहीं इसके विपरीत भी दृष्टिगोचर होता है और अनेक पदार्थ इस नियमके बाहर हैं, क्योंकि दो वा ततोधिक रसोंके पारस्परिक मेलसे उनकी न्यूनाधिक मात्राके अनुसार प्राकृतिक रीतिसे उनमें रासायनिक परिवर्तन होनेके कारण गुणोंमें भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे—

१-प्रायः समस्त मधुर पदार्थ कफ़कारक होते हैं, परन्तु पुराने चावल, जौ, गेहूं, मधु और चीनी इस नियमके बाहर हैं।

२-अम्ल पदार्थ प्रायः पित्तवर्द्धक होते हैं परन्तु आमले और अनार पित्तवृद्धि नहीं करते।

*—यह एक प्रकारका भयंकर रोग है, जिसमें पुनःपुनः मूत्र आता है, एवं मूत्रके साथ चीनीके समान श्वेत पदार्थ भी निकला करता है। मूत्र करनेके स्थानपर मिठासके कारण चेंटिया एकत्रित हो जाती हैं। रोगीकी क्षुधा बढ़ जाती है तथापि वह अत्यन्त शीघ्र दुबला, क्षीण और निर्बल होकर परलोक-यात्राके लिए प्रस्तुत हो जाता है।

३–समस्त लवण रस-युक्त पदार्थ नेत्रोंके लिए हानिकारक होते हैं, परन्तु सैन्धव नहीं है।

४–समस्त कटु पदार्थ शुक्र नाशक हैं, परन्तु गिलोय और परवल वीर्यवर्द्धक हैं।

५–प्रायः तिक्त पदार्थ वायुकारक होते हैं परन्तु सोंठ, पीपल एवं लहसुन (रसौन) तिक्त होते हुए भी वायुनाशक हैं।

६–समस्त कषाय-रसयुक्त पदार्थ शीतल एवं स्तम्भक होते हैं परन्तु हरीतकी इसके विपरीत कषाय होनेपर भी उष्ण एवं रेचक है। इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

उपरोक्त विवेचनसे प्रकट है कि स्वास्थ्य रक्षाके लिए साधारणतः मधुर रस सेवनकी सबसे अधिक आवश्यकता है। अम्ल और लवण रसकी उससे न्यून एवं कटु, तिक्त और कषाय रसकी अत्यल्प आवश्यकता है। परन्तु पदार्थोंके गुण रसाश्रित होते हुए भी प्रत्येक पदार्थमें कुछ अपना विशेष प्रभाव (असर बिलख़ासा) होता है और इस प्रकार समस्त पदार्थ तीन श्रेणियोंमें विभक्त होजाते हैं—

> किञ्चिद्दोष प्रशमनं किञ्चिद्धातु प्रदूषणम्।
> स्वस्थ वृत्तौ मतं किञ्चित् त्रिविधं द्रव्य मुच्यते॥
> (चरक)

कुछ पदार्थ दोषोंको शमन करते हैं; कुछ रक्तादि धातुओंको दूषित करते हैं, एवं कुछ पदार्थ स्वास्थ्यके लिए अनुकूल होते हैं। अतएव हमें स्वस्थ अवस्थामें उन्हीं पदार्थोंका सेवन करना चाहिये जो स्वास्थ्यके लिए अनुकूल हों। इस विषयका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए आयुर्वेद शास्त्रान्तर्गत निघन्टुका अध्ययन करना चाहिये। इस पुस्तकके अन्तमें भी एक छोटा सा निघन्टु दिया गया है, उससे भी बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है।

---

# प्रीस्टली

ओषजनके आविष्कर्ता प्रीस्टली महोदयका जन्म सं० १७९० वि० में लीड्स नगरसे छः मीलपर स्थित फील्डहैड नामक स्थानपर हुआ था। उनके पिता ऊनी कपड़े बनाते और साफ किया करते थे। जब प्रीस्टली छः वर्षके थे तभी इनकी माताका देहान्त हो गया। बाप तो विचारे निर्धन थे ही, उन्हें अपनी ही गुज़र करनेमें कठिनाई होती थी, फिर वे मा के बच्चोंका प्रबन्ध वह कैसे करते। इसलिए उन्होंने अपनी बहिन (प्रीस्टली की भुआ) के कहनेपर बालकका भरण पोषणका काम उन्हींके सिपुर्द कर दिया।

वह एक स्कूलमें जो पासमें ही था जाने और पढ़ने लगे। कुछ दिन वहाँ रह कर सं० १८०६ वि० में वह डेवेन्ट्रीकी "एकेडेमी" में जा भरती हुए और वहाँ पादरीका काम सीखने लगे। वहाँ ही यंत्रशास्त्र, दर्शनशास्त्र, तथा चेलडी, सिरिएक, अर्बी, जर्मन और फ्रान्सीसी भाषाओंका ज्ञान प्राप्त किया। "एकेडेमी" छोड़नेके बाद वह सफोल्क प्रान्तान्तर्गत नीढममें जा बसे। वहाँ एक "मीटिंग हौस" (meeting house) में वह सहायकका काम करते थे और उनकी आमदनी प्रायः ४०) मासिक थी।

प्रीस्टलीके विचार बड़े उदार और विस्तृत थे, इसी कारण वहाँ श्रोताओंको उनकी बातें अच्छी नहीं लगती थीं। अतएव कई वर्ष वहाँ रहकर वह चेशायरमें नेन्टविच स्थानको चले गये और वहाँ उपदेश देना और बच्चोंको पढ़ाना आरम्भ कर दिया। यहाँपर उनकी आमदनी बढ़ गयी, परन्तु तब भी बहुत तुच्छ थी। थोड़ा थोड़ा बचाकर उन्होंने कुछ पुस्तकें, एक छोटा सा वायु-पम्प और विद्युत्-यंत्र खरीद कर लिया। इसके बाद वह १८१८ वि० में वारिंगटन चले गये और वहाँ भी पढ़ना लिखना जारी रखा।

लिवरपूलवासी डा० टर्नरके व्याख्यानोंको सुनकर प्रीस्टलीने रसायन शास्त्रका अध्ययन आरम्भ किया। यहीं उन्होंने "बिजलीका इतिहास" लिखा जिससे उनका नाम होने लगा और एडिनबराके विश्वविद्यालयने उन्हें एल-एल. डी. की उपाधि दे दी। तभीसे यह डाक्टर नामसे प्रख्यात हो गये। वारिंगटनमें ही रेक्सहम ( Wrexham ) के रहनेवाले श्री० विल्किनसनकी लड़कीसे उन्होंने विवाह कर लिया। लीड्सके मिल. हिल. चेपलके पादरीके पद पर वह यहाँ ही से नियुक्त हो कर गये। जब वह वहाँ पहुँचे तो पादरीके रहनेका मकान तय्यार नहीं हुआ था। अतएव उन्हें मेडो रोडमें एक मकान लेकर रहना पड़ा। इस मकानके पास ही जेक्स और नेल फर्मकी हौली थी। हौलीमें शराब बननेमें जो गैसें निकलती थी, उन्हींको देखकर प्रीस्टली महोदयको पहले पहल गैसोंकी जांच करनेका खयाल पैदा हुआ। गैस सम्बन्धी आविष्कारोंसे ही प्रीस्टलीका नाम अमर हो गया!

लीड्समें ही "रंग और प्रकाश विषयक गवेषणाओं" का इतिहास उन्होंने प्रकाशित कराया। वहां वह छः वर्ष तक रहे, तदनन्तर वह शेलबर्नके अर्लके पुस्तकाध्यक्ष हो गये और उनके साथ यूरोपमें भ्रमणार्थ गये। लार्ड शेल्बर्नके यहां ही रहते हुए उन्होंने "वायुसम्बन्धी आविष्कार" नामक ग्रन्थके तीन भाग प्रकाशित किये और चौथे भागके लिए प्रयोग कर करके सामग्री जुटाते रहे। यह चौथा भाग उन्होंने बिरमिंघाममें जाकर छपवाया था। बिरमिंघाममें अर्लशेलबोर्नके यहांसे पेंशिन लेकर यह गये थे। वहां रहकर धार्मिक विवाद और रासायनिक गवेषणामें समय व्यतीत करते थे। उन्होंने "वायुपर प्रयोग" सम्बन्धी तीन भाग और छपवाये और रायल सोसायटीके "फिलोसोफिकेल ट्रांज़ेकशंस" में बहुत से मौलिक लेख छपवाये। रायल सोसायटीके यह सभ्य भी हो गये थे।

१८४७ वि० में बदकिस्मतीसे प्रीस्टलीने बर्कके "फ्रांसीसी राज-विप्लव" नामक ग्रन्थकी कड़ी आलोचना की। इससे लोकमत उनके विरुद्ध हो गया। फिर तो स्थानीय पादरीकी ख़ूब बन आयी। प्रीस्टली उनके राजनीतिक विचारोंकी प्रायः आलोचना किया करते थे, इसीलिए उन्होंने इस अवसरको ग़नीमत जाना और प्रीस्टलीके पीछे हाथ धोकर पड़ गये। एक वर्ष बाद ही बिरमिंघाममें दङ्गा हो गया, उस समय प्रीस्टलीको भेस बदलकर लन्दनको भाग जाना पड़ा। लन्दनमें कुछ दिन रहकर वह अमेरिका चले गये।

रायल सोसायटीके अन्य सदस्योंने इनसे बोलना तक बन्द कर दिया था, क्योंकि उनके विचार इनके विचारोंसे बहुत भिन्न थे। इन्होंने भी वहांकी मेम्बरी छोड़ दी। उधर फ्रांसीसी गवर्मैंटने इनकी क़दर की और इन्हें "रिपबलिकका सिटीज़न" और "लेजिसलेटिव एसेम्बली" का मेम्बर बना लिया। अमेरिकामें पहुंचकर यह फिलेडेल्फियामें बस गये और वहीं १८६१ वि० में इनका देहान्त हो गया।

—गंगाप्रसाद, बी. एस-सी.

---

## निवेदन

विज्ञ पाठक, आपने इस पत्रको देखा और पढ़ा है। आशा है कि आपने इसे मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद पाया है; आप इसकी ग्राहक संख्या बढ़ा इसका प्रचार करनेमें सहायक होनेकी कृपा अवश्य करेंगे और देशकी उन्नतिमें योग देंगे।

—मैनेजर

# गन्नेका असली देश

यह तो ठीक ठीक नहीं मालूम है कि इस पौधेकी जन्मभूमि कहां है और पहले पहल इसकी काश्त कहाँपर हुई थी, परन्तु जहां तक इतिहास और साहित्य साक्षी देता है यही ज्ञात होता है कि गन्नेका जन्म हमारी प्यारी मातृभूमि-भारतमें ही हुआ और यहीं उसकी काश्त भी शुरू हुई। इस बातके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं।

चीनवाले विक्रमसे ३०० वर्ष पहले तक ईख-से परिचित न थे। ब्रेस्कनीडर ( Bretschnieder ) महोदयने लिखा है कि गन्नेका उल्लेख चीनियोंके प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं पाया जाता। गन्नेकी कुछ चर्चा केवल उन्हीं ग्रन्थोंमें मिलती है जो सं० २५७ विक्रमसे पूर्वसे इधरके हैं। पेन्टसाओ ( Pent Sao ) के अनुसार ६८४ विक्रमीमें एक आदमी चीनसे आया और विहारमें रहकर शकर बनाना सीख गया। भारतवर्षके प्राचीन ग्रन्थोंमें गन्नेका कई जगह वर्णन है। संस्कृतमें गन्नेके आठ भेद गिनाये गये हैं :—

इक्षुः कर्कटो वंशः कान्तारो वेणुनिस्तृतिः।
इक्षुरस्यः पौण्ड्रकश्च रसालः कुसुमारकः॥

भारतवर्षसे सिकन्दर आज़म गन्नेको एशिया माइनर ले गया। धर्म युद्धोंके समयमें गन्ना सीरियामें उगता था; जब सेना वहांसे लौटी तो वेनिसवालोंको गन्नेका कुछ हाल मालूम हुआ। स्पेनवालोंने सं० १५२७ में पहले पहल इस पौधेको कैनेरी द्वीपसमूहमें ( Canary island ) पहुँचाया। डच लोगोंने इसे ब्राज़िल देशमें पहुँचाया। जब डच वहांसे निकाले गये तो वह इसे भी वेस्ट इण्डियन द्वीपमें ले गये। इङ्गलेण्ड आदि देशोंमें सत्रहवीं शताब्दीमें गन्नेकी काश्त शुरू हुई।

इङ्गलेण्ड, स्काटलेण्ड और यूरोपके बरबरोंको यह स्वर्गीय पदार्थ, खांड, मुसलमानोंकी बदौलत मुद्दतों मिलता रहा। यह बहुमूल्य पदार्थ समझा जाता था। घरकी बड़ी बूढ़ी स्त्रियां शकर अमृतबानोंमें बन्द करके रखा करती थीं और त्योहारोंपर बच्चोंको थोड़ी थोड़ी दे दिया करती थीं। १३८६ वि० में स्काटलेण्डमें एक छटांक चान्दीकी एक सेर शकर मिलती थी। १८३७-१८५७ वि०में शकरका भाव ६ पेंस प्रति पौण्ड हो गया। वेस्ट इण्डियन द्वीप समूहके गन्नेके खेतोंपर मुग्ध होकर अंग्रेज़ोंने खूनकी नदी बहा दीं और नेपोलियनसे उन्हें छीन लिया। परन्तु वहाँकी शकर भारतसे जानेवाली शकरके सामने ठहर नहीं सकती थी। अतएव उदारहृदय अंग्रेज़ोंने उसकी क़द्र की और ऐलान कर दिया कि जो पवित्र भारतीय चीनीको लेगा वह ३७ पौण्ड प्रति हंड्रेडवेट ( ३२०) मन अथवा ७) सेर ) चढ़ावा ( कर ) देगा।

परन्तु ईश्वरके घरमें न्याय होता है। सम्वत् १८१४ वि०में प्रोफेसर मारग्रेफ ( Marcgraf ) ने बीटरूट ( चुकन्दर ) से चीनी निकाली। नेपोलियनने फौरन चुकन्दरकी काश्त और उससे चीनी बनानेवालोंकी सहायता करनी शुरू कर दी, क्योंकि वह जानता था कि इङ्गलेण्डको शकर मिलना मुश्किल होगा। थोड़े ही दिनोंमें चुकन्दरकी चीनीने बाजार अपने अधिकारमें ले लिया। जो लाभ इङ्गलेण्डको वर्षों तक, प्रचुर धन लुटा कर और आदमी कटाकर हुआ, वही लाभ फ्रांसको नेपोलियनके एक छोटेसे कामसे हो गया।*

---

* ईलियट कृत Romance of plant life pp. 279; Dictionary of Economic Products of India, 'Muller's Select Extra tropical plants में देखिये।

# राक्षस जातिका इतिहास

( गताङ्कसे सम्मिलित )

## घमासान युद्ध

राक्षसोंने अपने अस्त्र नारायणपर बरसाने शुरू कर दिये। रथियोंने रथोंसे, गजारोहियोंने गजोंसे, घुड़सवारोंने घोड़ोंसे, पैदलों और आकाशमें गमन करनेवाले राक्षसोंने अपने बाणों, शक्तियों, तोमरोंसे नारायणको श्वास लेने तकका अवसर न दिया। नारायणने शार्ङ्ग धनुषसे बाण छोड़ने प्रारम्भ किये और राक्षसोंको भगाकर पाञ्चजन्य शंखका नाद ऊंचा किया। राक्षसोंका बल भागकर लङ्कामें शरणके लिए जा छिपा। इस प्रकार नारायणके बाणोंसे राक्षस सैन्यको तित्तर वित्तर देखकर सुमालीने विष्णुको पीछे हटाया। विष्णुपर बाणोंकी बौछार कर दी, राक्षसोंके चित्तमें धैर्य जग गया। सुमाली सिंहनाद करने लगा कि विष्णुने उसके सारथीका सिर काट लिया। उसके घोड़े भड़कने लगे। तो भी सुमाली विष्णुकी ओर बढ़ा। इधर माली धनुष ले आगे बढ़ा। विष्णुने उसका झण्डा, धनुष, काटकर घोड़े मार दिये। माली रथ छोड़कर गदा हाथमें ले शेरके सदृश बीच मैदानमें कूद पड़ा और उसने एक गदा विष्णुके सिरपर मारा। विष्णुका मुख मुड़ गया; राक्षसोंने जयनाद किया। विष्णुने पीठ दिखाते हुए भी ऐसा चक्र प्रहार किया कि मालीका सिर खून उगलता हुआ गिर पड़ा। मालीको मरा देख सुमाली और माल्यवान् शोकातुर होकर लङ्का लौट आये। और स्वर्ग लोकसे राक्षसोंके गले और छातियां, गर्दनें और माथे; टांगें और धड़ कट कट कर भूमिपर बरसने लगे।

माल्यवान्‌ने अवसर जानकर फिर धावा किया। और बोला—"नारायण तुम पुराने क्षत्रिय धर्मको नहीं जानते हो, हम युद्धकी इच्छा नहीं करते; हम डर गये हैं तो भी हमको शत्रुके सदृश मारते हो। भागते हुए रणसे विमुख पुरुषका वध करनेवाला स्वर्गको नहीं जाता। यदि युद्ध ही करना है तो मैं आगे खड़ा हूं, देखूं तुम्हारा क्या बल है, दिखाओ"। विष्णु बोले—"तुमसे देवता भयभीत हैं; उनको मैं अभयका वचन दे चुका हूं और राक्षसोंका समूह नाश करनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूं। उसीका इस प्रकार पालन कर रहा हूं। देवताओंका कार्य मेरे प्राणोंसे भी प्यारा है; पातालमें चले जानेपर भी मैं तुम्हारा बध करूंगा। यह सुनकर राक्षसोंके सर्दार माल्यवान्‌ने विष्णुकी छाती पर बड़ी भारी शक्तिका प्रहार किया। उसीको विष्णुने फिर शत्रुपर फेंक मारा। इसी प्रकार दोनोंका अस्त्र युद्ध होता रहा। अन्ततः राक्षसने विष्णुके मुक्का मारा और गरुड़ पर भी प्रहार किया। गरुड़ने क्रुद्ध होकर अपने पक्षवातसे राक्षसों-को कँपा दिया और वह फिर लङ्कामें आ छिपे। इसी प्रकार राक्षस लोग कई बार विष्णुके पराक्रमको न सहकर हार हार कर रह गये और तंग आकर अंतमें अपनी स्त्रियों सहित पातालमें आ बसे।

उनका सालकंटक नामक वंश बड़ा प्रसिद्ध था, जिस-का मुख्य नायक उस समय सुमाली था। सुमाली, माली, माल्यवान् आदि राक्षस रावणसे भी बलवान् थे।

## रावणादिकी उत्पत्ति

कुछ काल बीत जानेपर सुमाली नामक राक्षसेन्द्र पाता-लसे मर्त्यलोकमें भ्रमण करनेके लिए आया। उसने मार्गमें देखा कि पुष्पक विमानपर बैठा हुआ धनेश्वर कुबेर आकाश मार्गमें विहार कर रहा है और अपने पिता पौलस्त्यके दर्शन करनेके लिए आ रहा है। यह देखकर फिर पातालमें आया और पुत्रीको बुलाकर बोला, "हे पुत्रि! तुम्हारा यौवनकाल आ गया है; कन्यादानका यही अवसर है। अच्छे अच्छे वर भी इसलिए याचना नहीं करते कि कदाचित् उनकी प्रार्थना स्वीकृत न हो। कन्याका पिता बनना बड़ा चिन्ताका विषय है, पता नहीं उसको कौन वर ले; इसलिए हे पुत्रि, तुम पुलस्त्य-के पुत्र विश्रवाको ही वर लो। तुम्हारे पुत्र भी कुवेरके सदृश होंगे।" तब वह स्वयं जाकर उस स्थानपर पहुंची जहां विश्रवा मुनि तप करने बैठे थे। वह यज्ञ कर रहे थे। सुमा-लीकी योग्य पुत्री कैकसी लज्जासे चरणोंकी ओर मुख किये हुए आगे खड़ी होकर पैरके नखसे भूमिको खुरचती हुई खड़ी हो गयी। उसको देखकर मुनिने पूछा, "भद्रे तुम किसकी पुत्री हो; तुम यहां कैसे आयीं। तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है?" वह हाथ जोड़कर बोली—"मैं पिताकी आज्ञासे आयी हूं; मेरा नाम कैकसी है और शेष बातें आप स्वयं जान सकते हैं।"

मुनिने ध्यान लगाकर तत्वतः जान लिया और कहा, "मैं समझ गया; तुम्हारी अभिलाषा मुझसे पुत्र प्राप्त करने की है। तुम बहुत बुरे समयमें आयी हो, इसलिए तुम्हारे पुत्र भी बड़े भयानक, भयानक आकारवाले, क्रूरकर्मा उत्पन्न होंगे।" कैकसी बोली—"भगवन् आपसे मुझे ऐसे दुष्टाचारी पुत्रोंकी आशा नहीं है—मुझपर कृपा करो।" कैकसीके यह वचन सुनकर विश्रवा बोले कि तुम्हारा सबसे अन्तिम पुत्र वंशके अनुकूल धर्मात्मा ही होगा।

इस प्रकार उस कन्याका प्रथम पुत्र दशग्रीववाला बड़ी दाढ़ोंसे युक्त, अञ्जनके सदृश नीलशरीर, लाल होंठ और बीस भुजोंसे युक्त पीले पीले बालों सहित पैदा हुआ। उसकी उत्पत्तिके समय मेघसे रुधिर बरसना, उल्कापतन होना आदि बड़े भयङ्कर अशकुन हुए। पिताने उसका नाम दशग्रीव रखा।

दूसरा पुत्र कुम्भकर्ण उत्पन्न हुआ जिसके बराबरका शरीर दुनिया भरमें नहीं मिलता था। फिर भैरव रूप बिगड़े शकलकी कन्या शूर्पणखा उत्पन्न हुई। इसके अनन्तर धर्मात्मा पुत्र विभीषण सबसे अन्तिम पुत्र हुआ। इसके उत्पत्तिकालमें देवलोकसे पुष्प वर्षा तथा दिव्य नादोंका नाद हुआ।

उसी वनमें वह सब पलने लगे। कुम्भकरण तो धार्मिक ऋषियोंको खा जाया करता था। परन्तु विभीषण निरन्तर स्वाध्यायमें निरन्तर रहकर धर्मका पालन किया करता था।

एक समयपर वैश्रवण कुबेर पिताके दर्शन करनेके लिए आया। कैकसी कुबेरको देखकर दशग्रीवको बोली, "देख यह कुबेर कैसा तेजस्वी है। यह तुम्हारा भाई है तुम भी ऐसे तेजस्वी बनो।" माताके वचन सुनकर दशग्रीवसे न रहा गया। उसने आवेशसे कहा, "माता मैं भी कुबेरके सदृश या इससे भी अधिक तेजस्वी बनूंगा; तू चिन्ता मत कर।" यही सोच कर दशग्रीव अपने भ्राताओं सहित गोकर्णके शुभ आश्रममें चला गया और तप करने लगा।

## तपसे वरलाभ

कुम्भकर्ण धर्मानुकूल गर्मियोंमें पञ्चाग्निका तापन करने लगा, वर्षाकालमें वीरासनसे बरसती धारमें बैठा रहता था। शिशिरमें शीतल जल धारामें रहता था। इस प्रकार दश सहस्र वर्ष तप किया। विभीषण ५ हज़ार वर्षतक एक पैरसे खड़ा रहा; उसने ५ हज़ार वर्ष तक सूर्यकी उपासना की और ऊपर हाथ उठाये हुए खड़ा रहा। दशग्रीवने दश हज़ार वर्ष तक निराहार व्रत किया और प्रत्येक हज़ार वर्षके बाद एक एक शिर बलि चढ़ाना प्रारम्भ किया। इस प्रकार जब नौ सिर अग्निमें चढ़ा चुका और दसवें सहस्रमें दसवां सिर काटनेके लिए तैयार हुआ तो पितामह ब्रह्मा प्रकट हुए और बोले, "हे रावण मैं प्रसन्न हूं। यथेष्ट वर मांग!" प्रसन्न चित्तसे दशग्रीव बोला—"भगवन्, प्राणियोंको मृत्युके बिना दूसरेका भय नहीं। इसलिए मैं अमरत्व मांगता हूं। यह वचन सुनकर ब्रह्मा बोले—"तू सब तरहसे अमर नहीं हो सकेगा। दूसरा वर मांग।" इसपर दशग्रीव बोला, गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देव इनसे न मारा जा सकूँ; और प्राणियोंसे तो मुझे कोई भय नहीं है; मनुष्यादि प्राणी मेरे सामने तिनकेके समान हैं।" ब्रह्माने कहा, "यह वर पूरा होगा। क्योंकि तुमने १० सिरोंकी अग्निमें आहुति की है, वह पूर्ववत् रहेंगे और तुम यथेच्छ रूप धर सकोगे।"

इसी प्रकारसे विभीषणके तपसे तुष्ट होकर ब्रह्माने वर मांगनेको कहा। विभीषणने कहा, "मेरी मति धर्ममें रहे और बिना सीखे ब्रह्मास्त्र मुझको आजाय। जिस जिस आश्रममें मेरी मति हो उसे धर्मानुकूल पाल सकूँ। ब्रह्माने यह वर स्वीकार किया और साथ ही कहा, "जो तुम राक्षस योनिमें उत्पन्न हुए हो और अधर्ममें तुम्हारी बुद्धि नहीं है अतः तुम्हें भी मैं अमर बनाता हूं।" जब कुम्भकर्णको वर देनेके लिए ब्रह्मा आये तो सारे देवता हाथ जोड़कर बोले, "भगवन्, यह सब लोकोंको डराता है। इसने नन्दन वनमें सब अप्सराएं और इन्द्रके दस नौकरोंको खा लिया। इसने ऋषि और मनुष्य खा डाले। बिना वरके इसने ऐसा किया तो वर पाकर तो तीनों लोक खाजायगा। इसको वरमें मोह दान दो। यह सुनकर ब्रह्माने सरस्वतीको कुम्भकर्णमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दी। वर मांगते हुए कुम्भकर्ण बोले; "मैं तो बहुतसे सालों तक सोना ही चाहता हूं।" ब्रह्मा 'तथास्तु' कहकर देवों सहित चले गये। कुम्भकर्ण पीछे सोचने लगा कि दुष्ट देवोंने मुझे मोहमें डाल दिया, नहीं तो ऐसी बात मैं कभी न कहता।

इस प्रकार सभी वर पाकर श्लेष्मातक वनमें सुखसे रहने लगे।

## लङ्कामें पुनरागमन

सुमालीने अपने दौहित्रोंको लब्धवर देख कर प्रसन्न हो दशग्रीवको आलिङ्गन किया और बोला—"भाग्यवश चिर-कालका सोचा हुआ मनोरथ पूर्ण हुआ कि पितामहने तुमको वर दिये। जिस भयसे हम लङ्काको छोड़कर आये थे वह भय मिट गया। विष्णुके बड़े भारी भयसे जर्जरित होकर हम अपना मकान छोड़कर भागे और रसातलमें घुस गये थे। यह लंका नगरी जिसमें राक्षस रहते हैं और जिसमें कुवेर अब बसा हुआ है वास्तवमें हमारी है। यदि हो सके तो साम, दाम, दण्ड किसी उपायसे इसको फिर हस्तगत करो। तुम ही इसमें राजा बनोगे; तुमने राक्षस वंशका फिरसे उद्धार किया है।" दशग्रीव बोला, "कुवेर हमारा भाई है। उसको घरसे निकालना अच्छा नहीं। यह सुन कर सुमाली शान्त हो गया।"

कुछ दिन बीतनेपर प्रहस्त दशग्रीवसे बोले, "शूर लोगोंका भाई चारा नहीं होता। सुनो दिति और अदिति दो बहनें थीं। दोनों ही कश्यपकी स्त्री थीं। दितिसे दैत्य और अदितिसे देव पैदा हुए। यह समुद्रसे घिरी हुई सारी पृथ्वी पहले दैत्योंकी ही थी। दैत्य ही इसके राजा थे। पर विष्णुने दैत्योंको मारकर पृथ्वीको देवोंके अधीन कर दिया। तो इस परम्पराको तुम अकेले नहीं बदल सकते। यह सुनकर दश-ग्रीव प्रसन्न चित्तसे बात मान गये और प्रहस्तको ही दूत बनाकर कुवेरके पास लंकामें यह संदेश भेजा—"यह लङ्कापुरी महान आभावाले राक्षस लोगोंकी है। तुमने इसपर अधिकार जमाया है। यह ठीक नहीं है। यदि तुम यह पुरी हमारी हमको लौटा दो तो हमारा तुम्हारा प्रेम बना रहेगा और धर्म भी सुरक्षित रहेगा।"

प्रहस्तने यह संदेश कुवेरको सुनाया। कुवेरने उत्तरमें कहा, "वह पुरी पिताने मुझे दी थी। उस समय निशाचर लोग इसमें न थे। जैसे मेरी है वैसे तुम्हारी भी है। मेरा सब धन तुम्हारा भी है। तुम इसका निष्कण्टक भोग करो।"

इधर कुवेरने पिताके पास जाकर दशग्रीवका अभिलषित कहा। इसपर पिता विश्रवा बोले; "मैंने भी रावणको बहुत बार कहा कि ऐसा मतकर, तेरा विनाश होगा। पर वह नहीं मानता। अच्छा तुम लङ्काको छोड़कर कैलाशके पास जाकर बस जाओ। वहां मन्दाकिनी नामकी नदी है। वहां देवगन्धर्व सब आनन्दसे बसते हैं।" कुवेर पिताके कहनेसे कैलाशके पास आकर बस गया और प्रहस्तके कहनेपर शून्य लङ्काको दशग्रीवने अपने सब परिवार सहित फिर बसाया।

## दशग्रीवका विवाह और मयनायक इञ्जीनियर

राक्षसोंका राजा रावण लङ्कामें अभिषिक्त होकर सुखसे भाइयों सहित रहने लगा। उसने भगनी शूर्पणखाका विवाह दानवोंके राजा कालकेन्द्र विद्युज्जिह्वके साथ कर दिया। एक बार रावण मृगया करता हुआ वनमें घूम रहा था। वनमें ही मयनामक दितिका पुत्र भी अपनी कन्या सहित भ्रमण करता था। दोनोंकी इसी अन्तर में भेंट हुई।

राक्षसने पूछा कि आप इस मृगलोचना सहित निर्जन वनमें घूमते हुए कौन हैं?

मय बोले सुनिये—हेमा नामकी प्रसिद्ध अप्सराका नाम आपने सुना होगा। देवताओंने उसका विवाह मेरे साथ किया। १००० वर्ष मैं उसके साथ सुखसे रहा। देवताओंके कामपर वह मुझे छोड़ गयी। १३ वर्ष बीत गये। १४वां वर्ष भी बीतजानेपर मैंने हीरे मणियोंसे चित्रित सुवर्णमयपुर मायासे बनाया। वहां ही उसके वियोगमें दुःखित मैं रहने लगा। उसी नगरसे मैं अपनी कन्याको साथ लेकर इस वनमें घूम रहा हूं। यह कन्या उसी अप्सराकी पुत्री है। इसके जोड़के पतिको ढूँढ रहा हूं। इसीके दो भाई भी हैं एक मायावी, दूसरा दुन्दुभि। अब तुम कहो कौन हो?"

दशग्रीव बोला—"मय, मैं पौलस्त्य, विश्रवा मुनिका पुत्र दशग्रीव हूं।"

सुनते ही मय दशग्रीवको मुनिका पुत्र जानकर कन्यादान करने पर उद्यत हुआ। कन्याका हाथ रावणके हाथमें देकर हंसते हुए बोला कि इस मेरी पुत्री मन्दोदरीको अपनी पत्नी के रूपमें स्वीकार करो। दशग्रीवने स्वीकार किया। वहां ही यज्ञाग्नि रचकर दोनोंका विवाह हो गया। मयने विदा होते हुए रावणको एक अमोघशक्ति भी दी, जिसने पीछे लक्ष्मण-पर दृढ आघात किया था। इस प्रकार रावणने विवाह करके कुम्भकर्णका वैरोचनकी दौहित्री वज्रज्वालाके साथ और विभी-षणका शैलूषगन्धर्वकी पुत्री सरमाके साथ विवाह कर दिया। मन्दोदरीका पुत्र मेघनाद हुआ। क्योंकि उत्पन्न होते ही उसने

ऐसी गर्जना की थी कि जिससे लङ्का जड़ हो गयी थी; इसीसे इसका नाम मेघनाद रखा गया।

## कुवेरपर चढ़ाई

ब्रह्माके वरसे कुम्भकर्णको गहरी नींद आ गयी। कुम्भकर्णने भाईसे कहा, "मुझे नींद बहुत तंग करती है। मेरे लिए शयनागार बना दो।" राजाने अपने शिल्पियोंको लगाकर एक योजन चौड़ा, इससे दुगुना लम्बा, सुन्दर, चिकना, स्फटिक और सुवर्णके बने नाना प्रकारके स्तम्भोंसे सुशोभित, वज्रमणि तथा लालमणिकी सीढ़ियोंसे जड़ा हुआ, घण्टियोंकी मालाओंसे प्रतिध्वनित, हाथीदांतके नाना द्वारोंसे सज्जित; स्फटिकके चबूतरोंसे युक्त मकान बनवा दिया। उसमें कुम्भकर्ण सैकड़ों बरस बेखबर सोता रहा।

इधर दशग्रीवने निरङ्कुश होकर देवताओंके उद्यानोंको उखाड़ना प्रारम्भ किया। कुवेरने दशग्रीवके पास यह संदेसा भेजा, "मुझे पता लगा है कि तुमने हमारे उद्यानोंका नाश कर दिया है। मैंने हिमालयपर जाकर भवानी-शंकरका दर्शन किया, वहां मेरी बाईं आंख पार्वतीपर पड़ी। पार्वतीने मेरा वाम चक्षु जला दिया। मैंने प्रसन्न करनेके लिए घोर तप किया। शंकर प्रसन्न हो गये हैं। उन्होंने मुझे सखा बना लिया है। मैंने तुम्हारे विषयमें बहुत कुछ अनर्थ सुना है। हे दशग्रीव, तुम इस कार्यसे हाथ खींच लो। ऋषि और देव तुम्हारे मारनेका उपाय सोच रहे हैं।"

दूतसे दशग्रीवने यह सुनकर दांत पीसकर क्रोधसे कहा— "तुम्हारा और कुवेरका वचन कोई हितकर नहीं। अभीतक बड़ा भाई समझकर छोड़ रखा है अब तीनों लोकोंका विजय करूंगा। चारों लोकपालोंको मारूंगा।" यह कहकर तलवार निकालकर दूतका सिर धड़से अलग कर दिया और तदनन्तर रथपर चढ़कर कुवेरके पास गया। कैलाश पर बड़ा भारी युद्ध हुआ। यक्षोंका पराजय हुआ और राक्षसने यक्षेश्वरसे उसका पुष्पकविमान छीन लिया।

## कैलाशका उद्धार और रावणकी उपाधि

कुवेरके पुष्पक पर चढ़कर दशग्रीव लंकाको लौट रहे थे कि शरवणमें विमान अटक गया। बहुत प्रयत्न करनेपर भी आगे न बढ़ा। विमानको छोड़कर कारण जाननेके लिए रावण उतरा कि कैलाशपर रखवारी करते हुए नन्दीश्वरने कहा, "इस पर्वतपर शंकर पार्वती क्रीड़ा करते हैं, यहां आनेकी आज्ञा नहीं।" दशग्रीवसे यह न सहा गया और नन्दीश्वरके वचनपर ध्यान न देकर उसके वानरके समान मुखकी हंसी उड़ाने लगा। फिर वह विघ्न भूत कैलाशको अपनी बाहुओंपर उठाकर फेंकने लगा। कैलाशके हिलते ही पार्वती भयभीत हुई और शंकरने अपने पैरके अंगूठेसे कैलाशको दबाया। इधर दशग्रीवकी बाहु कैलाशका बोझ न सह सकीं; मारे बोझके दशग्रीवकी चीख निकल गयी। उस चीखसे सारा त्रैलोक्य कांप गया। दशग्रीवने शंकरकी वेद मन्त्रोंसे स्तुति की। प्रसन्न होकर शंकरने वर मांगनेको कहा। दशग्रीव बोला—"अजयिता अमरता पहले ही प्राप्त है। अब प्रसन्न होकर मुझे शस्त्र दो।" शंकरने प्रसन्न हो उसको रावणकी उपाधि दी और चन्द्रहास नामक खड्ग दिया और निकल जानेके लिए मार्ग दिया।

तभीसे रावण निर्भय होकर क्षत्रियोंको जीतने लगा।

उसने हिमालयके वनमें जा कुशध्वजकी कन्या वेदवती का धर्षण किया। उशीरबीज स्थानपर मरुत्तनामका राजा यज्ञ कर रहा था, वहां उसका विजय किया; फिर नाना क्षत्रियोंको दबाकर अनरण्यको हराया; फिर नारदके कहनेपर यमराजको जीतनेके लिए उसने दक्षिण दिशाको प्रस्थान किया। यमालयमें जाकर यमकी सभी नगरीमें कोलाहल मचा दिया; बड़ा भारी युद्ध होने लगा, यमने ब्रह्माके कहनेपर युद्धमें हार मानली, रावणकी विजय हुई। इसके बाद वह पातालमें गया। वहां नागोंकी भोगवती पुरीका जय करके, उसने निवातकवच दैत्योंकी मणिमयी पुरीपर आक्रमण किया। देढ़ सालतक युद्धके पश्चात ब्रह्माने उनमें संधि करादी। वहां मित्रता कर उसने माया नामक १०० राजाओंको भी पाया। वहांसे कालकेय लोगोंसे बसाये अश्मनगरमें बड़े बलोत्कट कालकेय लोगोंका विजय किया। वहांके राजा (जो उसका बहनोई था) विद्युज्जिह्वका सिर धड़से अलग कर दिया और अन्य ४०० दैत्योंका नाश किया। फिर वह वरुणालयमें गया। वहां बड़ा घोर युद्ध ठना। आखीरमें रावणकी विजय हुई।

इस प्रकार विजयी रावण अपनी लङ्कामें लौट आया। इसी बीचमें रावणकी भगनी शूर्पणखा रोती हुई रावणके

पास आकर विलाप करने लगी। वह बोली—"तैने पातालमें जाकर १४००० कालकेय दैत्योंका विनाश कर दिया और मेरे पतिको भी मारकर मुझे विधवा कर दिया। अब तेरे कारण मैं विधवा होकर रहूंगी।"

उत्तरमें रावण बोला, "बस अधिक मत रोओ। मैंने युद्ध करते हुए कुछ नहीं देखा; इसीमें तेरा पति भी मर गया। अब तू अपने भाई खरके पास रह। तेरा सब कर्ता धर्ता वही रहेगा। वह १४००० राक्षसों सहित दण्डक वनमें उपनिवेश बसानेके लिए चला जायगा।"

इसके अनन्तर १४००० राक्षसोंके साथ खर दूषणसहित दण्डकवनमें आगये और वहां निष्कण्टक राज्य बसाया।

### मेघनादका निकुम्भिलायज्ञ

इधर निकुम्भिला नामक उद्यानमें रावणके पुत्र मेघनाद सैकड़ों यूप गाड़कर कृष्णाजिन पर बैठे हुए कमण्डल शिखा सूत्र धारणकर यज्ञ दीक्षामें लगे हुए थे।

रावणने पुत्रको इस अवस्थामें देखकर पूछा यह क्या करते हो। मेघनाद बोले—"मुझे ७ यज्ञ प्राप्त हुए हैं। अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध, वैष्णव और माहेश्वर। इनमेंसे माहेश्वर यज्ञसे मुझे बहुत से वर प्राप्त हुए जैसे कामगामीरथ और तामसी माया, जिससे युद्धमें अदृष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार दो अक्षय तूणीर और दुर्जय चाप भी प्राप्त हुआ है।"

रावणने पुत्रको देखकर बड़ा हर्ष मनाया। पर लङ्कामें पहुँचते ही विभीषणने समाचार सुनाया कि मधुनामक राजा कुम्भीनसी धर्म भगिनीको चुरा ले गया है। बस उसी समय उसने युद्धरथ तय्यार कराया और मेघनादको साथ लेकर मधुपुरी पहुचा।

रावणको आया जान मधु छिप गया। कुम्भीनसी प्रेमसे रावणके पास आकर अपने पतिके लिए अभय मांग लेगयी। दोनोंकी मित्रता हो गयी। वहांसे मधुराजको साथ लेकर उसने इन्द्रपुरीपर उत्तरकी ओर धावा किया। स्वर्गलोकपर आक्रमण करने पर घोर युद्ध हुआ। मेघनादने मायापाशसे इन्द्रको फांस लिया और विजय प्राप्त कर वह लंकाकी तरफ लौटे।

मार्गमें ब्रह्माके कहनेपर इन्द्रजितने इस शर्तपर इन्द्रको छोड़ दिया कि माहेश्वर यागसे प्राप्त रथमें उसको अमरताका वर मिले।

आते समय नर्मदाके तटपर सहस्रबाहु अर्जुनसे भेंट हुई; वहां भी युद्ध हुआ, सहस्रबाहुने रावणको पकड़ लिया। तब पुलस्त्य ऋषिने अपने पौत्रको छुड़ा दिया और दोनोंकी मित्रता करादी।

इस प्रकार रावण लंकामें राज्य करने लगा। जो भी बढ़ता उसीसे युद्ध करता। इधर किष्किन्धामें वानर जातिका राजा बाली बड़ा प्रबल हुआ उसपर भी इसने धावा किया वह रावणको बांधकर आस्मानमें उड़ गया। बादमें दोनोंमें मित्रता हो गयी।

इस प्रकार पाठक गण, हम राक्षस जातिका अपरिचित इतिवृत्त आपके भेंट कर चुके। इसके अनन्तर रामकी कथासे सम्बद्ध रावणका चरित्र सब आपको परिचित ही होनेसे हम प्रसङ्गमें विस्तारभयसे नहीं लिखना चाहते।

अब इस सारी कथाकी आलोचना मात्र करेंगे, जिसमें इस जातिके आचार, विचार, जातीय सम्बन्ध, राज्य प्रबन्ध उपनिवेश, अन्यराज्योंकी स्थिति आदिपर विशेष ध्यान आकर्षण किया जायगा; एवं इस जातिका शिल्प, कलाकौशल वास्तु विद्या, अस्त्रशास्त्र, चमत्कार, माया साधन, आदिका उल्लेख किया जायगा।

### आलोचनाका दिग्दर्शन

वाचकवृन्द, कविताका लिबास पहिनकर जहां साधारण कथाकामिनी, उज्ज्वल वर्णों और हृदयग्राही भावों तथा चित्र विचित्र आभूषणोंसे सजकर आबाल वृद्धोंका मनोरञ्जन करनेको कटिबद्ध होती है और जब वह कविकी रसना रङ्गशालामें नाचती हुई कोमल पदोंसे छोटे डग भरती हुयी अपने पदोंमें बद्ध चमत्कार नूपुरोंसे, मीठी पदावलीसे, श्रोतृवृन्दके ऊपर मोहनमंत्र डालती है तो वह स्वयं अपना अस्तित्व भूल जाती है। कविका चित्त स्वतः अति तरल होनेसे निरङ्कुश हो जाता है। श्रोतृवृन्द मुग्ध होनेसे विवेक करना उचित नहीं समझते। कदाचित् रस भङ्ग न होजाय इस भयसे क्या सत्यताको सुवर्णीय अच्छादनोंमें छिपा रहने देना उचित है? क्या हम कविको अपना नृत्य करने दें? श्रोतृजनोंको मुग्ध रहने दें? और विवेकको निराश्रय अनाथकी तरह भटकने दें?

ऐसा नहीं हो सकता। अब जमाना पलट गया। वैज्ञानिक चमत्कारोंका आदर है और राजनीतिक बलका मान है।

राष्ट्रीय संघठन और विघटनके दृश्योंके देखनेका जमानेको चस्का लग गया है। ऐतिहासिक गवेषणाओंको निष्पक्षपात भावसे आलोचना करनेका शौक है। धार्मिक व साम्प्रदायिक द्वेषोंसे प्रेरित होकर किसी जाति देशको हर तरह गिरा देनेके मत्सरका बड़ा तुच्छ मान है। प्रत्युत जैसेको तैसा दिखाना तथा सच्चे इतिहासको भूमिकी तहों और पातालकी गुहाओं, पहाड़ोंकी कन्दराओं और बियाबान उजाड़ मरुस्थलोंकी वालुकाओंमेंसे भी खोज निकालनेका बड़ा भारी उद्योग आरम्भ है। इस कारण हमें भी जमानेके साथ होनेके लिए अपने पुराने इतिहास, प्रथा, किम्वदन्ती कथा माला तथा मिथ्या कथा प्रवादोंको उलटना पुलटना होगा। उनको सुवद्ध करना होगा। उनके बीचमें छिपी हुई वास्तविकताको पूरा मान देना होगा। चाहे कोई जाति या फ़िर्का हो उसकी उन्नति और अवनति आचार विचार, व्यापार, व्यवहार, रहन सहन, शिल्पकार, विजय, राज्य, राष्ट्र, सम्पत्ति, विद्या, वैज्ञानिक विलास आदि सभीकी ऊहापोह करके जिसका जो है उसको वह सौंपा जायगा। इसी विचारसे अब उस कथाकी आलोचना करनी आवश्यक है।

उपरोक्त कथाका उल्लेख संक्षेपसे हमने वैसाका वैसा ही देनेका प्रयत्न किया है, जैसा हमें रामायणके उत्तर काण्डमें प्राप्त हुआ है। उसमेंसे किसी बातको बदलकर नहीं रखा गया।

इस कथाके पढ़नेवालोंके चित्तमें बहुत सी आशंकाएं उत्पन्न होना सम्भव है। उनका स्पष्टीकरण तथा जो बातें संक्षेपसे तथा प्रसङ्गतः कह दी गयी हैं उनका भी प्रकरणशः दर्शाना यह इस आलोचनाका मुख्य उद्देश्य होगा। कथा विदित-प्राय होनेसे उद्धरणांशका प्रसङ्ग जानना सहज ही होगा।

आलोचनामें निम्न लिखित प्रकरणोंको स्पष्ट करनेका विचार है।

( १ ) राक्षसजाति कहांसे चली ?

( २ ) क्यों घृणाका पात्र हुई ?

( ३ ) द्वेषका बीज किस प्रकार उपजा ?

( ४ ) देव, दैत्य, दानव, राक्षस, एवं देवयोनियां क्या थीं ?

( ५ ) विष्णु, इन्द्र, तथा बड़े अन्य देवता क्या थे ?

( ६ ) इनका तपस्यासे प्रसन्न होना एवं वर देना इसका क्या तात्पर्य है ?

( ७ ) देवोंकी प्रार्थनापर विष्णुका रोष, छल छद्म आदि पूर्वक, बारबार दैत्यों दानवों राक्षसोंके संहार करनेका क्या स्पष्टीकरण है ?

( ८ ) राक्षस जातिकी भाषा क्या थी ?

( ९ ) उनके धर्म ग्रन्थ तथा आचार विचार क्या थे ?

(१०) राक्षसोंकी स्त्रियोंकी क्या दशा थी ?

(११) अन्तरजातीय विवाहादि सम्बन्ध किस प्रकार होते थे ?

(१२) जातियोंका परस्परका व्यवहार किस प्रकारका था ?

(१३) राक्षस जातिकी कारीगरी, शिल्प, शस्त्र-कला कैसी थी?

(१४) शासन, प्रवन्ध, युद्ध कला, राजनीति, एवं वैभव, प्रताप कैसा था ?

(१५) लौकिक ज्ञान, जातीयता, धार्मिकता, एवं परराष्ट्रके साथ व्यवहार किस प्रकारका था ?

(१६) रावणके जमानेके बाद राक्षस जातिका कहां कहां कैसा कैसा रूप मिलता है ?

(१७) भारतीय इतिहासमें क्या स्थान राक्षस जातिका रहा ?

( १८ ) अन्य देशोंमें उनका क्या वैभव शेष रहा ?

( १९ ) वर्तमानमें उनका क्या अवशिष्ट है ?

( २० ) इन सब पुराकालीन मध्यकालीन और वर्तमानकी सब सम्पत्तियोंको कैसे सम्बद्ध किया जाय ?

इन सभी तथा अन्य विचारणीय विषयोंपर आलोचना करनी आवश्यक प्रतीत होता है। इस गंभीर कार्यपर हस्तक्षेप करते हुए हमें स्वयं बड़ा भय होता है। कदाचित् रामायण महाभारतकी सुकुमारावयवा कथामयी रसीली कविताकी लहराती हुई साड़ीकी लीरें फटती देखकर साहित्यविनोदी श्रद्धालु रस भंग समझ कर कोपसे वज्राघात न कर बैठें। परन्तु अब भयसे क्या बनता है ? शनैः शनैः यह सब समाप्त करना ही होगा अगले लेखोंमें अब सभी बातोंकी यथावसर आलोचना करेंगे।

—जयदेव।

# डांस

[ ले०—श्री० शंकरराव जोशी ]

पहले हम द्विपद वर्गके एक कीड़े—मक्खी पर विचार कर चुके हैं। इस लेखमें उसी वर्गके एक दूसरे कीड़े, डांस, पर विचार करेंगे। एक संस्कृत कवि ने इस प्राणीके सम्बंधमें लिखा—

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमासं।
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रं।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति॥

हमारे अधिकांश पाठक इस प्राणीको तिरस्कार-की दृष्टिसे देखते होंगे। किन्तु यदि वह उसे सूक्ष्म-दर्शक यंत्रकी सहायतासे देखेंगे तो हमें पूर्ण विश्वास है कि उनकी तिरस्कार बुद्धि अवश्य भाग जायगी।

डांसका सर छोटा होता है। सरका अधिकांश भाग पहलूदार आंखोंसे व्याप्त रहता है। आंखोंका रंग हरा होता है। छाती (Thorax) बड़ी और गोल होती है; एवं पेट लम्बा और पतला। सिरके अगले भाग पर चोंचके आकारका मुख और दो स्पर्शेन्द्रिय होती हैं। पीठके पहले भागपर दो पंख होते हैं। पंखके पीछेकी ओर झालरके समान बाल होते हैं। पंखकी दूसरी जोड़ीके स्थान पर दो कर्ण होते है। इस प्राणीके पांव उसके शरीरसे तीन गुने लम्बे होते हैं। इसके सारे शरीरपर, स्थान स्थान पर, महीन केशके झब्बे होते।

नर और मादामें फर्क होता है। नरकी स्पर्शे-न्द्रिय मादाकी स्पर्शेन्द्रियसे बहुत बड़ी और सुन्दर होती है। मादाकी स्पर्शेन्द्रियोंकी शाखाएं छोटी होती हैं अतः वह खूबसूरत नहीं देख पड़तीं।

डांसकी चोंचकी रचना देखकर आश्चर्य होता है। मादाकी तरह नर मनुष्यकी देहमें छेदकर रक्त-पान नहीं कर सकता। नर निरुपद्रवी होता है। वह घरोंमें आता तक नहीं। परन्तु मादा खूब ऊधम मचाती है। वह नर रक्त पीती है। अतः वही ज्यादातर घरोंमें रहना पसंद करती है।

मादाकी सूंड़को देखते ही यह धारणा होजाती है कि वह इसीसे रक्तपान करती है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। मादाकी सूँड उसकी औज़ार रखनेकी पेटी है। यह सूंड़ बीचमें से चिरी हुई होती है और सहज ही झुकाई जा सकती है। सूंडके झुकाते ही उसमेंसे औज़ार बाहर निकल आते हैं। सूंडमें भिन्न भिन्न प्रकारके छः हथियार होते हैं। अष्टभुजा देवीकी तसवीरमें, देवीके हाथमें जितने हथियार दीख पड़ते हैं, उनमेंसे अधिकांश हथि-यार मादाकी सूँडमें भी पाये जाते हैं। इनमें से कुछ हथियार तलवारके समान, कुछ भालेके समान और कुछ आरेके समान होते हैं। सबसे अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि जिस सूँड़में यह सब हथियार रहते हैं वह १ इंचसे ज़्यादा लम्बी नहीं होती।

डांसकी सूँडकी रचना देखनेके लिए रूमर नामक एक विद्वान घंटों उसे अपने हाथपर बिठा-कर उसकी सूँडका निरीक्षण किया करता था।

डांसका मधुर गायन मनुष्यको कर्णकटु लगता है। एक संस्कृत कविने लिखा है।

अर्थं ग्रहणेन तथा व्यथयति, कटु कूजितैर्यथा पिशुनः।
रुधिरा दानादधिकं दुर्नोति कर्णे क्वणन्मशकः॥

डांसके उड़नेसे एक प्रकारका शब्द होता है। इस शब्दकी उत्पत्ति उसके पंखोंके हिलने से होती है। यह एक सिद्धान्त है कि जब किसी पदार्थसे शब्द निकलता है तो वह हिलता होता है। इसी सिद्धान्तके अनुसार डांसके पंखोंके हिलनेसे शब्द होता है। एक विद्वानने पता लगाया है कि डांसके पंख एक सेकन्डमें १५००० बार हिलते हैं।

मादा अपने अण्डे पानीके पृष्ठ भागपर एक दूसरेसे चिपका कर रखती है। यह अण्डे इतने हलके होते हैं कि पानीमें डूबते नहीं। अण्डोंमेंसे

इल्ली निकलती है। इल्लीके दो पूछ होती हैं। उसका आकार स्क्रूके समान होता है और शरीरपर बालोंके झब्बे होते हैं। हम ऊपर लिख आये हैं कि इल्लीके दो पूछ होती हैं। एकसे वह श्वासोच्छ्वासकी क्रिया करती है और दूसरी उसका गुद-द्वार है। यह प्राणी बहुत बारीक होते हैं और उनका रंग बार बार बदलता रहता है। यह हमेशा पानीमें रहते हैं। परन्तु हवाके लिए उन्हें अपनी श्वासोच्छ्वासकी पूंछ बार बार पानीसे बाहर निकालनी पड़ती है। और इसीलिए वह बारबार अपना सिर नीचा कर पानीमें औंधे पड़े रहते हैं। यही डांसकी कीटावस्था है। कुछ दिन बाद कीड़ा कोश बनाता है, कोश लम्बाकार लोलकके समान होता है। कोश पानीमें तैरता रहता है। पूर्ण बाढ़को पहुँच जानेपर डांस उसमेंसे बाहर निकलता है। कोशमेंका कीड़ा अपना शरीर फुलाता है, जिससे कोशका सिरके पासका भाग फट जाता है। डाँस इसमेंसे अपना सिर और आगेके दो पैर बाहर निकालता है। शरीरका शेष भाग कोशमें ही रहता है। बेचारे डांसको अपना शरीर कोशमेंसे बाहर निकालनेमें बड़ी तकलीफ़ होती है। वह अपना शरीर बड़ी युक्तिसे बाहर निकालता है। वह अपना सिर ऊपर उठाये रखता है, ताकि पानीसे स्पर्श न होने पावे। बादमें वह अपना पेट आकुंचित कर धीरे धीरे अपना शरीर ऊपर खींचता है। कोशका भीतरी भाग खुरखुरा होनेसे आकुंचित किया हुआ पेटका भाग फिर भीतर नहीं फिसल पाता। ज्यों ज्यों वह अपने शरीरका अधिकाधिक भाग बाहर निकालता है, त्यों त्यों उसे शरीरका अग्र भाग अधिकाधिक ऊपर उठाये रखना पड़ता है। इस समय बेचारे प्राणीको अपनी प्राण रक्षाके लिए महान कष्ट उठाने पड़ते हैं। डांसकी प्रथम तीन अवस्थाएं पानीमें ही व्यतीत होती हैं, तो भी पूर्णावस्था प्राप्त डांसके लिए पानीका स्पर्श प्राणनाशक है। सूक्ष्मदर्शक यंत्रकी सहायतासे डांसकी यह दुर्दशा देखकर पत्थरका हृदय भी पिघल जाता है।

दो ही चार सेकंडमें कोशसे मुक्ति पा डांस भक्ष्यकी खोजमें उड़ जाता है। बीस रोज़में डांसकी प्रथम तीन अवस्थाएं पूर्ण हो जाती हैं और तब वह प्रजोत्पादनका काम करने लगता है। एक सालमें डांसकी कई पीढ़ियां बीत जाती हैं।

डांसकी सूंड बहुत ही महीन होती है। ज्योंही वह अपनी सूंड मनुष्यकी देहमें चुभाता है, सूंडमेंका एक प्रकारका विषैला पदार्थ मनुष्यके रक्तमें मिल जाता है। और यही कारण है कि जिस जगह डांस अपनी सूंड चुभाता है, वहां दर्द होने लगता है और शीघ्र ही फुड़िया उठ आती है। यह सबका अनुभव है कि काटे हुए स्थानको खुजानेसे फुड़िया बड़ी हो जाती है। यदि नखसे न खुजाकर यह स्थान पानीसे धो डाला जाय तो तत्काल दर्द बन्द हो जाता है।

एक और प्रकारका डांस होता है, जिसके पैर बहुत ही बड़े होते हैं। पांवके समान इसके अवयवोंमें भी फर्क होता है तथापि बाह्य शरीरको छोड़कर शेष सब बातें डांसके समान होती हैं। अतः विशेष कुछ लिखनेकी ज़रूरत नहीं। यह डांस अस्तबलमें ज़्यादा पाया जाता है। इस डांसके काटनेपर एक बड़ी फुड़िया उठ आती है, जो कभी कभी चार चार दिनतक भी अच्छी नहीं होती।

---

## भारतवर्षका हमला जर्मनीपर

[ ले०—श्री० "जटायु" ]

भारतेन्दुको सूचना मिली कि अमेरिकाकी सेना जर्मनीकी सहायताके लिए जहाज़ोंपर रवाना हो चुकी है। जहाज़ लगभग सौ मीलतक फैले हुए हैं और वेगसे चले आ रहे हैं। कई जहाज़ोंपर बेतारके भी

यन्त्र लगे हुए हैं। कई एक जहाज़ोंपर वायुयान भी लदे हुए हैं। भारतेन्दुने आज्ञा दी कि जब जहाज़ आटलांटिक समुद्रके बीचोंबीच पहुंचें तो उनपर जल-वायुयानोंसे आक्रमण किया जाय, पर बिजलीखंडन वायुयान तुरन्त भेजकर उनके बेतार-के यंत्र नष्ट कर दिये जायँ।

भारतीयोंके जल-वायुयान भी अद्भुत बनावटके हैं। दूरसे देखनेमें यह मछलीकेसे मालूम देते हैं और जैसे मछलीके दायें बायें पर होते हैं वैसेही इनमें भी दायें बायें दो बड़े बड़े पर लगे हुये हैं। और जैसे मछली के पूंछ होती है वैसेही इनमें भी पूंछ लगी हुई है और मछलीके मुखपर पङ्खा लगा हुआ है। इसी पङ्खेसे वायुयान जलमें अथवा वायुमें चलता है, पर यह पङ्खा जलमें बड़ा विचित्र कार्य करता है। जब यह दायेंसे बायेंको घूमता है तो जल-वायुयान आगे बढ़ता है और बायेंसे दायें घूमनेपर पीछे हटता है। जिस स्थानपर मछली-की आंखें होती हैं उसी स्थानपर दो छिद्र इसमें भी हैं। जलके तले इन छिद्रोंसे तोप मारते हैं अथवा टारपीडो छोड़ते हैं। यह मछली अन्दरसे खोखली है। इसके खोखलमें वायुयान चलानेकी मशीन, भांति भांतिके शस्त्र और सारथी रहता है। इसका ऊपरका भाग डिब्बेकी भांति खुल जाता है। जब वायुमें यह वायुयान चलता है तो ढक्कन ऊपरका खुला रखते हैं। इसको नीचे उतार कर जल पक्षि-योंकी भांति जब जलपर चलाते हैं उस समय भी यह ढक्कन खुला रहता है; पर जब जलके तले चलाते हैं उस समय ढक्कनको बन्द कर लेते हैं और जिस भांति बतक डुबकी लगाती है उस भांति यह जलमें डुबकी लगाकर नीचे चला जाता है और मछलीकी भांति तैरा करता है। भारतेन्दुने सख्त हुक्म दिया था कि जहाँ तक हो सके नरहत्या न की जाय। अमरीकनोंके जहाज़ केवल तोड़कर बेकाम कर दिये जायँ।

भारतेन्दुने घोषणा पत्र प्रकाशित करके मित्र राष्ट्रोंसे प्रार्थना की कि एक सप्ताहके लिए यह अपने देशका कोई जहाज़ आटलांटिक समुद्रमें न भेजें और आइल आफ़ वाइट टापू कुछ समयके लिए ब्रिटिश सम्राट्से माँग लिया।

भारतेन्दुके जल वायुयान और अन्य वायुयान अटलांटिक समुद्रके ऊपर उड़ने लगे। जैसे जैसे अमेरिकाके जहाज़ आगे बढ़ते थे, भारतीय वायु-यान बेतारके तार द्वारा बर्लिनको उनकी सूचना भेजते जाते थे। जब जहाज़ मध्य आटलांटिक-में पहुंचे तो भारतेन्दुका हुक्म हुआ कि आक्र-मण करो। भारतीय जल-वायुयानोंने अमेरिकाके जहाज़ोंको कई भागोंमें विभाजित करके आपसमें बांट लिया, और जिसके बाँटमें जो भाग मिला उसके ऊपर वह उड़ने लगा। इस स्थानपर हम केवल उस भागपरका आक्रमण वर्णन करेंगे। जो सबके आगे था। इसमें लगभग सौ जहाज़ थे। वायुयानने दो तीन चक्कर उसके ऊपर (उड़कर) लगाये। इसके पश्चात् जब लगभग दश बारह जहाज़ोंको पास पास चलते हुए पाया तो सबसे आगेवाले जहाज़से चार पाँच मील आगे वायुयान जलपर उतर पड़ा और जहाज़की ओर मुँह करके उसकी तरफ़ दौड़ा। इसको देखकर जहाज़ने इसपर गोला छोड़ा, लेकिन प्रथम इसके कि दो तीन गोले छोड़कर जहाज़ निशाना बांधे यह डुबकी मार गया। जैसे कि वायुयानोंमें पङ्खा लगा रहता है उसी प्रकार जहाज़की पेंदीमें भी एक या दो पंखे लगे रहते हैं, इनको प्रोपेलर कहते हैं। जब प्रोपेलर बड़े वेग-से चलता है तब पानी आगे खींचता है और पीछे फेंकता है। इस कारण जहाज़के नीचे पानी बड़े वेगसे चक्कर खाकर मथता है, जिससे कोई तैरती हुई वस्तु पानीमें जहाज़के पेंदेके पास स्थिर नहीं रह सकती और उलट जाती है। इस कारण जहाज़के नीचे किसी और पनडुब्बी जहाज़का तैरना असम्भव हो जाता है। इसका काट भारतीय जल-वायुयानोंने एक विचित्र रीतिसे निकाला। जब वायुयान जहाज़के पास पहुंचने लगता है

और जहाज़के प्रोपेलरोंके आकर्षणका प्रभाव उसपर पड़ना आरम्भ होता है, वायुयान अपना पङ्खा प्रोपेलरके प्रतिकूल घुमाने लगता है, जिसका फल यह होता है कि वह जहाज़के निकट बड़ी सावधानीसे जाने लगता है।

जल-वायुयानने पहला गोला जलपर गिरते ही डुबकी लगाई और जहाज़की तरफ़ धीरे धीरे चलने लगा। जब एक फर्लाङ्गके लगभग रह गया तो उसने ताककर प्रोपेलरपर गोला मारा। प्रोपेलर टुकड़े टुकड़े हो गया और जहाज़ थोड़ी दूर चलकर रुक गया। वायुयान जहाज़के नीचेसे होकर आगे बढ़ गया और दूसरे जहाज़की ओर चला। जलमें शब्द बहुत दूरतक जाता है; इस कारण जब कोई जहाज़ चलता है तो बहुत दूरतक खचखचका शब्द सुनाई पड़ता है। जल-वायुयानमें पूँछकी ओर एक फ़ोनोग्राफ़के हार्नके समान एक यंत्र लगा है और मछलीके पेटमें से ही जिस दिशामें चाहें इसका मुँह कर देते हैं। टेलीफोन द्वारा इसका भीतरसे सम्बन्ध रहता है। इसकी सहायतासे जलके भीतर ही पांच छः कोस तकसे जहाज़के चलनेका शब्द सुनाई देता है और उसकी दिशा भी ज्ञात हो सकती है। जल-वायुयानकी पीठमेंसे एक जल दूरबीन ऊपरकी ओर निकला रहता है। यही पानीके ऊपर रहता है; अतएव इस दूर्बीनकी सहायतासे तोस हाथ नीचेसे भी जलके बाहरका हाल देख सकते हैं। पहले जहाज़का प्रोपेलर तोड़कर जल वायुयान फुर्तीसे एक मील आगे चला गया और ठहर कर अपने यंत्रकी सहायतासे उसने द्वितीय जहाज़की दिशा ढूँढी और जल दूर्बीन बाहर निकाल कर तुरन्त उसकी ओर दौड़ गया। जब लग भग एक मीलके निकट पहुंचा तो दूरबीन अन्दर करली और दूसरे जहाज़के प्रोपेलरकी ओर चला। इसमें दो प्रोपेलर लगे हुए थे। दोनोंको गोला मारकर तोड़ दिया, इस प्रकार दो घंटेमें इसने दश जहाज़ निकम्मे कर दिये और फिर बाहर निकल कर पांच मीलसे इनका तमाशा देखने लगा। यह रामघाटके लट्ठोंकी भांति लहरोंके साथ इधर उधर बहे बहे फिरने लगे। कुछ समयके पश्चात् जल-वायुयान और जहाज़ोंकी ओर चला। इस समय इसको एक पचीस जहाज़ोंका दल मिल गया। इन सबको इसने एक घंटेमें ही निकम्मा कर दिया। प्रातःकालसे अर्द्धरात्रितक इस एक जल-वायुयानने लगभग १०० जहाज़ निकम्मे कर डाले। इस प्रकार भारतीय जल-वायुयानोंने अमेरिकाके सब जहाज़ जो कई सौकी संख्यामें थे एक दिन और एक रात्रिमें सब निकम्मे कर दिये और जल-वायुयान लौटकर जलयुद्धके केन्द्रपर आ गये।

राणाजीको इन्होंने अपनी अपनी रिपोर्ट सुनायी। राणाजी एक वायुयानपर चढ़कर अमेरिकाकी सेनाकी इस विचित्र दुर्दशाको देखने गये। अमेरिकाके जहाज़ो इंजीनियर बड़े संकटमें पड़ गये। जहाज़ न आगे चलते हैं, न पीछे चलते हैं। पत्तोंकी भांति लहरोंपर उतरा रहे हैं। वेतारके यंत्र भी काम नहीं करते। कुछ जहाज़ जो एक दूसरेकी दृष्टिमें थे; वह झंडियों द्वारा आपसमें बातचीत करने लगे। सब एकही समान आपत्तिमें पड़े थे। इन जहाज़ोंपर जितनी सेना थी भयभीत होकर ऊपर डेकपर निकल आई। दुर्दशा सबपर प्रकाशित होगई। अब सबने समझ लिया कि बेमौत मरे। कई घंटेतक सब पागलोंके समान इधर उधर दौड़ते रहे। और जहां कहीं सम्भव था अन्य जहाज़ोंसे झंडियों द्वारा बातचीत करने लगे। सब अपना दुखड़ा रोते थे। कुछ घंटोंके पश्चात् सेना नायक और बहुत बड़े बड़े पदाधिकारियोंकी अक़ल काम करने लगी। सब लोगोंको वह समझाने लगे कि निराश न होना चाहिये। हमारे पास साल भरकी भोजनकी सामग्री है; सालभरतक हम यहीं रह सकते हैं और यह सम्भव नहीं कि अमेरिकावाले हमारी साल भर तक ख़बर न लें। वह एक ही दो सप्ताहमें और जहाज़ हमारी खोजके लिए भेजेंगे, जो अवश्य हमको आनकर इस दुर्घटनासे छुटा ले जायेंगे। निराश अमेरिकन कहते थे

कि अब प्राण अवश्य जायँगे। अभी तो यही हुआ है, न जाने आगे भारतीय क्या दुर्दशा करेंगे; हम अपने मनको कैसे समझावें। हमारी सहायता और खोजके लिए अमेरिकासे जो जहाज़ चलेंगे, क्या भारतीय उनको मार्गमें न तोड़ेंगे ? आकाशकी ओर हाथ उठाकर वह कहते थे, "यह देखो शत्रुओंके वायुयान उड़ रहे हैं। यह अमेरिकाके जहाज़ोंकी खोज में हैं। भला अब क्या बचनेकी आशा हो सकती है ?"

भारतेन्दुने इस प्रकार इन जहाज़ोंको एक दिन और एक रात्रि इसी दशामें पड़ा रहने दिया। इसके पश्चात् राणाने भारतेन्दुकी आज्ञानुसार इनसे निम्न लिखित रीतिसे वर्ताव किया। जिन जहाज़ोंपर एडमिरलोंकी पताकाएं लहरा रही थीं उनके ऊपर बोस-गुप्ता-वायुयान भेजा और उनके ऊपर पत्र गिराकर उनसे पूंछा "तुम्हारे कमांडर-इन-चीफ़ और एडमिरल-इन-चीफ़ कहां हैं? हम उनसे बात चीत करना चाहते हैं।" जहाज़के कैप्टेनसे मालूम हुआ कि वह उन जहाज़ोंपर नहीं हैं। उनके जहाज़ोंके नाम कप्तानने बतलाये और कहा कि इस भयसे कि शत्रु पताका देखकर पहले इन्हीं जहाज़ों-पर आक्रमण करेंगे, इन जहाज़ोंमें केवल निरुपयोगी सामग्री भरी है।

जिन जहाज़ोंपर उपरोक्त महाशयोंका होना बतलाया गया था उनपर भी बोस-गुप्ता-वायुयान भेजकर पूँछ ताँछ की गयी; पर कप्तानोंने यह समझ कर कि अब कोई नई दुर्घटना उपस्थित होनेवाली है कह दिया कि यहां नहीं हैं—पताका वाले जहाज़ोंपर होंगे अथवा और कहीं होंगे।

राणाने यह दशा देखकर फिर पत्र भेजा कि उपरोक्त महाशयोंको तुरन्त बतलाओ, नहीं तो हम बम्बके गोलोंसे जहाज़ोंको उड़ा देंगे। वायुयान-को निकट देखकर कप्तानने बेईमानीसे वायुयान-पर अकाशी तोप चलादी। इस अधर्मका फल यह हुआ कि एक वायुयानके बम्बके गोलोंका भंडार टूट गया। इस भंडारमें लगभग सौ गोले थे, जो टप टप एक एक करके आपही नीचे टपकने लगे। लगभग सब गोले जलपर गिरे, पर तीन जहाज़-पर भावीवश गिर पड़े। इस जहाज़में युद्धकी सामग्री थी, जहाज़ टूट गया और मेगज़ीनमें आग लग गई। एक दम सब गोले फट पड़े; जहाज़ टुकड़े टुकड़े हो गया। इसके ऊपर जो बोसका वायुयान उड़ रहा था वह भी टुकड़े टुकड़े हो गया। इस जहाज़के फटनेपर ऐसा घोर शब्द हुआ कि सब अमेरिकाके जहाज़ोंको सुनाई पड़ा। जो सौ पचास जहाज़ घटनास्थलके पास थे उन्हों-ने ज्वालाका प्रकाश भी देखा था; उन्होंने समझ लिया कि भारतीयोंने फिर आक्रमण आरम्भ कर दिया और वह मिनट मिनटकी खैर मनाने लगे। कोई मेरीको, कोई ईसू मसीहको, कोई गाडको, कोई किसी सेंटको, कोई अपने माता पिताको, कोई अपने बालबच्चोंको और कोई अपनी प्रियाको याद करने लगा। इस प्रकार सब सेनामें तहलका मच गया और किसीके होश हवास दुरुस्त न रहे।

राणाने एक दूसरा वायुयान कुछ सैनिकों सहित भेजा। यह वायुयान एडमिरलकी पताका-वाले जहाज़पर उड़ने लगा। इस परसे चार पांच भारतीय कूद पड़े और अपने गुब्बारोंकी सहायता से उड़कर जहाज़ पर आये। जहाज़ परके अमेरिकन सब शत्रुता भूल गये और आश्चर्यसे उनको देखने लगे। कप्तान इनसे आकर मिला। भार-तीयोंने कहा कि हम भारतेन्दुका पत्र लाये हैं और एडमिरलसे मिलना चाहते हैं। यह सुनकर कप्तान नीचे उतर गया और अमेरिकन आपसमें कुछ सलाह करते रहे। इसके पश्चात् एडमिरेल ऊपर आया और भारतीयोंसे पत्र लिया। उसमें लिखा था, "भारतीयोंने अमेरिकाके सब जहाज़ निकम्मे कर दिये हैं और अब जहाज़ोंको एक दूसरे से न मिलने देंगे, और न किसी नये जहाज़को सहायता-के लिए इनके पास आने देंगे। इस प्रकार सब अमेरिकाकी सेना समुद्रपर भूखी मर जायगी। यदि कमांडर-इन-चीफ़, एडमिरल और अन्य सेना-

नायक आत्मसमर्पण करदें और अपने सिपाहियों-को भी कैद करादें तो भारतीय कुछ सेनाको एक रक्षित स्थानपर लेजाकर बसा देंगे और शेषको अमेरिका लौट जानेकी आज्ञा दे देंगे। एडमिरल-ने उत्तर दिया, "इस जहाज़पर कमांडर-इन-चीफ़ नहीं हैं और न अन्य एडमिरल हैं। उनकी सम्मति विना मैं कुछ उत्तर नहीं दे सकता। भारतीयोंने कहा कि जिस जहाज़पर वह हों हम आपको पहुँचा देंगे। कुछ विचारके बाद एडमिरलने अपने एक अफ़सरको पत्र दिये और कहा, "जिन जिन जहाज़ोंको यह बतलाये उनपर इसको पहुँचा दो। यह हमारे पत्र उनको दे आयेगा। इसके उपरान्त जो तय होगा किया जायगा।" चार भारतीयोंने इस अफ़सरको पकड़ लिया और इसके सहित गुब्बारोंकी सहायतासे अपने वायुयानकी तरफ़ उड़ चले। वायुमंडलमें उड़ते ही इस अफ़सरके हाथ पैर ढीले होगये और यह भयसे काँपने लगा। अन्य जहाज़वाले इस विचित्र तमाशेको देखकर चकित हो गये। भारतीयोंने इस अफ़सरको अपने वायुयानपर चढ़ा लिया और जिस जिस जहाज़पर इसने कहा इसको उतार दिया। यह सब जहाज़ोंसे उत्तर लेकर फिर जहाज़पर लौट आया।

सबके उत्तर पढ़कर भारतीयोंसे उसने कहा, "यदि आपके सम्राट् हमारा किसी प्रकारसे निरादर न करेंगे और तलवार हमसे न लेंगे तो हम कैदमें जानेके लिए उद्यत हैं।" भारतीय उत्तर लेकर राणाके पास लौट आये। राणाने भरतेन्दुके पास जाकर सब वृत्तान्त कहा और उनसे आज्ञा मांगी। भारतेन्दुकी आज्ञानुसार कई विराट् वायुयान युद्ध-स्थलमें जाकर एडमिरल, कमांडर-इन-चीफ़ तथा अन्य अमेरिकन सेनाके अफ़सर और कुछ सिपाही सब लगभग एकलक्षके एक दिन और एक रात्रिमें जहाज़ोंसे उतार कर आइल-आफ़-वाइट टापूको ले आये। इसके पश्चात् दूसरे दिन प्रातःकाल राणा वायुयानसे उतर कर आये और अमेरिकाके कमान्डर-इन-चीफ़ और एडमिरलोंसे मिले। यह राणासे बड़े हर्षसे मिले और इन्होंने भारतीयोंकी सभ्यता, युद्ध विद्या, वैज्ञानिक अस्त्र शस्त्र और वीरताकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि आपके समान शत्रुओंसे हारना भी जय लाभके समान है। राणाने कमांडर-इन-चीफ़से कहा कि "आपकी शेष सेनाको हम शस्त्र रहित करके अमेरिका लौटा देंगे, पर शर्त यह है कि अमेरिकाके जहाज़ हमारे अधिकारमें दे दिये जायं।"

अब उधरका हाल सुनिये कि जिस समय अमेरिकासे जहाज़ चले थे बड़े विजयध्वनिके गाजे बाजेके साथ सेना सवार हुई थी और बड़ी बड़ी लम्बी चौड़ी घोषणाएं अमेरिकाके प्रेसीडेन्ट और अन्य सुप्रसिद्ध अमेरिकनोंने प्रकाशित की थीं। समुद्रपरसे पांच पांच छः छः घन्टे बाद बेतारके द्वारा अमेरिकाको समाचार भेजे जाते थे और वहांसे संसारके सब देशोंके पत्रोंमें प्रकाशित होते थे। जैसे ही यह सेना एटलांटिक समुद्रके बीचमें पहुँची, अमेरिकाको समाचार आना एक दम बन्द हो गया। सेना विभागके मंत्रीने भी कुछ तड़ित समाचार इन जहाज़ोंको भेजे, पर कुछ उत्तर नहीं मिला। डबल अर्जेंट तार दिये गये उसका भी कोई उत्तर नहीं मिला। अमेरिका भरमें खलबली और संसार भरमें सनसनी फैल गई। तीन दिनतक कोई उत्तर नहीं मिला तब प्रेसीडेन्टके हृदयमें बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गई। उसने खोजनेके लिए कुछ जहाज़ छोड़े। यह जहाज़ बड़े क्षेत्रमें फैलकर चले और समय समयपर बेतारके द्वारा सेना सचिवको समाचार भेजते जाते थे। एक सप्ताहके पश्चात् अमेरिकन सेनाका एक जहाज दिखलाई दिया। तुरन्त इन्होंने प्रेसीडेन्टको तार दिया कि हमें एक कौनरैट जहाज़ दिखलाई दिया; पर हमको उससे कोई उत्तर नहीं मिलता। भारतीय वायुयान भी पहरेपर ताक लगाये उड़ रहे थे; जैसे ही इस जहाज़को उन्होंने आते देखा एक वायुयानने उसका बेतारका यन्त्र निकम्मा कर दिया, अब अमेरिकाको समाचार

जाना इससे भी बन्द हो गया। जहाजका कप्तान यन्त्र टूटनेपर बड़ा घबराया और प्रेसीडेन्टके दिलमें घोर चिन्ता उत्पन्न होगई। यह जहाज कौनरेटकी तरफ़ बढ़कर आया और झंडियोंसे बढ़कर बातचीत करने लगा। इतनेमें एक जलवायुयानने जो ताक पर लगा था इस जहाजका प्रोपेलर तोड़ दिया। अब तो कप्तान साहब आटे दालका भाव भूल गये। हाथ पांव फूल गये और समझ लिया कि शेष जहाजोंकी तरह इनका भी जहाज आपत्तिमें आ फँसा। इस प्रकार भारतीयोंने जितने जहाज़ खोज करनेके लिए निकले थे निकम्मे कर दिये, सारा संसार फिर घोर चिन्तामें डूब गया कि यह तीस लाख सेना कहां लुप्त हो गयी। अमेरिकामें घर घरमें रोना शुरू हो गया। किसीका भाई, किसीका बेटा, किसीका मित्र, किसीका बाप, किसीका पति इस सेनामें था। अमेरिकामें कोई बिरला ऐसा घर था कि जिसका कोई न कोई सम्बन्धी इस सेनामें नहीं था।

इसी समय कि जब सारा अमेरिका विलाप कर रहा था भारतेन्दुका वायुयान वाशिङ्गटन पहुंचा और सफ़ेद पताका दिखलाकर नगरके ऊपर ठहर गया। अमेरिकाकी सेनाका एक अफ़सर वायुयानके तुले आनकर खड़ा होगया। उसने सिगनल द्वारा पूँछा कि तुम कौन हो और क्या चाहते हो। उसने उत्तर दिया कि जो तुम्हारी सेना जर्मनीकी सहायता को गई थी उसके कमांडर-इन-चीफ़का हम पत्र लाये हैं और तुम्हारे प्रेसीडेन्टको देना चाहते हैं। उसने वायुयानसे कहा कि हमारे साथ चले आओ और वह मोटरकार पर चढ़ कर चल खड़ा हुआ। सड़कपर मोटरकार चलती थी। उसके साथ साथ ऊपर वायुयान उड़ता था। मोटरकार परेड ग्रौंडपर जाकर खड़ी हो गयी और अमेरिकन अफ़सरने वायुयानको उतरनेका इशारा किया। वायुयानपर जो अमेरिकन अफ़सर पत्र लेकर आया था उसके बगलोंमें हाथ देकर दो भारतीयोंने उसे साध लिया और इस प्रकार अपने गुब्बारेकी सहायतासे नीचे कूद पड़े।

पृथ्वीपर पहुँचते ही दोनों अमेरिकन अफ़सरोंने लपककर एक दूसरेसे हाथ मिलाया और एक दो बात करके दोनों सचिव भवनकी ओर चल दिये। वाशिङ्गटनके सब नागरिक भारतीय वायुयानका तमाशा देखनेको अपने अपने घरके बाहर निकल आये। कई लाख जन-संख्या परेड ग्रौन्ड पर एकत्रित हो गई। सैकड़ों पत्रोंके सम्पादक युद्धका समाचार जाननेके लिए भारतीयों और अमेरिकन अफ़सरोंके पास आये पर उनको इतना ही समाचार प्राप्त हुआ कि युद्धस्थलसे प्रेज़ीडेन्टके नाम कोई पत्र आया है। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकाके सब पत्रोंमें यह समाचार प्रकाशित कर दिया गया। सब देश भरमें सनसनी फैल गयी। समाचारके पानेपर अमेरिकाकी जनताकी वह मानसिक स्थिति थी जो जुआरीकी हाथमें कौड़ी फेंकनेके समय और दांव पड़नेके पहिले होती है।

दोनों अमेरिकन अफ़सर पर-राष्ट्र मंत्रीके पास गये और यह सेना सचिवके साथ इनको प्रेसीडेंटके पास ले गया। प्रेसीडेंटने पत्र पढ़ा और ज़बानी भी सब दुर्घटनाका वृत्तान्त सुनाया। उसने अपने सब मंत्रियोंको बुलाया। दूतके पत्रपर विचार होने लगा। मंत्रिमंडल और प्रेज़ीडेंटमें दिनभर बहस होती रही। सायंकालको आध घंटेके लिए काम बन्द रहा। जलपान कर सब फिर लौट आये। कई एक जनताके नेता और मुखिया भी बुलाये गये। सब मिलकर फिर पत्रपर विचार करने लगे। रात्रिभर विचार होता रहा। अन्तमें प्रातःकाल चार बजे यह निश्चय हुआ कि भारतेन्दुकी शर्तोंको स्वीकार करना चाहिये। जो अमेरिकन अफ़सर पत्र लाया था उसको प्रेज़ीडेंटने उत्तर दिया, "वह वायुयानपर बैठकर आइल-आफ़-व्हाइट आया। कमांडर-इन-चीफ़को पत्र दिया। कमांडर-इन-चीफ़ने राणासे कहा कि अमेरिका आपकी शर्तें स्वीकार करता है। राणाने कहा

कि आप इसकी सूचना अपने जहाज़ोंको दे दीजिये और हुक्म दीजिये कि अमेरिकाकी पताका जहाज़ों-परसे उतार डालें। कमांडर-इन-चीफ़का घोषणा-पत्र लेकर एक अमेरिकन अफ़सर कर्नेल वाशिंगटन भारतीय वायुयानपर चढ़कर युद्ध स्थलको गया और उसने सब जहाज़ोंको प्रेज़ीडेंट और कमांडर-इन-चीफ़का हुक्म सुना दिया। सब जहाज़ोंने अपनी अपनी पताका उतार दी। एक भारतीय योद्धाने वायुयानसे कूदकर एडमिरलके जहाज़पर भारतेन्दुकी पताका बांध दी और उसी समय वायुयानने ऊपरसे एक सौ एक गोलोंकी सलामी दाग दी।

अमेरिकाके प्रेसीडेंटने घोषणा पत्र प्रकाशित करके अमेरिकन सेनाके हारनेकी सूचना अमेरिकन जनताको दी और साथ ही साथ यह भी सूचना दी कि "केवल एक जहाज़ नष्ट हुआ है और एक एडमिरल एक जेनरल दो हज़ार सैनिक और उनके अफ़सर मारे गये हैं; शेष सब जीवित हैं। जहाज़ सब निकम्मे हो गये हैं और सेनाको अमेरिका लौटानेका प्रबन्ध किया जा रहा है।"

प्रेसीडेंटने पचास जहाज़ सेनाके लौटालानेको भारतीयोंको दिये। राणा पचास वायुयान लेकर युद्धस्थलसे सेनाको लौटालानेके लिए स्वयं गये। सेनाके वापस करनेके लिए टूटे हुये जहाज़की बग़लमें एक जहाज़ लगा दिया जाता था और सब सिपाही इस जहाज़पर चढ़ा लिये जाते थे। इसके पश्चात् इस जहाज़को दो मील ले जाकर खड़ा कर दिया जाता था और चार वायुयान इसके ऊपर आकर उड़ने लगते थे। उनमेंसे एक डाक्टर उतर कर जहाज़पर आ जाता था और कुछ भारतीय सिपाहियोंकी सहायतासे सब अमेरिकाके सिपाहियोंके दायें हाथके अंगूठेमें कनेरमका टीका लगा दिया जाता था। डाक्टर और अन्य भारतीय तुरन्त लौटकर अपने वायुयानपर आ जाते थे और जहाज़को अमेरिका जानेका हुक्म मिल जाता था। इस प्रकार कई सप्ताहमें सब सेना अमेरिका लौटा दी गई और जो अफ़सर आइल-ओफ़-वाइटमें क़ैद थे उनको हुक्म हुआ कि यदि तुम बृटिश सम्राट्की प्रजा होना स्वीकार करो और वचन दो कि जन्मभर बृटिश आइल्स न छोड़ेंगे, तो तुम आइल-ओफ-वाइट छोड़कर चले जाओ। कमांडर-इन-चीफ़को छोड़कर सबने प्रजा होना स्वीकार किया। कमांडर-इन-चीफ़ के नज़रबन्द रखनेके लिए राणाने आइल-ओफ-वाइटमें उचित प्रबन्ध कर दिया।

अब जो मुट्ठीभर जहाज़ बाल्टिक समुद्रसे इंगलिश चेनेलके लिए चल दिये थे, वह इधर उधर बिल्लीकी भांति दबे दबे छिपे छिपे समुद्रपर ताक झांक लगाते रहे और इस आशामें थे कि जब अमेरिकाके जहाज़ जर्मनीके समुद्रमें आयेंगे तो उस समय मूंछोंपर ताव देकर हम भी उनमें जा मिलेंगे और विजयी योद्धाओंके साथ हम भी जयके ढोल बजाने लगेंगे। पर जब बहुत समयतक कोई जहाज़ आता नहीं दिखलाई दिया तो उनको बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गई। अन्तमें विवश होकर रूसी एडमिरलने कुछ जहाज़ इधर उधर पता लानेके लिए भेजे। एक जहाज़ने डेनमार्क पहुंचकर सुना कि अमेरिकाकी सेना और जहाज़ सब भारतीयोंने नष्ट कर डाले। उसने आकर एडमिरलको ख़बर सुनाई। एक जहाज़ जो फ्रांस गया हुआ था उसने भी लौटकर यही कहा। अमेरिकाकी हारका समाचार सुनकर रूसी और जर्मनीके जहाज़ चुपकेसे युद्धस्थल छोड़कर उसी प्रकार चल दिये, जिस प्रकार खटका होनेपर बिल्ली सरक जाती है।

भारतेन्दुने हुक्म दिया कि अमेरिकाके जहाज़ोंमें जो सामग्री है वह सब जहाज़ोंसे निकालकर भारतवर्ष भेज दी जाय और जहाज़ समुद्रमें डुबो दिये जायँ।

खिसिरने अमेरिकाकी सेनाके परास्त होनेका हाल सुनकर हाथ पैर ढीले कर दिये और अपने बालबच्चोंको लेकर अफ्रीकाके सहारा रेगिस्तानको भाग गया। [असमाप्त]

---

# ग्रहोंकी चाल

पिछले एक लेखमें बतलाया जा चुका है कि हिन्दू जिसको नवग्रह कहते हैं उनमेंसे केवल पाँच आजकल ग्रह कहलाते हैं, जिनके नाम हैं बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि। आजकल पृथ्वी भी ग्रह समझी जाती है और इसका स्थान शुक्र और मंगल ग्रहोंके बीच में है। इन ग्रहोंके सिवा दो ग्रह और हैं जो प्राचीन कालके ज्योतिषियोंको नहीं ज्ञात थे, क्योंकि यह इतनी दूर हैं कि केवल आँखसे देखे नहीं जा सकते। इनके नाम हैं अरुण और वरुण। इनका पता तो तब लगा है जब अच्छे अच्छे दूरबीन तैयार हो गये हैं और गणित शास्त्रका अध्ययन भी विस्तारके साथ किया गया है। इन आठ ग्रहोंमें से बुध सूर्यके बहुत पास है, शुक्र बुधकी अपेक्षा सूर्यसे दूर है। पृथ्वी शुक्रसे भी अधिक दूरी पर है। इन ग्रहोंकी आपेक्षिक दूरी यह है—

यदि बुध ग्रहकी सूर्यसे दूरी ३·८ समझी जाय

| | | | |
|---|---|---|---|
| तो शुक्र | " | ७·२ | होगी |
| पृथ्वी | " | १० | " |
| मंगल | " | १५·२ | " |
| बृहस्पति | " | ५२ | " |
| शनि | " | ९५·३ | " |
| अरुण | " | १९१·८ | " |
| और वरुण | " | ३००·५ | " |

पृथ्वी और सूर्यकी दूरी मीलोंमें ९,२०,००,००० मध्यम मानसे है।

यह सब ग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हैं और सूर्यके चारों ओर घड़ीकी सुईकी प्रतिकूल दिशामें जाते हैं, जिससे तारोंके बीच पच्छिमसे पूर्वकी ओर आगे बढ़ते हुए जान पड़ते हैं। यदि हम किसी प्रकार सूर्यमण्डलमें पहुंच जायँ तो हमको दिखाई पड़ेगा कि सूर्यके चारों ओर यह ग्रह भिन्न भिन्न चालसे चक्कर लगा रहे हैं। कभी कभी दो दो तीन तीन चार चार ग्रह एक सीधमें आ जाते हैं। और कभी सभी ग्रह एक सीधमें आजाते हैं। ऐसी घटनाएं सदैव नहीं हुआ करतीं। लाखों वर्षका समय बीतता है तब कहीं सब ग्रह एक सीधमें आते हैं, हां दो दो तीन तीन ग्रहोंकी बात न्यारी है। परन्तु हम लोग सौर मण्डलमें तो पहुंच नहीं सकते हाँ भू मण्डलमें ही बैठे बैठे जो दृश्य दिखाई पड़ते हैं उन्हींका वर्णन संक्षेपमें यहां किया जायगा।

इन आठ ग्रहोंमें से दो ग्रह बुध और शुक्र पृथ्वी और सूर्यके बीचमें हैं अर्थात् पृथ्वीकी कक्षाके भीतर हैं मंगल, गुरु, शनि, अरुण और वरुण पृथ्वीके कक्षाके बाहर। पहले दो को लघु ग्रह (minor planets) और पिछले पाँचको बृहत् ग्रह (major planets) कहते हैं। प्राचीन कालके विद्वानोंने अनुभवसे जान लिया था कि इन ग्रहोंकी चाल कई प्रकारकी है। कभी यह पूर्वकी ओर चलते हैं, कभी पच्छिम की ओर कभी बहुत शीघ्रगामी होते हैं और कभी ठहरे हुए जान पड़ते हैं इत्यादि[1]। उन महात्माओंने यह भी अनुमान किया था कि इनके आगे पीछे चलनेका कारण क्या है[2]। आज हम यह बतलाना चाहते हैं कि वास्तवमें इनकी चाल एक सी है परन्तु हमको भिन्न भिन्न जान पड़ती है, क्योंकि हम स्वयम् ऐसे ग्रह पर हैं जो स्थिर नहीं है। यदि आप मैदानमें एक झंडा गाड़ दें और झंडेसे ४,७,१०,१५,५२,९५,१९२ और ३०० फर्लांगके अंतर पर एक एक घेरा दो तीन फुट

---

१ वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा।
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः ॥ १२ ॥
तत्राति शीघ्रा शीघ्राख्या मन्दा मन्दतरा समा।
ऋज्वीति पञ्चधा ज्ञेया या वक्रा सानुवक्रगा ॥ १३ ॥

२ अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः ॥ १ ॥
तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः।
प्राक् पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्नं स्वदिङ्मुखम् ॥ २ ॥
सूर्यसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे

ऊँचा करवा दें; प्रत्येक घेरेके पास एक एक घुड़सवार नियुक्त करदें; आप स्वयम् झंडेके पास खड़े हो जायँ और घुड़सवारोंको आज्ञा दे दें कि प्रत्येक घुड़सवार अपने अपने घेरेके पास इस तरह खड़ा हो जाय कि सब एक ही सीधमें दिखाई पड़ें और तदनन्तर सब सवार एक साथ ही घेरेका इस वेगसे चक्कर लगाने लगें कि सबसे पासवाला एक चक्कर ८८ सेकंडमें, इससे कुछ दूरवाला २२४ सेकंडमें, तीसरा ३६५ सेकंडमें, चौथा ६८७ सेकंडमें, पांचवाँ ४३३२ सेकंडमें, छठा १०७५६ सेकंडमें, सातवां ४६८ मिनटमें और आठवाँ ६६० मिनटमें चक्कर पूरा करने लगे, तो जिस प्रकार यह घुड़सवार सेकंडोंमें आपकी परिक्रमा करते हुए जान पड़ेंगे वैसे ही सौर मंडलमें ग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हुए दिखाई पड़ते हैं। अंतर केवल इतना होगा कि सवार एक धरातलमें चक्कर लगावेंगे पर ग्रह कुछ उत्तर दक्खिन हट भी जाते हैं।

यदि आप झंडेके पास न खड़े होकर स्वयम् झंडेसे तीसरे घोड़ेपर सवार होकर पहले कहे हुए वेगसे चक्कर लगाने लगें तो आपको झंडे और घुड़सवार जैसे दिखाई पड़ेंगे वही दृश्य हम पृथ्वी निवासियोंको ग्रहोंके सूर्यका चक्कर लगानेमें दिखाई पड़ता है। कभी यह जान पड़ता है कि ग्रह आगे बढ़ते जा रहे हैं और कभी जान पड़ता है कि कोई पीछे हो रहे हैं और कभी ठहरे हुए भी दिखाई पड़ते हैं। इसीको समझानेके लिए पहलेके लोगोंने कल्पना की थी कि शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात नामकी अदृश्य भूतियां ग्रहोंकी भिन्न भिन्न गतियोंके कारण हैं। यही अपनी वायु रूपी रस्सियोंके द्वारा ग्रहोंको दाहिने वायें अथवा आगे पीछे ले जाती हैं।

इस लेखमें यह बतलाया जायगा कि ऊपरवाली कष्ट कल्पनाका कारण अभी तक पृथ्वीको अचला मानकर किसीने सन्तोषजनक रीतिसे नहीं सिद्ध किया। परन्तु यदि पृथ्वी भी गतिमान समझी जाय तो इन सब कष्ट कल्पनाओंकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। ऊपर सवारोंके उदाहरणसे आपको विदित होगया होगा कि यदि सवार तीसरे घोड़ेपर बैठकर झंडेकी परिक्रमा करे तो बाहर और भीतर दोनों ओरवाले घोड़ोंकी गतियोंमें वही 'वक्रानुवक्रा कुटिला' तथा 'शीघ्रा शीघ्रतरा' गतियोंकी विलक्षणता दिखाई देती है, जैसी पृथ्वी रूपी घोड़ेपर सवार पृथ्वी निवासियोंको अन्य ग्रहोंकी गतियोंमें विलक्षणता दिखाई देती है। समझानेके लिए हमको दो उदाहरण लेने होंगे। एक ऐसे ग्रहका जो पृथ्वी और सूर्यके बीचमें है और दूसरा ऐसे ग्रहका जो सूर्य और पृथ्वीके बाहर है। पहलेके लिए बुध और दूसरेके लिए मंगल ४२ तथा ४४ चित्रोंमें लिये गये हैं।

चित्र ४२ में सबसे बड़ा वृत्त राशिचक्र है, जिसपर घूमता हुआ सूर्य एक वर्षमें एक चक्कर लगाता हुआ जान पड़ता है। जहाँ वसंत विषुव लिखा हुआ है वहाँ जब सूर्य दिखाई पड़ता है तब वसंत ऋतुका आरंभ होता है और इस दिन, दिन रात समान होते हैं। यहींसे आरंभ करके राशिचक्र बारह भागोंमें बांटा गया है। इसलिए जिस जिस भागपर मेष वृष इत्यादि लिखा हुआ है वह सायन मेष, सायन वृष समझना चाहिये। सायन मेषका आरंभ २१, २२ मार्चको होता है। सायन मेषसे २३° और आगे निरयन मेष मासका आरंभ होता है यह १३, १४ अप्रेलको पड़ता है। सूर्य राशिचक्रमें मेषसे वृष वृषसे मिथुन इत्यादि राशियोंमें जाता हुआ जान पड़ता है।

राशिचक्रसे छोटा वृत्त भूकक्षा है। इसीपर पृथ्वी चलती हुई स सूर्यकी, जो केन्द्रमें है, एक वर्षमें एक परिक्रमा कर लेती है। सूर्य निवासियोंको पृथ्वी भी मेषसे वृष, वृषसे मिथुन, मिथुनसे कर्क, कर्कसे सिंह इत्यादि राशियोंमें भ्रमण करती दिखाई देती है। इसीके भ्रमणसे हम लोगोंको सूर्य भ्रमण करता हुआ जान पड़ता है। चित्र ४२ में इसका भ्रमण प से आरंभ होता हुआ दिखाया गया है और २, ३, ४ इत्यादि विन्दुओंपर घड़ीकी सुइयां जिस

दिशामें चलती हैं उसके प्रतिकूल दिशामें पृथ्वी जाती है। चलनेकी दिशा तीरकी दिशामें जानी जा सकती है।

सबसे छोटा वृत्त बुध ग्रहकी कक्षा है। मान लीजिये कि बुध ब$_1$ से चलना आरंभ करता है और अपनी कक्षामें २, ३, ४ इत्यादि विन्दुओंपर घड़ीकी प्रतिकूल दिशामें तथा सूर्य निवासियोंको मेष, वृष, मिथुन इत्यादि राशियोंमें जाता हुआ दिखलाई देता है। चित्रमें ब$_1$ वहां लिखा है जहां बुध उस समय है जब कि पृथ्वी प$_1$ पर है। जब बुध विंदु २ पर जाता है तब पृथ्वी अपनी कक्षामें विन्दु २ पर जाती है। जब बुध अपनी कक्षामें विन्दु २ से विन्दु ३ पर जाता है, पृथ्वी अपनी कक्षामें विन्दु २ से विन्दु ३ पर जाती है। इसी तरह और विन्दुओंके लिए भी समझना चाहिये; जैसे जब बुध अपनी कक्षामें विन्दु ७ पर होता है तब पृथ्वी अपनी कक्षामें विन्दु ७ पर रहती है इत्यादि। यदि यह देखना हो कि पृथ्वीपरसे बुध किस दिशामें राशि चक्रपर दिखाई देगा तो बुध और पृथ्वी उस समय जहां हों, उन विन्दुओंको मिलाकर राशिचक्रतक लेजाइये। जहां यह रेखा पहुंचेगी वहीं बुधका स्थान होगा। चित्रकी सरलताके लिए पृथ्वी और बुधके मिलानेवाली रेखा नहीं दिखायी गयी है परन्तु बुधसे यह रेखा बढ़ायी जानेपर राशिचक्रमें जहां पहुंचती है वह कटी रेखासे दिखाई गई है। जैसे जब पृथ्वी प$_1$ और बुध ब$_1$ विन्दुओं पर होते हैं तब प$_1$ ब$_1$ को मिलानेवाली रेखा राशिचक्रमें १ विन्दुपर पहुंचती है अर्थात् पृथ्वी निवासियोंको बुध राशिचक्रके विन्दु १ पर अथवा कुंभ राशिके अन्तमें दिखाई पड़ेगा। जब पृथ्वी प$_2$ पर पहुँचती है तब बुध ब$_2$ पर पहुंचता है और राशिचक्रमें विन्दु २ पर अथवा मीन राशिमें दिखाई देती है और प$_3$ (अर्थात् जब पृथ्वी अपनी कक्षामें विन्दु ३ पर होती है) से बुध ब$_3$ पर होनेके कारण, राशिचक्रके विन्दु ३ पर मीनके अन्तमें दिखाई देगा। जब बुध अपनी कक्षामें ४ पर होगा तब पृथ्वी भी अपनी कक्षामें ४ पर होगी और पृथ्वी निवासियोंको बुध राशि चक्रमें विन्दु ४ पर अर्थात् ३ से कुछ ही आगे दिखाई पड़ेगा। जब बुध अपनी कक्षामें १ से २ तक आया तब पृथ्वी भी १ से २ पर अपनी कक्षामें आई और हम लोगोंको बुध राशिचक्रमें कुंभसे मीनमें जाता हुआ दिखाई पड़ा। जब बुध २ से ३ पर अपनी कक्षामें गया तब पृथ्वी भी २ से ३ पर अपने कक्षामें गई और वहांके निवासियोंको बुध राशिचक्रमें २ से ३ तक मीन राशिमें आगे जाता हुआ दीख पड़ा। इस बार बुध राशि चक्रमें उतना आगे नहीं बढ़ा जितना पहले बढ़ा था अर्थात् बुधकी चाल पहलेसे मंद पड़ गई। ३ से ४ तक पहुंचनेमें बुध राशिचक्रमें बहुत ही कम आगे बढ़ा; इसलिए यदि यह कहा जाय कि बुधकी चाल नहींके समान है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। ऐसी दशामें बुध कुछ ठहरा हुआ जान पड़ता है।

जब बुध अपनी कक्षामें ४ से ५ पर जायगा, पृथ्वी भी अपनी कक्षामें ४ से ५ पर जायगी और पृथ्वी निवासियोंको बुध राशिचक्रमें उलटा ४ से ५ तक जाता हुआ दिखाई पड़ेगा अर्थात् बुध वक्री होगया, ऐसा जान पड़ेगा। जब बुध ५ से ६ पर अपनी कक्षामें जायगा तब पृथ्वी भी अपनी कक्षामें ५ से ६ पर जायगी और हम लोगोंको बुध राशिचक्रमें ५ से ६ तक उलटा मीनसे कुंभ राशिमें जाता हुआ दिखाई पड़ेगा; परन्तु चाल बहुत तीव्र हो जायगी। यहां भी बुध वक्री कहा जायगा; यद्यपि वह अपनी कक्षामें उसी क्रमसे जारहा है। जब बुध ६ से ७ तक जाता है, राशिचक्रमें ६ से ७ तक उलटा जाता हुआ दिखाई पड़ता है। परन्तु ८ से ९ तक जाते जाते यह राशिचक्रमें ८ से ९ तक सीधा जाता दिखाई देगा अर्थात् अब बुधकी चाल मार्गी हो जायगी, परन्तु रहेगी बहुत मन्द। अब यह स्पष्ट होगया होगा कि यद्यपि सूर्यके विचारसे बुध और पृथ्वी दोनों एक ही दिशामें जाते हुए दिखाई पड़ते हैं परन्तु पृथ्वी निवा-

सियोंको बुध राशिचक्रमें १ से ४ तक आगे बढ़ता हुआ जान पड़ता है और ४ से ७ तक पीछे हटता हुआ जान पड़ता है। जब आगे बढ़ता है तब मार्गी कहलाता है और पीछे हटता है तब वक्री हो जाता है। जब मार्गी रहता है तब भी इसकी चाल एक सी नहीं दीखती वरन् कभी बहुत शीघ्र बढ़ती हुई जान पड़ती है, कभी मन्द पड़ जाती है और कभी ठहरी सी जान पड़ती है। और जब वक्री होता है तब भी चाल द्रुत, द्रुततर, मंद, मंदतर तथा स्थिर सी जान पड़ती है।

यहां एक बात और जानने योग्य है। जब पृथ्वी $प_1$ पर होती है और बुध $ब_1$ पर तब सूर्य और पृथ्वीको मिलानेवाली रेखा मकरके अंतपर पहुंचती है अर्थात् सूर्य मकरमें दिखाई देता है, परन्तु बुध कुंभके अंतमें; इसलिए बुध सूर्यके पूरब रहता है और सूर्यास्तके बाद पच्छिममें दिखाई देता है। $प_2$ से सूर्य कुंभ राशिके आदिमें दिखाई पड़ता है और बुध मीनके आदिमें, $प_3$ से सूर्य कुंभमें कुछ और आगे बढ़ा हुआ जान पड़ता है, परन्तु बुध मीनके अंततक पहुंचा हुआ दिखाई पड़ता है और इसीके पास सूर्य और बुधका अन्तर सबसे अधिक होता है। ऐसी दशामें यदि पृथ्वी और बुधके मिलानेवाली रेखा बढ़ायी जाय तो वह बुधकी कक्षाको स्पर्श करती हुई जायगी, और पृथ्वी और सूर्यको मिलानेवाली रेखासे जो कोण बनायेगी वह सबसे बड़ा होगा। इसीको सूर्य और बुधका महत्तम अन्तर ( greatest elongation ) कहते हैं और यह अन्तर सूर्यके पूर्व-की ओर होता है। महत्तम अन्तरके कुछ दिन पीछे ही बुधकी गति वक्री होजाती है और अन्तर घटने लगता है और घटते घटते बुध पृथ्वी और सूर्यके बीचमें आ जाता है अर्थात् अन्तर शून्य हो जाता है। ऐसी दशामें बुध सूर्यके साथ उदय और अस्त होता है। इसीको बुधकी भीतरी युति ( Inferior conjunction ) कहते हैं। जब सूर्यसे बुधका अन्तर १२°के लगभग हो जाता है तब सूर्यके निकट होनेसे उसके प्रकाशके कारण *कोरी आंख से बुध नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए कहा जाता है कि बुधका अस्त पच्छिममें होजाता है क्योंकि बुध पच्छिममें ही दीखते दीखते छिप जाता है। भीतरी युतिके समयसे बुध दाहिने हाथकी ओर जाता है और सूर्य बायें हाथकी ओर; इसलिए सूर्यसे बुध बहुत ही शीघ्र हटता है अर्थात् पच्छिममें अस्त होनेके बाद थोड़े ही दिनोंमें वह सूर्यसे पच्छिम चला आता है और सूर्योदयके पहले ही उदय होकर पूर्वमें दिखाई देने लगता है; तब कहते हैं कि बुधका पूर्वमें उदय हो गया; जब बुध १२° सूर्यसे पच्छिम होजाता है तब फिर दिखाई पड़ने लगता है। तभी उसका उदय मानते हैं; गति भी वक्रीसे कुछ ही दिनोंमें मार्गी होने लगती है।

इस प्रकार मार्गी होनेके पीछे बुध क्रमशः सूर्य से दूर हो जाता है और जब बुध अपनी कक्षामें विन्दु ७ और ८ के बीचमें जाता है तब भी सूर्यसे इसका अंतर महत्तम हो जाता है। फिर बुध सूर्यके पास होता जाता है और डेढ़ महीनेमें सूर्यके इतना पास हो जाता है कि आंखसे दिखाई नहीं पड़ता। सूर्य सिद्धान्तके अनुसार जब अंतर १४° का रह जाता है तब अस्त होना मानते हैं। जब बुध सूर्यका अन्तर शून्य हो जाता है तब दोनों एक साथ क्षितिजके ऊपर आते हैं। ऐसी दशामें बुध सूर्यकी बाहरी युति ( Superior conjunction ) होती है। बाहरी युतिके समय बुध मार्गी रहता है।

बाहरी युतिके समय बुध और सूर्य दोनों बायीं ओरको जाते हुए दिखाई पड़ते हैं, इसलिए बुधको सूर्यसे दूर होनेमें अधिक दिन लगते हैं अर्थात् जब सूर्य पूर्वमें अस्त होता है तब पच्छिमके अस्त कालसे अधिक काल तक अस्त रहता है और पच्छिममें देरमें उदय होता है।

यह लिखा गया है कि पच्छिममें बुध तब अस्त होता है जब सूर्य और बुधका अन्तर १२° से कम

* दिवाकरकराक्रान्त मूर्तीनामल्प तेजसाम्।

हो जाता है और पूर्वमें अस्त तब होता है जब दोनों-का अंतर १४° से कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि भीतरी युतिके समय बुध पृथ्वीसे बहुत पास हो जाता है इसलिए उसका बिम्ब बड़ा दिखाई पड़ता है और जब तक सूर्यसे १२° की दूरी तक नहीं हो जाता तब तक दिखाई पड़ता है। परन्तु बाहरी युतिके समय बुध सूर्यसे भी दूर हो जाता है इसलिए उसका बिम्ब छोटा दिखाई पड़ता है और जब उसकी दूरी १४° रहती है तभी छिप जाता है*। शुक्र भी भीतरी युतिके समय सबसे बड़ा दीखता है और बाहरी युतिके समय सबसे छोटा ।

इससे सिद्ध होगया होगा कि ग्रह अस्त होने-के पीछे कहीं चले नहीं जाते वरन् सूर्यके इतने पास होजाते हैं कि आंखसें दिखाई नहीं पड़ते। हां दूर-बीनसे यह सूर्यके चाहे जितने पास हों दिखाई पड़ सकते हैं।

बुध और शुक्र दोनों ग्रहोंकी कक्षा पृथ्वीकी कक्षाके भीतर हैं इसलिए जो बात बुधके लिए कही गयी है वह शुक्रके लिए भी लागू है। अंतर केवल इतना है कि शुक्रकी कक्षा बुधकी कक्षासे बड़ी है इसलिए भीतरी युतिके समय शुक्र पृथ्वी के अत्यन्त निकट हो जाता है।

दूरबीनसे देखने पर बुध और शुक्र दोनोंमें उसी प्रकार कलाएं दिखाई पड़ती हैं जैसी चन्द्रमा में। बाहरी युतिके समय दोनों ग्रह पूर्ण गोल दीखते हैं, क्योंकि उस समय पूरा प्रकाशित बिम्ब हमारे सामने रहता है। जब ग्रह कुछ बगलमें होजाता है तब पूरा प्रकाशित भाग हम लोगोंको नहीं दीखता, दिन दिन बिम्ब कुछ खंडित होता आता है। परन्तु प्रकाश अधिक मिलता है, क्योंकि दूरी कम होती जाती है। इसलिए खंडित ग्रह भी पास होनेके कारण अधिक प्रकाश देता है। भीतरी युति-के समय ग्रहका प्रकाशित भाग सूर्यकी ओर होता है इसलिए हमको ग्रहसे ज़रा भी प्रकाश नहीं मिलता और ग्रह एक काले धब्बेकी तरह दूरबीनमें दिखाई पड़ता है। शुक्रकी कलाएं चित्र ४३ में दिखलाई गई हैं।

चित्र ४४ में राशि चक्रका केवल वह भाग दिखाया गया है जहां मंगल वक्री और फिर मार्गी होता हुआ जान पड़ता है। स सूर्य केन्द्रमें है। पृथ्वी अपनी कक्षामें और मंगल अपनी कक्षामें सूर्यकी परिक्रमा इस प्रकार करते हैं कि वह राशि चक्रमें मेषसे वृष, वृषसे मिथुनमें जाते हुए (सूर्य से) दिखाई देते हैं। सूर्यमें स्थित मनुष्यको कोई ग्रह वक्री होते हुए नहीं दीख सकते; सब ग्रह एक ही तरफसे परिक्रमा कर रहे हैं, उसे ऐसा ही जान पड़ता है। हां पृथ्वी निवासियोंको मंगल मार्गी और शीघ्रगामी तथा मन्दगामी और स्थिर तथा वक्री, मन्दगामी, फिर मार्गी दिखाई पड़ता है। मंगलकी एक परिक्रमा ६८६ दिनमें पूरी होती है

इसलिए १०° की परिक्रमा वह $\frac{६८६ \times १०}{३६०}$ दिन या १९ दिनमें कर लेता है और इतने समयमें पृथ्वी १९° के लगभग चलती है, क्योंकि पृथ्वीकी एक परिक्रमा ३६५ दिनमें पूरी होती है अर्थात् १ दिनमें १° परिक्रमा होती है।

मान लीजिये पृथ्वी अपनी कक्षामें विन्दु १ पर है और मंगल भी अपनी कक्षामें विन्दु १ पर है, तब पृथ्वी निवासियोंको मंगल राशिचक्रमें १ विन्दु पर दिखाई देगा। जब पृथ्वी १९ दिनमें अपनी कक्षाके विन्दु २ पर पहुंचती है, मंगल भी १०° चलकर अपनी कक्षामें विन्दु २ पर पहुंचेगा और

---

* पश्चादस्त मयेोऽष्टाभिरुदयः प्राङ्‌ महत्तया ।
प्रागस्तमुदयः पश्चादल्पत्वाद्दशभिर्भृगोः ॥ ७ ॥
एवं बुधो द्वादशभिश्चतुर्दशभिरंशकैः ।
वक्री शीघ्र गतिश्चार्कात्करोत्यस्तमयोदयौ ॥ ८ ॥
सूर्य सिद्धान्त, उदयास्ताधिकारे

म लोगोंको दिखाई पड़ेगा कि वह राशि चक्रमें विन्दु २ पर है। जब पृथ्वी अगले १९ दिनमें विन्दु पर पहुँचेगी मंगल भी विन्दु ३ पर अपनी कक्षा पहुँचेगा और दिखाई पड़ेगा कि राशिचक्रमें वह २ विन्दुके पास ही ज़रासा आगे हटा है। यहां गल कुछ दिनों तक स्थिरसा जान पड़ेगा, क्योंकि ९ दिनके भीतर राशिचक्रमें २से ३ तक बहुत कम या है। जब पृथ्वी और मंगल अपनी अपनी क्षामें विन्दु ४ पर पहुंचेंगे तब मंगल राशिचक्रमें विन्दु ४ पर अर्थात् पीछे हटा हुआ दिखाई पड़ेगा सीको कहते हैं कि मंगल वक्री है यद्यपि मंगल- की चाल अपनी कक्षामें वैसी सीधी है। ४ विन्दु र पृथ्वी, मंगल और सूर्यके बीचमें हो जाती है, र्थात् पृथ्वीके दाहिने सूर्य होता है और बायें गल। इस प्रकार सूर्य और मंगलका अंतर ६ राशि या १८०° का हो जाता है। इस स्थितिमें कहते हैं कि मंगल सूर्यके सामने दूसरी ओर है (षड- ान्तर in oppositio ) । जब सूर्य अस्त होता है तब गल पूर्वमें उदय होता है और जब सूर्य उदय होता है तब गल पच्छिममें अस्त होता है। इस स्थितिमें मंगल पृथ्वीसे अत्यन्त निकट होता है, सलिए इसका विम्ब बहुत बड़ा दिखाई पड़ता और दूरबीनसे देखनेपर इसी समय मंगल हकी बहुत सी बातें दिखाई देती हैं।

जब पृथ्वी और मंगल अपनी अपनी कक्षामें विन्दु पर होते हैं तो हम लोगोंको मंगल राशि- चक्रमें ५ विन्दुपर और पीछे हटा हुआ देख ड़ता है। दोनों ग्रह अपनी अपनी कक्षामें जब विन्दु पर आते हैं तब मंगल राशिचक्रमें कुछ आगे खसका हुआ ६ विन्दुपर दिखाई देता है। हां भी मंगल कुछ देरके लिए स्थिरसा जान ड़ता है। फिर आगे बढ़ता हुआ दिखाई पड़ता है।

जब पृथ्वी और मंगलके बीचमें सूर्य होता है अर्थात् जब पृथ्वी ४ पर और मंगल 'म' पर होता ब मंगल की दूरी पृथ्वीसे अत्यन्त अधिक होती है। ऐसी स्थितिको 'मंगलकी सूर्यसे युति होती है' ऐसा कहते हैं। इस दशामें मंगलका विम्ब बहुत छोटा दीखता है।

इन दोनों चित्रोंसे यह प्रकट है कि पृथ्वी- कक्षाके भीतरवाले ग्रह उस समय वक्री होते दिखाई देते हैं जब भीतरी युति होनेको होती है और भीतरी युतिके समय वह वक्री ही रहते हैं। परन्तु पृथ्वी-कक्षाके बाहरवाले ग्रह उस समय वक्री होते हैं जब वह सूर्यसे ६ राशि अथवा १८०° के लगभग दूरी पर होते हैं और जिस समय वह ठीक आमने सामने (in opposition) होते हैं, उस समय वक्री ही रहते हैं। भीतरी ग्रह (Inferior planets) प्रत्येक परिक्रमाकी भीतरी और बाहरी दोनों युति- योंके समय अस्त रहते हैं अर्थात् सूर्यकी सीधमें रहनेके कारण सूर्यके प्रचण्ड प्रकाशमें कोरी आंख- से नहीं दिखाई देते हैं परन्तु बाहरी ग्रह (superior planets) की एक परिक्रमामें केवल एक युति होती है, तभी यह अस्त हुए कहे जाते हैं।

इस प्रकार यह प्रकट है कि पृथ्वीको चलती हुई मान लेनेसे ग्रहोंकी विलक्षण गतियोंका सम- झना बड़ा ही सहज है। यदि पृथ्वी अचला मानी जाय तो यह किसी प्रकार नहीं समझाया जा सकता कि ग्रहोंकी वक्रीगति क्यों होती है। पिछले लेखोंमें पृथ्वीकी गतिके प्रमाण भी दिये जा चुके हैं।

—महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

---

# भारतीय विज्ञान

आजकल विज्ञानका अर्थ पदार्थ-विद्या है। प्राचीन समयमें विज्ञानका अर्थ अध्यात्म विद्या था। ब्रह्मज्ञान जिस- से सांसारिक दुखोंकी निवृत्ति होकर ब्रह्मानन्द प्राप्त होता था वह विज्ञान था। संस्कृतके ग्रन्थोंमें जहां कहीं भी विज्ञान शब्द आया है उसका यही अर्थ लिया गया है। ज्ञान और विज्ञान दो शब्द हैं—ज्ञानका अर्थ लौकिक विद्या-

सम्बन्धी ज्ञान और विज्ञान पारलौकिक श्रेयस्कर विद्या है। इसी विद्याको पराविद्या, ब्रह्मविद्या तथा आध्यात्मिक विद्या कहते हैं। इस विद्याका समुचित प्रतिपादन वेदान्तादि ग्रन्थोंमें किया है। वेद, उपनिषद्, वेदान्तसूत्र, गीतादि पुस्तकोंके द्वारा पराविद्याका अनुशीलन होता है। संस्कृत दार्शनिक पण्डित अपने प्रतिपाद्य विषयोंको बड़ी बुद्धिमत्ता और तर्क गम्भीरतासे लिखते हैं। उनके विचारोंके अनुसार प्रत्येक विषयके प्रतिपादनमें पहले अनुबन्ध होने चाहियें। यह अनुबन्ध चार हैं अर्थात् अधिकारी, सम्बन्ध, विषय और प्रयोजन।

अधिकारीसे अभिप्राय है कि प्रस्तुत विषयके सीखनेका कौन अधिकारी है। सम्बन्धसे मतलब है कि ग्रन्थ और उसके विषयमें क्या सम्बन्ध है। जो विषय ग्रन्थमें हो उसका स्पष्ट शब्दोंमें तात्पर्य देना भी ज़रूरी है। ग्रन्थका प्रयोजन क्या है यानी उसका क्या उद्देश है यह चौथा अनुबन्ध है। हम इस लेखमें केवल पहले अनुबन्धका ही कुछ हाल लिखते हैं। आगामी लेखोंमें दूसरे अनुबन्धोंका विवरण दिया जायगा। विज्ञान शास्त्रका विषय जीव-ब्रह्मकी एकता है और उसका प्रयोजन संसार दुःखों-से निवृत्ति प्राप्तकर मुक्त होना है यानी परम ब्रह्मानन्दको प्राप्त करना है। अध्यात्म अर्थात् ब्रह्मविद्याका अधिकारी वह समझा जाता है जिसके अन्तःकरणके तीनों दोष दूर हो जाते हैं। तीन दोष यह हैं :— मल, विक्षेप और आवरण। निष्काम कर्मसे मल दूर होता है, उपासनासे विक्षेप दोष जाता है और ज्ञानसे आवरण दोषका लोप होता है। जिसने निष्काम कर्म और उपासना करनेसे मल और विक्षेप दोषोंको दूर कर दिया है वह चार साधनों द्वारा आवरण दोषके दूर करनेका अधिकारी होता है। साधन चतुष्टय यह हैं—विवेक, वैराग्य, शमादि षट् सम्पत्ति और मुमुक्षता।

आत्मा अविनाशी और अचल है, जगत् आत्मा-से प्रतिकूल स्वभाववाला है यानी विनाशी है और चल है। इस ज्ञानका नाम विवेक है। दूसरे शब्दोंमें वस्तु अवस्तुका निर्णय करना विवेक है। विवेकसे वैराग्य होता है। संसारके जितने भोग और उपभोग हैं उन्हें तुच्छ समझकर मनसे त्याग करना वैराग्य है।

शमादि षट् सम्पत्तियां यह हैं :—

शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपराम या उपरति और तितिक्षा।

मनको विषयोंसे रोकना 'शम' है।

इन्द्रियोंको रोकना 'दम' है।

सत्य वेद और गुरु वाक्यमें विश्वास करना 'श्रद्धा' है।

जिससे मनके विक्षेपका नाश हो यानी मनमें कोई संशय या चंचलता न रहे, वह 'समाधान' है।

स्त्री, धन, जाति-अभिमान आदि कर्मका त्याग, विषयोंको छोड़ना, नारीको देखकर मनमें ग्लानि आ जाना आदि 'उपराम' के लक्षण हैं।

शीत, ताप, क्षुधा, तृषा आदि सहन करनेके स्वभावको 'तितिक्षा' कहते हैं।

ब्रह्म प्राप्ति और बंधनसे छूटनेकी इच्छाका नाम मुमुक्षता है।

इन सब साधनोंके द्वारा मनुष्य ब्रह्मविद्याके प्राप्त करनेका अधिकारी होता है।

जीव ब्रह्मकी एकता वेदान्त शास्त्र या ब्रह्मविद्याका विषय है और अज्ञानकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति यानी मोक्ष इसका प्रयोजन या अन्तिम लक्ष्य है।

जीव और ब्रह्मकी एकता कैसे है और संसार-से निवृत्ति हो परमानन्द कैसे प्राप्त होता है यह बातें आगेके लेखमें देंगे। यह लेख तो इस विषय-की भूमिका मात्र है।

—झब्बोमल।

# अकबरका धर्मपर शासन

काश्मीरमें सम्राट्ने सभी धर्मावलम्बियोंके लिए एक सामान्य धर्म मन्दिर बनवाया था, जिसपर नीचे लिखे भावकी कविता अबुलफ़ज़लने अङ्कित की थी। कविताका मर्म इस प्रकार है—"हे परम पिता परमेश्वर! मन्दिर, मसजिद तथा गिर्जा सभी ठौर सभी भाषाओं द्वारा लोग तेरी ही खोज करते हैं। हिन्दू मुसल्मान दोनों तुम्ही "एकमेवाद्वितीयम्" का यशोगान करते हैं। मसजिदमें तेरी ही स्तुति की जाती है, गिर्जेमें तेरे ही प्रेमका घण्टा बजता है। कभी कभी मैं ईसाई गिर्जेमें जाता हूँ और कभी मसजिदमें; परन्तु वह तू ही है जिसका मैं मन्दिर मन्दिरमें अनुसन्धान करता हूँ। जिसने तेरा मर्म समझ लिया है वह सभी ठौर सत्यका संग्रह करता है। सम्राट्के आदेशसे एक ईश्वरवादियों और विशेष कर काश्मीरके ईश्वरोपासकोंके लिए यह मन्दिर निर्मित हुआ है। जो इस मन्दिरको नष्ट करेगा वह अपने ही धर्मको भग्न करेगा। यदि विवेकके अनुसार चला जाय तो किसीसे किसीका विवाद न हो। बाहरी वस्तुओंके लक्ष्यसे ही अनर्थका उद्भव होता है। हे न्यायवान् परमेश्वर! तू उद्देश्यके अनुसार कार्यका विचार करता है। तू ही सम्राट्के हृदयमें महदुद्देश्योंकी प्रेरणा करता है।"

अबुलफ़ज़लके इन वाक्योंसे सम्राट्की धार्मिक नीतिका अच्छा पता चलता है। अकबर एवं उसके सूफ़ी मित्रोंका यही धार्मिक सिद्धान्त था। वह परम धार्मिक था। उसके अन्तःकरणकी प्रवृत्ति आरम्भसे ही धर्मके गूढ़ और उदार तत्वोंकी ओर झुकी थी। धार्मिकतामें वह आलमगीरसे कम न था, परन्तु सुन्नी कट्टरताका उसमें अभाव था। वह सभीको एक दृष्टिसे देखता था। 'काफ़िर' उसके लिए कोई था ही नहीं। विविध धर्मोंके तत्वको तुलनात्मक दृष्टिसे वह समझने (Study of Comparative Religion) की चेष्टा करता था। महात्मा बुद्धदेवको आत्मबोध होनेके पूर्व एवं राजसी आनन्दके बीचमें जिस प्रकार धार्मिक चिन्ता सताया करती थी उसी प्रकार सम्राट् अकबरके हृदयको भी धार्मिक द्वेष और क्रूरताओंने डाँवाडोल कर दिया। विविध देशों और विविध कालोंमें धर्मके नामपर जो अधर्म हुए हैं और जिस प्रकार मनुष्योंकी मानसिक स्वतन्त्रताका हनन किया गया है उसे देखकर धर्मके असली तत्वको पहचाननेवाले हृदयोंको समय समयपर बहुत सन्ताप हुआ है। बुद्धदेवने संसारको त्याग दिया, राजपाटको तिलाञ्जलि दे दी और ऐसे धर्मका उपदेश किया जिसके द्वारा आज भी लाखों मानव सन्तानको शान्ति और निर्वाणका मार्ग उपलब्ध हो रहा है परन्तु सम्राट् अकबर इच्छा रहते हुए भी "तौहीद इलाही" का प्रसार न कर सका। आत्मबोधका भाव सूत्र रूपमें उसके हृदयमें वर्तमान था। १५५७ में पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें ही अकबरको अदूरदर्शियोंकी उपस्थितिसे कुछ गुप्त क्षोभसा हो गया था। १५६२ में २० वर्षकी अवस्थामें भी उसकी आत्माको अत्यन्त धार्मिक खेदका अनुभव हुआ। फिर १५७८ में ३६ वर्षकी अवस्थामें—'जीवन यात्राके आधे मार्गमें'—ऐसा स्वप्न देखा, ऐसे विषयोंका अनुभव किया जो 'वर्णन नहीं किये जा सकते'। अकबर स्वभावतः सूफ़ी धर्म (Mysticism) की ओर प्रवृत्त था। अपने सूफ़ी मित्रोंकी तरह 'दिव्य यथार्थताका स्वयमेव अनुभव करनेकी वह चेष्टा करता था।' बहुत कुछ सम्भव है कि यदि वह अपनी उच्चाकांक्षाओंको पूर्ण करने तथा विविध सांसारिक कार्योंको सिद्ध करनेमें न लगा रहता तो वह संसारसे विलग होकर धर्मप्रवर्तनमें प्रवृत्त हुआ होता।

अकबर आरम्भसे ही विद्वानों एवं प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियोंके सत्सङ्गमें रहता था। विज्ञान, प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास, धर्म एवं सम्प्रदाय इत्यादि विषयोंपर शास्त्रार्थ सुननेमें उसे

आनन्द मिलता था। अपने शासनकालके बीसवें वर्षमें अजमेरसे लौट आनेपर सम्राट्ने चतुर शिल्पियोंको फ़तहपुर सीकरीके राजकीय उपवनोंमें पवित्र पुरुषोंके लिए एक भवन बनानेका आदेश किया; जिसमें सय्यदों, उलमाओं और शेखोंके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं जा सकता था। भवन-में चार ऐवान (हाल) थे। तैयार हो जाने पर सम्राट् 'शुक्रवारों तथा पवित्र रात्रियों' को उसमें बुद्धिमानोंके सङ्गमें अरुणोदय तक बैठा करता था। पश्चिमी ऐवान सैय्यदोंके लिए, दक्षिणी उल-माओंके लिए, उत्तरी शेखोंके लिए और पूर्वी अमीरोंके लिए बनाया गया था। इस धर्म-मन्दिर-का नाम 'इबादत ख़ाना' था। बृहस्पतिवारको सूर्यास्तके कुछ समय बाद आरम्भ होकर शास्त्रार्थ कभी कभी दूसरे दिन दोपहर तक जारी रहता था। सम्राट् इन शास्त्रार्थोंकी अध्यक्षता स्वयं करता था पर थक जानेपर किसी दूसरे सुयोग्य व्यक्तिको नियत कर देता था। पहले इबादत ख़ानेके शास्त्रार्थोंमें सैय्यदों, शेखों, उलमाओं और अमीरों-को छोड़ कर दूसरा कोई नहीं सम्मिलित हो सकता था। उस समय भी यद्यपि सम्राट्के हृदयमें सूफ़ियोंकी उदारता भरी थी तथापि वह मुसल्मान धर्मको ही उस समय मानता था। अतएव इन विवादोंमें हिन्दुओं अथवा अन्य 'काफ़िरों' को नहीं सम्मिलित किया गया। बदा-ऊनीने भी अकबरकी तत्कालीन धार्मिकताकी प्रशंसा की है। पर इबादत ख़ानेके शास्त्रार्थोंने सम्राट्को सदाके लिए इसलामसे विरक्त कर दिया।

बदाऊनी लिखता है कि "यह विद्वान् एक दूसरेपर अपनी जिह्वाका खड्ग चलाने लगे और इतना बैरभाव प्रकट हुआ कि एक दूसरेको काफ़िर और विधर्मी कहने लगे। शङ्का करनेवालोंने शङ्का करना आरम्भ किया, जिससे सच्ची बात झूठी मालूम होने लगी और झूठी बात सच्ची। और इस कारण सम्राट्, जो बड़ा बुद्धिमान् और तथ्या-न्वेषक था पर* नीच विधर्मी पुरुषोंसे घिरा था, धर्ममें सन्देह करने लगा। शङ्कापर शङ्का होने लगी। सच्चे धर्म (इसलाम) और नियमकी दीवाल तोड़ दी गई। और पाँच छः वर्षोंमें सम्राट्में इसलामका लेशमात्र भी नहीं रहा।" १५७८ में इबादतख़ानेमें विभिन्न मतावलम्बियोंका प्रवेश होने लगा। हिन्दू और ईसाई इत्यादि धर्मोंके ज्ञाता आने लगे। स्मिथका अनुमान है कि १५७९ या १५८० से बड़े बड़े शास्त्रार्थ इबादत ख़ानेमें न होकर दीवानेख़ासमें होने लगे। १५८१ में सम्राट्को पश्चिमोत्तरमें अपने भाईके विपक्ष उद्योगके कारण साम्राज्यके लिए चिन्ता सी उपस्थित थी। पर इस भयको दूर करके वह निर्द्वन्द्व हो गया। सिंहासन और मृत्युके भयसे बचकर वह इस-लामका प्रत्यक्ष विरोध करने लगा। 'दीन इलाही' की स्थापना हुई और सम्राट्की इच्छा थी कि साम्राज्य भरमें इस मतका प्रसार हो। इसके कुछ ही पहले सम्राट्ने (सम्भवतः कूटनीतिसे प्रेरित हो कर) १५७५ से १५८१ के बीचमें यह आज्ञा प्रसारित की थी कि जिसे मक्का जाना हो वह राज-कीय व्ययसे जा सकता है। परन्तु भयके दूर होते ही उसने इसलामका एक तरहसे पूर्णतः परि-त्याग कर दिया।

जहांगीर लिखता है कि "मेरा पिता सदा हर जाति और धर्मके विद्वानोंके सङ्गमें रहता था और विशेषतः भारतके पण्डितों तथा विद्वानोंका साथ किये था। वह था तो निरक्षर; पर विद्वानोंके सत्सङ्गसे उसका ज्ञान इतना बढ़ गया था कि कोई इस त्रुटिको समझ नहीं पाता था।......... उसका कार्य और आचरण सांसारिक मनुष्योंकी समान न था और परमेश्वरका प्रताप उस पर प्रकट हो गया था।............मेरे सम्मानास्पद

---

* बदाऊनी कट्टर सुन्नी था। वह सुन्नी धर्मको न माननेवालोंको 'नीच' 'कुत्ता' 'सुअर' इत्यादिकी उपाधि दिया करता था।

पिताको अनेक तपस्याओंमेंसे एक यह भी थी कि वह जानवरोंका मांस नहीं खाता था। वर्षमें तीन महीने वह मांस खाता था, पर नौ महीने 'सूफी' भोजनसे ही सन्तुष्ट रहता था। जीवहत्या उसे बिल्कुल नहीं पसन्द थी। कई दिवसों और कई महीनोंमें तो कोई भी जीव हिंसा नहीं कर सकता था।" निस्सन्देह सम्राट्ने "अहिंसा परमो धर्मः" का सिद्धान्त जैनियोंसे ग्रहण किया था। स्मिथ सच कहते हैं कि इतिहासकारोंने सम्राट्के धर्मपर जैनियोंके प्रभावका परिचय नहीं दिया है। पर वास्तविक बात यह थी कि सम्राट्के धर्मपर जैनियोंका अच्छा प्रभाव पड़ा।

पारसियोंका प्रभाव तो उसके आचार व्यवहारसे ही प्रत्यक्ष विदित हो जाता है। पारसी धर्ममें उसे अधिक शान्तिदायक व्यवहारोंका समावेश मिला। एक तो पारसी धर्मके सिद्धान्तोंकी चमकीली अंशुमालाएँ स्वयं प्राकृतिक धर्मके जिज्ञासुपर अधिक प्रभाव डालती हैं; दूसरे पारसी धर्मकी जन्मभूमि ईरानसे सम्राट्का सम्बन्ध भी अधिक था। अतएव इस धर्मके सिद्धान्तोंमें अकबरको विशेष आकर्षण भी प्रतीत हुआ। वह सूर्य और अग्निकी अनेक रूपोंमें उपासना करने लगा। राजभवनमें उसने पवित्र अग्निकी स्थापना की, जिसकी रक्षाका कार्य अबुलफ़ज़लको सौंपा गया। सन् १५८० से अकबर सूर्य और अग्निके सामने खुलकर सबके सम्मुख सिजदा करने लगा तथा सायंकालकी रोशनियोंको प्रज्वलित होनेपर पूरा दरबार सादर खड़ा हो जाता था। सूर्यास्तके एक घड़ी पूर्व सम्राट् सूर्यके सम्मानार्थ सचल हो जाता था। सूर्यास्त हो जानेपर बारह रोशनी जलायी जाती थीं, जिनमेंसे एकको लेकर कोई सुमधुर गायक सम्राट्के सम्मुख परमेश्वरकी प्रशंसा करता था। अबुलफ़ज़लने अट्ठारहवें अध्यायमें इसका वृत्तान्त दिया है। सूर्य पूजाकी प्रशंसा हिन्दू राजा बीरबल भी अकबरसे किया करता था; एवं अन्तःपुरकी हिन्दू स्त्रियाँ हिन्दू रीतिसे होम करती थीं। दोनोंका प्रभाव सम्राट् पर पड़ा। वह हिन्दू रीति नीतिका भी बहुत अनुसरण करता था तथा कुछ ईसाई चिन्होंका भी प्रयोग करने लगा था। अकबरके धार्मिक विचारोंके अध्ययनमें जैन, पारसी * हिन्दू और ईसाई प्रभावोंपर विशेष ध्यान देना चाहिये। चारों धर्मवालोंके पास यह विश्वास करनेको पर्याप्त कारण विद्यमान था कि सम्राट् उनके धर्मका अनुयायी था। पर वह पूर्णतः इनमेंसे किसी भी धर्मको नहीं मानता था। सभी धर्मोंमें जो बातें उसे अच्छी लगीं उनका ग्रहण किया, जो अनुपयुक्त प्रतीत हुईं उनका त्याग किया। प्रत्येक धर्ममें अच्छी बुरी दोनों प्रकारकी बातें होती हैं। इबादतखाने एवं दीवाने खासके धार्मिक शास्त्रार्थोंने इस तथ्यकी सत्यता सम्राट्पर सम्यक् प्रकट कर दी।

तुलना करनेपर सम्राट् अकबर कई बातोंमें महाराज हर्षवर्धनके समान था। किन्तु सबसे प्रत्यक्ष तो यह है कि दोनोंमें धर्म जिज्ञासा थी और दोनोंने धार्मिक शास्त्रार्थोंका नियमित आयोजन किया था। अकबरके शास्त्रार्थोंमें कई तो विदेशी एवं अति विरोधी धर्मोंका संयोग हुआ था। सूफ़ी विद्वान्, व्याख्याता, न्यायवेत्ता, सुन्नी शिया, ब्राह्मण, नास्तिक, जैन, चार्वाक, ईसाई यहूदी, सैबियन (अहले किताबके साथ इस सम्प्रदायका भी नाम लिया जाता है) पारसी और बौद्ध एवं प्रत्येक धर्मके विद्वान् सम्राट्के धार्मिक शास्त्रार्थोंमें सम्मिलित होते थे। एक बार मुसल्मानों और ईसाइयोंके गर्म शास्त्रार्थके बाद सम्राट्ने जो कुछ कहा था उससे अकबरके धार्मिक विचारोंका स्पष्ट उद्घाटन होता है। उसने यह कहा था, "लोग समझते हैं कि इसलामके अक्षरोंका बाहरी अनुसरण बिना हृदयमें विश्वास किये, लाभ पहुँचा सकता है। मेरी शक्तिके भयसे अनेक हिन्दुओंने मेरे पूर्वजोंका धर्म ग्रहण कर लिया है। पर अब मेरे हृदयमें सच्चाईकी किरणोंका

* श्रमणों अर्थात् सन्यासियोंने भी अच्छा प्रभाव डाला था।

प्रकाश पहुंच गया है। मैंने समझ लिया है कि विभिन्न विरोधोंके दुःखपूर्ण आगारमें जहां तुम्हारे विकट अभिमान मय अंधेरे बादल और अहङ्कार-मय कुहरे जम गये हैं वहां बिना प्रमाणके एक डग भी आगे नहीं बढ़ सकते। हमें वही धर्म लाभप्रद हो सकता है जिसे हम लोग अच्छी तरह विचार करके ग्रहण करते हैं।"

अकबरके धार्मिक विकाशका अध्ययन बड़ा रोचक है। आरम्भसे ही उदार अकबरका हृदय धर्म एवं धार्मिक उदारताकी ओर झुका था। वह प्रायः फकीरोंके आश्रमों एवं पवित्र स्थानोंको जाता था। धीरे धीरे इसलामके अतिरिक्त अन्य धर्मोंसे भी उसका समागम हुआ। इसलामकी कई रीतियोंसे उसका द्वेषसा हो गया और वह धीरे धीरे इसलामको छोड़ने तथा स्वयं धर्माधिष्ठाता भी बनने की सीढ़ीपर अग्रसर हुआ। १५७९ के जून मासमें फ़तहपुरसीकरीकी प्रधान मसजिदमें सम्राट्ने इमामे आदिल की हैसियतसे ९८७ हिज-रीके जमादी-उलअव्वल मासके पहले जुमा (शुक्रवार) को खुतवा स्वयं पढ़ना आरम्भ किया। फ़ैज़ी रचित खुतबाको पढ़कर सम्राट्ने कुरानकी कुछ आयतें पढ़ीं। फिर फ़ातिहा (कुरानका आरम्भिक भाग) पढ़के नीचे उतरा और नमाज़ पढ़ी। सम्रा-ट्ने ऐसा अनेक बार किया पर बदाऊनी लिखता है कि "खुतबा शुरू करते ही वह तुतलाने और काँपने लगा। वह शेख़ फ़ैज़ीके खुतबेके तीन पाद भी न पढ़ सका और उतर आया। तब फिर दर-बारके ख़तीब हाफ़िज़ मुहम्मद अमीनको इमामका कार्य सौंप दिया।" बदाऊनीके इस विवरणमें अतिशयोक्ति है। इसका अभिप्राय केवल इतना ही समझना चाहिये कि यह नयी बात मुसलमानों-को रुची नहीं और इसी कारण कूटनीतिज्ञ अक-बरने यह कार्य ख़तीबको सौंप दिया।

बदाऊनीके विवरणमें "तीन पाद" का अर्थ यही हो सकता है कि सम्राट्ने केवल तीन चार शुक्रवारको खुतवा पढ़ा था। "तीन पाद" का मौलिक अर्थमें नहीं वरन् लक्ष्यार्थमें प्रयोग हुआ है। पर सम्राट् धर्मके विषयमें अपना नेतृत्व दृढ़ आ-धारपर जमानेसे नहीं चूक सकता था। उसी वर्ष रजबके महीनेमें प्रधान प्रधान उलमाओंके हस्ताक्षरसे सम्राट्को धर्म (इसलाम) के विषयमें सर्वोपरि अधि-कार दिया गया। कुछने तो प्रसन्नतापूर्वक हस्ताक्षर किया पर कुछको विवश होकर करना था। इस अधिकार पत्र द्वारा सम्राट्को यह अधिकार मिला कि उसका निर्णय धर्मके विषयमें भी उलमाओं, क़ाज़ियों और मुफ़्तियों इत्यादि सभीके निर्णयोंके ऊपर माननीय होगा। प्रत्यक्ष रूपसे तो इसलाम-की वृद्धिकी आशासे यह अधिकारपत्र दिया गया, परन्तु वास्तवमें यह सब कार्रवाई कट्टर मुसल-मानोंके विरोधको शान्त करनेके लिए की गयी। इस अधिकार-पत्रने सम्राट्के हाथमें एक दृढ़ अस्त्र दे दिया।

मक़दूमुलमुल्क, शेख़ अब्दुन्नवी सदरुस्सदर, मुल्तानके क़ाज़ी जलालुद्दीन क़ाज़िउल क़ुज़्ज़ात, साम्राज्यके मुफ़्ती सदरजहाँ, शेख़ मुबारक और बदख्शाँके ग़ाज़ीख़ाँने इस अधिकार पत्रपर हस्ता-क्षर और मुहर की थी। इन लोगोंने व्यवस्था दी थी कि "................सुल्ताने आदिलका पद परमेश्वरकी दृष्टिमें मुजतहिदके पदसे ऊंचा है। और इसलामका बादशाह, आस्तिकोंका अमीर, संसारमें ईश्वरको छाया रूप अबुलफ़तह जलालु-द्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह ग़ाज़ी (ईश्वर उसका राज्य चिरस्थायी करे!) बड़ा न्यायी, बड़ा बुद्धिमान एवं ईश्वरका बड़ा भय माननेवाला बादशाह है।.........किसी भी धार्मिक विषयमें मुजतहिदोंकी सम्मति विभिन्न होने पर राष्ट्रके हितकी दृष्टिसे और राजनीतिक लाभके विचारसे सम्राट् जो निर्णय करेगा वह हमें एवं समस्त राज्यको मान्य होगा। अपरञ्च यदि सम्राट् कोई नवीन आज्ञा भी दे तो उसे मानना हमारा और राष्ट्रका परम कर्त्तव्य होगा, पर वह आज्ञा कुरानकी किसी आयतके अनुसार राष्ट्रके हितकी दृष्टिसे निकाली गई हो।

और यदि कोई भी प्रजा सम्राट्की निकाली हुई आज्ञाका विरोध करेगी तो उसे परलोकमें कष्ट एवं इस लोकमें माल और अधिकारकी हानि उठानी पड़ेगी।……"

सम्राट्के धार्मिक विकासका क्रम अनेक राजकीय व्यवसायोंके बीचमें मन्द नहीं था। काबुलसे लौटनेपर उसका राजनीतिक भय दूर हो गया। वह अब स्वतन्त्रतापूर्वक अपने धार्मिक सिद्धान्तोंके प्रसारमें अग्रसर हुआ। उसने इस लाभको बिल्कुल त्याग करके एक नया ही मत चलाया जिसका प्रवर्तक तथा धर्माध्यक्ष सम्राट् स्वयं था। यह नया मत आधुनिक थियासोफ़ी ( Theosophy ) से कई बातोंमें मिलता था। इस मतके सिद्धान्त* "कुछ तो मुहम्मदके कुरानसे, कुछ ब्राह्मणोंके शास्त्रोंसे और कुछ ईसाइयोंके अञ्जीलसे लिये गये।" सम्राट्ने सभी धर्मोंकी अच्छी बातोंको इस धर्ममें सम्मिलित किया। एक सभाका आह्वान करके उसने अपने विचारोंको प्रकट किया और सबके स्वीकार करने पर शेख़ मुबारक ( अबुल फ़ज़लका पिता ) को सब तरफ़ इन विचारोंको उद्घोषित करनेके लिए भेजा। पर शेख़ मुबारकको प्रचारके कार्यमें अत्यल्प सफलता हुई। सम्राट्का 'दीन या तौहीद इलाही' स्थापित हो गया पर इसके माननेवालोंकी संख्या बहुत कम थी। वह अपने मतका प्रसार करनेके लिए भय या कठोरताका उपयोग नहीं करना चाहता था। जो थोड़ेसे लोग दीन इलाहीको मानते थे वह भी अबुल फ़ज़ल और अकबरकी मृत्युके बाद नहीं रहे।

दीन इलाहीके† प्रधान अनुयायियोंमें केवल एक हिन्दू बीरबलका ही नाम मिलता है। राजा भगवानदास और कुंवर मानसिंहने तो इसका अनुयायी होना स्पष्टतः अस्वीकार ही कर दिया था। नया मत चलानेकी लालसा अकबरको, सम्भव है, अलाउद्दीन ख़िल्जीके इतिहास पढ़नेसे हुई हो। ख़िल्जी भी नया मत चलाना चाहता था, पर कोतवालके यह समझानेपर कि नया मत चलाना बादशाहोंका काम नहीं है वह मान गया था। ख़िल्जी और उसके कोतवाल दोनोंका काम सराहनीय था। पर अकबरके हृदयमें इस लालसाका उद्भव चाहे ख़िल्जीके दृष्टान्तसे ही हुआ हो, पर सम्राट्के* धार्मिक विकासपर प्रभाव दूसरोंका ही पड़ा, जिनका सूक्ष्म विवरण पिछले पृष्ठोंमें दिया जा चुका है। अकबर साम्राज्यका अधिष्ठाता ही नहीं धर्मका नेता भी हो गया। दीन इलाहीमें सम्मिलित करनेके पहले इसका भली भाँति निश्चय कर लिया जाता था कि वह व्यक्ति वास्तवमें तौहीदको मानता है या नहीं। यह निश्चय कर लेने पर सम्राट् अपनी चलाई रीतिके अनुसार प्रार्थीको शिष्य बनाकर "अल्लाहु अकबर" का मन्त्र देता था। जब कभी दीन इलाहीके माननेवाले मिलते थे तो सलाम करनेके स्थान पर एक "अल्लाहु अकबर" उच्चारण करता था और दूसरा "जल्ला जलालहू" कह कर उत्तर देता था।

सम्राट्ने दीन इलाहीके लिए कुछ अन्य विशेष नियम भी बनाये थे और स्वभावतः इस धर्मके अनुयायियोंपर उसकी विशेष कृपा रहती थी। दीन इलाहीके माननेवालोंको माल, जान, सम्मान और धर्म—चारोंको सम्राट्के लिए आवश्यकतानुसार त्यागनेकी प्रतिज्ञा करनी होती थी। कुछ लोग केवल आंशिक प्रतिज्ञा ही करते थे। सम्राट्के जीवन कालमें दीन इलाहीकी चर्चा

* बारःोली।

† दीन इलाहीके माननेवालोंमें अबुलफ़ज़ल, फ़ैज़ी, शेख़ मुबारक, ज़ाफ़रबेग, आसफ खां, कासिमेकाही अब्दुलसमद, आज़म खां कोका, मुल्ला शाद मुहम्मद, सूफ़ी अहमद, सदरजहां ( प्रधान न्यायवित् ) और उसके दो पुत्र, मीरशरीफ़, सुलतान ख़्वाजा, मिर्ज़ाजानी, तक्की, शेख़जादा और बीरबल थे।

* सम्राट्के धार्मिक विकासकी तुलना सम्राट् अशोक और महाराज हर्ष वर्धनसे कीजिये। इस सम्बन्धमें अकबरकी तुलना गुरु गोविन्दसिंहके ख़ालसासे भी कीजिये।

चलती रही, पर उसके देहान्तके साथ साथ दीन इलाहीका भी अन्त हो गया। किन्तु सम्राट्की विशद धार्मिक नीतिका अनुसरण उसके बाद भी होता रहा ( आलमगीरके समय तक ) उसकी नीतिका प्रजाके हितपर विशेष प्रभाव पड़ा। यहां पर यह भी लिख देना आवश्यक है कि सम्राट्ने यद्यपि सयूरग़ल और धार्मिक भूमि इत्यादि धर्मा-ध्यक्षों और धार्मिक पुरुषोंको देनेकी नीतिको बिल्कुल बन्द नहीं किया था तथापि (जैसा पिछले एक परिच्छेदमें लिख आये हैं ) इस प्रथाको वह बहुत निरुत्साहित करता था। धार्मिक भूमिके मार्गमें उसने कुछ कठिनाइयां उपस्थित कर दी थीं, जिस पर बदाऊनी अपनी "मुन्तख़ाबुत्तवारीख़" में बहुत नाक भौंह सिकोड़ता है। पर सम्राट्के धार्मिक भूमि सम्बन्धी नियमोंसे साम्राज्यको लाभ था। धर्मके विशेष अङ्गों पर शासन करनेके अति-रिक्त सम्राट्को सार्वजनिक सदाचारको पवित्र रखनेका बड़ा ध्यान रहता था। इस विषय पर सम्राट्के विरोधियों द्वारा लिखे विवरणोंसे भी बहुत उत्तम प्रकाश पड़ता है। अतएव सम्राट्के विषयमें, अन्तमें, यही धारणा होती है कि वह धार्मिक उदारताके साथ साथ अपने प्रजाकी धार्मिक उन्नतिका वास्तविक विकाश चाहता था।

—शेषमणि त्रिपाठी

---

## कुत्ता

किसीको कुत्ता कहना एक गाली है। क्योंकि इस शब्दसे गुलामी, टुकड़ेपर लालच, घरमें बहादुर और बाहर डरपोक होना, निर्ल-ज्जतासे भोग विलास करना आदि भाव सूचित किये जाते हैं। भारतवर्षमें कुत्तोंको बड़ा अपवित्र समझा जाता है। उसको छूकर हाथ धोया जाता है। शिकारी लोगोंका यह बड़ा भारी सहायक है। शिकारका पता देना, पीछा करना, पकड़ना और स्वामीके लिए अपनी जानपर खेल जाना यह कुत्ते-के ही गुण हैं।

वर्तमानमें तो यूरोपमें कुत्तोंसे बहुत से अद्भुत काम लिये जाने लगे हैं, जैसे बर्फ़में दबे जीवोंका उखाड़ लाना, गाड़ी खिचवाना, सन्देसा भेजना आदि। गाय, भेड़ बकरी आदि पशुओंके रख-वाले लोग कुत्तोंको अपना पहरेदार नियत करते हैं। चोरपर भूंकना, चोरको काटना, उसका पीछा करना, स्वामी को जगाना, यह सभी बातें, या अच्छे गुण कुत्तेमें पाये जाते हैं, तो भी कुत्ता बिचारा पशु होनेसे मनुष्य दृष्टिमें बड़ा नीच समझा जाता है। इस लेखमें मैं प्राचीन ऋषियोंके लेखानु-सार कुत्तेका बुद्धिज्ञान दर्शाना चाहता हूं। अकल-मन्दीका ठेका, या उन्नतिका ठेका, मनुष्यने अपने आप सम्भाला है। आप सभ्य बनकर शेष सब जीवोंको पशु, उसीने बनाया है। इसमें चाहे उसका कोई भी स्वार्थ हो, परन्तु हम इतना अवश्य कहेंगे कि न सब पशु समान हैं और न सब मनुष्य समान हैं। ज्ञान एवं बौद्धिक उन्नतिका तारतम्य सभी जगह देखा गया है। इसी विचारसे कुत्तेकी जीवनलीला, चेष्टा, अंग विकार आदिपर विचार करनेसे, हम बहुत ही विचित्र परिणामों पर पहुँचते हैं।

मनुष्य जीव इतना अधिक पापी, धोखेबाज़, हत्यारा और निर्दय है कि सभी जीव इससे भय खाते हैं और इससे द्वेष करते हैं। इसको देखकर भागते हैं। इसका गन्ध लेकर परे हट जाते हैं।

तृणधारी पशुओं और पक्षियोंमें बड़ा स्नेह होता है। गाय, बैल, घोड़ा मृगादिपर निश्चिन्त और निर्भय होकर लाल, गुरसल, घुग्घू और काक आदि पक्षी बैठे रहते हैं। परन्तु मनुष्यके पास आते ही सब भागते हैं। कारण यह है कि वह इसपर विश्वास नहीं करते, तो भी इसने अपनी आशासे बहुतोंको सधा सधाकर अपनेको बहुतोंका विश्वास पात्र बना लिया है। पुचकार कर (साम), भोजन देकर (दान), मारपीट कर और बांध कर

(दण्ड) और एक पशुको दूसरेसे पिटवा और पकड़वा कर (भेद) प्रायः इसने सबको अपने वश कर लिया है। तिसपर भी अपने आप किसीपर विश्वास नहीं करता। सधे से सधे पशुओंको बांधकर रखता है, पक्षियोंको पिंजरेमें फांसता है। बस यही छल और स्वार्थ-परायणता और निर्दयतामें मनुष्य जीवने बड़ी उन्नति की है। निःसन्देह और भी बहुत से बुद्धिके क्षेत्रोंमें मनुष्य पशुओंसे कहीं बढ़कर आगे निकल गया है, परन्तु तो भी बहुत से स्थलोंमें मनुष्यको पशुओंके पीछे चलना पड़ता है।

पांच इन्द्रियोंसे बाह्य विषयको जानकर ठीक परिणामपर पहुँचना यह एक सधी हुई बुद्धिका कार्य है। अपने स्वार्थके क्षेत्रोंमें जिस प्रकार मनुष्य अपनी बुद्धिको काममें लाता है उसी प्रकार पशु भी लाते हैं और अपने जीवनके सभी कार्य सम्पादन करते हैं। प्राकृतिक घटनाओं और सांसारिक विशेषताओंका भी पशु बराबर अनुभव करते हैं। पशुपक्षी संसारके नाना प्रकारके अनुभवोंको देख कर मनुष्य स्वतः बहुत से स्थानोंपर पशुओंके ज्ञानका ऋणी होजाता है। ऐसे कर्ज़ रूपमें ज्ञान देनेवाले एक पशु-उपाध्याय महाशय कुक्कुर भी हैं।

पराशर, बसन्तराज, वराह, आदि प्राचीन-ग्रन्थकारोंने नाना प्रकारके घटनास्थलोंमें कुत्तेकी अद्भुत चेष्टाओं और लीलाओंका वर्णन किया है। इनपर ध्यान देनेसे कुत्तेका ज्ञान, सामर्थ्य, अनुभव, बुद्धि, स्मृति और व्यवहारज्ञताका पूरा परिचय मिलता है।

कुत्तेकी आदत है कि वह प्रायः टांग उठाकर मूत दिया करता है। परन्तु ध्यानपूर्वक देखनेसे एक विशेषता देखी जाती है; वह यह कि मूतनेके पहले वह उस वस्तुको सूँघता है। फिर कुछ ठहर कर मूत जाता है। इस क्रियामें कई बातोंका पता लगता है। १. टांग उठाकर अपने शरीरको मलसे बचाता है। २. सूँघकर उस वस्तुकी अपने प्रति उपयोगिता और अनुपयोगिता जान लेता है। ३. किसी उठी हुई वस्तुपर मूत्र करनेसे मूत्रके छींटे नहीं उड़ने देता। कुत्तेके अतिरिक्त अन्य पशु भी मल मूत्रादि त्यागनेके अवसर पर कुछ झुक जाते हैं और अपने मल मूत्रके स्थानोंको विशेष रूपसे आगे पीछे करके सावधानीसे अपने शरीरको बचा लेते हैं। इससे देह रक्षा और पवित्रताका विचार पशुओंमें स्पष्ट दीख पड़ता है। इस सामान्य विचारके अतिरिक्त विशेष विशेष अवसरोंपर विशेष रूपसे चेष्टा होनेके विषयमें विद्वानोंका अपना अनुभव और भी विचित्र है।

वराह मिहिर लिखते हैं:—

"यदि पला हुआ कुत्ता रास्तेमें चलते समय किसी मनुष्य पर या घोड़े, हाथी आदिकी ज़ीनपर या आक आदि दुधारे पौधे पर, ईंटोंके ढेर, छाता, चारपाई, आसन, ओखली, झण्डा, चँवर, अनाजके ढेर या फूलोंपर मूत दे तो स्वामीकी कार्यसिद्धि होती है। गीले गोबर पर मूते तो मीठा भोजन मिलता है। सूखेपर मूते तो सूखा भोजन या गुड़ लड्डूका भोजन मिलता है।

जहरके वृक्ष पर, कांटेदार झाड़ी पर, काठ, पत्थर सूखावृक्ष, हड्डी और श्मशानकी राख पर मूत कर आगे चले तो यात्रीका अनिष्ट होता है।

जो यात्रीके आगे कुत्ता, बिना बरते हुए नये जूते खड़ाऊँ या चारपाई, या नये कुम्हारके बर्तनों-पर मूतकर चले तो यात्रीको कन्याका लाभ समझना चाहिये। यदि बरते हुए बरतनोंपर या चारपाईपर मूते तो उसकी स्त्री दुश्चरित्रा होती है। गाय, बछड़े पर मूत दे तो वह वर्णसंकर समझना चाहिये।†

---

† बृहद् वराह संहितायाम्—

नृतुरग करिकुम्भ पर्याण सक्षीरवृक्षेष्टका सञ्चयच्छत्रशय्या सनोलूखलानि ध्वजं चामरं, शंखलं, पुष्पितं वा प्रदेशं यदा श्वाऽव मूत्र्य यतो यातियातुस्तदा कार्य सिद्धिर्भवेद्। आर्द्रके गोमये मिष्टभोज्यागमः। शुष्कसम्मूत्रणे शुष्कमन्नं गुड़ोमोदकावाप्तिरेवाथवा। अथ विषतरु कण्टकि, काष्टपाषाणशुष्क द्रुमास्थिश्मशानिमूत्र्याग्रहत्याथवा यायिनो ग्रेसरोऽनिष्ट माख्याति। शय्या कुलालादिभाण्डान्यभुक्ता न्यभिन्नानि वा मूत्रयन् कन्यका दोष-

इसी प्रसङ्गपर पराशर कहते हैं—

यदि कुत्ता नये अन्नसे भरी देगची या थाली-पर मूतदे तो कन्या ( कुमारी ) का लाभ होता है। पुराने पर मूते तो स्त्रीका लाभ होता है। चारपाई-पर मूत दे तो स्त्री या घरवालीकी मृत्यु होती है। यदि उसकी पगड़ी या स्त्री या उसीके देहपर मूत दे तो धनकी प्राप्ति होती है।

भावी होनेवाली घटनाओंका कुत्तेके दिमाग-पर जब कभी अक्स पड़ता है तो वह उसी समय अपने स्वामीको किसी न किसी रूपमें बतलानेकी चेष्टा करता है। वह उसको कैसे ढंगपर बताता है यही एक विचित्रता है। प्राचीन विद्वानोंने कुत्तेके मनोविज्ञानका बहुत अच्छा निरीक्षण किया था। इसके अतिरिक्त और भी वैचित्र्य सुनिये।

प्रायः देखा जाता है कि कुत्ता प्रायः चमड़ा जूता, हड्डी, मांसका टुकड़ा मुंहसे उठा लेता है और खाने लगता है। इसमें तो यह कहा जा सकता है कि वह मांस लोलुप होनेसे स्वादका मारा हुआ हड्डियां चबाता है, मांस और जूतेको भी नहीं छोड़ता; परन्तु बहुत से अवसरोंपर कुत्ता चीज़ें उठा लाता है परन्तु खाता नहीं और बहुत से अवसरोंपर ऐसी वस्तुएँ भी उठा लाता है जो कुत्तेके किसी कामकी नहीं होती हैं। इन विशेषताओंपर भी विद्वानोंका ध्यान बड़ी प्रबलतासे आकर्षित हुआ है। इस प्रसंगमें वराह लिखते हैं कि

"जब कुत्ता मुखमें जूता लेकर सन्मुख आता है तो यात्रामें सुख रहता है। मांस लेकर आवे तो धन प्राप्ति होती है और हड्डी लेकर आवे तो शुभ होता है। जलती लकड़ी और हड्डी लेकर आवे तो मृत्यु और बुझी लकड़ी लेकर आवे तो मालिकको दण्डे आदिसे चोटका कष्ट पहुंचता है। यदि कुत्ता मरे मनुष्यका सिर हाथ या पांव उठा लावे तो भूमिका लाभ होता है। कपड़ा या कपड़ेकी लीर मुखमें लावें तो मृत्यु होती है। सूखी हड्डी लेकर कुत्ता घरमें घुसे तो प्रधान पुरुषकी मृत्यु होती है। लोहेकी जंजीर, सूखी बेल, या रस्सी मुखमें लेकर आवे तो कैद खाने या बंधनकी सूचना होती है।"

इस प्रसंगमें पराशर कहते हैं—

यदि कुत्ता घरमेंसे रस्सी या कपड़ेके टुकड़े मुंहमें उठाकर बाहर लेजावे तो आग लगनेका डर होता है। नमकका टुकड़ा लेजावे तो धनके चुराये जानेका भय होता है। जूता ले जावे तो नौकर नौक-रानियां घर छोड़कर चली जाती हैं। दही उठा ले आवे तो स्त्रीके नाशकी सूचना होती है। यदि इन्हीं वस्तुओंको बाहर न ले जाकर बाहरसे घरमें ले आवे तो उक्त पदार्थोंका लाभ होता है।

महाराजा बसन्तने अपने शाकुन शास्त्रमें बहुत उत्तमतासे पशु पक्षियोंकी चेष्टा लीला और शब्दों-का निरूपण किया है। कुत्तेके मूतने और वस्तुएं मुखमें पकड़ लानेके विषयमें कुछ विशेष भी लिखा है। वह कहते हैं, "जिसके घरमें कुत्ता गोबर मांसके टुकड़े और मलके टुकड़े ला लाकर बखेरे उस घरमें सुन्दर स्त्रियां, प्रभूत धन और अनन्त सुखका लाभ होता है *।"

---

कृद्, भुज्यमानान्चिेद्दुष्टतातद् गृहिण्याःस्तथास्यादुवानत्फलं। गोस्तुसम्मूत्रणे वर्णजः सङ्करः ॥

गमन सुख मुपानहं सम्प्र गृह्योपतिष्ठेद्यदास्यात्तदा सिद्धये मांस पूर्णानेऽर्थाप्ति मार्देण चास्थ्ना शुभम्। साग्न-लानेन शुष्केण चास्थ्ना गृहीते न मृत्युः। प्रशान्तो ल्मुकेनाभि घातो। अथपुंस शिरो हस्त पादादि वक्त्रे भुवोहयागमो, वस्त्र चीरा शिभिर्व्यापद-कै: विदाहः सवक्त्रे शुभम्। प्रविशतित गृहं सशुष्कास्थि वक्त्रे प्रधानस्य तस्मिन् वधः शृङ्खला शीर्णं वल्ली वरत्रादि बन्धनं चोपगृह्योपतिष्ठेद्दयत्र स्यात्तदा बन्धनम् ॥ वराह संहितायाम् श्वशाकुनम्।

पराशरः—

वस्त्रंखण्डं रज्जुंवा तणात्यग्निभयम्। चेल्लवणं वा धनक्षयम् दधितु भार्यायाः। पलायमान उपानहं प्रेष्यायाः। आनयनेतु फलादिष्वेतेषुलाभम् ॥

* वसन्त राजः—

यस्येच्यते वेश्मनि सारमेयः किरन्नसौ गोमय मांस विष्ठा, गमां मनोज्ञां [illegible] ॥

इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी क्रियायें हैं जिनका और भी अद्भुत रहस्य है।

कुत्ता एक मांसाहारी जन्तुओंकी कोटिमेंसे है। इसको वानस्पतिक भोजन प्रिय नहीं है। मानव जातिकी गुलामी करनेपर उसको अब अन्नकी आदत भी पड़ गयी है; तो भी वह अपने जातीय रंगमें रंगा हुआ शिकार करता है और मांस और हड्डीको भी नहीं छोड़ता। यह एक परखी हुई बात है कि कुत्ता फल, फूल, कभी नहीं खाता। आगे डाल देनेपर भी सूंघकर छोड़ देता है। परन्तु देखा गया है कि घरका पला कुत्ता फल मुखमें पकड़ कर भी ले आता है। इस प्रसङ्गमें वसन्तराजका कथन है कि "यदि कुत्ता मुखमें फल लेकर घरमें घुसे तो गृहमें पुत्र लाभकी सूचना मिलती है †"

वराह मिहिरने अन्य क्रियाओंके विषयमें निम्न लिखित बातें लिखी हैं—

"किसी ग्राम या नगरमें जब राजा या अधिकारी पदच्युत होनेवाला होता है तब उदित होते हुए सूर्यकी ओर मुख करके एक या बहुतसे कुत्ते रोने लगते हैं।

जब अग्निके लग जानेका भय होता है या चोर पड़ने लगते हैं तो प्रायः कुत्ता आग्नेयकोणमें मुख करके रोता है। अग्निके भयमें कुत्ता मध्याह्न कालमें भी सूर्यकी ओर मुख उठाकर रोता है। खून बहनेकी घटनाके समय कुत्ता सायंकालको सूर्याभिमुख होकर रोता है।

सूर्यास्तके समय सूर्याभिमुख होकर कुत्तेके रोनेसे ही किसानोंपर आपत्ति की सूचना मिलती है। वायव्यकोणमें मुख करके रोवे तो आन्धीकी सूचना और चोरोंका भय विदित होता है।

ब्राह्मणों पर विपत्ति पड़नेके समय या गौओंकी चोरी होजानेके समय आधीरातको उत्तरकी ओर मुख करके कुत्ता रोता है और घरका कुत्ता कन्याके कुमारीत्व नष्ट होजाने, अग्निके लगने या गृहिणीके गर्भपातके समय ब्राह्ममुहूर्त्तमें ईशानकोणमें मुख करके रोता है।

वर्षाकालमें घोर तीव्र वृष्टिके पहले कुत्ता छप्पर या मकानमें आकर ऊंचा ऊंचा शब्द करता है। और अन्य समयोंमें मुख उठाकर रोनेसे मौत, अग्नि और महामारी आदि रोगोंकी सूचना देता है।

वर्षाकालमें भी यदि वर्षा न हो और कुत्ता पानीमें नहाकर लोटने लगे या शरीरको कंपा कंपाकर बार बार पानी पीवे तो १२ दिनके भीतर वृष्टि होती है।

---

† फलं गृहीत्वा सहसा निवासं प्रविशन् जल्पति पुत्र लाभम् ॥

वराहः—

सूर्योदयेऽर्काभिमुखोविरौति, ग्रामस्य मध्ये यदिसारमेयः एको यदा वा बहवः समेताः शंसन्ति देशाधिपमन्यमाशु ॥२॥ सूर्येन्मुखः श्वानलदिक् स्थितश्च चौरानलत्रासकरोऽचिरेण मध्याह्नकालेऽनल मृत्यु शंसी पराो तिनः स्यात्कलहो पराह्ने ॥ ३ रुवन् दिनेशाभिमुखोऽस्तकाले कृषीवलानां भयमाशु धत्ते ॥ प्रदोषकालेऽनिलदिङ्मुखस्तु धत्ते भयं मारुत तस्करोत्थम् ॥४ उदङ्मुखश्चापि निशार्धकाले विप्रव्यथां गोहरणं च शास्ति निशावसाने शिवदिङ्मुखश्च कन्याभिदूषानलगर्भपातान् ॥ उच्चैः स्वसस्युस्तृणकूपसंस्था प्रासादवेश्मोत्तमसंस्थितावा। वर्षासु वृष्टिं कथयन्ति तीव्रामन्यत्र मृत्युं दहनं रुजश्च ॥ प्रावृट्कालेऽवग्रहोऽम्भोवगाह्य प्रत्यावृत्तै रेचकैश्चाय भीक्ष्णम्। आधुन्वन्तो वापिवन्तश्च तोयं वृष्टिं कुर्वन्त्यन्तरे द्वादशाहात् द्वारे शिरोन्यस्य बहिः शरीरं रोरूयते श्वागृहिणी विलोक्य रोग प्रदः स्यादथ मन्दिरान्तर्बहिर्मुखः, शंसति बन्धकीताम् ॥८ पादौजिघ्रेद्यायिनश्चेदयात्रा प्राहार्थोक्ति वाञ्छतानिश्चलस्य। स्थानस्थस्यौ पानहो चेद्विजिघ्रेत् क्षिप्रंयातां सारमेयः करोति ॥ वामंजिघ्रेज्जानुवित्तागमाय स्त्रीभिः स्याकंविग्रहो दक्षिणं चेत्। ऊरुं वामं चेन्द्रियार्थोप भोगः सव्यं जिघ्रेद् इष्ट मित्रैर्विरोधः उभयोरपि जिघ्रणेहिवाह्नोविजयो रिपु चौर सम्प्रयोगः ॥ अथभस्मनिगोपयीत भक्ष्यान् मांसास्थीनिच शीघ्रमग्नि कोपः ग्रामे भषित्वाच बहिः श्मशाने भषन्ति चेदुत्तम पुंविनाशः पिपासतश्चाभिमुखो विरौति यदस्तदाश्वानिरुणद्धियात्राम् ॥

यदि कुत्ता घरकी मालकिनको देखकर दर-वाजे पर सिर रखकर और शेष शरीर घरसे बाहर रखकर बार बार रोवे तो घरमें कठिन रोग आपड़नेकी सूचना मिलती है। यदि शरीर अन्दर और मुख बाहर हो तो घरवालीका दुश्चरित्र बतलाता है।"

प्रायः कुत्ता मालिकके पास आकर उसके हाथ पैर आदि अंगोंको सूंघा करता है। बहुत से अव-सरों पर इसमें भी बड़ा रहस्य भरा रहता है, जैसा कि वराह लिखते हैं—

"यदि मालिक यात्रा करनेको उद्यत है तो इस अवसर पर आगे होनेवाली विघ्नबाधाओंको देख-कर कुत्ता मालिकके पैरोंको सूंघा करता है। यदि कहीं न जाता हो तब सूंघे तो धनकी प्राप्ति की सूचना मिलती है। यदि कुत्ता जूतोंको सूंघे तो पता लगता है कि मालिकको अभी शीघ्र ही कहीं जाना होगा।

बाईं टांग सूंघे तो धन लाभ दांएको सूंघे तो स्त्रियोंके साथ लड़ाई, बांई जांघको सूंघे तो विषय भोग, दाईंको सूंघे तो इष्टमित्रोंसे लड़ाई की सूचना मिलती है।

शत्रु और चोरोंकी सम्भावनापर कुत्ता मालिक-की बांहोंको सूंघा करता है। अग्निके भयसे कुत्ता मांस और हड्डियोंको राखमें छिपा देता है।

गांव या नगरके बड़े आदमीकी मृत्युके अवसरपर गांवमें रोकर कुत्ता फिर श्मशानमें रोता है। यात्रा करनेवालेके सामने खड़ा होकर रोवे तो इससे मार्गका विघ्न सूचित होता है।

बिना मारे पीटे ही यदि कुत्ता खऊ् खः समान दीर्घस्वरसे ऐसा रोवे जैसे दण्डोंसे पिट रहा हो तो इससे ग्राम या गृहके उजड़ने या महा मृत्युके फैलनेकी सूचना होती है।

इसके अतिरिक्त और ग्रन्थोंमें और और भी [illegible] बतलाई गयी हैं।

बसन्तराजके मतसे—

जब बहुत वर्षा होनी होती है तो कुत्ता पहलेसे घरकी छतपर जाकर सोता है। यदि कुत्ता छत पर जाकर सूर्यकी ओर मुख उठा कर बार बार भौंके तो बहुत देरके बाद वृष्टि होती है। गौओंकी आपत्तिपर कुत्ता गोशालाओंमें अपने जाकर देह-को धुनता है; सोनेवालेको आपत्तिसे चेतानेके लिए वह खाटपर चढ़कर धुना करता है।

पाराशर कहते हैं—"जलविप्लवके भयके समय बहुत से कुत्ते रोते हैं और कुछ एक उनमेंसे मुखमें मिट्टी उठा उठाकर धामीके पतनके डालते हैं। अन्य प्रकारके भयोंके समयमें भी ऊँचा मुख करके कुत्ते रोते हैं या गांवसे बालकोंको उठा उठाकर भाग जाते हैं।

मत्स्य पुराणमें लिखा है—

महामारीके अवसरोंपर कुत्ते अपने मुखमें काठ, जलती लकड़ी हड्डी और सींग ले लेकर दौड़ते देखे जाते हैं।

इस प्रकार सामान्यतः विद्वानोंकी सम्मतियों-का हमने उद्धरण कर दिया। परन्तु यह सभी शाकुन शास्त्रका भाग है जिस पर प्रायः लोगोंका विश्वास ही नहीं जमता। शाकुन शास्त्र वस्तुतः नेचुरल सायन्स है। जैसे वर्त्तमानके नेचुरलिस्ट लोग अब एक एक पशु और पक्षीका चरित्रा-

---

[illegible] रुवन्तिदण्डै रिवताड्यमानाः।
श्वानोऽभिधावन्ति च मण्डलेन तेसून्यतां मृत्युभयंचकुर्युः॥

बसन्तराजः—

[illegible] भवनस्य [illegible]।
यदा [illegible] मुक्ता भवतिप्रभूता॥
गोष्ठे यदाश्वा [illegible] तद्गो पुरे वापिपुरस्य पीड़ा।
शय्यासु शय्यापतिभीति [illegible] तथाऽन्यस्य गृहस्यमध्ये

पराशरः—

बहुषु पथिषुनदत्सु पर चक्रे [illegible]रयाताः समेत्यै कश्वं द्रुतशः पांशुंनयद्भिः[illegible] जलपात्रे क्षिपन्तीति अन्यं भयम्। [illegible] [illegible] विधान॥

है। बिल्लीसे उसका शाश्वतिक विरोध माना गया है।

मनुष्य की शिक्षासे कुत्ता जिस वस्तुको अपना लेता है उसके लिए अपना सर्वस्व त्याग देता है। उसके लिए उनके हृदयमें बड़ा प्रेम उत्पन्न हो जाता है।

कुत्ते प्रेम संयोगके अवसरोंपर चुम्बन करते हैं। मैंने बूढ़े कुत्तोंके मुखोंपर चुम्बन करने और प्रेम परिचय दर्शानेके लिए कूद कूद कर चुम्बन करते हुए छोटे छोटे पिल्लोंको देखा है। वह चुम्बन करते हुए छोटी सी कूं कूं की आवाज़ भी करते हैं।

कुत्तोंको अपने सम्बन्धके प्रायः सभी संकेत मालूम हो जाते हैं।

यदि रसोई करते हुए कुत्ता घुस आता है तो उसे तूचो तूचो की आवाज़से या कह्लोक् कह्लोक् कहकर दुत्कारा जाता है। ग्वालियरकी तरफ़ कुत्तेको सचेत करनेके लिए दो दोका शब्द कहा जाता है। पिल्लोंको सधानेके लिए कुरकुरका शब्द कहा जाता है। केवल हाथकी अंगुलियां मिलाकर ही आगे बढ़ाने और पुचकारनेसे कुत्ते खानेकी वस्तुका संकेत समझ लेते हैं। इतने सारे सङ्केतोंसे कुत्ता मनुष्यकी भाषाको समझता है। कुत्तेकी सङ्केतमयी भाषाका अध्ययन करें तो और भी विस्मय होता है। जैसे! रखवाला कुत्ता, जब किसी परदेशीको घुसता देखता है तो गम्भीरतासे मुख उठाकर देखता है। थोड़ा गुर्राता है। इतने पर भी वह न माने तो तैशमें आकर एकदम भोंकता है।

जिन कुत्तोंको पीछे लगनेकी आदत होती है वह यात्रीको आते हुए खड़े खड़े देखते रहते हैं और ज्योंही यात्री आगे बढ़ता है कि वह पीछे भौंकते हुए लग जाते हैं। एककी भौंक सुनकर महल्लेके और भी कुत्ते आ जुटते हैं।

कुत्ता ऋतु धर्मके समय स्त्री संयोगके निमित्त कलहका तो बहुत ही उत्तम नमूना है।

प्रेमी कुत्तोंका परस्पर नाज़ नखरोंसे खेलना उनके कौतूहलमय भावाविष्कारका बहुत उत्तम दृश्य है। इस दृश्यके लिए और ऐसी नर्म लीलाओं के लिए तो मानव समाजके उच्चतम मस्तिष्क भी अपना सर्वस्व अर्पण कर गये हैं। महाकवि तक उन लीलाओंको देख मोहित हो हो उलझ गये हैं। फलतः जिस केलिको मानव समाज अपने साहित्यका उच्चतम भाग बनाये बैठा है उसका भावाविष्कार पशुओंमें भी बड़ी उत्तमतासे दृष्टिगोचर होता है।

ऐसे भावाविष्कारोंमें मानव समाजको भी रस मिलता है। वह इस रसमें मस्त हो सम्पूर्ण संसारको तुच्छ समझता है। यही दशा पशुओंमें भी है। फलतः ऐसे भावाविष्कारोंके रस लेनेकी सामर्थ्य कुत्तेमें अवश्य माननी पड़ेगी। प्रणयकेलि, प्रणय कलह, अनुनय, आदि सभी भाव समय समयपर भिन्न भिन्न रूपमें वह प्रकट करते हैं। उनमें भी पिता पुत्रका प्रेम, पिल्लोंमें आपसमें प्रेम, पति पत्नीमें प्रेम, अड़ोसी पड़ोसीका प्रेम बिलकुल स्पष्ट रूपसे देखा गया है।

इसी प्रकार प्रबलके सामने दबना, निर्बलपर आक्रमण, अपनेसे आगे दबे हुएपर दया करना या सूँघकर ही छोड़ देना, प्रबलके सन्मुख पूंछ दबाकर लेट जाना और पिछली टाँग उठाकर अपना पेट दिखाना फलतः अपना सर्वस्व अर्पण करदेना, आदि भाव भी बराबर देखे जाते हैं।

प्रायः देखा होगा कि कुत्ता जब शत्रु कुत्तेपर टूट कर पड़ता है तो गलेको पकड़ कर हिला देता है और खूब काटता है। यह एक विचित्र भाव है। कुत्तेको इस बातका कैसे पता चला कि गलेको काटनेसे शत्रुसे दुश्मनी निकलती है और गला ही प्राण घातक मर्म है।

इस प्रकार देखनेसे एकसे एक आश्चर्यजनक भाव आपको दीखते जायंगे जिनका उल्लेख करना भी असम्भव है। बस प्रश्न यही है कि क्या यह सब स्वभाव ( Instinct ) कहकर टाल दिया जाय या बुद्धिपूर्वक क्रिया व्यापार माना जाय।

कई वर्षों पहले सरस्वतीके किसी अङ्कमें मानव-भाषा-भाषी जर्मन कुत्तेका हाल प्रकाशित हुआ था। इन सब घटनाओंको देखकर हम इसी परिणामपर पहुँचते हैं कि ऋषियोंका पुनर्जन्मका सिद्धान्त ही प्रबल है। मनुष्य योनीके जीव ही शेष भोगयोनियोंमें प्रकट होते हैं और उनकी आत्मामें सभी प्रकारके मानवीय भावोंके संस्कार रहते हैं जो देश, काल, अवस्थिति, शरीर भेद, उपकरण भेद, साधनभेद और शिक्षाभेद से नाना रूपोंमें दिखाई देते हैं।

---

## सभ्यताके युग*

संसारके किसी विषयसे सभ्य मनुष्यका सम्बन्ध इतना आवश्यक और घनिष्ट नहीं है जितना 'सभ्यता'से है, तथापि इस विषयका जितना कम ज्ञान सभ्य मनुष्यको होता है उतना कम और किसी अन्य विषयका नहीं होता, और इसीलिए इस विषयपर जैसी असंगत और संदिग्ध बातचीत लोग करते हैं वैसी अन्य विषयपर नहीं करते। समाज-शास्त्रके अतिरिक्त, विशेषतः उसके उस अंशके अतिरिक्त जिसको "सभ्य मनुष्य" से सम्बन्ध है, इस आधुनिक चमत्कारयुक्त बुद्धि-क्षोभके युगमें सभी शास्त्रोंकी उन्नति होती चली जा रही है। यह शास्त्र अभी तक प्रायः उसी दशामें है जिस दशामें कामटेके समयमें था, जो इसका जन्मदाता कहा जाता है। अभी तक सभ्यताका कोई साधारण पैमाना नहीं बन पाया है। इस दृष्टिसे हम अभी उन प्राचीनोंसे आगे नहीं बढ़े जो सभी विदेशियोंको असभ्य कहते थे। शिक्षित पाश्चात्य संसारने तो अपनी जातियोंको सर्वोच्च और जंगली जातियोंको सबसे नीचा स्थान देकर, बाकी सब जातियोंको इन दोनोंके बीचमें स्थान दे दिये हैं और इस प्रकार एक सभ्यताका मनमाना पैमाना† खड़ा कर दिया है। यह मनमानी व्यवस्था पूर्वीय लोगोंको चकित कर देती है। एक जापानी राजनीतिज्ञने निम्नलिखित बातें यूरोपियन श्रोतृमण्डलीके सम्मुख कही थीं:—

"दो हज़ार वर्ष तक हम संसारके किसी देशसे न लड़े। हमारी ललित कलाओं और उत्तमोत्तम निर्माण की हुई वस्तुओंकी ख्याति देश देशमें फैल कर हमारा परिचय कराती थी, पर हम जंगली और असभ्य समझे जाते थे। परन्तु जिस दिनसे हमने अन्य देशोंसे लड़ाई ठानी और अपने शत्रुओंको हज़ारोंकी संख्यामें मारा उसी दिनसे आप हमको सभ्य जातियोंमें गिनने लगे।"

पश्चिमीय संसारमें भी सभी इस मनमानी व्यवस्थाके माननेवाले नहीं हैं। वहाँ भी यह बात स्वीकार नहीं की जाती कि पश्चिमी सभ्यतासे उत्तम कोई अन्य सभ्यता हुई ही नहीं। असंख्य आविष्कार और औद्योगिक चमत्कार (वह भी जो जंगी हवाई जहाजके सदृश वास्तवमें असभ्य कामोंके लिए बनाये गये) और अफ्रीका और एशियाके असभ्य प्रदेशोंमें काल्पनिक परोपकार और शिक्षण कार्य—इनके नाम लेले के जो पाश्चात्य सभ्यताका गुण-गान होता है, उसका माधुर्य कभी कभी विरोध-रागके अलापसे विच्छिन्न हो जाता है। हक्सलेने लिखा है—"आधुनिक श्रेष्ठतम सभ्यतामें न तो कोई आदरणीय आदर्श ही है और न उसमें स्थिरताका गुण ही है। मुझे यह कहनेमें कुछ भी झिझक नहीं है कि यदि अधिकांश मनुष्य जातिकी अधिक उन्नतिकी आशा नहीं है, यदि यह सच है कि ज्ञानकी वृद्धिसे (जिससे प्रकृतिपर विजय और धनकी प्राप्ति होना स्वाभाविक है) मनुष्यकी दरिद्रता और उसके कारण होनेवाली शारीरिक और नैतिक पतितावस्थामें उन्नति नहीं होगी तो मैं बड़ी प्रसन्नतासे एक ऐसे

---

* "Epochs of Civilisation" by Mr. Pramathanath Bose B. Sc. (Lond.)

† Primitive Culture vol. I. by E. B. Taylor

दयालु पुच्छल तारेका स्वागत करूंगा जो सारे संसारका नाश करदे, क्योंकि ऐसी दशामें इसी प्रकार प्रलय होना अच्छा प्रतीत होता है।*

डाक्टर ए० आर० वालेसका मत है कि अफ्रीका-में यूरोपियन लोगोंके जानेका फल अभीतक तो यही हुआ है कि उन्होंने शराब और बारूद खूब बेची है, अपनी भूमि और पशुओंके छीने जानेपर विरोध करनेके कारण वहांके निवासियोंकी हत्या कर खूनकी नदी बहाई हैं, गोरे और काले दोनोंके ही चरित्र भ्रष्ट हो गये हैं और जो जातियां गोरे लोगोंसे हार गई हैं वह किसी न किसी रूपमें दासत्वके बन्धनमें जकड़ गई हैं †

सभ्य-समाज-शास्त्रकी इस हीन दशाके कारण कई हैं। इस शास्त्रके अध्ययनमें बड़ी बाधाएं और कठिनाइयां होती हैं। इस शास्त्रके अध्ययनकी सामग्री बहुत मिली जुली और अत्यधिक है और अर्वाचीनकालसे लेकर सात आठ हजार वर्ष पीछे तक, जब मानवीय इतिहासका अस्पष्ट आरम्भ हुआ प्रतीत होता है, फैली हुई है। फिर इस सामग्रीको बटोरना भी ऐसे ऐसे ग्रन्थों, गाथाओं, लेखों आदि-मेंसे है जिनमें मनुष्यकी उत्कृष्टता विषयक चर्चा उतनी ही कम है जितनी अर्द्ध-बर्बर वीरोंके पराक्रम और कुटिल राजनीतिज्ञोंके कार्य-विवरण की कथाओंका बाहुल्य है। परन्तु सभ्य-समाज-शास्त्रकी सबसे बड़ी कठिनाई मनको सभ्यताके पूर्ण दृश्यके देखनेके लिए एकाग्र कर उसमें लगानेकी असमर्थता है। जन्मसे ही मनुष्यपर विचारोंका, भावोंका, श्रद्धाका, पक्षपातोंका और भिन्न भिन्न विधानोंका इतना अधिक और सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है कि उसके कारण अनायास ही मनकी भावना निश्चित हो जाती है और फिर उसमें परिवर्तन होना अत्यन्त ही कठिन हो जाता है। यूरोपियनके विचार यूरोपमें ही परिमित रहते हैं और एशिया-निवासीके विचार भी एशिया में ही साधारणतया परिमित रहते हैं। जब कभी इन प्रदेशोंकी सीमाओंका उल्लंघन होता भी है तो साधारणतया बाहरकी वस्तु भद्दी, तुच्छ, विकृत और असंगत जान पड़ती है। सभ्य जीवनके ऐसे पक्षपात-युक्त और अपूर्ण निरीक्षणके कारण तत्सम्बन्धी शास्त्रीय विचार अवश्य ही दूषित होंगे।

कुछ शिक्षित एशिया-निवासी ऐसे हैं, विशेषतया चीनियों में, जो सभ्य-यूरोपियनको जंगलीसे अच्छा नहीं समझते। साथ ही साथ प्रसिद्ध पाश्चात्य लेखकोंकी पुस्तकोंमें निम्नलिखित जैसी बातें भी पाई जाती हैं:—प्राचीन लोग उन्नतिकी कोई कल्पना ही नहीं कर सकते थे, न तो वह इसका परित्याग कर सकते थे और न उसको ग्रहण ही कर सकते थे। पूर्वात्य जातियां अब भी वैसी ही हैं। इतिहासके आरंभकालसे वह जैसी थीं वैसीही बनी हैं। केवल कुछ जातियां जिनमें यूरोपियन रुधिरका मिश्रण है उन्नति करती हैं। पर यह भी यही समझती हैं कि उनके लिए उन्नति करना अनिवार्य है, स्वाभाविक और चिरकालिक है। *

स्वर्गीय प्रोफेसर हक्स्ले जैसे दार्शनिक और योग्य वैज्ञानिक भी प्राचीन ऋषियोंके शान्ति और मुक्ति पानेके प्रयत्नोंको कार्यक्षेत्रसे भागना और लड़कपन समझते थे। उनकी इच्छा थी कि आधुनिक यूरोपियन लोग पूरे मर्दकासा काम करें और आदमियतका व्यवहार करें।

यह विचार कि दो हजार वर्ष पहलेके सभ्यपुरुष आधुनिक लोगोंकी अपेक्षा लड़के थे पश्चिममें सर्वमान्य नहीं है। हेनरी जार्जने लिखा है कि आधुनिक सभ्यतावाले हम लोग अपने पूर्वजोंसे और उन समकालीनोंसे जो हमसे कम सभ्य है बहुत ऊंचे हैं। इसका कारण यह है कि हम लोग एक स्तम्भ

* Government: Anarchy or Regimentation collected Essays vol. I

† The Wonderful Century" P. 372

* Walter Bagehot, "Physics and Politics" P.41-42

पर खड़े हैं न कि यह कि हम वस्तुतः लम्बे हैं। शताब्दियोंमें जो काम हमारे लिए हुआ है उससे हमारा कद नहीं बढ़ा है, उससे एक ऐसी इमारत बन गई है जिस पर हम अपने पैर रख सकते हैं।" * डाक्टर ए० आर० वालेसने लिखा है, "सभ्य पुरुषके पिछले इतिहासपर दृष्टिपात करके मैंने यह दिखला दिया है कि प्राचीन कालकी अपेक्षा हमारी मानसिक अथवा नैतिक उत्कृष्टता-का कोई भी प्रमाण † नहीं मिलता है"।

किसी भी सभ्य पूर्वीयका यह पूछना असंगत न होगा कि "क्या आधुनिक पाश्चात्य पुरुष मेरे प्राचीन पुरखाओंसे किसी अंशमें श्रेष्ठतम है ? क्या कान्ट, कूवियर या डार्विनकी मानसिक शक्ति कपिल, कनफूसियस या कणादकी मानसिक शक्तिसे उत्तम थी ? क्या उस कालकी, जिसमें लाउट्श, बुद्ध, ज़ोरास्टर और ईसा जनमे आधुनिक कालसे नैतिक उन्नतिमें तुलना की जा सकती है ?" जिसकी आंखें पाश्चात्य सभ्यताकी चमक दमकसे चौंधिया नहीं गयी हैं वह यह कह सकता है कि प्राचीन ऋषियोंका उन लोगोंको सन्यास ग्रहण करनेका उपदेश देनेका कारण, जो आयु अधिक होनेपर आत्मोन्नतिके इच्छुक थे, यह था कि आध्यात्मिक उन्नति अधिक यत्नशीलता और सफलतापूर्वक होसके, क्योंकि बुद्धके समान वह भी यह समझते थे कि "विजयी वही है जो आत्मापर विजय पावे, लड़ाईमें सहस्रों आदमियोंको तो बहुतेरे मार सकते हैं।"

पाश्चात्य जातियां मर्दानियतका जीवन बिता रही हैं, जिसका सूत्र है "निरन्तर कार्य करो, ढूंढो और पाओ" परन्तु स्वभावतः यह प्रश्न होता है कि "पायेंगे क्या"। पूर्वीय पक्षसे एक दर्शक यह पूछ सकता है कि "पाश्चात्य मर्दकी वह विजय किस कामकी है, जो प्रेम, दया और आत्मसमर्पण द्वारा नहीं प्राप्त हुई, बल्कि जिसके लिए सारे संसारके असंख्य मनुष्योंको पद दलित हो दुख उठाना पड़ा है और जिसके प्राप्त होनेसे वह शान्ति और आनन्द न मिला जो धर्म और प्रेमसे मिलता है; बल्कि जिसका परिणाम अतृप्त इच्छा, अदम्य लोभ और निरंतर विरोधके कारण दुःख और अशान्ति ही हुआ है।"

परन्तु जो आभ्यान्तर और वाह्य कठिनाइयां अभीतक सभ्य-समाज शास्त्रकी उन्नतिको रोके हुई थीं अब धीरे धीरे कम हो रही हैं। सहनशील और परिश्रमी पुरातत्व विशारदों और भाषावेत्ताओंकी खोजसे प्राचीन और अर्वाचीन् काल मिल रहे हैं और समाज शास्त्रके विद्यार्थीको प्राचीन सभ्यताओंके भिन्न भिन्न दृश्य प्राप्य हो रहे हैं। साथ ही साथ पाश्चात्य और पूर्वीय सभ्यताओंके गाढ़ समागमसे वह पक्षपात रहित मनोवृत्ति उत्पन्न हो रही है जिसके विना इस शास्त्रका अध्ययन असंभव था। ऐसी ही खोजके निमित्त यह छोटा ग्रन्थ लिखा गया है। अत्यन्त संकोचसे यह प्रकाशित किया जाता है। बहुत सी बातें जो मैंने इस एकान्त वासमें बिना एक वृहद् पुस्तकालयकी सहायताके एकत्र की हैं पूर्ण और सन्तोषजनक नहीं हैं। वास्तवमें जितना बड़ा कार्य मैंने उठाया है उसकी दृष्टिमें भारतीय कविका यह कथन सत्य है "धोखेमें मेरे ऐसे बौनेने एक ऐसे फलके लिए हाथ फैलाया है जो एक देवको ही प्राप्त हो सकता है।"

* "Progress and Poverty," P. 356

† "The World of Life," P. 396

---

## खाना क्यों खाते हैं ?

आहारः प्राणिनः सद्यो बलकृद्देहधारकः ।
आयुस्तेजः समुत्साह स्मृत्योजोऽग्निविवर्द्धः ॥ (सुश्रुत)

हमारा शरीर हर समय कुछ न कुछ कार्य करता रहता है। जिस समय हम बेसुध सोते हैं, हृदय, फेफड़े और अन्य कई भीतरी शारीरिक अवयव उस समय भी काम करते रहते हैं। काम करनेसे शरीर घिसता और क्षीण होता है। प्रतिक्षण शरीरकी सेल ( Cells ) टूटती रहती हैं। एक पग चलने, एक शब्द बोलने और तनिक

भी सोचने विचारने या चिन्ता करने, यही नहीं प्रत्युत श्वास लेने तकसे भी, शरीरमें कुछ न कुछ ह्रास अवश्य होता है। यदि किसी मनुष्यको तोल-कर किसी कड़े परिश्रमके कामपर लगाया जाय और काम करनेके पश्चात् फिर तोला जाय तो उसका भार पहिलेसे कुछ कम उतरेगा। इस परी-क्षासे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि काम-काज करनेसे हमारा शरीर क्षीण होता है। व्यायाम या परिश्रमके अन्य काम करनेसे जो थकान आजाती है उसका यही कारण है। यदि इस क्षतिकी पूर्ति न हो तो शरीर थोड़े समयमें ही दुबला, पतला, कमज़ोर, क्षीण और शक्ति-हीन हो जाय; यहां तक कि फिर वह प्राण धारण करने योग्य भी नहीं रहे; पर ऐसा नहीं होता। हम देखते हैं कि कड़ेसे कड़ा परिश्रम करनेवाले मज़दूर, किसान और लोहार इत्यादि भी दीर्घजीवी होते हैं। उनका शरीर भी बहुत समय तक प्रायः एक ही दशामें रहता है।

इसके साथ ही यह भी देखा जाता है कि कई दिनका उपवास करनेसे शरीर बहुत दुबला और निर्बल होजाता है, शरीरका भार घट जाता है। यह क्यों? उपवासके दिनोंमें केवल भोजन करना ही तो छोड़ दिया जाता है। इसी एक कारणसे मनुष्य अत्यन्त शीघ्र दुबला पतला और निर्बल हो जाता है। भोजन न मिलनेके कारण ही अकालके समय सैकड़ों मनुष्य सूखकर काँटा हो जाते हैं। भोजन न खा सकनेके कारण ही रोगी मनुष्य दिन-पर दिन कमज़ोर होता जाता है उसका भार घटने लगता है। इन उदाहरणोंसे प्रतीत होता है कि भोजन करते रहनेपर परिश्रमी मनुष्यका कले-वर क्षीण नहीं होता और भोजन न करनेपर बिना परिश्रम किये भी शारीरिक भार घट जाता है; अतएव स्पष्ट है कि हमारे शरीरमें जो ह्रास होता है उसकी पूर्ति करनेवाला आहार ही है; आहारसे ही शरीरके टूटे हुए सेलों (Cells) के स्थानमें नये सेल बनते और उनकी मरम्मत होती रहती है।

विद्वानोंने अनुमान लगाया है कि इस परिव-र्तनसे प्रायः सात वर्षमें हमारा शरीर बिल्कुल बदल जाता है। अर्थात् अबसे छः वर्ष पहिले हमारे शरीरमें जो रक्त, मांसादि था, उसका लेश-मात्र भी अब नहीं है। अब उसमें गत छः वर्षोंमें निर्मित नये रक्त मांसादि हैं। अबसे छः वर्ष बाद यह भी न रहेंगे। शरीरमें इस प्रकारका परिवर्तन प्रतिक्षण होता रहता है। इधर एक कण टूटा और उधर दूसरा कण बन गया। जहाँ कोई कण घिसा फौरन् उसकी मरम्मत हो गई। यह क्रम सदैव जारी रहता है।

'आहार' ह्रासकी पूर्ति करनेके अतिरिक्त २५-३० वर्षकी आयु तक शारीरिक वृद्धि भी करता है। नव जात शिशुके भार, लम्बाई इत्यादिका युवा-पुरुषके भार और उसकी लम्बाई इत्यादिसे मुक़ा-बिला करनेपर यह बात आप ही स्पष्ट हो जाती है। बालकके शरीरमें ह्रास कम होता है और आहार से नये सेल अधिक बनते हैं। इसीलिए उसका शरीर दिन दिन बढ़ता जाता है। परन्तु युवा-पुरुषोंमें अधिक काम करनेके कारण ह्रास अधिक होता है और आहारसे केवल उसकी पूर्ति मात्र ही होती है। इतना अधिक आहार वह पचा नहीं सकता कि जो ह्रासकी पूर्ति करनेके अतिरिक्त शारी-रिक वृद्धि भी होसके। वृद्ध पुरुष जितना आहार पचा सकते हैं उससे उनके शारीरिक ह्रासकी पूर्ति भी नहीं हो पाती; दूसरे उनकी पाचन-शक्ति भी क्षीण होने लगती है। यही कारण है कि उनका शरीर दिन प्रति दिन क्षीण होने लगता है। यहां पर ह्रासके इस आधिक्य और पाचन शक्तिकी क्षीणताके कारणोंपर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

शरीरमें ताप भी भोजनसे ही उत्पन्न होता है। जब तक हम जीते हैं हमारा शरीर सदैव गरम रहता है और हर समय थोड़ी बहुत गरमी शरीर-से बाहर भी निकलती रहती है। जाड़ेके दिनोंमें जब हम प्रातःकाल कपड़े पहनते हैं तो पहले तो वह ठंडे मालूम हुआ करते हैं, परन्तु थोड़ी देरमें

गरम होजाते हैं, इसका कारण यही है कि हमारे शरीरसे जो गरमी निकलती रहती है उसमेंसे थोड़ी सी कपड़ोंमें समा जाती है और इसीसे वह गरम होजाते हैं।

चाहे हम शीत प्रधान देशमें रहें, चाहे उष्णता प्रधान देशमें चले जायं, चाहे ग्रीष्म ऋतु हो अथवा जाड़ेका मौसम, परन्तु शारीरिक तापमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। (थर्मामीटर) ताप मापक यन्त्रसे परीक्षा करने पर स्वस्थ मनुष्यके शरीरका ताप क्रम प्रायः ९८½° फा० पाया जाता है। ऋतु, आदि तथा प्रकृति भेदके कारण थोड़ा बहुत अन्तर मनुष्योंके शारीरिक तापक्रमोंमें रहता है। परन्तु बिना किसी रोगके अधिक अन्तर नहीं हो सकता। इसके विपरीत मृत्युके पश्चात् शरीर बिल्कुल ठंडा हो जाता है। इससे प्रकट होता है कि यह ताप सूर्यसे प्राप्त नहीं होता प्रत्युत शरीरके भीतर ही उत्पन्न होता है।

हमारे शरीरमें सदैव एक प्रकारकी दहन क्रिया हुआ करती है (अग्नि जला करती है)। आहार इस दहन-क्रियामें ईंधनका काम देता है। भोजनका एक अंश ओषजन (आक्सीजन Oxgyen) नामक वायुसे मिलकर अप्रत्यक्ष रूपसे जलने लगता है, जिससे गरमी उत्पन्न होकर हमारे शरीरको गरम रखती है; और सदैव थोड़ी बहुत शरीरसे बाहर भी निकलती रहती है। मृत्युके पश्चात् श्वास क्रिया बन्द हो जानेके कारण शरीरमें ओषजन नहीं आ सकती; अतएव दहन-क्रिया बन्द हो जाती है, क्योंकि ओषजनके बिना अग्नि नहीं जल सकती, यही कारण है कि मृत्युके पश्चात् शरीर ठंडा हो जाता है। यद्यपि शरीरके भीतर होनेवाली दहन-क्रियामें लौ, प्रकाश या लपटें नहीं निकलती क्योंकि यह दहन-क्रिया अत्यन्त मन्द गतिसे हुआ करती है, तथापि कुछ साधारण परीक्षाओंके द्वारा इसका होना प्रमाणित किया जा सकता है।

जलनेवाले लकड़ी, मांस, वसा आदि साधारण पदार्थोंमें कर्बन और उज्जन (Carbon and Hydrogen) नामक दो पदार्थ प्रायः होते हैं। जब इनमेंसे कोई पदार्थ जलता है तो उसमेंके यह दोनों पदार्थ ओषजन वायुसे मिलकर यथाक्रम कर्बन द्विओषिद (कार्बोनिक एसिड गैस) और जल-वाष्प उत्पन्न करते हैं। ओषजनके साथ कर्बनका संयोग होनेसे कार्बोनिक-एसिड गैस और उज्जनके संयोगसे जल वाष्पकी उत्पत्ति होती है। यद्यपि यह दोनों पैदा हुए पदार्थ अदृश्य पदार्थ हैं तथापि निम्नाङ्कित सरल और साधारण प्रयोगोंसे उनकी जांच की जा सकती है।

प्रथम परीक्षा—एक स्वच्छ बोतलमें चूनेका साफ़ पानी एक औंस डाल कर यदि उसे भले प्रकार हिलाया जाय तो उसमें कोई परिवर्तन न होगा। पानी पहिलेकी भाँति स्वच्छ ही रहेगा। परन्तु यदि एक छोटी सी मोमबत्तीको जलाकर, एक तारमें बाँधकर उस बोतलके भीतर उतारें और बोतलके मुंहको काग़ज़से ढांप दें तो थोड़ी देरमें बत्ती बुझ जायगी। अब यदि बत्ती निकाल कर बोतलके मुंहको हथेली या कागसे बन्द करके उसे हिलायें तो बोतलका पानी श्वेत—दूधिया—हो जायगा। यह क्यों ? कारण यह है कि मोमबत्तीके जलनेमें उसमेंका कर्बन हवाकी ओषजनसे मिलकर कर्बन द्विओषिद् बना लेता है। यही गैस चूनेके पानीको दूधिया कर देती है।

द्वितीय परीक्षा—एक मोमबत्तीको जलाकर उसके ऊपर कांचका एक स्वच्छ और सूखा ग्लास इस प्रकार उलटा करके ढांप देना चाहिये कि बत्ती बुझ न जाय अर्थात् ग्लासके भीतर हवा जानेके लिए मार्ग रहना आवश्यक है। कुछ समय पश्चात् ज्ञात होगा कि ग्लासका कुछ भाग अस्वच्छ होगया है। अब यदि इस अस्वच्छ भागको अँगुलीसे स्पर्श करके देखा जाय तो उस स्थान पर जलके सूक्ष्म कण जमे हुए प्रतीत होंगे। यह जल कहाँसे आया ? परीक्षासे पहिले तो ग्लास सर्वथा सूखा था ? बात यह है कि बत्तीके जलनेसे उसमेंकी उज्जन वायुकी ओषजनसे मिलकर जल वाष्पके रूपमें परिणत हो गई। यह वाष्प ही ग्लासकी ठंडी दीवालोंपर जम गई।

उपरोक्त परीक्षाओं द्वारा ही शरीरमें उक्त पदार्थों का पैदा होना सिद्ध किया जा सकता है। एवं यह सिद्ध होनेपर शरीरके भीतर होनेवाली दहन-क्रियाको प्रमाणित करनेके लिए किसी अन्य प्रमाणकी आवश्यकता न रहेगी; क्योंकि दहन-क्रियाके बिना उक्त दोनों पदार्थोंकी उत्पत्ति सम्भव नहीं हो सकती।

जल-वाष्प एवं कार्बोनिक एसिड गैस दोनों ही पदार्थ हमारे प्रश्वास—भीतरसे बाहर आनेवाले श्वास—में विद्यमान रहते हैं। जल-वाष्पका होना प्रमाणित करनेके लिए तो किसी विशेष परीक्षाकी आवश्यकता ही नहीं है; किसी स्वच्छ चिकने पदार्थपर ( जैसे स्लेट या काँच, शीशा आदि ) तनिक मुंह खोलकर प्रश्वास वायु छोड़िये। आप देखेंगे कि वह पानीसे नम होगई है। इसके अतिरिक्त शीत-कालमें मुंहसे धुआं सा निकलता हुआ प्रतीत हुआ करता है। यह धुआं और कुछ नहीं प्रश्वासके साथ बाहर आई जल की भाप ही है, जो बाह्य शीतल वायुके संयोगसे घनीभूत होकर इस रूपमें परिवर्तित हो जाती है। यद्यपि यह वाष्प ग्रीष्म ऋतुमें निकला करती है, परन्तु बाह्य वायु शीतल न होनेके कारण शीत-कालके समान जल कण स्थूल नहीं हो सकते और इसीलिए वाष्प भले प्रकार दिखलाई नहीं देती।

प्रश्वास या उच्छ्वासमें कार्बोनिक एसिड गैसकी विद्यमानता प्रमाणित करनेके लिए नीचे दी हुई सहज परीक्षा आवश्यक है।

यदि एक स्वच्छ बोतलमें चूनेका साफ़ पानी डाल कर कांचकी नलीके द्वारा थोड़े समय तक उसमें मुंहकी भाप प्रविष्ट की जाय तो बोतलका पानी दूधिया हो जायगा। यह हम देख ही चुके हैं कि चूनेका पानी कार्बोनिक एसिड गैसके प्रभावसे दूधिया होता है।

उपरोक्त प्रयोगोंसे प्रश्वास वायुमें जल वाष्प और कार्बोनिक एसिड गैसकी विद्यमानता, भले प्रकार प्रमाणित हो जाती है और इनकी विद्यमानता दहन-क्रियाको सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त प्रमाण कही जा सकती है।

आभ्यान्तरिक दहन-क्रियासे जो ताप उत्पन्न होता है उसका ही दूसरा रूप शक्ति है जो हमें कार्य करनेमें समर्थ करती है।

इस प्रकार शरीरमें जा कर आहार—

( १ ) शारीरिक ह्रासकी पूर्ति
( २ ) शारीरिक वृद्धि
( ३ ) तापोत्पत्ति और
( ४ ) कार्य कारिणी शक्ति या बलकी उत्पत्ति,

यह चार काम करता है। और इन्हींके लिए आहारकी आवश्यकता है।

आहार न मिलनेपर शारीरिक ह्रासकी पूर्ति होना तो शीघ्र ही रुक जाता है, परन्तु आभ्यन्तरिक दहन-क्रिया कुछ अधिक समय तक होती रहती है। जब इस दहन-क्रियाको आहार रूपी ईंधन नहीं मिलता तो शरीरस्थ रस, रक्त, मांस मेदादि धातुओंमें जो जलने योग्य उपादान होता है वह इस कमीकी पूर्ति करते हैं एवं जिस प्रकार लकड़ी कोयले आदिके जलनेसे उनका भार कम होजाता है इसी प्रकार आहाराभावमें शरीर भी दिन प्रति दिन घटने लगता है। आहाराभावसे शरीरके भीतर क्या परिवर्तन होता है, आयुर्वेदमें इसका विशद् वर्णन निम्न प्रकार किया गया है।

> बुभुक्षितो न योऽश्नाति तस्याहारेन्धन क्षयात।
> मन्दो भवति कामाग्निर्यथा चाग्निर्निरिन्धनः॥
> आहारं पचति शिखी दोषानाहार वर्जितः।
> पचति दोषक्षये धातून् प्राणान् धातु क्षयेऽपिच॥

अर्थात्—यदि क्षुधातुर ( भूखा ) मनुष्य भोजन नहीं करता तो आहार रूपी ईन्धनके अभावसे जठराग्नि उसी प्रकार मन्द हो जाती है, जिस प्रकार लकड़ी कोयले आदिके अभावसे साधारण अग्नि। इसके साथ ही जठराग्नि पहिले ( अहाराभावमें ) दोषोंको पचाती है, पश्चात् रक्त मांसादि शारीरिक धातुओंको; एवम् धातुओंका क्षय होनेपर प्राणान्त हो जाता है। निष्कर्ष यह कि आहारके अभावमें यद्यपि शरीर कुछ समय तक जीवित रह सकता है, परन्तु अधिक समय तक नहीं और वह भी निर्बल तथा असमर्थ दशामें।

# प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

---

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

---

भाग—१३

मेष–कन्या १९७८

April—September 1921.

---

प्रकाशक

विज्ञान–परिषत् प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

# विषयानुक्रमणिका
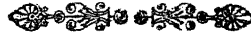
## अर्थशास्त्र और व्यापार (Economics and Industry)



## औद्योगिक रसायन (Industrial Chemistry)



## इतिहास (History)



## कृषिशास्त्र (Agriculture)



## जन्तुशास्त्र (Zoology)



## जीवनी (Biography)



## ज्योतिष (Astronomy)



## रसायनशास्त्र (Chemistry)

## वनस्पति शास्त्र ( Botany )



## विकाशवाद (Evolution )



## विद्युत ( Electricity )



## शरीर रचना ( Anatomy )



## शिक्षणकला (Pedagogics)



## समाज शास्त्र ( Sociology)



## साधारण ( General )

## स्वास्थ्य रक्षा (Hygiene Sanitation)

## समालोचना

भारतमें दुर्भिक्ष—ले० पं० गणेश दत्त गौड़ शर्मा। प्रकाशक गांधी हिन्दी पुस्तक भंडार, कालबादेवी रोड, बम्बई मूल्य १।॥); कपड़ेकी जिल्द २)।

डबल क्रौन सोलह पेजी साइज़के २५० पृष्ठोंकी इस पुस्तकमें १६ अध्याय हैं, जिनमें कृषि और, लगान, दरिद्रता, व्यापार और व्यापारी, उद्योग धंधे, पशुधन, स्वदेशी और विदेशी, भिखारी और इन सबकी अवनतिका परिणाम भूत, दुर्भिक्ष भूत, जो भारतके सिरपर लगभग २४ वर्षसे निरन्तर खेल रहा है, आदि बातोंकी बड़ी योग्यतासे विवेचना की गई है। पुस्तकके पद पदसे लेखकका स्वदेश प्रेम और स्वदेशकी दुर्दशाके अनुभवसे पैदा हुआ सन्ताप टपकता है। जो फैशनके मतवाले अथवा अविचार शील पुरुष विदेशी चीज़ोंका व्यवहार करते हैं उन्हें इस पुस्तकके पढ़नेसे मालूम होगा कि वह कैसा भयंकर पाप कर रहे हैं।

पुस्तक प्रत्येक नवयुवकको देशकी दशा जाननेके लिए पढ़नी चाहिये। पुस्तक बहुत अच्छी है।

महाराणा रंजीतसिंह—ले० पं० नन्दकुमार देव शर्मा। प्रकाश, गान्धी हिन्दी पुस्तक भंडार, बम्बई, मूल्य कागजकी जिल्दका १।॥) और कपड़ेकी जिल्दका २)।

यह पुस्तक भी बहुत अच्छी है। भारतके अन्तिम स्वाधीन नृपति पञ्जाब केसरी रणजीतसिंहका जीवनचरित्र इस पुस्तकमें बड़ी योग्यतासे चित्रित है।

बाल पालन—प्रकाशक और लेखक पं० निरंजन नाथ गुर्टू, एल. एम. एस. हेल्थ ओफीसर जोधपुर। मूल्य ।)।

यह ५२ पृष्ठोंकी पुस्तिकामें शिशु पालन सम्बन्धी सभी ज्ञातव्य विषयोंका सूक्ष्म परंतु उपयोगी रीतिसे समावेश है।

व्यवहारिक विज्ञान—ले० श्री० कृष्णगोपाल माथुर, प्रकाशक राजपूताना हिन्दीसाहित्य सभा मूल्य १।=) रेशमी जिल्दका २)।

पुस्तकके कुछ अध्याय बड़े रोचक और उपयोगी हैं।

(AVADHUTA GITA) अवधूत गीता—अनुवादक लाला कन्नो मल, एम. ए, प्रकाशक एस. आर. मूर्थी एण्ड कम्पनी, पबलिशर्स, त्रिपिलीकेन, मद्रास।

यह दत्तात्रये कृत अवधूत गीताका अनुवाद सरल और शुद्ध अंग्रेजीमें लालाकन्नोमलने किया है। अनुवाद बहुत ठीक हुआ है। उसके पढ़नेसे सहज ही मूलका रसास्वादन हो सकता है। पुस्तकके आरम्भमें जो आलोचना आपने लिखी है वह भी बड़ी विद्वत्ता पूर्ण है।

मुहम्मद—ले० श्री० शिवनारायण द्विवेदी। प्रकाशक राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर जबलपुर, मूल्य ॥=) कपड़े की जिल्दका १=)

इस पुस्तकमें तेरह अध्याय हैं, जिनमें अरब और अरबिस्तान और अरबोंके प्राचीन इतिहासका संक्षिप्त परिचय तथा मुहम्मद साहिबका विस्तृत जीवन चरित्र दिया है। अन्तमें इस्लाम धर्मके प्रभाव और प्रसारपर भी विचार किया गया है। मुहम्मद साहब संसारके बड़े बड़े मनुष्योंमेंसे एक हुए हैं। उनका जीवन चरित्र पढ़कर बड़ा लाभ हो सकता है। पुस्तक बहुत अच्छी है।

---

## प्राप्ति स्वीकार

निम्न लिखित सज्जनोंसे जुलाई मासमें वार्षिक चन्दा प्राप्त हुआ, जिसके लिए धन्यवाद—

| | |
|---|---|
| प्रो० चुन्नीलाल साहनी, एम० एस-सी; झांसी | १२) |
| प्रो० सतीशचन्द्रदेव, एम० ए०, प्रयाग | ५०) |
| प्रो० बृजगोपाल भटनागर, एम०ए०, प्रयाग | २) |
| प्रो० हरनारायण बाथम, एम०ए०, कानपुर | ३६) |
| योग | १००) |

सूरजप्रसाद खन्नाके प्रबन्धसे हिन्दीसाहित्य प्रेसमें मुद्रित, तथा विज्ञान परिषद्, प्रयागसे प्रकाशित ।

*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.*

पूर्ण संख्या ७६ | | Reg No A 708
भाग १४ | तुला १९७८। अक्तूबर १९२१ | संख्या ७
Vol. XIV | | No. 1

# विज्ञान

## प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.



प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३) | [ एक प्रतिका मूल्य

# विषय सूची

## इतिहास (History)



## औद्योगिक रसायन (Industrial Chemistry)



## जन्तु शास्त्र (Zoology)



## बिजली (Electricity)



## वनस्पति शास्त्र (Botany)



## शिक्षण (Pedagogics)



## समाज शास्त्र (Sociology)



## साधारण (General)



## स्वास्थ्यरक्षा (Hygiene and Healti)



---




[देखिये कवर पृष्ठ ३]

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १४ } तुला, संवत् १९७८ । अक्तूबर, सन् १९२१ { संख्या १

## अवस्था भेद मापक

[ ले०—प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. ए. ]

किसी ऐसे चक्करमें कि जिसमें धारा बह रही हो बाटरी या डाइनेमो का क्या काम है? इस प्रश्नके उत्तरमें हम यही कहेंगे कि बाटरी और डाइनेमोको यदि बिजलीका पम्प कहें तो अनुचित न होगा। पानीका पम्प नदीसे पानी उठाकर टंकी तक पहुंचा देता है, जहाँसे नलोंमें गिरता हुआ और नालियोंमें होता हुआ पानी फिर नदी तक पहुंच जाता है। पानी उठानेके लिए तो पम्प चाहिये, परन्तु इसके गिरनेके लिए किसी यंत्रकी आवश्यकता नहीं होती है; जैसे ही इसे रास्ता मिलता है गिरता हुआ अपने पुराने स्थानको पहुँच जाता है। इसी प्रकार यह समझना चाहिये कि बाटरी भी उन रासायनिक क्रियाओंकी सहायतासे कि जो उसमें होती रहती हैं ऋणात्मक सिरेसे खेंचकर उस बिजलीको ऊँची अवस्थाको पहुंचा देती है और जब बाटरीके सिरे तारसे जोड़ दिये जाते हैं बिजलीको उस ऊँची अवस्थासे नीचे गिरनेका अवसर मिल जाता है और चक्रमें धारा बहने लगती है। जब ऐसा कहा जाता है कि रासायनिक क्रियाओं द्वारा ऋणात्मक सिरेकी बिजली खिंचकर धनात्मक सिरेपर उच्च अवस्था को पहुँच जाती है तो यह मानना ही पड़ेगा कि दोनों सिरोंकी अवस्था समान नहीं है। इन दोनों सिरोंके अवस्था-भेदको बाटरीकी विद्युत्संचालक शक्ति कहते हैं। यह स्मरण रहे कि यहाँ उस अवस्थाभेदसे मतलब है कि जो बाटरीके दोनों सिरोंमें उस समय होता है कि जब बाटरी 'खड़ी' है और किसी चक्करमें धारा नहीं बहा रही है अर्थात् उसके दोनों सिरे तार द्वारा नहीं जुड़े हैं।

अवस्थाभेदकी इकाई तो पहले ही निश्चित कर चुके हैं। इसका नाम वोल्ट है। अवस्थाभेद नापनेके लिए एक मापदंड (गज) चाहिये। यह मापदण्ड इस प्रकार बनाया जाता है।

क ख एक तार लेकर एक बाटरीके चक्रमें उसे रख देते हैं। इस चक्रमें एक ऐसी बाधा भी है (ब) जिसे घटा बढ़ा भी सकते हैं। और एक एम्प-मापक भी है। एम्प मापकसे धारा देख कर जान लेना सम्भव है, अतएव यदि क ख की बाधा मालूम है तो ओह्मके नियमसे क और ख के बीचका अव-स्थाभेद जान सकते हैं। इस अवस्था भेदमें क ख का भाग देनेसे क ख की प्रत्येक इकाईका अवस्था-भेद मालूम हो जायगा। मानलो कि कख=१०० से० मी० और क, ख में अवस्था भेद १० वोल्ट का है, तो क ख की प्रत्येक इकाई लम्बाईमें अवस्थाका पतन $\frac{१}{१०}$ वोल्ट हुआ। यही तार क ख अतएव हमारे माप-दण्डका काम देगा। मापदण्ड अथवा गज से जब किसी वस्तुकी लम्बाई नापनी होती है तो माप-दण्डका एक सिरा उसके एक सिरेसे मिलाकर रखते हैं और यह पता चलालेते हैं कि उस वस्तुका दूसरा सिरा मापदण्डपर किस स्थानपर पड़ता है; यह नापनेकी साधारण विधि है। ठीक यही विधि किसी बाटरीके अवस्थाभेद निकालनेमें काम आती है। उस बाटरीका एक सिरा तो क पर लगा देते हैं, दूसरा सिरा एक धारामापकसे लगाकर धारा मापकसे जुड़ा तार कख तार पर क से ख की ओर को खिसकाते हैं। पहले तो धारा मापकमें बड़ी तेज़ धार जाती दिखाई पड़ेगी, परन्तु वह कम होती चली जायगी, यहांतक कि किसी विन्दु ग पर वह शून्य हो जायगी। यदि इससे आगे सरकायेंगे तो धारा फिर बढ़ने लगेगी, परन्तु उसकी दशा पलट जायगी। इस बाटरीका अवस्था-भेद उतना है जितना कि क और ग के बीचमें है। अतएव यदि यह लम्बाई ल से० मी० हो तो अवस्था भेद $\frac{ल}{१०}$ हुआ। ( चित्र १ )

इसी प्रकार किन्हीं दो विन्दुओंके बीचका अ-वस्था भेद भी हम इस यंत्र से निकाल सकते हैं। इस यंत्रसे एम्पमापकों और वोल्ट मापकोंकी जाँच कर सकते हैं अथवा उनपर नापनेके चिन्ह या निशान लगा सकते हैं, बाधा नाप सकते हैं और वाट-मापकोंपर भी चिन्ह लगा सकते हैं। यह
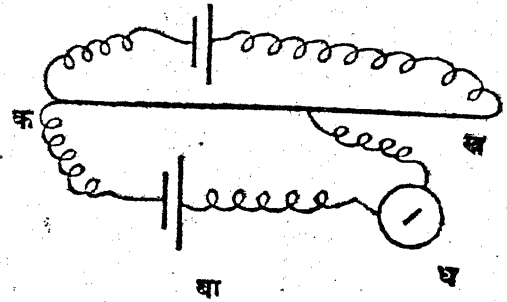
चित्र १—क ख—तार जिसके सिरों पर बाटरी बा और परिवर्तन बाधा द्वारा इष्ट अवस्था भेद पैदा कर सकते हैं।

ब. ए.—इस स्थान पर एम्प मापक और परिवर्तन-शील बाधा वैसे ही लगी हैं जैसे चित्र २ में म प के साथ।

बा—बाटरी जिसके सिरोंके बीचका अवस्था भेद नापना है। ग विन्दु मालूम हो जाने पर धाराका अभाव होनेसे ठीक अवस्था भेद जान सकते हैं।

ध—धारा-मापक।

तरकीबें नीचे दी जाती हैं। एक तार म प जिसकी बाधा मालूम है, एक बाटरी, एक परिवर्तन शील बाधा और एम्पमापक, जिससे प्रयोग करना है,
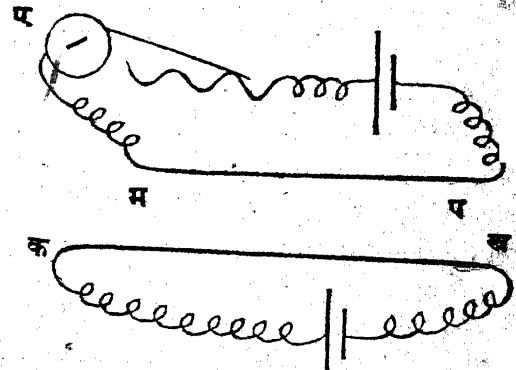
चित्र २—क ख अवस्था भेदमापकका तार।

मप—तार जिसके सिरोंका अवस्था भेद क ख की सहायतासे जान सकते हैं। इस अ. भे. में म प की बाधासे भाग देकर उसमें बहती धार जान और एम्पमापककी जाँच कर सकते हैं। ए—एम्पमापक जिसपर निशान लगाते हैं।

एक चक्र में रखदेते हैं। तार मप के सिरों पर जो अवस्था भेद है वह तो हम अपने यंत्रसे, क ख, से निकाल ही सकते हैं, उसमें बाधाका भाग देनेसे हम धारा निकाल सकते हैं। यही धारा एम्पमापक-में बहनेके कारण उसकी सुई जहाँपर होगी वह नाप इस धाराकी होगी। और धाराका परिणाम प्रदर्शक अंक उस स्थान पर रख सकते हैं। परिवर्तनशील बाधाके घटाने बढ़ानेसे म,प के बीचका अवस्था भेद बढ़ा घटा सकते हैं, अतएव धारा भी बढ़ा घटा सकते हैं और एम्पमापक पर कई चिन्ह लगा सकते हैं।

किसी वोल्टमापक की आँच करनी हो तो वोल्टमापक को मप से जोड़ दो और म और प के बीचका अवस्था भेद पूर्वोक्त यंत्रसे निकाल लो, जो परिमाण निकले वही वोल्ट मापककी सुईसे प्रदर्शित होना चाहिये।
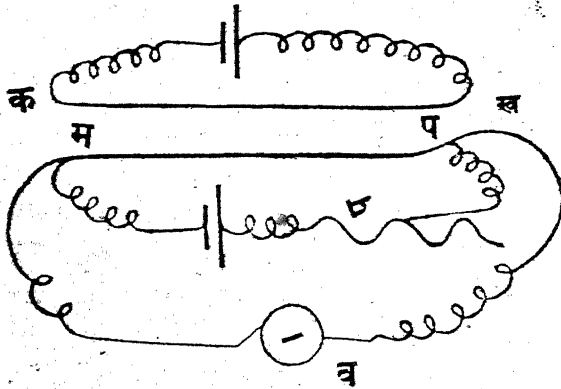
चित्र १—क ख अवस्था भेदमापक तार

प० ब०—परिवर्तनशील बाधा, जिसके घटाने बढ़ानेसे म, प के बीचका अवस्था भेद घटा बढ़ा सकते हैं और जिसे पहले चित्रमें दिखायी रीति से नाप सकते हैं। व-वोल्टमापक जिसपर मापको अंकित कर देते हैं।

चूँकि धारा जो मप में बह रही है वह आपके एम्पमापकसे मालूम हो सकती है और म और प का अवस्था भेद यंत्रसे निकाल सकते हैं अतएव ओह्म-के नियमसे मप की बाधा भी जान सकते हैं।

जब कभी कोई बाटरी किसी चक्रमें धारा बहाती है तो बाटरीको बाहरी चक्रकी बाधा तथा बाटरीकी भीतरी बाधा दोनोंके विरोधमें धारा भेजनेका परिश्रम करना पड़ता है।

---

## राक्षस जातिके इतिहासकी आलोचना

[ ले०—पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार ]

भारतीय जनताको ऋषि मुनियोंपर अनन्त श्रद्धा है। उनकी लेखनीसे या मुखसे निकली हुई बातको परम तथ्य मानना प्रत्येक धर्मात्माका कर्तव्य समझा जाता है। उसके विषयमें तर्क वितर्क करना, उसमें त्रुटियां दिखाना पापकर्म समझा जाता है। ऐसा करनेवालेको नास्तिक, पाखण्डी, विधर्मी आदि उपाधियोंसे विभूषित किया जाता है। इस श्रद्धासे कुछ अधिक हानि होनेकी सम्भावना न थी, परन्तु इसका एक बुरा परिणाम यह हुआ कि ऋषि मुनियोंके नामपर जो कुछ लिखा गया सब आंख मीचकर मान लेने योग्य समझा जाने लगा। उसमें भी सन्देह करना ऋषियोंकी हतक समझी जाती है। परन्तु आलोचना, विवेक, बुद्धि पूर्वक अवधारण हमें अन्धी श्रद्धामें फंसनेसे बचाते हैं। वे ही आज्ञा देते हैं कि प्राचीन कवियोंके बचनोंमें-से सत्यको प्राप्त करनेके लिए कथामय अलङ्कारोंको झाड़ दो, कविताके भ्रमजनक मायामय चोलेको फाड़ दो। इस बातको पुष्ट करनेके लिए मैं अधिक प्रमाण न देकर केवल नमूनेके लिए एक उदाह-रण दूंगा।

पौराणिक साहित्य तथा रामायण महाभारत पढ़नेवाली एवं सकल भारतीय जनताका विश्वास है कि रावणके दस सिर थे, विष्णुके चार हाथ थे, ब्रह्माके चार सिर थे, शिवजीके सिर पर गंगा थी, इन्द्रके सारे शरीर पर सहस्रों आंखें थीं, राजा कार्त्तवीर्य अर्जुनके हज़ार हाथ थे,

रावणके २० भुजा और एक गधेका सिर था, हनुमान बन्दर थे, सुग्रीव बालि आदि सभी बानर थे, रामने बानरोंके साथ मित्रता कर रावणको पराजय किया, इत्यादि। ऐसी ऐसी एक नहीं सैकड़ों बातें हैं, जिनमें सन्देह किया जाय तो उत्तर मिलता है कि क्या ऋषि झूठ लिख गये?

इससे उद्विग्न होकर दूसरी चरम सीमापर जानेवालोंने इस सब साहित्यको केवल कविकी कल्पना कह कर भारतके प्राचीन इतिहासके वैभवको ऐतिहासिक आदर्श यशस्वियोंके साथ मेटनेका प्रयत्न किया है।

वास्तवमें दोनों सीमायें आश्रययोग्य नहीं। सच्ची घटनाओंको खोज निकालनेके लिए कविताका चोला फाड़ना आवश्यक होगा।

ऊपरकी उल्लिखित असम्भव बातोंमें एकका उल्लेख करना पर्याप्त होगा। इन्द्रकी हज़ार आखें पौराणिक मानते हैं। पुराण ग्रन्थोंके चित्रोंमें इन्द्रके शरीर पर आखें दिखायी जाती हैं। कवितापटु कवि भी ऐसा ही वर्णन करते हैं जैसे कालिदास—

शतैस्तमक्ष्णामनिमेषवृत्तिभि
हरिं विदित्वा हरिभिश्चवाजिभिः ॥ रघु०

अर्थात् रघुने इन्द्रको उसकी न झपकनेवाली हज़ार आँखों और हरे घोड़ोंसे पहचान लिया। ऐसी सैकड़ों उक्तियाँ दिखायी जा सकती हैं। परन्तु क्या ऐसा मान लेना उचित है या उसे झूठ समझें या किसी अर्थ की कल्पना करें?

प्रायः सभी कथाएं प्राचीन राजाओंकी हैं और कथाओंके भी वही भाग अवशेष हैं जिनमें बड़ी बड़ी घटनाएं दीखती हैं। परन्तु कथाकारोंने उन्हें अपने ढंगपर मुहावरोंमें बाँध रखा है। जैसे किसी सावधान पुरुषको देखकर कहा जाता है कि वह चौकन्ना रहता है; तो क्या वास्तवमें वह चार कानवाला हो जाता है? नहीं। बस इसी प्रकार वह नैसर्गिक नियमोंके विरुद्ध अंगोंकी अधिकताका वर्णन समझना चाहिये; पर क्यों ऐसा माना जाय? क्योंकि प्राचीन विद्वानोंकी ऐसी ही शैली है। राजाओंके इतिहासकी आलोचना राजनीतिक ढंग पर करना ही महत्वकी रक्षा करना है। अन्यथा संस्कृत साहित्य तथा उसके विद्यमान इतिहासका अंश सारी दुनियामें असत्यतम सिद्ध होगा।

राजनीतिका प्राचीन कालमें इतना अधिक प्रचार था कि उसकी घटनाओंका उल्लेख तथा आलोचना लोग मुहावरोंमें ऐसे ही करते थे जैसे अब समाचार पत्रोंमें कार्टूनोंसे तथा हास्यास्पद विनोदजनक प्रकारोंसे किया जाता है।

कौटिलीय अर्थशास्त्रकारने इस बातको इस प्रकार खोला है। राजसभामें मन्त्रिपरिषद्‌के सभ्योंकी संख्याके प्रकरणपर अन्य आचार्योंका मत दिखलाते हुए कौटिल्य कहते हैं कि—

"मनुकी सम्मतिमें १२ मन्त्रियोंकी मन्त्रिपरिषद् हो, बृहस्पतिकी सम्मतिमें १६ की, शुक्राचार्यकी सम्मतिमें २० की, कौटिल्यकी सम्मतिमें जितने आवश्यक जाने जावें उतनेकी; क्योंकि इन्द्रकी मन्त्रिपरिषद् में हज़ार ऋषि (विद्वान्) थे। वही चक्षु थे। इसीसे दो आँखवाले इन्द्रको भी सहस्राक्ष कहते थे*।" अब रहस्य स्पष्ट हो गया।

इतनेसे इतिहासमें प्रसिद्ध पुरुषोंके बाहुओंकी अधिकता सेनाकी अधिकताको, तथा आखों और सिरोंकी अधिकता विचारार्थ मन्त्रिपरिषद् तथा विद्वान् सभाओंको सूचित करती है; यही बुद्धिपूर्वक समाधान हो सकता है। इससे कार्त्तवीर्यकी हज़ार भुजाएं, रावण की २० भुजा और दस सिर २० आँखें, त्रिशिराके तीन सिर इत्यादिका अर्थ स्पष्ट हो जायगा। विशेष वक्तव्य राजसभा तथा राज्य प्रबन्ध एवं विजयादि प्रकरणोंमें स्पष्ट हो जायगा।

---

* "इन्द्रस्यहि मन्त्रिपरिषद् ऋषीणां सहस्रम्।
तच्चक्षुः। तस्मादिमं द्व्यक्षमपि सहस्राक्षमाहुः॥
(कौटिल्य अर्थशास्त्र १ अधि०, अध्याय १५)

अब शंका यह है कि उत्पन्न होते हुए ही रावण-के दस सिर देख कर ही दशग्रीव नाम क्यों रखा गया था। इसका समाधान इन बातोंपर विचार करनेसे हो जायगाः—

( १ ) नामकरणके समय प्राचीन कालमें नाम भी एक आशीर्वाद समझा जाता था। यह नाम उसकी भावी सम्पत्ति तथा राज्य वैभवके लिए आशीर्वादमात्र प्रतीत होता है।

( २ ) ऋषि विश्रवाको त्रिकालज्ञ माननेपर तो कोई शंका ही शेष नहीं रहती; क्योंकि ऋषि-यों (Seers) की प्रतीचीन दृष्टिमें भूत और भविष्यत् दोनों वर्त्तमानके सदृश होते हैं। इस लिए यदि भावी विक्रम तथा राज्यकौशलको देख कर यह नाम रखा हो तो क्या विस्मय है।

( ३ ) वर्त्तमानमें भी ज्योतिषी पंचाङ्गसे बालककी ग्रहकुण्डली देख कर उचित वर्णवाला नाम रखता है। यदि प्राचीन प्रथामें ज्योतिष और लक्षण ग्रन्थ द्वारा भावि फलको देख कर तदनुसार नाम कल्पना की जाय तो श्रद्धालु पुरुषों-की श्रद्धामें भी शंकाका स्थान शेष नहीं रहता।

( ४ ) कवि लोग बहुत से नायकोंके नामके विषयमें बारीकियां ढूंढा करते हैं और उसमें भी उत्प्रेक्षा आदि करके रुचिकर बना देते हैं; जैसे रघु-वंशमें कालिदास रघुके नामके विषयमें लिखते हैं कि दिलीपने रघिलघि धातुका गति अर्थ देख कर सोचा कि यह शस्त्रोंसे शत्रुओंके पार और शास्त्रों-से विद्याके पार जावेगा इससे रघु नाम रखा।

कल्पना निःसन्देह बहुत रोचक है; लखों वर्ष पहलेकी घटनाकी सत्यता कौन जाने ?

( ५ ) कवि अपने काव्यके सौन्दर्यके लिए तथा दिखाने योग्य भावका उत्कर्ष दर्शानेके लिए आगेकी घटना पीछे और पीछेकी आगे बतला देते हैं; जैसे कालिदास लिखते हैं—"पहले मेघ आता है फिर वृष्टि होती है, पहले फूल निकलता है फिर फल होता है; पर राजन तुम्हारे कृपाके पहले ही सम्पत्ति मिल जाती है।" ठीक इसी प्रकार दशग्रीव नाम भी उसके यौवनकालके विशाल विक्रमकी सूचना देता है।

( ६ ) बाल्मीकिके बनाये ग्रन्थमें उत्तरकाण्ड बड़ा विवादग्रस्त है। उसकी रचना अर्वाचीन प्रतीत होती है। उस कविने उसका पूर्व नाम दश-ग्रीव ही कल्पित किया।

( ७ ) कुछ लोगोंका विचार है कि वैज्ञानिक साधनोंसे वह कृत्रिम रूप ऐसा बनाता होगा जिससे सर्वसाधारणको १० सिर और २० भुजाओं-वाला दीखता होगा; क्योंकि राक्षस जाति माया अर्थात् अद्भुतोत्पादनमें चतुर थी ही।

( ८ ) कुछ लोगोंका विचार है कि रावण हल-की वस्तुका ऐसा चोला पहनता होगा जिससे १० शिर २० भुजा वाला दीखे। उसको जब चाहे उतार दे और जब चाहे फिर पहन ले।

( १० ) रामायणमें ऐसे ही स्थल हैं जिनमें रावणको १० सिरों वाला भी नहीं दिखाया गया। उदाहरणार्थ सुन्दरकाण्डमें सोते हुये रावणका वर्णन ( सुन्दर० सर्ग १०* ) दर्शनीय है। इसमें १ सिर तथा दो बाहुओंका ही वर्णन है और स्वाभाविक है। यदि १० सिर और २० भुजाएं ही सचमुचकी दर्शानी होतीं तो यह सबसे अच्छा अवसर था और बड़ा बढ़िया वर्णन किया जा सकता था; पर बाल्मीकि ने ऐसा नहीं किया। यदि इतनेसे भी संशय निवृत्त न हुआ हो तो रामायणसे ऐसे अन्य भी बहुत से उदाहरण दर्शा सकते हैं, पर विस्तार भयसे नहीं लिखते।

### वरलाभ

दूसरी बड़ी शंका वरलाभकी है। वरका क्या तात्पर्य है। तप करना और वर पाना इनका घनिष्ठ

---

* ददर्श स कपिस्तस्य बाहू शयन संस्थितौ।
मन्दरस्यान्तरेसुप्तौ महाही रुषिताविव॥
—सु० का० स० १०,२१

मुक्तामणि विचित्रेण काञ्चनेन विराजता।
मुकुटेनाप वृत्तेन कुण्डलो ज्वलिताननम्॥ श्लो० १५.

सम्बन्ध है। इस समस्याके उठते ही बहुत सी अन्य शंकाएँ भी संमुख उपस्थित होती हैं; जैसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश कौन हैं, जो वर देते हैं और तपस्याका क्या तात्पर्य है ? साथ ही अन्य देवता इन्द्रादि क्या वस्तु हैं ?

संक्षेपतः इन सब शंकाओंका उत्तर यह है कि ब्रह्मा विष्णु, और शिव, यह उपास्य देवताके ही प्रकार भेद हैं, जिसको उपास्य मानकर श्रम करनेपर इष्ट वस्तु का लाभ हुआ वही उस देवतासे प्राप्त वर कहाता है।

कविने उसको कथामें बांधते हुये असाधारण रूपमें रख दिया है। यह कैसे ?

लोकमें पिता और माता दोनों बड़े श्रमसे पुत्रका लाभ करते हैं। उत्पन्न होनेपर पुत्र यद्यपि माता पिताका ही है और गर्भ विज्ञानके नियमोंके अनुसार आचरणोंसे ही उत्पन्न हुआ है तो भी श्रद्धाकी अधिकतासे पूछनेपर दोनों यही कहते हैं कि ईश्वरका है; ठीक इसी प्रकार रावणादिने बड़े बड़े लौकिक परिश्रमोंसे और विशाल शक्तियोंसे और वैज्ञानिक तथा राजनीतिक उपायोंसे शक्ति लाभ करके चतुर्दिगन्तमें यश प्राप्त किया और अपनी प्रतिद्वन्द्विनी जाति तथा समान बलवाली जातियोंपर अपना ठप्पा जमाकर सबसे अवध्य होगया तो भी यह सर्व-शक्तिलाभ उसने अपने इष्टदेवताके नामपर प्रसिद्ध किया। इस कथनके भी अनेक प्रमाण हैं ?

ईजिप्टके प्राचीन इतिहास सम्बन्धी मिथ्या-कथा-माला में (Mythology) में देवताओंके परस्पर युद्धोंमें ही सम्पूर्ण इतिहास लिखा गया है। वास्तवमें लड़ते उपासक थे, परन्तु इतिहास उपास्योंके नाम पर मढ़ दिया जाता था। स्कन्दपुराणमें जैनोंका इतिहास स्थान स्थानपर इसी ढंगसे दर्शाया है कि साक्षात शिवने उनका विध्वंस किया हो। परन्तु पढ़नेपर स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह जैन-शैवोंका परस्पर कलह है।

वर्तमानमें भी जातियोंके संकेत पशु पक्षियोंके नाम हैं; जैसे अंग्रेज जाति (British lion या John Bull) शेर या सांडके नामसे पुकारी जाती है। चीनका झण्डा हाथी का है। यदि परस्परमें घोर संग्राम हो और दैववश चीन जीत जाय तो कवि संक्षेपसे कहेंगे दुर्दान्त हाथीने सांडको धर लपेटा। ठीक इसी प्रकार यदि क्रिश्चियन संसार पर सनातनधर्मकी विजय होजाय तो भावी भारतवर्षीय कवि अवश्य कविता तरंगमें विष्णु आदि देवों और चण्डी आदि देवताओंके खीस्तासुरपर विजयका नाद ऊँचा करेंगे। दूर क्या समीप ही यूरोपमें भयंकर युद्ध छिड़ जानेपर भारतीय लेखक प्रायः यूरोपके मैदानोंमें रणचण्डीके घोरनादकी कल्पना करते थे। इस प्रकार शतशः दृष्टान्त लाक्षणिक प्रयोगों और रूपकोंके उद्धृत किये जा सकते हैं। फलतः देवताकृत वरों और प्रसादों तथा कोपोंका स्पष्टीकरण हो जाता है।

अब इस अवसरपर एक शंका उत्पन्न होती है कि सुमालि आदिने तप किया; उन्हें वर मिला; फिर विष्णुने तुमुल युद्ध करके माली सुमालीको भगाया इसका क्या तात्पर्य है ?

हमारे उपरोक्त स्पष्टीकरणसे इस कथांशकी व्याख्या करनेका प्रयत्न किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि उस समय मानव जातिमें शिव और विष्णु दो देवता वीर समझे जाते थे। ब्रह्मा शान्त समझे जाते थे। शिव और विष्णुके उपासकोंमें बड़ा भारी वैमनस्य था। दैत्य, दानव, राक्षस सभी शिवोपाशक थे। या दूसरे शब्दोंमें शिवोपासक सभी वैष्णवोंकी दृष्टिमें असुर समझे जाते थे। दूसरे विष्णुके उपासक देव समझे जाते थे। जिस प्रकार वर्तमानमें सारा संसार तीन धर्मोंमें बँटा है—क्रिश्चियन, हिन्दू तथा मुसलमान—इसी प्रकार रावणके ज़मानेका संसार दो धर्मोंमें बँटा था—वैष्णव और शैव। कुछ देश वैष्णव थे और कुछ शैव थे। माली सुमाली आदि राक्षसोंके चतुर्दिगन्त शासनसे शैवोंकी सर्वत्र प्रखरता हो गई। सब उच्च आसन देवों

( वैष्णवों ) से छीन लिये गये और दैत्यों दानवों और राक्षसोंको दिये गये।[1] इससे पारस्परिक राजनीतिक संघर्ष सदा हृदयोंमें सुलगता रहता था; जैसे भारतवर्षमें सब उच्चपद यूरोपियनोंको दिये जाते हैं और भारतियोंको नहीं और यह बात हम भारतियोंके दिलमें कांटेकी तरह खटकती है। इस विचारसे प्रेरित होकर देवताओंने या अधीन देशोंने जत्था किया। शैव रियासतोंने या जिनमें शैवोंकी प्रधानता थी उन्होंने, मिलनेसे इन्कार कर दिया; वैष्णव रियासतें सब मिल गईं और बड़ी भारी आभ्यन्तर लड़ाई ( सिविलवार ) खड़ी हो गई। जब माली सुमाली इन्द्रपुरी लूटने आये थे तो देवता घर छोड़कर भाग गये थे, उसी अपमान भूमि ( Plea ) पर सब इकट्ठे होकर जान तोड़कर देवताओंके नामपर लड़े। उन्होंने आखिर विजय पाई और राक्षस:जाति पर्याप्त कालके लिए शान्त ही नहीं होगई, प्रत्युत अपनी राजधानी छोड़कर पाताल लोक ( अमेरिका ) में जा बसी।

कहनेका मतलब यह है कि प्राचीन कथाओंको देवकथा कहकर छोड़ना या विचार न करना अपने इतिहासपर राख डालना है। जब एक महासाम्राज्य उखड़कर निर्मूल हो जाता है तो क्या आप समझ सकते हैं कि उसमें ( Political causes ) राजनीतिक कारण सर्वथा न होंगे? ऐसा कभी हो नहीं सकता। राज्यक्रान्तियोंमें बड़े भारी कारण राजनीतिक ही होते हैं। और फिर जिस ज़मानेमें बृहस्पति और शुक्र जैसे बड़े बड़े राजनीतिज्ञ रहे हों, उस समय इस तरफ ध्यान ही न होना असम्भव है। विशेषतः इन्द्रका मन्त्री बृहस्पति, जिसने वेदोंके यज्ञमय श्रोत्रियपनेके चोलेको फाड़कर भी उसमें सब राजनीति ही देखी, वह इस मुख्य लक्ष्यको इस अवसरपर भूल जाय यह असम्भव है। जब एक जाति दूसरी जातिपर राज्य कर रही है और बड़े अत्याचारोंसे उसको सर्वथा कुचल डालनेके लिए तय्यार है तो दबी हुई जातिके प्रखर विद्वान अपनेको बचानेका उपाय करते हैं। ठीक इसी प्रकार देवोंको राक्षस जातिसे कुचले जानेसे बचानेके लिए उसके प्रखर राजनीतिक विद्वानोंने धर्म और देवताके नामपर लोगोंमें जोश पैदा किया हो और सब स्वधर्मियोंको मिलाकर एक ही बार सम्भूय उत्थान कर राज्यक्रान्तिका कार्य सफल किया हो तो क्या आश्चर्य है। इसीको कविने संक्षेपमें गरुड़ारूढ़ विष्णुका विजय बताया हो तो कविके लिए यही शोभाजनक है।

यह शंका भी उठ सकती है कि गरुड़पर चढ़े विष्णु और बैलपर चढ़े शिवका क्या तात्पर्य है? पाठकगण इसीमें रहस्य है। यदि इसको खोलदूं तो बहुत सी शंकाएं दूर हो जायंगी।

भक्त लोगोंने अध्यात्म दृष्टिसे शिवके और विष्णुके काल्पनिक या आलङ्कारिक कितने ही अर्थ किये हों हम उनमें नहीं जाना चाहते; क्योंकि उनसे राजनीतिका स्पर्श भी नहीं है। हम पाठकोंको सीधा राजनीतिक दृश्य दर्शाना चाहते हैं। शिवको वृषध्वज और विष्णुको गरुड़ध्वज कहा है। ध्वजाका मतलब झण्डा है। स्पष्ट होगया कि शैवोंकी सेनाओंका राजकीय झण्डा ( Royal Banner) बैलका था और विष्णुके अनुयायियोंका झण्डा गरुड़का था। यही पारस्परिक पहचान थी। राजाका ज़ोर होनेपर प्रजाको अकामेनापि राजाके धर्म या मज़हबकी मुख्यता भी माननी पड़ती है और राजाका मज़हब अधिक मानास्पद होता है। फलतः वह धर्म राजकीय झण्डेके बलपर देशमें फैलता है, मानों उसपर चढ़कर आता है एवं मज़हब फैलता मानों उपास्य देवता फैलता है तो इस कहनेसे कि वैष्णव देवोंकी, शैव दानवोंपर विजय हुई तात्पर्य यही है कि शिवके कृपा भाजन दैत्योंपर विष्णु गरुड़पर चढ़ कर विजयी हुए। कठिन समस्याओंकी गांठें पर्याप्त खोलकर हमने धर दी हैं; शेष छोटी मोटी पाठक स्वयं सरल करेंगे।

[1] इस बातको स्पष्टतया बलिराजा और हिरण्य कशिपुकी कथामें दर्शाएँगे।

अब प्रश्न उठता है कि इन्द्रादि देवताओंका क्या तात्पर्य है? संक्षेपतः उत्तर यही है कि ब्रह्मा, विष्णु, और महेश तीनों उपास्य देव हैं और इन्द्र, यम, वरुण कुवेर यह दिक्पाल देवता कहाते हैं। बासुकि शेष नागलोक पातालके देवता हैं। सूर्यचन्द्र आदि अपने लोकोंके देवता हैं। इसका स्पष्टीकरण यह है कि भिन्न भिन्न दिशाओंमें भिन्न भिन्न राज्य थे और उनके महाराजोंका पारिभाषिक नाम पारस्परिक व्यवहारकी सुगमताके लिए इन्द्र आदि रखा जाता था। उन सबसे बड़ा चक्रवर्ती या सार्वभौम होता था। शेष माण्डलिक होकर रहते थे और जब कोई सबका अधीश्वर न हुआ तो अपने अपने देशमें प्रत्येक स्वतन्त्र शासक होता था और आनन्दसे प्रजाका पालन करता था। पुराणोंके अनुसार पूर्व दिशाका राजा इन्द्र, दक्षिणका यम (सूर्यका पुत्र) पश्चिमका राजा वरुण और उत्तरका राजा कुवेर ( धनद ) है। शेष छोटे मोटे साम्राज्य औरोंके थे; जैसे नागलोकमें वासुकि, भारतवर्षमें मानव राज इत्यादि। राक्षसों और दानवोंकी बस्तियाँ स्थान स्थानपर स्वतन्त्र राज्य करती थीं, जो समय समयपर प्रबल होकर चतुर्दिगके विजयी होकर विख्यात हो जाते थे। इसमें पुष्ट प्रमाण क्या है? इसमें भौगोलिक संस्थान तथा ऐतिहासिक घटना इतनी अधिक संख्याओंमें प्रमाण हैं कि जिनका साधारण रूपमें उद्धरण करना भी विशाल ग्रन्थकी अपेक्षा करना है। हम इस आलोचना भागमें बहुत संक्षेपसे दर्शायेंगे।

१. पुराणोंके वर्णित जमानेसे भी पहले किसी जमाने ( वैदिक काल ) में देव राज्यों या दिक्पालोंका संस्थान बदला हुआ था। उदाहरणार्थ वेदमें इन्द्रको दक्षिण दिशाका अधिपति माना है परन्तु पुराण पूर्व दिशाका मानते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थोंमें उत्तर दिशा भी इन्द्रकी कही गयी है। इसका क्या कारण है। हमें प्रतीत होता है कि राज्यक्रान्ति हुई थी। राज्यके राज्य कारण वश अपने अपने स्थान बदल कर बैठ गये। कल्पना कीजिये कि इंगलैण्ड पर जल विप्लव आ जावे या अन्य जातिका अत्याचारिक शासन आजावे, जिससे वहांके वासी देश छोड़ भागें और अपने उपनिवेशोंमें शरण लें; जैसे मानो इंगलैण्डको छोड़कर केनेडामें चले जावें और वहां अपनी फिर विशाल पार्लियामेण्ट बना कर वहां भी British Lion का झण्डा खड़ा करें और पूर्ववत् शक्ति बढ़ाकर संसारकी प्रबल शक्तियोंमें गिनें जावें तो कहिये दिशा बदली हुयी समझी जायगी कि नहीं? बस इसी प्रकार दिशा बदल जाती थी।

( २ ) मानव जातिमें भी कई ऐसे प्रबल राजा हुए जिन्होंने अपने बल वैभव से इन्द्रको गद्दीसे उतारकर स्वयं स्वर्ग लोकका शासन किया, जैसे नहुष, बलि, रावण, हिरण्यकशिपु, तारकासुर, महिषासुर आदि, जिसका इनकी कथाओंकी संगति प्रकरणमें उद्धरण पूर्वक स्पष्ट करेंगे।

इन्हीं सबके राज्यकालमें देव दैत्योंमें बड़े क्रान्तिकारक संग्राम हुए थे। इन सब प्रतापशाली दैत्योंके नाम आप प्रायः पुराण साहित्यमें स्थान स्थानपर पाएँगे।

महाभारतमें लिखा है कि जरासन्धके डरसे ही कितने राज्योंका दिशाविपर्यास होगया (सभा० अ० १४)। जरासन्धका महाराज्याभिषेक १८ हज़ार राजाओंने मिलकर किया था और वह शैव था। कृष्णने छलसे इसका घात कराया। कवियोंने जरासन्धको दैत्योंका अवतार माना और कृष्णको साक्षाच्चतुर्भुज विष्णु का। यहां भी वही शैव वैष्णवोंका परस्पर कलह था। पर यह बहुत लुप्तप्राय न होनेसे स्पष्ट राजनीतिक उथल पुथल दीखती है, जो सभापर्व पढ़नेसे स्पष्ट होती है।

---

गुमा० १ स० श्लो० ५, ७, ८,

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमंपितुः प्रदेशास्तवदेवभूमयः
(कुमार० सं० ५, ४५)

अब भौगोलिक स्थान सन्निवेशोंके कुछ आधार देते हैं।

(१) हिमालयके सभी भाग देव भूमि कहाते हैं। कालिदास भी कुमारसम्भवमें कहते हैं कि हिमालयमें अप्सरायें विलास करती थीं (कुमार सं०१, ४,), सिद्ध लोग (देवयोनि विशेष) हिमालयपर रहते थे, विद्याधर (देव योनि) और किन्नर आनन्द करते थे।

कैलाश साक्षात् महादेवका निवास है। यह पर्वत मानसरोवरके समीप है। भारविने अर्जुनको तपस्याके लिए वहां भेजा है। हिमाचलपर अप्सराओंका विलास वर्णन किया है।

स्वयं महाभारतकारने अर्जुनको तपस्यार्थ इन्द्रकील पर्वतपर भेजा है। वह हिमाचलमें ही है। कुल्लूसे ५० मील परे जाकर बसे लोगोंसे आप इन्द्रकीलका पता पा सकते हैं। वह उस पर्वतको इन्द्रकिल्लाके नामसे पुकारते हैं। पर्वतके वास्तविक वासियोंके सब आचार व्यवहार किन्नरों गन्धर्वोंसे मिलते हैं। रूपमें वह उनसे मिलते हैं।

मुसलमानी इतिहासमें काकेशस ही स्वर्ग कहा गया है, जहां हूरें (परियाँ) का वास मानते हैं। (हूर=सुर)। फलतः उत्तर दिशामें हिमाचलकी सारी पर्वतश्रेणी देवोंका स्वर्ग कहाता था। इसी प्रकार उत्तर दिशामें बढ़ते बढ़ते भूमिके पर्यन्त तक आनेवाले पर्वतीय भाग ध्रुव तक सभी देवोंकी वस्तियां थीं।

यूनानी कथा प्रवादोंमें एटलस भी देवोंका बसाया हुआ माना जाता है। यही कदाचित् अतल लोक कहाता हो।

प्लेटोकी बनाई हुई क्रीटियस नायक पुस्तकमें ६००० वर्ष पहिलेके इतिहासको दर्शाते हुये देवताओंकी वस्तियोंका स्थान स्थानपर वर्णन किया है और यह भी स्वीकार किया है कि मानव लोग भी इन्हींकी प्रजा थे। बहुत बार जल-विप्लव होनेसे पृथ्वीमें बहुत हेर फेर हो गया है।

आप रावणकी विजयमें नाना लोकोंको भी पृथ्वीपर स्थित ही पढ़ आये हैं जैसे वरुण लोक, नागलोक, सूर्यलोक आदि। कहनेका तात्पर्य यही है कि यह सभी देश (साम्राज्य) पृथक् राजाओंकी मिल्कियत थे और इस पृथ्वीपर बसे थे, जो कालक्रमसे और मौकेपर प्रबल हो जाते थे और दूसरोंको धर दबाते थे।

हमारी इन संक्षिप्त स्थापनाओंसे बहुत सी शङ्काएं और कौतुक उत्पन्न हो जाते हैं। जिनका निवारण इस आलोचना प्रकरणमें करना असम्भव है। इसके लिए इतना ही कहकर छोड़ देते हैं कि आफ्रीका बैबीलोनिया, ईजिप्ट यह सूर्यलोक कहाते थे; काश्मीर तिब्बत, फारसके उत्तरीय स्थल, यह देवभूमियां थीं। गोबी, शेमूके मैदान यक्ष देश थे। लंका अण्डमनादि द्वीप, तथा पाताल दूसरे लोक थे; इन्हींमें यमलोक, वरुणलोक भी थे; जो कदाचित् अन्य जातियोंके प्रकरणोंमें स्पष्ट किये जा सकेंगे। पुराणोंका बहुत सा भाग इस अनुशीलनमें सहायकारी होगा।

---

## भारतवर्षका हमला जर्मनीपर

[ लेखक—श्री० "जटायु" ]

खिसिरके भागते ही फ्रांस और आस्ट्रियाकी सैना लौट गयी। जिस प्रकार सूर्योदय होनेके समय चन्द्रमा मन्द पड़ जाता है; तारागण छिप जाते हैं, लोमड़ी, गीदड़, भेड़िये, स्याही, चिमगादड़, छछूंदर इत्यादि अपने अपने भाठों और बिलोंमें छिप रहते हैं; उसी प्रकार भारतेन्दुके विजयसूर्य्यके उदय होते ही खिसिर, उसके मंत्री और अन्यान्य सैनानायक जर्मनी छोड़कर भाग गये। खिसिरके जासूस कर्मचारी जो भारतेन्दुके विरुद्ध इधर उधर आन्दोलन कर रहे थे उल्लूकी नाईं इधर उधर छिप रहे। भारतेन्दुका अधिकार समग्र जर्मन देशपर होगया।

फ्रांस, आस्ट्रिया, रूस थरथराने लगे और इनके हृदय में अत्यन्त भय उत्पन्न होगया। इनको पक्का विश्वास हो गया कि अब आगामी वर्ष हममेंसे किसी एकको भारतीय हड़प कर जायँगे। आस्ट्रिया तो अपनेको भारत और जर्मनीके मार्गमें एक प्रकार-की रुकावट समझने लगा। आस्ट्रियाके सम्राट्ने यह भली भांति समझ लिया कि और किसी देश-को चाहे भारतीय न लें पर आस्ट्रियाको अपने मार्गसे अवश्य हटा देंगे। अमेरिकाके तो ऐसे हाथ पांव ढीले पड़ गये कि वहांके समाचार पत्रोंमें जर्मनयुद्धके समाचार भी प्रकाशित होने बन्द होगये। जब कभी कोई अमेरिकामें युद्धकी चर्चा करता था अमेरिकाके नेता यह कहकर बात काट दिया करते थे कि हम पश्चिमीय देशोंके निवा-सियोंको पूर्वीय देशोंके घरेलू झगड़ोंसे क्या सरो-कार है।

भारतेन्दुने जर्मनीका नाम बदलकर शर्वणि रखा और अपना सिक्का चलाया। इस सिक्केपर एक तरफ बीचोंबीच ओउम् अंकित था और सिक्केका मूल्य लिखा रहता था। दूसरी ओर सम्राट् भार-तेन्दु शर्वणि और सम्वत अंकित होता था। शर्वणि देशको चार प्रान्तोंमें विभाजित किया गया और प्रत्येक प्रान्तका गवर्नर भारतवर्षके राज घरानोंका कोई एक सपूत नियत किया जाता था। भार-तेन्दुने भारतवर्षसे इंजीनियरोंको बुलाया और ब्रह्मावर्त्त ( भारतवर्षकी राजधानी ) के समान पोज़नमें शर्वणि देशकी राजधानी बनानेका हुक्म दिया। राजधानी एक गोलाकार नगरके रूपमें बननी आरम्भ हो गयी। जर्मन जनताको उन्होंने आज्ञा दी कि जो उनके सुन्दर भवन देशमें इधर उधर फैले हुये हैं अगर उनकी इच्छा होगी तो भारतीय इंजीनियर उनको लाकर नगरकी सीमाके बाहर राजधानीके चारों ओर उचित स्थानोंपर खड़ा कर देंगे। भारतेन्दुकी राजधानीकी नवीन रीतिकी वैज्ञानिक बनावट देखनेको देश देशान्तरसे इंजीनियर और यात्री आने लगे। जैसा अद्भुत नगर ब्रह्मावर्त्त बना था वैसा ही अद्भुत यह नगर भी बनने लगा। पोज़नके स्थानपर इसका नाम विजय नगर रखा गया। जिस प्रकार ब्रह्मावर्त्तमें सुन्दर बाग़ीचे बने थे उसी प्रकार यहां भी बनने लगे, पर भारतेन्दुका हुक्म था कि एक वर्षके अन्दर विजयनगर सम्पूर्ण बन कर तैयार होजाय। इस कारण भारतवर्षसे आम, कुसुम, खजूर, ताड़, सुन्दरी, मालती इत्यादि वृक्ष, जो वर्षोंमें पूरी वृद्धि पाते हैं, जड़ सहित उखड़वाकर, उनकी शाखाओंको रस्सियोंसे बांधकर और उन्हें वायुयानोंसे लटका कर सैकड़ोंकी संख्यामें भारतवर्षसे उड़ाकर विजय नगर पहुंचा दिये गये। उचित सिंचाई और देखरेख कर उन्हें विजयनगरमें जमा दिया। विजयनगरके केन्द्रमें बड़ा भारी मण्डप बनने लगा। यह विजयके उत्सव मनानेके लिए बनवाया गया था। इस मण्डप-के पूरबमें जो फुलवारियां थीं उनमें सब वृक्ष भारत वर्षके लगे थे और पश्चिममें जो फुलवारियां थीं उनमें हेमन्तऋतुके यूरोपीय वृक्ष लगे थे। इंजीनियरोंने ऐसा प्रबन्ध किया था कि पूर्वीय फुलवारियोंमें चलने फिरनेसे सदैव बसन्त ऋतुका आनन्द आता था और बिल्कुल यह ज्ञात होता था कि मानों भारतवर्षमें खड़े हैं। पश्चिमीय फुलवा-रियोंमें सदैव हेमन्त ऋतु मालूम देती थी और सदैव यह ज्ञात होता था कि मानों किसी यूरो-पीय बाग़ीचेमें हवाखोरी कर रहे हैं।

यूरोपीय जनता सब आश्चर्य्यमें निमग्न थी। कोई कहता था कि यह भारतीय जादूगर हैं, कोई कहता था कि यह पिशाच हैं, किसी किसीका यह विश्वास था कि यह सचमुच देवता हैं, जो आकाशसे उतर आये हैं। बहुत से जर्मन अफ़ी-मची तो यह कहते थे कि "भाई यह भारतवर्षसे नहीं आये हैं। क्या मनुष्य अन्धे हैं कि इनको आकाशसे उतरता देखते हैं और फिर भी कहते हैं कि आकाशसे नहीं आये हैं? भला यह तो पूछो कि जो लोग इन्हें भारतीय कहते हैं उन्होंने इन्हें भारत-वर्षसे आते देखा है। अमेरिका और यूरोपके वैज्ञा-

निक, इंजीनियर रासायनिक, कृषक, माली इत्यादि जो इनके अद्भुत कामोंको देखते थे वह कहते थे कि "जो कुछ यह करते हैं वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके आधार पर करते हैं; हां यह अवश्य है कि जैसी इनकी अलौकिक बुद्धि है और जो बात इनके ध्यानमें आती है और उसका व्यवहारमें उपयोग कर जैसा कुछ यह कर दिखाते हैं मनुष्य जातिमें न किसीने कभी दिखाया है, न भविष्यमें दिखानेकी आशा है। यह न भूत हैं और न देवता हैं; इनको असीम विद्या परमेश्वरने आंख बन्द करके दे दी है।"

मारुत सुतने मेरे गलेमें एक बड़ा सा रुद्राक्षका दाना पहना दिया था। इस चिन्हसे सब मुझको पहचान लेते थे और मुझको मारुत सुतका पलाऊ पक्षी समझते थे। मारुत सुतको सब भारतेन्दुका वायुयान प्रेरक समझते थे। मुझको पलाऊ पक्षी समझ कर कोई छेड़ता नहीं था और सदैव बड़े प्यारसे पास बुलाकर बिठाते थे। मैं भी सदैव "कांव कांव, टाँय टाँय" पक्षीकी सी ही बोली बोला करता था पर कभी कभी मैं जनता पर यह प्रकट कर देता था कि जो कुछ वह कहते थे मैं भली भांति समझता था और उनकी आज्ञानुसार काम भी करने लगता था। यह देखकर समग्र यूरोपके विद्वान् आश्चर्य्यमें थे और जो विजयनगर देखने संसारके यात्री आते थे वह जहां तक सम्भव होता था मेरे दर्शन अवश्य करते थे और प्रायः मेरी परीक्षा भी लेते थे। वह यह नहीं समझ पाते कि पक्षीको मनुष्यकी बोली सुनने और समझनेकी शक्ति होगी। वह सदैव विवश होकर मारुत सुतसे केवल इतना ही कहकर चले जाते थे, "आप पक्षियोंके पालनेमें बड़े उस्ताद हैं। आपने इसे खूब सिखाया है।" मारुतसुत यह सुनकर केवल मुस्करा दिया करते थे।

भारतेन्दुकी आज्ञानुसार एक वर्षके अन्दर ही अन्दर सम्पूर्ण विजयनगर बन कर तय्यार हो गया। बर्लिन लगभग सब उजड़ गया। विजयनगर ऐसा सुन्दर और अद्भुत बना था कि लगभग सब जर्मनीके धनाढ्योंने अपना अपना नगर छोड़ दिया और यहीं निवास करने लगे। संसारके यात्रियोंमें यह आम कहावत हो गयी कि जिसने विजय नगर नहीं देखा उसने कुछ नहीं देखा।

फ्रांस, आस्ट्रिया और रूसने भारतेन्दुसे सन्धि कर ली। वह भारतेन्दुके अधीन हो गये और उन्होंने कर देना स्वीकार किया। अमेरिकाने क्षमा माँगी।

भारतेन्दुने विजयोत्सव मनाना निश्चय किया। रामनवमीका दिवस उत्सवके लिए नियत हुआ। तीन मास पहले ही सब राष्ट्रोंको सूचना दे दी गयी। सब राष्ट्रोंने अपने अपने दूतोंको उचित उपहार देकर उत्सवमें सम्मिलित होनेकी आज्ञा दी। उत्सवका मंडप बड़ा विचित्र बना था। यह काँचका बना था पर इसमें जोड़ कहीं नहीं था। यह मालूम होता था मानों एक कांचके टुकड़ेको काटकर बनाया गया है। यह इतना बड़ा था कि इसके नीचे एक लक्ष मनुष्य बैठ सकते थे और उसके केन्द्रमें बीचोंबीच गोल सुवर्णका मणि जटित नक्काशी किया हुआ चबूतरा था। इस चबूतरेपर एक डंडीपर कमलका पुष्प लगा था; यह हरी डंडी कमलकी हरी पत्तियाँ और गुलाबी पंखुड़ियां सब मणियों की बनी थीं और दूरसे देखनेमें यह बिल्कुल प्राकृतिक पुष्पका सा मालूम होता था। पर यह इतना बड़ा था कि इसपर दो मनुष्य भली भांति बैठ सकते थे। इसके ऊपर सुवर्णके तारोंमें गुंथे हुए मोतियोंका क़ालीन पड़ा था और उस क़ालीनके बीचों बीच लाल मणियोंको गूंथ कर ओंकार बना हुआ था। यह भारतेन्दु और उनकी धर्मपत्नी सम्राज्ञी प्रभाका सिंहासन था। इस सिंहासनके चारों ओर मंडपके तले सूर्यकी किरणोंके समान मणि जटित सुवर्णकी कुर्सियां मणि जटित क़ालीनोंपर पड़ी थीं। वायुयानमें चढ़कर ऊपरसे काँचके मण्डपके तले सिंहासन और सब कुर्सियोंका दृश्य महाअद्भुत चमत्कार युक्त दिखाई पड़ता था। मालूम होता

था कि सूर्य भगवान आकाशसे उतरकर मण्डपके तले पृथ्वीपर आनकर बैठ गये हैं। कांचकी फलोंमें से जैसे सूर्यकी किरणें धनुषके रंगकी सी मालूम होती हैं उसी प्रकार सूर्योदयसे सूर्यास्त तक मण्डपपर सूर्यकी किरणें पड़नेसे मण्डपके तले रंग बिरंगे धनुषके से अत्यन्त शोभायमान रंग चारों ओर दिखाई पड़ते थे। चारों ओर इस मंडपके स्तम्भोंपर मणियोंकी बनी हुई रङ्ग बिरङ्गी पत्तियों और पुष्पोंके सहित नाना प्रकारके वृक्षोंकी बेलें चढ़ा दी गई थीं। दूरसे मनुष्य देखकर धोखा खाते थे। मण्डपके बाहर चारों ओर हर ऋतुके फूलोंकी क्यारियां बनी हुई थीं। संसारके मनुष्य भारतीयों-की ऐसी निरुपम कारीगरीको देखकर वाह वाह करते थे। मण्डपके ऊपर ठीक सिंहासनके सीधमें एक बड़ा सा गोलाकार छिद्र था और चारों ओर मण्डपके एक सौ आठ बारहदरियां बनी थीं। इन बारहदरियोंमें हर प्रकारके संसारके बाजे बजते थे। बारहदरियोंसे हटकर चारों ओर रेशमी व ऊनी मणि जटित नक्काशीदार सुवर्णके खम्भों-पर शामियाने गड़े थे और इन शामियानोंके तले एक लक्ष मनुष्योंके नाशतेके लिए संगमर्मरके टेबुलोंपर हर ऋतुके फल और हर प्रकारके भोजन सजाये गये थे। इन टेबुलोंके चारों ओर भारतवर्षके काठकी कुर्सियां थीं, जिनपर सुवर्ण और मणियोंकी पच्चीकारी की हुई थी और मख़-मलोंके सुवर्णके कारचोबी गद्दे पड़े थे, जिनमें मोतियोंकी झालर लगी थीं। स्थान स्थानपर अनमोल वस्त्र पहने और हाथोंमें मणिजटित आसे लिए चोबदार खड़े थे; पर पुलिसका चौकी पहरा कहीं नहीं दिखाई पड़ता था। शामियानोंके ऊपर आकाशमें चारों ओर भारतीय सैनिक अपने गुब्बारोंकी सहायतासे इसी प्रकार उड़ रहे थे जैसे पृथ्वीपर सैना परेड करती है।

सैनिकोंके ऊपर भारतीय वायुयान सहस्रोंकी संख्यामें भारतेन्दुकी पताकाओं से सुसज्जित सात वृत्तोंमें चारों ओर चक्कर काट रहे थे। कांचके मण्डपके तले गुब्बारोंकी सहायतासे एक सौ आठ सुवर्णके खटोले छतसे लगे हुये चारों ओर बड़ी शोभा दे रहे थे। इन खटोलोंपर भारतेन्दुकी जर्मन प्रजाके ड्यूक जागीरदार और अन्यान्य बड़े घरानोंकी कन्याएं सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहने हुये भारतके बने वीणा हाथमें लिये बैठी थीं। इन्होंने शुभागमनके हिन्दी भाषाके पद्य याद किये थे।

रामनवमीके दिन प्रातःकालसे ही जिन जिन महापुरुषोंको न्योते दिये गये थे आने लगे और अपने अपने स्थानोंपर बैठने लगे। भारतेन्दुके सिंहासनपर अयोध्यापुरीकी ओर मुख करके बैठनेके लिए आसन बिछा था। सिंहासनके आगे दस ख़ाली कुर्सियां पड़ीं थीं। इन कुर्सियोंके पीछे एक कुर्सीपर काव्यभूषण, काव्यरत्न, कवि-शिरोमणि, कवीश्वर पण्डित आत्माराम छिवेदी राज्यकवि अपनी कविता एक सुवर्णके पत्र पर मणियोंसे जड़े हुये अक्षरोंमें लिए बैठे थे। इनके पीछे पांच सौ कुर्सियां पड़ी थीं, जिनपर राष्ट्रोंके राज दूत बैठे थे। इनमें सबसे प्रथम कुर्सी बृटिश राजदूतकी थी। इसी प्रकार चारों ओर सब कुर्सियों पर खचाखच दर्बारी बैठे थे। बारह बजे तक सब दर्बारी आते रहे। बारह बजनेसे पन्द्रह मिनट पहले दश सन्यासी आनकर उपरोक्त दश कुर्सियोंपर बैठ गये। जब बारह बजनेमें पांच मिनट रह गये तो मण्डपके ऊपर एक वायुयान आन कर खड़ा हो गया। भारतेन्दुका यान संचा-लक अपने गुब्बारेकी सहायतासे वायुयानके नीचे आया और उसके नीचे भागमें उसने खिड़की खोलदी। इस खिड़कीसे बहुत धीरे धीरे एक कुर्सी उतरने लगी। कुर्सीके ऊपर एक बड़ा अनमोल सुन्दर छत्र लगा था। भारतेन्दुका यान संचालक अर्थात् मारुतसुत इस छत्रकी डंडीको पकड़े थे और उसकी सहायतासे कांचके मण्डपमेंके गोल छिद्रमेंसे कुर्सी उतरने लगी। कुर्सीपर भारतेन्दु और बाईं ओर सम्राज्ञी प्रभा बैठी थीं। इनके भूषण और वस्त्र ऐसे अनमोल और सुन्दर

थे कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। जब छिद्रमेंसे उतरकर भारतेन्दुकी कुर्सी मण्डपमें आगई तो कुर्सीका छत्र उससे अलग हो मण्डपके छिद्रपर जा लगा और वह ढप गया। छत्रकी डंडीसे नाना प्रकारके इत्रोंकी अत्यन्त महीन धाराएँ छूट कर चारों ओर वर्षासी होने लगी। कुर्सीके मण्डपमें उतरते ही सब दर्बारी खड़े होगये। कुर्सी ठीक बारह बजे सिंहासनके आसनके ऊपर टिक गयी। उसी समय भारतेन्दुके वायुयानसे चार तोपें चारों दिशामें दगीं और भारतेन्दु और प्रभा सिंहासन पर खड़े होगये और उन्होंने अयोध्याकी ओर मुख किये सबीको प्रणाम किया। इसी समय मण्डपकी छतसे जर्मन कन्याओंने वीणा बजा हिन्दी भाषामें स्वागत गीत गाये। भारतेन्दु और प्रभाके वस्त्रोंमें एक अपूर्व बात यह थी कि भूषणों और वस्त्रोंके ऊपर भारतेन्दु और प्रभा बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटीकी डाक्टरकी उपाधिका गौन पहने थे। गीत समाप्त होनेके पश्चात् राज्यकवि अपनी कुर्सीपरसे उठे और उन्होंने अपनी कविता सुनाई। माणिकजीका बनाया हुआ एक यंत्र इनके मुखसे लगा था। यह देखनेमें केवल एक मुद्रिकाके समान मालूम होता था, पर इसका सम्बन्ध बिजली कि तारोंसे कई और मुद्रिकाओंसे था जो मंडपमें चारों ओर लगी थीं। इस यंत्रकी सहायतासे जो कुछ पण्डितजी महाराज पढ़ते थे वह एक समान शब्दोंमें चारों ओर मण्डपमें सबको सुनाई पड़ता था। मुझे स्मरण नहीं है कि क्या कविता थी पर इतना याद है कि उसमें एक सौ आठ पद थे और प्रत्येक पदमें हर एक शब्दके प्रथम एक विशेष अक्षर था। और पदोंके प्रथमाक्षरोंको एक स्थानपर लिखनेसे "ओउम् तत्सत् और पन्द्रह बार भारतेन्दुकी जय हो" निकलते थे।

इस कविताके अन्त होनेपर दशों सन्यासी अपने अपने स्थानसे उठे। इनके हाथोंमें एक मणि जटित थालमें तिलक लगानेकी सामग्री थी। जैसे ही यह सन्यासी थाली लेकर एक कदम आगे बढ़े। भारतेन्दुका यान-संचालक जो अभी तक कुर्सीके पीछे खड़ा था भारतेन्दु और सन्यासीके बीचमें आनकर खड़ा हो गया। भारतेन्दु, प्रभा, संन्यासी तथा सब दर्बारियोंके देखते ही देखते उसने अपना असलीरूप धारण कर लिया। इस विचित्र लीलाको देखकर सब दर्बारी खड़े हो गये। बजरङ्ग बलीको देखकर मण्डपमें सन्नाटा छा गया। भारतेन्दु और प्रभा कुछ देर तक तन मनकी सुधि भूल गये। पर शीघ्र ही अपने हृदयोंको सम्भाल कर सम्राट् व साम्राज्ञी प्रणाम करके खड़े होने ही को थे कि मारुतसुतने सन्यासियोंके हाथसे थाली लेकर सम्राट्के तिलक लगाया, सम्राज्ञीकी मांगमें रोली दी और सबोंके देखते ही देखते अन्तर्ध्यान हो गये और थाली सम्राट्के चरणोंके आगे रखी रही।

नोट—उपरोक्त इतिहास श्रीजटायुजी विज्ञान आफ़िसकी अंटियापर बैठे सुना रहे थे कि शोकसे लिखा जाता है एक गिद्ध पश्चिमकी ओरसे एक मांसकी बोटी मुंहमें दावे उड़कर आनकर अंटियापर बैठ गया। उसके बैठते ही श्री जटायुजी हरिः हर हरिः हर सीताराम सीताराम कहते हुये पंख फैला कर पूरबको ओर उड़ कर चल दिये। यह इतिहास भी अतएव असमाप्त ही रहा।

[ समाप्त ]

---

## पाचनेन्द्रिय और पाचन

[ ले०—श्री० गोपीनाथ गुप्त, वैद्य ]

पीछे बतलाया गया है कि हमारे शरीरमें प्रोटीड, कर्बोज, स्नेह, लवण और जल यह पांच प्रकारके पदार्थ पाये जाते हैं; और इसीलिए हमारे आहारमें भी वही पदार्थ होने चाहियें, क्योंकि जब तक आहारको शरीर अङ्गीकार न कर ले तब तक उससे कोई

प्रयोजन-सिद्धि नहीं हो सकती। शरीर उन्हीं पदार्थोंको अङ्गीकार करता है कि जो शरीरस्थ पदार्थोंके सर्वथा अनुरूप हों। हमारे आहारमें कितने ही ऐसे पदार्थ होते हैं कि जो शरीरमें नहीं पाये जाते, एवं शरीरको उनकी कोई आवश्यकता नहीं; परन्तु इस प्रकारके पदार्थोंमें शरीरोपयोगी पदार्थ भी मिले रहते हैं। हमारे शरीरमें कुछ ऐसे यन्त्र हैं कि जो इन द्रव्योंमें से उपयोगी और निरुपयोगी अंशोंको पृथक् पृथक् कर देते हैं। इसके पश्चात् उपयोगी पदार्थ तो शरीरमें रह जाते हैं और निरुपयोगी पदार्थ मल मूत्रादिके रूपमें शरीरसे बाहर निकल जाते हैं।

इसके अतिरिक्त आहारके लगभग सभी पदार्थ ऐसे होते हैं कि जब तक उनमें आवश्यक रासायनिक परिवर्तन न हो तबतक वह शरीरका कोई हितसाधन नहीं कर सकते। अतएव भोजन करनेके पश्चात् आहार्य्य पदार्थोंपर शरीरमें बहुत सी रासायनिक क्रियाएं हुआ करती हैं। इन क्रियाओंके पश्चात् ही आहार रक्तमें मिलने योग्य रूप धारण करता है, एवं तभी वह शरीरको कुछ लाभ पहुँचा सकता है।

इन रासायनिक क्रियाओंका नाम "पचन क्रिया" अथवा "पाचन" और पचन-क्रियाको करने वाले शरीरावयवोंका नाम "पाचनेन्द्रिय" है।

( क ) पाचनेन्द्रिय

पचन-क्रिया सम्बन्धी मुख्य अवयवका नाम "आहार-पथ" है। यह एक ९—१० गज़ लम्बी नाली है जो मुखसे आरम्भ हो कर मलद्वार पर समाप्त होती है। ( चित्र १ ) यह नाली सब स्थानों-में समानाकार नहीं है, प्रत्युत् कहीं चौड़ी, कहीं सकड़ी, कहीं सीधी, कहीं टेढ़ी और कहीं मशकके समान आकारवाली है।

जिस प्रकार इस नलीकी चौड़ाई और आकार विभिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न है, उसी प्रकार उसके प्रथक् प्रथक् भागोंके नाम और कार्य भी प्रथक् प्रथक् हैं।
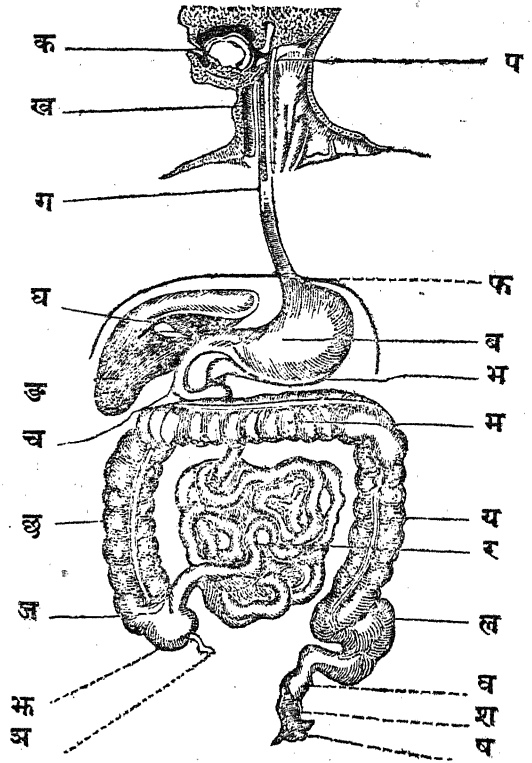
चित्र ४

क—मुंह। ख—हँटुवा। ग—अन्नप्रणाली। घ—पित्ताशय। ङ—यकृत। च—पक्वाशय। छ—उद्गामी बृहदंत्र। ज—क्षुद्रांत्र और बृहदंत्रका जोड़। झ—बृहदंत्रका प्रारम्भिक थैली जैसा भाग। ञ—उपात्र।

आहार-पथके सबसे पहिले भागका नाम मुख है, जिसमें दांत और जिव्हा इत्यादि होते हैं, जो पचन-क्रियामें सहायता देते हैं।

मुखके पीछेके भागका नाम कण्ठ या सप्तपथ ( Pharynx ) है। ( चित्र १ ) यहांसे आहार-पथका दूसरा भाग प्रारम्भ होता है जिसे अन्न प्रणाली ( Esophagus ) कहते हैं। यह लगभग १० इञ्च लम्बी एक नली है जो गरदन और छातीमें होती हुई उदर तक पहुँच जाती है।

अन्न प्रणालीके सामने श्वास-पथका* एक भाग

* श्वास-पथ उस मार्गका नाम है कि जिसके द्वार श्वास लेते समय वायु नासिकासे होती हुई फेफड़ेमें जाती है।

रहता है जिसे स्वरयन्त्र कहते हैं। कण्ठमें टेंटुवा एवं आहार-पथ दोनोंके मार्ग मिलकर एक हो गये हैं। इसी स्थानपर नासिकाकी सुरंगोंका (नथनों) भी अन्त है। अर्थात् कण्ठ एक चौराहा है कि जहांसे (१) नासिका, (२) श्वास पथ (३) मुख और (४) अन्न प्रणालीको रास्ते जाते हैं।
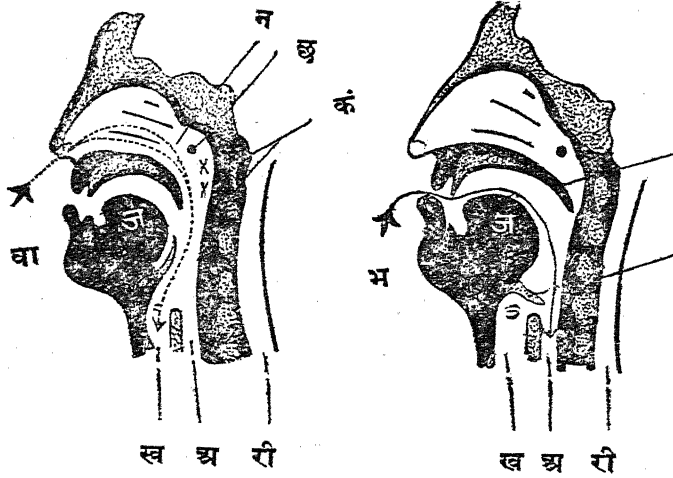
चित्र ५ व—यहांसे वायु नाकमें जाती है। न—नाकके छेदका पिछला सिरा। छ—कर्णसे सम्बन्ध रखनेवाला छिद्र। क—कंठ। ज—जिह्वा। त—कोमल तालु उ—उपजिह्वा अथवा स्वरयंत्रच्छद। भ—भोजन यहांसे खाते हैं। स्व—स्वरयंत्र। अ—अन्नप्रणाली। री—रीढ़।

अन्नप्रणालीसे आगे आहार-पथका तीसरा भाग प्रारम्भ होता है, जिसका आकार मशकसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। यह उदरके बाम पार्श्वमें स्थित है और आमाशय कहलाता है। इसी को पाकस्थली, मेदा या पेट भी कहते हैं।

आमाशयका वाम-भाग दक्षिण भागकी अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है। आमाशयके दो द्वार होते हैं:—(१) हृदय द्वार, (२) पक्वाशयिक द्वार।

पहला द्वार अन्न प्रणालीकी ओरको हृदयके निकट होता है; दूसरा पक्वाशयके ऊपर।

आमाशयकी लम्बाई लगभग १२ या १३ इञ्च तथा चौड़ाई ४ इञ्च होती है; एवं उसमें कोई १½ सेर आहार समा सकता है।

आमाशयसे आगे आहार पथका चौथा भाग आरम्भ होता है जिसे अन्त्र (आंत, अंतड़ी) कहते हैं। आमाशयके अन्तिम सिरेसे लेकर मलद्वारतकके समस्त भागका नाम अन्त्र ही है। यह एक प्रायः २६ फुट लम्बी नली है, जो सर्पकी भांति गेंडली मारे उदरमें पड़ी रहती है और यही कारण है कि इतनी लम्बी होनेपर भी आसानीसे उदरके भीतर स्थित है।

आंतका पहला २२ फुट लम्बा भाग शेष भागकी अपेक्षा पतला होता है और क्षुद्रान्त्र कहलाता है। क्षुद्रान्त्रका प्रारम्भिक १२ अंगुल लम्बा भाग पक्वाशय या द्वादशाङ्गुल अंत्र Duodenum है। इसीको आर्य वैद्यकमें ग्रहणी कहते हैं, क्योंकि यह आमाशयसे अधपचे अन्नको ग्रहण करती है। ग्रहणी घोड़ेके नालकी भांति मुड़ी हुई रहती है। (चित्र १)

क्षुद्रान्त्रसे आगे ५ फुटका भाग दृहदन्त्र कहलाता है जो मलद्वार पर जाकर समाप्त होता है। इसका व्यास क्षुद्रान्त्रसे अधिक होता है और इसीलिए यह विस्तारमें कम होनेपर भी दृहदन्त्र कहलाती है। (चित्र १)

जो आहार हम खाते हैं उसका पाचन मुखसे प्रारम्भ होकर क्षुद्रान्त्र तक प्रायः समाप्त हो जाता है। पाचन क्रियामें आहारको एक लम्बी (२८फुट) यात्रा करनी पड़ती है; और इस यात्रामें उसे कई पड़ाव डालने पड़ते हैं। यही नहीं, प्रत्येक पड़ावपर उसे अनेकों आपत्तियोंका सामना भी करना होता है। वह कहीं कुचला जाता है, कहीं मथा जाता है, पीसा जाता है; धक्के मुक्के खाता है, उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग चकनाचूर हो जाते हैं; एवं स्थान स्थान पर उसकी सम्पत्ति (उपयोगी अंश) छीनी जाती है। परन्तु वह इनकी कुछ भी परवाह न करता हुआ आगे बढ़ता ही जाता है। हज़ार

मुसीबतें झेलता है पर अपने मार्गसे विचलित नहीं होता, अन्तको अभीष्ट स्थान प्राप्त कर ही लेता है।

जबतक आहार सर्वथा पच नहीं जाता तबतक यह पथमें कैद रहता है। और जब इस कैदसे मुक्त होता है तो उसका स्वरूप सर्वथा परिवर्तित हो जाता है; मुक्त होने तक वह एक प्रकारसे मुरदा एवं निस्सार हो जाता है; परन्तु मुक्त होनेके लिए वह अपना सर्वस्व बलिदान कर देता है। वह जानता है कि 'पराधीनतामें जीवित रहनेकी अपेक्षा मर कर भी स्वतन्त्र होना अच्छा है'।

आहारको पचानेके लिए कई पाचक रसोंकी आवश्यकता होती है। जिन अङ्गोंमें यह रस उत्पन्न होते हैं उन्हें पाचक ग्रन्थि कहते हैं। कुछ पाचक ग्रन्थियां तो आहार पथके भीतर ही स्थित हैं, परन्तु कुछ उससे बाहर भी हैं।

आहार-पथके भीतरवाली ग्रन्थियोंमें से छः ग्रन्थियां मुखमें होती हैं। एक ग्रन्थि कानके सामने और नीचे है, दूसरी जिह्वाके नीचे और तीसरी नीचेके जबड़ेके नीचे। इस प्रकार प्रत्येक ओर तीन तीन अर्थात् कुल मिलाकर छः हुई। इन छः मुख्य ग्रन्थियोंके अतिरिक्त मुखमें और भी कितनी ही छोटी छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं (जैसे निम्नोष्ठ और गालों की श्लैष्मिक कलामें) इनसे जो रस निकलता है उसे 'लाला' या लार कहते हैं और इसीसे इनका नाम 'लाला-ग्रन्थि' रखा गया है।

इन ग्रन्थियोंसे राल थोड़ी थोड़ी तो सदैव रिसा करती है, जिससे मुख हर समय गीला रहता है। परन्तु भोजन करते समय वह अत्यधिकतासे निकलने लगती है। जब हम कोई स्वादिष्ट पदार्थ देखते या उसका ध्यान करते हैं तो इन ग्रन्थियोंमें विक्षोभ (उत्तेजना) होती है और इसीसे ऐसे समय लाला बड़े वेगसे मुखमें आने लगती है जिसे साधारण बोलचालमें मुँहमें पानी भर आना कहते हैं।

राल ग्रन्थियोंसे अत्यन्त सूक्ष्म नलियोंके द्वारा मुखमें आती है एवं उसका बहुत सा भाग पुनः आहार-पथ द्वारा सोख लिया जाता है।

लाला एक प्रकारका क्षारीय रस है, जिसमें श्लेष्मा, कई प्रकारके लवण एवं अन्य कई पदार्थ मिश्रित होते हैं।

इन लाला ग्रन्थियोंके अतिरिक्त आमाशय और अंतड़ियोंकी भीतरी दीवारोंमें भी पाचकरसोत्पादक बहुत सी ग्रन्थियां होती हैं। आमाशयसे उत्पन्न होनेवाले रसको आमाशयिक रस तथा अंतड़ियोंमें बननेवाले रसको आन्त्र-रस कहते हैं। यह आहार-पथकी ग्रन्थियां हुई। अब उससे प्रथक् रहनेवाली ग्रन्थियोंका हाल सुनिये। आहार पथके बाहर उदरमें दो बड़ी बड़ी पाचक ग्रन्थियां हैं। एकका नाम यकृत (जिगर) और दूसरीका क्लोम (लबलबा) है।

यकृत

यह शरीरमें सबसे बड़ी ग्रन्थि है। यह उदरमें दाहनी ओर पसलियोंकी आड़में रहती है। यकृत पांच बंधनों द्वारा, उदरकी सामनेकी दीवार, ग्रहणी एवं आमाशयादिसे बँधा रहता है। इसका भार पौने दो सेरसे भी कम होता है, तथा शरीरके भारसे इसकी निष्पत्ति ४० : १ होती है, अर्थात् यकृतके भारसे समस्त शरीर ४० गुना भारी होता है।

यकृत कौड़ी* प्रदेशके अतिरिक्त सब स्थानोंमें पसलियों की आड़में रहता है। यदि इस स्थानके अतिरिक्त पेटको अन्य किसी स्थानमें दबानेसे यकृत् हाथको लगने लगे तो उसे विकृत एवं बढ़ा हुआ समझना चाहिये।

इस ग्रन्थिमें जो पाचक रस बनता है उसे पित्त कहते हैं।

यकृतसे नीचेवाले भागमें उसमें बँधी हुई ही एक थैली होती है जिसे पित्ताशय कहते हैं। यकृत-

* कौड़ी नाभिके ऊपर होती है।

से निकल कर पित्त दो नलियोंमें जाता है; इन नलियोंके एक स्थानपर मिलनेसे एक बड़ी नली बन जाती है। यह बड़ी नली उस नलीमें जाकर मिलती है कि जो पित्ताशयसे ग्रहणीको जाती है। इस संयुक्त-नलीका नाम "पित्त प्रणाली" है (चित्र ६)।

पित्त यकृतकी नलियोंसे होता हुआ पित्त-प्रणालीमें जाता है, वहांसे पित्ताशयमें जाकर वहाँ एकत्रित होता है, और आवश्यकतानुसार पुनः पित्त प्रणाली द्वारा ही ग्रहणीमें जाया करता है।

क्लोम

यह एक पिस्तौलके आकारकी ग्रन्थि है; जो उदरकी पिछली दीवारसे सटी रहती है; इसकी लम्बाई ५ या ६ इञ्चके लगभग होती है। इसका एक सिरा दूसरेकी अपेक्षा मोटा होता है, जो ग्रहणीके अर्द्ध चन्द्राकार घेरेके बीचमें रहता है एवं दूसरा पतला सिरा प्लीहा ( तिल्ली ) से मिला रहता है। इस ग्रन्थिमें जो रस उत्पन्न होता है "क्लोम रस" कहाता है। क्लोमरस आवश्यकतानुसार एक नली के द्वारा ( जिसे क्लोम प्रणाली कहते हैं ) ग्रहणीमें पहुंचता रहता है। ग्रहणीमें जिस स्थानपर पित्त-नाली भीतर घुसती है ठीक उसी स्थानपर यह नली भी ग्रहणीमें प्रवेश करती है। अतएव पित्त और क्लोम-रस दोनों एक ही छिद्र द्वारा ग्रहणीमें पहुँचते हैं।

पचन-क्रिया

सबसे प्रथम आहार महोदय मुखमें प्रवेश करते हैं; एवं द्वारके भीतर पधारते ही बड़ी शानके साथ वहीं अपना पड़ाव डाल देते हैं। अपने घर-में ठहरता देखकर दन्त-सेना उन्हें कुचलना और पीसना आरम्भ कर देती है। इस कार्यमें जिह्वा देवी भी दांतोंकी पूरी पूरी सहायता करती हैं, वह आहारको पुनः पुनः इकट्ठा करके दाढ़ोंके नीचे पहुँचाती रहती हैं।

यहां आहारमें लार भी मिलती रहती है। लारमें थूकाइन ( ptyalin ) नामक एक विशेष पदार्थ होता है। इसके प्रभावसे आहारका श्वेत-सार ( Starch ) एक प्रकारकी शर्करामें परिणत हो जाता है। रोटी, चावल इत्यादि श्वेत-सार-प्रधान द्रव्योंको देर तक चबाते रहनेसे उनमें मिठास प्रतीत होने लगता है। इसका कारण श्वेत-सारका शर्करामें परिवर्तित होना ही है। यदि यह नशास्ता शर्करामें परिणत न हो तो हम उसे पचा नहीं सकते; अतएव रोटी इत्यादिको उस समय तक चबाते रहना अत्यन्त आवश्यक है कि जब तक उसमें मिठास प्रतीत न होने लगे एवं ग्रास बिल्कुल बारीक न हो जाय।

अमलोंसे लारकी थूकाइन विच्छिन्न हो जाती है, अतएव श्वेतसार मय भोजनके साथ खट्टे पदार्थ खाना उचित नहीं है।

शिशुओंके थूकमें ६ मासकी अवस्था तक थूकाइन नहीं होती, अतएव उन्हें इतनी अवस्था तक रोटी, हलवा, चावल इत्यादि श्वेतसारमय पदार्थ न खिलाने चाहियें। श्वेतसारके अतिरिक्त आहार के स्नेह, प्रोटीन इत्यादि अन्य उपादानों पर लाला-की कोई क्रिया नहीं होती।

आहारके नरम और गीला हो जानेके पश्चात् जिव्हा अपनी विचित्र गतियोंसे उसकी गोली सी बना देती है, जिसे गस्सा कहते हैं। इसके पश्चात् आहार महाशय अपना डेरा डंडा उठाकर आगे क़दम बढ़ाते हैं।

मुखसे चलकर जब आहार कण्ठपर पहुंचता है तो उसके सामने एक प्रश्न उपस्थिति हो जाता है कि यहांसे जो एक मार्ग, स्वरयन्त्रको, एक नासिकाको और एक आमाशयको जाता है, इनमेंसे किस मार्गमें वह प्रवेश करे? परन्तु आहार देवता-को उसकी अधिक चिन्ता करनी नहीं पड़ती। ज्योंही वह कण्ठ तक पहुँचते हैं त्योंही एक ढक्कन स्वरयंत्रवाले मार्गको बन्द कर देता है। इस ढक्कनको उपजिह्वा ( Epiglottis ) कहते हैं। भले प्रकार मुख फैलाकर देखनेसे इसका थोड़ा सा भाग दिखलाई भी दे सकता है। जब हम श्वास लेते हैं तो यह ढक्कन खुला रहता है।

और वायु बेरोक टोक श्वास-पथमें चली जाती है (चित्र ५ क)। परन्तु किसी खाने पीनेके पदार्थको निगलते समय यह ढकना टेंटुवेके मार्गको बन्द कर देता है एवं आहार इसके ऊपरसे होकर आहार-पथमें चला जाता है (चित्र ५ ख)। यदि किसी कारणसे किसी पदार्थके निगलते समय यह ढक्कन तनिक भी खुला रह जाय तो आहारके बारीक कण या बूंद स्वरयन्त्रमें जानेसे धांस ( फन्दा ) उठ आती है। कुछ अधिक आहारांश श्वास-पथमें जानेसे अनेकों रोग होने एवं कदाचित् दम घुटकर मृत्यु तक हो जानेकी सम्भावना रहती है; अतएव खिल खिलाकर हंसते हंसते या बात चीत करते हुए भोजन करना उचित नहीं।

नाकके छिद्रोंमें आहारके कण न चले जायं, इसका प्रबंध भी प्रकृतिने कर दिया है। कंठके ऊपरके भागमें यह छिद्र होते हैं। मुँह खोलनेपर भी यह इस कारण नहीं दिखाई देते कि कोमल तालुके यह ऊपर होते हैं। गस्सा जब गलेमें पहुंचता है तो कोमलतालु ऊपरको उठकर गलेकी पिछली दीवारके पास जा पहुंचता है, अतएव नासिका छिद्रोंको ढक लेता है जिनमें फिर ग्रास नहीं पहुंच पाता। कोमल तालु और उपजिह्वाकी साधारण स्थिति तथा गस्सा निकलते समयकी स्थिति चित्र ५ क तथा ५ ख में दिखलाई है।

इस प्रकार इन दोनों द्वारोंके बन्द हो जानेसे आहारको आहार-पथके अतिरिक्त कोई मार्ग ही नहीं रहता। अतएव वह बिला किसी प्रकारकी अड़चनके, गलेसे होता हुआ आमाशयमें पहुंच जाता है।

अन्नप्रणाली यद्यपि गंगाकी रेतीके समान दुर्गम मार्ग तो नहीं है पर साथ ही रेलकी पटरियोंके समान द्रुतगमनोपयोगी भी नहीं है। गलेमें रहनेवाली मांसपेशियोंके आकुञ्चन और प्रसरण ( सिकुड़ने और फैलने ) के कारण आहार धीरे धीरे क्रमशः नीचे उतरता है।

अन्न प्रणालीमें कोई पाचकरस उत्पन्न नहीं होता; हाँ उसकी आभ्यन्तरिक दीवारोंसे एक प्रकारका चिकना पदार्थ रिसा करता है जिसके कारण कौर ( ग्रास ) गल-मार्गकी भीतरी कोमल त्वचासे घर्षण नहीं खा सकता।

आमाशयमें पहुँचकर आहार महाराज पुनः पड़ाव डालनेकी तैयारी करने लगते हैं। यह पड़ाव उसके ( आमाशयके ) बाँये चौड़े भागमें डाला जाता है। मुखकी भांति ही आहारको इस पड़ावपर भी चैन नहीं मिलता। उसके वहाँ पहुँचते ही आमाशयिक रस निकल कर धीरे धीरे उसमें मिलना प्रारम्भ होता है। इस रसकी प्रतिक्रिया अम्ल होती है; अतएव इसके मिलनेसे आहार भी अम्ल हो जाता है। यही कारण है कि अन्नका भले प्रकार पाचन न होनेपर खट्टी खट्टी डकारेँ आया करती हैं। रस तय्यार होनेमें लगभग आध घंटा लगता है। जबतक यह खट्टा रस भोजनसे नहीं मिलता तब तक लारकी थूकाइन भोजनके श्वेतसार पर क्रिया करती रहती है। आमाशयिक रस सब भोजनसे एकदम तो नहीं मिल जाता, अतएव आहारके उस भागपर जो अभी खट्टा नहीं हुआ लार काम करती रहती है।

आमाशयिक रसमें मुख्यतः तीन पदार्थ पाये जाते हैं; पहिले दधिन (Renin) पचाइन (Pepsin) और लवणाम्ल ( Hydrochloric Acid ) इस नमकके तेज़ाबके कारण ही यह रस खट्टा होता है।

यह रस अर्द्ध स्वच्छ, पानी सा पतला एवं एक विशेष गन्धयुक्त द्रव्य है, जिसका गुरुत्व १००२ से १००३ तक होता है।

आमाशयमें पहुँचनेपर आहारमें केवल इस रसका मिश्रण ही नहीं होता प्रत्युत् वहाँ वह भले प्रकार मथा भी जाता है। आमाशयके वामाङ्गमें एक विशेष प्रकारकी गति होने लगती है जिसके कारण वहांकी दीवारें कभी फैलती हैं और कभी सिकुड़ती हैं; इस क्रियासे आहार पर दबाव पड़ता है और इसका थोडा सा भाग आमाशयके दक्षिण

तंग भागमें चला जाता है। इस स्थानपर पहले से अधिक बलवान गति हुआ करती है, जिससे आहार भली भांति मथा जाता है, तथा आमाशयिक रससे मिलकर पतला हो जाता है।

आमाशयकी इस मन्थन क्रियासे आहारमें कोई मोटा टुकड़ा नहीं रहने पाता, आमाशय उसे यथा सम्भव बिल्कुल बारीक कर देता है। अर्थात् दाँतोंके बचे हुये कार्यको आमाशय पूरा करता है। आमाशयिक रसके मिश्रणसे आहारका जो पतला, घोल ( द्रव ) बन जाता है उसका नाम आहार-रस है।

आमाशयके दक्षिण भागमें आये हुए आहारका 'आहार-रस' बन जानेपर आमाशयका निम्न द्वार ( ग्रहणी द्वार ) जो अब तक बन्द था, खुल जाता है और आहार रस ग्रहणीमें चला जाता है।

इसके पश्चात् वाम पार्श्वसे दक्षिण पार्श्वमें थोड़ा सा आहार और आता है एवं उसका भी आहार-रस बनकर ग्रहणीमें पहुँच जाता है। इसी प्रकार धीरे धीरे समस्त आहारका आहाररस बनकर ग्रहणीमें चला जाता है। समस्त आहारका आहार-रस बननेमें कोई ४½ घंटे लगते हैं; अर्थात् इस पड़ावपर आहार महाशय ४–५ घंटे तक डेरा डाले रहते हैं।

आहारपर आमाशयिक रसका प्रभाव

जब आमाशयिक रस (Gastric juice) आहारसे मिलता है तो उसकी पचाइन ( Pepsin ) लवणाम्लकी उपस्थितिमें आहारके प्रोटीनांशका विश्लेषण करके उससे नये घुलन-शील पदार्थ बना देती है। इन नये पदार्थोंमें कितने ही ऐसे भी होते हैं कि जो आसानीसे आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें रिसकर रक्तमें मिल सकते हैं। परन्तु आमाशयमें आहारके मांसजातीय उपादानका पूरा पूरा विश्लेषण नहीं हो जाता। यहां उसका बहुत थोड़ा अंश रक्तमें मिलने योग्य होता है। यह रक्तमें मिलने योग्य भाग आमाशयकी भीतरी दीवारोंमें शोषित होकर उन दीवारोंमें रहनेवाली *रक्त-केशिकाओंमें जाकर उनमें रहनेवाले रक्तसे मिल जाता है; एवं केशिकाएँ उसे शिराओंमें पहुँचा देती हैं।

आमाशयिक रसका श्वेत-सारपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु भोजनके साथ खाई हुई साधारण शर्करा, द्राक्षोज (अंगूरी शर्करा) और फलोज† परिणत हो जाती है। यह अंगूरी शर्करा ही रक्तमें मिल सकती है, अन्य प्रकारकी नहीं; अतएव यह भी आमाशय द्वारा सोख ली जाती है। परन्तु यह सब रक्तमें नहीं मिल जाती प्रत्युत् रक्तवाहिनी केशिकाओंसे‡ संयुक्ता शिरा (Portalvein) में जाती है और वहांसे यकृतमें पहुँच कर जमा होती रहती है। यकृतमें यह घुली हुई शर्करा पुनर्वार घनावस्थाको प्राप्त हो जाती है और वहीं जमा रहती है और आवश्यकतानुसार थोड़ी थोड़ी यकृत्से रक्तमें जाती रहती है।

अधिक समय तक मात्रातीत शर्करा खानेसे उसका परिमाण अधिक हो जानेके कारण वह यकृतमें नहीं समा सकती और मूत्रके साथ मिल कर बाहर आने लगती है। इसी रोगको मधु-मेह कहते हैं।

आमाशयमें जल और लवणमें भी कोई परिवर्तन नहीं होता। वह ज्योंके त्योंही रहते हैं। हां लवण

* केशिका रक्तकी अत्यन्त सूक्ष्म नलियां होती हैं एवं केशिकाओंके आपसमें मिलनेसे जो बड़ी नलियां बनती हैं उन्हें शिरा कहते हैं। शिराओंमें अशुद्ध रक्त भरा रहता है। आहारसे बने हुए रक्तमें मिलने योग्य पदार्थ पहिले अशुद्ध रक्तमें ही मिलते हैं। पुनः वह रक्त फुप्फुस फेफड़े में जाकर शुद्ध होता है। समस्त शरीरमें केशिकाओं और शिराओंका जालसा फैला है।

† दो प्रकारकी शर्करा ( Fructose & Glucose )

‡ संयुक्ताशिरा—यकृतके भीतर जानेवाली शिरा। यह दो शिराओंके मेलसे बनती है; इसीसे इसे "संयुक्ता शिरा" कहते हैं।

तथा खाद्य पदार्थोंके साथ मिश्रित जलका कुछ अंश आमाशयमें शोषित होकर रक्तमें मिल जाता है, परन्तु पिया हुआ पानी आमाशयमें शोषित नहीं होता, वह ज्योंका त्यों ग्रहणीमें चला जाता है।

स्नैहिक पदार्थ आमाशयमें आकर पिघल जाते हैं?

दूध जब आमाशयमें पहुँचता है तो फट जाता है और उससे एक प्रकारका दही सा बन जाता है। फिर इसको पाचन उसी प्रकार होता है जिस प्रकार कि आहारके अन्य पदार्थोंका। आमाशयमें दूधका फट जाना एक स्वाभाविक क्रिया है–अस्वाभाविक या हानिकारक नहीं, जैसा कि लोगोंका मिथ्या विचार है। जब आहार-रस आमाशयसे ग्रहणीमें पहुँचता है तो उसमें पित्त और क्लोम-रस आकर मिलते हैं।

पित्त—यह एक क्षारीय रस है जिसका स्वाद कड़वा और रङ्ग हरित पीत होता है। इसका गुरुत्व १·०२६ से १·०३२ तक होता है। पित्तमें कई प्रकारके लवण मिले रहते हैं। यह तैलादि स्नैहिक पदार्थोंका उत्कृष्ट द्रावक होता है। इन पदार्थोंके पाचनके लिए पित्त एक अत्यन्त प्रयोजनीय पदार्थ है। पित्तसे क्लोम रसका प्रभाव भी तीक्ष्ण हो जाता है। यह दोनों (पित्त और क्लोम रस) मिलकर आहार-रसको, जो खट्टा होता है, क्षारीय बना देते हैं; एवं इनके प्रभावसे उसके स्नैहिक पदार्थोंका एक दूधिया घोल सा बन जाता है। यदि किसी कारणसे ग्रहणीमें आवश्यकतासे कम पित्त पहुँचता है तो स्नैहिक पदार्थ भी कम पचते हैं और उनका बहुत सा भाग विष्ठाके साथ निकल जाता है। पित्तमें जीवाणु नाशक, रेचक और दुर्गन्धि नाशक शक्ति भी होती है; इस लिए पित्तकी कमी होनेसे मलमें बहुत अधिक दुर्गन्धि आने लगती है, जैसा कि पुराने अतिसार (दस्तों) और संग्रहणी रोगमें होता है।

क्लोम रस—यह भी एक क्षारीय पदार्थ है। श्वेतसारके सम्बन्धमें मुखोत्पन्न लाला और इसका एक ही सा प्रभाव होता है अर्थात् उससे शकर बना देता है। मांसजातीय पदार्थोंपर भी यह वही कार्य्य करता है जो आमाशयिक रसकी उदराइन। परन्तु उससे इसकी शक्ति बहुत अधिक होती है और पित्तसे मिलकर और भी अधिक हो जाती है। अतएव इस रसके प्रभावसे आहारके प्रोटीनों (आमिष जातीय पदार्थों) का अधिकांश रक्तमें मिलने योग्य स्थितिमें आ जाता है।

इन दो रसोंके अतिरिक्त क्षुद्रान्त्र (छोटी अंतड़ी) को भीतरी दीवारोंमें रहनेवाली ग्रन्थियोंसे निकल कर आन्त्र-रस भी आकर आहारमें मिलता है। आन्त्ररसके प्रभावसे मुखमें बनी हुई यवज आदि सब प्रकारकी शर्कराएं अंगूरी शर्करामें परिवर्तित हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त आन्त्र रससे क्लोम-रसकी शक्ति भी बढ़ती है।

इन रसोंके मिलनेपर आहार आगेको चलना आरम्भ करता है, परन्तु अब उसकी चाल बहुत धीमी होती है; क्योंकि आंतोंमें एक प्रकारकी विशेष गति हुआ करती है। यह गति जोंककी चालके समान होती है। आंतोंके इस आकुंचन और प्रसारसे ही आहार आगेको सरकता है। आकुंचनके कारण आंतोंकी दीवारोंसे निकला हुआ रस आहारसे खूब मिल जाता है। क्षुद्रान्त्रकी समाप्तिपर बड़ी और छोटी आंतके बीचमें एक द्वार होता है जो नीचेकी ओरको ही खुल सकता है। इसलिए कोई पदार्थ क्षुद्रान्त्रसे बृहदन्त्रमें तो जा सकता है, परन्तु यथासम्भव बृहदन्त्रसे लौट कर क्षुद्रान्त्रमें नहीं आ सकता। आहार धीरे धीरे नीचेको सरकता जाता है और उपरोक्त तीनों पाचक रसों–पित्त, क्लोम-रस और आन्त्र रस—का प्रभाव उस पर होता जाता है। इन रसोंके प्रभावसे आहारमें निम्न लिखित परिवर्तन हो जाते हैं।

१—आमाशयसे वह अम्लमय आता है और यह रस उसे क्षारमय * बना देते हैं।

* आयुर्वेद (आर्य वैद्यक) शास्त्रका मत है कि आमाशयसे जो अम्ल आहार-रस ग्रहणीमें आता है, वहां आकर वह कटु हो जाता है।

२—आमाशयमें प्रोटीनोंका थोड़ा सा विश्लेषण होता है। यहाँ आकर यह कार्य पूरा हो जाता है और उनका अधिकांश रक्तमें मिलने योग्य हो जाता है।

३—स्नैहिक पदार्थ दूधिया घोलके रूपमें आ जाते हैं।

४—श्वेतसारका अवशिष्ट भाग क्लोम रसके प्रभावसे शर्करामें परिणत हो जाता है।

५—आन्त्र-रसके प्रभावसे सब प्रकारकी शर्कराएं अंगूरी शर्करामें परिणत होजाती हैं; क्योंकि रक्तमें केवल अंगूरी शकर ही मिल सकती है।

क्षुद्रान्त्रके अन्त तक पहुँचते पहुँचते पाचन क्रियाका कार्य लगभग समाप्त हो लेता है।

( ग ) आहारका रक्तमें मिलना

आहारके प्रोटीन और शर्कराके अंशका थोड़ा सा भाग तो आमाशयकी प्राचीरोंमें ही शोषित हो जाता है। शर्कराका शेष भाग और प्रोटीनोंका अधिकांश क्षुद्रान्त्रकी भीतरी दीवारोंमें शोषित होकर रक्त-वाहिनी केशिकाओंमें चला जाता है। केशिकाओंमें पहुंचकर प्रोटीन तो रक्तमें मिल जाते हैं और शर्करा यकृतमें पहुँचकर घनावस्थामें आकर वहीं जमा रहती है एवं आवश्यकतानुसार द्रव होकर रक्तमें मिलती रहती है। मानों यकृत शर्कराका भाण्डार है। लवणका अधिकांश भी क्षुद्रान्त्रमें शोषित होकर रक्तमें मिल जाता है।

स्नैहिक पदार्थोंसे जो दूधिया घोल क्षुद्रान्त्रमें बनता है, उसपर क्लोमरसकी क्रिया होती है और वह साबुन और ग्लिसरीनमें परिणत हो जाता है। तदनन्तर साबुन घुल जाता है और ग्लिसरीनके साथ ग्राहकांकुरोंमें प्रवेश करता है। वहां फिर वसा ज्योंकी त्यों बन जाती है और लसीका केशिकाओंमें चली जाती है और अन्तमें रक्तमें मिल जाती है।

जो जल स्वतन्त्र भावसे पिया जाता है उसका भी एक भाग छोटी आंतमें शोषित होकर लसीका और रक्त दोनोंमें मिल जाता है। परन्तु भोज्य-द्रव्योंमें मिश्रित जल छोटी आंतमें बहुत कम शोषित होता है।

इन सब पदार्थोंके शोषण होनेके पश्चात् जो कुछ बचा कुचा आहार रसका भाग बड़ी आंतमें आता है वह पतला द्रव रूप होता है। बड़ी आँत उसके जलीयांश और किञ्चित लवणको चूसती हैं; अतएव आहार ज्यों ज्यों बड़ी आंतमें नीचे उतरता है त्यों त्यों वह गाढ़ा और निस्सार होता जाता है और बड़ी आंतके अन्तिम सिरेपर पहुँचने तक मलका रूप धारण कर लेता है।

मलमें शरीरोपयोगी पदार्थोंका प्रायः अभाव होता है। इसमें थोड़ा सा जल, भोजनका कुछ अधपचा भाग, वह भाग जो पच नहीं सकता, एवं थोड़ा सा प्रोटीड तथा लवण और अन्य कई प्रकारके पदार्थ होते हैं। इस प्रकार आहार अपनी यात्रा १८—२० घंटेमें पूर्ण करता है।

प्राच्यमत

प्राच्य प्राचीन आयुर्वेदाचार्योंका मत है कि पाचन-क्रियाके पश्चात् आहारका जो सारांश पृथक् होता है उसे रस कहते है। आहारका रस बन जाने पर उसके ( रसके ) तीन भाग हो जाते हैं। एक सूक्ष्म, दूसरा स्थूल और तीसरा मल। यह रसका मल विष्ठाके समान निरुपयोगी नहीं होता प्रत्युत् यही मल श्लेष्मा (कफ़) का रूप धारण करके अनेक प्रकारसे हमारा उपकार करता है। इसके विकृत होने या शरीरमें आवश्यकतासे अधिक हो जानेपर नाना प्रकारके कफ़-रोग उत्पन्न होते हैं। उक्त रसका दूसरा स्थूल भाग अपने ही स्वरूपमें स्थित रहकर शरीरका हित-साधन करता है। तीसरा सूक्ष्मांश शरीरस्थ अग्निके द्वारा पुनः पकाया जाता है और लगभग पांच अहोरात्रि ( दिन रात ) तक पकनेके पश्चात् वह रक्तका रूप धारण कर लेता है। यह पुनः पका हुआ रस जब यकृत और प्लीहामें जाता है तो उसका रंग लाल हो जाता है और इसीको रुधिर या रक्त कहते हैं।

रसकी भांति ही रक्तके भी सूक्ष्म, स्थूल और मलके भेद से तीन भाग होते हैं। रक्तका मल पित्त-का रूप धारण करता है और स्थूल भाग रक्तके ही रूपमें रहता है, एवं सूक्ष्म भागका ५ अहोरात्र तक पाक होनेके पीछे मांस हो जाता है। इसी प्रकार मांसके सूक्ष्म भागसे मेद, चर्बी, मेदके सूक्ष्म भागसे अस्थि एवम् अस्थिके सूक्ष्म भागसे मज्जा (जो अस्थियोंके भीतर पाई जाती है) और मज्जाके सूक्ष्मांशसे ५ अहोरात्र तक पाक होनेके पीछे शुक्र ( वीर्य ) की उत्पत्ति होती है।

जिस प्रकार ऊखके रसको बार बार पकाकर रससे राब, राबसे खांड और खांडसे मिश्री, बूरा इत्यादि बनाते हैं उसी प्रकार आहार रससे भी बार बार पाक होकर यथाक्रम रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन छः पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है। रस सहित इन छहों ( सातों ) का नाम धातु है। मज्जाके पाक होनेपर पुरुषोंमें तो केवल वीर्यकी ही उत्पत्ति होती है, परन्तु स्त्रियोंमें वीर्य और रज यह दो पदार्थ बनते हैं।

उपरोक्त प्रक्रियासे लगभग १ मास पश्चात् आहारका अति सूक्ष्मांश वीर्यमें परिवर्तित हो जाता है

जिस प्रकार गन्नेके रसको बार बार पकानेसे उसमेंसे बार बार मैल निकलता है उसी प्रकार रसादिसे भी मैल निकलता है। रस और रक्तके मैल तो ऊपर बतलाये ही जा चुके हैं, शेष धातुओंके मैल इस प्रकार है—

मांसका मल = कानोंका मैल

मेदका " = स्वेद ( पसीना )

अस्थिका " = नख और रोम ( बाल )

मज्जाका " = नेत्रोंका मैल और स्नेह कि जिससे त्वचा चिकनी और मुलायम रहती है।

शुक्रसे किसी प्रकारका मल नहीं निकलता। जैसे बार बार तपानेसे स्वर्ण निर्मल हो जाता है उसी प्रकार वीर्यको भी निर्मल समझना चाहिये।

आहारसे सार भाग ( रस ) प्रथक् होनेके पीछे जो निस्सार भाग रहता है उसके जलीयांशका अधिकांश तो आँतमें शोषित होकर नाड़ियों द्वारा मूत्राशय (मसाने) में पहुँचकर जमा होता है जो यथा समय मूत्रके रूपमें शरीरसे बाहर निकल जाता है; और शेष किट्ट भाग विष्ठाके रूपमें परित्यक्त होता है।

---

## मिश्रमें कुत्ते और बिल्लियोंका आदर

प्राचीन मिश्रमें यदि पालतू बिल्ली मर जाती थी तो घरके मालिकको अपनी भौंहें मुड़वानी पड़ती थीं, परन्तु जब कुत्ता मर जाता था तो उसे सर और मूँछ भी मुडवानी पड़ती थी। इससे मालूम होता है कि बिल्लियोंकी अपेक्षा कुत्तोंकी अधिक इज्ज़त होती थी। कुत्ता मरता या बिल्ली, लोगबाग छाती पीटते थे, चीखें मारते थे और इस प्रकार महान शोक प्रकट करते थे। अन्तमें जानवरकी लाश मसाले लगानेवालेको दे दी जाती थी जो उसे तैयार करके दफ़न कर दिया करता था।

---

## आँखकी अपूर्व शक्ति

( ले०—श्री० गंगाप्रसाद बी० एस० सी० )

हम मेंसे बहुतसों ने रामायण में पढ़ा होगा कि जब कामदेवने महादेव जीको मोहित करनेके लिए मायाका विस्तार किया था तो महादेवजी ने उसको भस्म कर डाला। इसी प्रकार और भी बहुत सी कथाओंमें आँखमें से निकलनेवाले प्रबल तेजकी चर्चा पाई जाती है। हमारे जीवनमें भी बहुत से ऐसे अवसर आते हैं जब हमें आँखकी अपूर्व शक्तिका थोड़ा बहुत बोध हो जाता है। नज़र लगना और डाकिनकी आँख पड़ते ही कलेजे का जलना शुरू हो जाना, बुरे नीयतवाले आदमीके सामने खाये हुये खानेका न पचना इत्यादि बहुत सी ऐसी घटनायें हैं जो किसीने देखी और बहुतोंने सुनी होंगी। कभी कभी

ऐसा भी होता है कि एक बैठे हुये आदमीका ध्यान, उसके कामसे उचटकर एकाएक पास खड़े हुये घूरकर ज़ोरसे देखनेवालेकी तरफ़ खिंच जाता है, यद्यपि पहिले से उसके वहां खड़े होने की उसे खबर नहीं होती। यही नहीं बल्कि कभी कभी यह भी देखा गया है कि गौर से एक टक देखते रहनेके कारण सोते हुये आदमी-की नींद उचट गई है और वह छटपटा कर खड़ा हो गया है। यह तो मामूली बात है कि कुछ आद-मियोंसे दूसरे आँख नहीं मिला सकते। यह सम्भव है कि लज्जा या शिष्टताके विचार इस काममें बाधा डालते हों, परन्तु यह निश्चय है कि देखनेके अतिरिक्त आँखमें कुछ ऐसी शक्ति भी है जो यह सब किरिशमे कर दिखाती है। यदि यही प्रमाण मान लिये जायें तो साधारण आदमियोंको तो पर्याप्त जचेंगे और इस सिद्धान्तके अङ्गीकार करनेमें उन्हें किसी प्रकारकी आपत्ति न होगी। परन्तु लिखे पढ़े आदमी भी इन बातोंको सायंसकी दुहाई देकर त्याग देते हैं। सच पूछिये तो सायंस यह नहीं कह सकती कि इन बातोंमें कितना तथ्य है और कितना अतथ्य। पर डा० रसने (Dr. Russ) हाल में ही इस विषयपर वैज्ञा-निक पद्धतिसे कुछ काम किया है। वह इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि चक्षु केवल प्रकाश ग्रहण करनेकी ही इन्द्रिय नहीं है, किन्तु उसमें से एक शक्तिका प्रवाह भी निकलता है जिससे भार सम्पन्न पदार्थ भी इधर उधर हिल डोल सकते हैं अर्थात् वह शक्ति कभी पदार्थमय वस्तुओंको खींचती है और कभी धक्का देती है। यदि यह परिणाम औरोंको भी सच्चा मिलेगा तो यह वैज्ञानिक संसारके बड़े भारी महत्वकी घटना होगी। यह अध्यात्म विद्या-की पहिली सीढ़ी होगी। यही प्राचीन और अर्वा-चीन विज्ञानोंकी मिलानेवाली शृङ्खला होगी।

नेपोलियनके सम्बन्धमें एक कहानी सुननेमें आई है। उसके पास एक समय मारशलने (Marshal Ney) बैठे हुए थे। तभी उन्होंने एक सिपाही-को कमरेमें बुलाया। सम्राट्ने घूरकर उस मनुष्य-की ओर देखा और पासकी खिड़कीकी तरफ़ इशारा करके कहा, "कूद पड़ो"। सिपाही खिड़की तक जा कूद पड़ा और मर गया।

डाक्टर रस इस अनोखी घटना की व्याख्या अपने सिद्धान्त के अनुसार करते हैं। उनका कहना है कि आँखमेंसे निकलनेवाला शक्तिप्रवाह दूसरेके दिमाग़ तक पहुंचता है और उसे देखनेवालेकी इच्छानुसार काम करनेके लिए बाधित कर देता है।

आंख क्या है एक पारदर्शक कमरा है जो खुली हुई खिड़कीकी तरह स्नायु जाल द्वारा मस्तिष्क तक सीधा मार्ग दिखा देता है। जब कोई घूरकर दूसरेसे निगाह मिलाता है यहां समझिये कि वह मशीनके भीतर तकका पता चला लेता है; अत-एव वह अदृश्य शक्ति एक मनुष्यके मस्तिष्कसे चलकर उसकी चाक्षुषी नाड़ी और आंखमें होकर दूसरेकी आँख और चाक्षुषी नाड़ी द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचकर उपद्रव पैदा कर देती है।

प्रकाश एक वैद्युत-चुम्बकीय पदार्थ है। आँख विशेषतः इस पदार्थका पात्र है; अतएव अनु-मान कर सकते हैं कि आँखकी अदृश्य अपूर्व शक्ति भी सम्भवतः बिजली या चुम्बकसे सम्बन्ध रखनेवाली होगी।

### यंत्र और प्रयोग

अब उन यंत्रों और प्रयोगोंका वर्णन कर देना भी आवश्यक जान पड़ता है, जो डा० रसने किये हैं। पहले डा० रसने आंखकी कनीनकाका उर्ध्वांश और चक्षु-गोलकके पिछले भागको एक धारा मापकसे लगा दिया। धारा मापकमें से एक धारा आंखके सामनेसे पीछेकी तरफको बहती हुई जान पड़ी। आँखपर प्रकाशके पड़नेके पहले तो धारा बढ़ी; परन्तु बादमें पहलेसे भी कम होगई। परन्तु प्रकाश हटा लेनेके बाद फिर धारा बढ़ गयी। अन्य प्रयोगोंमें डा० रसने या तो एक तारकी बेठन (Solonoid) या भोडरकी एक बतुलीका प्रयोग किया जिसमें अन्दर और बाहर अलूमिनियमकी

पत्तियां लगी हुई थीं। इनमें से कोई सी एक वस्तु एक काँचके बरतनमें लटका दी गई थी। कांचके बरतनमें ऊपरको एक लम्बी नली चिमनीके भांति लगी थी। इसी नलीके सिरेसे बंधे हुए रेशमके तागेसे उक्त वस्तु लटकाई गई थी। कांचके बरतनके चारों तरफ़ वैद्युतिक क्षेत्र उत्पन्न करनेके लिए दो अत्यन्त विद्युन्मयपत्र रख दिये गये तो बेठन एक विशेष स्थितिमें आकर ठहर गयी। अब यदि कोई आदमी छिद्रोंमें से कांचके बरतनमें बेठनकी तरफ झांकता था तो फौरन बेठन या वर्तुली विचलित हो जाती थी। कांचके बर्तन पर धातुकी पत्ती चिपकी हुई थीं, केवल देखनेके लिए छिद्र जहां तहां रख दिये गये थे। जब दृष्टि उसके एक सिरेपर डाली गयी तो आंखकी तरफ़ और जब दूसरे सिरे पर डाली गयी तो आंखसे परे हट गयी। यह एक बहुत ही सरल प्रयोग है जो कोई भी भौतिकशास्त्री करके देख सकता है। जब दृष्टि जल्दी जल्दी इधर उधर हटाई जाती थी तो बेठन उसी प्रकार नाचती थी जैसे चुम्बकको हिलानेपर चुम्बकीय सुई नाचती है। बाइनोक्यूलरमें होकर देखनेसे अथवा आंख बन्द कर लेनेपर उसपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता था। जिन लोगोंकी आंखमें मोतियाबिन्दु होने वाला था, उनकी दृष्टि का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अब इस बातकी परीक्षा करनी चाहिये कि दर्शककी आँख पर यदि प्रकाश न पड़ता हो तो उसमें से शक्ति निकलती या नहीं? इस प्रकार अंधेरे कमरेमें भी प्रयोग करके देखना चाहिये, पर अन्तिम परीक्षाके लिए यह प्रबंध करना पड़ेगा कि प्रकाशमें बैठे हुए लोगोंको अंधेरेमें लटकी हुई वस्तुओंका विचलन मालूम हो जाय।

## लम्बी टांगवाले पक्षियोंकी पूँछ क्यों छोटी हुआ करती है?

पक्षियोंकी पूँछ पतवारका काम किया करती है। जिन पक्षियोंकी टांगें बड़ी लम्बी हुआ करती हैं वह अपनी टांगोंको उड़ते समय पीछेकी तरफ़ झुका लिया करते हैं। अतएव उनकी टांगें भी पतवारका काम दे जाती हैं और उन्हें लम्बी पूँछोंकी ज़रूरत नहीं होती, सम्भवतः इसी कारण लम्बी टांगवाले पक्षियोंके छोटी पूँछ होती हैं।

---

## जैतूनके तेलका स्वाद ठीक करनेकी विधि

अगर ज़ैतूनका तेल खट्टा होगया हो तो उसमें थोड़ा सा चूनेका पानी मिलाकर हिला देना चाहिये। ऐसा करनेसे खट्टापन जाता रहेगा। अगर उसका स्वाद कड़वा हो गया है तो उसे १००° श तक अर्थात् खौलते हुये पानीके तापक्रम तक गरम करना चाहिये। तदनन्तर ठंडा करके नितारकर छान लेना चाहिये। कड़वे होनेका कारण प्रायः यह होता है कि उसमेंके प्रोटीडमय पदार्थ अंशतः विच्छिन्न हो जाते हैं। गरम करनेसे उनका थक्का सा बैठ जाता है और अलग हो जाता है। इसीसे नितारनेपर तेलका स्वाद अच्छा हो जाता है।

---

## शिक्षाके पथ प्रदर्शक

[ ले० श्री०—"शिक्षणानन्द" ]

उपोद्घात

भारतवर्षमें आजकल हर जगह नये स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय खुल रहे हैं। कुछ तो इनमेंसे सरकारी हैं और कुछ देशके हितैषियोंके प्रयत्न और परिश्रमके फल हैं। यह तो स्पष्ट है कि सरकारी शिक्षालयोंमें शिक्षा पाश्चात्य नियमों और सिद्धान्तों-

के अनुसार दी जायगी, परन्तु आश्चर्य यह है कि नवीन भारतवर्षीय शिक्षालयोंमें भी उन्हींकी नकल हो रही है। यद्यपि शिक्षाप्रेमी पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि इस शिक्षाप्रणालीसे देशकी प्रत्यक्ष हानि हो रही है, देशके नवयुवकोंके स्वास्थ्य और सौजन्य, शिष्टता और सभ्यता, आर्थिक और धार्मिक भावोंपर बुरा प्रभाव पड़ रहा है; पर प्रचलित प्रथाके दास संकीर्ण विचारोंमें जकड़े हुए, भविष्य और परिणामसे बेसुध मस्त पड़े एएड रहे हैं। पाश्चात्य हितैषी और शुभेच्छुक भी भारतमें शिक्षाके दूषित मार्ग और असन्तोषजनक गति देख देखकर खेद प्रकट कर रहे हैं और गवर्मेंट-को बराबर सलाह और मशवरे दे रहे हैं कि अगर तुम्हें इनका भला मंज़ूर है तो शिक्षाकी बागडोर हिन्दुस्तानियोंके हाथमें दे दो। और इन्हीं भारत हितैषियोंके निरन्तर परिश्रमका फल है कि सुधार-योजनाने (Reform Scheme) कुछ अंशमें शिक्षाका प्रबन्ध और काम हमें सौंप दिया है कि जिस तरह चाहो बच्चोंको पढ़ाओ।

वस्तुतः यह बड़े भागकी बात है और अब हमें भी उचित है कि इस बातसे पूरा पूरा लाभ उठायें और संसारकी समस्त जातियोंके दिलोंपर अपनी योग्यता और कार्यक्षमताका सिक्का बैठायें। देशमें जो आजकल शिक्षा मिल रही है उसकी खूब जांच पड़ताल और छान बीन करके देखें कि इसमें कौन कौन सी बातें हमारे अभीष्टके अनुसार हैं और देशको लाभकारी हैं। कौनसी बातोंमें परिवर्तन और संशोधनकी आवश्यकता है और किन बातोंको जड़से मिटा देना आवश्यक होगा, जिससे शिक्षाका ढंग सुधर जाय और देश और कालके अनुसार होकर ऐसे नवयुवक विद्यार्थियोंको विद्वान् बनाये जो दूसरे देशोंके शिक्षित युवाओंके समान हों और सभ्यताकी दौड़में कहीं पीछे न रह जायँ। अभी तो हमारा अभीष्ट है कि वर्तमान स्कूलों कालिजों और विश्वविद्यालयोंके इतिहासको पाश्चात्य देशोंके ग्रन्थोंका अवलोकन करके जान लें और पता चलायें कि आधुनिक शिक्षाप्रणाली किन नियमोंपर स्थित है और किन शिक्षा-पथ प्रदर्शकोंके आजन्म परिश्रमको प्रदर्शित कर रहे हैं। मैं केवल आरम्भिक और माध्यमिक स्कूलोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें शिक्षा क्षेत्रके कर्मवीरोंकी जीवनियोंकी माला, जिसमें उनकी शिक्षा, उनके समयके स्कूलोंका विवरण, उनके शिक्षाप्रणालीमें उन्नति और संशोधन करनेका हाल, हमारे स्कूलोंमें उनका कहां तक प्रयोग होता है इत्यादि बातोंका संक्षिप्त समावेश होगा, समय समयपर छोटे छोटे लेखोंमें पाठकोंके भेट करूँगा।

### जान एमोस कमीनियस

#### जीवनी

जान एमोस कमीनियस सं० १६४८ वि० में मोरेवियन पादरियोंकी बिरादरीमें एक ग़रीब पनचक्कीसे आटा पीसनेवालेके घर पैदा हुआ। कोई तो कोमनाको और कोई निवनिक (Nivnic) नामी छोटेसे गांवको जो मोरेवियामें था इसकी जन्मभूमि बताता है। माँ बापका साया तो बचपनमें ही सरसे उठ गया था। उसकी बिरादरीके कुछ सज्जनोंने अपनी संरक्षकतामें लेकर उसका भरण पोषण किया और और शिक्षा दी। मन न लगानेके कारण शिक्षा कुछ यों ही सी हुई। गणित और लिखना पढ़ना सोलह बरसकी उमरमें आया। तत्पश्चात् लातिनी भाषा सीखनेके विचारसे इसने जरमनीकी कई पाठशालाओंकी खाक छानी। बड़ी उमरमें इन शालाओंमें पढ़नेसे इसकी आंखें खुल गईं। ज्ञानके दीपकका प्रकाश होने लगा। इस समयकी शिक्षाकी त्रुटियां सूझने लगीं। इसने यह अनुभव किया कि (१) जो दोष बच्चोंकी कूढ़ मग्ज़ी (मन्द बुद्धि) और अपरिश्रमशीलताका बतलाया जाता है, वह वास्तवमें शिक्षकोंका है, जो उचित रीतिसे बच्चोंकी आवश्यकताओंके अनुसार उन्हें नहीं समझा सकते; (२) इस वर्षसे अधिक एक वर्षकी पढ़ाईमें लगा देते हैं और (३) शब्दोंका रटा देना मस्तिष्ककी वृद्धि खयाल करते हैं। वह मेट्रिक्यूलेशन (प्रवे-

शिका) पास करके सं० १६७१ वि० में घर वापिस आया। अभी पादरी होनेके लिए उम्र थोड़ी थी। इसलिए एक मदरसेमें मास्टरी कर ली और और अपने मदरसेके लिए लातिनी भाषाका व्याकरण लिखा। दो बरस पीछे फुलनेकका पादरी नियत हो गया, परन्तु त्रिंशत्वर्षीय युद्धका समय था। स्पेनवालोंके अत्याचारोंसे उद्यान बियाबान हो गया; १६७८ में इसका गाँव भी तबाह हो गया और इसके घरमें लूट खसोटसे तिनका तक न बचा। उसके हाथके लिखे ग्रंथ सब नष्ट हो गये और लड़के और स्त्रीकी असामयिक मृत्युसे उसको अत्यन्त दुःख हुआ। सं० १६८४में उन्होंने प्रोटेस्टेंट पादरियोंको एक एक करके स्वदेशसे निकाल दिया। कमूनियस बन बन भटकता और दर दर मारा फिरता था, मगर पढ़ने लिखनेका व्यसन न छोड़ता था। एक बार किसी धनवानके घर मेहमान था। उसके बच्चोंके शिक्षककी प्रार्थनापर उसने भाषा पढ़ानेके नियम क्रमपूर्वक उसको लिख दिये। वह सदा शिक्षाके बड़े बड़े और विख्यात विशेषज्ञोंसे परिचय करनेकी फ़िक्रमें रहता था। राटेकी का, जो बहुत विख्यात व्यक्ति था, दो बार परिचय घनिष्ट करनेके लिए पत्र लिखे, पर उसने अशिष्टतासे दोनों पत्रोंका उत्तर देनेसे इन्कार किया। देशसे निर्वासित करके पोलेण्ड प्रदेशान्तर्गत लिस्सा नामी एक स्थानपर पनाह ली। बिरादरीके लोगोंने एक स्कूल खोलकर इसको इसका व्यवस्थापक और मास्टर बना दिया।

इस स्थानपर रह कर उसने अपनी मेगना डिडकटिका ( Magna Didactica ) नामी विख्यात पुस्तक लिखी। वह ऐसी पुस्तक ढूँढ़ने लगा जिससे लातिनी भाषा पढ़ानेकी कठिनाइयां कम हो जायँ; परन्तु जब कोई ऐसी निर्दोष पुस्तक न मिली तो उसने स्वयं जेनवा लिंग्वारम ( Janua Linguarum Reserate ) नामकी पुस्तक सं० १६८८ वि०में लिख डाली। तदनन्तर उसे एक नई धुन पैदा हुई। वह यह थी कि दुनिया भरके समस्त विज्ञानोंको इकट्ठा करके उसको ऐसा सरल और मान्य क्रमबद्ध रूप दे कि बच्चोंको भी छोटी उम्रमें पढ़ा देना कठिन न रहे। पर यह काम बड़ा कठिन था। एक मनुष्यका जीवन काल इसके लिए पर्याप्त न था। धनकी भी बड़ी आवश्यकता थी। इङ्गलिस्तानमें बेकननामी दार्शनिकने एक पुस्तक लिखी थी जिसमें उसने लिखा था कि विद्वानोंकी विस्तृत रूपसे गवेषणा करनेके लिए एक प्रयोगशाला खोली जाय और वहाँ व्युत्पादन विधिसे वस्तुओंके वास्तविक रूप, उनके नियम और परस्पर सम्बन्ध निकाले जायँ तो मनुष्यके ज्ञान भण्डारमें शीघ्र वृद्धि होगी। अतएव इङ्गलिस्तान निवासियोंने, जिनके सरमें ऐसे विचार समा रहे थे, इसको ऐसा विद्यामन्दिर चेलसी कालेजमें स्थापित करनेके लिए बुला भेजा। सं० १६९८ वि० में यह वहां पहुंचा, परन्तु अभ्यान्तर युद्धके कारण देशमें शान्तिका नाम भी न था, इसलिए कुछ भी न हुआ। इतनेमें ही इसके एक भक्त लुइस डीगैटने स्वीडिन बुला लिया कि पाठशालाओंमें अपनी नवीन शिक्षा प्रणालीका प्रचार करे। इसके पीछे १७०७ वि० में शहज़ादे रिकोज़ी के बुलावे पर गया और पुरसिया अलबङ्ग स्थानमें जमकर रहने लगा। १७११ ई० में फिर लिस्सा वापिस आया। परन्तु यहां फिर वही भोंचाल आना शुरू हो गया। लड़ाई भिड़ाई फिर छिड़ गई। लिस्साकी भी तबाहीके दिन आ गये। इसके मकान, पुस्तकें और पुस्तकालय जलभुन कर खाक हो गये। माल असबाबका पता न रहा। देश विदेश भटकना भाग्यमें लिखा था। फिर जरमनीको यात्रा की। पुराने मित्र लुइस डीगैटेके बेटेने फिर घर बार बना दिया। परन्तु अब दिन पूरे हो चुके थे। सं० १६७१ में इसका देहान्त हो गया।

शिक्षा प्रणाली

उद्देश्य—हमको यह जन्म संसारके सुख भोगने के लिए ही नहीं मिला है, प्रत्युत धर्मधन इकट्ठा

करनेके निमित्त दिया गया है। परम सत्यको पहचानकर ब्रह्म-सुखका अनुभव करना इसका परम उद्देश्य है। जीवनके तीन विभाग हैं। पहला शरीर पोषणका, दूसरा सन्तानोत्पत्तिका और तीसरा आध्यात्मिक उन्नतिका*। अन्तिम ही सच्चा जीवन है। मनुष्यके दिलमें निपुणता, सौजन्य और धर्मके बीज बो दिये गये हैं और उनके सिंचन और परिवर्तनकी शक्ति भी प्रदान की है। शिक्षाका लक्ष्य इन शक्तियोंका विकास करना है। शिक्षाका काम आजकल केवल अच्छी ज़मीन तैयार कर देना और हवा, धूप, मेंह, बादल, ओस पालेका ध्यान रखते हुए प्राकृतिक शक्तियोंको अपने आप उगने, बढ़ने, फलने फूलने देना, समझा जाता है। बच्चोंको प्रकृतिने इसलिए और सब कामोंके लिए बेबस बनाया है कि बालकपनके समयको ग़नीमत समझ कर माता पिता उनको शिक्षा देनेको समय पा सकें। राजके शासन कर्ताओंका यह कर्तव्य है कि प्रजाकी शिक्षाको अपना धरम समझें। कमीनियस पहला व्यक्ति है जो बिना भेद भावके स्त्री पुरुष, जात पांत, और काले और गोरेको शिक्षा देनेका पक्षपाती है।

यल—शिक्षा देनेके लिए पाठशालाएँ होनी चाहियें। यह चार प्रकारकी हों :—( १ ) बच्चोंकी शिक्षाके लिए, ( २ ) जन साधारणको देशी भाषा सिखानेके लिए, (३) विदेशी भाषा सिखानेकेलिए, (४) शिक्षा पद्धति सिखानेके लिए अर्थात् यूनीवर्सिटियां। शैशव कालमें, छः सालकी उम्र तक, बच्चे माओं और शिक्षिकाओंके निरीक्षणमें घर पर ही रहें। देसी मदरसोंमें जो हर गांव और क़सबेमें हों सारे शहरके लड़के छः सालसे बारह साल तक शिक्षा पायें। विदेशी भाषाओंके मदरसे हर कमिश्नरीमें हों, जिनमें देशी भाषाके मदरसोंका पाठ्यक्रम समाप्त कर लड़के आवें और अठारह वर्ष तक रहें। १८ वर्षसे २४ वर्ष तकका समय विद्वान् होकर विदेश यात्रा अथवा शिक्षा पद्धतिका अध्ययन करनेके लिए है। पहले दो मदरसे बिना रोक टोक सबके लिए हैं। दस्तकार और पेशेवरोंको ( शिल्पकारों और व्यवसायियों ) छोड़कर और सबके लिए तीसरे प्रकारके मदरसे हैं। चौथे केवल देशके योग्य और भावी शिक्षकोंके लिए हैं। बचपनकी शिक्षाके विषयमें उसका मत था कि बड़े चाहे कितना ही प्रयत्न करें कि बच्चोंकी सोचने समझने और जवाब देनेकी योग्यता बढ़ायें, परन्तु जो उन्नति कि एक ही उम्र और एक ही टेव और लच्छनके बच्चोंके आपसमें मिलकर रहनेसे होती है, वह कदापि नहीं हो सकती। उनके चंचलपनके लिए खेल ढूंढ़ने चाहियें, क्योंकि खेल निठल्लेपनसे अच्छे प्रमाणित होंगे। बच्चे खेलमें पूरा ध्यान देंगे और आपसमें वादविवाद करेंगे तो बुद्धि तीव्र होगी। तीन चार बरसके बच्चोंको ऐसे कामोंमें लगाना चाहिये, जिनमें आंख, नाक, कान आदिका काम पड़े, जिससे शरीर और मस्तिष्कका बल बढ़े। इस अवस्थामें प्रत्येक कलाकी आरम्भिक बातोंमें प्रवेश करा देना चाहिये। जैसे रेखांकन ( Drawing ) में चाहे वह कुछ खींच भी न सके, परन्तु रंगीन पेंसिलोंसे चीत मकोड़े करनेमें भी उनको आनन्द आयेगा। ज्योतिषमें सूरज चाँद तारे आदिके नाम बताये जायं। इतिहासकी नींव, तुमने कल क्या क्या काम किये थे आदि प्रश्नोंसे, रखी जा सकती है; भौतिक शास्त्रमें हवा, पानी, आग मट्टी उजेला अंधेरा, रंग आदि बतानेसे काम चल सकता है। दूसरे प्रकारके देशी स्कूलोंमें प्रत्येक विद्याकी अपनी मातृभाषामें शिक्षा देनी चाहिये, जिसमें वह जलदीसे विद्योपार्जन कर दुनियाके धंधेके लायक हो जायं। भाषामें पहले बोलना चालना और लिखना पढ़ना आ जाय, बादमें व्याकरण सिखायी जाय। प्रकृतिके नियमोंका अवलोकन करनेसे हमें पढ़ाने लिखानेकी ठीक विधि मालूम होती है। देखिये प्रकृति हर प्रकारकी

* यह हमारे यहांके ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और संन्यास आश्रमोंसे मिलते हैं।

फ़स्लके लिए उचित ऋतुका इन्तज़ार करती है। यदि ककड़ी बोनेका समय नहीं आया है तो बीज बेकार (व्यर्थ) जायंगे। प्रकृति पहले सामान इकट्ठा कर लेती है, पीछेसे पौधेका आकार बनाती है। प्रकृति पहले मोटी मोटी पत्तियाँ बीजसे पैदा करती और पीछेसे उन पत्तियोंमें रंग भर भर कर और कोने काट कर उनको सुन्दर बनाती है। अतएव बच्चोंको शिक्षा देनेमें उनकी आयुके अनुसार विषयको चुनना चाहिये। शब्द बतलानेके पहले वस्तुओंका ज्ञान कराना चाहिये। भाषा पढ़ानेके पीछे व्याकरण पढ़ानी चाहिये। पहले मोटी मोटी बातें बताकर विषयसे परिचय करायें; पीछेसे सूक्ष्म बातें बतलायें। ऐसे प्रश्न अभ्यासके लिए दें जिनसे बुद्धि बढ़े। स्मरण शक्ति, वाचन शक्ति और हाथोंसे काम लें।

तीसरे प्रकारके स्कूलोंमें अन्य भाषाएं पढ़ानी चाहियें, जिसमें अपने घरके विद्याभंडार पर स्वत्व प्राप्त कर दूसरे राष्ट्रोंके ज्ञानपर अधिकार पा जायं। परन्तु यह सबके लिए नहीं हैं। यह उन्हीं लोगोंके लिए हैं जिन्हें जीविकाकी चिन्ता नहीं है, समय पर्याप्त है कि देशको लाभ पहुँचा सकें और विदेशोंके ज्ञान और अनुभवसे अपने देशको मालामाल कर दें।

चौथे प्रकारके स्कूलोंमें सीखना समाप्त हुआ और सिखानेकी बारी आई। जाति, देश, गवेषण आदिके लिए इनका संस्थापन अनिवार्य है। इनमें पढ़नेके बाद तीसरे स्कूलोंसे भी अधिक लाभ पहुंचानेकी योग्यता होगी।

शिक्षा पद्धति—कमूनियसने अपने समयके स्कूलोंमें निम्न लिखित दोष देखे और उनको दूर करनेके साधन निकाले।

(१) मातृ भाषाकी कोई परवाह ही नहीं करता। सब लातिनी भाषा पढ़ पढ़ कर विद्वान बनना चाहते हैं।

(२) इस भाषामें व्याकरणके नियम पहले बताये जाते हैं; उदाहरण बादमें दिये जाते हैं।

(३) बालकोंकी अवस्थाका विचार न करके, विषय सरल हो अथवा कठिन छड़ीके ज़ोरसे बच्चोंको पढ़ाये जाते हैं, चाहे इनका मन लगे या न लगे।

(४) स्कूलके समय-विभाग भी विचार पूर्वक नहीं रखे जाते। समयके विचारसे विषय नहीं पढ़ाये जाते। जिन विषयोंके अध्ययन करनेमें बच्चोंको कम थकान होती है वह पहले और जिनमें कम होती है वह बादमें या मिलाकर पढ़ाते हैं।

(५) मदरसेके मकान स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अच्छे बने हुए नहीं होते।

(६) विषयोंके पढ़ानेकी कोई विधि निश्चित न थी। न परीक्षाएं होती थीं। शिक्षक बच्चोंकी कूढ़ मग्ज़ी और आलस्यसे खिन्न और बच्चे शिक्षकोंकी फटकार और मारपीटसे दुःखी और त्रसित, उनके माता पिता उनकी बुद्धि हीनता और शिक्षकोंकी शिकायतसे परेशान। सारांश यह कि कोई बात ढंगकी न थी। सब तरफसे निराशा प्रकट थी। कमीनियसने एकाएक इन निराशा और उत्साहहीनताके बादलोंमेंसे अपनी पद्धतिकी किरणें फैलानी शुरू कीं और अज्ञानताके अंधेरेको दूर करके विद्याके प्रकाशसे संसारको आलोकित कर दिया। इसकी शिक्षा पद्धति और उपदेश स्वयम् इस कथनको सिद्ध कर देंगे।

शिक्षा पद्धति और उपदेश—(१) पहले मातृभाषाका पढ़ना लिखना तदनन्तर सब विषयोंका आशय मातृ भाषामें समझा देना चाहिये। बोलने चालने और लिखने पढ़नेके बाद व्याकरणके नियमोंका व्युत्पादन करा देना चाहिये।

(२) लातिनी भाषामें शास्त्रका भण्डार है, अतएव इस भाषाको पीछेसे अवश्य पढ़ा देना चाहिये, जिसमें विद्यार्थी यूरोपके विद्वानोंसे वाद-विवादमें पीछे न रहें और उनके विचारोंको समझ सकें।

(३) बच्चोंकी आयुके अनुसार पढ़ाई होनी चाहिये। पहले इन्द्रियोंकी शिक्षा देनी चाहिये

तदनन्तर स्मृतिसे काम लिया जाय। फिर बुद्धि पर ज़ोर दिया जाय। सबसे अन्तमें नुकताचीनी (गुणदोष विवेचन) की योग्यता बढ़ाई जाय। वस्तुओंके चित्र बच्चोंके दिलोंमें प्रस्तुत हैं। चिवरासे उन्हें चेताओ। तुलना करनेसे समझमें बैठ जायंगे और विवेचनसे शुद्ध और अशुद्धमें भेद जान सकेंगे। इस विधिसे यदि शिक्षक पढ़ायेंगे तो बच्चोंको आनन्द आने लगेगा और मारने पीटनेकी आवश्यकता न पड़ेगी।

(२) शिक्षकको कृपालु और दयालु होना चाहिये, दण्ड और भय, पारितोषिक और उपहारका काम न पड़े। प्रत्येक वस्तुको जहां तक सम्भव हो पहले दिखावे, तदनन्तर उसके मांसिक रूप और नामको व्याख्या करे। वस्तुकी अनुपस्थितिमें मांसिक रूपसे ही सहायता ले।

(३) भाषा पढ़नेमें यह समझकर कि लड़कोंके पास वाक्यों और शब्दोंकी पर्याप्त संख्या है या नहीं व्याकरणके नियम वाक्योंकी रचनासे निकलवाये।

(४) जब तक बच्चे विषयको अच्छी तरह न समझ लें स्मृति वाचनशक्ति और प्रयोगके लिए प्रश्नावली न दे। शिक्षणविधि प्रकृतिके अनुकूल हो। जो बातें विषयसे सम्बन्ध न रखती हों या बालकोंकी सामर्थ्यसे बाहर हों वह छोड़ दी जायं।

(५) मदरसे का मकान बच्चोंके स्वास्थ्यके विचारसे उत्तम बनवाना चाहिये। प्रत्येक मकान बच्चोंकी शिक्षाके लिए ठीक न समझ लिया जाय।

(६) व्यवस्थापक और अन्य पदाधिकारी बच्चोंकी योग्यताकी कभी कभी परीक्षा लें और श्रेष्ठ विद्यार्थियोंको पारितोषिक दें।

(७) इन सब बातोंके अतिरिक्त माता पिताको विद्याकी आवश्यकता दिखानी और विद्वानोंकी प्रशंसा करानी चाहिये और उनके शिक्षकोंका सम्मान करना चाहिये, जिसमें बच्चोंके दिलमें शिक्षाका महत्व बैठ जाय।

कमीनियसकी शिक्षा पद्धतिमें चार बातें विचारणीय हैं। यह पहला व्यक्ति था जिसने (१) विद्याकी चर्चा घर घर फैलानेकी कोशिश की और प्रत्येक व्यक्तिको शिक्षित करनेका आग्रह किया। चीनी, मुसलमान, हिन्दू और ईसाइयोंमें विशेष व्यक्तियोंको शिक्षा देना धर्म संगत और अधिकांशके लिए वर्जित है। (२) प्राकृतिक वस्तुओंका दर्जा शिक्षा देनेमें ऊंचा माना है और संसारिक घटनाओंके निरीक्षणसे नियमोंका निर्माण करनेकी अनुमति दी है। (३) मस्तिष्ककी क्रियाओंके नियमोंके अनुसार शिक्षा दिये जानेका आग्रह किया। मस्तिष्ककी क्रियाओंको देखकर नियम बनानेवालोंको उत्तेजना दी है। (४) मातृभाषाको शिक्षामें उचित स्थान प्रदान किया।

इसकी शिक्षा पद्धतिकी कुछ त्रुटियां यह हैं:—

(१) उदाहरणोंका दुरुपयोग—समझानेके लिये उदाहरण उपयोगी होते हैं, परन्तु कोई चाहे कि इनसे नियमोंके सिद्ध करनेमें सहायता ले तो व्यर्थ समझा जायगा। उदाहरणतया यदि स्कूलके प्रबन्धके विषयमें हम मालियों, चित्रकारों और राजोंकी बातोंसे सहायता लें और हरएक नियमके सिद्ध करनेमें इन्हींके कामोंसे सहायता लें तो अत्यन्त अनुचित होगा; या कोई इस उपमासे काम लिया चाहे कि संसारमें एक ही सूर्य प्रकाश फैलाता है, इसलिए स्कूलोंमें चाहे कितने लड़के हों एक ही अध्यापक काफी है तो ठीक न होगा।

(२) विद्याकी महिमा सीमा उल्लंघन कर गई है:—कमीनियस चाहता था कि प्रत्येक व्यक्ति सारे संसारके ज्ञानसे सम्पन्न हो जाय। इस मिथ्या विचारने उसे राहसे भटका दिया। उसने बड़ी देरमें अपना भ्रम छोड़ा और सेनेका के कथनका समर्थन किया कि थोड़ी बातें मालूम हों पर बहुत अच्छी तरह और हर प्रकारसे उसका उपयोग हो सके, न कि कुल विद्याके ग्रहण करनेका प्रयत्न करें और काममें कुछ न ला सकें।

(३) साधनों पर उसे अनुचित विश्वास हो गया था। वह समझता था कि अगर शिक्षणपद्धति पूर्ण और नियमानुकूल होगी तो हर व्यक्ति

को विद्वान होना संभव हो जायगा, मानों आदमियोंके मस्तिष्क मशीनमें समान गोलियोंके रूपमें बनकर तय्यार हो सकते हैं।

इन त्रुटियोंके रहते हुए भी आपको स्पष्ट हो गया होगा कि कमीनियस किस कोटिका आदमी था, उसकी शिक्षा पद्धति कैसी थी और वर्तमानमें उससे हम क्या क्या उपदेश ग्रहण कर सकते हैं और इस कालमें भी शिक्षक उसके क़दम ब क़दम चलकर देश और जातिको कितना लाभ पहुंचा सकते हैं।

आधुनिक भारतवर्षीय पाठशालाओंको कमीनियसके नियमोंकी कसौटीपर परखकर देखना चाहियेः—

कमूनियसके समयमें शिक्षाकी दशा

(१) मातृभाषाका गौरव कुछ भी न था। लातिनी भाषा विद्यामन्दिरके द्वारकी कुंजी थी। श्रेष्ठ विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ इसी भाषामें लिखे गये थे।

कमीनियसका मत था कि आरम्भके १२ बरस तक पहले दो स्कूलोंमें मातृभाषामें प्रत्येक विषयकी शिक्षा दी जाय। जो उद्भट विद्वान होकर यूरोपके पण्डितोंसे शास्त्रार्थ करना चाहें और अपने देशको पुस्तकोंका अनुवाद कर लाभ पहुंचाना चाहें वह तीसरे और चौथे स्कूलोंमें पढ़ें।

(२) शिक्षामें शैशव, बाल्य और युवा अवस्थाओंके मनोविज्ञानसे काम लेकर उचित समयपर उचित विषय पढ़ाया जाय, जिसमें थकावट न हो।

(३) जात पांत, रंग और लिङ्गभेदका विचार न करके सबको शिक्षा दी जाय।

आजकल भारतमें शिक्षाकी दशा

(१) तहसीली और मिडिल स्कूलोंमें सब विषयोंकी शिक्षा भाषामें होती है, मगर अंगरेज़ी स्कूलोंमें आदिसे अन्ततक अंग्रेज़ीमें सब विषय पढ़ाये जाते हैं। उर्दू मिडिल और अंग्रेज़ी मेट्रिकुलेशनके बीचमें स्पेशल क्लासका पुल है। यह सिद्धान्तके प्रतिकूल है और गवर्मेन्टने शिमला रिपोर्टमें इसपर बहस छापी है। हमारी योजना यह है कि तहसीली और मिडिल स्कूलोंमें योग्य शिक्षक भाषामें सब विषयोंकी एफ़. ए. तक की पढ़ाई आठ या दस सालमें ख़तम करदें और जिन्हें जीविकाकी चिन्ता है वह पन्द्रह या सत्रह सालकी उम्रमें या तो किसी पेशेकी जैसे इञ्जीनियरी, डाक्टरी, दस्तकारी, खेती बारी, वाणिज्य विद्या आदि मातृभाषामें पढ़कर नौकरी कर लें या तीन साल तक कालिजमें इंग्रेज़ी भाषा सीखकर फिर इन्हीं पेशोंकी उच्च शिक्षा पावें या गवेषणाके कामोंके लिए छात्रवृत्ति लेकर विदेशोंको जावें।

विज्ञान, गणित आदि विषयोंमें अंग्रेज़ी पारिभाषिक शब्द ज्योंके त्यों रखे जायं जिसमें विद्या विनिमयमें कठिनाई न पड़े।

(ख) मातृभाषामें शिक्षा देनेके लिए उच्चसे उच्च विज्ञान और अन्य विद्याओंके ग्रन्थोंका अनुवाद करनेके लिए एक विद्वानोंकी समिति स्थापित की जाय और अच्छे अनुवादोंपर पारितोषक दिये जायँ।

(ग) मदरसेमें बैठनेकी उम्र ७ वर्ष रखी जाय।

(च) सात सालकी उम्रसे पहले चार साल आरम्भिक शिक्षाके काममें ला सकते हैं, परन्तु धीरे धीरे जब पर्याप्त धन उपस्थित हो तो ३ वर्षसे ७ वर्ष तकके बच्चोंके लिए विशेष पाठशालाएँ खोल दें। इनमें वह शिक्षक रखे जायँ जो किंडरगार्टन आदि पद्धतियोंके ज्ञाता हों, विशेषतः वह जो अपना जीवन अध्ययन कार्यके निमित्त भेट कर चुके हैं।

बात यह है कि जिस तिस प्रकारकी शिक्षासे इस अवस्थामें हानि होती है और यदि शिक्षा चतुराईसे खेल ही खेलमें न दी जाय तो बच्चोंका जीवन ख़राब हो जानेका डर रहता है।

(२) शिक्षण-कला-प्रवीण अध्यापक रखे जायं जो अच्छी तरहसे शिक्षा दे सकें, जो बच्चोंके मस्तिष्क और आयुकी दृष्टिसे कक्षा-विभाग कर सकें, थकानको बिना विलम्ब पहचान लें और उसके दूर करनेका यत्न कर सकें।

(३) आरम्भिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य हो। अंगरेज़ीके शिल्प कालेजमें शुल्क लिया जाय

परन्तु आरम्भिक शिक्षा जो चाहें पा सकें, चाहे वह नीच जातिका हो चाहे ऊंची जातिका, स्त्री हो या पुरुष। स्त्री शिक्षाके लिए पाठशालाएँ अलग हों और पाठ्यक्रम भी उनकी आवश्यकताओंके अनुसार हो।

(४) (क) शिक्षा आरम्भिक कक्षाओंमें खेल खेलमें दी जाय और किंडर गार्टन तथा मांटीसरीको इस प्रकार देशकी आवश्यकताओंके अनुकूल बनाया जाय कि कम खर्च और बालानशीन सिद्ध हों।

(ख) अंग्रेज़ी भाषा बिना मातृभाषाकी सहायताके सिखाई जाय।

(ग) यूनीवर्सिटीमें प्रत्येक व्यक्तिको दर्शन जानना आवश्यक हो, अन्य विषय वैकल्पिक हों।

---

## बारह शाखावाला खजूर

[ले०—श्रीयुत जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार]

कुरुक्षेत्रकी भूमि बड़ी पुण्य भूमि समझी जाती है। सनातनसे ही यह एक अति प्राचीन तीर्थ है। कुरुक्षेत्रके गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंके मुखसे मैंने एक अद्भुत खजूरका नाम सुना। मेरे चित्तमें सचमुच उसके देखनेकी बड़ी उत्कण्ठा हुई। दूसरे दिन ही प्रातःकाल मैं अपने मित्र सोमदत्त जीको साथ लेकर खजूरको देखने चल दिया।

कुरुक्षेत्र जंक्शनसे अम्बाला जानेवाली रेलवे लाइनके साथ लगभग पौन मील तक हम पैदल चले और फिर दायें हाथको जंगली मैदानमें हो लिये। पहले सरस्वतीका बरसाती पानी तैरकर पार किया फिर कोई तीन फर्लाङ्ग चलकर उस खजूरको देखा। क्या विचित्र खजूर था। वह आकाशसे बातें न कर रहा था, मोटाईमें हाथीको मात कर रहा था और न सजीव भक्तकी तरह लेट या उठकर दर्शकोंको अपनी चेतनताका परिचय ही दे रहा था। उसकी विचित्रता बस देखते ही बनती थी। आम, जामन, और शहतूतके पेड़ोंकी शाखाएं सभी देखते हैं परन्तु खजूरका हर जगह एक ही तना चोटी तक सीधा चला जाता है और पत्ते छतरीके समान फैले होते हैं। यह सामान्य बात तो हर जगह और हर कोई देखता है। पर इस खजूरमें यह सभी बातें विपरीत पायीं। मुझसे मेरे पथदर्शक मित्र कहते थे, "पण्डितजी इस खजूरकी बारह शाखाएं हैं।" "बारह शाखाएँ!" सचमुच मैं सुनकर हैरान रह गया। मैंने ऐसा होना असम्भव जाना। मैंने कहा "शाखाएं नहीं होंगी प्रत्युत एक ही स्थानपर १२ बीज पड़ जानेसे १२ तनेदार खजूर उग आये होंगे। और शाखाओंका भ्रम होता होगा" परन्तु बहुत आग्रह करनेपर मैंने आज देखा और जाना कि मैं स्वतः गलतीपर था।

एक खजूरकी सचमुच १२ शाखाएं थीं। यह कोई स्वप्नका दृश्य नहीं था और न कोई बाजीगर का तमाशा ही था। प्रत्युत यह एक ऐसा वृक्ष है जिसको आस पासके प्रायः सभी लोग जानते हैं। और इसको देखनेवाले विलायतसे उसका नाम सुनकर आते हैं और उसका फोटो उतार कर ले जाते हैं। यह वृक्ष किसी मालीकी कृत्रिम चतुरताका नमूना नहीं है, क्योंकि यह बिलकुल जंगलमें लगा है। आस पास कितने ही ढाकके पेड़ अनियमित रूपसे उगे हुए हैं। आस पासकी सभी भूमि बेजुती पड़ी है। आस पास भी कोई खेतीका चिह्न नहीं है।

यह वृक्ष साधारणतः लगभग २५ फुट ऊंचा है। इसकी शाखाएं ८-६ फुटकी ऊंचाईपर फूटती हैं। इसके मूल तनेका घेरा पौने तीन फुट है और शाखाओंका घेरा पौने दो फुट है। वृक्षकी आयु भी बहुत अधिक नहीं लगती तो भी लगभग सौ बरसका अवश्य है। वनस्पति संसारमें वस्तुतः यह एक अद्भुत नमूना है। एक नहीं दो नहीं पर १२ शाखाओंका एक खजूर पर फूटना वनस्पति विज्ञान-

चेत्ताके मस्तिष्कको चक्करमें डाल देता है। जिसको सचाई देखनी हो कुरुक्षेत्र जाकर देख सकते हैं।

## कुनेनकी कहानी

जब बच्चे जंगलोंमें घूमते हुये पहुँचते हैं तो स्वभावतः उनमें यह इच्छा पैदा हो जाती है कि वृक्षोंकी टहनियां तोड़ तोड़कर इधर उधर फेंक दें और उनके टुकड़ोंको दांतों तले दबाते हुए चलें। खासकर जिन पेड़ोंका अच्छा स्वाद या जिनका अच्छा रंग रूप होता है उन्हें देखकर ही उनका मन ललचा जाता है। इस प्रकार पौधों और वनस्पतियोंके, वृक्षों और झाड़ियोंके पहचाननेमें उनकी पत्ती छाल और फूल ही उन्हें याद नहीं आते, प्रत्युत छाल और फलका स्वाद भी याद आ जाता है। यही दशा हमारे प्राचीन पूर्वजोंकी हुई होगी उन्होंने अनेक पौदोंका प्रयोग करना इसी प्रकार सीखा होगा।

आजकल भी वानस्पतिक पदार्थोंका अनेक रूपोंमें प्रयोग होता है। किसी पौदेका फूल काम आता है जैसे गुलबनफ़शा और गुलख़ेरू; तो किसीकी पत्ती काम आती हैं, जैसे तुलसी, तेजपात, बड़, नीबू इत्यादि की। किसी किसी वृक्षकी छाल, किसीकी टहनियां और बहुतोंके फल काममें आते हैं। जड़को भी टहनियोंमें ही शामिल समझ लेना चाहिये, क्योंकि यह कोई भिन्न वस्तु नहीं है।

आजकल भी बहुत से वृक्षोंकी छालोंका दवाओंमें प्रयोग होता है। भारतवर्षमें विशेषतः दवाइयाँ अलग अलग मिलती हैं और जब आवश्यकता होती है उनसे काढ़ा आदि तैयार कर लिया जाता है; परन्तु यूरोपमें यह प्रथा उठ गई है और वहाँ तैयार की हुई दवाइयां ही गोली, बुकनी, टिकिया या (tincture) के रूपमें मिलती हैं।

सिंकोना जातिके कई वृक्ष दक्षिणी अमेरिकाके कई भागोंमें विशेषतः पेरूमें पाये जाते हैं; इन्हींकी छाल पेरूवियन बार्क ( Peruvian bark ) के नामसे बिकती है। सिंकोना वृक्षमें सफेद या गुलाबी रंगके फूल लगते हैं। इसकी छाल जैसुइट लोग जो दक्षिणी अमेरिकामें जा बसे थे पहिले पहल यूरोपमें लाये। इसका प्रयोग करना उन्होंने पेरूके असली निवासियोंसे सीखा। स्पेनिश वाइसरायकी बीवी काउण्टेसडैल चीनीयन (Countess del Chincon ) के इलाजमें इसका प्रयोग किया गया था। श्रीमतीजीको आराम हो गया और लीनियसने इस वृक्षका नाम भी उनके नामपर सिंकोना रख दिया। इस बातका स्मरण करके बड़ा खेद होता है, क्योंकि कृतज्ञताका यह तक़ाज़ा था कि वृक्षका असली नाम ही क़ायम रखा जाता; पर यूरोपके लोगोंने इस विषयमें बड़ा अन्याय और अत्याचार किया है।

पेड़की छाल सितम्बर, अक्तूबर या नवम्बरमें काटी जाती है, क्योंकि वहां इन्हीं तीन महीनोंमें वर्षा नहीं होती। छाल तीन तरहकी आती हैं, लाल, पीली और काफूरी। पीली और काफूरी छाल अच्छी समझी जाती है, क्योंकि इन्हींमें ओषधि ( सारवस्तु ) की मात्रा अधिक रहती है। सबसे अच्छी छाल वह समझी जाती है जिसमें यह तीनों रंगोंकी झांई रहती है। ऐसी ही छालको क्राउन बार्क कहते हैं। यही छाल असली पेरूवियन बार्क है। पीली छाल बोलेविया और पेरूसे आती है और लाल ईक्वेडरसे।

इस छालमें प्रायः इक्कीस एल्केलोयड ( क्षार ) निकाले जाते हैं, जिनमेंसे कुनेन भी एक है। अन्य महत्वपूर्ण एल्केलोयड क्विनीडीन ( quinidine ), सिंकोनीन ( cinchonine ), सिंकोनिडीन (cinchonidine ) और हाइड्रोक्विनीन ( hydroquinine ) हैं। १८६८ ई० में मद्रास गवर्नमेंटने इनमेंसे चारकी परीक्षा करवाई थी। हज़ार पीछे जितने रोगियोंको इन पदार्थोंसे फ़ायदा न हुआ उनकी गणना इस प्रकार है :–क्विनीडीन ५; कुनेन ७, सिंकोनिडीन १०, सिंकोनीन २३। इससे स्पष्ट होगा कि इन

सबमें क्विनीडीन और दूसरे नम्बर कुनेन है। कुनेन पानीमें घुलती नहीं। इसलिए साधारणतया कुनेन गनधेत (quinine sulphate) या उज्ञहरिद (acid hydrochloride) काममें लाये जाते हैं; परन्तु बच्चोंको या तुनुक मिज़ाज आदमियोंको कुनेन टैनेट (tannate) देते हैं।

कुनेन मलेरिया ज्वर या मोसिमी बुखारके लिए रामवाणका काम करती है। यह एक प्रकार-की बलवर्धक भी है। जब बलवर्धनके लिए इसका प्रयोग करना हो तो आधा ग्रेन उज्ञहरिद दिनमें दो दफ़े खाना चाहिये। कुनेन बुखारके रोकनेमें भी काम आती है। युवाओंको दो दो या तीन तीन ग्रेन कुनेन दिनमें दो दफ़े खिलानी चाहिये और बालकोंको एक एक ग्रेन।

एक बातका यहांपर उल्लेख करना उचित जान पड़ता है। वह यह है कि सिंकोनीन और कुनेनके खानेसे कभी कभी नुकसान भी हो जाता है। इसका कारण यह है कि यह दोनों पदार्थ विषोंमें परिणत हो सकते हैं, जिनको सिंकोटोक्सिन और क्विनो-टोक्सिन कहते हैं। कुनेनके बनानेमें जब बहुत देर तक सुखानेके लिए गरम करते हैं और सिर-काम्ल प्रस्तुत होता है तब यह ज़हर ज़रूर बन जाता है। पेटमें सिरकाम्ल और संतराम्ल (citric aci) मौजूद रहते हैं। अतएव कभी कभी कुनेनसे विष पैदा हो जाता है और बड़े बुरे लक्षण पैदा हो जाते हैं। जब कभी किसी रोगीमें यह लक्षण पैदा होते दिखाई पड़ें तो फौरन कुनेन देना बन्द कर देना उचित है और क्विनीडीन देना आरम्भ कर देना चाहिये।

प्रतिवर्ष साढ़े बारह हज़ार मन कुनेन गंधेत-की खपत सारे संसारमें होती है।

कुनेन तैयार करनेके लिए छालको पहिले खूब पीस लेते हैं। इतना बारीक पीसते हैं कि फ़ी इञ्च सत्तर खानेवाली चलनीमें से वह छन जाती है। तदनन्तर उसमें एक तिहाई बुझा हुआ चूना मिला दिया जाता है और पानी मिलाकर गारा सा बना लेते हैं जो खौलते हुये पानीके ताप-क्रमपर अच्छी तरह सुखा लेते हैं। उसे फिर पीसते हैं और पेट्रोलियममें मिलाकर पांच घन्टे तक गरम करते हैं। जो एल्केलोयड छालमें होते हैं वह पेट्रोलियम-में घुल जाते हैं। घुलानेके लिए एमिल अल्कोहल-का भी प्रयोग कर सकते हैं। अन्तमें बुकनीको नीचे बैठ जाने देते हैं और तेलको नितार कर नमकके तेज़ाबके साथ मथते हैं। तेलमें से निकल कर एल्केलोयड तेज़ाबमें घुल जाते हैं। मथना बन्द करनेके बाद तेल और तेज़ाब अलग हो जाते हैं। तेज़ाबको दूसरे बर्तनमें निकाल अमोनिया या सोडाके साथ मिलाते हैं, ऐसा करनेसे सब एल्के-लोयड अलग हो जाते हैं। इनको फिर पतले गंधकाम्लमें गला लेते हैं, जिसमें फिर धीरे धीरे पतला सोडेका घोल मिलाते हैं, यहां तक कि प्रायः सब ही तेज़ाब मर जाता है। घोलको तद-नन्तर औटाते हैं और इतना पानी मिला देते हैं कि प्रत्येक छटांक एल्केलोयडके लिए सत्तर छटांक पानी रहता है। ठंडा होनेपर कुनेन गंधेत अलग हो जाता है और बाकीके एल्केलोयड घोलमें ही रहते हैं। इस तरहसे बनाया हुआ कुनेन गंधेत फिर साफ़ किया जाता है।

१८५० ई०तक कुनेन दक्षिण अमेरिकासे आने-वाली छालसे ही बनती थी। उस समय इसका भाव १२०) छटांक था। तभीसे जावा और हिन्दु-स्तानमें भी सिंकोना वृक्ष उगाये जाने लगे। जव-द्वीपमें डच कृषकोंके उद्योगसे पौधे इतने अच्छे उगने लगे हैं कि उनमेंसे प्रायः दुगुनी और पँच-गुनी कुनेन निकल आती है।

# राखसे भरा हुआ फल

[ ले०—प्रो० रतनलाल, एम० ए० ]

अंजील में एक जगह लिखा है कि सादूम और अमूरिया ( Sodom & Gomorah ) पर ईश्वर ने गंधक और अग्निकी वर्षा की। यह नगर पापियोंके थे। परमात्माके कोपसे यह दोनों जलकर खाक हो गये, पर प्रश्न यह उठता है कि यह दोनों शहर कहां बसे हुये थे। बहुत लोगोंका बहुत दिनोंसे खयाल चला आया है कि इन नगरोंके स्थानपर अब मृतसागर ( Dead Sea ) किलोलें मार रहा है। पहिले भूतत्व वेत्ताओं-का विचार था कि इस प्रदेशमें कोई ज्वालामुखीय केन्द्र नहीं मिलता, जिससे यह समझ लें कि आग निकली होगी और यह शहर तबाह हो गये होंगे। परन्तु आजकल यह माना जाने लगा है कि बिटूमैन ( Bitumen ) की ज़मीनके नीचेकी तहोंके कारण बड़ा भारी ज्वालामुखीय विस्फोटन हुआ होगा, जिससे उक्त शहरोंमें आग लग गई होगी और आस पासके प्रदेशके ज़मीनमें धँस जानेसे बड़ा भारी निचाओ पैदा हो गया होगा, जिसमें अरवान (Jordon) नदीका पानी भर गया होगा और इस प्रकार मृतसागर (Dead Sea) की उत्पत्ति हुई होगी।

चित्र—६

१ दाहिना पित्तस्रोत
२ बायां पित स्रोत
३ संयुक्त पित स्रोत
४ पित्ताशयिक नली
५ पित्ताशय
६ पित्त प्रणाली

[देखिये पृष्ठ १७]

मृतसागर १२७८ फुट गहरा है और उसका तल भूमध्य सागरके तलसे १३०० फुट नीचा है। इन अङ्कोंसे प्रतीत होगा कि धरतीके खुश्क हिस्से-में इतना गहरा स्थान कहीं भी नहीं है जैसा कि मृतसागरसे ढका हुआ है। इसीलिए कुछ ताअज्जुब नहीं कि उक्त शहरोंकी खोजके लिए अभी तक प्रयत्न नहीं किया गया था।

चित्र ७—प—पित प्रणाली। क—क्लोम प्रणाली। मू—मूत्र प्रणाली। उं ह—उप ह्रक। पक—पकाशय। छ० अंत्र—छहदंत्र। [देखिये पृष्ठ १७]

अंजीलमें यह भी लिखा है कि इबराहीम और लौत पहिले मिलकर अपने चौपाये कनआन ( Canaan ) के दक्षिणी भागमें चराया करते थे। पीछेसे लौतने यह निश्चय किया कि पूरबकी तरफ़ जाकर अरवानके मैदानमें मवेशी चराना अधिक अच्छा होगा। इस प्रदेशके बारेमें लिखा है कि इसकी भूमिकी बहुत अच्छी सिंचाई थी और उसकी

उर्वर शक्ति भी बहुत चढ़ी हुई थी। कुछ अंजीलके प्रेमी यह मानते हैं कि इस सब वर्णनसे यही नतीजा निकलता है कि उक्त दोनों नगर मृतसागर-के सफकड़े किनारेपर स्थित थे, परन्तु इस समस्यापर भी अंजील ही प्रकाश डालती है। हज़रत मूसा कहते हैं, "बादशाहोंके युद्ध सदीम (Siddim) की घाटीमें और सादूम और अमूरियाके आस पास हुये थे। वहीं सब राजा सदीमको घाटीमें इकट्ठे हुये थे, जिसमें कि अब खारा पानी भरा हुआ है!" इस कथनसे स्पष्ट है कि हज़रत मूसा को मालूम था कि उपरोक्त नगरके स्थानको जगह खारा समुद्र भरा हुआ है।

इस दुर्घटनाके दूसरे दिन जब हज़रत इब्राहीम सोकर उठे तो सादूम और अमूरियाकी तरफ़ क्या देखते हैं कि आग जल रही है, धुआं निकल रही है

चित्र ८—सादूमका फल।

और कुल सर ज़मीन भट्टीका समा दिखा रही है। पर अंजीलमें यह नहीं लिखा कि हज़रत इब्राहीमने वहां पानी भरा हुआ देखा। पानीका उल्लेख तो सैकड़ों बरस पीछे हज़रत मूसाने ही किया है।

लौतको उक्त दुर्घटनाकी सूचना दो फरिश्तोंने कुछ दिन पहिले देदी थी। उन्होंने लौतसे कह दिया था कि तुम भागकर पहाड़ोंमें चले जाओ; अपने बाल बच्चोंको लेकर ज़ुअर (Zoar) स्थानपर आश्रय लो; वहीं तुम्हारा कल्याण होगा। लौत दूसरे ही दिन वहां चला गया। इसीलिए अरब लोग मृतसागरको लौतका समुद्र कहते हैं। अबतक हम जो कुछ लिख चुके हैं, वह केवल इस उद्देश्य-से लिखा कि पाठक सादूम शब्दका पूरा हाल जान जायं। अब हम एक अनोखे फलका वर्णन करते हैं, जिसका नाम "सेव सादूम" या मृत-सागरका फल ("Apple of Sodom" or "Dead Sea Fruit") है। इस फलकी उपमा और वर्णन अंग्रेज़ी साहित्यमें अनेक स्थानपर आता है। प्रायः लोग समझते हैं कि यह केवल मिथ्यावाद है, पर ऐसा समझना भूल है। यूसफीयूस नामी इतिहासकारने सं० १५७ विक्रमीमें लिखा था कि यह फल देखनेमें तो बहुत सुहावना होता है, परन्तु खाने पर मुहँको कड़वी राखसे भर देता है। यह फल अब भी मृतसागरके किनारे मिलता है; परन्तु उसका कोई सम्बन्ध सेवसे नहीं है। यह एक क़िस्मकी गाँठ होती है, जो ठिंगने शाहबालूतके पेड़पर उगती है। देखनेमें यह बड़ी सुहावनी मालूम होती है। उसकी ऊपरकी चमक और बैंजनी रङ्गको देखकर मुहँमें पानी भर आता है, पर खानेपर मज़ा भी खूब ही आता है। जहां उसे मुँहमें रखकर दाँतोंसे दबाया नहीं कि वह फूटा और उसमेंसे अत्यन्त कड़वी राख निकल पड़ी। उस प्रदेशके निवासियोंका यह विश्वास है कि सादूम और अमूरियाके जलनेसे जो राख पैदा हुई थी वह इन फलोंसे निकला करती है। यह फल उस प्रदेशके सिवाय और कहीं नहीं पाया जाता है। इसीका चित्र हम पाठकोंके भेट करते हैं।

## लकड़ीके पीपोंको फुलाना

लकड़ीके पीपे प्रायः पानी भरनेके काममें आते हैं। परन्तु जब दो चार दिन खाली पड़े रहते हैं तो लकड़ी सूख जानेके कारण रिसने लगते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि दुबारा उनकी लकड़ी फुलानी पड़ती है तब कहीं वह फिर पानी भरने के उपयुक्त होते हैं। फुलाने के लिए उन्हें बारबार पानीसे भरते हैं, पर पानी शीघ्र ही निकल जाता है। इस कारण पानी बारबार भरने में बड़ी असुविधा होती है।

पीपेके फुलानेका एक सरल उपाय यह हैः—पीपेमें भूसा या घास भर दो और तब पानी डाल दो। यद्यपि पानी निकल जायगा, घास या भूसेमें पानीकी पर्याप्त मात्रा रह जायगी, जो लकड़ीको फुला देगी।

---

## ऐसा समुद्र जिसमें आदमी डूब ही नहीं सकता

[ ले०—श्री मनोहर लाल भार्गव, एम० ए० ]

ऐसा अद्भुत समुद्र मृतसागर ही है। इसका पानी बहुत ही खारा है। उसके १०० अंश में प्रायः २६ अंश घुले हुए पदार्थोंके होते हैं। समुद्रकी अपेक्षा उसमें घुले हुए पदार्थोंकी मात्रा अठगुनी या नौगुनी है। इसी कारण उसका पानी इतना भारी है कि उसमें तैरना असम्भव है, क्योंकि टांगें पानीमें नहीं डूबतीं, परन्तु आनन्द पूर्वक उसके पानी पर लेट कर निर्भय हो सो सकते हैं। डूबनेका तो भय नहीं रहता, परन्तु यदि आंखमें पानीकी एक भी बूँद गिर गई तो अत्यन्त पीड़ा होती है और आदमी रगड़ते रगड़ते बावला हो जाता है। इसी प्रकार यदि पानीके कण सांसके साथ चले गये तो बड़ी धांस उठती है।

इस झीलको मृतसागर कहना भी यथार्थ है, क्योंकि इसमें न कोई जीव जन्तु ही रह सकते हैं और न इसके किनारेपर वनस्पति उग सकती है।

यह झील ५७ मील लम्बी है और जहा और मुआबके पहाड़ोंके बीचमें सबसे अधिक अर्थात् साढ़े नौ मील चौड़ी है। इसका क्षेत्रफल चार सौ साठ वर्ग मील है, परन्तु रेत मिट्टी और नमककी तहोंके निरीक्षणसे यह पता चलता है कि किसी समय यह लेबेलनके नीचेसे प्रायः रेडसी तक फैला हुआ था। इसके पानीमें नमकका अंश थोड़ा और मगनीसियम हरिद (Magnesium Chloride) की मात्रा उससे प्रायः साढ़े चार गुनी है। आजकल मृतसागरसे लेकर रेड सी तक भूमिकी ऐसी बनावट है कि जिससे मालूम होता है कि किसी ज़माने में अरदान (Jordon) नदी यहाँ होकर बहती होगी। इससे भी अंजीलमें लिखी हुई कथाकी सत्यता प्रतीत होती है, मृतसागरके पानीमें आयोडीनका लेश रहता है। इससे मालूम पड़ता है कि किसी समय भी मृतसागर और रेड सी (Red sea) जुड़े हुए न थे।

---

## घड़ीमें चाबी लगानेका उपयुक्त समय

प्रायः सभी आदमी जानते हैं कि जेब घड़ियोंमें पहिया वही काम करता है जो दिल आदमीकी देहमें करता है। उसके बन्द होते ही घड़ी बन्द और तेज या सुस्त चलनेसे तेज़ या सुस्त हो जाती है। उसके घूमनेका समय उसकी त्रिज्यापर और त्रिज्याकी लम्बाई तापक्रम पर निर्भर होती है। इसी लिए घड़ी ऋतुपरिवर्तन से कभी सुस्त और कभी तेज़ होती रहती है। अच्छी घडियोंमें पहियेका किनारा कई हिस्सोंमें बनाते हैं। प्रत्येक हिस्सा दो धातुका बना होता है और उसके अन्त पर एक बोझा रख देते हैं। ज़्यादा फैलनेवाली धातु बाहरको और कम फैलनेवाली अन्दरको रखते हैं। अतएव जब तापक्रम बढ़ता है तो बोझ केन्द्रकी

तरफ को झुक जाता है और उसका अन्तर पूर्ववत बना रहता है।

घड़ी बड़ी नाज़ुक चीज़ है, फिर उसके पहिये-को तो प्रायः ४३२००० चक्कर प्रति दिन लगाने पड़ते हैं। ऐसी नाज़ुक चीज़को जितनी अच्छी दशामें रख सकें उतना अच्छा है। दिनमें जब हम उसे लिये लिये फिरते हैं तो उसे अनेक बार झटके और धक्के सहने पड़ते हैं। अतएव ऐसे समयमें घड़ी का कसा रहना अच्छा है। इसीलिए रातके समयसे प्रातःकाल चाबी देना अधिक उचित है।

---

## पक्षियोंकी आयु

पक्षियोंकी आयुके विषयमें बहुत कुछ खोज हुई है, जिससे यह परिणाम निकला है कि हंसको छोड़ कर प्रायः मांसभक्षी पक्षी ही दीर्घजीवी होते हैं। नीचेकी सारिणीसे कुछ पक्षियोंकी जीवनावधि का ज्ञान हो जायगाः—विलायती तूती ( canary ) २४ ; सारस ( crane ) २४ ; कव्वा १०० ; उकाब १०० ; मुर्ग़ा १० ; तोता ६० ; बुलबुल १८ ; तीतर १५ ; कबूतर २० ; लाल ( robin ) १२ ; हंस १०० ; धनच ( pheasant ) १५ ; मोर २४ ; अगिन ( lark ) १३ ; ( linnet ) २३।

---

## पालिश की हुई लकड़ीपरसे स्याहीके दाग़ छुड़ाना

यदि पालिश की हुई लकड़ीपर स्याहीके दाग़ पड़ जायं तो पहले पानीसे साफ कीजिये और जो हरा दाग़ रह जाय उसे तारपीन के तेल से साफ कर दीजिये। ऐसा करनेसे लकड़ी बिल्कुल साफ हो जायगी।

## क्या बुढ़ापेमें मांसिक उन्नति हो सकती है ?

जब कभी किसी मनुष्यसे यह कहा जाता है कि नया काम सीखो तो वह कह बैठता है कि बूढ़े तोते क्या पढ़ेंगे। उधर एक साधारण कहावत प्रचलित है—"पीर शवी इल्म बियामोज़"। इन दोनों कहा-वतोंमेंसे कौनसी सच है, कौनसी झूठ। क्या मनुष्यकी बुद्धिविषयक उन्नति बचपनसे लेकर मरनेके समय तक बराबर होती रहती है? कुछ लोगोंका तो खयाल यह है कि किसी विशेष आयु तक मनुष्यकी शक्तियोंका विकाश होता रहता है, तदनन्तर शक्तियां कुछ समय तक ज्योंकी त्यों बनी रहती हैं और अन्तमें उनका ह्रास होने लगता है।

आधुनिक विज्ञानने भी इस बातपर विचार किया है। वैज्ञानिक मानते हैं कि मस्तिष्कके विकाशका बुद्धि की उन्नतिसे बड़ा घनिष्ठ सम्ब-न्ध है। जब दिमाग़का बढ़ना रुक जाता है तब यह समझना चाहिये कि अक़्ल भी ज़्यादा न बढ़ेगी। अतएव विज्ञानने उक्त विषयमें निर्णय करनेके लिए मनुष्यके मस्तिष्कका वृद्धिक्रम जाननेका बड़ा प्रयत्न किया है। संवत् १८९३में अध्यापक टीडमान ( Tiedmann ) ने लिखा था कि प्रायः सात आठ सालकी आयुमें मस्तिष्ककी पूरी वृद्धि हो चुकती है। सोमेरिंगने भी ( Soemmering ), जो जर्मनीका अपने समयका सर्वोत्तम विवेच्छेद-शास्त्री था, लिखा था कि तीसरे वर्षके अनन्तर मस्तिष्क नहीं बढ़ता। हेमिलटन ( Sir W. Hamilton ) और वैनज़ेल भ्राताओंने सातवां साल निश्चय किया। सम्वत् १९०६ में मोर्टनने कई जातियोंके मनुष्यों के मस्तिष्क नापे और वह इस परिणामपर पहुँचा कि सोलह वर्ष तक मस्तिष्क पूरा बढ़ चुकता है। पेरिस के डाक्टर मीज़ ( Mege ) ने यह निर्धारित किया कि पैंतालीससे पचास

तककी उम्रमें मस्तिष्ककी पूरी उन्नति हो पाती है। इनके कथनका समर्थन गौल और सपरज़ीन आदि मस्तिष्क विज्ञानके संस्थापकोंने भी किया।

आज कलके वैज्ञानिकों में भी बड़ा मतभेद है। डाकृर हेमण्ड ( Hammond ), जो बड़े योग्य और कुशल प्रयोगकर्ता समझे जाते हैं, कहते हैं कि सातवें वर्षके बाद मस्तिष्क नहीं बढ़ता। केवल टट्टरी, पेशी और मानसावरक उस समयके बाद बढ़ते हैं। आयर्लैंड महोदयने हालमें ही लिखा है कि सियानेपनके आरम्भ में ही मस्तिष्ककी वृद्धि और विकाश हो चुकता है। प्रायः दस या बारह वर्ष की अवस्थामें यह काम प्रायः पूरा हो चुकता है। इन सब बातोंसे हम यह सारांश निकाल सकते हैं कि लगभग पच्चीस वर्ष तक मस्तिष्ककी वृद्धि पूरी हो चुकती है; अतएव यह नतीजा निकल सकता है कि आदमीकी बुद्धि पच्चीस वर्षके बाद नहीं बढ़ती। उसकी जानकारी बढ़ सकती है, परन्तु उसकी बुद्धि इसके बाद उतनी ही बनी रहती है।

हिन्दुओंका विश्वास है कि मनुष्यकी शक्तियों-का विकाश विशेषतः मानसिक शक्तियोंका विकाश उसकी इच्छाके अधीन है। जब वह चाहे, उसकी कितना ही उम्र क्यों न हो, अपनी बुद्धि-को बढ़ा सकता है, जिसकी कुछ सीमा नहीं है। आत्मा अनन्त है और ज्ञानस्वरूप है। मन एक जड़ वस्तु है, जिसका बल आत्मासे ही प्राप्त होता है। अतएव जब आत्मा चाहे उतनी ही शक्ति मनको प्रदान कर सकती है। प्राचीन शिक्षाप्रणाली द्वारा वास्तवमें बुद्धि और मनका विकाश होता था। आधुनिक शिक्षाप्रणाली इतनी दूषित है कि उससे केवल जानकारी बढ़ती है; मन और बुद्धि-का विकाश नहीं होता। हम लोग अब अपना सर्वस्व खो चुके, पर अब भी हमको होश नहीं आता। हमारे कथनकी सत्यताका प्रमाण हर स्कूलमें मिल सकता है। कितने विद्यार्थी प्राथमिक कक्षाओंमें आकर भरती होते हैं; उनमें से कितने प्रवेशिका परीक्षा पास करते हैं? जो कक्षाओंमें उत्तीर्ण होते चले आते हैं वह अपने शिक्षकोंके कितने ऋणी होते हैं? जो विद्यार्थी कमज़ोर होते हैं वह पाठशालामें रहकर अपने शिक्षककी कृपासे कितनी उन्नति कर पाते हैं? हमारे कथनके समर्थ-न में सेवर्न महोदयके अनुभवका वर्णन भी किया जा सकता है। हज़ारों सिरोंको नापकर वह इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि जब तक मनसे डटकर काम लिया जाता है तब तक मस्तिष्ककी वृद्धि बराबर होती रहती है। लॉयड जार्ज, जो इङ्गलेण्ड-के प्रधान मंत्री हैं, उनका सिर नापनेसे पता चलता है कि ८ वर्ष में (४०—४८) ½ इंच बढ़ गया है। इतनी ही वृद्धि मि० रोबर्ट ब्लैंचफोर्डके सिरमें १० वर्ष में हुई (५०—६०)। मि० बार्ट केनेडीका सर ½ इंच १२ वर्षमें बढ़ा (३४—४६)। इस समयमें केनेडीने ११ पुस्तकें लिखी थीं। मि० बार्न्स, एम. पी., मि० डब्लू. टी. स्टेड आदिके सिरोंमें भी इसी भांति वृद्धि हुई।

अतएव जो तीसीके उस पार हैं और किसी प्रकारकी उन्नति करना चाहते हैं, उन्हें हताश न होना चहिये।

—करामत हुसैन कुरैशी

## जीवनका प्रादुर्भाव

( विज्ञानके लिए विशेष )

[ ले०—श्री० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार ]

विज्ञानके प्रौढ़ आविर्भावुकोंका यह सिद्धा-न्त है कि यह सौर जगत 'नेबुला' या नीहारिका मण्डलका विकास है। या दूसरे शब्दोंमें यह कहिये कि यह सौर जगत मेघमयी मायाका उत्तर विलास है? सौर जगतके पिण्ड, पृथ्वी आदि ग्रह, स्वतः कभी सूर्यके समान अत्यधिक तप्त थे। क्रमशः अपने आप शीतल हो कर इस योग्य हुए कि उनमें जीवनका प्रादुर्भाव हो सका और जीव उसमें अपना जीवन सुखसे बिता सके। कदाचित् शीतल होते हुए ग्रहोंका स्थल

जलभाग जब पर्याप्त रूपमें निकला तभी उसमें जीव संसार आ बसा हो, जिसका नमूना प्रत्यक्ष रूपसे हमारी पृथ्वी है और कदाचित् मङ्गल और शुक्र भी इसके नमूने हों। जीव-संसार अपने अनुकूल जलवायु पाकर उक्त ग्रहोंमें भी जीवनका भोग शायद करते हों। उपग्रहोंको हम जीवन रहित मानते हैं; कदाचित् किसी रूपमें उसमें भी जीव विलासका अद्भुत नमूना विद्यमान हो; अस्तु। स्वभावतः प्रश्न होता है कि क्या आकाशमें अनवरत घूमते हुए भौतिक पिण्डपर जीवन अकस्मात् पैदा हो सकता है। क्या आगका गोला शीतल हुआ कि उसमें जीवन पैदा हो जाता है?

इस प्रकारकी समस्या अनन्त कालसे मानव बुद्धिके समक्ष आ रही है। पुराने ज़मानेसे अब तक यही देखते आ रहे हैं कि बराबर सभी प्रकारके जीव पैदा होते हैं और कुछ काल बाद मर जाते हैं। पर इसके साथ साथ मानव बुद्धिने इसका भी निर्णय किया कि एक प्रकारके प्राणी वर्गसे उसीके समान अन्य प्राणी उत्पन्न भी हो जाते हैं अर्थात् जातियां बराबर बनी रहती हैं; फलतः यह सब जातियां अवश्य अनन्त कालसे चली आ रही होंगी। और सबसे प्रथम सृष्टिकर्ता ब्रह्माने सभी जातियोंका एक एक जोड़ा बनाया होगा। बहुत से सृष्टिवादियोंका अब भी यही सिद्धान्त है।

महोदय लीने ( Linne ) इस सिद्धान्तके बड़े प्रबल योजक थे; इसलिए यह सिद्धान्त ही ( Linnaean hypothesis ) लिनेयन स्थापनाके नामसे प्रसिद्ध है। उनका कथन है कि "प्रारम्भमें अनन्त प्रभुने जितने जीवोंको उत्पन्न किया अब भी उतनी ही जीवोंकी जातियाँ (Species) हैं। उन्होंने पहलेसे ही वंशक्रमके नियमोंके अनुसार अपने समान ही अपनी सन्तति उत्पन्न कीं; इसलिए अब तक प्रारम्भसे चली आई जातियोंके अतिरिक्त नयी जातिका कोई जीव नहीं दिखाई देता।"

इस सिद्धान्तके प्रतिरोधमें श्री० ले मार्क, ट्रेविरेनस, गेटे, आकेन आदि प्राणिविद्याके धुरन्धर पंडितोंने विकास सिद्धान्तकी स्थापना की। उनका कथन है कि "बहुत सी जातियाँ पहले किसी युगमें भूतलपर विद्यमान थीं, जो अब नैसर्गिक उत्क्रान्तियों ( Natural Revolutions )से सर्वथा लुप्त हो गयी हैं और ईश्वर, प्रभु, अथवा सृष्टाके नये प्रयत्नसे नयी जातियां उत्पन्न हो गयी हैं।

इस नये विचारके प्रवाहमें प्रायः सभीके विचारोंमें बड़ा भारी परिवर्तन होगया और चार्ल्स डारविनके उदयसे तो इस सिद्धान्तकी विजय पताका सर्वत्र ही समान भावसे आदरणीय हो गयी है।

इस सिद्धान्तके अनुसार सभी प्राणिवर्ग अपनी परिस्थितिके अनुसार ही अपनी जीवनशैलीको घड़ लेते हैं। इस परिवर्तनकार्यमें परिस्थितिके कारण कभी कभी प्राणिवर्गमें इतना भी परिवर्तन आ जाता है कि पुराने वर्गसे ही एक नवीन प्राणिवर्गकी उत्पत्ति हो जाती है और सन्तति अपने वंशधर वर्गसे सर्वथा भिन्न हो जाती है। पंडित डी व्राइके नवीन अनुसन्धानसे इस स्थापनाको और भी पुष्टि प्राप्ति हुई उन्होंने परीक्षण द्वारा सचमुच नवीन अपने वंशधरोंसे सर्वथा भिन्न प्राणिवर्गको उत्पन्न होता देख लिया। इस सिद्धान्तको परिवर्त्तनवाद ( Theory of Mutation ) कहते हैं।

इस सिद्धान्तके अनुसार अब हमें यही मानना पड़ेगा कि वर्तमानके प्राणिवर्ग जो अब हमें दीख रहे हैं सभी अपनेसे भिन्न प्रकारके प्राणिवर्गोंकी सन्तति हैं। उनके चिन्ह अब भी भूगर्भकी तहोंमें बहुत से मिलते हैं। इस दृष्टिसे तो सभी प्राणी एक अत्यन्त साधारण जीवन द्रव्यके परिणाम सिद्ध होते हैं। फलतः कल्पनाके लिए आप उसे अमीबा (मूल-जीव) मान सकते हैं। इसीने प्रथम इस भूतलपर उत्पन्न होकर युगोंके क्रममें नाना प्रकारकी शाखाओंमें विकास पाया और विकसित होकर लाखों और करोड़ों योनियोंमें परिणत हो गया, जिसका

सबसे उत्तम परिणाम यह मानव देह है। यही डार्विनका विकासवाद है। परन्तु यदि प्रश्न उठे कि यह अमीवा या मूलजीव कहांसे आया ? बस इसके आगे डार्विनके अनुयायियोंके पास कोई उत्तर नहीं। इस पर भी वैज्ञानिक विचारकोंने अपनी बुद्धिको डिबियामें बन्द नहीं किया। बड़े बड़े दिमागोंने अपने भरसक प्रयत्नसे इसपर आलोचना की है। वैज्ञानिकोंकी कल्पक मतिकी मायाका विलास भी अलौकिक है।

साधारणतः यूरोपमें सर्व साधारणका पहले यही विचार था कि क्षुद्र जीवोंके लिए बीजोंकी आवश्यकता नहीं है। वह बिना बीजके ही मलमें उत्पन्न होजाते हैं। गले हुए या सड़े हुए मांस खण्ड-में कीड़े आपसे आप पैदा हो जाते हैं। गन्दगी या मैलेमें आपसे आप कीड़े पड़ जाते हैं। कदाचित् पूर्वीय देशोंमें भी स्वेदज जीवोंको अयोनिज माना जाता है। परन्तु यह भी अण्डे देते हैं। खैर। १७वीं सदीमें प्राणिविद्याके विद्वानोंके परीक्षण और निरीक्षण से यह विचार सर्वथा असत्य सिद्ध हो गये। इसके बाद 'स्वतः जीवोद्भव सिद्धान्त' का फिरसे पुष्ट होना हाल ही में प्रारम्भ हुआ।

शराब और पदार्थोंके घोलोंमें एक प्रकारका आसव कीटाणु (इनफ्यूसोरिया Infusoria) की उत्पति बहुत संख्यामें होती पायी गयी। परन्तु महाशय स्पलानजनी महोदयने १७७७ में बतलाया कि यदि शराबको उसके वर्तन सहित इतना अधिक ऊँचे तापांश तक तपाया जाय कि जिससे सब प्रकारके कीटाणु मर जावें तो उसके बाद कोई भी कीटाणु उसमें उत्पन्न नहीं होता और ऐसी दशामें कोई भी जीव उसमें पल नहीं सकता। इसी सिद्धान्त पर वर्तमानमें औषधोंको भी सुरक्षित रखा जाता है। इस सिद्धान्त-के विरुद्ध भी बहुत से तर्क उठे। प्रतिद्वन्द्वी कहने लगे कि शराबके बोतलका ऊपरकी हवाका अंश ताप खा कर ऐसा बदल गया कि उसमें अब किसी भी जीवका रहना असम्भव होगया। इस तर्क-पर रसायनज्ञ म० शिवरूलने कुठाराघात किया। इन्होंने सिद्ध कर दिया कि जिस वायुको एकबार जीव शून्य कर दिया जाय उसमें फिर जीव उत्पन्न नहीं होते। जीवाणु विद्यामें कपासी छानन विधिके अतिरिक्त और भी कितनी ही विधि कीटाणु-मूलनाशके लिये निकालीं। उनसे यह विचार अब बराबर पुष्टि पाता जा रहा है।

इतना होने पर भी वैज्ञानिक वीर बीच बीच में बार वार "स्वतः जीवोद्भव सिद्धान्त" की पुष्टिमें अपनी लेखनी उठाही बैठते हैं। उनको विज्ञानकी सुरक्षित विधियों पर विश्वास नहीं आता। वह उपकरणाश्रित तर्कको छोड़कर तत्व-ज्ञानाश्रित तर्कका आश्रय लेते हैं। वह कहते हैं कि जीवन एक वार अवश्य कभी प्रारम्भ हुआ होगा, वह अवश्य एक बार उत्पन्न हुआ है; इस लिए हमें वाधित होकर मानना पड़ता है कि जीवनकी स्वतः उत्पत्ति हुई है। चाहे वास्तविक वस्तुस्थिति में मानव प्रयोगशालाकी जीवाणुमुक्त ( Sterilized ) बोतलोंमें जीव उत्पन्न न हुआ हो पर तो भी इस संसारमें जीव एक बार कभी पैदा अवश्य हुआ है।

प्रसिद्ध अंग्रेज़ विद्वान हक्सलेने समुद्रकी गहरीसे गहरी तलेटीसे लायी हुई कीचड़में भी अलब्यूमेनमय द्रव्य ( Albuminoid ) की सत्ता देखी तो विद्वानोंमें इसकी चर्चा और भी अधिक वेगसे फैली। डार्विनके अनुयायी हीकलके नाम पर ही इसका नाम "विथी वियस ही किलाई" रखा गया था परन्तु हम सुगमताके लिए इसका नाम 'रसातली अलब्यूमेन' रखेंगे। कईयोंके विचारमें यह अलब्यूमेन प्राथमिक पदार्थ ( Primordial ooze ) है जो अनाङ्गारक द्रव्य ( Inorganic Matter ) से उत्पन्न हुआ है। उसीसे सब प्रकारका जीवन द्रव्य उत्पन्न हुआ है। महाशय ओकन भी इसी द्रव्यके स्वप्न लिया करते थे। रसायन वेत्ता म० बुखाननने यह स्पष्ट कर दिया कि इस तलछटसे उत्पन्न अलब्यूमेनमय द्रव्य वही वस्तु है जो शराब या मद्यके नीचे जिप्समकी तहमें बैठ जाती है।

इस पर विचारकोंकी मति बहुत गहरी पहुँची। तर्क उठा कि कदाचित जीवन भूगर्भके अन्दर अति प्रतप्त भागमें ही उत्पन्न हुआ हो; क्योंकि बड़े ऊँचे तापांशोंपर भी साइनोजनके आङ्गारक यौगिक और उनके विकार बन सकते हैं। कदाचित् वही जीवन के वाहक हों। इन सभी विचारोंको आगे बढ़ालेने के लिए कोई परीक्षणात्मक आधार नहीं है।

प्रायः प्राणिविद्या सम्बन्धी साहित्यमें वैज्ञानिक बार बार यह राग अलाप छोड़ते हैं कि हमने जड़ प्रकृतिसे चेतनको पैदाकर लिया। सबसे आधुनिक दावा महा० बटलर वर्कका है। उनका कथन है कि मैं लोकोत्तर पदार्थ रेडियम (कोहनूर) के सहारे से अचेतन प्रकृतिमें चेतनताका संचार करनेमें सफल हुआ हूं। उन्होंने जलेराइन नामका द्रव्य उत्पन्न किया है। उनके इस कथन पर भी बराबर खूब आलोचनाएं हुई हैं। उनका कथनमिथ्या कथा सा भासता है।

इसी प्रसङ्गमें प्राकृतिक तत्ववेत्ता लार्ड केल्विनकी सम्मति भी बड़ी रहस्यमय है। आप कहते हैं कि "बहुत से नवीन प्रकृतिवादियोंको भी पुराना विचार अभीतक नहीं छोड़ता। कल्पना करो कि वर्त्तमानसे सर्वथा भिन्न वायुमण्डलकी अवस्थाओंमें जड़ पदार्थ ही जीवनके मूलबीजों या जीवमय कोष्ठों या मूलजीवद्रव्यके रूपोंमें बदल गया हो या जम गया हो, या स्फटिक रूप बन गया हो या उसमें खमीर उठगया हो। परन्तु इधर विज्ञान स्वतः जीवकी उत्पत्तिके सिद्धान्तका घोर-विरोध करता है। जड़ प्रकृति कभी भी स्वतः चेतन नहीं हो सकती जब तक कि वह पहलेसे चेतनके ही संसर्गमें न हो। यह विज्ञानकी शिक्षा भी आकर्षण शक्तिके समान अखण्ड सत्य है।"

पाठक इस उल्लेखसे जान सकते हैं कि वैज्ञानिक लोग जीवनके मूलकी खोजमें कितने उत्कट अभिलाषी हैं। इसकी मार्गान्वेषणामें अब व्यापक बीजकी कल्पना (Theory of Panspermia) कुछ अधिक प्रकाश डालती है। इस कल्पनाके अनुसार सम्पूर्ण गगन मण्डलमें जीवके सूक्ष्म भूत बीज व्याप्त हैं। गगनमें भ्रमण करते हुए ग्रह नक्षत्रोंके पृष्ठों पर यह बीज सम्पर्क होतेही आचढ़ते हैं और अपने पोषणके अनुकूल परिस्थिति पाकर जीवोंके स्वरूपमें प्रगट हो जाते हैं।

सन् १८२१ में इस प्रसङ्गमें म० सेल्स गुयान नामक एक फ्रांसीसी महोदयने एक बड़ी उत्तम कल्पना की। आपके मतमें सबसे प्रथम चन्द्रसे जीवोंके बीज प्रादुर्भूत हुए हैं। एच० ई० रिष्टर नामक जर्मन वैद्यने पहले वर्णित व्यापक बीज, सिद्धान्त ( Panspermia Theory ) और चन्द्र-बीज कल्पनाको मिलाकर डार्विनके सिद्धांतकी पुष्टि करनेका प्रयत्न किया। फ्लेमेरियनके ग्रन्थ से रिष्टरको यह विचार उत्पन्न हुआ कि हमारी पृथ्वी पर जीवनका बीज किसी अन्य बसे हुए संसारसे आया है। उसने इस बात पर बल दिया कि धूमकेतुकी कक्षाओं पर घूमनेवाले उल्कापिण्डोंमें कर्बन पाया जाता है और इस कर्बनमें ही शेष सम्पूर्ण जीव संसारके मूल बीज हैं, यद्यपि रिष्टर महोदयके पास इस कथनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है; क्योंकि उल्का पिण्डोंमें प्राप्त होने वाले कर्बनमें कभी भी जीव-नांशकी सत्ता प्रमाणित नहीं हुई। उसी प्रकारका कर्बन सूर्यमें भी है और यह भी अनेन्द्रिय-मूलक ( Inorganic origin ) है। इसीके साथ साथ उक्त महोदयने एक बड़ा विचित्र विचार और भी प्रकट किया है अर्थात् हमारे भू-मण्डलके वातावरणकी ऊपरकी पृष्ठ पर अनन्त जीव तैर रहे हैं। समीपसे गुजरनेवाले उल्कापिण्डों पर आकर्षणसे खिचकर वह तुरन्त चिपट जाते हैं और दूर दूरके गगनयात्री दिव्य पिण्डों तक भी जीवन बीज उन्हींके द्वारा फैल जाते हैं। परन्तु जिस समय उल्कापिण्ड पृथ्वीके वातावरणमें प्रविष्ट होते हैं वह वायु संघर्षसे प्रज्वलित हो उठते हैं। इस कारण जो जीवनांश उनसे चिपटे रहते हैं समूल नष्ट हो जाते हैं। इसके साथ साथ यदि उल्कापिण्डोंको जीवन-बीजोंका

वांहक मान लिया जाय तो यही एक सन्देह है कि अन्य किसी गगनचारी पिण्डके वातावरणमें घुसते समय भी तो उल्कापिण्डका प्रज्वलित होना और जीवन-बीजोंका समूल नष्ट हो जाना सम्भव है।

हां रिष्टर महाशयकी एक बात अवश्य मानी जा सकती है, जो न्यायसंगत भी है। आपका कथन है कि अनन्त गगन मण्डलमें सर्वत्र नवोत्पन्न, बाल, युवक और वृद्ध गगनचारी पिण्ड विद्यमान हैं। युवक पिण्ड वही हैं जिनका जीवन अभी यौवन पर है और जिनमें जीव संसारके पोषण करनेकी पूरी सामर्थ्य है।

स्वान्ते अरहेनियस ( Svante Arrhenius ) महोदय अपनी पुस्तकमें उक्त सभी कल्पनाओं पर विचार करनेके उपरान्त इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि "हम जीवनको संसारमें अनादि कालसे मानते हैं। जीवन सदासे इस संसारमें रहा है। वह सदा शरीरों, शरीर कोष्ठों और प्राणियोंके रूपमें नाना प्रकारसे प्रकट होता है। मनुष्यकी बुद्धि ने तो प्रकृति ( Matter ) की उत्पत्तिपर भी विचार करना प्रारम्भ किया था, परन्तु उस विचार को छोड़ना पड़ा जब कि अनुभवने उन्हें यह निश्चय करा दिया कि प्रकृतिका नाश नहीं हो सकता; परिणाम हो सकता है। इन्हीं कारणोंसे अब गति ( Motion ) की मूलान्वेषणा भी नहीं की जाती और अब हमारा यह विचार भी दृढ होता जारहा है कि अवश्य जीवन भी अनादि है। और इसीलिए जीवनके आदि मूलकी खोज करना भी सर्वथा निरर्थक है।"

इस परिणामपर वैज्ञानिकोंको पहुँचते देखकर हमें बड़ा ही विस्मय होता है। गीताने कितनी सारवान् बात संक्षेपमें कही है।

"प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृति संभवान्॥"
गी० । अ० १३ । १६ ॥

"प्रकृति और पुरुष ( जीव, चेतनशक्ति ) दोनों ही अनादि हैं और यह सब परिणाम प्रकृतिके ही हैं।" फलतः विज्ञानने इतना माथा मार कर भी कुछ नया पता नहीं लगाया; प्रत्युत द्रविड़ प्राणायाम करके फिर उसी बातको माना। इतनेपर भी महाशय रिष्टरके विचारोंको योंही छोड़ नहीं दिया गया बल्कि बादमें भी फर्डिनेन्ड कोन और सर विलियम टामस ( ला० कालविन् ) ने भी प्रगट किया। विलियम टामस कहते हैं कि—

"जब दो बड़े बड़े गगनचारी पिण्ड विस्तृत गगनाङ्गनमें टकराते हैं तो निश्चयसे दोनोंका बहुत सा भाग तो तापकी अधिकतासे पिघल जाता है। यह भी ठीक ही है कि बहुत सी अवस्थाओंमें पिण्डोंका बहुत सा पिघला हुआ भाग सब दिशाओंमें बिखरकर तितर बितर हो जाता है और बहुत से भागको केवल इतना ही धक्का लगता हो जैसा कि पहाड़ी चट्टानके फिसलने या बारूदके फटनेमें लगता है। यह कल्पना की जा सकती है कि पृथ्वी अब जैसी अवस्थामें है, जिसपर नाना प्रकारसे जीव संसार और वनस्पति संसार बसा हुआ है इसी अवस्थामें यह किसी अन्य विशाल गगनचर पिण्डसे टकरा जावे तो बहुत से टुकड़े छोटे बड़े बीजों, जीते पौधों और पशु पक्षियों सहित आकाशमें बिखर जायंगे। हमारा विश्वास है कि वर्त्तमानमें, पर अनादि कालसे, इस भूलोकके अतिरिक्त सैकड़ों अन्य लोक भी हैं जिनमें जीव सृष्टिका वास है। यदि कल्पना करें कि पृथ्वी पर सृष्टि न भी होती तो भी पूर्वोक्त प्रकारसे खण्ड खण्ड हुये किसी सजीव लोकका एक टुकड़ा भूलोकपर आ गिरता और कुछ कालमें ही भूमण्डलको जीव संसारसे भर देता। मैं जानता हूं कि इस कल्पना के विरुद्ध बहुत से आक्षेप हैं। पर उनका भी समाधान हो सकता है।" इसपर हम अगली संख्या में विचार करेंगे।

[ असमाप्त ]

# १६२३ में होनेवाली प्रलय कैसे टली?

लड़कपनमें प्रायः सभी मनुष्योंको प्रलयका काल्पनिक दृश्य देखना पड़ता है। माताएं लड़कोंसे प्रलयके विषयमें जो बातें कहती हैं वह उस समय भयंकर जान पड़ने पर भी बड़े होनेपर मनोहर जान पड़ती हैं। मेरी माताने इस सम्बन्धमें मुझसे जो बातें कही थीं अब तक मुझे याद हैं। "प्रलयके समय सारी पृथ्वी जलमग्न हो जाती है।" उस समय मैं 'जलमग्न' शब्दका अर्थ नहीं जानता था। मुझे उसका ज्ञान इस प्रकार कराया गयाः—"प्रलयके पहले पानी ज़ोरोंसे पड़ने लगता है और वह इतना पड़ता है कि सारे घर, द्वार आदि डूब जाते हैं।" उस समय हमने गगन चुम्बी मकान नहीं देखे थे। बस्तीके मकान पेड़से ऊंचे नहीं होते। हमने अपनी लड़कपनकी तार्किक-शक्तिका आश्रय लेकर कहा—"जब मनुष्य देखेगा कि पानी जमा होने लगा है तब मकान आदिके डूबनेके पहले ही पेड़ पर जा चढ़ेगा और डूबनेसे बच जायगा।" "किन्तु वहां भी उसकी रक्षा नहीं। फिर भी पानी पड़ता रहेगा और देखते देखते पेड़ पहाड़ आदि सभी पदार्थ पानीके नीचे चले जायेंगे॥" इन बातोंको सुनकर मैं बड़ा डर गया। मुझे खूब याद है उस रातको मुझे नींद नहीं आई। रातभर मैं प्रलयकी ख़याली तस्वीर देखता रहा, किन्तु अब उस घटनाको स्मरण कर हंसी आती है।

अब हमें जान पड़ा है कि पानी पड़नेसे ही प्रलय नहीं होगी। वह अन्य प्रकारसे भी हो सकती है। आजकल किसीको यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं रही कि पृथ्वी सूर्यके चारों ओर अपनी कक्षापर घूमा करती है। पृथ्वीका कक्षा-च्युत होना प्रलयका एक कारण है। दूसरा, पृथ्वीका किसी दूसरे ग्रह या नक्षत्रके साथ संघर्षण होना है। इन कारणोंकी चर्चा हिन्दीके पत्रों तथा पुस्तकोंमें हो चुकी है। आज मैं एक प्रलयका नया कारण लेकर उपस्थित होता हूं। बस, एक वर्ष और कि यह प्रलय सारी मानव-जातिको उदरस्थ कर लेगी। भारतवासियो! सावधान !!

संसारके प्रायः सभी जीव प्रत्यक्ष या परोक्ष भावसे शाकाहारी हैं। हिंस्र पशु परोक्ष भावसे शाकाहारी पशुओंपर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। भोजनमें सर्व-प्रधान वस्तु "प्रोटीड" अथवा "नत्रजन विशिष्ट पदार्थ" हैं। इसे अंगरेज़ीमें फ्लेश-फार्मर ( Flesh Former ) भी कहते हैं। इसके बिना हमारे शरीरमें मांस नहीं बन सकता; इसलिए शरीरकी वृद्धि नहीं हो सकती। हमें नत्रजन भोजनसे प्राप्त होती है और भोजनमें ज़मीनसे आती है। वायुकी नत्रजन या खाद पौधोंको नत्रजन प्रदान करते हैं। हमारे यहांके खाद गोबर, कूड़ा, राख-पात आदि हैं, किन्तु पश्चिमीय देशोंमें रासायनिक द्रव्य खादके लिए व्यवहृत होते हैं। इनमें नत्रेत ( Nitrates ) और अमोनियाके लवण मुख्य हैं।

व्यापारिक प्रतियोगितामें कोई पदार्थ तभी टिक सकता है जब वह सस्ता और शुद्ध हो। नत्रजन विशिष्ट बहुत से पदार्थ सोडियम नत्रेतसे बनते हैं। चिली और पेरूमें सोडियम नत्रेत पृथ्वीपर जमा हुआ ( Deposits ) मिलता है। यह जमाव सन् १८३० ई०से बराबर खोदा जा रहा है। आज कल तो प्रायः २५ लाख टन सोडियम नत्रेत इससे निकाला जाता है। इसका प्रायः आधा केवल गोला, बारूद आदि विस्फोटक पदार्थोंके बनानेमें खर्च किया जाता है। नत्रजनके यौगिकोंके बिना यह पदार्थ बन ही नहीं सकते; विस्फोटक पदार्थोंका प्राण नत्रजन है। पहले बारूद कोयला, शोरा और गंधकसे बनती थी किन्तु अब प्रधानता ऐसे बारूदकी है जो धूम्रविहीन ( Smokeless ) हो। यही क्यों? नत्रोग्लिसरीन, गन-काटन, कारडाइट, डाइनेमाइट आदि विस्फोटक पदार्थ नत्रजन विशिष्ट पदार्थोंके बिना बन ही नहीं सकते। प्रायः

सवा छः लाख टन सोडियम नत्रेत केवल शोरेका तेज़ाब और अमोनियम सलफेट (?) बनानेके लिए प्रति वर्ष खर्च किया जाता है। तेज़ाब रासायनिक कामोंमें व्यवहृत होता है और प्रायः सबका सब अमोनियम सलफेट खादके रूपमें इस्तेमालमें लाया जाता है। अमोनिया भी नत्रजनका एक यौगिक है। वर्फ बनानेमें या ठंडक पैदा करनेमें इसकी सहायता ली जाती है। सोडियम नत्रेत यदि नहीं होता तो शायद जर्मनीका एक भी रंग नहीं बन सकता। नत्रजनकी उपयोगिता अनन्त है। मनुष्योंको जीवित रखने तथा उनकी हत्या करनेमें उसका हाथ सबसे अधिक है। प्रायः सब प्रकारके नत्रजन यौगिकोंका जन्मदाता आजकल चिलीका सोडियम नत्रेत ही है। पृथ्वीपर जमा हुआ मिलनेके कारण यह अन्य पदार्थोंसे सस्ता पड़ता है। अन्त सभीका होता है; इस जमावका भी अन्त होना निश्चय है।

पहले लोगोंका विश्वास था कि इस जमावका अन्त हो ही नहीं सकता—वह अनन्त है; किन्तु सं० १९५७ वि० में सरविलियम क्रुक्सने ब्रिटिश एसोशियेशनके सभापतिकी हैसियतसे कहा था—"प्रायः २५ वर्षके बाद भयंकर प्रलय उपस्थित होगी, क्योंकि जिस हिसाबसे सोडियम नत्रेत चिलीमें निकाला जाता है उससे पता लगता है कि सं० १९८० वि०में वह सबका सब चुक जायगा। उसके बाद लोगोंको ज़मीनके खादके लिए कोई सस्ती वस्तु नहीं मिलेगी; उस समय लोगोंको अधिक दामवाले नत्रजनके यौगिकोंसे या तो काम लेना होगा—जो सम्भव नहीं है—या भूखों मर जाना पड़ेगा।" पहले जो लोग इन खानोंको अपरिमित समझकर नत्रजन यौगिकोंसे एक प्रकार निश्चिन्त हो बैठे थे वह क्रुक्स बाबूकी इस चेतावनीसे सतर्क हो गये और उनकी आंखें खुल गईं।

ईश्वरने मनुष्योंको बुद्धि दी है; वह इस प्रलयको दूर करनेका उपाय ढूंढ़ने लगे। उन्हें जान पड़ा कि इस प्रलयसे रक्षा पानेके केवल दो उपाय हैं। एक तो अन्य ऐसी खानोंका पता लगाना जहां नत्रजनके यौगिक पाये जाते हों; दूसरे नत्रजनके ऐसे सस्ते यौगिक तैयार करना, जिनका मूल्य सोडियम नत्रेतके बराबर या उससे कम हो—तभी व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

कुछ लोगोंने खानोंका पता लगानेका काम हाथमें लिया है। कुछ खानोंका पता लगा है, किन्तु उनमें संयुक्त नत्रजन बहुत कम है या वह ऐसे स्थानोंमें स्थिति हैं जहांसे व्यापार करनेमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा। चिलीकी खानोंसे सोडियम नत्रेत बड़ी सुगमतासे और कम खर्चमें निकाला जाता था और वहां नत्रजनका वृहत् भाण्डार भी था; किन्तु हालमें जिन खानोंका पता लगा है उनमें एक तो संयुक्त नत्रजन थोड़ी है या पहाड़ आदि दुर्गम स्थानोंके बीचमें होनेके कारण उनका खोदना कठिन है। इसके अलावे, उसके व्यापारिक केन्द्रोंमें भेजनेका खर्च अलग है। इसलिए पच्छिमवालोंने नई खानोंका खोजना एक प्रकारसे छोड़ दिया है। बाकी बचा नत्रजनके यौगिक (Compounds) तैयार करना। इसके लिए ऐसे पदार्थोंका होना आवश्यक है जो मुफ़्तमें या प्रायः मुफ़्तमें मिलते हों, क्योंकि ऐसे ही पदार्थोंसे सस्ते नत्रजन-यौगिक बन सकते हैं। वायुमें नत्रजनका परिमाण अनन्त है और वह मुफ़्तमें मिलती भी है। यदि वायुकी नत्रजनको किसी दूसरे सस्ते पदार्थके साथ मिलाकर यौगिक बनावें तो बड़ा लाभ हो। सरविलियम क्रुक्सने बहुत से अंकोंको उद्धृत कर यह दिखलाया था कि वायुकी नत्रजनसे काम निकालनेपर संसारकी भावी सुख-समृद्धि निर्भर है। उनकी बातोंको ध्यानमें रखकर कई रासायनिक तथा इञ्जीनियर वायुकी नत्रजनसे यौगिक बनानेका प्रयत्न करने लगे।

सभी वैज्ञानिकोंका मत है कि स्वतन्त्र नत्रजन ( Free Nitrogen ) बड़ा उदासीन पदार्थ है। वह किसी पदार्थके साथ आसानीसे नहीं मिलती। इसकी इस विचित्र प्रकृतिके कारण इसको पकड़नेके लिए हज़ारों वैज्ञानिकोंने प्रयत्न किया। अन्तमें नत्रजन विचारी अकेली करती क्या; उसे हार माननी पड़ी; वैज्ञानिकोंके सामने उसने सिर झुकाया और अन्य पदार्थोंके साथ यौगिक तैयार करने लगी।

सं० १८३७ वि० में कैवेन्डिश एक शीशेकी नलीमें उज्जन और ओषजन रखकर जल तैयार कर रहे थे। गैसोंमें विद्युत्की चिंगारी छोड़नेके पश्चात् जब उन्होंने तैयार हुए जलकी परीक्षा की तो मालूम हुआ कि जलमें कुछ शोराम्ल भी मिला हुआ है। बुनसेनको १८७७ में कुछ अधिक परिमाणमें संयुक्त नत्रजन उपरोक्त क्रिया द्वारा मिली। धीरे धीरे सफलता होती गई और अब लोग विद्युत्की सहायतासे कई प्रकारके नत्रजन यौगिक तैयार करने लगे हैं। उनमेंसे कुछका ज़िक्र नीचे दिया जाता है।

मैं ऊपर लिख आया हूं कि नत्रजनके यौगिक तैयार करनेके लिए सस्ते पदार्थोंका व्यवहार अत्यावश्यक है। नत्रजन तो वायुमें से मिल जाती है। अब एक ऐसा पदार्थ और चाहिये जो सस्ता हो और जिसके साथ नत्रजन मिले। दूर जानेकी आवश्यकता नहीं। वायुका ⅕ वां भाग ओषजन है; वह भी हमें मुफ़्तमें ही मिलता है। वैज्ञानिक इन दो पदार्थोंको विद्युत्की सहायतासे मिलाकर नत्रजन द्विओषिद् ($NO_2$) बनाने लगे। इस तरीकेसे नत्रजनके यौगिक बनानेमें केवल नत्रजन और ओषजन काममें लाई जाती है—अन्य किसी पदार्थकी आवश्यकता नहीं होती। इन दो पदार्थोंके मिलानेकी एक और विधि है—वह उपरोक्त विधिसे कुछ भिन्न है।

नत्रजन द्विओषिदको शोराम्लमें परिवर्तित करते हैं। किन्तु यदि शोराम्लसे हम लोग खाद तैयार करने लगें तो व्यापारिक प्रतियोगितामें टिक नहीं सकेंगे। हां, अन्य रासायनिक पदार्थोंके बनानेके लिए इससे काम ले सकते हैं। व्यवसायमें नत्रजन और ओषजनके यौगिकोंमें सबसे उपयोगी शोराम्लके नमक हैं।

कोयले ( Carbon ) का मूल्य अन्य पदार्थोंकी अपेक्षा, जिनके साथ नत्रजन मिलती है, कम होता है। नत्र-ओषिदके अतिरिक्त वायुकी नत्रजनसे सायनाइड भी तय्यार होता है। "साइनाइड" का बनाना भी व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक है। पहले पशुओं के चमड़े, सींघ, खुर आदिसे "साइनाइड" अर्थात् नत्रजन और कर्बनका यौगिक बनता था। "साइनाइड" की उपयोगिता लोग पहले बहुत कम समझते थे; इसलिए लोगोंका ध्यान उसके बनानेकी ओर बहुत कम गया था। किन्तु जबसे मैक आर्थर फारेस्टकी विधि से सोना निकाला जाने लगा है तबसे इस व्यवसायका भाग्य चमका। खनिजमें सोना बहुत कम रहता है। उससे सोना निकालनेके लिए उपरोक्त रीति काममें लाई जाती है। अब "साइनाइड" की मांग इतनी बढ़ गई है कि अमोनिया और सोडियम धातुके भी "साइनाइड" बनने लगे हैं। कुछ "साइनाइड" गैस घरोंसे भी निकलता है, किन्तु इस विधिमें बहुत कुछ संशोधन होना बाकी है।

कैलसियम कारबाइड को विद्युत् या किसी अन्य प्रकार गरम करके उस पर नत्रजन छोड़ने से कैलसियम कारबोनाइट्राइड ($CaCN_2$) तैयार होता है। कैलसियम, मैगनीसियम, अल्यूमिनीयम आदि धातुओंको नत्रजनमें गरम करनेसे उनके नत्रिद् बनते हैं ( जैसे $Ca_3 N_2$, $Mg_3 N_2$ आदि )।

ओषजन और कर्बनके बाद सस्ते पदार्थोंकी सूचीमें उज्जनकी गिन्ती है। उज्जन नत्रजनके साथ मिलकर अमोनिया गैस ($NH_3$) बनाती है। प्रायः सभी जीव जन्तु तथा उद्भिद् के सड़नेसे अमोनिया गैस या उसके यौगिक बनते हैं। पहले इन्हीं वस्तुओं से अमोनिया ( $NH_4 OH$ ) बनता था। व्यवसायमें अमोनियाकी बड़ी उपयोगिता

है। इसके लवण खादके काममें बहुत दिनोंसे लाये जाते हैं।

विद्युत्से गरम की हुई भट्टीमें नत्रजनको इतना गरम करते हैं कि उसके अणु ( Molecules ) टूट कर परमाणु ( Atoms ) की अवस्था में हो जाते हैं। यह परमाणु, उज्जनके साथ जो पीछेसे प्रवेश करायी जाती है, मिलकर अमोनिया गैस बनाते हैं। किन्तु अमोनिया गैस ५००-१०००°श से अधिक गर्मी नहीं सह सकती। इतनी गरमीसे उसके टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं और वह पुनः नत्रजन और उज्जनका रूप धारण कर लेती है। इस लिए अमोनियाके टूटनेके पहले ही भट्टीसे हटा देते हैं। व्यवहारमें हेबर साहबकी विधि अधिक सफल पाई गई है। इस विधिमें यूरानियमके नमक उत्तेजक ( Catalytic Agent ) का काम करते हैं। नत्रजनके अणुओंको ५००°श की गरमी पर भारी दबाव डालकर टुकड़े टुकड़े कर दिया जाता है। उस अवस्थामें वह उज्जनके साथ मिलकर अमोनिया गैस तैयार करते हैं। गरमी अधिक नहीं रहती, इसलिए अमोनिया गैसका विच्छेद भी नहीं होता।

व्यापारमें किसी वस्तु को-चाहे वह कितनी ही छोटी हो-नष्ट करना अनुचित गिना जाता है। इसलिए व्यापारिक प्रायः सभी वस्तुओंको यथा सम्भव उपयोगमें लानेकी चेष्टा करते हैं। "कोल-गैस" बनानेके समय या कोयलेको वायुरहित स्थानमें जलानेसे (Destructive Distillation) अमोनिया गैस तैयार होती है। इस अमोनियाको गंधकाम्लमें घुलाते हैं, जिससे अमोनियम गन्धेत बनता है। गंधकाम्ल रासायनिक पदार्थोंमें सस्ता होता है, इसलिए उसे अमोनियाका लवण बनाने के काममें लाते हैं, अमेरिकामें कोयलेकी भट्टियों (Coke oven plants)से भी अमोनिया गैस निकलता है और उससे अमोनिया गंधेत तैयार करते हैं। प्रति साल प्रायः १,२५०,००० टन अमोनिया गन्धेत बनता है।

कोयलेसे अमोनिया निकालनेकी एक और प्रथा है। इसे मान्डकी प्रथा ( Mond System ) कहते हैं। कोयलेकी भट्टीमें जल वाष्प प्रवेश कराया जाता है; जल वाष्प अमोनिया बनाती है और सबके सब अमोनियाको अपने साथ लेती आती है। अमोनियाका एक बड़ा हिस्सा जो बचे हुए कोयले (Carbonaceous residue) के साथ रह जाता है और अन्य प्रथाओं द्वारा नहीं निकाला जा सकता, वह मान्डकी प्रथा द्वारा निकाल लिया जाता है। अमेरिकामें इस प्रथाको बहुत कम काममें लाते हैं, क्योंकि इसमें खर्च अधिक पड़ता है।

यूरोप और इङ्गलेन्डमें भी इस प्रथासे लोग अमोनिया निकालना चाहते थे, किन्तु पहली प्रथासे जितना अमोनिया गन्धेत बनता है उतना इस प्रथासे नहीं बनता, इसलिए लोगोंने इसको छोड़ दिया।

भावी प्रलयसे बचनेके लिए पश्चिमीय देश क्या कर रहे हैं इसका वर्णन ऊपर संक्षेपमें किया गया है; किन्तु साथ ही लोग यह भी पूछ सकते हैं कि भारतवर्ष इससे रक्षा पानेके लिए क्या कर रहा है। भूखे भारतवासी इसका क्या उत्तर दें? उन्हें तो यह भी ज्ञात नहीं कि सन् १९२३ ई० में प्रलय होनेवाली थी।

—रमेश प्रसाद

---

## सभ्यताके युग अथवा कोटि

मनुष्य और पशुका सम्बन्ध

मनुष्य और पशुकी शारीरिक रचना बहुत मिलती जुलती है। दोनोंके आवश्यक अंग बिल्कुल एक से हैं। मनुष्यकी पेशियाँ, नाड़ियाँ, हड्डियां—सभी कुछ उच्चकोटिके बन्दरोंके समान हैं। आपसमें भी वस्तुतः ऐसी समानता तो नीची और ऊंची कोटिके बन्दरोंमें नहीं पाई जाती। मनुष्यके भाव भी कतिपय पशुओंके भावोंके समान हैं—वैसा ही

विचार पाये जाते हैं। अब तो नीचेसे नीची जाति में भी स्वत्व, मानवी जीवनका आदर और आत्मगौरव आदिके विचार पाये जाते हैं। कोई भी ऐसी जाति नहीं है जो चोरी और खूनको बुरा न मानती हो और जिसमें आत्मगौरवका भाव न हो। कई सभ्य जातियोंकी भाषासे पता चलता है कि उनके पुरखा जब बर्बर अवस्थामें थे तभी स्वत्वाधिकार, न्याय और ईमानदारीके विचार उनमें उत्पन्न हो गये थे। दृष्टान्तके लिए चीनी भाषाको लीजिये। जिस चित्रका अर्थ ईमानदारी है उसके दो भाग हैं—मेरी और भेड़। जिस चित्रका अर्थ न्याय है उसके भी दो भाग है "अपनीही और भेड़।" जिस चित्रका अर्थ जाँच करना और न्याय करना है उसके भी दो भाग हैं "बात करना और भेड़।" इस दृष्टान्तसे यह जान पड़ता है कि चीनी जाति जब (Pastoral) "चर्वाहे" दशामें थी तभी चीनी भाषामें स्वत्वाधिकार, ईमान्दारी और न्यायके विचार पैदा हो गये थे। अतएव मनुष्यकी तीन दशाएं सिद्ध होती हैं।

( १ ) पशु अवस्था—जब उसका शरीर और उसके भाव पशुओंके शरीर और भावोंके समान होते हैं।

( २ ) मध्य अवस्था—जब बुद्धि बलके कारण वह पशुसे भिन्न हो जाता है।

( ३ ) मानुषिक अवस्था जब उसके धार्मिक और नैतिक विचार उसे पशुसे बिल्कुल भिन्न कर देते हैं। इस अवस्थाके विषयमें प्रकृति विज्ञानवेत्ता समझते हैं कि यह भिन्नता इतनी विशाल है कि उसे पशु अवस्थासे बिल्कुल भिन्न कर देती है।

अभीतक पशु और मनुष्यके बीचका कोई जीवधारी नहीं मिला है। यदि मिलेगा भी तो उसके सिरकी नाप मनुष्य और उच्च पशुके सिरोंकी नापके बीचकी नाप होगी और उसमें धार्मिक और नैतिक विचारके ऐसे अन्तर पाये जायंगे, जिनके विषयमें डार्विनकृत मनुष्यकी उत्पत्ति (Descant of man*) में वर्णित कतिपय जानवरोंमें पाये गये विचारांकुरके विषयकी अपेक्षा कम संदेह होगा। जिस प्रकार रीढ़वाले जानवरोंकी सभी अवस्थाएं गर्भमें प्रदर्शित हो जाती हैं, उसी प्रकार मनुष्यके जीवनके विकासमें भी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ देख पड़ती हैं। लड़कपनमें और युवावस्थाके आरम्भमें मनुष्य पशुवत गुणों और भावोंसे अधिक पूर्ण रहता है। कविने कहा भी है कि यह अवस्था ऐसी है जब विचारके काले मेघोंसे मनमें चिन्ता नहीं उत्पन्न होती। मनुष्य जब बड़ा होता है तब बुद्धिका विकास होता है और धार्मिक और नैतिक भाव बुढ़ापेमें विकसित होते हैं। ( क्रमशः )

—विश्वेश्वर प्रसाद

* अध्याय ४

## समालोचना

डा० बाबूराम शर्मा आयुर्वेदाचार्य, डी० एच० एस० (कलकत्ता), एम० डी० होम्यो, सम्पादक वनौषधि प्रकाश आयुर्वेद, प्रिन्सिपल होम्यो कालेज पो० जलालाबाद, जिला मेरठने, नीचे लिखी चार किताबें समालोचनार्थ भेजी हैं। इनसे यह पता नहीं चलता कि यह संस्कृत जाननेवालों, या अंग्रेजी जाननेवालों, या हिन्दी जाननेवालोंके लिए लिखी गई हैं। रोग का नाम लिखकर उसके आगे अंगरेजी नाम दिया गया है। बहुत जगह संस्कृतकी भाषा नहीं की गई, भाषा और छपाईमें बहुत अशुद्धियां हैं। सब पुस्तकोंके सम्पादक आप ही हैं।

( १ ) आयुर्वेदीय गृह चिकित्सा—पृष्ठ लगभग ६२, कागज साधारण, छपाई घटिया। इस पुस्तकको डाक्टर साहब की तीन दवाओंकी पेटियोंका नोटिस समझना चाहिये। इसे उनको बिना मूल्य देना चाहिये था; ॥) मूल्य अधिक मालूम होता है। इसमें कुछ रोग ऐसे लिखे हैं जो वैद्योंने कम सुने होंगे। एकज्वर (Continued fever), डेंगू ज्वर, रक्त आमाशय (Dysentry) आदि। आपका दावा है कि आप १५०)

की ओषधियाँ ७५) में देते हैं। अभ्रक भस्म सहस्त्र पुटका दाम, एक ड्रामका अर्थात् पाँच आना भरका, आपने २०) दिखाया है; मकरध्वज।-) भर का दाम २५)। यही दवायें शक्ति औषधालयसे ८) तोला तथा ४) तोला मिलती हैं। इससे पाठक जान सकते हैं कि मंगानेपर उनको क्या हानि लाभ होगा।

ड्राम कौनसे ऋषिकी बताई हुई तौल है। किताबके एक पृष्ठ पर वनौषधि प्रकाश और दूसरे पर गृह चिकित्सा लिखा है। इससे किताबके वास्तविक नाममें गड़बड़ पड़ती है।

(२) निमोनिया। पृष्ठ लगभग ८७; कागज और छपाई घटिया। आपने निमोनियाका नाम फुफ्फुस शोथ इस पुस्तकमें रखा है; परन्तु ऊपरकी पुस्तकमें फुफ्फुस प्रदाह। इस रोगके निदानमें आपने ७३ श्लोक लिखे हैं, परन्तु उनकी भाषा नदारद। रोग की चिकित्सा अच्छी लिखी है। इसी रोगको दूसरे वैद्य लोग कर्कोटक सन्निपात ज्वर कहते हैं। अच्छा होता कि पहिले आपसमें निपटकर किताबें लिखी जावें। मूल्य ≈)

(३) आसवारिष्ट विधि। पृष्ठ संख्या लगभग १०, मूल्य -); छपाई व कागज साधारण आसव व अरिष्ट बनानेकी किया पुराने ऋषियोंने निकाली थी। उन्हींके आदेशानुसार इन्हें बनाना उत्तम है। आपने अंग्रेज़ी मद्य तैयार करनेकी प्रणालीका इस पुस्तकमें समावेश किया है। सँभव है दवा अच्छी बने; परन्तु कहीं आबकारी महकमा इस पर लग जाय। इसमें अंग्रेज़ीके शब्द प्रायः अशुद्ध लिखे गये हैं और उनके भाषान्तर अत्यन्त अशुद्ध।

(४) सोमलता। पृष्ठ लगभग २०, छपाई व कागज साधारण। इस पुस्तकके पढ़नेसे पता चलता है कि सोमलता अप्राप्य है। उसके रूपका भी ठीक पता नहीं। बहुत जगह श्लोकोंकी भाषा नहीं की गयी। किताब संस्कृत व हिन्दी दोनों जाननेवालों की जानकारीके लिए अच्छी है। परन्तु सोमलता मिलनेकी नहीं। मूल्य ≈)

—भैरव सिंह, ठाकुर

[ कवर पृष्ठ २ के आगे ]



## विज्ञानके पुराने अंकोंकी ज़रूरत

विज्ञानके १, २, ६, ७ और ८ भाग हमारे कार्यालयमें नहीं रहे हैं, परन्तु उनकी मांग बराबर आरही है। जिन सज्जनोंके पास इन भागों हों और बेचना चाहते हों तो लिखें।

निवेदक—मैनेजर, विज्ञान

## सुअवसर

विज्ञान भाग ३, ४ तथा ५ अब हमने १) प्रति भागके हिसाबसे देना निश्चय कर लिया है। इनमें अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद लेख हैं। अवसर न चूकिये। शीघ्र मंगाइये।

भाग ९, १०, ११, १२, १३ भी १॥) प्रति भागकी दरसे मिल सकते हैं।

निवेदक—मैनेजर विज्ञान

मुरजप्रसाद खन्नाके प्रबन्धसे हिन्दीसाहित्य प्रेसमें मुद्रित, तथा विज्ञान परिषद्, प्रयागसे प्रकाशित।

# विषय सूची



---

## वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १४ } वृश्चिक, संवत् १९७८ । नवम्बर, सन् १९२१ { संख्या २

## चर-गीत—शान्ति मार्च

शान्तिः शान्तिः शान्तिः दिशि दिशि
शान्तिः शान्तिः शान्तिः हृदि हृदि
शान्तिः शान्तिः भवतु सदा
भवतुहि भव-हित-रूपा, या
शान्तिः भव-हित, शान्तिः स्वभिमत, शान्तिः सुविहित, सूपाया
शान्तिः सुविहित-सूपाया
शान्तिः भवहित-रूपा, या
शान्तिः अविकल, शान्तिः अविचल, शान्तिः तप-फल-भूता, या
तप-फल, अविचल, अविकल, अविरल, अविरत-हरि-रति-रूपा, या
या उर-धार्या, आर्या या गुरु, या शुभ-कार्या, सकल-प्रिया,
या हरि-ध्येया, या ज्ञेया, गुणि-गण-गदिता, या गेया

श्री पद्मकोट }
५—१—७८ }

—श्रीधर पाठक

## भारत-गीत ७०

जय जय पुण्य मातृ-धरे
मृण्मयी महि-अंक वासिनि, मृदु-मयंक-कला-विलासिनि,
द्युमणि-दीप्ति-अलंकृतोज्ज्वल-अंग-चारु-तरे

( २ )

स्वर्ण-सित-गिरि-शीश-सोहिनि, सुछवि स्वर्ग-अधीश-मोहिनि,
सदय-संयम-नियम-यम-मय-अभय-अस्त्र-धरे
जय जय पुण्य मातृ-धरे

( ३ )

सकल-सद्गुण-सहज-स्वामिनि, सतत-सुन्दरि, सुकृत-कामिनि,
अखिल-जग-सुगृहीत-नाम, सुपूजितांघ्रि-वरे
जय जय पुण्य मातृ-धरे

( ४ )

अतुल-बलवति, पुण्य-कायिनि, सरल-शुचि-मति, अति अमायिनि,
सतत-प्रण-पालिनि, प्रणत-जन-परित्राण-परे
जय जय पुण्य मातृ-धरे

( ५ )

विमल-प्रीति-सुपंथ-बोधिनि, कुटिल-नीति-प्रपंच-रोधिनि,
सकल-जन-अनुकूल-मंगल-शासन-प्रसरे
जय जय पुण्य मातृ-धरे

( ६ )

उच्च-जीवन-उदय-रूपिणि, शुचि-सुधी-जन-हृदय-भूपिनि,
यश-उदीरण-सुविवशीकृत-अधिर-अमरे
जय जय पुण्य मातृ-धरे

श्री पद्मकोट,
२४. ११. १९२१

—श्रीधर पाठक

# शीशा या दर्पण बनाना

[ ले०—श्री० गङ्गाप्रसाद, बी० एस-सी० ]

प्रायः लोगोंको दर्पण बनानेका शौक़ होता है। दूसरे जब दर्पण पुराने हो कर उनका मसाला उखड़ जाता है, तो दर्पणोंके कांचको फेंक दिया करते हैं। अतएव यदि दर्पण बनानेकी तरकीब बतादी जाय तो बड़ा लाभ होगा।

दर्पण बनानेके लिए क्या चीज़ें चाहियें

जिसे दर्पण बनाना हो उसे चाहिये कि एक कांचका टुकड़ा साफ और समथर ले और उसे आगे दी हुई तरकीबसे साफ कर ले। दवाओंके दो घोलोंकी ज़रूरत होती है, जिनकी तरकीब नीचे दी जाती है।

घोल १ †

| | | |
|---|---|---|
| रजत नत्रेत | ( Silver nitrate ) | १ तोला |
| स्रुत जल | ( Distilled water ) | ८ तोले |

स्रुत जलमें रजत नत्रेत घुला कर अमोनियाकी एक एक बूंद डालना शिरू करो और धीरे धीरे हिलाते जाओ। पहले एक तलछट सी पैदा हो जायगी, जो हिलाने और अमोनिया मिलानेसे फिर हल हो जायगी। घोल अच्छा बनानेके लिए यह आवश्यक है कि थोड़ी सी तलछट बच रहे। यदि तलछट सबकी सब घुल जाय तो ज़रा सा रजत नत्रेत डाल देना चाहिये, जिसमें थोड़ी सी तलछट फिर बन जाय। ठीक घोल गदला पानी जैसा दिखाई देगा। अब इसमें ९२ तोले पानी और मिला दो।

घोल २ ‡

| | | |
|---|---|---|
| रतज नत्रेत | ( Silver nitrate ) | २½ माशे |
| रौशिले साल्ट | ( Sodium-Potassium tartrate; Roc-helleSalt· ) | २ माशे |
| स्रुत जल | ( आवे मुक़त्तर ) | १०० तोले |

घोल को उबलने तक गरम कीजिये और गरम गरम छन्ने काग़ज़में से छान लीजिये। ठंडा होने-पर काममें लाना चाहिये। काममें लाते समय बराबर मात्रा दोनों घोलोंकी लेकर मिला दीजिये।

दर्पणपर चान्दी चढ़ानेकी तरकीब

घोल १ के बनानेके अतिरिक्त, कांच की सफाई बड़ी सावधानी से करनी चाहिये। अतएव साफ करनेकी विस्तृत विधि दी जाती है।

१—यदि मोम लगा हो तो तारपीनके तेलसे साफ कीजिये।

२—साबुन और पानीसे धोकर तारपीनको छुड़ा दीजिये।

३—कांचको कांचकी या चीनीकी रकाबीमें रखिये और उसपर पहलेकी चान्दी चढ़ी हो तो तेज़ या गाढ़े शोराम्ल से साफ कर डालिये।

४—बहते पानीमें खूब धो डालिये।

५—कास्टिक पोटाशके गाढ़े घोलसे खूब धो डालिये। धोते समय कांच और रकावी दोनोंको रुईके गालेसे या कांचके छड़के सिरे पर लगी हुई रबड़ (gumtube) से रगड़ते रहिये। खूब अच्छी तरह साफ करनेपर ही सफलता निर्भर है; अतएव बड़ी सावधानीसे काम करना चाहिये।

६—पोटाशका घोल निकाल दीजिये और बहते जलमें खूब धो डालिये। धोतेमें रकाबी ( भीतरका भाग ) या कांचको अंगुलीसे न छूइये। उंगली स्पर्श कर जायगी तो चान्दी एकसाँ न चढ़ेगी।

७—तेज़ शोरेके तेज़ाबसे धोइये।

८—बहते पानी में ५ मिनट या अधिक समय तक धोइये। बीच बीचमें कांचकी छड़से कांचको उठाते रहिये, जिसमें उसके नीचे पानी पहुंचता रहे।

९—कई बार लघु पानीसे धोइये।

---

† Silver nitrate ... 5 grams
Distilled Water 40c.c. to be diluted to 500 c.c. after-wards.

‡ Silver nitrate 1 gram, Rochelle Salt 0.83 gram; Distilled Water500c.c.

जब इस विधिसे कांच साफ हो जाय तो दोनों घोलोंको बराबर मात्रामें लेकर मिलाइये और कांच-पर डाल दीजिये। यदि पतली तह चढ़ानी हो तो देखते रहिये; जब वांछित मोटाईकी तह चढ़ जाय तो निकाल लीजिये। मोटी तह चढ़ानी हो तो कांच-को घोलमें तब तक पड़ा रहने दीजिये, जब तक कि घोल काला न पड़ जाय। अन्तमें कांचको निकाल कर फिलटर (छन्ने) काग़ज़ पर खड़ा कर दीजिये ताकि सूख जाय।

सूखनेपर आवश्यकता हो तो उसे पालिश कर सकते हैं। शेम्वाइ लेदर (Chamois leather) पर थोड़ा सा (jewellers rouge) रूज डालकर आहिस्ता आहिस्ता कांचको रगड़ कर पालिश हो सकती है।

पतली तहोंको पालिश करनेका प्रयत्न करना न चाहिये, क्योंकि पारदर्शक तहें हाथकी रगड़से ही छुट जाती हैं। अपारदर्शक तह इतनी कड़ी होती है कि अंगुलीसे रगड़ने पर नहीं निकलती।*

[ मेन्स ओपटिक्सके आधार पर ]

---

## कार्थेजकी अन्तःस्थिति

[ ले०—श्री० शंकर राव जोशी ]

प्राचीन कालमें अफ्रीकामें वर्तमान ट्यूनिस नगरसे उत्तरकी ओर २० मीलकी दूरीपर कार्थेज नामक एक धन-धान्य-सम्पन्न नगर था। फिनिशियन राज्यान्तर्गत टायर नगरके लोगोंने यह नगर बसाया था। जास्टिन नामी एक इतिहासकारने अपने ग्रंथमें कार्थेज सम्बन्धी एक दन्तकथाका उल्लेख किया है। यदि इस दन्त कथा पर विश्वास करलें, तो नगरकी स्थापनाका विक्रमसे ८०७ वर्ष पूर्व होना सिद्ध होता है। यह नगर भूमध्य सागरके तटवर्ती एक बड़े भूभाग पर फैला हुआ था। सिसली द्वीपपर भी कार्थेजने अधिकार कर लिया था। और कार्थेजका एक शूर और साहसी सेनापति कई वर्ष तक इटलीमें युद्ध करता रहा था। इस सेनापतिको कार्थेजसे बिलकुल सहायता नहीं मिली थी। तथापि उसने अपने पराक्रम और साहसके बलपर सारे इटली देशमें स्वतन्त्रता पूर्वक युद्ध किया। इसकी गति रोकनेवाला उस समय इटलीमें कोई न था। तत्कालीन रोमन राष्ट्र भी इससे बहुत डरता था।

कार्थेज शब्द, लैटिन कार्थेगो या ग्रीक कार्चेडोन शब्दका रूपान्तर है। बाइबिलमें भी 'कर्जथ' शब्द पाया जाता है यथा—कर्जथ अर्बा, कर्जथ जिरिम आदि। तत्कालीन लोग इस नगरको कर्जथ हडिश्चथ नामसे जानते थे। इस शब्दका अर्थ है—नवीन नगर। यह नाम देनेका कारण यह था कि यह शहर कार्थेजसे नैऋत्यकी ओर १५ मीलकी दूरी पर, इससे ३०० वर्ष पहले स्थापित किये हुए युटिकाा नगरसे भिन्न था। युटिका पुराना शहर और यह नया शहर कहा जाता था। कार्थेज एक छोटे उपसागरके तट पर बसाया गया था। इस उपसागरको आजकल ट्यूनिसका उपसागर कहते हैं। कार्थेज एक उत्तम बंदर था। और यही कारण है कि इसका व्यापार खूब चमक उठा था।

बड़े दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि कार्थेजका उत्तम इतिहास उपलब्ध नहीं है। अतएव हमें अधिकांशमें कार्थेजके शत्रुओं द्वारा लिखे हुए इतिहासका ही सहारा लेना पड़ता है; तो भी हमें कार्थेजके सम्बन्धमें बहुत कुछ ज्ञातव्य बातें मालूम हो जाती हैं। इस लेखमें कार्थेजकी अंतःस्थिति पर कुछ लिखनेका प्रयत्न किया जायगा।

### कार्थेजकी राज्य व्यवस्था

अरस्तूने अपने 'पालिटिक्स' नामक ग्रंथमें कार्थेजकी राज्यव्यवस्था पर विचार किया है। उसने कार्थेजकी राज्य व्यवस्थाकी खूब तारीफ़ की है। उसीके आधारपर इस विषयपर कुछ लिखा जायगा।

कार्थेजमें 'राजा' होते थे। राज्यके मुख्य सत्ताधीशको ही यह नाम दिया जाता था, तथापि ईरान और मिश्र देशके राजाओंके समान कार्थेजके राजा

के हाथमें कोई अधिकार न था। स्पार्टाके राजाओं-से उनका बहुत कुछ साम्य था और हम जानते हैं कि स्पार्टाके राजाओंको स्थायी सेनापति या मुख्य धर्माधिकारीके अधिकार प्राप्त थे। दोनों राष्ट्रोंके राजाओंमें भेद इतना ही था कि स्पार्टामें यह अधिकार वंशपरम्परासे दो ही कुलोंमें चला करता था और कार्थेजके राजा निर्वाचित किये जाते थे। एक बार निर्वाचित किया हुआ अधि-कारी आजन्म अधिकारारुढ़ रहता था। रोमन लोग इन दोनों अधिकारियोंको, "न्यायाधीश ( सफेटीस )" कहते थे।

राजाके बाद 'सेनापति' का नम्बर था। राजा और सेनापतिका पद एक ही व्यक्तिको भी दिया जा सकता था। किन्तु प्रायः यह पद दो भिन्न भिन्न व्यक्तियोंको ही दिये जाते थे। सेनापति ही फौज-का अफसर होता था। राजाका सेनापर किसी प्रकारका अधिकार न था। जिस राजाको सेना-पतिका पद प्राप्त रहता था, वही सेना संचालन कर सकता था। राजाकी अनुपस्थितिकी दशामें भी किसी व्यक्तिका निर्वाचन किया जा सकता था और उसके राज्यमें लौट आने तक एक आद्य योग्य व्यक्ति 'प्रतिनिधि' की हैसियतसे कार्य करता रहता था। कभी कभी सेनापति भी राजा चुन लिया जाता था।

इन दोनों अधिकारियोंके बाद कानून बनाने-वाली संस्थाका नम्बर था। इस संस्थाके दो विभाग थे। हम इन विभागोंको 'कौंसिल' और 'सेनेट' नाम देते हैं। कौंसिलके अधिकार इङ्गलेण्डके मंत्रि-मंडल ( Cabinet ) के समान थे। कौंसिलको राजा या सेनापतिके कामोंकी जांच करने एवं उन्हें दंड तक देनेका अधिकार था। सेनेटके अधिकारोंके सम्बन्धमें हम बहुत कम जानकारी रखते हैं। हम केवल इतना ही जानते हैं कि सेनेट कानून बनानेवाली समिति थी। कानूनको अमलमें लानेका काम कौंसिलके ज़िम्मे था। कहें तो कह सकते हैं कि सेनेट वर्तमान 'कांग्रेस' या 'पार्लमेंट' के समान थी।

इसके नीचे लोक-सभा थी। इस सभाके सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते। अनुमान किया जाता है कि सेनेट द्वारा मंजूर किये हुये प्रस्तावों और कानूनों-को पास करने या न करनेका अधिकार इसे प्राप्त था। अरस्तूका कहना है कि स्पार्टा और कार्थेजके लोगोंके हक समान थे और हम जानते हैं कि स्पार्टाके लोगोंका राज्यव्यवस्थासे कुछ भी सम्बन्ध न था।

इङ्गलेण्डके समान कार्थेजमें भी सरदार वर्ग था। किन्तु कार्थेजके सरदारोंको वंश परम्परागत जागीरें और पदवियां नहीं दी जाती थीं। जब तक वह धनी रहते थे तभी तक राज्यमें उनका प्रभाव भी रहता था। विपुल सम्पत्ति या अद्वितीय बुद्धिमत्ता ही सरदारीका चिन्ह माना जाता था।

अरस्तूने लिखा है कि राज्यके सब उच्च पद अवैतनिक होते थे। परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि इन पदों पर नियुक्त किये हुए लोगोंको द्रव्य-लाभ नहीं होता था। माना जा सकता है कि राज्यके ख़जानेसे उन्हें किसी प्रकारका वेतन न मिलता रहा हो तथापि यह बात निस्संदेह है कि उन्हें नज़र नज़राने, भेट आदिके रूपमें पुष्कल द्रव्य मिलता रहा होगा। अरस्तूने लिखा है कि राजा और सेनापतिके पदोंका नीलाम किया जाता था। इससे तो हमारे उपर्युक्त मतको ही पुष्टि मिलती है। यदि द्रव्य-लाभ होना सम्भव न होता तो इन पदोंको कौन मोल लेता? अतएव यह मानना पड़ता है कि पदाधिकारियोंको सर-कारी ख़जानेसे वेतन न मिलता था, तथापि भेट, उत्कोच आदि साधनों द्वारा उन्हें बहुत द्रव्य मिलता था इसी अर्थलोभके कारण कार्थेज मट्टीमें मिल गया। इसी अर्थलोभके कारण रोमन-नगर-राष्ट्र अत्याचारी राजाओंके हाथमें चला गया। इसी नष्ट मार्गको स्वीकार करते ही कार्थेजकी सत्ता मुट्ठी भर धनी लोगोंके हाथमें चली गई।

अरस्तूने लिखा है कि स्पार्टाके समान कार्थेज-में भी सहभोजनकी प्रथा थी—वहाँ भी नगरके सब लोग एक स्थानपर ही भोजन करते थे। किन्तु

हमें यह बात एक दम असम्भव मालूम होती है। कारण यह है कि स्पार्टामें निर्बलों, बूढ़ों और बालकोंको छोड़ कर, जिनका भोजमें सम्मिलित होना अनिवार्य न था, केवल एक हजार लोग थे। परन्तु कार्थेजकी जनसंख्या अत्यधिक थी। जिस समय रोमन लोगोंने नगरपर अधिकार कर लिया था, उस समय भी वहांकी जनसंख्या सात लाख थी। तब नगरकी समृद्धिकी दशामें जन संख्या कितनी रही होगी? इतने बड़े जन समुदायका एक ही स्थानपर भोजन करना संभव प्रतीत नहीं होता। संभवतः राज कर्मचारियों, उच्च पदाधिकारियों, के लिए ही यह नियम रहा हो। लिवी नामक ग्रंथकारने भी ऐसा ही लिखा है। हयनीबल इटलीमें युद्ध कर रहा था। उसने वहांसे कुछ लोग, कार्थेजके युद्धपक्षीय लोगोंमें जागृति उत्पन्न करानेके लिए कार्थेज भेजे थे। इन लोगोंने अपने आनेका कारण एवं हयनीबलका संदेश, प्रारंभमें भिन्न भिन्न सभाओं में, तदनन्तर भोजन समाजोंमें और तब सेनेटमें सुनाया था।

एक इतिहासकारने लिखा है कि कार्थेजके लोग रातके समय ही राजकाज करते थे। रातको सभाएं की जाती थीं और यहीं भावी सूचनाओंका सूत्रपात होता था। जिस प्रकार अर्वाचीन राज्यव्यवस्थामें प्रभावशाली लोगोंकी सभाओंमें स्वपक्षका कार्यक्रम निश्चित किया जाता है, उसी प्रकार कार्थेजमें भी किया जाता रहा होगा।

अर्थेंसके समान इंसाफ करनेका काम लोक सभाके ज़िम्मे था। इस कामके लिए पांच पांच सभ्योंकी कमेटियाँ नियुक्त की जाती थीं। प्रत्येक कमेटीको भिन्न प्रकारके अभियोगोंपर विचार करनेका अधिकार दिया जाता था।

कार्थेजमें सैनिकोंकी संख्या बहुत कम थी। अधिकांश सैनिक वेतनभोगी थे। वह कार्थेजके निवासी नहीं थे। कार्थेजको इन अन्य देशीय सैनिकोंके कारण अनेक संकटोंका सामना करना पड़ा है।

अब कार्थेजके धर्म पर, संक्षेपमें, विचार किया जायगा।

### कार्थेजका धर्म

कार्थेजका मुख्य देवता बाल हाम्मान या मौलक था। कार्थेजके प्रत्येक देवालय या पूजास्थानमें इस देवताकी प्रतिमा अवश्य रखी जाती है। इस देवताको नर-बलि दिया जाता था। यूनानी इस देवताको स्यार्टन या क्रौनास कहते हैं। यूनानियोंकी एक दन्तकथासे पता चलता है कि यह देवता अपनी सन्ततिको भी भक्षण कर गया था।

दूसरे नम्बरका देवता मेल्कार्ट है। यह गृह देवता है। यूनानी लोग इस देवताको हरक्यूलीज़ कहते हैं। टायर नगरमें इस देवता का अति विख्यात और भव्य देवालय था। कार्थेजके लोग प्रति वर्ष लाखों रुपयेका माल उसकी भेंटके लिए टायर भेजते थे। इस देवताकी प्रतिमाको अपनी आंखोंसे देखनेवाला एक लेखक लिखता है कि इस देवताका स्वरूप मानवी न था। प्रतिमाके स्वरूपका वर्णन करना एक दम असंभव है। मंदिर करोड़ोंकी लागतका था। मंदिरका सभाभवन बहुमूल्य धातुओं और जवाहिरातसे जड़ा था। कार्थेजके लोगोंने इस देवताको दो बहुमूल्य स्तंभ भेंट किये थे। एक स्तंभ स्वर्णका था और एक हरे कांचका। उस ज़मानेमें कांच एक बहुमूल्य पदार्थ माना जाता था और मिश्र देशवासी कांचकी कारीगरीमें विशेष दक्ष थे। इस कांचके स्तंभके भीतर दीपक रखा जाता था, जिसका प्रकाश बहुत अच्छा पड़ता था। कार्थेजमें जलके देवता (वरुण) की भी पूजा की जाती थी। यूनानी इस देवताको 'पोसिडोन' और रोमन लोग 'नेपच्यून' कहते हैं। पेलिस्टाइनमें एक देवताकी पूजा की जाती थी जिसका आकार मछलीके समान होता था। कार्थेजिनियन लोग इस देवताकी भी पूजा करते थे।

रोमके समान कार्थेजमें धर्माध्यक्षोंकी सत्ता न थी। इतना ही नहीं, वहां धर्माधिकारी नामक कोई स्वतंत्र वर्ग भी न था। परन्तु इससे यह न

समझ लेना चाहिये कि कार्थेजवासियोंकी धर्म-पर श्रद्धा न थी। वह धर्मभीरु और श्रद्धालु थे। कार्थेजमें हवन होते रहते थे और युद्धके समय राजा और सेनापति भी हवन किया करते थे।

कार्थेजकी जमाबंदी

अनेक मार्गोंसे कार्थेजको पुष्कल आमदनी होती थी। नीचे उसकी आयके मुख्य साधनों पर विचार किया जायगा।

(अ) मांडलिक देशों से कर—अफ्रीकाके समुद्र-तटवर्ती अधिकांश प्रदेश कार्थेजके मांडलिक थे। उन्हें साम्राज्य-सरकारको (कार्थेजको) कर देना पड़ता था। कर की रकम निश्चित नहीं थी। साम्राज्य सरकारकी जरूरतके अनुसार ही कर वसूल किया जाता था। साम्राज्य सरकारकी आवश्यकतानुसार कर की रकम भी घटा बढ़ा दी जाती थी। कभी कभी राज्यकी आयका आधेसे अधिक भाग करके रूपमें ले लिया जाता था। यह कर प्रान्तों में उत्पन्न होनेवाले पदार्थों—धान्य, चमड़ा, सोना, जंगली पशु आदि—के रूपमें ही वसूल किया जाता था। लेसर सर्टिसका लेप्टिस राज्य को एक टैलंट (२३ पौंड या ३४५ रुपया) प्रति दिन कर देना पड़ता था।

(इ) तटकर, ज़कात आदि—कार्थेजके अधिकांश सन्धिपत्रोंमें कर सम्बन्धी धाराएं पाई जाती हैं। तटकर और ज़कात (Customs duty) की दर अत्यधिक रखी गई थी। इस साधन द्वारा सरकारको बहुत आमदनी होती थी।

(उ) खानें—कार्थेजमें मूल्यवान् धातुओंकी पुष्कल खानें थीं। बहुत थोड़ी खानोंपर सरकारका अधिकार था। अधिकांश खानोंपर भिन्न भिन्न लोगोंका अधिकार था। तथापि सरकार खान के मालिकोंसे कर वसूल करती थी। खानकी साम्पत्तिक अवस्थाके अनुसार ही कर की रक़म निश्चित की जाती थी।

२—कार्थेज का व्यापार

कार्थेजका व्यापार जल और स्थल दोनों ही मार्गोंसे होता था। तत्कालीन व्यापारी संसारमें कार्थेजकी अच्छी धाक थी। कार्थेजके व्यापारियोंकी ईमानदारी और कौशल सर्वत्र प्रसिद्ध था। तथापि इस सम्बन्धमें भी हम अधिक नहीं जानते। नीचे संक्षेपसे कार्थेजके व्यापारपर कुछ लिखा जायगा। कार्थेजका व्यापार मुख्यतः दो देशोंसे होता था। यह दो देश थे—अफ्रीका और यूरोप। अफ्रीकाके व्यापार के सम्बन्ध में लिखते हुए 'हेराडोटस' नामक एक इतिहास कार लिखता है, "अफ्रीकामें हरक्यूलीजके आगे एक देश है।" कार्थेजके लोग यहां आने पर अपना सब माल किनारे पर रखकर जहाज़पर वापस लौट जाते थे। जहाज़पर जानेके बाद खूब धुआं किया जाता था। जंगली लोग इस धुआंको देखकर माल रखे हुए स्थानपर जाकर मालके पास सोना रख आते थे। दूसरे दिन व्यापारी जाकर सोनेको देखते थे। यदि सौदा पट जाता, तो वह सोना उठा ले जाते थे। और शामको जंगली लोग माल उठा ले जाते थे। यदि सोना मालकी कीमतके बराबर न होता था, तो वह जहाज पर वापिस लौट जाते थे। जंगली लोग थोड़ा सोना और रख जाते थे। जबतक सौदा नहीं पटता था माल और सोना वहीं पड़ा रहता था। कोई किसीके मालको छूता तक न था। सौदा पटने पर व्यापारी सोना उठा लेजाते थे और जंगली लोग माल। * स्थल मार्ग का व्यापार पश्चिमकी ओर जिब्राल्टर तक और दक्षिणकी ओर फेझन से भी आगे तक के प्रदेशोंसे होता था।

सुन्दर एवं भड़कीले रंग बिरंगे वस्त्र, हलके अस्त्र

* कैपटन लिनने अपनी पुस्तकमें लिखा है—"सहारा अरण्यके उधरके प्रदेशमें अदृश्य लोग रहते थे। वहां रातको व्यापार होते थे। उनसे व्यापार करनेवाले लोग एक विशेष स्थानपर अपना माल रखकर अपने स्थानपर जाकर सो जाते थे। दूसरे दिन हरएक ढेरके पास सोनेकी मट्टी पड़ी मिलती थी। जब तक सौदा नहीं पटता था माल वहीं पड़ा रहता था। सौदा पटजानेपर व्यापारी सोना उठा ले जाते थे और अदृश्य लोग रातको माल उठा ले जाते थे।

और नमक व्यापारके मुख्य पदार्थ थे। इन पदार्थों के बदलेमें सोना, बरतन और गुलाम आदि लिये जाते थे। हवशी लोग ही गुलाम बनाये जाते थे। राष्ट्रहितके ढकोसलेको आगेकर केवल स्वहित साधनके लिए, युद्धमें कैद किये गये सैनिक एवं पकड़े हुए नागरिक कैदी बना कर गुलामोंकी तरह बेच दिये जाते थे। कभी कभी गुलाम और मालिक दोनों ही उच्च कुलके एवं विद्वान पाये जाते थे। यह उच्चवंशीय एवं विद्वान गुलाम अपने मालिकोंसे असन्तुष्ट रहते थे और यही कारण है कि मालिक गुलामोंसे डरते रहते थे। इसीसे हबशीगुलामोंकी मांग दिनपर दिन बढ़ती जा रही थी, जिससे उसका मूल्य भी बहुत बढ़ गया था।

कार्थेजमें हाथीदांतका व्यापार भी खूब होता था। ग्रीसमें हाथीदांतके बहुमूल्य पदार्थ बनते थे। प्रतिमाएं, कुर्सियां, पलंग आदि वस्तुएं हाथीदांत से बनाई जाती थीं। यह बात निश्चय पूर्वक नहीं कही जासकती कि कार्थेजमें हाथीदांत कहांसे आता था। बहर्जिलने लिखा है कि हाथीदांत भारत से आता था।

परन्तु अफ्रीकामें भी हाथी बहुत पाये जाते थे। आजकल भी वहां उत्तम जातिके बड़े बड़े हाथीदांत पाये जाते हैं। कार्थेजके लोगोंको हाथी पालनेका बड़ा शौक था। कहींसे भी हाथीदांत क्यों न आता रहा हो, किन्तु इतना तो निर्विवाद है कि कार्थेजमें हाथीदांतका व्यापार बहुत होता था।

यूरोपसे व्यापार—ऊपर लिखे हुए पदार्थोंका व्यापार तो यूरोपके साथ होता ही था, किन्तु कार्थेजके लोग माल ढोनेका काम भी करते थे। लिपारा और इटलीके दक्षिण देशमें राल बहुत होती थी। शहद और मोम कार्सिकामें होता था और गंधक सिसली द्वीपके उत्तर भागमें। कार्सिकामें गुलामोंकी कीमत बहुत आती थी। एल्वामें लोहा, वालेयारिक द्वीपमें फल और पशु, आंग्ल द्वीपमें जस्ता, तांबा और बालटिकमें 'अम्बर' व्यापारके मुख्य पदर्थ थे।

कार्थेजके व्यापारके सम्बन्धमें लिखते हुए वहांके चमड़ेके सिक्केके सम्बन्धमें लिखना भी आवश्यक है। यह सिक्का अति प्राचीन कालसे प्रचलित था। इस सिक्केके सम्बंधमें लिखते हुए एक ग्रंथकार लिखता है—"एक छोटेसे चमड़ेके टुकड़े पर चार ड्राकमा ( तीन शिलिंग या १½ रुपया ) मूल्यका एक विशेष पदार्थका टुकड़ा लपेट दिया जाता था। सरकार ही इस पदार्थको बनानेकी तरकीब जानती थी। संभवतः यह सिक्का भिन्न भिन्न धातुओंके मिश्रणसे बनाया जाता रहा हो इस सिक्के पर सरकारी छाप रहती थी। जिस व्यक्तिके पास जितने ही अधिक सिक्के होते थे वह उतना ही अधिक धनवान माना जाता था।

कार्थेजके कला कौशल, विद्या आदिके सम्बंधमें हमें बहुत थोड़ी जानकारी है। कार्थेजके कला कौशलमें पद पद पर यूनानियोंके संसर्गका प्रभाव पाया जाता है। यहां तक कि कार्थेजके सिक्के पर भी यूनानके शिल्पनैपुण्यका आभास मिलता है। कार्थेजके लोगोंकी विद्वत्ताके सम्बंधमें हम कुछ नहीं जानते। तथापि जिस समय रोमन लोगोंने कार्थेजपर अधिकार किया था उस समय वहां ग्रंथालय थे। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह ग्रंथ ग्रीक लेखकों द्वारा लिखे हुए थे या कार्थेजी लेखकों द्वारा। संभवतः यह ग्रंथ यूनानी लेखकोंके लिखे ही होंगे। केवल मेगो नामक एक कार्थेजियन लेखकके सम्बंधमें हम कुछ जानते हैं। मेगोने कृषिपर एक उत्तम पुस्तक लिखी थी। रोमन लोगोंने इसका लातिनी भाषामें अनुवाद भी करवाया था। बादमें यूनानी भाषामें भी इस ग्रंथ का अनुवाद किया गया था। सिसरो इस ग्रंथको प्रमाण ग्रंथ मानता था।

हम पहले लिख आये हैं कि विदेशी लोगोंके वर्णनों से ही हमें कार्थेजका कुछ कुछ हाल मालूम हुआ है। इन ग्रंथकारोंने लोगोंकी गृह स्थितिके सम्बंधमें कुछ नहीं लिखा है। तथापि हमारा अनु-

[ आगे पृष्ठ ८२ पर देखिये। ]

# जीवनका प्रादुर्भाव

[ ले०—पं० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार ]

लार्ड केलविनका जो भाषण पिछले अंक-में दिया था उससे हम सहमत नहीं हैं। दोनों लोकोंके टकरानेपर प्राणियोंका जीवित रहना ही संदिग्ध है। हम जानते हैं कि भूमण्डलपर वातावरणको चीर कर आते हुये उल्कापिण्डोंमें ही इतना अधिक ताप उत्पन्न हो जाता है कि उनमें सूक्ष्म जीवोंका बचना ही असम्भव है। उल्कापिण्डोंकी रचना भूतलके खण्डकी रचनासे बहुत भिन्न होती है। भूतलके खण्डकी रचना कठोर नहीं होती। इसके समान खण्ड तो शायद वातावरणमें प्रविष्ट होते ही चकनाचूर हो जायँ या टूटनेवाले तारोंकी नाईं वह मार्गमें ही काफ़ूर हो जायं और भूतल तक न पहुँच सकें। यदि पहुँचें भी तो केवल उनकी जली भुनी राख सी झरना सम्भव है। इन सब बातोंके होते हुए भी यह कल्पना एक वैज्ञानिककी उद्दण्डताका अच्छा प्रमाण है।

इसके अतिरिक्त प्रकाश तरंगकी सहायतासे भी एक नई कल्पना खड़ी की जा सकती है। पं० श्वार्ज चाइल्डका मत है कि प्रकाश तरंगोंका प्रबलसे प्रबल प्रभाव उन्हीं पदार्थोंपर पड़ सकता है जिनका व्यास लगभग ०.०००१६ मि० मी० हो। कदाचित जीवनके बीज इतने सूक्ष्म रूपमें गगनमें बिखर जाते हों और फिर सूर्यकी प्रकाशकी तरङ्गोंके दबावसे किसी पिण्ड तक पहुँच जायं और अनुकूल स्थितिमें जम जायं और उनका विस्तार बढ़ने लगे।

अब प्रश्न यही है कि क्या जीवन: बीज इतने सूक्ष्म हैं? इस प्रसङ्गमें वनस्पति शास्त्र वेत्ताओंका कथन है कि बहुत से जीवाणुओंके मूलबीजोंका ( Spores ) परिमाण ०.०००३ से ०.०००२ मि० मी० तकके बीचमें है। निःसन्देह ऐसे जीवाणु भी सम्भव हैं जो हमारे क्षुद्रवीक्षणोंकी शक्तिसे भी परे हों। पीला बुखार, कुत्तोंके शरीरपर लगनेवाले रावीज़के जीवाणु तथा अन्यान्य नाना प्रकारके रोगोंके जीवाणुओंके शरीरपर पलनेवाले बहुत ही सूक्ष्म जीव हैं तो भी उनके देहों पर भी पलनेवाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव अभी हमारी खुर्दबीनकी पहुँच से बाहर हैं। इसलिए बहुत सम्भव है कि सूर्यके प्रकाश तरंगोंसे प्रेरित होनेवाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव ही उन तरङ्गोंसे प्रेरित होकर ग्रहोंपर सृष्टिका कारण हो जाते हों। श्वार्ज चाइल्डके कथनानुसार प्रकाशकी तरङ्गोंसे जीवबीजोंका एक लोकसे दूसरे लोक तक पहुँचना भी एक विचित्र मानसिक विक्षोभ उत्पन्न करता है। किसी अन्य बसे हुए लोक ( वसु लोक ) से इस पृथ्वी लोकपर (भूलोक) जीवबीज आनेकी कल्पना पर वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी सहायतासे विचार करनेकी अपेक्षा यही विचार अधिक सुगम है कि हमारी पृथ्वीसे ही यदि अन्य किसी लोकमें जीवबीज़ पहुचें तो किस प्रकार पहुँचेंगे। यह भूलोक भी एक वसु लोक ही है। इसमेंसे जीवबीजोंकी सेना लोकान्तरके लिए प्रस्थित होगी तो प्रथम उसको मङ्गललोककी क्रान्तिसीमा पार करनी होगी। फिर उसके अनन्तर क्रमशः लघु ग्रह समूह और अन्यान्य महाग्रह गुरु, शनि, अरुण और वरुणकी क्रान्ति सीमाएं भी पार करनी होंगी। वरुणलोककी सीमा ही तो हमारे आदित्य नारायणकी साम्राज्य सीमा है। इसको पारकरके वह अनन्त गगन विस्तारमें प्रवेश करेंगे और दूसरे सौर जगत पर पहुँचनेके लिए कटिबद्ध होंगे। सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणुओंकी इस अनन्त पथ यात्राकी काल गणना भी बड़ी विस्मयजनक है। यदि उनके विशिष्ट गुरुत्व ( Specific Gravity ) जलके समान ही हों तो वह जीव पुञ्ज २० दिनोंमें मंगलके क्रान्तिमार्गको पार कर जायँगे और ८० दिनके बाद बृहस्पतिके मार्गको। इसी प्रकार १४ मासमें वरुण लोक ( Neptune ) को भी पारकर जायंगे। सबसे समी-

पश्चिम नक्षत्रलोक क-सहिपासुर, जय, (Alpha Centauri) है। वहां तक भी उन्हें पहुंचते हुए नौ सहस्र वर्ष लग जायंगे। यह गणना भी इसी आधार-पर की गयी है कि प्रकाश तरंगोंका दबाव गुरुता से चौगुना है।

पृथ्वीसे चले हुए जीवबीजोंको वरुण तक पहुँचनेमें इतना कम समय लगता है कि वह अपनी उत्पादक शक्ति नहीं खो सकते। परन्तु एक सौर जगतसे दूसरे सौर जगत तक पहुँचते हुए बड़ी भारी समस्या उपस्थित हो जाती है। एक लोकसे दूसरे लोकके बीचमें विद्यमान आकाश भागका ताप परिमाण बहुत ही कम है। कदाचित उसमें वह अपनी शक्ति जड़ मूलसे खो बैठें। कदाचित न भी खोवें, क्योंकि उस तापक्रम ( -२२०° शतांश ) पर सब प्रकारकी रासायनिक क्रियाएं बन्द हो जाती हैं। परन्तु तो भी ६००० वर्षका लम्बा चौड़ा काल कदाचित बहुत अधिक है। इसमें वह जीव बीज पुराने बीजोंके समान कदाचित सन्तति उत्पन्न करनेमें असमर्थ हो जावें।

साधारण तापक्रमपर तो हमें पता है कि मिश्र देशकी ३० हज़ार पुरानी क़बरोंमें और शव समाधोंमें भी जो नाजके दाने पाये गये हैं, उनको बोकर देखा गया है कि उनके पैदा होनेमें कोई भी न्यूनता नहीं आयी। तो भी बहुत से आलोचकोंका आक्षेप है कि अरबके लोग पता नहीं गेहूंके दाने कहांसे लाये थे। इसलिये गेहूंकी बात जाने दीजिये। फ्रान्सीसी जीवाणु शास्त्रज्ञ बुलोइन का कथन है कि रोमन शव समाधोंमें कुछ ऐसे जीवाणुओं ( Bacteria ) की सत्ता पायी गयी है जो निश्चयसे वहां ८००० वर्षसे बिना किसी सम्पर्कके रहे हैं। ऐसे कथन माननेके लिए भी हमें बहुत सावधान होना चाहिये। यह हो सकता है कि साधारण पौधोंके बीज और मूल जीवनके सूक्ष्म बीज २० वर्ष या इससे भी अधिक समय तक जिसमें वह लोकान्तरोंसे चलकर भूलोक तक पहुँच सकें—अपनी उत्पादक शक्ति न खो सकें; पर तो भी मार्गमें उनपर बड़ी भारी भारी विपत्तियां पड़नी सम्भव हैं और उनपर पूरा विचार करना उचित है।

जीवनबीजोंको पृथ्वीसे चलनेके बाद एक मास तक सूर्यके प्रबल एवं प्रखर प्रकाशमें खुला रहना पड़ेगा। यह भी विज्ञान सिद्ध है कि प्रतिक्षिप्त प्रकाशके प्रबल आघात से ही जीवाणु और जीव-बीजोंका घात हो जाना सम्भव है। इस प्रसङ्गमें महोपाध्याय रोक्स ( Raux ) का परीक्षण बड़ा सन्तोषजनक है। आपने सिद्ध किया है कि अन्थ्राक्स नामक जीवनबीज वायुके अन्दर रहते हुए भी प्रकाशके प्रबल आघातोंको नहीं सह सकते, परन्तु वायुसे शून्य स्थान पर प्रकाशका आघात उनका कुछ नहीं करता। इसी प्रकार महाशय ड्यूक्लो ( Duclaux ) के कथनानुसार दुग्ध-जीवाणु (Thyrothrix Scalier) तथा अन्यान्य जीवाणु भी बड़ी कड़ी जानके होते हैं; उनको महीनों धूपमें रखने पर भी कुछ नहीं होता। बहुत से वैज्ञानिक तो निश्चय पूर्वक यह नहीं कह सकते कि मार्गमें जीवाणु प्रकाशके आघातसे मर ही जावेंगे।

वरुणके कान्ति मार्गसे आगेका तापपरिमाण बहुत ही कम है। वहां शीतकी बड़ी भारी प्रबलता होगी। -२३०° शतांश से भी नीचे तापांश रह जायगा। और ज्यों ज्यों वह अपनी जन्म भूमिसे और परे हटेंगे शीत और भी अधिक हो जायगा। लण्डनमें गतवर्षोंमें जैनर इनस्टिट्यूटमें इस विषयके कुछ परीक्षण किये गये हैं। -२५२° शतांशपर द्रवरूप उज्जनमें जीवन-बीजों को २४ घण्टे पर्यन्त रखा गया। इतनेसे भी उनकी उत्पादक शक्तिका नाश नहीं हुआ।

महोपाध्याय मकफेडन तो इससे भी परे चले गये। आपने सिद्ध कर दिखाया है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणुओंको निरन्तर ६ मास तक द्रवीभूत वायुमें-२००° पर रखा गया तो भी उत्पादकशक्ति

वैसीकी वैसी ही बनी रही। इससे भी अधिक देर तकके परीक्षण किये गये और उनसे भी यही परिणाम प्राप्त हुआ है।

यह विचार भी सम्भवतः ठीक है कि साधारण तापांशकी अपेक्षा नीचे तापांश पर जीवाणु अधिक देर तक जीवित रहते हैं।

मार्गमें घातक रासायनिक क्रियाओंसे कदाचित उनका प्राणांत हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं, पर तो भी अत्यन्त नीचे तापांशोंपर रासायनिक क्रियाएँ भी बहुत मन्द पड़ जाती हैं। जीवाणुओंका-प्राण वेग १०° शतांशसे ऊपर १:२५ अनुपातमें बढ़ा करता है। फलतः वरुणलोकके आगे-२२०° शतांश पर प्राण वेग ( Vital energy ) १०° शतांशकी अपेक्षा १०००,०००,००० (एक अरब) गुना कम हो जायगा। अर्थात् जीवाणुओंकी उत्पादक शक्ति—२२०° तापांश पर ३० लाख वर्षोंमें भी इतनी कम न होगी जितनी १०° शपर एकही दिनमें होनी सम्भव है। इसलिए निःशंक कह सकते हैं कि वरुण लोकसे आगेका शीताधिक्य जीवन-बीजोंकी रक्षाका प्रबल साधन बनेगा और वह पूर्वोक्त अनन्त पथके और भी चिरकाल तकके यात्री बन सकेंगे।

अब एक समस्या और भी शेष है; वह जलाभावकी है। सूखनेसे वनस्पतियां और जीव संसार भी व्याकुल हो कर मर जाता है। बिना जलके प्राणियोंके प्राण नहीं रह सकते। एक ग्रहसे दूसरे ग्रहके बीचके मार्गमें जलका सर्वथा अभाव है। कदाचित इस जलशून्य मार्गमें जीवाणु बीज अपना जीवन खो बैठें। इस प्रसङ्गमें बी. ओबर की उत्पत्ति बड़े मूल्यकी है। वृक्षोंकी छालमें उत्पन्न होनेवाली वनस्पति हरी 'अलगा'को सर्वथा निर्जल गन्धकाम्लमें २० सप्ताह ( ५ मास ) तक रखा गया, तो भी उसकी मृत्यु नहीं हुई। फलतः जीवाणु बीज इससे भी अधिक काल तक जल शून्य अवस्थामें रह सकेंगे।

महाशय रोक्सके परीक्षणोंके अनुसार भी प्रकाशका घातक प्रभाव इसीलिए अधिक है कि सूर्यकी किरणोंसे वायुके अन्दर विद्यमान ओषजनकी क्रिया (oxidation) तीव्र हो जाती है। जीवाणु उसीको नहीं सहसकते। एक ग्रहसे ग्रहान्तरके बीचके मार्गमें ओषजनके अभावसे यह क्रिया रुक जाती है। सूर्यके प्रकाश प्रसारका वेग वरुण लोक तक ही भूलोककी अपेक्षा १०० गुना कम होजाता है। समीप तम तारा जय ( माहिदासुर एल्फ़ा ) के आधे मार्ग तक ही वह वेग २ करोड़ गुणा कम हो जाता है। इसलिए मार्गमें प्रकाश जीव बीजोंको कोई हानि न पहुंचावेगा।

इसलिए पृथ्वीसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणु बीज सभी दिशाओंमें उड़ कर अनन्त पथके यात्री हो सकते हैं। और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके लोकोंमें वह अपनी सन्तति बसा सकते हैं। इतने विचारके अनन्तर भी एक विषम समस्या है, जिस पर अभी विचार ही नहीं किया गया। वह समस्या गुरुत्वाकर्षण की है। दूसरे शब्दोंमें गुरुत्वाकर्षणको यदि जन्मभूमिका प्रेम या माताका प्रेम कहें तो बुरा न होगा। पृथ्वी माता अपने सभी पदार्थों पर गुरुत्वका प्रेम-पाश डाले है। इसीसे सभी पदार्थ उसमें उलझ कर उसे छोड़नेमें असमर्थ हैं। यही प्रेमपाश उन नन्हें जीवोंपर भी बंधा है। तो भी कदाचित कोई और शक्ति उनको फुसला ले जावे। हलकी सी वायुतरङ्ग ही उनको उड़ाकर लेजा सकती है। $\frac{1}{10}$ मि० मी० व्यासवाला वर्षा बिन्दु साधारण वायुके दबाव पर ४ सें० मी० प्रति सेकण्डके वेगसे गिरता है। इसी गणनासे ०.०००६ मि० मि० व्यासवाला जीवाणु बीज ( Bacteria Spore ) एक वर्षमें ८३ मीटर नीचे आसकेगा। इतना सूक्ष्म पदार्थ तो हलके वायु तरंगसे प्रेरित होकर भी कहीं तक उड़ता हुआ अन्ततः अत्यन्त विरल वायुके आस्तरणोंमें कदाचित् विश्राम पा जाय। २ मीटर प्रति सैकण्ड वेगकी वायुतरङ्ग ही उसको उड़ाकर ऐसे स्थानमें ले जा डालेगी जहां वायुका दबाव ०.००१ मि० मी० है। फलतः वह उड़कर कदाचित १०० कि० मी० ( ६० मील ) ऊपर जाकर चैन पावे। इतने पर भी

वायुतरङ्ग उसको वातावरणकी सीमासे परे नहीं फेंक सकेगी। उसके भी परे ढकेलनेके लिए किसी और शक्ति की अपेक्षा करनी चाहिये। विद्युत् तरंगें इस कार्यमें विना किसी संकोचके सफल हो सकेंगी। १०० कि० मी० तक अरोराकी प्रसरण तरङ्गें बराबर जाती ही हैं। हमारा यह विश्वास है कि अरोरा (ध्रुवीय तडिद्विलास) ऋण विद्युत्से न्यस्त सूर्यसे आनेवाले धूलि पटलोंके कारण ही उत्पन्न होता है। यदि जीवन बीज भी सूर्यसे आनेवाले धूलिपटलोंसे ऋण विद्युत् उधारले लें और उसीसे न्यस्त होजावें तो "समान विद्युतोंके परस्पर निराकरणके सिद्धान्त" के अनुसार निःसन्देह जीवन बीज भागकर ईथर (आकाश तत्व) के अगाध सागरमें पहुँच जायंगे।

इस प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणु पुञ्जोंका लक्षों करोड़ों और अरबोंकी संख्यामें पृथ्वी लोकसे उड़ उड़ कर लोक लोकान्तरों तक जाना सम्भव है और इसी प्रकार अन्य बसे हुये (वसु) लोकोंसे भी जीवन बीज निरन्तर उड़ रहे होंगे। मार्गमें सब प्रकार की घातक बाधाओंसे कितने ही मर भी जावेंगे। तो भी बहुत से अपनी अनुकूल स्थिति पाकर दूरस्थ लोकोंमें बस ही जावेंगे। बस एक बार पैर जमना चाहिये, फिर तो लक्षों करोड़ों वर्षोंके अनन्तर वह सभी लोक जीव-संसार से आच्छन्न हो ही सकेंगे।

आकाश पथमें सर्पण करते हुये जीवन बीज सौर मण्डलकी सीमापर ही सूर्य मण्डलकी तरफ़ गमन करते हुये रजः पटलों पर चिपट जायंगे और सौर जगतके सभी बसने योग्य ग्रहोंके वातावरणोंमें मिल जायंगे और इस प्रकार सब ग्रहोंपर जीव संसार की नींव पड़ जायगी। बहुतसों को रजःपटलोंकी सवारी न मिलेगी। वह सूर्यके ताप और प्रकाशकी प्रसरण तरंगोंसे धक्के खाकर फिर लोक लोकान्तरोंको पहुँचेंगे। फलतः सभी स्थानोंपर उनका स्वागत होगा। इस प्रकार व्यापक-जीवन-बीज-सिद्धान्त (Theory of Panspermia) के अनुसार सभी ग्रहोंमें जीवनकी उत्पत्ति हुई है और सभी स्थानोंपर कोष्ठोंकी रचना कर्बन उज्जन, ओषजन और नत्रजनसे होकर फिर उच्च कोटिके जीवोंका भी विकास होना सम्भव होगया।

इस महान् विषयको वैज्ञानिकोंने इतनी अद्भुत कल्पनाओंका पात्र बनाया है। इसे और भी सूक्ष्मतासे देखें तो इसमें और भी कौतुक नज़र आते हैं। परन्तु हम इस विषयको अधिक गम्भीर न करके इतना ही कहना चाहते हैं कि आखिर विज्ञान भी हारकर जीवनको अनादि मानने लगा और उसे व्यापक जीव बीज सिद्धान्तसे ही सन्तोष हुआ। इस सिद्धान्तको हम नारायण सिद्धान्त कहेंगे।

आकाशवर्ण, आकाश स्वरूप, नीलाञ्जन रूप, नारायण विष्णु सर्वत्र व्यापक हैं। उन्हींके नाभि कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मासे यह सब जीव, संसार, उत्पन्न हुआ। इसमें क्या सन्देह है? आकाशमें स्थित प्रत्येक पिण्ड अपनी नाभि पर गति करता है। वही पिण्ड बसने योग्य होकर कमल कलहाता है। उसीपर ब्रह्मा (बृहत जीवन-बीज) प्रकट होता है और नाना प्रकारकी सृष्टि पैदा होती हैं।

इस विशाल विषयपर जितना विचार किया जाय उतना ही गम्भीर होता जाता है तो भी यह प्रश्न शेष रह जाता है कि जीव संसारका एक सैलसे विकास हुआ या जीव संसारमें प्रथम ही लक्षों करोड़ों योनियां प्रकट हो गयीं। इस प्रश्नका क्षेत्र ही दूसरा है। इसपर विचार अन्यत्र किया जायगा।

---

# छाया चित्रणमें स्पष्टीकरण अर्थात चित्र निकालना

## डेवेलप करनेकी पूर्ण विधि

[ ले०—श्री० "सिद्ध हस्त" ]

१—प्रस्तावना; २—डेवेलप करनेकी सरलता; ३—डेवेलपरका चुनाव; ४—मेटल-हाइड्रोक्विनीन; ५—अन्य डेवेलपर; ६—डेवेलपरके नुसखे; ७—डेवेलप करनेके लिए तैयारी;

८—डेवेलप करनेकी विधि; ६—हाइपो; १०—डेवेलपरमें छोड़नेकी विधि; ११—तश्तरी; १२—लाल रोशनी; १३—डेवेलपरका काम; १४—डेवेलप होनेका समय; १५—अच्छे नेगेटिवकी पहचान; १६—अधिक और कम समयतक डेवेलप किये हुये नेगेटिव; १७—कम या अधिक एक्सपोज़र; १८—विषयके प्रकाशान्तरका प्रभाव; १६—डेवेलप करनेकी सबसे सरल विधि; २०—डेवेलप करनेकी गुणन रीति; २१—गुणन रीतिके गुण दोष; २२—डेवेलप करनेकी पुरानी रीति; २३—पुराने समयके लोगोंका भ्रम; २४—पायरो सोडाकी प्रशंसा; २५—तेज़ प्लेटमें घनता और प्रकाशान्तर; २६—हाइपोका काम; २७—नेगेटिव धोना; २८—सफाई इत्यादि; २६—नेगेटिवको सुखाना; ३०—शुद्ध नेगेटिवका रूप; ३१—धुन्ध; ३२—गर्मीके दिनोंमें; ३३—नेगेटिवको शीघ्र सुखाना; ३४—हाइपो-मारक; ३५—फिल्म; ३६—टेङ्क; ३७—पायरो सोडाका नुसखा; ३८—दोष और उनकी औषध; ३६—काले मनुष्योंको गोरा बनाना; ४०—समाप्ति।

१—प्रस्तावना

इस लेखमें स्पष्टीकरण, चित्र निकालने, अथवा डेवेलप (Develop) करनेकी आधुनिक विधियोंका सविस्तर और शुद्ध वर्णन किया जायगा। हमारी इच्छा है कि जो कोई इस लेखको पढ़ ले, उसे डेवेलप करनेमें फिर कष्ट न पड़े। यह लेख क्रियात्मक दृष्टिसे ही लिखा गया है और यह कह देना हम उचित समझते हैं कि इसमें दी हुई सभी बातें परीक्षित हैं। विद्वज्जनोंसे प्रार्थना है कि यदि उन्हें इस लेखकी एक भी बात अशुद्ध जान पड़े तो उसका विस्मरण न करके अपनी सम्मति "विज्ञान" में अवश्य प्रकाशित कर दें, या हमें "विज्ञान" सम्पादक द्वारा सूचित करें; उनकी इस कृपाके लिए हम बहुत कृतज्ञ होंगे। नये सीखनेवालोंसे हम यह कहना चाहते हैं कि वह केवल प्रक्रम २; ७–१०, १६, २७–२६ और ३२ को पढ़ निडर हो कार्य आरम्भ कर सकते हैं।

२—डेवेलप करनेकी सरलता

हम मान लेते हैं कि प्लेट (Plate) एक्सपोज़र (प्रकाश दर्शन Exposure) पा चुका है और उसको हम डेवेलप करना चाहते हैं। कितने लोग समझते हैं कि डेवेलप करना बहुत कठिन काम है और इसके लिए बड़े कौशल और अनुभवकी आवश्यकता है। लोग यह भी समझते हैं कि डेवेलप करते समय एक्सपोज़रकी भूल चूकको बहुत कुछ संभाल सकते हैं। पर ऐसा समझना ठीक नहीं। डेवेलप करना इतना सरल है जितना कि प्लेटको हाइपो (Hypo) के घोलमें छोड़कर फिक्स (Fix) अर्थात स्थायी करना है, या जितना कि स्थायी करनेके बाद प्लेटको पानीसे धोना है। रहा एक्सपोज़रकी त्रुटिको ठीक करना, उसके विषयमें विज्ञान वेत्ता कहते हैं कि एक्सपोज़रकी अशुद्धताको डेवेलप करते समय सुधार नहीं सकते। इस प्रश्नकी जांच करनेका यह अवसर नहीं है। इस लिए हम यही मान लेते हैं कि एक्सपोज़र शुद्ध है और हम ठीक नेगेटिव (विपरीताभास Negative) बनाना चाहते हैं।

३—डेवेलपरका चुनाव। पायरोसोडाके गुण दोष

ज्योंही डेवेलप करनेकी इच्छा मनमें प्रकट होती है त्योंही यह प्रश्न उपस्थित होता है कि कौन सा डेवेलपर काम में लाना चाहिये। इस विषयपर हम फिर एक ऐसी बात कहना चाहते हैं जिसको बहुत कम लोग ठीक मानेंगे। पर हम जो कहते हैं वही वैज्ञानिकोंका मत है और अनुभवसे भी ठीक जँचता है। हम इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि प्रायः सभी प्रकारके डेवेलपरसे अच्छे नेगेटिव बनाये जा सकते हैं और नेगेटिवकी उत्तमताके ख्यालसे एक डेवेलपरको छोड़ दूसरेको काममें लानेसे कुछ भी लाभ नहीं होगा। हम यह नहीं कहते कि सभी डेवेलपर सब बातोंमें, एकसे हैं; क्योंकि कुछ सस्ते मिलते हैं, कुछ मँहगे; कुछ बहुत दिनों तक ठहरते हैं, कुछ थोड़े ही दिनों तक; किसी किसीके बनानेमें बहुत सुभीता पड़ता है,

और किसी किसीमें बहुत बखेड़ा; और कई एकके कपड़े पर गिर जानेसे दाग़ पड़ जाते हैं। सस्ता होनेके ख्यालसे पायरो-सोडा (Pyro-soda) सबसे बढ़कर है। पर इसमें कुछ अवगुण भी हैं। एक तो यह कि थोड़ी ही असावधानीसे नेगेटिवको और काम करनेवालेकी अँगुलियोंको रँग देता है। दूसरे पायरोका घोल अलग और सोडाका अलग रखना पड़ता है। तीसरे, बनानेके बाद यह घोल महीने डेढ़ महीनेसे अधिक नहीं चल सकते। अच्छे फोटोग्राफर तो इन्हें एक महीने तक भी नहीं रखते। चौथे, इस डेवेलपरको ब्रोमाइड ( Bromide ) और गैसलाइट ( Gaslight ) कागज़ोंके लिए काममें नहीं ला सकते; इसलिए जो महाशय इन कागज़ों पर भी फोटो छापना चाहते हैं उन्हें एक दूसरा डेवेलपर भी रखना पड़ता है और इससे असुविधा होती है। पांचवें इसमें कई एक रासायनिक पदार्थ तौल तौल कर छोड़ने पड़ते हैं, जिससे कि यदि एक ही दो प्लेटके डेवेलप करनेके लिए थोड़ा ही पायरो-सोडा डेवेलपर सूखे रासायनिक पदार्थोंसे बनाना हो तो भी बहुत समय लग जाता है। इतने अवगुणके होते हुए भी इस डेवेलपरको प्रायः सभी रोज़गारी भाई पसंद करते हैं।

कितनोंका मत है कि जैसा बढ़िया इस डेवेलपरसे नेगेटिव तैयार होता है उतना बढ़िया और किसी डेवेलपरसे नहीं हो सकता, पर हम इस बातको नहीं मानते। कदाचित कितने ही शौकीन भी इसी डेवेलपरको इसके सर्व-प्रिय होनेके कारण ही काममें लाते हैं। उनको जानना चाहिये कि आजकलके दूकानदारोंके साहसने पायरो-सोडाके पांचवें अवगुणको मिटा दिया है। यह डेवेलपर टिकियोंके रूपमें भी खरीदा जा सकता है। डेवेलपरको बनानेके लिए केवल एक टिकिया एक शीशीसे और एक टिकिया दूसरी शीशीसे निकालकर दो औंस पानीमें छोड़ना पड़ता है, (चित्र ४) पर यह भी स्मरण रहे कि टिकियोंके रूपमें इस डेवेलपरको मोल लेनेसे इसका सबसे बड़ा गुण, सस्तापन, जाता रहता है, क्योंकि इस रूपमें पायरो-सोडाका दाम करीब ६ गुना बढ़ जाता है।

४—मेटल-हाइड्रोक्विनोन

दिन पर दिन मेटल-हाइड्रोक्विनोन* (Metol—hydroquinone ) डेवेलपरका प्रचार ऐसे लोगोंमें बढ़ता जा रहा है जिन्हें पैसा कमानेकी इच्छा नहीं, पर जो फोटोग्राफीके प्रेमके कारण इसका अभ्यास करते हैं। पहिली बात इसके पक्षमें यह है कि यह डेवेलपर अन्तिम समय तक स्वच्छ रहता है, रंग शीघ्र नहीं बदलता और नेगेटिव या आपकी अंगुलियोंका रंग जाना असम्भव है। दूसरे, यदि चाहें तो सब रासायनिक पदार्थोंका एक ही घोल बनाकर रख सकते हैं। तीसरे, यह एक घोल वाला डेवेलपर भी पायरो-सोडा डेवेलपरसे अधिक दिन चलता है। यदि मेटल—हाइड्रोक्विनोन और सोडियम† सलफाइट ( Sodium Sulphite ) का घोल अलग और सोडियम † कारबोनेट( Sodium-Carbonate ) का घोल अलग बनाकर रखें तो यह डेवेलपर और भी अधिक दिन तक चलेगा। चौथे, यह ब्रोमाइड और गैसलाइट कागज़ोंके लिए भी बहुत ही बढ़िया डेवेलपर है। कोडैक ( Kodak )कम्पनीने अपने नामी वेलक्स ( Velox ) कागज़के लिए तो इस डेवेलपरको छोड़ और किसी डेवेलपरके प्रयोग करनेके विरुद्ध बड़े स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है। वेलक्स एक प्रकारका गैसलाइट कागज़ है। सभी गैसलाइट और प्रायः सभी ब्रोमाइड कागज़ और करीब सभी प्रकारके प्लेटके साथ मिलनेवाली प्रयोग करनेकी विधिमें एक मेटल-हाइड्रोक्विनोन डेवेलपरका नुसखा अवश्य रहता है जिससे सिद्ध होता है कि इस डेवेलपर को कारखानेवाले यदि और डेवेलपरों से बढ़कर नहीं समझते हैं तो औरों से इसे कुछ बुरा भी

* इसे मेटल—क्विनोल (Metol—Quinol) भी कहते हैं।

† इस शब्द के बदले "सोडा" ( Soda ) शब्द का भी प्रयोग किया जाता है।

हीं समझते हैं। मेटल-हाइड्रो-किनोन लैन्टर्न-स्लाइड ( Lantern Slide ) के लिए भी अच्छा डेवेलपर है। पांचवें, यह डेवेलपर भी टिकियोंके रूपमें मिलता है, जिससे कि किसी रासायनिक पदार्थके तौलनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती और थोड़ा या अधिक जितना चाहें उतना डेवेलपर बातकी बातमें बना सकते हैं। अवगुण इस डेवेलपरमें है तो एक ही है, वह यह कि मेटल-हाइड्रो-किनोन डेवेलपर सबसे सस्ता नहीं है। पर पायरो-सोडा और इसके दाममें बहुत अधिक अन्तर नहीं है। पायरो-सोडा डेवेलपरको एक बार काममें लानेके बाद फिर दोबारा काममें नहीं लाया जा सकता, पर मेटल-हाइड्रोकिनोन डेवेलपरकी एक ही मात्रा से दो या तीन प्लेट को एकके बाद डेवेलप कर सकते हैं, यद्यपि ऐसा करनेकी सम्मति हम नहीं देंगे।

यहां पर और डेवेलपरोंके गुण दोषकी बहुत

५—अन्य डेवेलपर

व्याख्या करनेकी आवश्यकता नहीं। ऐमिडोल ( Amidol ) डेवेलपर बनानेके बाद दो तीन दिन से अधिक नहीं चलता। एक बना बनाया डेवलपर ऐज़ोल ( Azol ) भी बाज़ारमें मिलता है। इसका एक भाग और २४ भाग पानीके मिलाने से ही डेवेलपर तैय्यार हो जाता है। इसमें प्रायः सभी गुण जो मेटल-हाइड्रोकिनोनके लिये ऊपर लिख आये हैं पाये जाते हैं, पर वह और भी मंहगा पड़ता है। दो डेवेलपरोंके मूल्य की तुलना करते समय उनके गाढ़ेपन पर भी ध्यान रखना चाहिये। कई एक बने बनाये डेवेलपर उनके ऊपर लगे हुए विज्ञापन से बड़े सस्ते जँचते हैं, पर यदि पायरो सोडा या मेटल हाइड्रोकिनोन डेवेलपर भी इतना पतला बनाया जाय कि किसी विशेष प्लेट के पूर्ण रीतिसे डेवेलप हो जाने का समय उस बने बनाये डेवलपरके समयके बराबर हो जाय तो पायरो-सोडा या मेटल-हाइड्रोकिनोन डेवेलपर ऐसे बने बनाये डेवेलपर से कहीं सस्ता पड़ेगा।

६—डेवलेपरके नुसखे

यदि बना बनाया डेवेलपर खरीदें तो बात ही दूसरी है; नहीं तो एक प्रश्न और उठता है। किस नुसख़ेके अनुसार डेवेलपर बनाना ठीक है? प्रायः सभी प्लेट के बक्स के ऊपर या उसके साथ एक नुसख़ा अवश्य रहता है। प्रायः सभी पुस्तकों में दो एक नुसख़े रहते हैं। कई एक पुस्तकोंमें तो नुसख़ोंकी भरमार रहती है। रासायनिक पदार्थों-के साथ भी कभी कभी नुसख़े दिये रहते हैं। प्रायः लोगों की यह भी इच्छा रहती है कि ऐसा डेवलपर बनायें कि वह प्लेट और कागज़ दोनोंके लिए काम दे। प्रत्येक नुसख़ा दूसरोंसे कुछ न कुछ भिन्न होता है। प्रश्न उठता है "कौनसा नुसखा ठीक है? किसके अनुसार अपना डेवेलपर बनावें?"। कुछ नये काम करनेवाले एकके बाद एक नये नये नुसखोंकी परीक्षा करते रहते हैं। नेगेटिवमें चाहे किसी कारण दोष उत्पन्न हुआ हो, उनके लिए केवल नुसखेका ही दोष है। समझते हैं कि किसी न किसी दिन एक ऐसा नुसखा पा जायंगे जिससे कि नेगेटिवकेसब दोष एक दम दूर भाग जायँगे!। पर हमारा तो इस प्रश्न का उत्तर वैसा ही बेढब है जैसा कि भिन्न भिन्न डेवलपरोंके बारेमें। यदि नुसखा बिल्कुल ही अशुद्ध नहीं है तो कुछ चिन्ता की बात नहीं। नेगेटिव वैसा ही अच्छा आवेगा। कमसे कम इस बातका विश्वास रखिये कि जो नुसख़ा प्लेटके बक्सके साथ कारखाने वाला भेजता है वह अवश्य ही अच्छा होता है। कारख़ानेवालेको इसी बातकी चिन्ता रहती है कि हमारा माल खूब बिके। बिकेगा क्यों, यदि उसके मालसे काम अच्छा न उतरेगा?। और यदि डेवेलपरका नुसख़ा ही अशुद्ध हो तो कामके अच्छे होनेकी क्या आशा?। हमें विश्वास है कि डेवेलपर बनानेके अच्छे नुसखोंकी कमी नहीं है, इसलिए हम यहां पर किसी विशेष नुसख़े के देने की आवश्यकता नहीं समझते।

७—डेवैलप करनेके लिए तैय्यारी

इन प्रारम्भिक बातों को तय कर अब हम डेवेलप करनेकी विधिका वर्णन करना चाहते हैं। जिस डार्क-स्लाइड (Dark-slide) में एक्सपोज़ किया हुआ प्लेट है उसको अँधेरी कोठरी (Dark-slide) की मेज़पर लाकर रख दीजिये। इसकी कोई आवश्यकता नहीं कि अँधेरी-कोठरी में एक मेज़ अवश्य हो पर मेज़ और कुर्सी या स्टूलके रहने से सुभीता होता है। नीचे लिखी हुई मात्राएँ एक क्वार्टर-प्लेट (Quarter Plate) के लिए ठीक हैं। इससे छोटे या बड़े प्लेटके लिए इसी हिसाब से सभी वस्तु कम या बेश कर सकते हैं। एक तश्तरी में एक औंस या कुछ अधिक हाइपो का घोल छोड़ दीजिये (चित्र १)। आगे चल कर इस घोल के बनाने की विधि लिखेंगे। फिर भली भांति हाथ धो (चित्र २) और पोंछ कर (चित्र ३) दो औंस डेवेलपर बना कर गिलासमें रख लीजिये (चित्र ४)। एक घड़ीकी भी आवश्यकता पड़ेगी (चित्र १३) और यदि अँधेरी कोठरीमें पानीकी कल और पानी बह जानेके लिए पनाला न लगा हो तो एक लोटा पानी और एक बरतन इस्तेमाल किये हुए पानीके इकट्ठा करने के लिए चाहिये। एक और तश्तरी डेवेलप करनेके लिए और एक टुकड़ा दफ़्ती इस तश्तरी को भली भांति ढकने योग्य डेवलपरके पास ही रख लीजिये। हाथ पोंछनेके लिए एक तौलिया भी चाहिये। पानी, डेवेलपर और हाइपोका घोल जहां तक हो सके खूब ठंडा रखना चाहिये। हम यहां पर यह मानते हैं कि जाड़ेका दिन है (गर्मीके दिन की बात आगे लिखी जायगी); इस लिए और किसी वस्तु की आवश्यकता न पड़ेगी और हम लाल रोशनी को जला कर किवाड़ बंद कर सकते हैं।

८—डेवैलप करनेकी विधि

डार्क स्लाइडसे प्लेट निकाल कर (चित्र ६) खाली तश्तरीमें रखिये। (चित्र ७) इस कामको जहां तक हो सके शीघ्र और बहुत ही धीमी रोशनीमें करना चाहिये। तश्तरीमें प्लेटको इस बल रखना चाहिये कि जिधर जिलेटिन (Gelatine) की झिल्ली (Film) अर्थात् मसालेदार तह लगी है वह ऊपर रहे। इस बातको जानने के लिए कि झिल्ली किधर है लाल रोशनीमें प्लेटको देखनेकी आवश्यकता नहीं। डार्क-स्लाइडके शटर (shutter) की ओर प्लेटका जो भाग था, उसी पर झिल्ली लगी रही होगी, इससे अँधेरेमें भी प्लेटको तश्तरीमें ठीक ठीक रख सकते हैं। प्लेटके रखनेके बाद डेवेलपरको प्लेटके ऊपर इस प्रकार उँड़ेल दीजिये कि प्लेट तुरन्त डेवेलपर से ढक जाय (चित्र-८ और ९)। फिर दफ़्ती से ढक कर (चित्र १०) तश्तरीको इस प्रकार हिलाते जाइये (चित्र ११- और १२) जिसमें कि प्लेटके प्रत्येक भागके ऊपर का डेवेलपर सदा बदलता रहे या यदि आप चाहें तो ठहर ठहर कर तश्तरीको हिलाते जाइये, पर डेवेलपरको प्लेटके किसी भागके ऊपर १५ या बीस सेकंड से अधिक समय तक स्थिर नहीं रहना चाहिये। डेवलपरके उँड़ेलनेका समय घड़ी (चित्र १३) में देख लेना चाहिये। जब डेवेलप करनेका पूरा समय बीत जाय (चित्र १३) तो प्लेटको सावधानीसे निकाल कर (चित्र १४) पानी छोड़ बीस तीस सेकंड तक धोना चाहिये (चित्र १५) और फिर हाइपोके घोलमें प्लेट को धीरे से रख (झिल्ली वाली तरफ़ ऊपर रहे) तश्तरी को कभी कभी हिलाते रहना चाहिये (चित्र १६)। दस मिनट के बाद अँधेरी कोठरीके किवाड़ खोल बाहर आ सकते हैं और प्लेटको निकाल कर देख सकते हैं कि कैसा नेगेटिव (Negative) हुआ। आइये, आशा करें कि यह बहुत बढ़िया नेगेटिव निकला। इसके बाद नेगेटिवको धोकर (चित्र १७- और १८) सुखाना पड़ेगा (चित्र १९)।

९—हाइपो

डेवेलपर कई प्रकारके होते हैं, पर प्लेट को

चित्र ६—इसके २० भागोंमें डेवेलप करनेकी भिन्न भिन्न क्रियाएँ दिखलाई गई हैं।

स्थायी या फिक्स ( Fix ) करने के लिए एक ही पदार्थ, हाइपो, का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक प्लेटके बक्सके साथ जो प्रयोग करने की विधि मिलती है उसमें हाइपोके घोलका उचित गाढ़ापन दिया रहता है। पर थोड़ा बहुत इस गाढ़ेपन के बदलनेसे नेगेटिवपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है। पाव सेर हाइपो एक बोतल पानीमें घोलकर रख देनेसे उचित घोल बन जाता है, पर मुझको सुभीता आध सेर हाइपोको एक बोतल पानीमें घोलकर रखनेमें होता है। एक छोटे शीशेके गिलासपर पाव औंस, आधा औंस और एक औंस पानी नापनेके लिए रेतीसे चिह्न लगा कर रखना चाहिये। काम पड़ने पर आधा औंस हाइपो का घोल बोतल से ले, इस गिलाससे नाप, तश्तरीमें छोड़ देना चाहिये ( चित्र १ )। इसी गिलाससे आधा औंस पानी भी तश्तरीमें छोड़ देना उचित है। इस प्रकारसे गिलास भी कुछ धो जाता है और इसका भी निश्चय हो जाता है कि तश्तरीमें कमसे कम एक औंस घोल है। जब ब्रोमाइड या पी. ओ. पी. ( P. O. P. ) कागज़के लिए हाइपोकी आवश्यकता होती है तो चौथाई औंस बोतलका घोल और तीन चौथाई औंस या एक औंस पानी तश्तरीमें छोड़ देना चाहिये। क्योंकि हाइपोके घोलके गाढ़ेपनमें थोड़ा बहुत अन्तर होनेसे कुछ हानि नहीं होती, इसलिए हाइपो या पानी नापनेमें देर लगानेकी आवश्यकता नहीं। हाइपोका घोल बरसों चल सकता है, बिगड़ जानेका कुछ भी भय नहीं रहता है।

हाइपोके घोलको छानकर काममें लानेकी चाल प्रशंसनीय है। एक बारके काममें लाये हुए हाइपोको उठाकर रख देना और फिर उसीको दूसरे समय काममें लाना अच्छा नहीं। इससे नेगेटिव के रँग जानेका बहुत भय रहता है। फिर, ऐसा भी हो सकता है कि एक दो बार काममें लानेके बाद घोलमें हाइपोका अंश इतना कम हो जाय कि नेगेटिव पूर्ण रीतिसे स्थायी न हो सके और कुछ ही समयमें नष्ट हो जाय। प्लेट और डेवेलपर इत्यादिसे हाइपो इतना सस्ता है कि एक बार काममें लाये हुए हाइपोको फेंक देना अतिव्यय नहीं है।

१०—डेवेलपर छोड़नेकी विधि

ऊपर हमने लिखा है कि एक क्वार्टर-प्लेट ( quarter-plate ) के लिए दो औंस डेवेलपर बना लीजिये। पीछे हाथ सध जाने पर एक ही औंस डेवेलपरसे काम चल जायगा। कितना डेवेलपर लेना चाहिये, यह विशेष करके तश्तरी पर निर्भर है। यदि तश्तरी प्लेटके आकारकी है, लम्बाई और चौड़ाईमें प्लेटसे थोड़ी ही बड़ी है और पेंदा समथल है तो ऊपरकी लिखी मात्राएँ ठीक हैं। प्लेटके किसी भाग पर डेवेलपर यदि पहले पड़ा और दूसरे भागों पर थोड़ी देर बाद तो प्लेटमें अवश्य ऐसे चिह्न पड़ जायँगे कि जिनका पीछे मिटाना प्रायः असम्भव ही होगा। इसलिए इतना डेवेलपर लेना चाहिये जितनेसे प्लेट अच्छी तरह ढक जाय और डेवेलपरको इस ढंगसे छोड़ना चाहिये कि वह शीघ्र ही प्लेटके ऊपर चारों ओर फैल जाय। इसके लिए लबदार ( होंठवाले ) गिलासकी आवश्यकता नहीं। यदि जिस गिलासमें डेवेलपर है वह लबदार है तो लबको तश्तरीकी ओर न रख दूसरी ओर फेर देना चाहिये ( चित्र ८ और ९ )। बायें हाथमें तश्तरी लेते हैं और दाहिनेमें डेवेलपरका गिलास ( बायें हाथ वाले इसके विपरीत काम करेंगे )।

तश्तरीके उस बायें कोनेको पकड़ते हैं जो अपने शरीरकी ओर है और इस कोनेको औरोंसे कुछ ऊंचा रखते हैं। तश्तरीका छोटा किनारा अपनी ओर रखना चाहिये। डेवेलपरवाले गिलासके किनारेको तश्तरीके बाहरवाले दाहिने कोनेके ऊपर रखते हैं। इस कोनेको औरोंसे कुछ नीचा रखते हैं। अब डेवेलपरको उँडेलते हैं ( चित्र ८ ) और उंडेलते समय दो काम एक संग करते हैं। पहिला यह कि इस सबसे नीचेवाले

कोनेको ऊपर उठाते हैं और दूसरा यह कि डेवेलपरके गिलासको अपने ओर खिसकाते हैं। इस गिलासको तश्तरीके दूसरे कोने पर पहुँचते पहुँचते खाली हो जाना चाहिये (चित्र ६) और यह दिखलाई देना चाहिये कि डेवेलपर एक ही लहरमें प्लेटको ढँक लेता है। यह लहर बाहरवाले दाहिने कोनेसे चलती है और सब प्लेटको ढकते हुए शरीरकी ओर वाले बायें कोने पर आ पहुँचती है। इस प्रकार डेवेलपरके छोड़नेसे बुलबुलोंका बनना असम्भव है। यही नहीं, यदि अभाग्य वश प्लेट पर गर्दके एक दो कण पड़े रहें तो वह भी बह कर किनारे चले जाते हैं। पढ़नेमें कदाचित ऊपरकी बातें टेढ़ी जान पड़ें पर वास्तवमें हैं बड़ी सीधी। दो चार बार बाहरकी सफेद रोशनीमें बेकाम नेगेटिवके ऊपर पानी छोड़नेका अभ्यास करनेसे सब बातें सरल हो जायँगी। पर यदि दो औंस डेवेलपर हो और यों ही डेवेलपर छोड़कर तश्तरी हिला दी जाय तो भी सभी जगह डेवेलपर शीघ्र ही पहुँच जायगा। चाहे किसी प्रकार डेवेलपर छोड़ें, इसपर विशेष ध्यान देना चाहिये कि डेवेलपर झोंकसे न छोड़ें; नहीं तो वायुके मिल जानेसे डेवेलपरमें बुलबुले बन जायँगे। जहां कहीं वह बुल्ले प्लेट पर बैठ जायँगे वहां प्लेटपर डेवेलपर नहीं पड़ेगा और वहां प्लेट पर गोलाकार सफेद चिह्न पड़ जायगा।

### ११—तश्तरी

कई एक नये उत्साहियोंके नेगेटिवोंको मैंने देखा है कि सब जगह डेवेलपर एक ही साथ न पड़नेसे उन नेगेटिवोंका बिल्कुल सत्यानाश हो गया था। अभी हाल में ही मेरे एक मित्रने मुझे एक ऐसा नेगेटिव छापनेके लिए दिया। यह फोटो उनकी पत्नीका था। अभाग्य वश उनकी पत्नी अब जीवित नहीं। दूसरा फोटो लेना असम्भव था। इस फोटो को छोड़ और कोई फोटो उनका लिया नहीं गया था। लाचारी थी। कोशिश करनेसे नेगेटिवके बहुत कुछ अवगुण छिप गये, पर बहुत कोशिश करनेपर भी डेवेलपरके एक साथ न पड़नेसे उत्पन्न हुआ दोष बिल्कुल न मिटा। पूछनेपर मालूम हुआ कि यह फोटो उन्होंने तब खींचा था जब उन्होंने फोटोग्राफी आरम्भ की थी। ठीक नापकी तश्तरी उस समय तक उन्होंने मोल न ली थी। डेवेलपर तो अपनी समझमें उन्होंने अधिक ही लिया था, तिसपर भी वह इतना न था कि उस गोलाकार रकाबीमें पड़े हुए प्लेटको भली भांति ढक सके। परिणाम वही हुआ जो मेरे देखनेमें आया। ऐसी किफायतका उत्तर हम यों देते हैं। जितने दाममें दो या तीन प्लेट आते हैं उतनेमें एक अच्छी तश्तरी, विशेष कर फोटोग्राफीके लिए बनी हुई, मिलती है। दो तीन नहीं कितने और प्लेट ठीक तश्तरी न रहनेसे नष्ट हुए होंगे, डेवेलपर इत्यादि खर्च हुआ ऊपरसे। कार्य सफलता न होनेसे मनको जो दुख हुआ उसकी बात ही क्या? ऐसी कंजूसीसे लाभ क्या? यदि कभी बहुत आवश्यकता पड़ गई और ठीक तश्तरी न मिली तो डेवेलपरका लोभ न कीजिये। दो नहीं चार औंस डेवेलपरका प्रयोग कीजिये। यदि डेवेलपरकी भी कमी है तो डेवेलपरमें और पानी मिला लीजिये। यदि डेवेलपरमें पानी मिलाना भी न चाहें तो डेवेलप करनेके पहिले प्लेटको ठंडे पानीमें थोड़ी देर तक भिगा लीजिये। पर प्रतिदिनके कामके लिए ऊपर लिखी हुई रीतियोंमें से एक भी अच्छी नहीं है, ठीक नापकी दो तश्तरियां अवश्य चाहियें।

### १२—लाल रोशनी

यद्यपि सफेद रोशनीकी अपेक्षा लाल रोशनीका प्रभाव प्लेटपर बहुत ही कम पड़ता है, तिसपर भी समय पाकर ऐसी रोशनी भी प्लेटको खराब कर सकती है इसलिए जहां तक हो सके प्लेटको लाल रोशनीसे भी बचाना चाहिये और प्लेटको लैम्पसे दूर या किसी वस्तुके छायामें डार्क स्लाइड से निकालकर शीघ्र तश्तरीमें रखना चाहिये और

जैसा कि ऊपर लिख आये हैं डेवेलपर छोड़नेके बाद तश्तरीको दफ़्तीसे ढक देना चाहिये।

१३—डेवेलपरका काम

प्लेट ठीक एक्सपोज़र पा जानेपर भी देखनेमें ज्योंका त्यों रहता है। कहीं काला नहीं हो जाती है। तिस पर भी उसमें नेगेटिव बन जानेकी पूरी शक्ति आ जाती है। डेवेलपर छोड़नेके बाद यदि हम तश्तरीको दफ़्तीसे न ढकें और लाल रोशनीसे उसे देखते रहें तो देखेंगे कि कुछ समय तक (जो समय दो तीन सेकंडसे लेकर दो तीन मिनट तक हो सकता है) प्लेट ज्योंका त्यों साफ़ रहता है, फिर कहीं कहीं काला होना आरम्भ होता है। जहां कि फोटोमें सफेद होना चाहिये, ठीक वहीं पर प्लेट सबसे पहिले काला होता है, फिर कई एक दूसरे स्थानोंमें काला होने लगता है। थोड़ी ही देरमें प्लेट लगभग सभी जगह कम या अधिक काला हो जाता है। यदि इस समय प्लेटको तश्तरीसे निकाल कर देखें तो देखेंगे कि सभी स्थानमें "ब्योरा" * (detail) दिखलाई पड़ता है, पर कालेकी जगह सफेद और सफेदकी जगह काला है और चित्र बहुत फीका लगता है; क्योंकि काले और सफेद भागोंमें अधिक अन्तर नहीं है, तिसपर भी चित्र बहुत मैला या गाढ़ा सा मालूम देता है, क्योंकि सफेद स्थानोंके आर पार कुछ साफ नहीं दिखलाई देता। ऐसा जान पड़ता है कि प्लेट मिट्टीसे लिपा है। यदि इसी समय प्लेटको निकाल कर पानीसे धो, हाइपोमें छोड़, स्थायी करलें तो यह मैलापन जाता रहेगा। सफ़ेद स्थान बिल्कुल साफ हो जायँगे, पर नेगेटिव किसी काम का न होगा, क्योंकि काले स्थान उतने काले नहीं हैं जितना कि चाहिये। इससे प्लेटको धोने या स्थायी करनेके बदले फिर उसी डेवेलपरवाली तश्तरीमें छोड़कर और देर तक डेवेलप होने देना चाहिये। देखनेमें प्लेट काला होता चला जाता है। केवल किनारे जो कि डार्क-स्लाइडमें दबे थे और जिनपर कुछ भी रोशनी नहीं लगी थी वही साफ बच गये हैं। प्रश्न उठता है कि प्लेटको डेवेलपरसे कब निकालना चाहिये, क्योंकि बहुत देर तक डेवेलपरमें प्लेटके पड़े रहनेसे प्लेट नष्ट हो जायगा।

* इसका अर्थ खंड १६ से स्पष्ट हो जायगा।

१४—डेवेलप हो जानेका समय

ऊपरके प्रश्नका उत्तर देना पहिले सरल नहीं था। बहुत कुछ अनुभव होने पर, सैकड़ों प्लेट खराब करनेपर, भूलते भटकते लोगोंको इतना अनुभव हो जाता था कि वह अनुमान कर सकें कि डेवेलपरमें से प्लेटको कब निकालना चाहिये। तिसपर भी एक्सपोज़र बहुत अशुद्ध रहने से इसमें भूल हो ही जाती थी। पर अब यह सब बदल गया है। आज कल की नई रीति से नये सीखनेवालों के भी वैसे ही अच्छे नेगेटिव आते हैं जैसे कि बड़े अनुभवी फोटोग्राफरों के। जब से हर्टर और ड्रिफिल्ड महाशय गण (Messrs Hurter and Driffield) ने इन सब बातोंकी जांच * की तबसे यह निश्चय हो गया है कि प्लेटके ऊपर डेवेलपर छोड़नेसे लेकर प्लेटको ठीक ठीक डेवेलप हो जाने तकका समय (हम इस समयको डेवेलप हो जानेका समय कहा करेंगे) ६ बातों पर निर्भर हैं, अर्थात्

१—कौनसा डेवेलपर है?

२—डेवेलपरमें कितना पानी मिला है?

३—डेवेलपरका तापक्रम (temperature) क्या है?

४—प्लेट कौन सी है?

५—किस कागज़पर फोटो छापना है? और

६—जिस विषयका फोटो खींचा गया है उस विषयमें सबसे अधिक रोशनी फेंकनेवाले भाग (उच्च-प्रकाश या high-light) और सबसे

* Photographic Researches of Hurter and Driffield. by W. B. Ferguson, को देखिये।

कम रोशनी फेंकनेवाले भागों ( परछाहीं या Shadows ) में प्रकाशान्तर (Contrast) कितना है ?

इन सब बातोंकी एक एक करके जांच करनी चाहिये। यदि २ ग्रेन पायरो, २ ग्रेन मेटल, २ ग्रेन एमिडल या और किसी दूसरे डेवेलपरका दो ग्रेन लें और इसीके अनुसार इनके साथमें प्रयोग किये जानेवाले दूसरे रासायनिक पदार्थोंको एक एक औंस पानीमें पृथक् पृथक् घोलें और इन डेवेलपरोंसे प्लेट डेवेलप करें तो और सब बातोंके एक रहते हुए भी किसी विशेष प्लेटके डेवेलप हो जानेका समय भिन्न भिन्न होगा। और सब बातोंके एक होते हुए, डेवेलपरमें पानी मिला कर जितना ही उसे पतला करते जायँगे उतना ही डेवेलप हो जानेका समय बढ़ता जायगा। पर पानी दूना कर देनेसे ऐसा नहीं होता कि डेवेलप हो जानेका समय भी ठीक दूना हो जाय। ज्यों ज्यों डेवेलपरका तापक्रम बढ़ता जायगा त्यों त्यों डेवेलप होजानेका समय घटता जायगा। बहुत ठंडे डेवेलपरसे देरमें प्लेट डेवेलप होता है, गरम डेवेलपरसे शीघ्र डेवलप होता है। जैसा कि ऊपर लिख आये हैं डेवेलपरको जहां तक हो सके ठंडा ही काममें लाना चाहिये, क्योंकि गरम डेवेलपरसे कई एक दोष उत्पन्न हो जाते हैं; परन्तु ६०° फा. (60° F.) से ठंडा डेवेलपर काममें लानेसे कुछ लाभ नहीं, बेफायदा डेवेलप हो जानेका समय बहुत बढ़ जाता है। सब प्लेटोंके डेवेलप हो जानेका समय एक ही नहीं होता है। प्रायः तेज़ (fast) प्लेटोंके लिए अधिक और सुस्त (slow) प्लेटोंके लिए कम डेवेलपहो जानेका समय होता है। पर यदि भिन्न भिन्न कारखानोंके दो प्लेट जो तेज़ीमें करीब एकसे हैं चुने जायँ तो उन दोनोंके डेवेलप हो जानेके समयमें बहुत अन्तर हो सकता है। विगरस गैसलाइट (vigourous gaslight) कागज़ पर छापनेके लिये बनाये गये नेगेटिवके डेवेलप होजानेका समय और सब फोटोके कागज़ों पर छापनेके लिए बनाये गये नेगेटिवोंके डेवेलपहो जानेके समयसे बहुत कम होगा। चमकते हुए पी. ओ. पी. ( Glossy P. O. P. ) के लिए बनाये गये नेगेटिवके डेवेलप हो जानेका समय इससे कुछ अधिक होता है। ब्रोमाइड ( Bromide ) और साधारण गैसलाइट ( Normal gaslight ) और खुरखुरे पी. ओ. पी. (Matt P. O P.) के लिए बनाये गये नेगेटिवके डेवेलप करनेमें भी करीब उतना ही समय लगता है। नरम गैसलाइट ( Soft gaslight) के लिए समय कुछ और भी अधिक लगता है। इससे अधिक प्लैटिनम कागज़ (Platinum Paper) और सबसे अधिक कार्बन (Carbon) कागज़के लिए समय लगता है। यहां आखीरके लिखे हुए दो प्रकारके कागज़ नहीं मिलते। इस लिए ऐसे नेगेटिव बनानेके लिए चेष्टा करनी चाहिये कि जिससे पी. ओ. पी., ब्रोमाइड, या साधारण (normal) गैसलाइट पर उत्तम फोटो छाप सकें। यदि किसी कारणसे कोई नेगेटिव कुछ डेवेलप कम हो गया है तो उसे विगरस गैसलाइट पर छापें, या यदि कुछ डेवेलप अधिक हो गया है तो उसे नरम गैसलाइट पर छापें।

### १५—अच्छे नेगेटिव की पहचान

यहां पर एक दूसरा प्रश्न उठता है। नेगेटिव तैय्यार हो जानेके बाद क्या पहचान है जिससे पता चले कि यह अधिक या कम डेवेलप हुआ है? अँग्रेज़ीमें एक कहावत है कि भोजनकी जांच खानेसे होती है। ठीक इसी तरह नेगेटिवकी जांच छापनेसे होती है। नेगेटिव फोटो छापनेके लिए ही बनाया जाता है। देखनेमें नेगेटिव कैसा ही बुरा क्यों न हो, यदि फोटो अच्छा देता है तो नेगेटिव ठीक है। देखनेमें नेगेटिव कितना ही सुन्दर क्यों न हो पर यदि उससे अच्छे फोटो नहीं आते तो हम उसे बुरा नहीं कहेंगे। इसलिए स्मरण रखना चाहिये कि छपे हुए फोटोकी उत्तमताके ऊपर किसी नेगेटिवका शुद्ध या अशुद्ध होना निर्भर है। इसी बातके भूल जानेसे लोग कई एक ग़लतियाँ करते हैं।

### १६—अधिक और कम समय तक डेवेलप किये हुए नेगेटिव

यदि नेगेटिव ठीक डेवेलप हुआ है तो छापनेसे

ऐसा फोटो तैयार कर सकेंगे जिसमें कहीं कहीं इतना काला है जितना काला कि वह फोटोका कागज़ हो सकता है और कहीं कहीं इतना सफेद है जितना सफेद कि वह कागज रह सकता है और "ब्योरा" ( detail ) सब जगह दिखलाई पड़ता है। ऐसी दशामें हम कहेंगे कि नेगेटिवमें प्रकाशान्तर ( Contrast ) ठीक है। पर यदि नेगेटिव अधिक डेवेलप हो गया है तो देखेंगे कि फोटोका कोई भाग तो एक दम सफेद कागज़ है, वहां कुछ भी ब्योरा अभी छपने नहीं पाया है, और कोई भाग एक दम काला हो गया है। इस भागमें जो ब्योरा नेगेटिवमें था वह फोटोमें मिट गया है। यदि फोटोके सफेद भागमें सब ब्योरा छापनेके लालचसे नेगेटिवको और देर तक छापते हैं तो देखते हैं कि फोटोका काला भाग और भी बढ़ गया और फोटो पहिलेसे भी बुरा लगता है। यदि इस आशासे कि जहाँपर फोटोमें बिल्कुल काला हो गया है वहांका ब्योरा न मिटने पाये नेगेटिवको थोड़े ही देर तक छापते तो वहां काले कागज़के बदले बढ़िया ब्योरा अवश्य आता, पर फोटोका सफेद भाग इतना बढ़ जाता कि फोटो देखनेमें बहुत बुरा लगता। हम कहेंगे कि ऐसे नेगेटिवमें प्रकाशान्तर बहुत है। यदि प्लेट कम ही डेवेलप हुआ है तो उसमें दूसरे ही प्रकारका दोष रहता है। ऐसे नेगेटिवसे छपे हुए फोटोमें एक भी भाग बिल्कुल सफेद नहीं रहता और एक भी भाग खूब काला नहीं होता। यदि किसी एक भागको सफेद रखनेके लिए थोड़ी ही देरतक छापें तो काला बहुत फीका रह जाता है; पर यदि इस भागको काला करनेके लिए देर तक छापें तो जहाँ सफेद रहना चाहिये वहां भी मैला या कुछ कुछ काला हो जाता है। हम कहेंगे कि ऐसे नेगेटिवमें प्रकाशान्तर कम है। स्पष्ट है कि प्रकाशान्तर डेवेलप करनेके समयपर ही निर्भर है। जितना चाहें उतना प्रकाशान्तर डेवेलप करनेके समयको घटाने बढ़ानेसे उत्पन्न कर सकते हैं।

### १७—कम या अधिक एक्सपोज़र

यदि एक्सपोज़र कुछ कम या अधिक हो और प्लेट ऊपरकी रीतिसे डेवेलप किया गया हो तो भी ऊपरकी लिखी बातोंको सत्य समझना चाहिये। पर यदि प्लेटको ठीक एक्सपोज़रसे बहुत कम एक्सपोज़र मिला है तो फोटोमें जहां काला छपता है, अर्थात् परछाइयों ( Shadows ) में, वहां नेगेटिव में भी कुछ ब्योरा ( Detail ) नहीं रहता और चाहे फोटो थोड़ी देर तक छापें चाहे अधिक देरतक इन जगहोंमें ब्योरा किसी प्रकार आ नहीं सकता। यदि ठीक एक्सपोज़रसे प्लेटको बहुत ही अधिक ( बीस तीस गुना या इससे भी अधिक ) एक्सपोज़र मिला है तो देखेंगे कि जहां फोटोमें सफेद छपेगा, अर्थात् उच्च प्रकाशों ( High-light) में नेगेटिवमें भी ब्योरा मिट गया है। चाहे कितनी ही देर तक फोटो छापा जाय वहां किसी प्रकारसे ब्योरा नहीं ला सकेंगे। यदि प्लेट ठीक समय तक डेवेलप किया गया है तो ठीकसे अधिक एक्सपोज़र पाये हुए प्लेटसे बने नेगेटिव गाढ़े या घने (Dense) होंगे, और जितना ही एक्सपोज़र अधिक होगा उतनी ही घनता ( Density ) बढती जायगी। ठीकसे कम एक्सपोज़र पाये हुए नेगेटिव "पतले" ( Thin ) होंगे और जितना ही एक्सपोज़र कम होगा उतना ही पतलापन ( Thinness ) अधिक होगा। पर कितने लोगोंका विश्वास यही है कि अधिक एक्सपोज़रसे पतलापन और प्रकाशान्तर की कमी, और कम एक्सपोज़रसे अधिक प्रकाशान्तर नेगेटिवमें आता है। यही बात प्रायः सभी पुराने समयकी पुस्तकोंमें मिलती है। क्यों लोग ऐसा समझते थे इसका भेद पीछे खुलेगा।

### १८—विषयके* प्रकाशान्तरका प्रभाव

अब छठवीं बातपर विचार करना चाहिये। हम दो परम विपरीत अवस्था लेते हैं। एक तो

* जिसका फोटो खींचा जाय उसको हम विषय Subject कहेंगे।

ऐसा दृश्य है जिसमें कि धूपमें चकाचौंध करनेवाली ज्योतिसे चमकते हुए बर्फसे ढके पहाड़ हैं और कहीं कहीं गहरे सायेमें डूबे कुछ हरे हरे पौधे हैं। इस दृश्यमें प्रकाशान्तर बहुत ही अधिक है और इसके नेगेटिव के डेवेलप होजानेका समय साधारणसे कम होगा। दूसरी दशा लीजिये। एक ऐसे फोटोकी नक़ल करना है जो बहुत मैला हो गया है और जिसमें कि काले और सफेद भागोंमें अन्तर बहुत कम है। यह स्पष्ट है कि इसके नेगेटिवको बहुत देर तक डेवेलप करना पड़ेगा।

१६—डेवेलप करनेकी सबके सरल विधि

ऊपरके विचारोंका परिणाम यह है कि आप ऐज़ोल(Azol), राइटल (Rytol) या और कोई ऐसा डेवेलपर* खरीदिये जिसके साथ आपको सब प्रकारके प्लेटोंके डेवेलप हो जानेका समय दिया हो। लिखी हुई विधिके अनुसार उसमें पानी मिलाइये। डेवेलपर तैय्यार करनेमें सब पदार्थोंको बड़ी सावधानीसे नापना या तोलना चाहिये, क्योंकि डेवेलपरकी बनावटमें फर्क पड़ जानेसे डेवेलप हो जानेके समयमें गड़बड़ हो जायगी। फिर ताप-मापक यंत्र† ( Thermometer=थर्मामीटर ) से इस डेवेलपरका ताप क्रम ( Temperature ) नाप लीजिये ( चित्र ५ )। प्रयोग करनेकी विधिसे आप पता लगा लीजिये कि अमुक प्लेटसे और अमुक तापक्रमपर पी. ओ. पी. या ब्रोमाइड पर छापनेके लिए नेगेटिव बनानेके वास्ते डेवेलप हो जानेका समय क्या है। साधारण विषयों ( Subjects ) के लिये, जैसे बाहरके दृश्य जिन पर सूर्य्यकी रोशनी पड़ रही है और कहीं कहीं साया भी है, या और दूसरे विषय जिनमें भी इसी मेलका प्रकाशान्तर है, यह समय ठीक है। बहुत जांचके बाद कारखानेवालोंने यह समय बतलाया है। किसी मनुष्यका यदि फोटो हो तो भी साधारणतः यही समय ठीक पाया जाता है, परन्तु इस विषयपर हम फिर कुछ आगे लिखेंगे। इसके बाद केवल डेवेलपर छोड़, घड़ी देख और तश्तरी ढककर, इस समय तक डेवेलप करनेके सिवाय और कुछ करना नहीं रहता। प्लेटको यदि कम या अधिक एक्सपोज़र दिया हो तो भी यही समय ठीक होगा। आप देखेंगे कि डेवेलप करनेकी यह रीति बहुत सरल है और नये सीखनेवाले भी आरम्भ से अच्छे नेगेटिव बना सकते हैं, क्योंकि वह दूसरेके बड़े परिश्रमसे प्राप्त किये अनुभवसे लाभ उठाते हैं। यदि इस डेवेलप हो जानेके समयसे जितना प्रकाशान्तर हम चाहते हैं उतना नहीं आता या उससे अधिक आता है तो इस समयको थोड़ा ही घटाने या बढानेसे सब काम ठीक हो जायगा। ऊपरकी रीतिमें केवल छठवीं बातको छोड़ और सब बातोंपर ध्यान दिया गया है। इस छठवीं बातपर ध्यान देनेकी आवश्यकता तो ऐसे ही कभी पड़ती है, और जब पड़ती भी है तो एक दो फेरफार करनेसे ठीक समयका ज्ञान शीघ्र हो जाता है।

*आगे चलकर एक ऐसे डेवेलपरके बनानेकी विधि हम भी लिखेंगे। बरोज़ वेलकम कम्पनी (Messrs. Burroughs Welcome & Co. ) ने अपने यहांके सभी डेवेलपरोंके लिए समय प्रकाशित किया है। जान्सन कम्पनी ( Messrs. Johnson & Sons ) ने एक नया डेवलपर वेडल (Vedol) निकाला है जिसके साथ भी समय छपा मिलता है। इल्फोर्ड मैन्युएल आफ़ फोटोग्राफी ( Ilford Manual of Photography ) नामी पुस्तकमें इल्फोर्ड कम्पनीके बने हुए सब प्रकारके प्लेटोंके लिए उनके बतलाये हुए पायरो-सोडा डेवेलपर का समय लिखा हुआ है। वाटकिन्स ( Watkins ) का निकाला हुआ एक ऐसा ताप-मापक यंत्र ( थर्मामिटर ) बिकता है जिससे ताप-क्रम ज्ञात होनेके बदले समयका ही ज्ञान होता है; इससे साथ भी कई एक प्रकारके डेवेलपरके बनानेकी विधि रहती है।

† बुखारवाले ताप-मापक यंत्र ( Clinical thermometer ) से काम न चलेगा।

२०—डेवेलप करने की गुणन रीति

अब डेवेलप करनेकी एक दूसरी रीति लिखते हैं। यह वाटकिन्स ( Watkins ) की निकाली हुई "गुणन रीति" ( Factorial Development )* है। ऊपर लिख आये हैं कि डेवेलपर छोड़ते ही प्लेट काला नहीं होने लगता, कुछ समय बाद काला होने लगता है। डेवेलपर छोड़नेसे लेकर प्लेटके काले होनेके आरम्भ तकके समयको "चित्र दिखलाई पड़नेका समय" कहेंगे। प्रयोग द्वारा नीचेकी बातोंका निश्चय हो गया है। चित्र दिखलाई पड़नेका समय इन बातोंपर निर्भर है:—

( १ ) कौनसा डेवेलपर है ?

( २ ) डेवेलपरमें कितना पानी मिला है ?

( ३ ) डेवेलपरका ताप-क्रम क्या है ?

( ४ ) प्लेट कौनसा है ?

( ५ ) एक्सपोज़र कितना दिया गया है।

पहिली चार बातें वही हैं जिनपर नेगेटिवके डेवेलप होजानेका समय निर्भर है। अन्तिम बात नई है। यदि एक्सपोज़र अधिक हुआ तो चित्रके दिखलाई पड़नेका समय कम हो जायगा और यदि एक्सपोज़र कम है तो यह समय बढ़ जायगा यदि एक्सपोज़र सदा ठीक रहे तो चाहे नम्बर २, ३ और ४ की बातें बहुत कुछ बदलती भी रहें लेकिन चित्र दिखलाई पड़नेके समयको सदा एक ही अंकसे गुणा करनेसे नेगेटिवके डेवेलप होजाने का समय मिल जायगा। इस अंकको हम उस डेवेलपरका गुणक ( Factor ) कहेंगे। उदाहरण के लिये एमिडल ( Amidol ) डेवेलपर लीजिये इसके लिए यह गुणक २० है। यदि चित्र दिखलाई पड़नेका समय घड़ीकी† सेकंडवाली सुई देखनेसे १५ सेकंड आवे तो नेगेटिवके डेवेलप हो जानेका कुल समय ( डेवेलपर छोड़नेसे ले अन्त तक ) २० × १५ सेकंड याने ५ मिनट हुआ। इसी प्रकार यदि इसी डेवेलपरसे किसी दूसरे प्लेट पर किसी दूसरे ताप-क्रम पर और डेवेलपरमें पानी कुछ अधिक या कम मिलानेसे चित्र दिखलाई पड़नेका समय केवल १० ही सेकंड आया तो डेवेलप होजानेका समय १० × २० सेकंड याने ३ मिनट २० सेकंड हुआ। सुभीतेके लिए २० से गुणा करनेके बदले जितने सेकंड में चित्र दिखलाई पड़े उतने सेकंडको ३ से भाग दे सकते हैं। जो उत्तर आवे उतने ही मिनट तक डेवेलप करना चाहिये; जैसे, चित्र दिखलाई पड़नेका समय १५ सेकंड है तो १५ ÷ ३ याने ५ मिनट डेवेलप हो जानेका समय हुआ; यदि चित्र दिखलाई पड़नेका समय केवल १० ही सेकंड है तो डेवेलप हो जानेका समय केवल १० ÷ ३ याने ३⅓ मिनट हुआ, इत्यादि। ऊपरकी लिखो बातसे यह नहीं समझना चाहिये कि २० ही एमिडलके लिए ठीक गुणक है। यह केवल एक इशारेके लिए दिया गया है, पर ठीक गुणक इससे बहुत कम या अधिक नहीं है। यदि इस गुणकके अनुसार डेवेलप किये हुए नेगेटिवोंमें कम प्रकाशान्तर ( Contrast ) आता है तो २२, २५ इत्यादि गुणकसे काम करेंगे, या यदि अधिक प्रकाशान्तर आता है तो १८, १६ इत्यादि का प्रयोग करेंगे; जिससे काम ठीक उतरे उसी गुणकको ठीक समझना चाहिये। पायरोसोडा जैसे डेवेलपरके लिए, जिससे प्रत्येक औंसमें २ ग्रेन पायरो और आधा ग्रेन पोटासियम ब्रोमाइड ( Potassium Bromide ) पड़ा हो गुणक करीब ५ के है। या सुभीतेके लिए जितने सेकंडमें चित्र दिखाई पड़े उसको १२ से भाग दे दें, जो उत्तर आवे उतने ही मिनट तक डेवेलप कर सकते हैं। गुणकके विषयमें पायरो-सोडा डेवेलपरमें एक विशेषता है जो और डेवेलपरोंमें नहीं है। इस डेवेलपरमें कम या अधिक पानी मिलानेसे भी

* इसका पूरा वृत्तान्त वाटकिंस रचित पुस्तकमें ( Photography ) "फोटोग्राफी" मिलेगा।

† विशेष कर अंधेरी कोठरीके लिए बनी ऐसी घड़ियां मिलती हैं जिनकी सेकंडवाली सूई सबसे बड़ी और मोटी होती हैं, जिसमें यह सुगमतासे देखी जा सकती है।

गुणक बदलता है; और डेवेलपरोंमें ऐसा नहीं होता। मेटल-हाइड्रोकिनोनके लिए गुणक १६, मेटलके लिए ३० और पज़ोलके लिए भी ३० है। मेरी समझमें यदि किसी विशेष प्लेट और विशेष डेवेलपरके लिए ठीक गुणकका ज्ञान होगया है तो यह मान लेना कि उसी डेवेलपर और दूसरे प्लेटके लिए भी वही गुणक है भय रहित नहीं है। गुणक कदाचित दूसरा हो। यदि चित्रके एक भाग में आकाश भी है तो चित्र दिखलाई पड़नेका समय जाननेके लिए आकाशको छोड़ और किसी दूसरे भागके काले होने तकका समय नापना चाहिये। [ असमाप्त ]

## कितना खाना खाना चाहिये ?

मात्राशी स्यात्—चरक

हम आहारकी आवश्यकतापर विचार कर चुके हैं और यह निर्णय कर चुके हैं कि बिना उपयुक्त आहारके मनुष्यका जीना असम्भव है। आहारके सम्बन्धमें उसकी उचित और पर्याप्त मात्रा पर भी ध्यान रखना परमावश्यक है। आहारके कम मिलनेसे जिस प्रकार शरीर शीघ्र ही दुर्बल क्षीण और कृष हो जाता है, उसी प्रकार आवश्यकता से अधिक भोजन करनेसे, मन्दाग्नि और बद्धकोष्ठ, पेचिश आदि अनेक रोग हो जाते हैं। अतएव आहार-मात्रापर विचार करना परमावश्यक है।

प्रत्येक मनुष्यके लिए उसके शारीरिक संगठन, दैनिकश्रम और कार्य विभिन्नता के अनुसार आहारकी भी भिन्न भिन्न परिमाण में आवश्यकता होती है। आहार-मात्राका निर्णय करनेके लिए पाश्चात्य विद्वानोंने परीक्षाओं द्वारा एक नियम खोज निकाला है और वह यह है कि यदि कोई मनुष्य काम काज से बिल्कुल हाथ खींचकर शय्यापर निश्चेष्ट पड़े पड़े समय व्यतीत करे तो उसको अपने शरीरके प्रत्येक सेर भार की रक्षाके लिए प्रायः ६ माशे खाद्य ( जल रहित ) की आवश्यकता होती है या यों समझिये कि शरीरके भारके १६०वें भागके बराबर जल-रहित आहार चाहिये। परन्तु काम काज करनेवालोंके लिए आहारका यह परिमाण यथो-चित नहीं कहा जा सकता। साधारणतः मामूली परिश्रम करनेवाले मनुष्योंका दैनिक आहार उनके शारीरिक भारके ११२वें भाग के बराबर होना चाहिये। इस हिसाब से एक साधारण काम काज करने वाले मनुष्य का भार यदि ६३ सेर हो तो उसके लिए प्रति दिन ११/११२ सेर या ६ छटांक जल-रहित आहारकी आवश्यकता होगी। अधिक परिश्रमी मनुष्योंके लिए इससे कहीं ज़्यादा आहार की आवश्यकता होगी; परन्तु हमारे आहारके प्रायः सभी पदार्थोंमें न्यूनाधिक जलांश रहता ही है। दूध, हरे शाक और फलोंमें तो जल अत्यधिक परिमाणमें विद्यमान रहता है। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि हमारे आहारमें प्रायः आधा जल और आधे में अन्यान्य पदार्थ होते हैं। अतएव शारीरिक भारके हिसाबसे जितनी निर्जल खाद्य सामग्री की आवश्यकता है उससे दुगने खानेसे काम चल सकता है। इस प्रकार एक साधारण परिश्रम करनेवाले मनुष्यके लिए, जिसका भार ६३ सेर हो, २४ घंटेमें १८ छटांक खाद्य सामग्रीकी आवश्यकता है।

खाद्य सामग्रीके परिमाण पर विचार करनेके साथ ही यह भी अत्यन्त विचारणीय है कि हमारे दैनिक भोजनमें प्रोटीड, स्नेह, कर्बोज आदि उपादान किस किस परिमाणमें होने चाहियें। क्योंकि आहारमें पूर्वोक्त उपादानोंका यथोचित परिमाण न होने से भी स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। अतएव नीचे एक तालिका दी जाती है जिस से प्रकट होगा कि एक स्वस्थ और सबल मनुष्यके लिए श्रम-भेदके अनुसार प्रतिदिन भिन्न भिन्न उपादानों-की कितनी आवश्यकता है।*

* डा० चुन्नीलालबसु कृत खाद्य नामक पुस्तकसे।

| २४ घंटेमें | बिना परिश्रम | साधारण परिश्रम | विशेष परिश्रम |
|---|---|---|---|
| प्रोटीड | ५ तोले | १० तो ० | १६ तो० |
| स्नेह | १। तो० | ५ तो० | १० तो० |
| कर्बोज | ३० तो० | ४० तो० | ४२॥ तो० |
| लवण | १। तो० | २॥ तो० | ३। तो० |
| योग | ३७॥ तो० | ५७॥ तो० | ७२ तो० |

इस तालिका के आधारपर एक नियम निर्धारित किया जा सकता है कि साधारणतः हमारे दैनिक आहारमें समस्त निर्जल खाद्य सामग्रीका २३वां भाग लवणका तथा लवण से दुगुना स्नेहका, चौगुना प्रोटीड का और १६ गुना कर्बोजका होना चाहिये। अतएव जिस मनुष्यके लिए ९ छटांक निर्जल खाद्य सामग्रीकी आवश्यकता है उसके भोजनमें—

| | |
|---|---|
| लवण | २ तोले |
| प्रोटीड | ८ ,, |
| स्नेह | ४ ,, और |
| कर्बोज | ३२ ,, होना चाहिये। * |

इस हिसाबसे प्रत्येक मनुष्य अपने दैनिक खाद्यकी जांच करके यह पता चला सकता है कि उसके आहारमें सब उपादान यथोचित परिमाणमें हैं या नहीं। परन्तु इस कार्यके लिए यह ज्ञात होना आवश्यक है कि किस किस खाद्यमें कौन कौन उपादान किस किस परिमाण में रहते हैं। अतएव पुस्तक के अन्तमें परिशिष्ट रूपसे मुख्य खाद्य पदार्थोंके रासायनिक संघटनकी एक तालिका दी गई है। पीछेके एक प्रकरणमें यह बतलाया जा चुका है कि प्रोटीनोंका काम किसी अन्य उपादानसे नहीं चल सकता। अतएव अन्य उपादानोंकी अपेक्षा प्रोटीनके परिमाणपर विशेष रूपसे ध्यान देनेकी आवश्यकता है। विशेष मानसिक परिश्रम करनेवाले मनुष्योंके भोजनमें मांसोत्पादक पदार्थोंकी कमी होना अत्यन्त हानि कारक है; क्योंकि शारीरिक परिश्रमकी अपेक्षा मानसिक परिश्रमसे शरीरके प्रोटीनका क्षय अधिक परिमाणमें होता है। यहांपर यह बतला देना भी उचित प्रतीत होता है कि अधिक परिश्रमशील मनुष्योंको अन्योंकी अपेक्षा न केवल अधिक आहार की ही आवश्यकता है प्रत्युत उनके भोजन में ऐसे पदार्थोंका आधिक्य होना भी आवश्यक है जिनसे अधिक शक्ति उत्पन्न होती है।

शरीरमें जाकर कौन पदार्थ कितनी शक्ति उत्पन्न करता है, यह नापनेके लिए भी कलारीमीटर (Calorimeter) यन्त्र का प्रयोग होता है और भिन्न भिन्न पदार्थोंकी बलोत्पादक शक्तिपर विचार करके विद्वानोंने परिश्रम भेदके अनुसार भिन्न भिन्न आहार तालिकाएं भी निर्धारित की हैं। डाक्टर चुन्नीलाल वसुने अपनी खाद्य नामक पुस्तकमें सहज परिश्रमी पूर्ण वयस्क बंगाली पुरुषके लिए दैनिक आहारकी निम्नाङ्कित तालिका निर्द्धारित की है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| चावल | ३ छटांक | आलू | २ छटांक |
| आटा | ५ ,, | अन्यान्य शाक | २ ,, |
| दाल | १½ ,, | तैल या घृत | ½ ,, |
| मांस | २½ ,, | दूध | ८ ,, |
| | | लवण | ⅛ ,, |
| | | | २४⅛ ,, |

उपादान—जल ६५ तो०, प्रोटीड ६॥ तो०, स्नेह ५॥ तो०, कर्बोज ३८ तो०, लवण २ तो० के लगभग।

* डा० त्रिलोकीनाथ वर्म्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस. "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तकमें एक साधारण परिश्रम करनेवाले जवान मनुष्यके दैनिक भोजनमें आहारके उपादानोंकी आवश्यकता निम्न लिखित परिमाणमें प्रकट करते हैं।

| | |
|---|---|
| प्रोटीड | ७०–७५ माशे ( ६–७ तोले ) |
| वसा ( स्नेह ) | ८५ माशे ( ६ तोले ) |
| कर्बोज | २२०–२५० माशे ( १८–२१ तोले ) |

पहिली तालिकामें और इसमें यही अन्तर है कि उसमें इससे स्नेहका भाग कम है, परन्तु कर्बोज अधिक है; अतएव मानसिक परिश्रम करनेवालोंके लिए यह तालिका उचित प्रतीत होती है और शारीरिक परिश्रम करनेवालोंके लिए ऊपर वाली।

डाकृर त्रिलोकीनाथ वर्माने मानसिक परिश्रम करनेवाले स्वस्थ काय पूर्णायु मनुष्योंके लिए निम्न लिखित आहार तालिका तैयार की है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| गेहूँका आटा | ३ छटांक | घी | १½ छटाँक |
| चने | ,, २ ,, | चीनी | १ ,, |
| दाल | १ ,, | शाक | यथावश्यक |
| दूध | १२ ,, | | २०½ छ० |

उपादान—प्रोटीन ६·७५ तोला, स्नेह १० तो०, शर्करा २६·६

डाकृर वेडफोर्ड एक परिश्रमशील अंग्रेज पुरुषके लिए दैनिक आहारकी यह व्यवस्था देते हैं कि निम्नलिखित खाद्य सामग्रीको दिनमें ३ बार करके खाना चाहिये।

| | | | |
|---|---|---|---|
| पाव रोटी | ८ छटांक | दूध | ४ छटांक |
| मांस | ४ ,, | अण्डा | २ ,, |
| माखन, चर्बी या घृत | २ ,, | पनीर | १ ,, |
| आलू | ८ ,, | लवण, मसाला, चाय | यथा प्रयोजन |
| | | | २९ छटांक |

उपादान—प्रोटीड १५॥ तो०, स्नेह १४॥ तो०, शर्करा ३० तो० के लगभग।

यही सज्जन उत्तर पश्चिम देशवासियोंके लिए २४ घंटेमें यह आहार उचित समझते हैं।

| | | | |
|---|---|---|---|
| आटा | ६½ छटांक | मांस (दाल के परिवर्तन में) | ४ छटांक |
| चावल | ,, ,, | | |
| घृत या तैल | ½ ,, | तरकारी | ५ ,, |
| दाल | ३ ,, | लवण | ¼ ,, |
| | | मसाला | यथा प्रयोजन |
| | | | २०¾ छ० |

इसी प्रकार अन्यान्य विद्वानोंने भी अनेक आहार तालिकाएं निर्धारित की हैं। यद्यपि यह तालिकाएं बहुत सोच समझ कर सिद्धान्तानुकूल ही बनाई गई हैं तथापि कृत्रिम तराज़ू बाटोंसे आहार मात्राके प्रश्नका यथोचित निर्णय नहीं हो सकता। पहले तो यही सम्भव नहीं कि समस्त संसारके सब व्यक्तियोंके लिए पृथक् पृथक् ऐसी आहार तालिकाएं बनाई जासकें। और यदि यह सम्भव भी हो तो यह तालिकाएं केवल उन व्यक्तियोंके लिए ही उचित हो सकती हैं कि जिनका शरीर पूर्णतया स्वस्थ है और पाचन शक्तिमें तनिक भी विकार नहीं है; परन्तु आजकल तो ऐसे स्वस्थ मनुष्य कमसे कम भारतमें तो शायद अजायबघरोंमें भी न मिलेंगे। यदि दुर्जन तोष न्यायसे इन सब बातोंकी उपेक्षा करके यह मान भी लिया जाय कि यह तालिकाएं वर्तमान स्थितिके लिए सर्वथा उपयोगी हैं और इनसे आहार मात्राका पूरा पूरा निर्णय हो जाता है तब भी एक प्रश्न बराबर बना रहता है कि आहारके जिन पदार्थोंका इनमें नाम नहीं आया क्या वह सब पदार्थ आहारकी सूचीसे एक दम निकाल दिये जायँ? फिर इन तालिकाओंमें जिन पदार्थोंका नाम है वह भी अनेक प्रकारसे बनाये जाते हैं और बनानेकी विधिके अनुसार उनकी बलोत्पादक शक्ति तथा गुणमें परिवर्तन हो जाता है। फिर क्या इन समस्त पदार्थोंका बनाना बिल्कुल बन्द हो जाना चाहिये?। या तो डाकृर दैनिक आहारकी ऐसी तालिकाएं तैयार करें कि जिनमें आहारके स्वाभाविक और (रन्धन-क्रियाके भेदसे बने हुये) कृत्रिम सभी पदार्थोंका परिमाण प्रत्येक पुरुष या कमसे कम एकसा परिश्रम करनेवाले पुरुषोंके वर्गके लिए पृथक् पृथक् बतलाया जाय अथवा भोज्य पदार्थोंकी संख्या ही परिमित कर दी जाय; तभी तराजू बटखरोंसे आहारमात्राका निर्णय होना सम्भव है, अन्यथा नहीं। पर यह दोनों बातें असम्भव हैं। अतएव आहार-मात्राका निर्णय करनेके लिए हमें स्वाभाविक तराजूसे काम लेना पड़ेगा; उस स्वाभाविक तराज़ूसे कि जो प्रत्येक मनुष्यको, नहीं नहीं प्राणिमात्रको, जन्म लेते ही प्राप्त हो जाती है। यह तराज़ू इतनी सच्ची है कि क्या मजाल जो इसकी तोलमें बाल भरका फरक भी आवे। ऋषि आत्रेय आहार-

मात्राका निर्णय करनेके लिए, उस सच्ची तराज़ूके उपयोगकी कैसी सीधी सादी और सुगम विधि बतलाते हैं।

मात्राशी स्यात्। आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी।

द्रव्यापेक्षया च त्रिभागसौहित्यमर्द्ध सौहित्यं च गुरूणामुपदिश्यते।

लघूनामपिच नाति सौहित्यं अग्नेयुक्त्यर्थम्॥ (चरक)

अर्थात्—मनुष्यको भोजन मात्रानुसार करना चाहिये और आहार मात्रा पाचकाग्निके बलानुसार होनी चाहिये अर्थात् जितना आहार सुख पूर्वक पच सके वही आहारमात्रा है।

फिर गुरु पाक (देरसे पचने वाले) और लघु पाक ( जल्दी पचनेवाले ) पदार्थोंके अनुसार आहार-मात्रा इस प्रकार होनी चाहिये कि गुरुपाक पदार्थोंसे आधा अथवा पौन पेट भरने पावे। लघुपाक पदार्थ भी पेट भरकर खाना उचित नहीं है, जिसमें जठराग्निका बल बना रहे।

इसी देववाणीकी प्रतिध्वनि भी सामनेसे आ रही है; तनिक ध्यान पूर्वक सुनिये विद्वद्वर्य्य भाव मिश्र क्या कहते हैं—

कुक्षेर्भागद्वयं भोज्यैस्तृतीये वारिपूरियेत्।
वायोः सञ्चारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्॥

( भावप्रकाशे )

अर्थात्—आमाशयके २ भाग भोजनसे और एक भाग पानीसे पूर्ण करना चाहिये और चौथा भाग वायुसंचारणके लिए ख़ाली छोड़ देना चाहिये।

मुझे भय है कि कहीं मन चले लोग क्षुधा और आमाशयको नापने न बैठ जायँ? अतएव यह निवेदन कर देना भी उचित प्रतीत होता है कि इस समस्त कथनका सार यही है कि सदैव भूखसे कुछ कम खाना चाहिये। बस यही समुचित आहार-मात्रा है और क्षुधा इसकी तराज़ू है। डण्डी आपकेहाथमें हैं।

परिमित भोजन *

आयुर्वेद शास्त्रमें क्षुधाको एक स्वाभाविक रोग माना है। आहार इस रोगकी औषध है। परन्तु हम लोगोंने उसे औषध न मान कर रसनेन्द्रियकी तृप्तिका एक साधन बना रखा है। भूख लगे चाहे न लगे, दिनभर कुछ न कुछ खाते ही रहते हैं। एक बारका किया हुआ आहार पचने नहीं पाता कि फिर भोजन पर जा डटते हैं। प्रतिदिन कमसे कम दो बार भोजन कर लेना तो एक नैत्यक कर्म सा हो गया है।

इस प्रकार अंधाधुंध भोजन करनेसे आमाशय और अन्य पाचकयन्त्रोंपर इतना अधिक भार पड़ता है कि उसे पूरा नहीं कर सकते, इसका परिणाम यह होता है कि एक ओर तो पाचकेन्द्रिय निर्बल हो जाती हैं और दूसरी ओर उनके प्राणपणसे चेष्टा करने पर भी जो आहार अच्छी तरह नहीं पच सकता वह आंतोंमें जा कर सड़ता है और उससे नाना प्रकारके विषैले पदार्थ उत्पन्न हो कर रक्तको दूषित और स्वास्थ्य को नष्ट करते हैं। वह अधपचा आहार अतिसार, प्रवाहिका ( पेचिश ), संग्रहणी इत्यादिका रूप धारण करके घोर कष्टका कारण बनता है। अथवा सब रोगोंका मूल अजीर्ण या कोष्ठबद्धता आ दबाती है। विद्वच्छिरोमणि माधवाचार्य कहते हैं कि—

अनात्मवंतः पशुवद् भुञ्जते ये ऽप्रमाणतः।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि॥ ( माधव )

जो मनुष्य क्षुधासे अधिक पशुकी भांति अपरिमित भोजन करते हैं वह रोगोंकी सेनाके नायक अजीर्णके चंगुलमें फँस जाते हैं।

---

* यदि हम आवश्यकतासे अधिक खाते हैं तो वह चोरीका खाते हैं। जितना हम स्वादके लिए खाते हैं वह कच्चे पारेकी भांति किसी न किसी रूपमें फूट निकलता है। हम उतने ही दुखी हो [illegible] हमारा स्वास्थ्य उतना ही बिगड़ जाता है। ( महात्मा गाँधी )

आयुर्वेदमें अमिताहारियोंकी पशुसे तुलना की है; परन्तु ऐसे लोग आहारके विषयमें तो पशुओं-से भी गये गुज़रे हैं। संसारमें दो प्रकारके मनुष्य हैं,एक तो वह कि जो जीनेके लिए खाते हैं और दूसरे वह जो खानेके लिए जीते हैं। दूसरी प्रकारके मनुष्योंको सदैव खाने की ही चिन्ता रहती है। पेट भर जाता है पर उनकी नियत नहीं भरती। दिन भर, नाना प्रकारके पदार्थ खाते ही रहते हैं। ऐसे मनुष्य भोजनके समय मसाले और अचार चटनियोंको देखते हैं तथा भोजनके पश्चात् नमक सुलेमानीकी शीशियाँ खाली करते हैं; तिस-पर भी कभी अजीर्ण, कभी मन्दाग्नि और कभी उदर-शूल एक न एक शिकायतें बनी ही रहती हैं। यद्यपि पाचक यन्त्रोंसे स्वयं ही अत्युत्कृष्ट पाचक-रस उत्पन्न होते हैं, परन्तु वह रस इनके भोजनको पचानेमें असमर्थ हैं; और इसीलिए इन्हें अनेक प्रकारके पाचक पदार्थ खाने पड़ते हैं। बात यह है कि इन लोगोंने अपने पाचक यन्त्रोंसे उनकी शक्ति-से अधिक काम ले कर उन्हें निर्बल बना दिया है और अब भी उन्हें आराम देनेके स्थानमें उल्टे पाचक चूर्ण रूपी चाबुक लगा रहे हैं; फिर कहिये इनके पाचक यन्त्र किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं? जिस भोजनके लिए यह लोग जीते हैं वह किस तरह पच सकता है? अन्तमें एक दिन आता है कि जब ऐसे लोग साधारण और अत्यल्प भोजनको भी नहीं पचा सकते। ऐसे लोगोंका जीवन थोड़ा होता है और वह भी दुःख पूर्ण व्यतीत होता है। अपने दांतोंसे अपनी क़बर खोदनेवाले यही लोग होते हैं कि जो मात्रासे अधिक बे हिसाब भोजन करते हैं।

जो आहार एक मिताहारी पुरुषको अधिकसे अधिक शक्ति प्रदान कर सकता है, वही अमिता-हारी पुरुषोंको निर्बल और रोगी बना देता है।

भारतीय माताएँ बच्चोंको डांट डपट कर अधिकसे अधिक भोजन खिलानेका प्रयत्न किया करती हैं। वह बच्चोंके मुखमें सारे दिन कुछ न कुछ ठेलती ही रहती हैं और इसीमें उनका बड़ा उपकार और अपने स्नेहका परिचय समझती हैं, किन्तु वास्तवमें यही बच्चोंका सबसे बड़ा अपकार है; इसका फल उनकी आशाके सर्वथा विपरीत निक-लता है; इसी प्यार-पूर्ण अत्याचारके कारण कितनी माताएँ अपने बच्चोंसे हाथ धो बैठती हैं। लड़-कियाँ, जिनके साथ ऐसा लाड़ प्यार नहीं किया जाता लड़कोंसे कहीं अधिक हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ रहती हैं।

जिनको स्वस्थ रहनेकी अभिलाषा है; और जो रोगोंसे बचना चाहते हैं उनको आहार-मात्रा-का अवश्य ध्यान रखना चाहिये। जब तक एक बारका किया हुआ भोजन पच न जाय पुनः नहीं खाना चाहिये। थोड़ी भूख रखते ही थालीपरसे उठ जाना चाहिये। कोई पदार्थ इस लिए न खाना चाहिये कि वह बहुत स्वादिष्ट है या उसके खानेके लिए चित्त चाहता है। बल्कि उदरसे परामर्श लेना आवश्यक है। जिस समय उदर खानेकी अनुमति न दे उस समय अमृतको भी विष समान त्याग देना चाहिये।

जिस प्रकार भूखसे अधिक खाना हानि करता है उसी प्रकार बहुत कम खाना भी ठीक नहीं; बहुत थोड़ा भोजन करने से दुर्बलता, ग्लानि, अनिद्ररोग और वायुके रोग उत्पन्न होते हैं। भोजन-की मात्राके लिए सेर आध सेर या और कोई तोल नियत करना ठीक नहीं, बल्कि आहार-मात्राका जो अन्दाज़ा ऊपर बतलाया गया है वही ठीक है। जितना भोजन सुखसे पच सके उतना ही खाना चाहिये चाहे वह सेर भर हो या पाव सेर।

—गोपीनाथ गुप्त वैद्य

## नोबेल पारितोषक

[ ले०—डा० नीलरतन धर ]

नोबेल महोदयकी उदारता और शुभ कल्पनाओंका परिणाम भूत "नोबेल-पारितोषक-कोष" स्था-पित हुए प्रायः २० वर्ष हुए हैं। नोबेल महोदय जीवनके प्रारम्भमें एक साधारण

रासायनिक थे, परन्तु मरनेके पहले धन कुबेरों और मनुष्य जातिके उपकारकर्ताओंमें आपकी गणना की जाती थी। इनका जन्म स्वेडिनमें हुआ था। वहीं इन्होंने शिक्षा भी पायी और रसायन शास्त्रमें डाक्टरकी पदवी प्राप्त कर स्फोटकोंके विषयमें गवेषणा प्रारम्भ की।

दो चार स्फोटक मैं आपको दिखाये देता हूं। अमोनियम अयोदिदके कुछ कण बाहर बिखरा दिये थे। आप लोगोंके इस कमरेमें प्रवेश करते समय जो पटाख पटाख, चटाख चटाख शब्द हुए थे, वह इन्हींकी वजहसे हुए थे। अमोनियम-अर्द्ध क्रोमेत (bichromate) को ज़रा गरम कीजिये ( परखनलीमें इसका एक रवा रख कर ) तो देखिये कि निकलती हुई गैसें कैसी बहार दिखाती हैं। इसी प्रकार पिकरिक अम्ल आदि अनेक स्फोटक हैं। यहां पर आवश्यक है कि स्फोटक शब्दकी व्याख्या कर दी जाय। बहुत ही सरल भाषामें यह कह सकते हैं कि स्फोटक वह पदार्थ हैं, जिनमें दो अंश रहते हैं; एकमें से ओषजन सहज ही प्राप्त हो सकती है और दूसरेमें ऐसे पदार्थ रहते हैं जो ओषजनके साथ मिलनेके लिए बड़े लालायित रहते हैं। अतएव जहां तनिक सा भी कारण उपस्थित हुआ कि यह पदार्थ बड़े वेग और उग्रतासे टूटता है और उपयुक्त स्थितिमें बड़ा उपद्रव खड़ा कर देता है।

नत्रोग्लिसरीन भी एक भयानक स्फोटक है। ग्लिसरीनको शोराम्ल और गंधकाम्लके साथ सावधानीसे गरम करनेसे यह पदार्थ प्राप्त हो सकता है; परन्तु यह पदार्थ इतना अस्थायी है कि एक स्थानसे दूसरे स्थानको लेजाने या किसी काममें लाये जाने लायक नहीं है। इस पदार्थके विषयमें रासायनिकोंको नोबेलके आविष्कारोंके पहले इतना ही मालूम था। नोबेल महोदयने यह बात खोज निकाली कि यदि रेत या शिलाकण जैसे क्रियाहीन पदार्थके साथ इसे मिला दें तो इसको अधिक स्थायी बना सकते हैं, पर उसके स्फोटन-बलमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं होगा। एक प्रकारकी रेतमें मिलाई हुई नत्रोग्लिसरीन को ही डैनेमैट कहते हैं। यही पदार्थ स्फोटकोंका सिरताज—उग्र स्फोटकोंका धुरंधर धोरी—है।

इस पदार्थका प्रयोग शान्तिकालमें युद्धकालसे कम नहीं होता। अभिमानी चट्टानोंका मद चूर करने, पहाड़ोंकी छाती फाड़कर सड़क बनाने, छछूँदर-से लजानेवाली बड़ी बड़ी सुरंगें बनाने आदि कामोंमें दिन रात इसका प्रयोग होता रहता है। युद्धकालमें जो हत्याकाण्ड इसकी बदौलत रचा जाता है उससे सभी परिचित होंगे।

इस स्फोटकको नोबेल महोदयने रूस-जापानी युद्ध, बोअर युद्ध आदि युद्धोंमें अनेक गवर्मेन्टोंके हाथ बेच करोड़ों रुपये कमाये।

नोबेल बड़े ऊंचे विचारोंवाले व्यक्ति थे। बुढ़ापेमें उन्हें रह रह कर यह विचार तंग किया करता था कि मैंने क्यों एक ऐसे पदार्थका आविष्कार किया जिससे लाखों घरोंमें मातम छा गया, लाखों जानें गयीं और इतना खून खराबा हुआ। उन्हें बड़ा पश्चात्ताप होता था और इस काल्पनिक पापका प्रायश्चित करनेके लिए उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि मैं अपना सर्वस्व ज्ञान-वृद्धि और मनुष्यकी व्याधियोंके मिटानेके प्रयत्नमें दान कर दूंगा। उन्होंने स्वेडिन और नारवेमें अनेक गवेषणालय और औषधालय खोले। बचे हुए रुपयेसे उन्हें आठ हज़ार गिन्नियों अर्थात् प्रायः सवा सवा लाख रुपये सालानाके पांच पारितोषक नियत किये, जो भौतिक विज्ञान, रसायन, शारीर शास्त्र और वैद्यक, साहित्य, और संसारव्यापी शान्ति-संस्थापनके क्षेत्रमें काम करनेवालोंमें-से धुरंधर भद्रको दिये जाते हैं।

स्टाकहाममें एक विशेषज्ञोंकी समिति है, जो पारितोषकोंका निर्णय करती है। संसारकी सभी जातियोंमेंसे इस समितिके कार्यके लिए प्रतिनिधि चुने गये हैं। यह प्रतिनिधि जिन जिनकी सिफारिश करते हैं उनपर समिति विचार करती है और

अन्तमें पारितोषक देती है। पारितोषक पानेवाले-को समितिके सामने उपस्थित होना पड़ता है, जिसके सभापतिके आसनको स्वेडिनाधीश सुशोभित करते हैं और अपने विषयपर उसे व्याख्यान देना पड़ता है। पहली बार यह पारितोषक १६५८ खि० में दिये गये थे।

शान्ति-संस्थापनका पारितोषक युद्ध-सम्राट् कैसरको भी मिल चुका है, यह एक ध्यान देने योग्य बात है। युद्धकालमें यह पारितोषक रेड क्रास-सोयसाइटीज़को मिलता रहा। अब मैं एक एक विषयको लेकर बतलाऊंगा कि उसमें पारितोषक पानेवालोंने क्या काम किया था जिससे उन्हें इनाम मिला।

भौतिक शास्त्रमें तो विसर्जनके सर सेहरा बंधा है। एक्स रश्मि, बेतार, प्रकाश, ताप, यह सभी विसर्जनके रूप रूपान्तर हैं। यह हम सब जानते हैं कि प्रकाश या किसी अन्य प्रकारकी शक्तिसे सम्पन्न पदार्थके कण बड़े वेगसे हरकत करते होते हैं और इन्हीं कणोंकी हरकत आकाशमें चारों ओर फैलकर हमें नाना प्रकारके अनुभव कराती है। जुदी जुदी हरकतोंसे जुदी जुदी प्रकारकी तरंगें पैदा होती हैं; अतएव प्रत्येक प्रकारकी शक्तिका एक विशेष प्रकारान्तर होता है। और तरंगोंकी रचना प्रायः एक सी होते हुए भी उनके तरंगान्तरोंमें भेद होता है और वह कभी ताप, कभी प्रकाश और कभी विद्युत्का अनुभव कराती हैं। तरंगान्तरके अनुसार हमारी भिन्न भिन्न इन्द्रियां प्रभावित होती हैं। जो सबसे छोटी तरंग हमारे चक्षुरिन्द्रियको उत्तेजित कर सकती है वह बैंजनी रंगकी होती है और सबसे बड़ी लालकी। इनका परिमाण इंचके तीस हज़ारवें भागसे लेकर साठ हज़ारवें भाग तक होता है। बेतारकी तरंग बड़ी होती हैं—उनकी लम्बाई एक फुटसे लगा हज़ारों फुट तक होती है।

हर्ज़ने पहले पहल इन तरंगोंके पैदा करने और पहचाननेके साधन निकाले थे। तभी इनका महत्व वैज्ञानिक संसार भली भांति समझ गया था। मारकोनी बाबू और ब्रोन बाबूने हर्ज़ बाबूकी तरंगोंका बेतारमें प्रयोग करनेका प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। इन सज्जनोंको कितनी सफलता हुई, यह सब जानते हैं। अब तो बेतार एक साधारण बात होगयी है। कायस्थपाठशालाके प्रेसीडेन्टने स्थानीय कायस्थोंकी ओरसे बेतार द्वारा प्रिंसआफ वेल्सका उस दिन स्वागत किया था, प्रत्येक जहाज़में बेतारका यंत्र रहता है। त्रिवेणीमें स्नान करनेवालोंको बेतारके दर्शन भी हो जाते हैं। इसी प्रकार बेतारकी टेलीफोन भी अब बहुत साधारण वस्तु होगयी है। युद्धकालमें एडमिरेल्टीके दफ्तरसे अदृश्य, अस्पृश्य, अपदार्थमय आकाशमें जो तरंग जनित कर दी जाती थीं, वही तरंगमालाएं चारों ओर फैलकर सैकड़ों कोसोंपर जहाज़ोंमें यन्त्रोंको वाणी प्रदान कर देती हैं।

इसी बेतारके सम्बन्धमें आरम्भमें विज्ञानाचार्य सर जगदीश और आलीवर लाज बाबूने प्रयोग किये थे। बादमें मारकोनी, ब्रोन ( Braun ) और ब्रौले ( Brauloy ) बाबुओंने आविष्कार किये और उन्हें नोबेल पारितोषक मिले।

वायुमें विद्युत्की चिनगारी मुश्किलसे निकलती है। जितना बिजलीका दबाव बढ़ाया जाता है उतनी ही बड़ी चिनगारी पैदा होती है, परन्तु उधर हवाका दबाव कम कर दें तो थोड़े विद्युत्के दबाव पर भी चिंगारी पैदा हो जायगी। वायुके दबाव घटानेके लिए हवाको किसी बरतनमें भरकर, शनैः शनैः निकालना पड़ता है; विद्युत् यंत्रसे सम्बंध करनेके लिए उस बर्तनमें दो धातुके तार पहलेसे लगाने पड़ते हैं और एक नली भी, जिसमें हो कर वायु निकाली जाती है। ज्यों ज्यों वायु निकालते जाते हैं त्यों त्यों चिनगारियां सुगमतासे चलती हैं। कुछ समय पश्चात् विद्युत्का निरन्तर प्रवाह होने लगता है और वायु-शून्य बर्तन या बल्बमें अनेक दृश्य दीखते हैं। इसी विषयमें सर-विलियम क्रुक्सने प्रयोग किये थे। उन्होंने पहले

पहल यह अनुमान किया और बादमें सिद्ध किया कि ऋण छोरसे अत्यन्त छोटे कण निकल कर घन छोरकी तरफ दौड़ लगाते हैं। यह कण जब बर्तनके कांचसे टक्कर लगाते हैं तो उसमें जुगनूका सा प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। उन्होंने बल्बमें एक हलका मोडरका पहिया रखा, कणोंकी टक्करोंसे यह चलने लगा। मोडरका एक स्वस्तिक रखने से कण रुक भी जाते हैं और उसकी छाया भी पड़ती है, यह भी उन्होंने कर दिखाया। ऐसीही एक वायुशून्य नलीमें एक अलूमिनियमकी तख़्ती जड़कर इन किरणोंको बाहर निकाल लानेमें लेनार्ड बाबू १८५१ में सफल हुए। इन किरणोंके न तो कुछ गुणोंमें अन्तर हुआ था और न जुगनूवत प्रकाश ही उत्पन्न हुआ था। लेनार्ड बाबूने यह भी बतलाया कि क्रुक्स किरण या ऋणान्त किरण फोटोके प्लेटों पर भी प्रभाव डाल सकती हैं। १८५२ वि० में रंजन बाबू इन्हीं किरणों पर प्रयोग करने लगे। ऋणान्त या लेनार्ड किरण कांचमें से नहीं निकल पातीं, अलूमिनियम आदि धातुओंकी खिड़कियोंके द्वारा वह बाहर आती भी हैं तो अधिक दूर तक प्रयाण नहीं कर पातीं। जब कभी ऋणान्त किरण किसी वस्तुसे टकरा कर विकृत होती हैं तो एक्स किरण उत्पन्न हो जाती हैं, जो वास्तवमें प्रकाशकी अत्यन्त सूक्ष्म तरंगान्तरवाली रश्मि होती हैं। यह किरणें पदार्थोंमें प्रवेश कर सकती हैं और उनमें जुगनूका सा प्रकाश पैदा कर सकती हैं। १००० पृष्ठकी पुस्तक या एक इंच मोटे अलूमिनियमके पत्रके भीतर होकर यह सहज ही निकल आ सकती हैं।

इन किरणोंका आविष्कार होते ही सर्जनोंने इनका प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। शरीरके अभ्यान्तर अंगोंके निरीक्षण, रोगोंकी चिकित्सा, शरीरमें घुसी हुई गोलियों, कांटों, सुइयोंके स्थान निर्णय आदि कामोंमें एक्स किरण सभी बड़े बड़े अस्पतालोंमें काम आती हैं।

यूरेनियमके लवण आदि बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जो रंजन रश्मियोंके पड़नेसे कुछ समय तक जुगनूवत प्रकाश देने लगते हैं। बेकरल बाबूने १८५३ वि० में यह बतलाया कि उक्त पदार्थ सूर्यका प्रकाश पड़ने के बाद जब जुगनूवत प्रकाश देते हैं तो उनमें से रंजन किरणोंके समान गुणवाली किरणें निकलती हैं। अर्थात् यह किरणें भी पदार्थोंमें से निकल सकती हैं और फोटोके प्लेटों पर भी क्रिया कर सकती हैं।

कुछ और गवेषणका परिणाम यह निकला कि यूरेनियम तथा उसके यौगिकोंमें से उक्त किरणें स्वभावतः ही निकला करती हैं। उनको निकालनेके लिए न सूर्यके प्रकाशकी आवश्यकता है और न रंजन रश्मियोंकी। श्मिट बाबूने यही गुण थोरियममें भी पाया। बीबी क्यूरी और क्यूरी बाबूने अनेक दिनोंके परिश्रमके पश्चात् पिचब्लेंड से दो नये पदार्थ (मौलिक) निकालनेमें सफलता प्राप्त की। यह हैं रेडियम और पोलोनियम, जो अन्य पदार्थोंसे कहीं ज़्यादा क्रियाशील हैं। रेडियम तो प्रकाश, ताप और विद्युत् स्वतः उत्पन्न करता रहता है। यदि एक रत्ती रेडियम लें तो १७६० वर्षमें आधी रत्ती ही रह जायगा, इसीके विनाशसे प्रकाशादि तथा कई मौलिक पैदा होते रहते हैं।

मानलो कि किसी भट्टीमें २८ मन कोयला बराबर २००० वर्ष तक रात दिन जलता रखा जाता है; तो जितनी शक्ति पैदा होगी उतनी ही शक्ति १५ ग्रेन रेडियम भी उतने ही समयमें उत्पन्न करेगा। रेडियम कई प्रकारके नासूरों और पुराने घावोंके अच्छा करनेमें भी काम आता है।

हालमें ही लैन और ब्रेग्स बाबूने रवोंकी बनावटकी जांचमें एक्स किरणोंका अपूर्व रीतिसे प्रयोग किया है।

[ असमाप्त ]

# दूध

यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणाम् भुवि दुग्धमाहुः

हमारे खानेके पदार्थोंमें दूधका बड़ा महत्व है। शायद ही कोई ऐसा अभागा भारतीय होगा जिसके भोजनमें प्रति दिन दूध या दूधसे बने हुए घी, मक्खन, दही इत्यादि पदार्थोंमें से एक न एक पदार्थ न काम आता हो। बड़े बड़े शहरोंसे लेकर छोटे छोटे ग्रामों तकमें और राज प्रासादोंसे लेकर रंक कुटीरों तकमें सभी जगह किसी न किसी रूपमें दूध काममें आता ही है।

हमारे भोजनमें जिन जिन उपादानोंकी आवश्यकता होती है वह सभी दूधमें विद्यमान रहते हैं और ऐसे परिमाणमें रहते हैं कि यदि अधिक नहीं तो कुछ समय तक तो अवश्य ही केवल दूध पीकर भी जीवित रहा जा सकता है और ऐसा करनेसे स्वास्थ्य किसी प्रकार भी बिगड़ नहीं सकता, बल्कि सुधर ही जायगा। शिशुओंके जीवनका आधार दूध ही होता है; और इसीलिए यह पूर्णाहार कहलाता है। परन्तु खेदका विषय है कि आज कल विशुद्ध दूध मिलना प्रायः असम्भव हो रहा है। जिस भारतमें कभी दूधकी नदियां बहती थीं जहां गोरसको डंडी पर रखना पाप समझा जाता था वहीं आज

> घृतं न श्रूयते कर्णे दधिस्वप्ने न दृश्यते।
> दुग्धस्य तर्हिका वार्ता तक्रं शक्रस्य दुर्लभम् ॥

हो रहा है।

शहरोंकी बात जाने दीजिये; छोटे छोटे गांवोंमें भी दूध देव-दुर्लभ होता जा रहा है और यदि यही दशा रही तो आश्चर्य नहीं कि वह दिन निकट आजाय कि जब केवल रोगी मनुष्योंको ही दूध, घीका स्वाद लेनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ करे।

आज कल बाज़ारोंमें जैसा दूध मिलता है उसको दूध कहना केवल दूधका अपमान करना है। वह दूध इतना निकृष्ट होता है कि उसके पीनेसे तो न पीना ही अच्छा है। इस ओरसे उस छोर तक चले जाइये बाज़ारमें शायद ही किसी दूकानपर ऐसा दूध मिल सके जिसको स्वाभाविक और यत्किञ्चित विशुद्ध दूध कहा जा सके। कहीं मक्खन निकाला हुआ निस्सार भाग रखा होगा तो कहीं दूधके नाम पर सफ़ेद पानी बिकता हुआ पाया जायगा। यही नहीं दूकानदारों और ग्वालोंके अज्ञान तथा लापरवाहीके कारण सड़ककी धूल मिट्टी आदि भी उड़ उड़ कर दूधमें मिल जाती है जिसमें रोगोंके कीटाणु भी बहुत रहते हैं। अनेक बार परीक्षा करनेपर दूधमें राजयक्ष्मा, विसूचिका (हैज़ा) इत्यादि रोगोंके कीटाणु पाये गये हैं और ऐसा विकृत दूध पीनेवाले मनुष्योंको भी यह रोग होगये हैं। यदि दूध देनेवाले पशुओं अथवा ग्वाले या दूकानदार आदिको कोई छूतका रोग हो तब भी उस रोगके कीटाणुओंका दूधमें मिल जाना बहुत सम्भव होता है। रोगके जीवाणुओंके दूधमें मिल जानेका बहुत भय रहता है।

स्मरण रखना चाहिये कि दूध अपनी विशुद्धावस्थामें जैसा अमृतोपम है वैसा ही वह विकृतावस्थामें विषोपम विनाशक भी है, अतएव दूधकी स्वच्छता, शुद्धि और स्वाभाविकता पर सदैव विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता है।

जिस दूधके विषयमें विश्वास न हो कि वह स्वस्थ पशुका स्वच्छ पात्रमें शुद्धताका पूरा पूरा ध्यान रखते हुए निकाला गया है और उसमें किसी प्रकारकी मिलावट नहीं की गई, वह कदापि न पीना चाहिये।

जिस दूधका रंग और स्वाद बदल जाय, या कोई अस्वाभाविक गन्ध आने लगे अथवा दूध फट जाय तो उसे अशुद्ध समझना चाहिये।

दूध अशुद्ध पानीके मिलनेसे भी दूषित हो जाता है। पानीकी मिलावटको देखनेके लिए लेक्टोमीटर अथवा हंस शीशीसे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

दूधमें यन्त्रको छोड़ देनेपर यदि दूधमें यंत्र एक विशेष स्थान तक डूबे तो दूधको शुद्ध समझना चाहिये; अन्यथा पानी आदिकी मिलावट जाननी चाहिये। दूधमें समान भाग पानी होनेसे उसका धरातल दूसरे स्थानको स्पर्श किया करता है।

यदि दूधमें पानी मिला कर उसमें कुछ चीनी या मिस्री भी डाल दी जाय तो भी दूध इस यन्त्रके पहले स्थानको स्पर्श कर सकता है, अतएव इस यंत्रसे गांवों और क़स्बोंमें तो विश्वास पूर्वक काम लिया जा सकता है, परन्तु शहरोंमें कभी कभी होशियार ग्वाले उपरोक्त चालाकी करके इस परीक्षाको झूठा सिद्ध कर देते हैं और इस यन्त्रसे भी उनकी चोरी नहीं पकड़ी जा सकती। अतएव विशुद्ध दुग्ध-प्राप्तिका सबसे अच्छा उपाय यही हो सकता है कि प्रत्येक गृहस्थी यथासम्भव अपने घर पर दूध देनेवाले पशु पाले। परन्तु सब ही लोग ऐसा करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। अतएव जो लोग घर पर पशु न रख सकते हों उन्हें यथा-सम्भव स्वस्थ पशुके अपने सामने दुहाये हुए दूधकी प्राप्तिका प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु जिनके लिए यह प्रबन्ध भी सम्भव न हो उन्हें चाहिये कि बाज़ारसे ताज़ा दूध मोल लेकर उसे भली प्रकार औटाकर काममें लावें, क्योंकि औटानेसे दूधके रोग-जीवाणु प्रायः नष्ट हो जाते हैं।

जिन्हें शुद्ध दूध मिल सकता हो उन्हें भी यह बात अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिये कि गाय और भैंसके अतिरिक्त अन्य सब पशुओंका कच्चा दूध बादी और आंव उत्पन्न करता है। अतएव गाय और भैंसके दूधके सिवाय सब प्रकारके दूध औटा कर ही पीने चाहियें। हाँ गाय भैंसका दूध कच्चा पीनेमें भी कोई हानि नहीं है। प्रत्युत गायका धारोष्ण, थनसे निकला हुआ गरम गरम दूध, तो अमृतके समान माना गया है जैसे भाव प्रकाशमें कहा है—

धारोष्णं गोपयोबल्यं लघुशीतं सुधासमम्।
दीपनं च त्रिदोषघ्नं तद्धारा शिशिरं त्यजेत् ॥

अर्थात्—गायका धारोष्ण दूध लघु, बलकारक, शीतल, दीपन, त्रिदोष नाशक और अमृतके समान होता है। परन्तु जब वह ठंडा हो जाए तो उसे (कच्चा) न पीना चाहिये। पर भैंसका दूध दुहनेके पीछे ठंडा हो जाने पर ही अधिक लाभदायक होता है।

यदि कच्चा दूध पीना हो तो दुहनेके पश्चात् २ घंटेके भीतर ही पी लेना चाहिये; उसके पीछे वह कच्चा पीने योग्य नहीं रहता।*

आयुर्वेदका मत है कि जिस पशुका बच्चा मर गया हो उसका दूध अत्यन्त हानिकारक होता है। इसी प्रकार प्रसवके एक सप्ताह पीछे तक भी दूध हानिकारक होता है; इस विषयमें हिन्दू धर्म-शास्त्र भी पूर्णतया सहमत है।

* कच्चा दूध पीना हो तो स्वस्थ गाय या भैंसका दूध शुद्धता पूर्वक निकलवा कर धारोष्ण ही पी लेना चाहिये। यदि रखना हो तो बड़ी सावधानीसे शुद्ध स्थानमें रखना चाहिये। दुहते समय खौलाकर ठंडे किये हुए जलसे दुहने वालेके हाथ साबुन लगवा कर धुलवा देने चाहियें, गायके थन और नीचेका हिस्सा भी धुलवा देना चाहिये। जिस बर्तनमें दूध निकाला जाय, उसे भी आग पर खूब गरम करके ठंडा कर लेना चाहिये। इन सब बातों पर विचार करते हुए एक या दो घंटेकी अवधि देना अवैज्ञानिक है। दूध जितना हितकर पदार्थ है उतना ही भयानक भी है, जहां इसमें रोगके जीवाणु पहुंचे तहां बड़े वेगसे वृद्धि पाने लगते हैं। इसलिए या तो शुद्धता पूर्वक निकाला हुआ धारोष्ण दूध या केवल एक उफान आया हुआ दूध पीना चाहिये। ज्यादा गरम करनेसे दूधका सार ( vitamines ) निकल जाता है।—सं०

[ पृष्ठ ५६ से आगे ]

मान है कि वहां ऐशो आरामकी मात्रा बहुत बढ़ गई होगी, क्योंकि यह एक सर्वसम्मत बात है कि जहां सम्पत्ति होती है वहीं भोग विलास भी होता है। कार्थेज इस नियमका अपवाद न था। कार्थेजकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और साथ ही उसकी सम्पत्ति भी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई। एक सर्व सम्मत सिद्धान्त है कि ज्यों ज्यों देशकी सम्पत्ति बढ़ती जाती है त्यों त्यों जनता निःसत्व होती जाती है। कार्थेजके लोग राजनीति और युद्ध विद्यामें पारंगत थे तथापि ज्यों ज्यों सम्पत्ति बढ़ती गई वह भोग विलासमें लिप्त रहने लगे और युद्धका भार भाड़ेके विदेशी सैनिकों पर अवलम्बित रहने लगा। किन्तु भाड़ेके सिपाहियों पर विश्वास रखनेसे कभी कभी ठीक वक्त पर धोका होता है। भाड़ेके सिपाहियोंके कारण कार्थेजको बहुत कष्ट सहना पड़ा।

---

# राष्ट्र-विज्ञान

[ ले०—श्री० कृष्णगोपाल माथुर, साहित्यरत्न ]
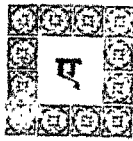
एरिस्टोटलने कहा है कि समाजका संगठन करके रहना ही मानवोंका स्वभाव है। यही कारण है कि सदा कितने ही नरनारी एक स्थानमें इकट्ठे रहते पाये जाते हैं, वह एक दूसरे से सहायता पाने की गरज़से इकट्ठे रहते हैं; क्योंकि दूसरेकी सहायताके बिना, अकेला मनुष्य अपनी सब आवश्यकताएँ किसी हालतमें भी पूरी नहीं कर सकता। ऐसा करना किसीके लिए सम्भव नहीं है।

इसलिए मानना पड़ेगा कि जितने समाज हैं, सबकी प्रधान विशेषता परस्परका बद्ध-बाधकताका सम्बन्ध है। एक आदेश करता है, दूसरा उसका पालन करता है। यह आदेश पालन करना ही समाजकी शृंखला है। जिस समाजमें यह आदेश पालन करनेका अभ्यास नहीं है, उस समाजमें शृंखला नहीं रह सकती; क्योंकि यह अभ्यास ही समाजकी मूल भित्ति है। अतएव देखा जाता है कि समाज को दृढ़बद्ध रखनेकी एकमात्र सांकल यही 'आज्ञादेना' और 'आज्ञापालन करना' है। यह दोनों काम कैसे होते हैं; और मनुष्य क्यों इनको करते हैं? इन प्रश्नोंके ऊपर विचार करनेसे मालूम होगा कि स्वार्थके वशीभूत होकर ही मनुष्य दूसरे लोगोंका साथ करता है और सहचरकी कामना करता है। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि कोई मनुष्य अपनी सब आवश्यकताएँ केवल अपनी चेष्टासे पूर्ण नहीं कर सकता, इसीलिए दूसरोंकी सहायताकी प्रार्थना करता है। जब आर्य्य लोग पंचनदमें आकर बसे, तब उनकी इस नूतन निवास-भूमिमें कितनी ही नूतन आवश्यकताएँ और नवीन विपत्तियाँ आ खड़ी हुईं। इन सबको दूर करना लाज़िमी था, इसी इच्छा से वह लोग दल-बद्ध हो गये। किसीने खाद्य-संग्रह करनेका भार लिया, कोई शत्रु-विजय करनेमें लगा और कोई दूसरे आवश्यक-काम करने लगा। इस तरह वह लोग अलग अलग काममें लग गये। परन्तु इतने पर ही इतिश्री नहीं होगई, उन्होंने समझा कि एक दूसरेकी सहायताके बिना कोई भी अकेला कृषि-कार्य वा शत्रु-दमन नहीं कर सकेगा। इसलिए उन्होंने यह व्यवस्था की—

(१) जो युद्ध-विग्रहमें लगे रहें, उनके वा उनके कुटुम्बियोंके भरण-पोषणका भार दूसरे लें; और इस-तरह उनको शत्रुविजय करनेमें सहायता पहुंचाई जाय।

(२) कृषिजीवी लोग अन्न पैदा करें, परन्तु इसके लिए उनको शान्ति मिलनेकी ज़रूरत है; अतएव वह फ़सल पैदा करनेके बदलेमें शान्ति पावेंगे।

यह स्वार्थ ही हुआ। स्वार्थके साथ समाजका घनिष्ठ सम्बन्ध है और घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण ही हम समाज-च्युत व्यक्तिको कठिन दंड देना अच्छा समझते हैं। सामाजिक दंडसे दंडित

व्यक्ति सबकी घृणाका पात्र होता है। उसके घर नाई धोबी कोई नहीं जाते और न नौकर-चाकर उसका काम करते हैं; ग़र्ज़ कि वह सब बातोंसे वंचित रहता है।

इन बातोंसे हमको समझना चाहिये कि बद्ध-बंधकता-सम्बन्धयुक्त जो दलबद्ध नरनारियोंका समूह है वही समाज है। यही समाजका अर्थ है। समाजका यह दल नाना प्रकारके उद्देश्योंसे संगठित हो सकता है, जैसे धर्मसाधन, शान्तिरक्षा, आमोद प्रमोद, साहित्य चर्चा, वाणिज्य व्यवसाय इत्यादि। इन भिन्न भिन्न उद्देश्योंसे गठित समाजके नियम, गठन पद्धति और आकार भिन्न भिन्न होंगे। समाजका आदेश और उसके पालनकी व्यवस्थाका भी भेद रहेगा। धर्मसमाज उपासनाका पद्धति-निर्देश और उपासकोंके कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निर्णय करेगा। शान्ति और न्यायकी मर्यादाको अक्षुण्ण रखना समाजका लक्ष्य है। इसीलिए घरके और बाहरके शत्रुओंसे अपनेको निरापद रखनेकी व्यवस्था भी समाजको करनी पड़ेगी। सत्य, न्याय, धर्मपालन और सब विषयोंमें श्रृङ्खला विधान भी उसीको करना होगा और वही राष्ट्रगठनकी प्रणालीका निर्देश तथा नियम बनावेगा।

समाज-विज्ञानका व्यापक अर्थ हम समझते हैं—समाजके मानवोंकी क्रिया-कलापका विश्लेषण और आलोचन। मनुष्य जो जो समाज बनाता है, समाज-विज्ञान उसका स्वरूप निर्णय करता है। इसके अन्तर्गत धर्मविज्ञान, धनविज्ञान, राष्ट्र विज्ञान और समाजबद्ध मानवोंकी भिन्न भिन्न चेष्टाओंका वर्णन है; और समाज-विज्ञान उनका विश्लेषण और निरूपण करता है।

आदिम कालसे आज तक जितने प्रकारके राष्ट्र स्थापित हुए हैं, राष्ट्र-विज्ञान उनका सिलसिलेवार इतिहास नहीं है। बल्कि, जुदे जुदे युगोंमें राष्ट्रका जैसा परिवर्तन हुआ है, यह उसका मूल कारण बतानेवाला है। राष्ट्र-संगठनका उद्देश्य क्या है, राष्ट्रीय शरीरके अंग प्रत्यंग कौन कौनसे हैं, उनका आपसका सम्बन्ध क्या है, इन बातोंका राष्ट्र विज्ञान समाधान करता है। अतएव राष्ट्र-विज्ञान राष्ट्रका ऐतिहासिक विवरण नहीं देता; वह तो राष्ट्रकी दशाका आलोचक, विश्लेषक और पुरोहित है।

समयकी गतिने राष्ट्रके आकार प्रकारमें बहुत परिवर्तन कर डाला है। इस परिवर्तन को देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। वर्त्तमान युगमें हम देखते हैं कि राष्ट्रका कहाँ फैलाव, कहाँ संकुचन, कहां स्थिति और कहां गति है। प्राचीन इतिहासके पृष्ठोंमें ग्रीक-नगर-राष्ट्रों और हिमालयके नीचेके क्षुद्र-राष्ट्रोंका जो चित्र देखा जाता है, उसके साथ वर्तमान ब्रिटिश साम्राज्यके अर्द्ध-पृथ्वी-व्यापी आयतनका कितना असीम भेद है, यह देख कर आश्चर्यसे चकित होना पड़ता है। प्राचीन नगर राष्ट्रोंका संगठन कितना सरल था। राष्ट्रपति एक ओर शासक और सेनानी था, तो दूसरी ओर पुरोहित। मगर आधुनिक राष्ट्रको देखिये। इसमें कितनी गुरु समस्या, कितनी स्वाधिकार रक्षाकी प्रबल चेष्टा और राष्ट्रीय स्वपक्षकी कितनी अधिकता है। राष्ट्र-विज्ञान भी चुपचाप नहीं बैठा रहा है, उसने भी इस क्रम विकासके साथ अपने फैलावमें वृद्धि पाई है। पहले जो बातें सपनेमें भी नहीं थीं—जो समस्याएँ ख़्यालमें भी नहीं आई थीं, इस समय राष्ट्रविज्ञान को ऐसी बहुत सी समस्याओंका समाधान करना पड़ रहा है। इसलिए इसकी विधि, इसके नियम और इसके सिद्धान्त भी क्रमशः बदल गये हैं; जो हैं भी वह परिवर्तनशील हैं अर्थात् अभ्रान्त सत्यरूपमें यह चिर प्रतिष्ठित नहीं रहते। पारिपार्श्विक अवस्थाके परिवर्तनके साथ इनका परिवर्तन भी अवश्यम्भावी है।

प्राचीन हिन्दू राष्ट्रविज्ञानको "दंडनीति" कहते थे। वह राष्ट्रीय विषयकी आलोचना नीतिके अंगमें मानते थे, क्योंकि सब प्रकारकी उन्नतिका साधन ही इनका लक्ष्य था। प्रत्येक राजाका

कर्त्तव्य था कि वह त्रिवेद, * आन्वीक्षिकी, † वार्ता ‡ और दंडनीतिका अनुशीलन करे। याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है कि इन सब शास्त्रोंमें जो व्यक्ति विशेष रूपसे प्रवीण हो उसीके राजतिलक होना चाहिये।

दंडनीति बड़े महत्वका विषय है। शुक्राचार्यजीका कहना है कि "दंडनीतिका उद्देश्य, दंडका सुविधान करके राष्ट्रीय शान्ति और शृंखलाकी रक्षा करना है।

महाभारतमें नीतिशास्त्रकी उत्पत्तिका एक आख्यान है। सत्युगमें जब मोहके आविर्भावसे पापकी उत्पत्ति हुई, तब देवताओंको आशंका हुई कि कहीं आशुवेद धर्म लोप न हो जाय। इस आशंकासे व्याकुल होकर वह ब्रह्माकी शरणमें गये। ब्रह्माने इनकी बात सुन फौरन ही लाख-अध्यायों वाला नीतिशास्त्र बना डाला। यही शास्त्र कालक्रमसे शुक्राचार्यजीके द्वारा सहस्र अध्यायोंमें लिपिबद्ध हुआ।

संस्कृत साहित्यमें दंडनीति विशारदोंके कई नाम देखे जाते हैं। परन्तु, उनमें कौटिल्य, शुक्राचार्य, कामन्द आदि सबसे प्रधान हैं। इनका लक्ष्य था शासनकार्यकी सम्पूर्णताका साधन। दंडनीति इसीलिए इतना आदर पाती थी।

यहां पर हम कौटिल्यका एक वचन लिख कर इस लेखको समाप्त करेंगे। कौटिल्य कहते हैं कि "राजकाजमें क्या कर्त्तव्य है, क्या अकर्त्तव्य है—दंडनीति इसका निरूपण करती है; और वृद्धि तथा दुर्बलताको छुड़ानेका उपाय बतलाती है।"

---

* ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद।

† वेद शास्त्रको सुन कर उनकी पर्यालोचना करना।

‡ कृषि वाणिज्यादि विषयक शास्त्र।

# बेदाग साफ सुथरे हाथ

फोटोग्राफरोंको खुशखबरी

जो लोग फोटोग्राफरी करते हैं उनके हाथों पर रासायनिक पदार्थोंके दाग़ पड़ जाते हैं, उंगलियां रंग जाती हैं। कुछ लोगों का खयाल है कि दाग़ हाइपो या साइनाइडसे मिटाये जा सकते हैं, किन्तु काम करनेवालों का अनुभव है कि काम करते रहनेमें ज़रा भी फुरसत नहीं मिलती। घंटों काम कर चुकनेके बाद यदि आप चाहें कि दाग़ोंको छुड़ा दें तो भी कठिनाई पड़ेगी। अतएव बहुत दिनोंसे एक ऐसे पदार्थ की आवश्यकता थी, जिसके लगानेके बाद काम करनेसे दाग़धब्बे पड़नेका भय ज़रा भी न रहे। एक सज्जनने हालमें ही एक नुसखा सायंस सिफटिंग्समें छपवाया है। उसे उपयोगी समझ हम पाठकोंके भेंट करते हैं।

निम्न लिखित चीज़ोंको लीजिये:—

| शुद्ध ज़ेतून के तेल की साबुन की | |
|---|---|
| बारीक कतरन | १½ छटांक |
| मोम | " |
| पानी | " |
| लेनोलिन* | " |
| अमोनिया | १३५ बूंद |

पानीको गरम करके उसमें पहिले साबुन घुला लीजिये।

तदनन्तर उसमें मोम मिलाइये और अमोनिया छोड़ दीजिये। जब घोल स्वच्छ हो जाय तो लेनोलिन छोड़ दीजिये। यदि यह मिश्रण बहुत गाढ़ा हो तो पानी मिलाकर यथोचित पतला करलें।

काम शिरू करनेके पहिले फोटोग्राफरको उचित है कि अपने हाथ साबुनसे धोवे और साबुनके झाग रहते हुए ही उपरोक्त मिश्रण हाथों पर खूब रगड़ कर जज़्ब करा दे। ऐसा करनेसे हाथ

---

*ऊन से निकाली हुई एक किस्म की चिकनाई

बिल्कुल साफ और सूखे नज़र आयेंगे। इसके बाद जिस काम को चाहे करे हाथों पर धब्बे न पड़ेंगे। जब दिनका काम खतम हो जाय तो गरम पानीसे हाथ धो डालने चाहियें और थोड़ा सा लेनोलिन रगड़ लेना चाहिये।

## चान्दीके मुलम्मेके बरतन साफ करना

बारीक रूज (Jewellers' rouge) १ औंस, हड्डी-का चूर्ण १ औंस, अमोनिया ३ औंस लेकर खूब हिलाइये। इस मिश्रणसे मुलम्मेके बरतन बहुत अच्छे साफ हो जायंगे।

## हाथोंपरसे तम्बाकूके दाग़ छुड़ाना

सिगरेट या तम्बाकू पीनेवालोंके हाथोंमें बड़े खराब धुआंके निशान पड़ जाया करते हैं। उन्हें छुड़ाना मंजूर हो तो ब्लीचिंग पौडरके घोलका प्रयोग करना चाहिये।

## फलोंका बगीचा लगाना

[ले०—श्री० आर. एस. चौधरी]

बगीचा लगानेमें कमसे कम तीन मुख्य बातों का ध्यान रखना चाहियेः—(१) मिट्टी, (२) पानी, (३) रक्षा—पवन, पशु, चोर इत्यादिसे। इसके सिवा यह भी विचार करना पड़ता है कि शहर, रेल वा सड़कसे बाग कितनी दूरीपर है। दूरीके अनुसार उसमें पेड़ लगाने चाहियें। इसके लिए ज़मीन ऐसी हो जो कमसे कम तीन फुटतक नरम हो और जिसमें पानी नीचे तक जासके। अगर नीचेकी मिट्टी पथरीली हो अथवा चिकनी हो तो उसमें कभी बाग न लगाना चाहिये। कुआ भी बाग़में या उसके पास होना चाहिये, अथवा नहरके पानीका सुभीता होना मुख्य है; क्योंकि पेड़ोंको कई साल तक, जब तक वह छोटे रहते हैं, पानी देना ही चाहिये। फिर पेड़ोंको पवनके वेगसे अथवा जानवरोंसे बचानेके लिए बगीचोंके चारों ओर कुछ कांटेदार झाड़ होने चाहियें, जैसे पारकनसोनिया, करौंदा, नागफनी इत्यादि। पेड़ लगानेसे एक साल पहिलेसे ही उस ज़मीनको जिसमें बाग़ लगाना है ठीक करना चाहिये। बरसात आनेसे कोई चार पांच महीने पहिले ज़मीनको अंग्रेजी हलसे जोतना चाहिये। जनवरीमें उसको एकबार गहरा जोत दिया जाय, फिर उसे दो तीन महीने वैसा ही पड़ा रहने दिया जाय। तदनन्तर उसको दूसरी बार अंग्रेज़ी हलसे जोतकर दो या तीन बार देशी हलसे जोत देना चाहिये। शुरू बरसातमें सनई, ढैंचा, बरबट्टा अथवा अरंड कोई भी एक चीज़ बोनी चाहिये और कोई सात या आठ सप्ताहके बाद उसको काटकर उसी ज़मीनमें दबाना चाहिये। इसके बाद जब वह सड़ जायं अर्थात् लगभग एक या डेढ़ माहके बाद फिर देशी हलसे जोतना चाहिये। जब वर्षा ऋतु समाप्त होने को हो तो उसमें पौधे लगानेके लिए गड्ढे खोद देने चाहियें और गड्ढों के चारों ओर कोई फलीवाली चीज़ जिसकी जड़ें गहरी जायं वो देनी चाहियें; जैसे जापानी मूंग-फली। मूंगफली निकालकर सारे पौधे ज़मीनमें दबा देने चाहियें और ज़मीन देशी हलसे जोतनी चाहिये। जहां पर पानी का सुभीता हो जनवरी-में फलोंके पौधे लगा देने चाहियें। अक्सर लोग बरसातमें पौधे लगाना अच्छा समझते हैं, मगर इससे हानियां बहुत होती हैं। जहां तक हो पौधे गरमी पड़नेसे पहिले ही लगा देने चाहियें, नहीं तो पौधोंकी बाढ़ मारी जाती है। अगर पौधे अखीर जनवरीमें लगाये जायंगे तो वह बरसातका पहिला पानी भली भांति उपयोगमें ला सकेंगे। और जो अक्सर ज़मीनमें चुआ लग जाता है (Water logging) उसे भी सहन कर सकेंगे। पौधे लगानेके लिए गड्ढे क़रीब तीन फुट गहरे और दो फुट व्यास वाले खोदने चाहियें। निकली हुई मट्टीमें ७॥ सेर घूरा, २३

सेर पिसी हुई हड्डी और ३½ सेर राखकी गड्ढा मिला देनी चाहिये। पहिले गड्ढेमें कुछ मिट्टी भर देनी चाहिये। फिर पौधोंकी जड़ें खूब सीधी करके और झाड़कर पेड़ लगा देने चाहियें और गड्ढेमें ऊपर तक मिट्टी भरके खूब पांवसे दबा देनी चाहिये और पानी देना चाहिये। इसके सिवा बागमें कोई पांच या छः साल तक बराबर फलीवाली फसलें बोनी चाहियें और वह उसीमें जोत देनी चाहियें या ऐसा भी कर सकते हैं कि भाजी इत्यादि लगाते रहें, मगर दूसरी या तीसरी साल फलीवाले बीज अवश्य बोने चाहियें। मैं सुभीतेके लिए कुछ मुख्य पेड़ोंके लिए एक पेड़से दूसरे तककी दूरीका हिसाब लिखे देता हूं।

| नाम पेड़ | दूरी | नाम पेड़ | दूरी | नाम पेड़ | दूरी |
|---|---|---|---|---|---|
| आम | ३० फुट | बेर | १५ फुट | अनार | १५ फुट |
| पपीता | १० " | नारंगी | २० ,, | आड़ू | २० ,, |
| नीबू | १५ " | अंगूर | १० ,, | अंजीर | १५ ,, |
| केला | १२ " | अमरूद | २० ,, | चैरी | १८ ,, |

फुलवाड़ी सींचने और खाद देनेकी उत्तम विधि

आजकल जाड़ेमें उगनेवाले फूलोंके पौधे निकल रहे हैं। इसके लिए हमको कितना परिश्रम करना पड़ा? देखिये पहिले ज़मीनका एक टुकड़ा फुलवाड़ीके लिए लिया। उसे खोदा, ढेले तोड़े, सड़ी गली पत्ती और गोबर इत्यादिका खाद दिया, पानीसे सींचा, बीज भांति भांतिके फूलोंके बोये, यह सब किस लिए किया? इसी लिए तो कि हमको अच्छे बड़े बड़े सुहावने फूल मिलें। यह सब तो हो गया। अब फूल लेनेके लिए केवल एक ध्यान देने योग्य बात रह गई। वह यह है कि पौधोंको उचित रीतिसे सींचा जाय। सींचनेकी साधारण यह विधि है कि नालीके ज़रिये सारे टुकड़ेपर पानी फैला देते हैं। इससे पानी ठीक जड़ों तक नहीं पहुंचता। ज़मीन दो दिनमें सूख जाती है। पपड़ी जम जाती है। वायु पौधोंकी जड़ों तक नहीं पहुंचती। ज़मीनके अन्दर जीवाणु ( bacteria ) काम नहीं कर सकते। इससे अधिक पानी व्यर्थ नष्ट होता है और फल यह होता है कि पौधे अच्छे और उत्तम पुष्प नहीं दे सकते। इस कारण यह विधि बहुत ही उपयोगी होगी कि आप करीब १० इंच ऊंचे गमले ( Flowerpots ) लेकर उनके चारों तरफ एक एक फुट जगह छोड़कर जमीनमें इस प्रकार गाड़ दें कि अन्दर रहे और शेष ऊपर; तदनन्तर उनके चारों ओर पौधोंके बीज इस प्रकार बो दिये जायं कि पौधे उग आनेपर गमलोंको ढकलें। अगर हरेक गमला प्रति सप्ताह दो बार भर दिया जाय तो मिट्टी नम बनी रहेगी और पौधोंके स्वास्थ्यमें तनिक भी बाधा न पड़ेगी। खैर आजकल तो जाड़े हैं। गरमीमें इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिये। इसी भांति इन्हीं गमलोंमें भरकर पशुओंके पेशाबकी खाद भी आनन्द पूर्वक पौधोंकी जड़ों तक पहुँचाई जा सकती है। गमलोंका मूल्य अधिक नहीं होता, पर इस विधिसे परिश्रम और पानीकी बचत बहुत होती है।

## पशुओंके थनकी सूजन

चिन्ह—पशुके थनके आस पास फुड़ियां निकलती हैं, यह पीली होती हैं और इनमें सफेद पानी सा होता है। जब यह फूट जाती हैं तो घाव हो जाता है, जो सख्त होनेपर धीरे धीरे थनका सूराख़ बन्द कर देता है।

कारण—यह छूतकी बीमारी होती है, जिसके जीवाणु ( germs ) होते हैं और जो एक पशुसे दूसरेपर शीघ्र पहुंच जाते हैं।

रोकनेके उपाय

ऐसे पशुको नीरोग पशुओंमेंसे तुरन्त हटादेना चाहिये और पशुशालाको खूब स्वच्छ करके उसमें गंधकका धुआं देना चाहिये। रोगी पशुके थनोंमें दवा इस भांति लगानी चाहिये। एक कटोरेमें कुछ पानी गरम करके उसमें इतना बोरिक एसिड ( Boric acid ) छोड़ो कि उससे अधिक गल न सके ( Saturated solution )। उसमें थन डुबाकर तीन चार मिनट तक सेंकना चाहिये और फिर थनों-

को सुखाकर आयोडीनकी मरहम लगाना चाहिये ( Iodine ointment )

## खेतमें नत्रजन पैदा करनेवाले जीवाणु

( Bacteria inocculation )

यह तो शायद आप लोगोंको ज्ञात ही होगा कि फलीवाले जितने पौधे होते हैं अथवा दालवाले उनकी जड़ोंमें ऐसे जीवाणु होते हैं जो वायुमेंसे नत्रजन लेकर ज़मीनमें पौधोंकी जड़ोंमें इकट्ठा करते हैं। इनकी पहिचान यह है कि दालवाले पौधोंकी जड़ों पर छोटी छोटी गोल गोल गांठें सी होती हैं। अक्सर ऐसा होता है कि किसी खेतमें यह दाने नहीं होते। ऐसा होनेपर यह देखना चाहिये कि खेतमें किसी भांतिका तेज़ाब ( acid ) अथवा नमक तो ऐसा नहीं है, जिसके कारण जीवाणु मर गये अथवा काम नहीं कर सकते। प्रायः ऐसे खेतमें बुझा हुआ चूना फैला देनेसे दोष जाता रहता है। चूना देनेपर भी उस खेतमें दालवाले पौधों की जड़ोंमें दाने न मिलें तो जीवाणु पैदा करनेका प्रयत्न करना चाहिये। किसी अच्छे खेतकी मट्टी लाकर उस खेतमें थोड़ी थोड़ी फैलानी चाहिये। या बोते समय बीजोंको मट्टीमें मिलाकर खेतमें बो देना चाहिये। इस भांति जीवाणु पैदा हो जायंगे और खेत ताक़तवर हो जायगा। —चौधरी

## हकलाना-तुतलाना

लिटरेरी डाइजेस्ट (अक्टूबर) में हकलानेके विषयमें एक सम्पादकीय टिप्पणी निकली है। इसमें बतलाया गया है कि न्यूयार्कमें ३०००० हकलानेवाले हैं, जिनमें से ८००० तो केवल विद्यार्थी ही हैं। इसी प्रसङ्गमें डा० फ्रेडरिक ( डाइरेक्टर आफ़ स्पीच ) ने एक पैंफलेट निकाला है, जिसमें आपने लिखा है कि "वाणीके ठीक प्रकारसे वशमें न रहनेसे केवल बुद्धिके विकासमें ही बाधा नहीं पड़ती, प्रत्युत आचारहीनताकी ओर भी प्रवृत्ति हो जाती है। इसीलिए वहांकी सरकारने ऐसे हकलानेवालोंका बाहरसे आना रोक दिया है, जिससे वहां अधिक अनाचार न फैले। हकलाना या तुतलाना भी एक मस्तिष्कका ही दोष है, जो बादमें शरीर-दोषके रूपमें प्रकट होता है।

इसके कारणोंके विषयमें आप कहते हैं कि भय, अनुकरण और वाणी साधनेकी अयुक्त विधि ही इस प्रकारसे हकलानेका कारण होती है। बच्चोंको कई अध्यापक पहलेसे ही कठिन कठिन शब्द बोलना सिखाते हैं, जिसमें विद्यार्थी शीघ्र ही विद्वान हो जायं। परन्तु विद्यार्थी उन शब्दोंका उच्चारण करना नहीं सीख पाते और अशुद्ध उच्चारण करनेपर अध्यापककी धमकी और बादमें सहपाठियोंके मज़ाकसे डरते रहते हैं। और इसी कारण उल्टा सुल्टा शब्द रुक रुक कर बोलने लगते हैं। इधर अध्यापक भी बहुत बार ऐसे विद्यार्थी पर ही अपना सारा बल लगा देते हैं। इससे और विद्यार्थी भी उसी ओर अधिक आकर्षित हो जाते हैं और भय खानेवाला विद्यार्थी और अधिक घबरा जाता है।

यह दोष प्रथमावस्थामें शीघ्र सुधार सकते हैं। परन्तु माता पिता इन बातोंपर विशेष ध्यान नहीं देते। वह अपने सब कर्तव्य भावी स्कूलके शिक्षकोंपर छोड़ देते हैं। इससे बच्चोंका वह दोष और भी पक्का हो जाता है। शिक्षकको चाहिये कि बच्चेके दोषको दूर करनेके लिए ऐसी रीतिसे सिखावे जिससे उसके दोष पर अन्योंका ध्यान ही नहीं खिंचे और उनको भय और मज़ाकसे डरनेका ध्यान न आवे।

कतिपय अध्यापक ऐसे विद्यार्थियोंको सलाह दिया करते हैं कि तुम एक एक शब्दके बाद कुछ विश्राम लिया करो और सांस भर लिया करो। ऐसी नसीहतें न देनी चाहियें, क्योंकि ऐसी अनुमति

देनेसे प्रत्येक शब्दका उच्चारण करते हुये उसका ध्यान अपनी पहली घबराहट पर खिंच जाता है। और प्रति शब्द पर उसके आगे समस्या खड़ी हो जाती है और घबराहट निरन्तर उसके चित्त पर सवार रहती है। पहली कठिनताको याद कर करके वह और भी घबरा जाता है। कइयोंका विचार है कि हकलानेवाले बच्चोंके फेफड़ेमें श्वासकी न्यूनता होनेसे वह रुकते हैं। परन्तु देखा गया है कि उनके फेफड़ोंसे सांसकी कमी नहीं होती। बल्कि चित्तकी घबराहटसे ही वह तुतलाते हैं। यद्यपि गानेमें साधारण बोलनेकी अपेक्षा अधिक श्वासका व्यय होता है तो भी गानेके समय हकलाहट सर्वथा नहीं होती।

हकलानेवाले विद्यार्थी प्रायः स्कूल छोड़नेके बाद बहुत शीघ्र अपना सब पढ़ा लिखा भूलने लगते हैं। यदि उनका यह दोष पूर्वमें ही हट जाता तो ऐसा मस्तिष्क दोष कभी न होता।

वाणीके दोषके साथ साथ यह भी देखा गया है कि प्रायः ऐसे विद्यार्थियोंके मस्तिष्क भी बहुत निर्बल और न्यून शक्तिवाले होते हैं। क्योंकि वह अपनी किताबी शिक्षाको बोलकर दोहरा नहीं सकते। बोलते समय उनके सिर पर खास तरहकी हिचकिचाहट, संकोच और लज्जा का भूत सवार हो जाता है।

हकलानेमें प्रायः निम्नलिखित भावोंका समावेश रहता है। १. दोषयुक्त अशुद्ध शब्दके निकलते हुए एक दम रुकना। २. शब्दको प्रारम्भ करनेके पहले कुछ कठिनता अनुभव करना या एक शब्दके बाद दूसरे शब्दको बोलते हुए कठिनता अनुभव करना। ३. बोलते समय मुख, जिव्हा गर्दन और शेष शरीरमें विशेष प्रकारके झटके, कुरूपता और कुचेष्टाका आविर्भाव होना। ४. हकलाना, अर्थात् किसी एक वर्णका या शब्दका दूसरे वर्ण या शब्दके बोलनेके पहले अनावश्यक रूपसे दोहराना और झिझकना जैसे ज्-ज्-ज् जूता, ल् ल् ल् लोट् ट् टा इत्यादि।

प्रायः देखा गया है कि जो बच्चे नये नये स्कूलमें पढ़ने आते हैं उनमेंसे ९० प्रति शतको तो यही पता नहीं होता कि किसी शब्दको ठीक बोलनेके लिए मुखमें जीभ किस स्थानपर लगानी चाहिये। और मुखमें जीभकी कैसी स्थिति होनी चाहिये। उसको मां बोलनेके लिये कहा जाय तो वह मुख फाड़ देता है। होंठ फाड़कर 'मां' नहीं बोला जा सकता।

परन्तु बच्चोंका इसमें इतना दोष नहीं है जितना कि अध्यापकोंका है। वही बच्चोंकी वाणीको ठीक रूपसे साधनेके उचित तरीके नहीं जानते। वह स्वतः कभी इस बातको नहीं जानते कि कौन सा वर्ण कहांसे बोला जायगा। फ्रेडरिक मार्टिनके उपरोक्त विचारों को देखकर बड़ा विस्मय होता है। क्योंकि जिस बातका सबसे प्रथम आविष्कार वैदिक कालके ऋषियोंने किया था और जिसकी सबसे प्रथम आवश्यकता अनुभव की थी वही आवश्यकताका यूरोप अमेरिकामें अब अनुभव हो रहा है।

भारतीय शिक्षाका आरम्भ वर्णोच्चारणशिक्षासे होता है। जिसमें सबसे पहले बच्चेको अ से लेकर म तकके सब वर्णोंके उच्चारण करनेके लिए मुखके उचित प्रयत्न और जिव्हाके स्पर्श स्थान आदिका पूरा ज्ञान दिया जाता है। वर्णोंका क्रम ऐसा सीधा है कि गलेके मूलसे लेकर क्रमसे आगे बढ़ते आइये। उसी क्रमसे वर्णोंका भी क्रम है।

क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म। यह पांच वर्ग क्रमसे कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्तमूल और ओष्ठसे पैदा होते हैं। अ इ ऊ तीनों स्वर क्रमसे कण्ठ तालु और ओष्ठसे पैदा होते हैं।

शेष सब वर्ण इन्हीं वर्णोंके मिश्रणसे बनते हैं; इन्हींके स्थानोंके मिश्रणसे बनते हैं। उक्त वर्णोंमें मुखको विशेष कष्ट प्रयत्न देनेकी आवश्यकता नहीं है। अ से अः तक सब स्वर कहाते हैं, क्योंकि वह स्वयं अनायास निकलते हैं। शेष सब व्यञ्जन

कहाते हैं जो स्वरोंके साथ मिलकर मुखके विशेष प्रयत्नसे प्रकट होते हैं। इन सभी सूक्ष्म रहस्यों-को और भी गहराई तक सभी प्राचीन शिक्षाओंमें खोला गया था। वेदाध्ययनके अभ्यासके लिए सबसे पहले वर्णोच्चारण की ही शिक्षा दी जाती थी। वेदके अशुद्ध मन्त्रोच्चारणको पाप समझा जाता था। वह कहा करते थे कि वर्णोंका शुद्ध उच्चारण न आना म्लेच्छ बननेके समान है। इसी-लिए व्याकरणको वेदका मुख्य अंग माना है।

वर्णोच्चारणकी ठीक ठीक शिक्षा न होनेसे अर्थका अनर्थ हो जाता है। स्वबन्धुको श्वबन्धु कहनेसे कितना भेद हो जाता है। स्व—अपना बन्धु। श्व—कुत्तेका बन्धु। वर्णोच्चारणकी शिक्षा न केवल बालकोंके लिए शिक्षा है। प्रत्युत अध्यापकोंके लिए भी उसमें सब प्रकारकी शिक्षा सम्बन्धी आवश्यक बातें पूरी तरहसे दर्शायी हैं।

माँ बापको स्वयं चाहिये कि वह इस शिक्षाके अनुसार बच्चोंको वर्णोंका ठीक ठीक उच्चारण सिखावें, जिससे वह पीछेसे भय द्वारा हकलाना और तुतलाना न सीख जायं।

हमारे यहां मातृवान् पितृवान् आचार्यवान् तीन प्रकारका होना प्रत्येक बालकके लिए आवश्यक था। सम्पूर्ण जीवनकी प्रथम शिक्षा माताके ही वशकी थी। इसीसे माताको आचार्यसे १०० गुना पूज्य माना गया है।

वर्तमान शिक्षाप्रणालीमें शिक्षक या अध्यापक एक खास वर्दीमें तना हुआ सिपाही या कांस्टेबल-की तरह विद्यार्थी के लिए सदा भयका कारण बना रहता है। और विद्यार्थी गण स्कूलके उठने बैठने-की नियन्त्रणाओं और खास तरहकी बैंच और टेबलोंकी हद बन्दियोंसे अपने आपको कैदीसा अनुभव करते हैं। और अपने हर प्रकारके दोष पर अध्यापकसे मारखानेकी आशङ्कामें रहता है।

प्राचीन गुरुकुल प्रणालीमें विद्यार्थी गुरुके घरमें गुरुका बालक होकर रहता था। घरके बच्चोंके समान गुरुगृहको अपना घर समझता था। पिताके घरसे उसमें ज्ञानोपलब्धि ही विशेष घटना होती थी और शेष सब बातें समान रहनेसे उसको भय और हिचक अनुभव नहीं हो सकती थी। फलतः प्राचीन शिक्षाप्रणालीमें कोई ऐसी बात नहीं उठा रखी थी, जिसमें विद्यार्थियोंके जीवन, मानस, मस्तिष्क और आचारमें दोष रह जाय।

वर्तमानमें यदि सबसे अधिक बिगाड़, दोष, कुशिक्षा और हीनाचारकी शिकायतें हैं तो स्कूली जीवनमें ही हैं।

इन पद्धतियोंको हमने ईसाई संसारसे सीखा है और अपनी पद्धतियोंको तिलाञ्जलि दी है। परन्तु पाश्चात्य संसार हमारी छोड़ी हुई पद्धतियोंको अपनानेके लिए सहर्ष तय्यार है। और हम अभी चेतना नहीं चाहते।

—जयदेवशर्मा विद्यालङ्कार

## ह्वेल मछली

पश्चिमीय वैज्ञानिकों का कथन है कि ह्वेलका परिचय उन लोगोंको प्राचीन कालसे है। बाइबिलमें भी ह्वेल शब्द कई स्थान पर पाया जाता है; परन्तु नामके अतिरिक्त और भी कुछ उन लोगोंको इसके विषयमें मालूम था या नहीं, इसका अनुमान करना कठिन है। हां, इतना कह सकते हैं कि न तो पहिले कभी इसका शिकार ही किया जाता था और न किसी म्यूज़ियम (Museum) में दर्शकोंके लिए इसके अंग रखे जाते थे।

ह्वेल सिटेशिया ( cetacea ) श्रेणीका प्राणी है। इसके ढाँचेकी जांच करनेसे इसकी हड्डियां थलचर जीवोंके समान पाई जाती हैं और कुछ विशेष अंगोंमें बहुत घना सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। इस जानवरका रुधिर भी थलचर जानवरोंके रुधिर-की भांति गरम होता है। इसके भी फेफड़े होते हैं और समुद्रकी सतहपर आकर सांस लेती है। मादा ह्वेल बच्चा जनती है और उसको अपना ही

दूध पिलाती हैं। जिन लोगोंने इसका दूध पिया है उनका कहना है कि इसका दूध और गायका दूध एक ही तरहका होता है। ह्वेलकी पञ्चकेन्द्रिय भी थलचरोंके समान होती है।

ह्वेल कई प्रकारकी होती हैं और भिन्न भिन्न स्थानोंमें पाई जाती हैं। इनके शरीरकी लम्बाई चौड़ाई भी भिन्न भिन्न होती है। ग्रीनलैंड ह्वेल (Greenland whale) ग्रीनलैण्ड टापूके आस पासके समुद्रमें पाई जाती है। इसकी लम्बाई ७५ फुट तक और भार प्रायः ७५ टन तक होता है। शरीरकी परिधि ( घेरा ) ४० फुट होती है। सफने ( Fins), जिनके सहारे यह पानीमें चलती है, दस बारह फुटसे कम नहीं होते। पूंछ लंबी और चौड़ाईमें २५ फुट होती है। रोरकुअल ह्वेल (Rorqual whale) जो उत्तर समुद्रमें पाई जाती है सौ फुटसे भी अधिक लंबी होती है, परन्तु इसका शरीर ग्रीनलैंडकी ह्वेलसे पतला होता है। क्यूलामाक ( Culamaak ) और अंगुलिक ( Umgullik ) अल्यूशिअन द्वीप समूह ( Alutian Islands ) के पास मिलती हैं। कहा जाता है कि यह १७५ फुट लंबी होती है, परन्तु यह असम्भव सा जान पड़ता है, क्योंकि किसी विश्वस्त व्यक्तिने नहीं लिखा है। चौथे प्रकारकी ह्वेल स्पर्म (Sperm) ह्वेल होती है। यह दक्षिणी समुद्रोंमें मिलती है। यह सबसे बड़ी होती है। इसका शरीर ग्रीन लैन्ड ह्वेलके शरीरके बराबर ही मोटा होता है, परन्तु लम्बाईमें नब्बे ९० फुट तक होती है।

ह्वेलोंके और भी दो बड़े विभाग किये जा सकते हैं। एक तो वह जो दूसरी छोटी मछलियोंको खा जाती हैं और मांसाहारी होती हैं। दूसरी वह जो पानीमें होनेवाले छोटे छोटे पौदों या कीड़ों पर निर्वाह करती हैं। दूसरी प्रकारकी ह्वेल गर्म अर्थात् मध्यरेखा (Equator) के आस पासके समुद्रमें पाई जाती हैं। परन्तु पहिले प्रकारकी ह्वेल ठंडी जगहोंमें रहती हैं। दोनों प्रकारकी मछलियोंके रंग, रूप और बाहरी बनावटमें कोई भेद नहीं होता, किन्तु उनके स्वभावमें कुछ फर्क अवश्य पाया जाता है। शाकाहारी ह्वेल कोमल-हृदय, सहनशील और डरपोक होती है; और अगर छेड़ी जाय तो भागनेका प्रयत्न करती है। यह अपनी सन्तानको बहुत प्यार करती है। परन्तु मांसाहारी ह्वेल ऐसा नहीं करती और न इतनी डरपोक ही होती है। अगर इससे छेड़ छाड़ की जाय तो भयानक रूपसे आंखें और पूंछ दिखलाती है और बदला लेनेके लिए तुरंत उद्यत हो जाती है और बदला लेकर ही छोड़ती है—चाहे बदला लेनेमें उसे अपनी जान ही देनी पड़े। जब कभी इसका बच्चा पकड़ा जाता है तो यह भी उसके साथ अपनी जान तक दे देती है। दोनों प्रकारकी मछलियां परस्पर प्रीति रखती हैं। नर और मादा कभी अलग नहीं होते।

सब प्रकारकी ह्वेल मछलियोंका सर और मुंह बड़ा होता है और चौदह हाथ तक नापा गया है। ग्रीनलैन्ड ह्वेलके दांत नहीं होते, परन्तु जबड़े बहुत मजबूत होते हैं और ऊपरके तालूमें एक कांटेदार प्लेट होती है, जिसके सहारे यह अपनी शिकार पकड़ती है। स्पर्म ह्वेलके नीचेके जबड़ेमें ४२ दांत होते हैं। ऊपरके जबड़ेमें इतने ही गड्ढे होते हैं, जिनमें मुंह बन्द रखने पर इन दांतोंका ऊपरी भाग रहता है। यह गोल, नीचेसे मोटे और ऊपरसे पतले होते हैं और बहुत पैने और तीक्ष्ण होते हैं। ग्रीनलैन्ड ह्वेलका गला बहुत छोटा और स्पर्म ह्वेलका बहुत बड़ा होता है। यह समूचे आदमीको निगल सकती है, परंतु तो भी छोटी छोटी मछलियोंका ही आहार करती है। कभी कभी मरी हुई बड़ी मछलियोंको भी निगल जाती है।

प्रायः सभी ह्वेल मछलियोंके मुँहके भीतर एक प्रकारकी झिल्ली होती है। मुंहके अन्दर गया हुआ पानी इसके सहारे नथुनोंके रास्ते एक तरहकी थैलीमें इकट्ठा होता है। ह्वेलके सर पर पानीके बाहर आनेके लिए एक या दो छोटे छोटे छेद होते

हैं। इस छेदोंका लगाव पानीकी थैलीसे होता है। जब ह्वेल इस थैलीको दबाती है तो पानी इन छेदों के द्वारा बाहरको निकलने लगता है। यह कहा जाता है कि यह पानी इतने वेगसे निकलता है कि इसकी धार ४० फुटकी उंचाई तक जाती है। बहुतोंका मत है कि यह पानी हीं होता है, परंतु स्कोर्सबी (Scoresby), जो ह्वेलके विषयमें बहुत कुछ जानते थे और जिन्होंने इसका शिकार भी किया था, कहते हैं कि वास्तवमें यह पानी नहीं होता है किन्तु भाफ होती है। जब यह हवासे मिलती है और गाढ़ी होकर अन्तमें पानीके कणोंमें परिवर्तित हो जाती है तो पानीके रूपमें दिखाई पड़ती है। जब ह्वेल मछलियां खेल करना चाहती हैं तो इनके झुण्डके झुण्ड समुद्र तल पर आकर अपने इन्हीं छेदोंसे चारों तरफ फव्वारे छोड़ती रहती हैं।

जहां कहीं यह रहती हैं दो सौ से तीन सौ तक के झुण्डोंमें इकट्ठा फिरा करती हैं। इनमें एक नेता होता है जो सबसे आगे कुछ दूर पर चलता है। यह सब मछलियोंको जब कभी कोई विपत्ति अकस्मात् आ पड़ती है तो भागने या लड़नेके लिए चौकस कर देता है। यह दो तीन बार शब्द करता है और सब मछलियां होशियार हो जाती हैं। इनका शब्द भारी घण्टेके शब्दका सा होता है। यह पानीके भीतर घण्टे या सवा घण्टेसे ज्यादा नहीं रह सकती हैं। जब पानी पर अधिक वेगसे चलती हैं तो पांच मीलसे ज्यादा नहीं चल सकती हैं और स्वाभाविक वेग दो अढाई मील प्रति घंटेसे अधिक नहीं होता। जब पानीपर तैरती हैं तो पीठ पानीमें डूबती और उठती मालूम होती हैं।

ह्वेलकी शिकार

ह्वेलका शिकार किया जाता है। लोग जहाज़में बैठकर दूर दूरतक शिकार करने जाते हैं। जहाज़के साथ कुछ छोटी छोटी डोंगियां रहती हैं। यह लोग अपने साथ खाने पीनेका सब सामान ले जाते हैं। जहाज़में एक ऊंचा स्थान रहता है, जिसको 'कव्वेका घोंसला' (Crow's nest) कहते हैं। इसीपर एक आदमी हमेशा बैठा ह्वेलको देखा करता है। इस ऊंचे स्थानसे मीलोंकी दूरीपरकी ह्वेल, जब वह विहार करने और अपने सर परके छिद्रोंसे पानी उछालनेके लिए समुद्रके तट पर आती हैं, दिखाई पड़ जाती हैं। तब लोग छोटी छोटी डोंगियों पर बैठकर उसको मारनेके लिए जाते हैं। अगर दिन साफ होता है और समुद्रमें हवा इत्यादिके कारण बड़ी बड़ी लहरें नहीं उठतीं तो ह्वेलकी आवाज़ सुनकर भाग जानेका डर रहता है। इसलिए बड़ी सावधानीसे जाना पड़ता है। एक एक नावपर प्रायः आठ दस आदमीसे अधिक नहीं रहते, परंतु कई नाव साथ साथ रहती हैं। यह लोग नावमें भाले और एक प्रकारका लांबा तीक्ष्ण हथियार, जिसको हारपून (Harpoon) कहते हैं, ले जाते हैं। इनके अतिरिक्त लम्बी लम्बी डोरियां भी ले जाते हैं। प्रत्येक डोरीका टुकड़ा सात आठ सौ फुटसे कम नहीं होता और इस प्रकारके कई टुकड़े रहते हैं। यह हारपूनसे बंधे रहते हैं। जो लोग हारपून चलाते हैं वह नावके आगे पीछे किनारों पर खड़े होते हैं और बाकी लोग नावको खेते रहते हैं। समीप जाकर हारपून मारते हैं। इसके लगते ही ह्वेल सीधी पानीमें डुबकी लगाती है और हारपूनमें लगी हुई डोरी इसके पीछे खिंचती जाती है। परन्तु यह पानीके भीतर आधे घण्टेसे अधिक ठहर नहीं सकती और सांस लेनेके लिए उसे फिर ऊपर आना पड़ता है। जब ऊपर आती है तो फिर लोग इसी प्रकार हारपून लगाते हैं। इस प्रकार दो चार बार ऊपर नीचे आने जाने और रुधिरके बह जानेके कारण थककर पानीपर तैरने लगती है। तब लोग भालोंसे मार लेते हैं और काट काटकर जहाज़में भर लेते हैं।

कभी कभी यह पानीमें न डूबकर सीधी इधर उधर भागती है और शिकारी इसका पीछा करते चले जाते हैं। यह कोसों तक भागती चली जाती है और लोग डोरियां जोड़ते चले जाते हैं।

और इन्हीं डोरियोंके सहारे नावपर पीछा करते चले जाते हैं। कभी कभी सुबहकी भगाई हुई ह्वेल शामको मार पाते हैं। इससे पाठकोंको यह न समझना चाहिये कि ह्वेलका शिकार सुगम है और यह अपने दुश्मनोंपर आक्रमण नहीं करती। नहीं यह उतने ही जोरसे आक्रमण करती है जैसा कि इसका शरीर है। मान लिया कि इसके पास कोई अस्त्र नहीं है, परंतु परमात्माने इसकी पूँछ और जबड़ोंमें इतना असीम बल दिया है कि जिससे शिकारियोंका बचना मुश्किल हो जाता है और अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठते हैं। यह अपनी पूँछको नाव पर इस बलसे मारती है कि नावके टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। जबड़ोंसे पकड़कर नावको तोड़ डालती है। अगर कोई दूसरी नाव पास न हुई तो शिकारी पानीमें डूबकर मर जाते हैं। यह देखा गया है कि इसने तीन चार नावोंको बारी बारी से एक साथ ही डुबा दिया है। ऐसा भी देखा गया है कि यह पूँछको नीचेसे नावमें बड़ी जोरसे मारती है और यह पानीसे कई गज ऊपर उठ जाती है और उलटकर गिरती और डूब जाती है। शिकारी उसके नीचे आ जाते हैं और नावके साथ ही डूब जाते हैं। इससे उसकी पूँछके बलका अनुमान किया जा सकता है। शिकारियोंको इसके शिकारमें कैसा कष्ट होता है और उनको कितनी कठिनाइयां पड़ती हैं, इसका हाल निम्नलिखित दो तीन घटनाओंसे मालूम हो सकता है।

मई २८ सन् १८०७ ई० को इस प्रकारकी एक घटना हुई थी। रिज़ोल्यूशन ( Resolution ) नामी जहाज़के एक अफसरने एक ह्वेलके हारपून मारा; यह डुबकी मार गई। जब ऊपर निकली तो उसने अपनी पूँछ और सफने इस भयानक रीतिसे दिखावे कि सब लोग देखकर ठिठक गये और पास जानेका किसीको साहस न पड़ा। अन्तमें जहाज़के कप्तानने साहस करके एक और हारपून मारा। इतनेमें एक दूसरी नाव पर, कुछ लोग ह्वेलके इतने पास पहुँच गये कि उसने बीचों बीच नाव पर पूँछका इतनी जोरसे प्रहार किया कि उसके सब तखते टूटकर टुकड़े टुकड़े होगये और नाव पानीमें धँस गई। इस नावका हारपूनर (Harpooner) जो बीचमें बैठा था पहिले ही पानीमें कूद पड़ा था; वह बच गया। इसी प्रकार रोइम (Roim) जहाज़के कैपटेन लाइन्स (Lyons) एक समय लैब्राडरके समीप शिकार कर रहे थे। उन्होंने एक बड़ी भारी ह्वेलको पानी उछालते हुए कुछ दूरपर देखा। चार डोंगियोंमें थोड़े थोड़े आदमी बैठकर उसको मारनेके लिए गये। इनमें दो नावें एक साथ ही पहुँचीं और उन्होंने उसपर आक्रमण किया। ह्वेल तुरन्त डुबकी लगा गई और कुछ देरके बाद बाहर निकल नावमें इस ज़ोरसे अपने सरसे टक्कर दी कि वह पन्द्रह फुट पानीसे ऊपर उठ गई और ऊपरसे उलटकर गिरी। सब आदमी पानीमें इधर उधर गिरे और अन्य नाववालोंने उन्हें बचा लिया, परंतु एक मनुष्य नावमें फँस गया और डूबकर मर गया। इससे उसकी पूँछ और सरके बलका पता मिल सकता है।

एक और विचित्र घटना इसी प्रकारकी हुई थी, जिसमें एक ही नावसे तीन आदमी डूबकर मर गये थे। ग्रीनलैन्ड समुद्रमें एमविल (Aimwill) जहाज़के सात आदमी नावमें बैठकर गये थे। इन लोगोंने एक ह्वेलपर हारपून मारा। वह थोड़ी देरके लिए डूबी और फिर नावके नीचे आकर इतनी जोरसे पूँछसे फटकार दी कि वह पानीसे बहुत ऊपर उठ गई और उलटकर पानीमें गिरी। उसमेंसे केवल चार मनुष्य बचे और बाकी तीन जो डोरियोंमें फँस गये थे डूब गये।

कैपटेन स्कोर्सबी जो बहुत योग्य व्यक्ति और ह्वेलके शौकीन शिकारी थे लिखते हैं कि १८११ ई० में उन्होंने एक ह्वेलके बच्चेको यह सोचकर मारा कि इसकी मां उसको बचानेके लिए आवेगी तो उसे भी मारेंगे। उनका खयाल ग़लत न निकला। बच्चेकी मां कहीं निकट ही थी। उसने आकर बच्चेको पकड़ा और खींचकर ले चली थी।

इन लोगोंने उसका पीछा किया और बहुत प्रयत्नसे उसे भी मार लिया।

ह्वेलके शिकारसे लाभ

इसी प्रकारकी बहुत सी घटनायें हैं। इसका शिकार केवल तेलके ही लिए किया जाता था। हरेक ह्वेलमें कमसे कम एक टन अर्थात् २७ मन से अधिक चर्बी निकलती है। इसको औटाकर तेल बनाते हैं। यह जलानेके काम आता था। परंतु जबसे मिट्टीके तेलका प्रचार हो गया है तबसे इसका शिकार भी कम होने लगा है। इससे एक प्रकारकी सुगंधकी चीज़ निकलती है। कदाचित इसकी हड्डियां भी काममें आती हैं। अमेरिकाकी असभ्य जातियां कुछ दिनों पहिले इसका मांस खाती थीं। जिन लोगोंने इसका मांस खाया है उनका कहना है कि इसके मांससे ख़राब संसारमें किसी दूसरे जानवरका मांस नहीं होता है। इसका मांस नसीला, मोटा और लाल रंगका होता है।

ह्वेल पानीमें रहनेवाले जन्तुओंमें सबसे बड़ी समझी जाती है। परंतु ईश्वरने इसके मनुष्यके अतिरिक्त और भी दुश्मन पैदा कर दिये हैं। कई प्रकारकी मछलियां होती हैं जो इसका शिकार करती हैं। और यह प्राणोंको ले उनके सामनेसे भागती है। इनमेंसे ग्रैम्पस (grampus), जो एक प्रकारकी बड़ी मछली होती है, और फोक्स-शार्क (Fox-shark) जो एक प्रकारका मगर होता है, इसके जानी दुश्मन समझे जाते हैं। मगर छोटा और फुरतीला होनेके कारण ह्वेलको आगेसे रोकता है और ग्रैम्पस अचूक तीक्ष्ण दांतोंसे आक्रमण करती है। ग्रैम्पस केवल इसकी जीभ ही खाती है परंतु मगर इसका खून और मांस भी खाता है।

—कालीचरन

---

# बुढ़ापेमें जवानोंकासा चेहरा

मनुष्यके मुखपर नज़र डालते ही, यह पता लग जाता है कि वह बुड्ढा है या जवान। बुढ़ापेका आरम्भ होते ही चेहरेकी खाल ढीली पड़ जाती है, उसमें झुर्रियां और सिलवटें नज़र आने लगती हैं। चेहरेपर जवानीका जोबन बनाये रखनेका प्राकृतिक और इसीलिए अति उत्कृष्ट उपाय है विवेकमय और धार्मिक जीवन। जिसका मन शुद्ध, सन्तुष्ट और सुखी रहता है, जिसके हृदयांगनमें कलुषित विचारोंका उल्लास कभी नहीं होता है, जिसके विचार शान्तिमय, जिसकी आकांक्षाएं पवित्र और भाव ऊंचे होते हैं उसके मुखमण्डलपर अलौकिक आध्यात्मिक द्युति विराजमान रहती है। वह जरा व्याधिसे परे हो जाता है और शुकदेव, चरणदास, राम और कृष्णकी नाईं सदैव किशोर बना रहता है।

हालमें ही एक और उपाय, जो आज कलकी सभ्यताकी तरह दिखावटी और बनावटी है, निकाला गया है। अभीतक पेशेवर स्त्रियां ही यूरोपमें इसके सहारेसे अपने सौन्दर्यकी अवधि बढ़ानेमें समर्थ हुई हैं। सरजरी (शल्य चिकित्सा) की सहायतासे उनके चेहरे समयके पद चिन्होंसे बचे रहते हैं।

इस नई विधिको यदि खालकी दर्ज़ीगिरी कहा जाय तो अनुचित न होगा। जिस प्रकार चुस्त कपड़ोंके बनानेमें अच्छे कटर (काटनेवाले), सीनेवाले और ठीक बैठानेवाले कारीगरकी ज़रूरत होती है उसी प्रकार इस कामें भी यह तीनों बातें होती हैं। बड़े कुशल डाक्टरोंकी ज़रूरत इस कामके लिए होती है।

इस कामकी बारीकीका अन्दाज़ लगाना ज़रा मुश्किल है। चेहरेकी खालमें कई तहें होती हैं। ऊपरकी खालमें दो विभाग होते हैं। ऊपरका भाग उपचर्म कहलाता है। यह सांवेदनिक नहीं होता।

इस्कीका ऊपरीभाग सूख सूखकर मुर्झाकर या घिस कर भुर्भुरा उड़ना या उतरना रहता है। इसीके नीचे असली खाल, चर्म, है। इसीमें स्नायु और रक्तवाहिनियोंके अन्त रहते हैं। चर्मके नीचे मांसकी एक पतली तह रहती है जिसे मांसावरक कहते हैं। इसकी मोटाई सब जगह एकसी नहीं होती; इसीके मोटेपन या पतलेपनके कारण शरीरका रूप बनता है। इसके नीचे एक और तह मांसकी होती है, जिसमें मांसपेशियां रहती हैं।

बुढ़ापेके निशानात (झुर्रियां आदि) चेहरेके सभी भागों पर एकसे नहीं बिखरे रहते। जिस स्त्रीके माथेपर सिलवटें हों उसकी कनपटियां तनी हुई हो सकती हैं। जिसके लटकते हुए पलक हों उसके लिलारमें सिलवटें न होना सम्भव है। जिसकी गर्दनमें झुर्रियां हों, मुमकिन है कि उसके कपोल षोडशवर्षीयाके समान स्वच्छ और सुन्दर हों। इसलिए यह स्मरण रखना चाहिये कि सौन्दर्य-शल्य-चिकित्सकको सभी जगहपर बुढ़ापेके चिन्हों-को मिटानेका प्रयत्न नहीं करना पड़ता। जहांकी सिलवटें मिटानी होती हैं, उसके अनुसार एक निश्चित स्थानपर नश्तर लगाना पड़ता है। यदि लिलारकी झुर्रियां मिटानी हैं तो दाएं बाएं मस्तक के ऊपरी भागमें बालोंकी रेखाके नीचे काटना पड़ता है। कभी कभी सिलवटें निकालनेके लिए कई स्थानोंपर नश्तर देना पड़ता है।

जहां पर नश्तर देना होता है, उस स्थानको पहले खूब साफ करते हैं। यदि वहां पर बाल हों तो बालोंको मूंड देते हैं, तदनन्तर रूईके फाये मद्यसार अथवा ईथरमें डुबोकर उस स्थान परका मैल या चिकनाहट साफ करते हैं। फिर गरम पानी और साबुनसे धोकर जीवाणुशून्य कर देते हैं। अन्तमें कोकेन अथवा अन्य स्थानीय अचेतनकारीका प्रयोग करते हैं। किसी चिमटी-से खालको एक स्थानपर लपेट देकर पकड़ते हैं और उसकी शिकन निकालते हुए उस स्थान तक ले आते हैं जहांपर काटना होता है। यही काम बड़ी सावधानीसे करना पड़ता है। यदि खाल बहुत तन गयी तो शकल ही बदल जायगी और सूरत भयावनी दीख पड़ेगी। यदि खाल ढीली रह गयी तो सिलवटें फिर पड़ जायंगी।
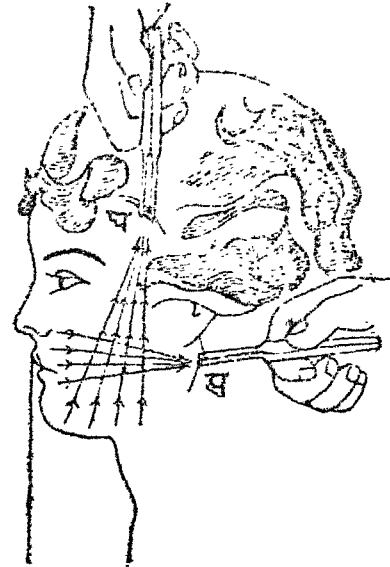
जो खाल सिलवटें निकालने पर अधिक बचती है, उसे बड़ी सावधानीसे काटते हैं, जिसमें बादमें सीनेमें दिक्कत न हो।

खालके पहले अनावश्यक ऊपरी मांसकी तह-का भाग भी काट देना पड़ता है। यह काम भी सावधानीसे करना पड़ता है। यदि नीचेकी तह तक नश्तर पहुंच गया तो घाव भरने पर उस स्थानपर उभार आजायगा, यदि ऊपरी तहका भाग ज्यादा कट गया तो वहां पर गड्ढा पड़ जायगा।

ललाटकी आड़ी सिलवटें निकालनेके लिए खाल ऊपरकी तरफ खींची जाती है और मुड़ी हुई कैंची से छेदकर खालको काट देते हैं। शल्य चिकित्सामें उस्तरेके समान तीक्ष्ण धारवाली कैंचीका प्रयोग किया जाता है।

शल्य क्रिया हो चुकने पर जीवाणु नाशक पदार्थसे धोकर पवित्र रेशमके अत्यन्त बारीक डोरोंसे सी देते हैं। चपटी सुईका प्रयोग गोल सुईकी अपेक्षा श्रेयस्कर है, क्योंकि गोल सुईका निशान रह जाता है।

सी चुकने पर फिर ऊपरी भाग जीवाणु नाशक पदार्थसे धो दिया जाता है। अयोडीन उस पर लगा देते हैं और गौज़से ड्रेसिंग कर देते हैं। छः दिनमें कुछ निशान नहीं रहता।

नाकके आस पासकी या कपोलों, ठोड़ी और जबड़ों परकी सिलवटें निकालनेके लिए खालको खींचकर घ और स स्थानों पर इकट्ठा कर लेते हैं, तदनन्तर छेदकर खालको काट देते हैं। यह स्थान चित्र १० में दिये गये हैं।

---

## समालोचना

**सरल मनोविज्ञान**—हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर सीरीज़ ( ग्रन्थमाला ) का ४५ वां ग्रन्थ समालोचनार्थ प्राप्त हुआ। ग्रन्थका रूप रंग इस ग्रन्थमालाके अन्य ग्रन्थोंके समान निःसन्देह चित्ताकर्षक है। इसके लेखक बाबू कुन्दनलाल गुप्त हैं। पुस्तकका मूल्य १॥) अजिल्द और २) सजिल्द।

इसकी आलोचनाके पूर्व हम प्रकाशकका ध्यान इस वर्तमान राष्ट्रीय युगमें इस ओर अवश्य आकर्षित करेंगे कि आगेसे 'हिन्दी ग्रन्थ रत्ना कर सीरीज़' के स्थान पर हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर ग्रन्थ माला का प्रयोग होना उचित है। अब विषय पर आते हैं।

ग्रन्थका नाम—यह सरल मनोविज्ञान नहीं परन्तु विरल मनोविज्ञान है। ऐसा वस्तुतः 'न भूतो न भविष्यति', क्योंकि इसका बिना उचित सम्पादन कराये ही प्रकाशकने समयसे बहुत पूर्व निकाल दिया है। अच्छा होता यदि ग्रन्थकार ही अपने ग्रन्थको लिखकर किसी समर्थ प्रतिभावान् विद्वान् से परिभाषाओं, भाषा-रचना और पुस्तकके मूल द्रव्योंका संशोधन करा लेते। यदि वह ऐसा न करा सकते तो प्रकाशक महोदय ही ऐसा करा लेते। यदि यह भी सम्भव नहीं था तो ग्रन्थकार ही दूसरी बार दोहरा लेते, तो बहुत उत्तम होता। नाना प्रकारके दोष, इस पुस्तकमें रह गये हैं, जिनका उल्लेख करना बहुत स्थान और समयकी अपेक्षा करता है। हम कतिपय दोष केवल स्थाली पुलाक-न्यायसे यहां दिखलाते हैं और आशा करते हैं कि ऐसे गम्भीर विषयोंपर लेखक बड़ी सावधानीसे कलम उठावेंगे।

भूमिकामें लेखक लिखते हैं कि हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणाली प्राचीन हो चुकी। प्रिय लेखक ऐसा समझना भूल है। सद् वस्तु कभी पुरानी नहीं होती; कमसे कम दर्शन विषयके सत् सिद्धान्त कभी पुराने नहीं होते। तर्क और अन्वीक्षामें भारत के आगे यूरोप अब भी अभिमान नहीं कर सकता। अतः उसके प्राचीन दर्शनोंको भुलाकर पाश्चात्यों की बातोंपर लट्टू होकर भ्रममें पड़ना हमारी गुलामीका अच्छा नमूना है।

परिभाषा—परिभाषा प्रयोगमें लेखकने अच्छे शब्दोंकी हत्या कर डाली है। जैसे ( Instinctive ) पाशविक क्रियाएं, (Nerves) मज्जातन्तु, (Concrete) वास्तविक, ( Feelings ) विकार, ( Localisation of sensation ) 'संवेदनका स्थानीय करण' ऐसी परिभाषाएं बनानेकी अपेक्षा अंग्रेज शब्दोंका प्रयोग ही अच्छा था। परिभाषा इतनी स्पष्ट होनी चाहिये, जिसके सुनते ही आधेसे अधिक ज्ञान सुननेवालेको होजाय। आपकी परिभाषाओंके अनुसार शास्त्रमें बहुतसे दोषोंका हो जाना सम्भव है, जैसे ( Instinctive Actions ) पाशविक क्रियाएं; इसमें पशु शब्दका कीट पतङ्गों तक व्यवहार नहीं है और यह इन्स्टिंक्ट मनुष्योंमें भी रहता है। अतः पाशविक क्रियाओंके स्थान पर इनको 'स्वभाव-सिद्ध-क्रियाएं' कहना अधिक उचित होगा। इसी प्रकार Nerves को मज्जातन्तु न कह कर ज्ञानतन्तु कहना अधिक उचित है। Concrete को वास्तविक वस्तु न कह कर स्थूलद्रव्य कहना उचित है, Feelings को विकारके स्थानपर

अनुभावना, और 'संवेदनका स्थानीय करण' के स्थान पर 'स्थाननिर्धारण' या 'देश ज्ञान' होना उचित है।

लेखक महोदयने ग्रन्थके लिखते समय अपने शास्त्रोंका स्पर्श तक नहीं किया, इससे वह इस बातको भी नहीं जान पाये कि सरल मनोविज्ञान एक भारतीय विद्यार्थीके लिए किस प्रकार लिखना चाहिये। इसमें आदिसे अन्ततक [illegible] भाषाओंकी बेड़ियां झनकती हैं। इसीलिए न तो कोई स्वतन्त्र विचार प्रकट किया गया है और न कोई स्वतंत्र वाक्य लिखा गया है। जो भारतीय जनता नित्य गीता, रामायण महाभारत, पुराण और उपनिषदोंमें योग और ब्रह्मज्ञानकी कथाएं सुनते सुनते आत्मा मन, इन्द्रिय, चित्तवृत्ति, अनुभव, प्रमा, स्मृति आदिका शास्त्रीयज्ञान सुन चुके हों या सुननेके लिए अधिक श्रद्धालु हों उनके लिए इस प्रकारका सरल मनोविज्ञान भी अत्यन्त भयानक है। दूसरे जिन्होंने भारतीय दार्शनिकोंका परम काष्ठा तक यश सुना हो उनको तो कमसे कम बड़ी घृणा उत्पन्न होगी। ग्रन्थके वास्तविक मूल भागमें बड़ीही पोल है।

१. भाषा दृष्टिसे—"पाँच प्रतिशतक कालोशन इतना स्वादवाला नहीं होता जितना दशप्रतिशतक वाला लोशन" ( पृ० २६ )। यह लोशनका विदेशी भूत सरल मनोविज्ञानमें बड़ी खलबली मचा देगा। क्या कोई हिन्दी शब्द नहीं मिल सकता। घोल शब्द सरल है। "डोम ( Sweepers ) सर्वदा गन्दगीमें रहते हैं।" यहां डोम भी कोई पारिभाषिक शब्द है ( पृ० २२ ) जिसको अंग्रेज़ीमें Sweepers शब्दसे समझाया गया है।

"न तारेके आनेके समय दो हो सकते हैं न यन्त्र ग़लती कर सकता है। परन्तु गणितज्ञोंके प्रतिकार्य समय भिन्न रहते हैं। (पृ० ५७)। पाठक क्या समझे?

"जिस समय हमारे मनमें कोई संवेदन उत्पन्न होता है हम उसी क्षण उस संवेदनको बाह्य संसारमें उस वस्तुसे लगाते हैं जहांसे वह उत्तेजना आई थी" बहुत चामत्कारिक वाक्य है। (पृ० ५६) इत्यादि

( २ ) विज्ञान दृष्टिसे—" कड़वासमें एक स्वाद है।" ( पृ० १५ ) कड़वा एक स्वाद है। कड़वास या कड़वापन यह स्वाद-गुणमें रहनेवाला एक धर्म है अर्थात् 'कड़वा' धर्मी में 'कड़वास' एक धर्म है। धर्ममें धर्मी नहीं रहता। अतः कड़वास 'धर्म'-में कड़वा स्वाद 'धर्मी' नहीं रह सकता।

"चक्षुरिन्द्रियका विषय चार खरब साठ अरब वायु कम्पन प्रति सेकण्डसे आरम्भ होकर सात खरब तीस अरब प्रति सेकण्डपर अन्त होता है।" (पृ० ३३) महोदय यह कम्पन वायुकम्पन नहीं प्रत्युत ईथर या आकाश तत्वके कम्पन होते हैं। इतने वेगसे यदि वायुकम्पन हों तो कदाचित् सम्पूर्ण जीव संसारका संहार एक क्षणमें होजाय। तोपके शब्दमें भी कम्पन सहस्रों तक होते हैं, तिसपर भी शीशे तड़क जाते हैं और कान बहरे हो जाते हैं। यह भूल इस पुस्तकमें कई बार हुई है, जैसे पृ० ५१ पर।

Nagative after image—विरुद्ध पश्चात् दृष्टि ( पृ० ३४ ) में दृष्टि शब्दका अर्थ इमेज या प्रतिबिम्ब नहीं है। 'विपरीत आभास' शब्द उपयुक्त प्रतीत होता है।

"परीक्षा करनेसे विदित हो गया कि मुख्य रंग तीन हैं लाल-हरा-नीला, इन तीनोंके मिलानेसे श्वेत प्रकाश दिखने लगता है, चित्रकारोंका इसमें कुछ मत भेद है। वे कहते हैं रंग लाल हरा और नीला है।" (पृ० ३६) यहां लेखकने मतभेद कुछ भी नहीं दिखाया। कदाचित् यह भूल प्रेसके भूतोंकी है।

लक्षण दृष्टिसे—प्रत्यक्ष ( Perception )का लक्षण स्पष्ट नहीं है। इससे हज़ारों गुना उत्तम लक्षण गौतमके न्याय सूत्रमें दिया है। इसी प्रकार अन्य भी बहुतसे लक्षण अस्पष्ट और अव्याप्त और अति व्याप्त दोषयुक्त हैं। अच्छा होता कि लक्षण लिखते समय नियत और उचित वाक्योंके प्रयोगसे निर्दिष्ट लक्षण बताकर फिर उसे समझाया जाता। ऐसी पुस्तकें सदा ऐसे रूपमें लिखनी चाहियें कि इनको पढ़कर विद्यार्थी कुछ सत्-तत्व सीख सकें। नहीं तो विद्यार्थियोंका द्रव्य और कालका नाश करना बड़ा पाप है।

सु: जप्रस द खत्राके प्रबन्धसे हिन्दी साहित्य प्रेसमें मुद्रित, तथा विज्ञान परिषद्, प्रयाग से प्रकाशित।

*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.*

पूर्णसंख्या ८१ Reg. No. A. 708

भाग १४ Vol XIV. संख्या ३ No 3

सम्पादक—गोपाल स्वरूप भार्गव एम. एस-सी

धन १९७८, दिसम्बर १९२१

प्रकाशक

विज्ञान परिषत्

प्रयाग

# विषय सूची



## वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)
२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी, एम. ए. ।=)
४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. एम. ... ।)।
५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला—प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

१—पशु पक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालग्राम वर्मा, बी. एस-सी. ... -)
२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)
४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)
५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)
६—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ... ।=)
७—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी. ए., एल-टी. ... ... ... ।)
८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस. ... -)
९—दियासलाई और फास्फोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

---

## भूल संशोधन

१—पिछले अङ्कमें ( भाग १४ संख्या २ ) पृष्ठ ६८, कालम २, अन्तसे छठी पंक्तिमें "नहीं" के स्थान पर "ही" पढ़िये ।

—संपादक

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १४ } धन, संवत् १६७८ । दिसम्बर, सन् १६२१ { संख्या ३


## नोबेल पारितोषक

( गतांकसे सम्मिलित )


[ ले०—पी० डा० नीलरतनधर ]
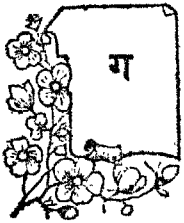

त २० वर्षोंमें रसायन शास्त्र सम्बन्धी गवेषणा प्रायः दो मुख्य क्षेत्रोंमें हुई है:—

( १ ) आँगारक पदार्थोंका संश्लेषण ।

( २ ) वेगवर्धन—किसी रासायनिक क्रियाका पदार्थ विशेषकी उपस्थितिमें वेग बढ़ जाना, जिसे वेग वर्धक कहते है ।

शर्करा, अलब्यूमेन, प्रोटीन, हरित राग ( पत्तियोंका हरा रंग ), [illegible], नील आदि रंग, कपूर आदि जटिल आँगारक पदार्थोंका पहले विश्लेषण किया गया और उनके रासायनिक घटकोंकी पूरी पूरी जांच की गयी । इसके बाद एमिल फिशर, बायर, आदिके प्रयत्नसे इन पदार्थोंका संश्लेषण अथवा कृत्रिम रीतिसे निर्माण किया गया । रासायनिकोंका तो यहाँ तक दावा है कि नित्यके कामकी चीज़ें भी, जैसे चाय और कहवा, प्रयोगशालामें बनाली जायंगी । कैसर विलहेल्म इन्स्टिट्यूटके उद्घाटनके समय एमिल फिशरने कहा था कि इस संस्थाके सोलहवें वार्षिकोत्सव पर कृत्रिम चायसे आप लोगोंकी दावत की जायगी । वेगवर्धकोंका कुछ हाल समझानेके उद्देश्यसे मैं कुछ प्रयोग बतलाऊंगा ।

( १ ) पोटाश क्लोरेट एक नलीमें [illegible] गरम करता हूं । ( कुछ देर गरम करके । ) [illegible] इसमें यह सुलगता हुआ लकड़ीका एक टुकड़ा

उतारता हूं। उस पर कुछ प्रभाव नहीं होता। अब नलीमें एक चुटकी मंगनीज़ द्विओषिदकी डालकर देखिये। लकड़ीका टुकड़ा ट्यूबमें उतारते ही भक से जल उठता है और ऐसा तेज़ प्रकाश देने लगता है कि शायद मट्टीका तेल डाल कर दियासलाई दिखानेसे भी नहीं देता।

पोटाशको यदि और ज्यादा गरम करते तो भी ऐसी ही घटना उपस्थित होती, परन्तु मंगनीज़ की सहायतासे वही घटना कम गरमीसे भी संभव होगयी अर्थात् ओषजन बन गयी।

(२) वायुमें ओषजन है। और ओषजनसे मिलकर मिथिल मद्यसार फौरमेल्डीहैड बना लेता है। परन्तु आप देख रहे हैं कि यह मद्यसार एल्डीहैडमें परिणत नहीं हो रहा। अब प्लाटीनम-मय एज़्बेस्टास एक तारमें बाँधकर मैं गरम करता हूं। इधर मद्यसारको हल्की गरमी देकर उड़ाता हूं। उसकी वाष्पमें इस एजबेस्टासको लाते ही वह चमक उठता है—लाल हो जाता है। जब तक वह लौमें तप रहा था, तब तक तो उसका लाल रहना आश्चर्यजनक नहीं था; परन्तु लौ से निकालनेके बाद वह ज्योतिर्हीन हो गया और वाष्पमें लानेपर फिर चमक उठा; साथ ही फार-मेल्डीहैडकी दुर्गंध भी आने लगी। बात यह है कि प्लाटीनममय एज़्बेस्टास वायुकी ओषजन और मद्यसारमें क्रिया कराता है, इसीसे ताप उत्पन्न हो कर उसे गरम कर देता है और फौरमेलडी-हैड बन जाता है।

पहले प्रयोगमें मंगनीज़ द्विओषिदमें और दूसरे में प्लाटीनममें कोई परिवर्तन नहीं होता, तथापि इनकी थोड़ी सी मात्रासे बहुत से द्रव्यमें परि-वर्तन हो जाता है, इसीसे ऐसे पदार्थ औद्योगिक रसायनमें बड़े महत्वके माने जाते हैं।

साधारणतया जब गंधकाम्ल बनाते हैं तो सीसेके बड़े बड़े कमरे और बड़ी बड़ी चिमनियां आदि बनानी पड़ती हैं। कारखानेके लिए बीघों ज़मीन चाहिये और लाखों रुपये; परन्तु इसी मैले कुचैले प्लाटीनममय एज़्बेस्टासकी सहायता से थोड़ी सी जगहमें थोड़ा सा रुपया लगाकर कारखाना खोल सकते हैं।

इसी प्रकार ज़ंगके भाई लोहेके ओषिदकी सहायतासे उज्जन और नत्रजनसे अमोनिया बनाया जा सकता है, जिससे नत्रिकाम्ल, शोरेका तेज़ाब बनाया जा सकता है। शोरेका तेज़ाब भी बड़े महत्वका पदार्थ है। यदि गंधकाम्ल किसी राष्ट्र-का प्राण है तो शोराम्ल उसका प्राणरक्षक है।

युद्धकालमें जर्मनीमें यद्यपि बाहरसे शोरा नहीं पहुंच सकता था, तथापि रसायनज्ञोंकी कृपा-से जर्मनीको शोराम्ल वायु देवता दे देते थे।

वेगवर्धकोंकी सहायतासे खाद्य द्रव्योंकी भी सृष्टि हुई है। सस्ते तेलोंमें उज्जनका प्रवाह, निकि-लकी उपस्थितिमें, कराते हैं। इससे वह धीरे धीरे गाढ़े हो कर जम जाते हैं और मक्खनके स्थान पर काम आ सकते हैं।

शराब भी मीठे रसोंसे तैयार की जाती है। लाहनकी सहायतासे शकर शराब और कर्बन द्विओषिदमें परिणत हो जाती है।

खमीर उठनेमें होता क्या है, इस प्रश्नपर बहुत दिनों तक वाद विवाद होता रहा। लीबिगका खयाल था कि खमीर केवल हिलाने डुलानेसे उठता है। उनका प्रतिवाद पाश्चरने किया और सिद्ध किया कि खमीर एक अत्यन्त छोटे जीवाणुओंकी क्रियाका परिणाम है। यह जीवाणु साधारणतया वायुमें रहते हैं; वहींसे शकरके घोलमें पहुंच जाते हैं। लाहन भी इन्हीं जीवाणुओंका संग्रह मात्र होता है। यह मत १९५४ वि० तक प्रचलित रहा। उस वर्ष बुकनर ( Buchner ) ने सिद्ध किया कि जीवाणुओंके मलसे खमीर उठता है। यदि जीवा-णुओंको सुखाकर उनके अन्दरका द्रव्य निकाल लिया जाय तो वह भी वैसाही खमीर उठा सकता है जैसा कि लाहन; अतएव किण्व क्रिया भी एक रासायनिक क्रिया ही है।

जब कभी शरीरकी क्रियाओंमें जीवाणुओंके आक्रमण तथा भौतिक और रासायनिक कारणों से कोई बाधा उपस्थित होती है तो शरीरमें भौतिक और रासायनिक परिवर्तन होने लगते हैं, जो पहले विद्यमान नहीं थे। इन्हीं क्रियाओंको हम रोग कहते हैं।

वैद्यक शास्त्रमें प्रतिविष और विषके विचारकी वृद्धि गत २० वर्षोंमें खूब हुई है। जीवाणु विष वह विषैले पदार्थ हैं जो जीवाणुओं द्वारा उत्पादित होते हैं, चाहे यह पदार्थ जीवाणुओंके शरीरमें रहें और उनके शरीरके छिन्न भिन्न होनेके बाद बाहर निकलें और चाहे योंही बाहर निकल आवें। इन विषोंका रासायनिक संगठन अभी तक नहीं मालूम हो सका है; क्योंकि यह बहुत ही थोड़ी मात्रामें मिलते हैं। जितने जीवाणुओं द्वारा रोग पैदा होते हैं उन सबके कारण यह विष होते हैं। उदाहरणके लिए "डिपथीरिया" रोग ले लीजिये। लोइफलरने १६४१ वि० में इस रोगके जीवाणुओंका पता लगाया था। जब इन जीवाणुओंको शोरवेमें उत्पन्न कराते हैं तो एक प्रकारका स्वच्छ द्रव रूप विष प्राप्त होता है। वह द्रव थोड़ा थोड़ा करके कई बार दो तीन मासमें घोड़ेके शरीरमें पहुंचाते हैं। विषके पहुंचते ही घोड़के शरीरमें प्रतिविष बनने लगता है। अतएव दो तीन मासमें प्रतिविषकी पर्याप्त मात्रा उत्पन्न हो जाती है। घोड़ेकी फस्द खोलकर खून निकालते हैं और सीरम तैयार कर लेते हैं, इसीमें प्रति विष रहता है। इसको रोगीके शरीरमें गुदने द्वारा पहुंचाकर रोग अच्छा कर सकते हैं। बेहरिंग बाबूने पहले पहल विष और प्रतिविषकी बात चलाई थी और रौक्सने डिफथीरिया रोग नाशक सीरम तैयार किया था।

कई और प्रोटीन सदृश पदार्थोंकी नाईं टोकिंसस ( विषों ) का भी यही गुण है कि किसी जीवके देहके अन्दर पहुंचकर ऐसे पदार्थोंको उत्पन्न कर देते हैं जो उनकी क्रियाको रोक देते हैं। इन्हीं पदार्थोंको एंटीटोक्सिस—प्रतिविष-कहते हैं। इन्हें प्रति-पदार्थ ( antibodies ) भी कहते हैं। इसी लिए जो पदार्थ इनकी सृष्टिमें सहायक होते हैं, एंटीजन्स-प्रतिजनक-कहलाते हैं।

प्रतिविषोंकी उत्पत्ति किस भांति होती है, इस विषयका अभी तक कुछ हाल नहीं मालूम हुआ। यह तो निस्संदेह है कि बहुत जटिल कोलोयडेल क्रियाओं द्वारा यह पैदा होते होंगे। दो उदाहरणों पर यहां विचार कर लीजिये। यदि क्रे-मछली (Cray fish) के रुधिरका चूहेमें प्रवेश कराया जाय तो चूहेको बिच्छूका विष नहीं चढ़ता। परन्तु बिच्छूके विषका प्रभाव चूहेसे अधिक क्रे-मछली पर पड़ता है। और न एक क्रेफिशका रुधिर दूसरीमें डालनेसे ही काम चलता है। खरगोश (Rabbit) में यदि थोड़ी थोड़ी मात्रामें धनुष्टंकारके ( tetanus ) जीवाणुओंका टीका लगाया जाय तो वह इस रोगसे मुक्त ( immune ) हो जाता है; परन्तु खरगोशोंका सीरम इस विषको नहीं मार सकता।

सीरम चिकित्सासे अनेक रोगोंकी चिकित्सा हो सकती है। ( इसका सविस्तर हाल जानना हो तो " हमारे शरीरकी रचना" और "विज्ञान" के पिछले अंकोंमें पढ़िये ) रिशे ( Ritchet ) ने यह बात मालूम की थी कि यदि खरहेकी नसोंमें अण्डेकी सफेदीका प्रवेश कराया जाय तो पहले तो कुछ हानि नहीं होती, किन्तु यदि दूसरी बार कई दिनके बाद फिर कराया जाय तो वह मर जाता है।

बेहरिंग ( Behring ) ने यह देखा कि घोड़ों, भेड़ या बकरोंके शरीरोंमें यदि डिफथीरिया या धनुष्टङ्कारके विषका प्रवेश कराया जाय तो वह रोग मुक्त तो हो जाते हैं, परन्तु प्रविष्ट करानेसे वह इतने असहनशील हो जाते हैं कि यदि अत्यन्तसूक्ष्म मात्रा भी प्रयुक्त हो तो भी वह मर जाते हैं, यद्यपि उनके रुधिरमें प्रति विषकी मात्रा पहलेकी अपेक्षा कहीं ज्यादा होती है। इन सज्जनोंका यह भी

अनुभव है कि यदि विषकी अघातक-मात्राका प्रयोग किया जाय, जिससे पशु मरे नहीं, और पीछेसे पहलेकी १/१० मात्रा दी जाय तो बड़ी बुरी दशा हो जाती है—वमन, दस्त, पक्षाघात इत्यादि बातें पैदा हो जाती हैं। यह घटना तभी उपस्थित होती है जब दो प्रयोगोंके बीचमें कम से कम ८ से १२ दिन तकका ही अन्तर होता है। साधारणतया जब किसी पशुको रोग मुक्त करते हैं, तो चार चार दिनके अन्तरसे प्रयोग करते हैं। अतएव मालूम होता है कि साधारण रोग-मुक्तिकी अवस्थाका आरम्भ होनेसे यह भयानक अवस्था, जिसे 'एनेफिलेक्सिस,(Anaphylaxis) कहते हैं, उपस्थित नहीं होती।

## नोबेल पारितोषक पानेवाले

| संवत | भौतिक | रसायन | जीव विद्या | साहित्य |
|---|---|---|---|---|
| १९५८ | रॉटगेन (W. C. Rontgen) | फान्थोफ (J. H. Van't Hoff) | बेहरिंग (E. Avon Behring) | साली प्रुद्रोम (R. F. A. Sully Prudhomme) |
| १९५९ | लौरेंज और ज़ीमान (H. A. Lorentz and P. Zeeman) | एमिल फिशर (Emil Fischer) | रोनेल्डरास (Ronald Ross) | मौंसेन (T. Monsen) |
| १९६० | बैकरल और क्यूरी (H. A. Becquereland P. M. Curie) | अरेन्यूस (A. Arrhenius) | फिंसेन (N. R. Finsen) | बोर्न सेन (Bjornst-jerne Bjornson) |
| १९६१ | लार्ड रेले (Lord Ray-leigh) | रेमज़े (W. Ramsay) | पौलो (Ivan Petrovic Pawlow) | एशेगरी और मिस्ट्राल (Frederi Mistral & Jose Echegeray) |
| १९६२ | लेनार्ड (P. Lenard) | बायर (A. Von Baeyer) | कौश (Robert Koch) | हेनरिक सियनकी विक (Henryk Sienkiewieg) |
| १९६३ | जे. जे. टामसन (J. J. Thomson) | एच. मोआसाँ (H. Moissau) | सी. गोलगी तथा एस. आर. काजल C. Golgi and S. R. Cajal) | कारडुकी (Giome Carducci) |
| १९६४ | माइकलसन (A. A. Michelson) | ई. बुकनेयर (E. Buchner) | लवेरां (C. L. A. Laveran) | किपलिंग (R. Kipling) |
| १९६५ | लिपमान (G. Lippmann) | रुदर फर्ड (E. Rutherford) | इहरलिक तथा मेचनी-कौफ (P. Ehrlich and E. Metchnikoff) | रुडोल्फ ओयकिन (Rudolph Eucken) |
| १९६६ | मारकौनी तथा ब्रौन (G. Marconi & F. Brown | ओस्तवाल्ड (W. Ostwald) | कौकर (Theodor Kocher) | सेल्मा लेगर लौफ (Selma Lagerloff) |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १९६७ | वाण्डरवाल (J. D. Vanderwaals) | ओटो वालक (Otto Wallach) | कौसल (A. Kossel) | पाल हेस (Pauleys He) |
| १९६८ | वाइन (Wilhelm Wien) | क्यूरी (M. S. Curie) | गुलस्त्रान (A. Gullstrand) | एम. मैटर लिंक (M. Ma terlink) |
| १९६९ | जी. दालेन (G. Dalen) | वी. ग्रिगनार तथा सा-बातिये (V. Grignard P. Sabater) | कारेल (Alexis Carrel) | हौपमैन (G. Hauptmann) |
| १९७० | ओनेस (H. K. Onnes) | वेयरनर (A. Werner) | सी. रिशे (C. Richet) | श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर |
| १९७१ | घोन लो (Max Von Laue) | रिचर्ड्‌स (W. T. Ri-chards) | रावर्ट बरानी (Robert Barany) | ... |
| १९७२ | डब्लु. एच. ब्रेग तथा डब्लु. एल. ब्रेग (W. H. Bragg and W. L. Bragg) | विल्सटेटर (R. Willstatter) | ... | रोमां रोलाँ (Romain Rolland) |
| १९७३ | ... | ... | ... | हैडेंस्टेन (Werner Von Heidanstein) |
| १९७४ | सी. जी. बार्कला (C. G. Barkla) | ... | ... | गजेलरूप (Karl Gjellerup) |
| १९७५ | मेक्स प्लेंक (Max Planck) | फ्रिट्ज़ हाबर (Fritz Haber) | | पौन टापांडन (Henrih Pontoppidan) |
| १९७६ | स्टार्क (Johannes Stark) | एस्केन (O. Aschan) | जूल्स बोरदे (Jules Bordet) | स्पिटटेलर (Carl Spittelar) |
| १९७७ | गिओम (C. F. Geullaume) | नर्न्स्ट (Nernst) ... | क्रोग (August Krogh) ... | कुंट हेमसून (Kunt Ha msun) |
| १९७८ | ब्रानली (E. Branly) | | | एनेटोल फ्रांस (Anatole France) |

## दही

दही दूधका रूपान्तर मात्र है। इसमें भी दूधके समस्त उपादान पाये जाते हैं। हां कर्बोज जातीय उपादान कुछ न्यून अवश्य होते हैं। अतएव जो लोग दूध नहीं पचा सकते वह पर्याप्त मात्रामें दहीका सेवन कर सकते हैं। आयुर्वेदाचार्योंका कथन है कि—

अतीसारेऽरुचौ कार्श्ये शस्यते बलशुक्रकृत्।

अर्थात् दही अतिसार, अरुचि और दुबलेपनको नाश करनेवाला और बल तथा वीर्यवर्द्धक है। दहीसे पाचन शक्तिमें भी बहुत कुछ सहायता मिलती है। अतएव अचार, चटनी और तेज़ मसालोंके स्थानमें दही काममें लाना विशेष लाभप्रद है।

दहीमें एक और भी विशेष गुण होता है कि इसके प्रभावसे विसूचिका (हैज़ा) इत्यादि रोगोंके जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं। अतएव दूषित दूधके समान दहीसे किसी प्रकारकी हानिकी सम्भावना नहीं हो सकती। स्वनामख्यात मेचनीकाफने परीक्षाओं द्वारा प्रमाणित किया है, कि यथाविधि दही सेवन करनेसे आंतोंमें रहनेवाले (Tissue destroying bacilli) तन्तु नाशक जीवाणुओंका ह्रास होता है और अनेक प्रकारके रोगों तथा बुढ़ापेसे रक्षा होती है।

आयुर्वेद शास्त्रमें दही सेवनके कुछ नियमोंका निर्देश किया गया है। यथा—

न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाप्य घृत शर्करम्।
नमुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना॥

अर्थात्—रात्रिमें दही न खाना चाहिये; उसमें घी शकर मिला कर न खाये। उसमें मूंगका सूप (पानी) शहद और आमला इनमेंसे एक न एक पदार्थ अवश्य मिला लेना चाहिये। दहीको गरम करके खाना भी हानिकारक है। अध जमा या अधिक खट्टा भी हानिकारक होता है। अतएव उत्तम दूधसे भली प्रकार जमाया हुआ मधुराम्ल (खटमिट्ठा) दहीका ही सेवन करना चाहिये।

—गोपीनाथ गुप्त

---

## भारतवर्षकी जलशक्ति

यह बात तो बहुतोंने सुनी होगी कि पानीके बलसे पनचक्की चलायी जाती है। ऊपरसे गिरता हुआ पानी पनचक्कीके पहियेको उसी प्रकार घुमाता है जैसे इंजनके भीतरकी भाप वेगके साथ निकलकर गाड़ी या तरह तरहकी कलें चलाती है। भारतवर्षमें पहाड़ों और झरनोंकी कमी नहीं है। इसलिए इस बातकी बहुत दिनोंसे जांच हो रही थी कि इनसे कितना काम लिया जा सकता है। ऊपरसे गिरते हुए पानीसे सीधा ही काम लेने में सुविधा नहीं पड़ती, परन्तु यदि इससे बिजली तैयार की जाय तो अधिक काम निकल सकता है। इसी विचारसे एक महकमा कई वर्षसे खोला गया है, जिसका नाम है हैड्रो इलेक्ट्रिक सर्वे आव इन्डिया (Hydroelectric Survey of India)। "कामर्स" लिखता है कि इस विभागकी त्रैवार्षिक रिपोर्टमें श्री० जे० डबल्यू मियर्स चीफ इञ्जीनियरका अनुमान है कि यदि कमसे कम पानी मिले तो भी ७० लाख अश्वबलकी शक्ति लगातार २४ घंटे तक बारहों मास बिला किसी दिन नागा हुए मिल सकती है। (एक अश्वबलकी शक्तिसे ५५० पौंड वा पौने सात मनका बोझा १ फुट ऊपर उठाया जा सकता है।) साधारण दशामें इतनी बिजलीकी शक्ति पैदा हो सकती है जिससे १ करोड़ अश्वबलकी शक्ति लगातार मिल सकती है। अधिक से अधिक १ करोड़ ७० लाख अश्वबलकी शक्ति पैदा की जा सकती है। रिपोर्टके अनुसार जल शक्तिके मुख्य स्थान यह हैं:—

(१) प्रायः सारा ब्रह्मदेश; (२) हिमालय पर्वतके किनारे किनारे सारा उत्तरी भारत, जिसमें

आसाम, उत्तरी बंगाल, संयुक्तप्रान्त, पंजाब और उत्तर पच्छिम सीमा प्रान्त शामिल हैं; ( ३ ) बंबई प्रान्तके पच्छिमी घाटके पहाड़, जो भारतके दक्षिणी छोर तक चले गये हैं; ( ४ ) मद्रास और मध्य प्रदेशके कुछ भाग।

इस रिपोर्टमें यह भी बतलाया गया है कि इसका प्रबन्ध किस प्रकार किया जा सकता है। छठे अध्यायमें भापकी शक्ति और जल शक्तिकी तुलना भी की गयी है और यह भी बतलाया गया है कि वर्षाके जलका प्रबन्ध कैसे किया जा सकता है तथा जिन ऋतुओंमें जलकी कमी रहती है उनमें कैसे काम लिया जा सकता है।

—महावीर प्रसाद

## मांस, मांसाहार और स्वास्थ्य

मांसके विषयमें बहुत समयसे विवाद चला आता है और शायद इस विवादका कभी अन्त न होगा। एक समूह तो ऐसा है कि जो मांसको वानस्पतिक आहारसे श्रेष्ठ बतलाता है और दूसरा समूह उसे अप्राकृतिक और निकृष्ट आहार बतलाकर उसके खानेका निषेध करता है। निषेध करनेवाले लोगोंमें धार्मिक नेता और स्वास्थ्य-विज्ञान-शास्त्री दोनों ही प्रकारके मनुष्य हैं। इस निबन्धमें इस विषयपर केवल स्वास्थ्य-विज्ञानकी दृष्टिसे ही विचार करना उचित प्रतीत होता है।

यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि मांसमें मांसोत्पादक उपादानका भाग अधिक होता है और इस लिए उससे शरीरमें मांसवृद्धि अधिक हो सकती है, परन्तु हमारे नित्यके भोजनमें मांसोत्पादक उपादानकी अपेक्षा कर्बोजोंकी अधिक आवश्यकता होती है, जो मांस अथवा अंडे इत्यादिमें प्रायः बहुत ही कम पाये जाते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि मांस सर्वांग पूर्ण आहार नहीं है; शरीर रूपी इंजनसे काम लेनेके लिए जिस स्टीम या शक्तिकी आवश्यकता होती है। वह मांससे प्राप्त नहीं हो सकती। वह शक्ति तो कर्बोजोंसे ही प्राप्त हो सकती है, हाँ मांसभक्षणसे शरीर मालगाड़ीकी भांति भारी अवश्य हो सकता है। इसके विपरीत वानस्पतिक आहारमें कर्बोज पर्याप्त मात्रामें पाये जाते हैं। इसके साथ ही उसमें प्रोटीन और स्नेह इत्यादि उपादान भी इतनी मात्रामें पाये जाते हैं कि जिनसे हमारा काम भली भांति चल सकता है। कुछ पदार्थोंमें तो मांससे भी अधिक प्रोटीड पाये जाते हैं। अतएव वानस्पतिक आहार सर्वांगपूर्ण और मांस अपूर्ण आहार है। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता; और यही कारण है कि मांसाहारियोंको मांसके साथ साथ वानस्पतिक आहार भी खाना पड़ता है। शायद ऐसा एक भी मनुष्य न होगा कि जो केवल मांस पर जीवन व्यतीत करता हो, परन्तु केवल वानस्पतिक पदार्थोंपर निर्वाह करनेवाले करोड़ों मनुष्य हैं; भारतका एक बड़ा भाग निरामिषभोजी ही है। बल पुष्टि इत्यादिके लिए मांसभक्षी बनना एक बड़ी भारी भूल है। शक्ति उत्पन्न करनेवाला पदार्थ तो मांसमें है ही नहीं। रही शरीरपुष्टिकी बात सो बादाम, पिस्ता अखरोट इत्यादि कितने ही शुष्क फल मांससे अधिक पौष्टिक होते हैं।

केवल यही नहीं कि मांस भक्षण अनावश्यक ही है, प्रत्युत वह हानिकारक भी है। जो खाद्य प्राकृतिक नहीं है ( प्रकृतिने जो चीज़ हमारे खानेके लिए नहीं बनाई ) उसे खाकर हम कभी सुखी और स्वस्थ नहीं रह सकते। प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन करना एक महान पाप है। उसका दंड और कठोर दंड अवश्य ही भोगना पड़ता है।

मांसभक्षणको अप्राकृतिक सिद्ध करनेके लिए बहुत से प्रमाण दिये जा सकते हैं। सबसे पहिले मानवीशरीरकी रचना पर ध्यान देनेसे ही मांसभक्षण अप्राकृतिक सिद्ध होता है। मनुष्यके पाचक यन्त्र

मांस पचाने योग्य नहीं होते, उसके दांत न तो मांसको फाड़ सकते हैं और न चबाही सकते हैं। यह बात दूसरी है कि मांसको पकाकर मसाले आदिके द्वारा उसे खाने योग्य बना लिया जाय, नहीं तो कच्चा मांस खाना और पचाना कठिन ही नहीं वरन् असाध्य है। यद्यपि खोजनेसे संसारमें कच्चा मांस खानेवाले मनुष्योंके उदाहरण भी मिल जाने सम्भव हैं, परन्तु उनसे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि सभी मनुष्य कच्चा मांस खा सकते हैं या उसे पचा सकते हैं अथवा मांस मनुष्यका स्वाभाविक भोजन है। जिस प्रकार कभी कभी दो सरवाला बच्चा पैदा होनेका समाचार सुना जाता है, पर उससे यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि मनुष्य दो सरवाला प्राणी है, इसी प्रकार इन कच्चा मांस खानेवाले अल्पतम उदाहरणोंसे भी मांसभक्षण की स्वाभाविकता सिद्ध नहीं हो सकती। हिंस्र पशुओं और मनुष्यके शरीरमें भी कुछ अन्तर पाये जाते हैं:—

१—मांसाहारी जानवरोंके दाँत, तेज़, लम्बे, ऊँचे नीचे और पैने होते हैं; परन्तु मनुष्यके दांत अन्य फलाहारी जीवोंकी भाँति कुन्द, छोटे; एक दूसरेके निकट और समथल होते हैं। इस प्रकारके दाँतोंसे मांस चबानेका काम नहीं हो सकता और बिना चबाये उसका पचाना मुश्किल है; माना कि मांसमें मुखकी लार मिलानेकी आवश्यकता नहीं है पर बिना बारीक हुए तो कोई पदार्थ पच ही नहीं सकता। आहार्य पदार्थोंको बारीक करनेवाले या तो दाँत हैं या आमाशय; जिस मांसको दाँतोंके दांत नहीं पीस सकते उसे पीसनेमें मांसका थैला, आमाशय, किस प्रकार समर्थ हो सकता है?

२—मनुष्यकी आंत मांसाहारी जीवोंकी अपेक्षा कई गुनी लम्बी होती है।

३—मांसाहारी जीवोंकी त्वचासे पसीना नहीं निकलता पर मनुष्यके पसीना निकलता है।

४—मनुष्य पेय पदार्थोंको अन्य फल और अनाज तथा शाकपात खानेवाले जीवोंकी भांति घूंट ले लेकर पीता है, परन्तु मांसाहारी जानवर इनको जीभसे चाट चाट कर पीते हैं। इसी प्रकार अन्य कितनी ही बातोंमें मनुष्य मांसाहारी जीवोंसे भिन्नता और वनस्पत्याहारी जीवोंसे समानता रखता है; अतएव उसका प्राकृतिक आहार वानस्पतिक पदार्थ ही हो सकते हैं। सभी प्राणियोंका प्राकृतिक आहार उनके शारीरिक संगठनके अनुकूल होता है; इस लिए सदृशतम शारीरिक गठन रखनेवाले प्राणियोंका आहार भी सदृशतम ही होना चाहिये। देखा जाता है कि मनुष्यकी अपेक्षा अन्य प्राणी प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन बहुत ही कम करते हैं; इसीलिए निस्संकोच भावसे कहा जा सकता है कि मनुष्यके अतिरिक्त अन्य प्राणी जिस प्रकारका आहार करते हैं, वही उनका प्राकृतिक आहार है और मनुष्यसे सादृश्य रखनेवाले प्राणी जिस प्रकारका आहार खाते हैं उसी प्रकारका आहार मनुष्यका भी प्राकृतिक आहार हो सकता है।

शारीर-शास्त्रवेत्ता विद्वानोंका कथन है कि मनुष्य-शरीरकी बनावट, बन-मानससे बहुत अधिक मिलती जुलती है; जर्मनीके प्रसिद्ध विद्वान हेकल का कहना है कि—"मनुष्य और बन मानसके न केवल ढाँचे ही एक दूसरेसे मिलते हैं वरन् समस्त बड़ी बड़ी बातोंमें दोनों एक दूसरेसे समानता रखते हैं; हमारे और बनमानसके शरीरमें तरुणास्थियाँ एक ही क्रमसे पाई जाती हैं; जैसे बनमानसके हृत् पिंड (हृदय) के चार कोष्ठ हैं वैसे ही हमारे हैं; हमारे जबड़ोंमें जिस क्रमसे ३२ दांत हैं उसी क्रमसे बनमानसके जबड़ोंमें भी पाये जाते हैं। हमारे आमाशयमें जो पाचक ग्रन्थियाँ हैं वही बनमानसके आमाशय में भी हैं। दोनोंका सन्तानोत्पत्तिक्रम भी एक जैसा ही है।"

विकासवादके जगत्प्रसिद्ध पंडित डार्विनका तो कहना है कि हमारा वर्तमान रूप बानरका ही उन्नत रूप है। इसी प्रकार अन्य विद्वानों ने भी मनुष्य और बनमानसोंमें बहुत अधिक समता मानी

है। अतएव मनुष्यका प्राकृतिक आहार वही होना चाहिये जो वनमानसका है। वनमानस और बन्दर फल, अनाज और अन्य प्रकारकी वनस्पतियों पर निर्वाह करते हैं। वह कभी मांस नहीं खाते। अतएव मनुष्यका प्राकृतिक आहार भी वानस्पतिक ही हो सकता है, न कि मांस या अण्डे इत्यादि।

प्रो. ओविन कहते हैं कि "वनमानस और बन्दर, अपना खाद्य फल, अन्न और अन्य प्रकारकी वनस्पतियोंसे प्राप्त करते हैं। मनुष्य और इन जानवरोंके दांतोंका सादृश्य इस बातको प्रकट करता है कि आरम्भसे ही मनुष्य फलाहारको उपयुक्त समझता आया है।"

मूस्यो पोचटका कथन है कि "मनुष्यके आमाशय और दांतोंकी बनावटसे यह प्रकट होता है कि वह स्वभावतः शाक और फलादि खानेवाला प्राणी है।" इसी प्रकार और भी बहुत सी सम्मतियां उद्धृत की जा सकती हैं, परन्तु विस्तारभयसे ऐसा नहीं करते।

मांसाहार और स्वास्थ्य

मांसमें एक प्रकारका विष होता है, जिसे "यूरिक एसिड" (तेज़ाव क़ारूरा या मूत्राम्ल) कहते हैं; यद्यपि यह विष आहारके अन्य पदार्थोंमें भी पाया जाता है पर मांसमें बहुत अधिक होता है। दूधमें यह विष बिलकुल नहीं होता। इस विषके शरीरमें एकत्रित होने और रक्तमें मिलनेसे स्वास्थ्यको बहुत हानि पहुँचती है। डा० हेग तथा अन्य कई डाक्टरोंका (जिन्होंने "यूरिक एसिड" के सम्बन्धमें बहुत अनुसन्धान किया है) मत है कि इस ज़हरके शरीरमें एकत्रित होनेसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं और शरीरमें से इस ज़हरके निकाल देने पर वह रोग अच्छे हो जाते हैं।

यदि यह ज़हर खूनके साथ घुल जाता है तो शिर-शूल हिस्टीरिया, सुस्ती, निद्रा नाश, श्वास, अजीर्ण, यकृत (जिगर) के रोग, मधु मेह, प्रमेह; पथरी; इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। जब यह विष

२

किसी जोड़ या मांस पेशीमें इकट्ठा हो जाता है तब गठिया, शरीरके अंगों की सूजन, पाण्डु (पीलिया), खुजली, अन्त्र-शूल, न्यूमोनि[illegible], इन्फलूएन्ज़ा, यक्ष्मा इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। यद्यपि उपरोक्त रोग अन्य कारणोंसे भी हो सकते हैं पर शरीरमें "यूरिक एसिड" का एकत्रित होना भी इनका एक प्रधान कारण है।

यूरिक एसिड रक्तमें मिलकर रक्ताभिसरण-क्रिया (दौरानखून) में बाधा उपस्थित करती है, जिससे शरीरके समस्त अंग प्रत्यंगोंको भले प्रकार पोषण नहीं मिल सकता और न शरीरके सब भागोंका मल ही अच्छी तरह बाहर नि[illegible] सकता है। इसलिए स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और शरीर निर्बल हो जाता है।

जब "यूरिक एसिड" किसी मांसपेशी (पट्ठे) या जोड़में एकत्रित होता है तो यह अपनी शक्तिसे रक्तके समस्त विषैले पदार्थको अपनी ओर खींच लेता है, इस लिए थोड़े समय तक रक्त शुद्ध हो जाता है। यही कारण है कि मांस-भक्षणसे कभी कभी शरीरमें बल और पुष्टि आती हुई दिखलाई दिया करती है; परन्तु अवसर पा कर वह छिपा हुआ विष अपना प्रभाव दिखाता है और सारा बल, निर्बलता या रोगोंके रूपमें परिणत हो जाता है।

डा० हेगका कथन है कि मांसभक्षियोंको फलाहारियोंकी अपेक्षा थकान शीघ्र और अधिक आती है। मांसभक्षी किसी परिश्रमके कार्यको सहनशीलता पूर्वक अधिक समय तक नहीं कर सकते। मांसाहारियोंमें एक प्रकारका जोश, उत्तेजना या गरमी होती है पर वास्तविक बल और सहनशीलता उनमें नहीं होती।

मांसभक्षणसे शरीरकी रोगावरोधक शक्तिका भी ह्रास होता है और यही कारण है कि मांसाहारियोंपर रोग शीघ्र प्रभाव जमा लेते हैं। और मांसाहारी जब किसी रोगके चंगुलमें फँस जाते हैं तो वनस्पत्याहार करनेवालोंकी अपेक्षा उनका छुटकारा कठिनतासे होता है।

कितने ही विद्वान चिकित्सकोंका मत है कि मांसाहारसे मनुष्यको क्षय, भगन्दर, स्नायु पीड़ा आदि कष्टसाध्य रोग आ दबाते हैं और उनसे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। सुप्रसिद्ध डा० जौन वुडकी राय है कि "मांसभक्षण निरुपयोगी, प्रकृतिविरुद्ध और रोगोत्पादक है।"

भगन्दर रोगके प्रसिद्ध चिकित्सक डा० बेलने अपनी एक अंग्रेज़ी पुस्तकमें लिखा है कि प्रति वर्ष संसारमें दो करोड़ पचास लाख और केवल इंगलैंड और वेल्समें ही तीस हज़ार आदमी इस दुष्ट रोगसे मर जाते हैं, जिसका मुख्य कारण मांसाहारके प्रचारका आधिक्य है। उक्त डाकृर ने बड़े परिश्रम और अनुभवसे यह भी स्थिर किया है कि मांसाहारके त्याग और वानस्पतिक आहारके सेवनसे यह रोग शीघ्र अच्छा हो जाता है।

मांसाहारियोंको क्षय रोग भी अधिक होता है। इसका एक कारण यह भी है कि वध किये पशुओं में यदि एक पशु भी इस रोगसे ग्रस्त होता है तो उसके मांससे रोग जीवाणु औरोंके मांसमें भी प्रवेश कर जाते हैं और इस मांसके खानेवाले मनुष्योंको यह रोग हो जाता है। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि यक्ष्मा कितना भयंकर और प्राणघातक रोग है। यक्ष्मा ही क्यों अन्य संक्रामक रोग भी जिनमें पशु ग्रस्त होता है उसका मांस खानेवालोंको आ दबाते हैं।

यद्यपि शहरोंमें म्यूनिसिपेलटी द्वारा इस बात का ध्यान रखा जाता है कि रोगी पशुओंका मांस न बिकने पावे, परन्तु यह बात बहुत कठिन है कि साधारण परीक्षासे पशुके स्वास्थ्यका पूरा पूरा पता चल जाय; जितने पशु मारे जाते हैं उन सबका सर्वथा स्वस्थ होना सम्भव नहीं।

यद्यपि पकानेसे बहुत से जीवाणु नष्ट अवश्य हो जाते हैं, परन्तु मांस उनके विषसे सर्वथा विशुद्ध नहीं हो सकता।

डा० विक्टर पोचेड, डा० राबर्ट्स, डा० वाक्स, डा० ल्यूकाश, आदि कितने ही विद्वानोंकी सम्मति है कि स्नायु पीड़ाका रोग प्रायः मांसाहारसे ही उत्पन्न होता है।

मांसाहारसे केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही बिगड़ता हो यह बात नहीं है इससे मानसिक स्वास्थ्य भी नष्ट होता है। हमारे आचार, विचारादि पर भी भोजनका बहुत प्रभाव पड़ता है; सात्विक या तामसिक जिस प्रकारका भोजन किया जाता है विचार भी उसी प्रकारके बनते हैं। प्रसिद्ध कहावत है कि "जैसा खाइये अन्न वैसा होवे मन" और विचारोंके अनुरूप ही आचरण होते हैं। यदि सात्विक भोजन किया जाता है तो स्वभाव शान्त, सरल, और सहनशील होता है; सात्विकाहारीका चित्त न तो शराब इत्यादि नशों को चाहता है और न उसे विषय वासनाएँ ही अधिक कष्ट दे सकती हैं। इसके विपरीत तामसिक भोजन से क्रोध, निर्दयता आदि दुर्गुणोंकी उत्पत्ति और वृद्धि होती है। माँस भी एक तामसिक पदार्थ है। उसमें उत्तेजक गुण अधिक होता है; अतएव उसके सेवनसे मस्तिष्कमें विक्षोभ उत्पन्न हो कर मनोवृत्तियां चंचल हो जाती हैं और मनोयोगका ह्रास होता है। यह तो सबपर ही प्रकट है कि कोई भी कार्य्य क्यों न हो जब तक वह मनोयोग पूर्वक न किया जाय भले प्रकार उसका सम्पादन नहीं हो सकता; परन्तु मांस सेवनसे इस गुणका ह्रास होता है और धैर्यकी मात्रा कम हो जाती है। यही नहीं बल्कि मांसाहारसे बुद्धि, स्मरण शक्ति इत्यादि भी मन्द होजाती हैं। इसके विपरीत वानस्पतिकाहारसे विचारोंमें पवित्रता, चित्तमें शान्ति और प्रेमभावका उदय होता है। वानस्पतिक भोजन आचारको उन्नत करनेके अतिरिक्त मानसिक शक्तियोंका विकास और उनकी उन्नति भी करता है। *

* इसमें सन्देह नहीं कि सैकड़ों मांसाहारी भी तीव्र बुद्धिवाले सदाचारी और अत्यन्त सहनशील देखे जाते हैं, परन्तु ऐसे लोग मांसाहारको त्याग कर सात्विकाहार पर निर्वाह करते

जे. टाड फैरियर कहते हैं कि मन विचारों का परिशोधक यन्त्र (Filter) है, यदि यन्त्र विषाक्त कणोंसे लिप्त होगा तो विचार भी उसकी छूतसे न बच सकेंगे। मांसाहार मनको मलिन, सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियोंको कुंठित और कर्मेन्द्रियोंको शिथिल करता है।

बेंजमिन फ्रेंकलिनका कथन है कि शुद्ध भाव और तीव्र कल्पना शक्तिको उत्पन्न करनेवाला एक मात्र उपाय निरामिष भोजन ही है। इसी प्रकार अन्य कितने ही विद्वानोंका भी अनुभव है कि मांसाहार मानसिक शक्तियोंके लिए बहुत हानिकारक है।†

मांसाहारका प्रचार बढ़नेसे भारतमें उपयोगी पशुओंकी दिन प्रतिदिन कमी होती जाती है; यह एक कृषिप्रधान देश है। यहां पशुओंके बिना कृषि नहीं हो सकती; अतएव पशुओंके कमीसे होनेसे अन्न भी महंगे होता चला जाता है। यद्यपि वर्तमान महंगीके और भी बहुत से कारण हैं, पर पशुओंकी कमी भी एक कारण है। जिस भारतमें दूधकी नदियां बहती थीं, आज वहीं दूध घी तो क्या छाछ मिलना भी कठिन है।

यह देश जो दिनपर दिन निर्बल होता जा रहा है दूध घीका अभाव भी इसका एक कारण है। और यदि पशुवधकी यही द्रुतगति रही तो वह दिन शीघ्र ही आनेवाला है कि जब घी हकीमोंके नुस्खों में ही लिखा जाया करेगा।

भारत एक निर्धन देश है। वहां सुलभ और सस्ते स्वास्थ्यवर्द्धक वानस्पतिक आहारको छोड़कर अप्राकृतिक और रोगोत्पादक मांस पर इतना अधिक व्यय करना किसी दशामें भी उचित नहीं है। जितने मूल्यसे एक मांसाहारीका पोषण हो सकता है उतने मूल्यसे कई शाक पात, अनाज और फलादि खानेवाले जीवन निर्वाह कर सकते हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि मांसाहारसे स्वास्थ्यको कोई हानि नहीं पहुँचती, तब भी भारत जैसे निर्धन देशमें जहां भरपेट भोजन नहीं मिलता, शरीर ढाँपनेको वस्त्र नहीं मिलते, वहां ऐसे मूल्यवान पदार्थको सेवन करना उचित नहीं है; जब कि उसके विना खाये भी काम चल सकता है।

कुछ लोगोंका कथन है कि आयुर्वेदमें मांसके बहुत गुण बतलाये गये हैं और उसके खानेकी भी आज्ञा है। ऐसे सज्जनोंको याद रखना चाहिये कि आयुर्वेदमें गुण दोष तो सभी पदार्थोंके वर्णन किये हैं, परन्तु वह गुण पदार्थोंके विधि पूर्वक सेवनसे ही प्राप्त हो सकते हैं। संखिया बहुत बलदायक है, पर वही विधिपूर्वक सेवन न करनेसे प्राणघातक है। आयुर्वेदमें मांस सेवनकी आज्ञा कतिपय रोगोंमें अवश्य है; पर आहारमें मांसको स्थान नहीं दिया गया। आहारमें मांसको सम्मि-

---

तो उनकी मानसिक शक्तियोंका और भी अधिक उन्नत होना सम्भव था।

† मांसाहारके पक्षपातियोंको कभी कभी यह कहते भी सुना जाता है कि भारतकी निर्बलता, क्षीणता, हीनता और परतन्त्रताका एक मुख्य कारण मांसाहारको निकृष्ट समझना ही है; ऐसे लोग कहते हैं कि संसारमें मांसाहारी जातियां ही शक्तिशाली और विजयी होती हैं। उदाहरणके लिए वह लोग अंग्रेज़ जातिका नाम लेते हैं, परन्तु इस विचारमें भ्रमके अतिरिक्त कुछ सत्यता नहीं है। किसी जातिकी स्वाधीनता और पराधीनता मांसाहार अथवा निरामिष भोजनके ऊपर कभी निर्भर नहीं हो सकती। यदि यही बात होती तो भारत के मुसलमान और बंगाली आज स्वाधीन होते; पंजाबियोंको जलयानवाला बाग़ का नरमेध देखनेका अवसर न मिलता। जापान रूस पर विजय प्राप्त करनेमें सफलता प्राप्त न कर सकता। अतएव भारतकी पराधीनताका कारण निरामिषाहारका प्रचार नहीं हो सकता; न मांसाहारके प्रचारसे हमारी खोई हुई स्वाधीनता पुनः प्राप्त हो सकती है। इसके विपरीत स्वाधीनता प्राप्तिके लिए वर्तमान आन्दोलनके महारथी महात्मा गांधी जी का तो कहना है कि—"अहिंसा और मारकाटके अभावकी अत्यन्त आवश्यकताको अनुभव किये विना करोड़ों भारतियोंकी स्वाधीनता प्राप्तिका कार्य पूरा होना सर्वथा असम्भव है।" ( नव जीवन १६-१९-२० )

क्षिन करना विधिविरुद्ध है। इसलिए हानिकारक है।

चरक वाग्भट्टादिके सूत्र स्थानमें स्वास्थ्य रक्षा पर विचार किया गया है और वहां पर जो जो विधियां दी हैं वह सब स्वस्थ मनुष्योंके लिए हैं और उनका पालन करना स्वस्थ मनुष्योंके लिए आवश्यक है। चरकके सूत्र स्थानमें कहा है कि—

"गुरु भोजनम् दुर्विपाकानाम्"

अर्थात् कठिनतासे पचनेवाले पदार्थोंमें गुरु भोजन सबसे प्रथम है और फिर कहा है कि मांस गुरु भोजन है: इससे प्रकट होता है कि मांस बहुत कठिनतासे पचनेवाला पदार्थ है। जो पदार्थ भले प्रकार पच ही नहीं सकता उससे किसी प्रकारके लाभकी आशा कैसी ? *

वाग्भट्ट ने सूत्र स्थानमें कहा है कि—

सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत् ।

अर्थात्—विना धर्मके सुख नहीं, इसलिए मनुष्यको धर्मात्मा होना चाहिये इसके आगे धर्म और पाप कर्मोंको गिनाते हुये लिखा है कि—

हिंसास्तेयान्यथा कामं पैशुन्यं परुषानृते ।
संभिन्नालाप व्यापादमभिध्या दृग्विपर्ययम् ॥
पापं कर्मेति दशधा काय वाङ्मानसैस्त्यजेत् ।

अर्थात्—हिंसा, चोरी इत्यादि दश पाप कर्म हैं। इन्हें मन, वचन और कर्मसे त्यागना चाहिये। अब सोचना चाहिये कि जो आयुर्वेद हिंसाको (पाप समझ कर) मनसे भी त्याग करनेका उपदेश देता है वह उदरपोषणके लिए पशुवधकी आज्ञा किस प्रकार दे सकता है। आगे चलकर वाग्भट्टमें एक स्थान पर लिखा है कि—

आत्मवत् सततं पश्येदपि कीट पिपीलिकम् ।

अर्थात् कीट पतंगों, चींटियों तकको भी सदैव अपने समान देखो। महर्षि चरकने भी ऐसा ही उपदेश दिया है—

सर्वे प्राणिषु बन्धु भूतः स्यात् ।

अर्थात् सब प्राणियोंको बन्धुके समान समझो। इन प्रमाणोंसे प्रकट है कि आयुर्वेदमें मांस भक्षणकी आज्ञा नहीं बल्कि प्रबल निषेध है।

जो ऋषि कीट पतंगों तकको बन्धुवत् समझनेका उपदेश देते हैं वह उदरपोषणार्थ पशु वधकी आज्ञा नहीं दे सकते। अतएव आयुर्वेद शास्त्रका मत लेने पर भी मांसाहार अनुचित ही ठहरता है।

## आदमियोंका उड़ना

सायन्टिफिक अमेरिकनका कहना है कि जब जर्मनोंको सुलहकी शर्तोंके अनुसार इंजनसे चलाये जानेवाले हवाई जहाजोंका बनाना बंद करना पड़ा तब वह ऐसी कल बनाने लग गये, जिनसे बिना किसी इंजनकी सहायताके मनुष्य उड़ सके। रोन ज़िलेमें उड़नेकी जो परीक्षा हुई थी उसके परिणामसे कहना पड़ता है कि उन्होंने इस विषयमें बहुत उन्नति करली है। इस परीक्षा में ४५ कलोंकी जांच हुई थी। इनमें से किसीमें कोई इंजन नहीं था, परन्तु सब बहुत ही हल्की बनायी गयी थीं और इस तरह बनाई गयी थीं कि उड़नेमें सुविधा हो। परिणाम बड़ा ही आश्चर्यजनक था। एक मनुष्य हवामें १५ मिनट ४० सेकंड रहा। इतने समयमें वह कुल मिलाकर ४ मील उड़ा था। इस उठानमें एक अनोखी बात यह थी कि शान्त हवामें एक फुट ऊपर उठने में वह ३२ फुट आगे बढ़ता था। दूसरा उड़ाकू २२ मिनट तक हवामें रहा, तब इसका दम टूट गया। सबसे अच्छा वह था जिसने १३ मिनटकी उड़ानमें ६ मीलसे अधिक दूरी तै की।

* मांसकी प्रोटीन अन्य पदार्थोंकी प्रोटीनोंकी अपेक्षा अधिक सुगमतासे पच जाती हैं।—सं०

## कुकरमुत्तेकी खेतीसे लाभ

बरसातके दिनोंमें भीगी हुई लकड़ियों तथा गोबरके ढेरोंमें छोटे छोटे सफ़ेद पौधे जिनका ऊपर-वाला भाग छतरी कासा होता है अपने आप जमते हैं। इधरके लोग इनसे कोई विशेष लाभ नहीं उठाते। बंगाल, पंजाब, काश्मीर और ब्रह्मदेशके लोग इनकी तरकारी बनाते हैं और बड़े चावसे खाते हैं। इसका नाम कुकरमुत्ता है। इसके कई भेद होते हैं। इन्हींके सम्बन्धमें प्रोफेसर एस. आर. बोस 'एग्रीकल-चरल जरनल आव इण्डिया' में लिखते हैं:—

रसायनवेत्ताओंने अन्वेषण करके बतलाया है कि खानेयोग्य कुकरमुत्तेके जितने भेद हैं सबमें पौष्टिक पदार्थ पर्याप्त रूपमें रहते हैं। दो प्रकारके अभी कुकरमुत्ते कृत्रिम रीतिसे तैयार किये गये हैं और खोजका काम जारी है।

इस सम्बन्धमें श्री० ए. हैन्सन "दि सायन्टिफिक अमेरिकन" में लिखते हैं—कुकरमुत्तेके बारेमें जब लोग अच्छी तरहसे जानने लगेंगे तब खाने पीनेकी चीज़ोंकी मंहगाई का प्रश्न कुछ सरल हो जायगा। प्रतिवर्ष जंगलोंमें करोड़ों मन कुकरमुत्ते जिनसे बहुतही स्वादिष्ट भोजन बनाया जा सकता है पैदा होते और व्यर्थ ही नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि लोग इनकी उपयोगिता नहीं समझते। कुकरमुत्ते केवल पोषण-की ही सामग्री नहीं रखते, वरन इनसे तरह तरहके स्वादिष्ट, सस्ते और सन्तोषप्रद भोजन तैयार किये जा सकते हैं। इनका प्रयोग बहुत मात्रामें करना चाहिये।

बरसातके दिनोंमें खाने पीने लायक तरकारियाँ कठिनाईसे मिलती हैं। इसलिए यदि कुकरमुत्तेका व्यवहार अधिक बढ़े तो इससे बहुत लाभ हो, भोजन सस्ता मिलने लगे और इसकी खेती भी उचित रीतिसे की जाने लगे।

---

## चिकटा

[ ले०—श्री० शंकरराव जोशी ]

चिकटे ( Plant lice ) की कई जातियां हैं, जिनमेंसे कुछ भारत वर्षमें भी पाई जाती हैं। शीतकालमें कभी कभी यह कीड़े अमरूदके वृक्षपर भी पाये जाते हैं। गरमीके मौसममें गुलाबके पत्तों पर भी देखे जाते हैं। इस कीड़ेकी लम्बाई करीब ⅛ इंच होती है। इसका रंग हरा, पीला या अन्य किसी प्रकारका होता है। पीठ पर गुद द्वारसे कुछ ऊपरकी ओर दो काले बाल होते हैं। इसका सिर छोटा और आंखें ऊदी रंगकी होती हैं। त्वचा मृदु होती है। स्पर्शेन्द्रिय पतली और शरीरके बराबर लम्बी होती है। पांव लम्बे और पतले होते हैं। इस जातिके कीड़ोंमें कुछ तो पंखदार होते हैं और कुछ बिना पंखके। पंख पारदर्शक होते हैं। पंख-वाले कीड़ोंका रंग ज़्यादा गहरा होता है।

यह कीड़ा अकसर पौदोंके पत्तोंपर ही पाया जाता है। चिकटेसे ढके हुए पत्तेको उठाकर देखें तो कीड़ोंके थर, एकपर एक जमे हुए नज़र आवेंगे। नीचेके स्तरमें स्त्री जातिके कीड़े होते हैं और ऊपर-के स्तरमें पुरुष जातिके। स्त्री जातिके कीड़े पत्तोंकी त्वचामें मुख डाल कर रस पान करते रहते हैं और पुरुष जातिके कीड़े प्रजोत्पादनमें लगे रहते हैं। चिकटेकी प्रजावृद्धि बड़ी शीघ्रतासे होती है।

चिकटा बहुत छोटा होता है। अतएव दो चार कीड़ोंसे पौदेको नुक़सान नहीं पहुंचता। जब पौदे-के अधिकांश पत्ते इन कीड़ोंसे भर जाते हैं तभी उसे हानि पहुंचती है। कीड़े पत्ते सफा चट कर जाते हैं, जिससे पौदेकी बाढ़ रुक जाती है एवं वह सूख जाता है।

चार्ल्स वौनेट् नामक विद्वानने बड़े परिश्रमसे कई ज्ञातव्य बातोंका पता लगाया है। हम आपके एक लेखका सारांश नीचे देते हैं।

"चार बार त्वचा बदलनेके बाद इसकी बाढ़ पूरी हो जाती है। त्वचा बदलते समय कीड़ेको बड़ी तकलीफ होती है। मैंने एक कीड़ा माताके उदरमें से निकलते ही पकड़ कर एक कांचके पात्रमें रख दिया था। कांचका पात्र ऐसा था कि न तो बाहरका प्राणी भीतर आ सकता था और न भीतरका प्राणी बाहर ही निकल सकता था। इस कीड़ेने पहली वार तारीख २३ मईकी शामको दूसरी बार २६ मई को दो पहरके दो बजे, तीसरी बार २८ मईको सबेरे सात बजे और चौथी बार २६ मई को शामके सात बजे त्वचा बदली थी। तारीख १ जूनको शामके सात बजे इसके एक बच्चा हुआ। बच्चा होने तक मुझे यह नहीं मालूम था कि वह चिकटा नर है या मादा। तदनन्तर एकके बाद एक बच्चे होने लगे। यह क्रम तारीख २५ जून तक जारी रहा। इस समय तक बच्चों की संख्या ६६ तक पहुँच गई थी। कई बच्चे तो माताके उदरमें से निकलते ही भोजन करने लगे थे।"

बौनेटने माताके पेटमेंसे निकलते ही कीड़ेको पकड़ कर कांचके पात्रमें रख दिया था। उसने बाहरसे दूसरे कीड़ेका प्रवेश न होने देने पर विशेष ध्यान रखा था। अतएव यह संभव नहीं कि दूसरे कीड़ेके संयोगसे सन्तति हुई थी। इसलिए यही कहना पड़ेगा कि स्त्री पुरुष संयोगके विना ही सन्तति हुई थी। बौनेटने भिन्न भिन्न जातिके चिकटोंपर प्रयोग किये थे। उसका मत है कि वसन्त ऋतुमें पैदा होनेवाले कीड़ोंमें स्त्री पुरुष संयोगके विना ही सन्तति होती है। इन कीड़ोंकी अण्डावस्था भी नहीं होती। नवजात कीड़े और पूर्ण बाढ़को पहुंचे हुए कीड़ेमें पुष्कल साम्य होता है। पैदा होते ही इन कीड़ोंका आहार विहारादि व्यापार शुरु हो जाता है। बरसातमें पैदा हुए कीड़ोंमें स्त्री पुरुष भेद होता है। इस मौसममें पैदा हुए कीड़ोंमें स्त्री पुरुष संयोग विना सन्तति नहीं होती। इन कीड़ोंमें अण्डावस्था भी होता है।

बौनेटके प्रयोगोंकी सत्यता सिद्ध करनेके लिए एम-बालबियानी नामक विद्वानने भी चिकटों पर प्रयोग किये थे। उसने सिद्ध किया है कि स्त्रीपुरुष संयोगके अभावमें भी सन्तति होना संभव है। जिस कीड़ेके स्त्री और पुरुष दोनों जातिकी जननेंद्रिय* होती है उसके स्त्रीपुरुषसंयोगके अभावमें भी सन्तति होती है।

एक मादा २० दिनमें ६० अण्डे देती है। इस हिसाबसे तीसरी पुश्तमें बच्चोंकी संख्या ८१०० तक पहुंच जाती है और यदि यही क्रम जारी रहा तो नवीं पुश्तमें कीड़ोंकी ४४१४६१०१०००००० तक पहुंच जायगी! यदि इसी प्रकार चिकटेकी प्रजावृद्धि अबाधित होती रही होती तो शीघ्र ही सारा भूमंडल चिकटामय हो गया होता। किन्तु प्रकृति माता हमेशा लेखा बराबर बनाये रखती है। चिकटेके पुष्कल शत्रु हैं और यही कारण है कि इनकी वृद्धि मर्यादित रहती है। तथापि एक आध बार चिकटेकी—प्रजावृद्धि इतनी अधिक होती है कि थोड़े ही समयमें यह कीड़े फसलका सत्यानाश कर डालते हैं। इन कीड़ोंकी प्रजावृद्धिके सम्बंधमें प्रोफेसर एम. मोरेन लिखते हैं—

"सन् १८३३-३४ के शीत कालमें †वर्षा बिलकुल नहीं हुई। गर्मी भी ज़्यादा रही। दूसरे वर्ष बेलजियम देशमें महामारी फैल गई। इसी वर्ष ब्रजेस और घेंट नामक नगरोंके बीचके प्रदेशमें चिकटेका छह इंच मोटा थर जम गया। दूसरे दिन यह कीड़े घेंट पर उड़ने लगे, जिससे भर दोप-

*जिस प्राणीके स्त्री और पुरुष दोनों ही प्रकारकी जननेंद्रिय होती हैं उसे अंगरेज़ीमें 'हर्माफ्रोडाइट' (Hermaphrodite) कहते हैं। हम इस प्रकारके कीड़ेको 'उभयेन्द्रिय' संज्ञा देते हैं। चिकटेके सिवा अन्य जातिके कीड़े और वनस्पति भी 'उभयेंद्रिय' होती हैं। कीटक संसारके दो जातिके पतंग —Psyche और Solenobia—उभयेंद्रिय हैं।

† यूरोपके अधिकांश देशोंमें शीतकालमें भी पानी बरसता है।

हरमें पूर्ण अंधकार हो गया। घरोंके ऊपर और दीवारोंपर चिकटोंका चार चार इंच मोटा स्तर जम गया। घंटेसे एरटवर्प तकका सब प्रदेश चिकटेके कारण ऐसा नज़र आने लगा मानों हरा गलीचा बिछा रखा हो।"

जिस पौदेपर यह कीड़ा रहता है। उसपर चींटियां भी बहुत पाई जाती हैं। कई दिनों तक यह एक गूढ़ रहस्य था कि चींटियां वहां क्यों रहती हैं। विद्वान लोग इस गूढ़ रहस्यका उद्घाटन करनेके लिए यत्नशील रहने लगे। वर्षोंके कठिन परिश्रमके बाद पोरी ह्यूबरका परिश्रम सफल हुआ। आपने अपने अनुसंधानों पर एक लम्बा लेख लिखा है। आपके इस लेखका सारांश हम नीचे देते हैं—

"चिकटेके पीठपर गुदद्वारसे कुछ ऊपरकी ओर दो काले बाल होते हैं।

इन बालोंकी जड़ोंमें एक एक छोटी गांठ होती है। इस गांठमें शरबतके समान एक सुमधुर रस तैयार होता है। कभी कभी यह पदार्थ उक्त बालों-के रंध्रोंमेंसे बाहर निकल आता है। माताके उदरमें से बाहर निकलने पर बच्चे कुछ समय तक इस रस पर जीवन-निर्वाह करते हैं।

कई बार मैंने देखा है कि चींटियां यह रस स्वयं पी जाती हैं; बच्चोंको नहीं पीने देतीं। परन्तु यदि रस बालोंसे बाहर न निकला, तो क्या चींटियां भूखी बैठी रहती हैं? वह अपनी बुद्धिका उपयोग कर रससे अपना पेट भर ही लेती हैं।

चींटी चिकटेके पास जा अपनी स्पर्शेन्द्रिय धीरे धीरे बालोंके पास उसके शरीरपर फिराती हैं। इससे गुदगुदी होती है, जिससे प्रसन्न हो चिकटा रस छोड़ देता है। रस पीकर चींटी दूसरे कीड़ेके पास जा फिर वही प्रयोग करती है। जब तक पेट नहीं भर जाता चींटी अपना कार्य जारी रखती हैं।

कुछ जातिकी चींटियां चिकटेको पालती हैं, अत-एव कह सकते हैं कि चिकटा उनकी 'गाय' है।*

* इस सम्बन्धमें अधिक हाल 'चींटी' शीर्षक लेखमें दिया जायगा—लेखक।

# शोरेकी शोधनविधि*

[ लेखक—श्री० प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्मा, एम. एस-सी., एफ. सी. एस. ]

शोरेके साफ़ करनेके अनेक कारखाने हैं। उन्हें सरकारसे लैसन्स—आज्ञापत्र—लेनेकी आवश्यकता पड़ती है। यह इसलिए आवश्यक है कि शोरेके साथ साथ लवण भी अलग किया जाता है और लवणपर सरकारका कर नियुक्त है। निम्न लिखित तालिकासे मालूम होता है कि शोरा साफ करनेके कारखाने हिन्दुस्तानके किस भागमें किस वर्षमें कितने मौजूद थे।

| वर्ष | विहार प्रान्त | युक्तप्रान्त | पञ्जाब |
|---|---|---|---|
| १९१३–१४ | २१३ | ८२ | ३२ |
| १९१४–१५ | २०५ | ८३ | ३३ |
| १९१५–१६ | २१३ | ९५ | ३७ |
| १९१६–१७ | २२७ | १२८ | ४८ |
| १९१७–१८ | २४८ | १४६ | ५९ |

ऊपरकी तालिकासे विदित होता है कि १९१५ से साफ करनेके कारखानोंकी संख्यामें वृद्धि हो रही है। इसका कारण निस्सन्देह गत यूरोपीय महा-समर था, क्योंकि उस समय शोरेका बहुत अधिक मात्रामें, युद्धकी सामग्रीके रूपमें, व्यवहार होता था। इन कारखानोंसे कितना कलमी शोरा तैयार हुआ यह नीची तालिकासे मालूम होता है।

| वर्ष | विहार प्रान्त (मनोंमें) | युक्तप्रान्त (मनोंमें) | पञ्जाब (मनोंमें) |
|---|---|---|---|
| १९१३–१४ | १८५३७३ | १६६७५६ | ८७०१० |
| १९१४–१५ | २२२११३ | १८८३८६ | १०६१७६ |

* लेखकने "भारतमें शोरेका व्यवसाय" विषय पर एक लेख लिखा है, जो "स्वार्थ" पत्रिकाके मार्ग शीर्षके अङ्कमें प्रकाशित हुआ है। वाणिज्यकी दृष्टिसे इस विषय पर उसमें पूर्ण रूपसे विचार किया गया है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १९१५-१६ | २९६५६५ | २३६६५८ | १५२३०१ |
| १९१६-१७ | २४१०३८ | ३००५६६ | २५५६७६ |
| १९१७-१८ | २३०४३१ | २५८८३८ | १५६०७१ |

इस तालिकासे यह भी विदित होता है कि यहांके कारखानोंमें कुछ कम शोरा साफ नहीं होता; किन्तु जब साफ शोरेकी शुद्धता पर विचार किया जाता है तब मालूम होता है कि यहांका साफ शोरा बिना दुबारा साफ किये बहुत से कामों

| | फर्रुखाबाद | | ओकारा | | मुजफ्फरपुर | बुरहानपुर |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | नमूना १ | २ | १ | २ | | |
| | प्रतिशत | प्रतिशत | प्रतिशत | प्रतिशत | प्रतिशत | प्रतिशत |
| पोटाश नत्रेत | ६६·०७ | ४४·७२ | ५३·४८ | २६·८६ | ४८·३६ | ६८·४० |
| केलसियम नत्रेत | — | — | २·६१ | — | ३·२८ | २·६० |
| मगनिसियम नत्रेत | २·५४ | ४·८० | — | १२·२४ | ७·४४ | २·१२ |
| सोडा हरिद (लवण) | २१·८४ | ३५·३८ | ३४·२२ | ३४·८० | १६·८२ | १७·९८ |
| सोडा गन्धेत | ३·६५ | १०·०० | ३·८८ | ११·२० | १४·६० | ३·४० |
| अघुलनशील पदार्थ | ०·९० | १·२० | १·१० | १·४० | २·५० | १·७० |
| जल | ५·०० | ३·७० | ५·२० | १३·५० | ७·०० | ३·८० |
| जोड़ | १००·०० | १००·०० | १००·०० | १००·०० | १००·०० | १००·०० |

में व्यवहृत नहीं हो सकता। इन कारखानोंकी शोधनविधि इतनी गन्दी है कि सिवाय लवणके कुछ अंशके निकाल बाहर करने और रङ्गको कुछ हलका करनेके उससे और अधिक लाभ नहीं होता। जो विधि अधिकांश कारखानोंमें प्रचलित है उसे संक्षेपमें वर्णन कर देना यहां उचित जान पड़ता है।

ग्राम ग्रामसे इकट्ठा हो कच्चा शोरा कारखानेमें आता है। पोटाश नत्रेतके अतिरिक्त इसमें निम्न लिखित पदार्थ * मौजूद रहते हैं। ( बाएँ कालममें देखिये )

ऊपरकी तालिकासे विदित होता है कि कच्चे शोरेमें लवणका अंश सबसे अधिक मौजूद रहता है।

यह कच्चा शोरा उबलती हुई काहीमें (शोरेके घोल से रवे (Crystal) निकाल लेने पर जो तरल पदार्थ शेष रह जाता है उसे "काही" कहते हैं ) घुलाया जाता है। यह काही सोडा हरिदसे संपृक्त (Saturated) रहती है; चूंकि सोडा हरिदकी घुलनशीलता ऊंचे तापक्रम पर साधारण तापक्रमसे विशेष अधिक नहीं होती इसलिए उबलती हुई काहीमें कच्चे शोरेका केवल पोटाश नत्रेत ही घुलता है और लवणका अंश ज्योंका त्यों रह जाता है। अघुलनशील पदार्थ भी शेष रह जाते हैं। आंच हटा लेनेपर अघुलनशील पदार्थ शीघ्र ही बरतन के पेंदेमें बैठ जाते हैं और तब ऊपरका स्वच्छ गरम घोल लकड़ीके टबोंमें ठंडे होनेके लिए ढाल दिया जाता है।

वहां वह धीरे धीरे ठंडा होता रहता है और साथ ही साथ शोरेके रवे उत्पन्न होने लगते हैं। लवण और अन्य अघुलनशील पदार्थोंका अंश जो कड़ाहीमें शेष रह जाता है उसे 'सीठा' कहते हैं और उसमेंसे थोड़ा बचा हुआ शोरा मट्टीसे शोरा निकालनेकी साधारण रीतिसे निकाला जाता है। दो से चार दिन तक वह घोल ठंडा होनेके लिए छोड़ दिया जाता है। इस बीचमें अधिकांश पोटाश

* यह तालिका Agricultural Ledger vol XII, पृष्ठ ३१ से ली गयी है।

नत्रेत रवोंके रूपमें घोलसे अलग हो जाता है। कहीं कहीं ठंडे होनेकी क्रियाको देर तक क़ायम रखनेके लिए लकड़ोंके टब अथवा मट्टीकी नांदको ज़मीनके अन्दर गाड़ देते हैं, ताकि उसकी गरमी बहुत धीरे धीरे निकले। पूरे रवोंके निकल आनेपर वह टबोंसे अलग किये जाते हैं और बांसकी टोकरियोंमें रखकर यथा सम्भव सारे तरल पदार्थोंसे अलग किये जाते हैं। इस विधिसे प्राप्त शोरा एक अथवा दो बार थोड़े थोड़े जलसे धो डालनेपर "कुठिया" शोरेके नामसे पुकारा जाता है और इसी रूपमें कारखानोंसे बाहर भेजा जाता है। भिन्न भिन्न नमूनोंमें भिन्न भिन्न पदार्थोंके जुदे जुदे अंश वर्तमान रहते हैं। ऐसे दो नमूनोंका विश्लेषण * यहां दिया जाता है।

| | बरहानपुरका नमूना | सीवानका नमूना |
|---|---|---|
| पोटाश नत्रेत | ६५·२१ | ५०·६५ |
| सोडा नत्रेत | ७·७४ | —— |
| पोटाश गन्धेत | — | १·६८ |
| सोडा गन्धेत | ०·६१ | —— |
| पोटाश हरिद | — | १६·८१ |
| सोडा हरिद | २२·६२ | २०·६५ |

इन अङ्कोंसे स्पष्ट है कि सोडा हरिद अर्थात् लवणका अंश अब भी बहुत कुछ रह जाता है।

इस विधिके कुछ अधिक सुधारसे "क़लमी" शोरा तैयार होता है। इसके सुधारमें दो मुख्य बातोंका विचार रखा जाता है। पहले यह चेष्टा की जाती है कि शोरेका घोल यथासम्भव बहुत देरमें ठंडा हो; क्योंकि जितनी ही देरमें घोल ठंडा होता है उतना ही शुद्ध शोरा तैयार होता है। कभी कभी दस बारह दिन तक ठंडे होनेमें लग जाते हैं। धीरे धीरे ठंडे होनेसे आकारमें बड़े बड़े रवे बनते हैं। बड़े रवोंमें घोलका अंश कम होनेसे लवणका अंश कम रहता है। जब घोल ठंडा होना शुरू होता है तब घोलके पानीके अंशको भापके रूपमें उड़ जानेसे बचानेकी आवश्यकता पड़ती है; क्योंकि पानी उड़ जानेसे उसके लवणका अंश अवश्य ही रह जाता है। यह रुकावट घोलके ऊपर थोड़ा पानी बहुत धीरेसे रख देनेसे हो जाती है। चूंकि घोलका घनत्व पानीके घनत्वसे अधिक है, इसलिए सावधानीसे डालनेसे पानी घोलमें नहीं मिल जाता। घोलकी तहके, पानीकी तहसे, मिलनेसे शीघ्र ही एक ठोस तह बन जाती है और यह ठोस तह तापवाहक न होनेसे गरमीको बाहर जानेसे रोकती है। इन सब क्रियाओंके उपचारसे जो शोरा तैयार होता है उसका विश्लेषण डा० लेदर और मि० मुकर्जीने इस प्रकार दिया है।

| | १ | २ | ३ | ४ |
|---|---|---|---|---|
| पोटाश नत्रेत | ८२·६१ | ९६·१७ | ९१·१९ | ९२·९८ |
| पोटाश हरिद | ११·०४ | — | ३·५४ | १·८७ |
| सोडा गन्धेत | — | ०·१५ | — | ०·६७ |
| सोडा हरिद | २·६४ | ०·८६ | ०·६१ | २·३३ |

यद्यपि इस प्रकारके शोरेमें अशुद्धियोंकी मात्रा अधिक नहीं होती, किन्तु रङ्ग इनका काफी स्वच्छ नहीं होता।

कुछ कारखानोंमें यह क़लमी शोरा फिर भी स्वच्छ किया जाता है। केवल शोरेके बोरोंपर स्वच्छ पानी डाल देते हैं। स्वच्छ पानी कुछ शोरेको घुलाता हुआ लवणके अंशको भी साथ साथ घुला डालता है। इस धोनेका जो असर होता है वह निम्नलिखित तालिकासे विदित होगा।

* यह विश्लेषण डाक्टर लेदर और मि० मुकर्जी कृत पूसाके कृषि विभागके बुलेटिन नं० २४ के पृष्ठ १० से लिया गया है।

| | बुरहानपुर | | सीवान | | बक्सामी | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | बिना धोया हुआ | धोया हुआ | बिना धोया हुआ | धोया हुआ | बिना धोया हुआ | धोया हुआ |
| पोटाश नत्रेत | ९०·७० | ९४·९१ | ८१·९८ | ९१·५५ | ८८·६३ | ९४·७० |
| सोडा गन्धेत | ०·९१ | ०·३ | — | — | — | — |
| पोटाश गन्धेत | — | — | ५·४४ | ०·९३ | ०·१५ | ०·१५ |
| पोटाश हरिद | — | — | २·५६ | २·५१ | ६·०६ | २·६७ |
| सोडा हरिद | ५·४० | ३·१२ | ७·०५ | १·६८ | ०·०७ | ०·०१ |
| बालू | ०·३० | ०·२० | ०·२० | ०·३५ | — | — |

ऊपरकी तालिकासे स्पष्ट है कि यद्यपि लवणका अंश बहुत कुछ कम हो जाता है किन्तु पोटाश नत्रेतका परिमाण ९५ फी सदीसे अधिक नहीं बढ़ता। इन कारखानोंकी विधियोंमें क्या दोष है, यह डा० लेदर और मि० मुकरजी इस प्रकार बतलाते हैं।

( १ ) कच्चे शोरेका समस्त पोटाश नत्रेत लवण तथा अन्यान्य अघुलनशील पदार्थोंसे अलग नहीं होता। इसका कुछ अंश सीठामें रह जाता है, जो शीघ्र ही किन्तु धीरे धीरे निकल पाता है।

( २ ) शोरेका घोल जो तैयार होता है वह संपृक्त नहीं होता। उसे आग द्वारा उबालनेकी जरूरत पड़ती है। इससे ईंधनका खर्च बढ़ जाता है।

( ३ ) इस विधिमें पोटाश नत्रेतका कुछ अंश नष्ट हो जाता है।

( ४ ) यद्यपि क़लमी शोरा अच्छा होता है, किन्तु कुठिया शोरा उतना अच्छा नहीं होता।

( ५ ) इस प्रकार शुद्ध किया हुआ शोरा कुछ रङ्गीन होता है और उसका रङ्ग दूर करनेके लिए धोनेकी आवश्यकता पड़ती है।

( ६ ) बरसातके दिनोंमें शुद्ध करनेका काम जारी रखा नहीं जा सकता। ऐसे समय काम साधारणतः बन्द ही रहता है।

प्रस्तुत लेखककी रायमें इसमें दोही तीन ऐसे दोष हैं जिन पर विचार करनेकी आवश्यकता है। शेष ऐसे हैं जिनसे कोई विशेष क्षति नहीं। शोरेके घोलको गाढ़ा करनेके लिए आग और ईंधनकी आवश्यकता पड़ती है। शोरेका रङ्ग स्वच्छ नहीं होता और वह बहुत शुद्ध भी नहीं होता है। यदि यह तीनों दोष दूर कर दिये जायं तब शोरेके व्यवसायका भविष्य अवश्य ही उज्ज्वल हो जाय।

इन दोषोंको दूर करनेके लिए डा० लेदर और मि० मुकुरजीने एक यन्त्र बनाया है, जिसका वर्णन पूसाकी कृषि सम्बन्धी पुस्तिका नं० २४ में दिया हुआ है। यह यन्त्र प्रयागकी १९११ की प्रदर्शनीमें भी कार्य्य करते हुये दिखाया गया था। इस यन्त्रमें पांच क्रियाएं होती हैं। ( १ ) कच्चा शोरा एक विशेष बरतनमें काहीके साथ प्रायः उबलने तक गरम किया जाता है। इससे शोरा तो प्रायः सबका सब घुल जाता है, किन्तु लवण और अन्याय पदार्थ बिना घुले ही रह जाते हैं। (२) उपरोक्त गरम घोल और बिना घुले हुये पदार्थ छाननेके एक विशेष यन्त्रमें डाल दिये जाते हैं। तब यन्त्र बन्द कर दिया जाता है और उसपर वायुका दबाव डाला जाता है। इस दबावसे गरम घोल बिना घुले हुये पदार्थोंसे अलग हो जाता है। (३) इस तरह छना हुआ गरम घोल तब शीघ्रता से ठंडे होनेके लिए एक दूसरे बरतनमें डाल दियां जाता है। शीघ्रतासे ठंडे होनेसे छोटे छोटे रवे बनते

हैं। उनके अन्दर घोलका अंश अधिक न रहनेसे प्रायः शुद्ध शोरेके रवे तैयार होते हैं। (४) रवेके साथ साथ घोल शीघ्रतासे घूमने वाले यन्त्रमें ( Centrifugal machine ) डाल दिये जाते हैं, जहां घोल रवोंसे प्रायः पूर्ण रूपसे अलग हो जाता है। शोरा उज्जवल और सूखा निकल आता है। (५) यन्त्रसे घोल निकाल लेनेपर रवोंपर ठंडा पानी छिड़क कर फिर घुमाया जाता है, जिससे बाकी लवणका अधिकांश अलग हो जाता है।

ऐसा यंत्र महायुद्धके पहले मुज़फ़्फ़रपुरके मेसर्स आर्थर बटलर एण्ड कोके यहांसे प्रायः तीन हज़ार में मिल सकता था। इस यंत्रके बनानेवालोंका दावा है कि इस यंत्रके प्रयोगसे अनेक दोष जो देहाती विधियोंमें मौजूद हैं दूर हो सकते हैं। प्रस्तुत लेखककी रायमें इस यंत्रके प्रयोगसे कोई विशेष लाभ नहीं। इसका मुख्य प्रमाण यह है कि यदि इस यंत्रसे कोई विशेष लाभ होता तो शुद्ध करनेवाले कारखाने अवश्य ही उसका प्रयोग करते होते। जहां तक इस लेखकको मालूम है किसी भी कारखानेमें इस यंत्रका प्रयोग नहीं हुआ है। इसके न प्रयोग होनेके दो कारण हैं। पहला यह कि इस यंत्रके खरीदनेमें कुछ द्रव्य लगाना पड़ता है। दूसरा जो पहलेसे कहीं अधिक महत्वका है वह यह है कि इस यंत्रके प्रयोगसे भी बहुत शुद्ध शोरा नहीं तैयार होता। यह बात डा० लेदर और मि० मुकरजीके दिये हुये अङ्कोंसे ही प्रमाणित होती है। प्रयाग की प्रदर्शनीमें जो कारखाना काम कर रहा था उससे निम्नलिखित अङ्क प्राप्त हुये थे।

(१) ७·७५ मन कच्चे शोरेसे, जिसमें ३० प्रतिशत शोरा वर्तमान था, ९० प्रतिशत शुद्धता का २·६ मन शोरा प्राप्त हुआ।

(२) १७·४ मन कच्चे शोरेसे, जिसमें ४५ प्रतिशत शोरा वर्तमान था ९० प्रतिशत शुद्धताका ६·५ मन शोरा प्राप्त हुआ।

(३) ५·३ मन कच्चे शोरेसे, जिसमें ५३ प्रतिशत शोरा वर्तमान था ९० प्रतिशत शुद्धताका २·३ मन शोरा प्राप्त हुआ।

(४) ६·८ मन कच्चे शोरेसे, जिसमें ४६ प्रतिशत शोरा वर्तमान था, ९३ प्रतिशत शुद्धताका २·४ मन शोरा प्राप्त हुआ।

ऊपरके अङ्कोंसे स्पष्ट है कि ९३ प्रतिशत शुद्धतासे अधिक शुद्ध शोरा इस यन्त्रके प्रयोगसे नहीं प्राप्त हुआ था।

इन त्रुटियोंपर विचार करते हुये, इस लेखकको इस विषय पर कई एक मास तक एक सुसज्जित रसायनशालामें कार्य करनेका अवसर मिला था। उसकी फल स्वरूप उसने एक ऐसी विधि निकाली है जिसके प्रयोगसे कम व्ययमें कम परिश्रममें एक बारके व्यवहारसे अशुद्ध से अशुद्ध शोरेसे ९९·५ प्रतिशत शुद्ध शोरा तैयार हो सकता है। इस विधिका विस्तृत वर्णन वह एक दूसरे लेखमें उपस्थित करेगा।

---

# फलाहारकी महिमा

न्दू धर्ममें व्रत रखने तथा फलाहार करनेकी महिमा बहुत है। इससे शरीर स्वस्थ और चित्त शान्त रहता है, जिससे भजन पूजनमें एकाग्रता रहती है। कुछ शौकीन लोग फलाहारमें ऐसी ऐसी गरिष्ट चीज़ें खाते हैं जो लाभके बदले हानि पहुँचाती हैं। इसीलिए कुछ नवीन सभ्यताभिमानी फलाहारकी हंसी उड़ाने लगे। अब पच्छिमवाले भी उपवास और फलाहारकी उपयोगिता समझने लगे हैं। "हेल्थ एन्ड हैपीनेस" नामक पत्रमें फलाहारकी महिमा यों लिखी है—

(१) यदि उचित रीतिसे फल चुने जायँ तो शरीरकी प्रत्येक दशामें, हर तरहके जलवायुमें, चाहे किसी प्रकारका काम क्यों न करना पड़ता हो और पाचन शक्ति भी चाहे जैसी हो, फलाहारसे पोषणकी पूरी सामग्री मिल सकती है।

( २ ) फलोंसे अन्य प्रकारके भोजन पचानेकी भी शक्ति बढ़ती है।

( ३ ) फलाहारसे क्षीण करनेवाले पदार्थ जिनसे शिथिलता और बुढ़ापा जल्दी आते हैं शरीरसे निकल जाते हैं।

( ४ ) कुछ रोगोंमें फलके सिवा और कोई भोजन दिया ही नहीं जा सकता। इससे रोगकी निवृत्ति भी होती है और पोषण भी। यदि उचित फल खाये जायँ तो अच्छी तरह पचकर शरीरको पूरा पोषण पहुँचाते हैं। जिन जिन पदार्थोंसे शरीर स्वस्थ और नीरोग रहता है उनके विभाग भिन्न भिन्न आचार्योंने भिन्न भिन्न रीतिसे किये हैं, परन्तु जिस विभागको अधिकांश में लोग मानते हैं वह यह है :—

( १ ) जल
( २ ) कर्वोज
( ३ ) स्नेह ( वसा )
( ४ ) प्रोटीन
( ५ ) लवण

१. जल—जीवनके लिए जल बहुत ही आवश्यक है और यह जितना ही शुद्ध हो उतना ही अच्छा। सेब, नासपाती अथवा अन्य फलोंमें जो पानी होता है उससे बढ़कर शुद्ध पानी कहीं नहीं मिल सकता, क्योंकि फलोंमें पानी ओससे आता है जो एक बारका प्रकृति द्वारा टपकाया हुआ (distilled) रहता है और आकाशमें उड़ते हुए मेघोंसे आता है, जिसमें किसी प्रकारकी गंदगी नहीं रहती। इस तरह कुएं या नदीके पानीमें खड़िया मिट्टीके घुले रहने अथवा किसी रोगके कीटाणुओंके मिले रहनेका जो डर रहता है वह फलके पानीमें नहीं रहता। ताज़े फलोंके रसमें जो पानी रहता है वह सबसे अच्छा होता है।

२. कर्वोज—फलोंमें शकर अंगूरीशकरके रूपमें अथवा (ग्लूकोज़) के रूपमें पायी जाती है। शरीर सब प्रकारके मांडवाले पदार्थोंको ( starch ) लालारस, क्लोमरस ( ) और अंतड़ियोंके रसोंके द्वारा अंगूरी शकरमें ही परिणत करके ग्रहण करता है।

३. स्नेह ( वसा )—भोजनके लिए नाना प्रकारके तेल और घी भी बड़े ही आवश्यक पदार्थ हैं। इनसे स्वास्थ्य, ओज ( vitality ) और जीवन कालकी वृद्धि होती है। परीक्षाओंसे यह सिद्ध हो चुका है कि भोजनकी वस्तुओंमें तेल और घीका स्थान बहुत ऊँचा है। फलोंमें तेल और घी बहुतायतसे मिलते हैं।

४. प्रोटीन ( albuminous matters )—लोगोंको भ्रम है कि फलोंमें पुष्टिकारक पदार्थ बहुत कम हैं। कार्ल वोइट ( Voit ) तथा इनके अनुयायी जो अब भी मानते हैं कि भोजनमें मांस बढ़ानेवाले पदार्थोंकी मात्रा अधिक होनी चाहिये कहते हैं कि "जिस भोजनमें ऐसा पदार्थ कमसे कम इतना हो कि उससे शरीरमें सदैव फुर्तीपन बना रहे वही आदर्श भोजन है।" यदि यह भी मान लिया जाय तो भी कुछ फलोंमें मांस बढ़ानेवाला पदार्थ पर्याप्त होता है।

लेखककी रायमें बादाम, अखरोट ( walnut ) तथा किशमिश, मुनक्का (raisins) के भोजनमें मांस बढ़ानेवाला पदार्थ जितना पूर्ण रहता है उतना और कहीं नहीं।

५. लवणवाले पदार्थ—शरीरको स्वस्थ रखनेके लिए लवणवाले पदार्थोंकी भी बहुत आवश्यकता होती है। इनके बिना न तो मज्जा तन्तु ( nerves ) काम कर सकते हैं, न दांत बढ़ सकते हैं, न रक्त शरीरमें घूम फिर सकता है, और न भोजन ही शरीरमें पच कर मिल सकता है। परन्तु नमकवाले पदार्थ आते कहांसे हैं ? फलोंसे। इसलिए नमकोंके लिए फलाहार कितना आवश्यक है!

यह है वैज्ञानिक खोजोंका सार। खेदके साथ लिखना पड़ता है कि जिस भारतवर्षमें कोई समय ऐसा था कि लोग फल फूल खाकर ही अपना जीवन व्यतीत कर देते थे उसमें अब ऐसा समय आया है कि गरीबोंकी कौन कहे मध्यम श्रेणीके

लोग भी ताज़े फलका भोजन महीनेमें दो बार भी नहीं कर सकते। अमीरोंको बाग कटाकर खेत बनानेमें ही अधिक लाभ जान पड़ता है।

—"हनुमान"

# विद्युत् दर्शक और संग्राहक

[ ले०—प्रो० शालिग्राम भार्गव, एम० एस-सी. ]

पिछले लेखोंमें बतलाया जा चुका है कि दो भिन्न भिन्न पदार्थोंको एक दूसरेसे घिसकर प्रत्येकको विद्युन्मय किया जा सकता है। उनकी विद्युन्मय अवस्थाको हलकी हलकी चीज़ोंके खिंचावसे जांच सकते हैं। यह भी उन्हीं लेखोंमें बतलाया था कि सरकंडेके गूदेकी छोटी सी गोली लेकर, उसपर टीन, चांदी या सोनेके वर्क लपेटकर और रेशमके धागेसे लटकाकर एक ऐसा सरल यंत्र बना सकते हैं कि जिसके खिंचावसे वस्तुओंकी विद्युन्मय अवस्था आसानीसे मालूम हो जाती है। इस गोलीकी अपेक्षा एक दूसरा यंत्र जिसको विद्युत् दर्शक कहते हैं बड़ा लाभदायक होता है। इस विद्युत् दर्शकको इस प्रकार बनाते हैं। ४ या ५ इंच लम्बी और एक सूत मोटी पीतलकी छड़ लेकर उसके एक सिरे पर घुंडी लगा देते हैं। एक शीशेकी सुराही लेकर उसके मुहमें एबोनाइट का काग लगा लेते हैं। इस कागमें छेद करके घुंडी लगी हुई पीतलकी छड़ पहना देते हैं। इस छड़के दूसरे सिरेपर दो चाँदी या सोनेके वर्ककी एक इंच लम्बी और एक सूत चौड़ी पत्तियां गोंदसे चिपका देते हैं और इस कागको सुराहीके मुँहमें बैठा देते हैं। इस प्रकार ऐसा यंत्र बन जाता है जैसा कि चित्र ११ में दिखलाया गया है। सुराहीके बदले एक लकड़ीका छोटा सा बक्स भी लिया जा सकता है, जिसके ढकनेमें कागके लिए छेद बना हो और जिसकी दो आमने सामनेवाली दीवारें शीशेकी हों ताकि पत्तियां दीखती रहें। इस यंत्रको पत्र विद्युत् दर्शक कहें तो अनुचित न होगा। जैसे ही कोई विद्युन्मय वस्तु इस दर्शकके पास लायी जायगी पत्तियां अलग अलग हो जायंगी। इन पत्तियोंके विलगावसे विद्युन्मय वस्तुकी अवस्थाका अनुमान किया जा सकता है।

चित्र ११—पत्र विद्युत् दर्शक

एक धातुकी छोटी सी थाली लेकर उसके बीचों बीच एक छड़ लगाकर एक रोधककी छड़के सहारे थमा दीजिये। इस थालीमें लगी हुई छड़को धातुके तारसे दर्शककी छड़से जोड़ दीजिये, जैसा चित्र १२ में दिखलाया गया है। थालीको किसी
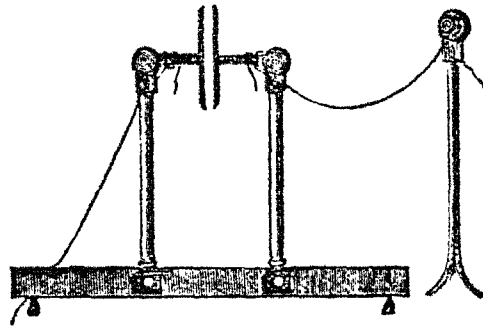
चित्र १२—समानन्तर थाली-संग्राहक

विद्युन्मय वस्तुसे छुआकर विद्युन्मय कर दीजिये। दर्शककी पत्तियां चौड़ जावेंगी। मान लीजिये कि

इन पत्तियोंके नीचेके सिरोंमें एक इंचका फासला है। एक दूसरी थाली, पहली थालीकी नाईं रोधक-पर थमी हुई, परन्तु पृथ्वीके साथ जुड़ी हुई, साम-नेसे दर्शकके साथ जुड़ी हुई थालीके पास लाइये। जैसे जैसे थाली पास आती जायगी दर्शककी पत्तियां पास आती जायंगी और यदि थाली हटा दी जावे तो पत्तियां उसी जगह आ जावेंगी कि जहाँ वह तब थीं जब दर्शक विद्युत् शून्य थीं।

पत्तियोंके विलगावसे थालीकी अवस्थाका अनुमान होता था। जैसे जैसे पृथ्वीसे जुड़ी हुई थाली उसके पास आती जाती थी उसकी अवस्था कम होती जाती थी। पत्तियां सिकुड़ती जाती थीं, ऐसी दशामें पत्तियोंको उतना ही चौड़ानेके लिए रोधकारूढ थालीको बिजलीकी अधिक मात्रा देनेकी आवश्यकता होती जाती थी, अर्थात् थालीमें बिजलीकी अधिक मात्रा ग्रहण करनेकी शक्ति आती जाती थी या यों कहिये कि थालीकी समाई बढ़ती जाती थी। दर्शककी पत्तियां और भी अधिक सिकुड़ गयी होतीं, यदि पृथ्वीसे जुड़ी हुई थालीको पृथ्वीसे न जोड़कर दर्शकसे जुड़ी हुई थालीसे असमान विद्युत्से विद्युन्मय कर देते। ऐसी अवस्थामें थालीकी समाई और भी बढ़ गयी होती। ऐसी दो थालियोंके संगठनको, जिनमेंसे एक एक प्रकारकी विद्युत्से विद्युन्मय हो और दूसरी या तो पृथ्वीसे जुड़ी हो या असमान विद्युत्से विद्युन्मय हो, संग्राहक कहते हैं। बिजली-की जितनी मात्रासे संग्राहककी दोनों थालियोंमें इकाईके बराबर अवस्थाभेद पैदा हो जाय वही संग्राहककी समाई कहलाती है। बिजलीकी मात्रा, संग्राहककी दोनों थालियोंका अवस्थाभेद और समाईके सम्बन्धको समीकरणके रूपमें इस प्रकार लिख सकते हैं।

$$समाई = \frac{मात्रा}{अवस्था\ भेद}$$

यदि समाईको स से मात्राको म और अवस्था भेदको अ से सूचित करें तो यह समीकरण इस प्रकार लिखा जायगा।

$$स = \frac{म}{अ}$$

संग्राहककी दोनों थालियोंको एक नियत दूरी (मान लीजिये १ श. मी.) पर रखकर दोनोंके बीचमें एक शीशे, एबोनाइट या किसी रोधककी थाली रखिये। थालीके रखते ही दर्शककी पत्तियां सिकुड़ जावेंगी, थालीके निकालनेसे फिर अपने पूर्व स्थानको लौट जायंगी। इससे यही फल निकला कि वायुके बदले, यदि संग्राहककी थालियोंके बीचमें कोई अन्य रोधक रख दिया जाय तो संग्राहककी समाई और भी बढ़ जाती है।

संग्राहककी उस समाईको कि जब उसकी थालियोंके बीचमें रोधक हो दूसरी समाईसे भाग देनेसे कि जब उन थालियोंके बीचमें कोई रोधक न हो जो संख्या मिलती है उसको ही रोधककी उत्पादन समाई कहते हैं।

संग्राहक बनानेके लिए इस बातकी आवश्यकता नहीं है कि किसी वाहककी दो थालियां ही ली जायं। थालियोंके बदले किसी आकारकी दो चीज़ें ली जा सकती हैं। उनका एक दूसरेसे अलग होना आवश्यक है।

विद्युत् शास्त्रमें उन दो चीज़ोंको अलग समझना चाहिये कि जिनके बीचमें रोधक है। उदाहरणमें एक पीतलका कुमकुमा रेशमके धागेसे लटका हुआ या शीशे या किसी और रोधकके टुकड़ेपर रखा हुआ सबसे अलग है। दर्शककी पत्तियोंवाली छड़ रोधकसे थमी हुई है, वह सबसे अलग है। इसी लिए ऐसी चीज़ोंको विलग अथवा रोधका-रूढ़ कह सकते हैं।

संग्राहक भी अन्य यंत्रोंकी नाईं बक्सके अंदर रहते हैं। बक्सपर लगे हुए दो पेच होते हैं कि जिनके नीचे तार दबाकर संग्राहकको और यंत्रोंसे प्रयोगोंमें जोड़ लिया जाता है। एक पेच संग्राहकके एक परत और दूसरा पेच संग्राहकके दूसरे परतसे जुड़ा रहता है।

सबसे सरल संग्राहक वह संग्राहक है जिसे लीडन संग्राहक कहते हैं। एक चौड़े मुंहकी शीशी

लेकर उसके बाहर किसी धातुका वर्क चिपका दीजिये। उसके अंदर यदि हाथ डाला जा सके तो भीतर भी वर्क चिपका दीजिये, वरना पानी भर लीजिये। लीडन संग्राहक बनगया। लीडन नगरमें
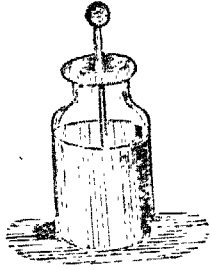
चित्र १३—लीडन संग्राहक

एक वैज्ञानिकने शीशीमें पानी भर कर अपने सहायकके हाथमें थमा दिया और शीशीके पानीमें एक बिजली पैदा करनेवाली कलके सिरेसे जुड़ा हुआ तार डाल दिया। उनका खयाल था कि बिजली पानीमें इकट्ठी हो जायगी। थोड़ी देर बाद जब सहायकने शीशीमेंसे तार निकालनेके लिए तारको छुआ तो उसे बड़े ज़ोरका धक्का लगा। इस प्रकार संग्राहकका पहले पहल पता लगा। अभी तक उसी आकारके बने हुए संग्राहकको लीडन संग्राहक कहते हैं। अलबत्ता शीशीके बदले शीशेका गिलास अधिकतर काममें आता है; क्योंकि गिलासमें भीतर वर्क चढ़ाना आसान है। इस लीडन संग्राहकका चित्र नीचे दिया जाता है।

# आटा और मैदा

पीसे हुए आटेको बिना छाने काममें लाना चाहिये। इस तरहके आटेकी रोटी स्वाद और ताकतवाली होती है।

(महात्मा गांधी)
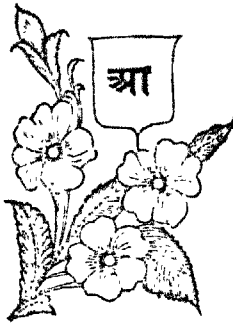
आजकल दो रीतिसे आटा तैयार किया जाता है। एक तो साधारण चक्की से और दूसरे मशीनसे। मशीनसे आटा तैयार होनेमें अन्नका बहुत सा उपयोगी भाग नष्ट हो जाता है; अतएव पेच या मशीनकी अपेक्षा चक्की या खरासका पिसा हुआ आटा बहुत उपयोगी होता है।

आटेके बारीक या मोटे होनेसे भी उसके गुणोंमें बहुत अन्तर पड़ जाता है। बारीक मैदासे कोष्ठबद्ध (कब्ज़) उत्पन्न होता है, परन्तु मोटे आटेसे बनी हुई रोटी उसे दूर करती है। मैदामें एक बड़ी बुराई यह होती है कि उसमें गेहूँका चोकर या छिलका प्रायः नहीं रहता, परन्तु स्वास्थ्य-विज्ञानकी दृष्टिसे गेहूंका छिलका बड़े महत्वकी चीज़ है। गेहूँके छिलकेमें लवण और पौष्टिक उपादान होते हैं, परन्तु आजकल उसीको अलग निकाल दिया जाता है। गेहूँके भूसीमिले आटेमें बिना भूसीवाली मैदासे ४ गुना फास्फोरस छः गुना चूना और छः गुना सोडा होता है। इसके अतिरिक्त उसमें गंधक पाया जाता है, जो बिना भूसीके आटेमें नहीं होता। यह खनिज पदार्थ हमारे शरीरके लिए बहुत ही उपयोगी हैं।

डा० अल्बर्ट ब्राडीनट कहते हैं कि बिना चोकरके आटे, और शाकोंको अनुचित रीतिसे पकाकर खानेसे बदहजमी, निर्बलता, गठिया कटि-शूल (कमरका दर्द) हृद्रोग और पथरी इत्यादि कितने ही रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

गेहूँके छिलकेमें जो नमक रहता है शरीरके लिए उसकी बहुत आवश्यकता है। शरीरमें नमककी कमी होनेसे खून भी कम हो जाता है, जिससे चेहरा पीला और शरीर निर्बल हो जाता है। बारीक मैदा ( जिससे छिलका निकाल डाला गया हो ) काममें लानेसे दांत भी निर्बल हो जाते हैं।

सिलविस्टर बाबू लिखते हैं कि अठारहवीं शताब्दीमें जब बरतानिया और फ्रांसमें युद्ध हुआ था तब गेहूँकी कमीके कारण पार्लियामेंटने यह आज्ञा निकाली थी कि सिपाहियोंको बिना छने आटेकी रोटी दी जाय। इससे पहिले तो सिपाहियोंको बड़ा क्रोध हुआ; किन्तु जब बाध्य होकर उन्हें वैसी ही रोटी खानी पड़ी तो थोड़े ही दिनोंमें उनका स्वास्थ्य पहिलेसे बहुत उन्नत हो गया। उनके डाक्टरों और अफ़सरोंको उनकी यह स्वास्थ्योन्नति देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ; और उन्होंने कहा कि सिपाही ऐसे हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ इससे पहिले कभी नहीं रहे और यह सब कुछ बिना छने आटेकी रोटियोंका ही फल है।

आडीनट बाबू कहते हैं कि मैंने बरसों तक बेछने आटेकी रोटीके परिणामोंको देखा है। इससे दाँत मज़बूत होते हैं और आधा सीसी एवं दन्तपीड़ा नहीं होती।

प्रसिद्ध विद्वान् बुक़रातने भी बेछने आटेकी बहुत प्रशंसा की है और उसे आमाशयके लिए हितकर बतलाया है।

अतएव मैदाकी अपेक्षा मोटा और बिना छना एवं साधारण चक्कीका पिसा हुआ आटा उपयोगमें लाना अधिक हितकर है। परन्तु इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि आटा बिल्कुल दलिया सा भी न हो, क्योंकि अधिक मोटे आटेकी रोटी भी देरसे पचती है। आटा पीसनेसे पहिले अन्नको भले प्रकार साफ़ कर लेना चाहिये।

— "वैद्य"

---

# छायाचित्रणमें स्पष्टीकरण अर्थात् चित्र निकालना

( गताङ्कसे आगे )

२१—गुणन रीति के गुण दोष

इस रीतिमें दो एक विशेष गुण हैं। पहिला तो यह कि ताप-मापक यंत्रकी आवश्यकता नहीं होती। एक प्रकारसे चित्र दिखलाई पड़नेका समय ही ताप-मापक यंत्रका काम देता है। दूसरी बात यह है कि यदि डेवेलपर कुछ समय तक रखे रहनेके कारण बिगड़ चला हो तो भी प्लेट कम डेवेलप नहीं होने पावेगा; क्योंकि ऐसे डेवेलपरका फल वही होगा जो कि डेवेलपरको कुछ फीका कर देनेसे होता है। पर इस रीतिमें कई एक ऐसे अवगुण हैं जिनके कारण यह तापक्रम व समय नापनेवाली रीतिसे बहुत घटिया है। पहिला और सबसे मुख्य यह है कि प्लेटको एक्सपोज़र यदि कम मिला है तो चित्र दिखलाई पड़नेका समय बढ़ जायगा; इसलिए इस रीतिसे नेगेटिवके डेवलप हो जानेका समय ठीक समयसे अधिक आवेगा और ऐसा नेगेटिव बनेगा जिसमें केवल कम एक्सपोज़र का ही दोष नहीं, पर अधिक डेवेलप करनेका भी दोष रहेगा। यदि प्लेटको अधिक एक्सपोज़र मिला है तो चित्र दिखलाई पड़नेका समय कम आवेगा, जिस कारण इस रीतिसे डेवेलप हो जानेका समय भी कम होगा; परिणाम बुरा ही होगा। जब इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि बराबर एक्सपोज़रमीटर ( Exposure meter ) प्रयोग करनेवालों से भी एक्सपोज़रमें कभी कभी अशुद्धता हो ही जाती है तब हम देखते हैं कि पहिली रीति क्यों इतनी अच्छी है। पर यह न समझना चाहिये कि इस रीतिके लिए एक्सपोज़रका बिलकुल ठीक होना आवश्यक है; नहीं, यदि ठीक एक्सपोज़रका

सवाई या ड्योढ़ा भी एक्सपोज़र हो गया है या केवल तीन चौथाई ही एक्सपोज़र दिया गया है तो भी इस रीतिसे डेवेलप किये गये नेगेटिव ठीक ही आवेंगे। दूसरी बात यह है कि लाल रोशनीको तेज़ होना चाहिये, नहीं तो धीमी रोशनीमें घड़ीकी सेकंडवाली सुईको देखना और इसका पता चलाना कि कब चित्र दिखलाई पड़ा, दोनों ही बातें कठिन हो जाती हैं। अँधेरी कोठरीमें बहुत कम लोगोंके पास लाल रोशनीका अच्छा प्रबन्ध रहता है, लेकिन इस रीतिसे बहुतेरे लोग पूरा लाभ नहीं उठा सकते। ताप-मापक यंत्रसे डेवेलपरके तापक्रमको अँधेरी कोठरीके किवाड़ बंद करनेके पहिले ही नाप लिया जाता है और मिनट-वाली सूई बहुत धीमी रोशनीमें भी देखी जा सकती है। यदि अच्छी लाल रोशनी हुई भी तो उसके प्रकाशमें प्लेटके धुन्धले ( fog ) हो जानेका डर रहता है। तीसरी बात यह है कि किसी किसी डेवेलपरके गुणक बहुत बड़े हैं, जैसे मेटल या एज़ोलके। यदि चित्र दिखलाई पड़नेके समयके नापनेमें दो तीन सेकंडका भी अन्तर पड़ गया तो डेवेलप करनेमें भी एक दो मिनट की गलती हो जा-यगी, जिससे प्लेट नष्ट हो जायगा। इस कारण इस रीतिको पायरोसोडा या हाइड्रोकिनोन* डेवेलपरके साथ प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि इन डेवेलपरोंके गुणक बहुत छोटे हैं। चाहे इस रीतिमें कितने ही अवगुण क्यों न हों, लेकिन यह नीचे लिखी हुई रीतिसे, कमसे कम नौसिखोंके लिए, हज़ार गुनी अच्छी है। तिसपर भी हम ताप-क्रम नापने-वाली ही रीतिपर ज़ोर देते हैं। अन्तमें यही सस्ता पड़ता है; क्योंकि ताप-मापक यंत्रका दाम शीघ्र ही वसूल हो जाता है।

२२—डेवेलप करनेकी पुरानी रीति

तीसरी रीति वह है जिसे अँग्रेज़ीमें कहते हैं "Hit and miss method" "लगै तो तीर नहीं तुक्का"। पुराने समयके लोगोंको केवल इसी रीतिका ज्ञान था। सैकड़ों प्लेट खराब करनेपर अनुभव होता था, तिसपर भी इतनी निर्भयता न होती थी जितनी कि आज एक ताप-मापक यंत्र-वाले नौसिखेको होती है। इस रीतिके अनुसार प्लेटको डेवेलपरमें छोड़नेके बाद रह रह कर तश्तरी-से निकाल कर उसकी जांच किया करते थे। जब देखते थे कि सभी ब्यौरा आ गया है और घनत्व ( Density ) काफी हो गया है तो डेवेलप करना समाप्त कर देते थे। लाल रोशनी और एक्सपोज़रके ठीक होनेपर भी यह बतलाना सरल नहीं होता था कि घनत्व यथेष्ट है कि नहीं। अनुभवी लोगोंके हाथ से अधिकतर ठीक नेगेटिव निकलते थे, पर विना अनुभववालोंकी बात क्या; वह तो इसी प्रकार अनुभवी बननेके रास्तेको तै करते चलते थे। पर यदि लाल रोशनी किसी कारण साधारणसे कम या अधिक हो गई ( जिनके अँधेरी कोठरीमें बाहर-से लाल शीशे द्वारा दिनकी रोशनी आती थी उनके लिए तो ऐसा होना बहुत ही सरल था ), या एक्सपोज़र कम या अधिक हो गया तो बहुत से अनुभवी भी चूक जाते थे। यदि एक्सपोज़र कम हुआ तो नेगेटिवके सफेद भागोंमें ब्यौरा लानेकी चेष्टामें इतना अधिक डेवेलप कर डालते थे कि मारे प्रकाशान्तर ( Contrast ) के प्लेटका सत्या-नाश हो जाता था। ऐसे नेगेटिवका नाम पुराने समयके लोगोंने Soot-and-whitewash नेगेटिव रखा था अर्थात् इसे कालिख और चुनौटीवाला नेगेटिव कहते थे। कहीं कहीं तो एक दम काला और शेषके अधिकतर भागोंमें बिल्कुल साफ रह जाता था। यदि एक्सपोज़र अधिक रहा तो ब्यौरा बहुत शीघ्र आ जाता था और थोड़े ही समयमें ऐसा जान पड़ता था कि अब और डेवेलप करने-से सब ब्यौरा मिट जायगा। इसी भयसे लोग डेवेलप करना शीघ्र समाप्त कर देते थे और प्रका-शान्तरके कम होनेका दोष भी नेगेटिवमें उत्पन्न हो जाता था। ऐसे ही लोग कहा करते थे कि कम

* इसका भी गुणक ५ है।

एक्सपोज़रसे बहुत प्रकाशान्तर और अधिक एक्सपोज़रसे कम प्रकाशान्तर आता है, पर ऐसा कहना ठीक नहीं; अधिक डेवेलप करनेसे अधिक और कम डेवेलप करनेसे कम प्रकाशान्तर आता था, न कि एक्सपोज़रकी कमीवेशीसे। केवल इतना ही नहीं; पहिले के लोगोंका विश्वास था कि डेवेलपरमें अधिक पोटासियम ब्रोमाइड (Potassium dromide) छोड़नेसे अधिक एक्सपोज़रके दोषको मिटा सकते हैं और कम एक्सपोज़रके दोषको डेवेलपरमें अधिक सोडा (Sodium carbonate) छोड़नेसे ठीक कर सकते हैं। पर डेवेलपरको इस प्रकार बदलनेसे कुछ लाभ नहीं होता है। केवल ठीक ठीक डेवेलप करना और भी कठिन हो जाता है। हम जानते हैं कि इस बातको कितने ही लोग स्वीकार न करेंगे, पर इस बातका प्रमाण हम कभी दूसरे अवसरपर उपस्थित करेंगे। लाल रोशनी के लगनेसे इस रीतिसे डेवेलप किये हुये प्लेट, विशेष करके तेज़ प्लेट, बहुधा धुन्धले हो जाते हैं।*

२३—पुराने समयके लोगोंका भ्रम

पहिलेके लोग क्यों किसी डेवेलपरको अच्छा और दूसरोंको बुरा समझते थे, इसका भी देखलेना लाभदायक होगा। ऊपर लिखा गया है कि पायरो-सोडाका गुणक ५ और मेटलका गुणक ३० है। मान लीजिये कि पायरोसोडा और मेटल डेवेलपरको अलग अलग इतना पानी मिला कर बनाया गया है कि दोनोंसे किसी विशेष प्लेटके डेवेलप हो जानेका समय किसी विशेष तापक्रमके लिए एक ही है, मान लीजिये ३ मिनट है। इसे भी मान लीजिये कि एक्स पोज़र ठीक है। पहिले पायरो-सोडाको लीजिये। प्लेटपर डेवेलपर छोड़नेके बाद लगभग ३६ सेकंडमें कहीं कहीं प्लेट काला होना आरम्भ हुआ। धीरे धीरे और जगहोंमें व्यौरा (detail) दिखलाई पड़ने लगा। डेढ़ या दो मिनटमें सब जगह व्यौरा आ गया। एक मिनट और डेवेलप कर दिया, घनत्व भी ठीक हो गया। इस समय डेवेलप करना समाप्त करनेपर प्लेटको स्थायी इत्यादि करनेपर बढ़िया नेगेटिव बना। अब मेटलको लीजिये। डेवेलपर छोड़नेके करीब ५ ही ६ सेकंड बाद प्लेट कहीं कहीं काला होने लगा। दो चार सेकंडमें प्रायः सभी स्थानमें व्यौरा भी आ गया। आधे मिनट बाद प्लेट उठाके देखा गया। मालूम हुआ कि व्यौरा सब जगह पूरा पूरा आ गया है, पर घनत्व कम है। प्लेटको आपने फिर तश्तरीमें रखकर और डेवेलप किया, मनमें यह भी शंका है कि सब व्यौरा तो आ ही गया है, कदाचित अधिक डेवेलप करनेसे कहीं कहीं व्यौरा मिट न जाय। आपका जी भी घबड़ाने लगा कि व्यौरा तो आ गया, न जाने घनत्व कब आवेगा। कुल एक मिनट डेवेलप करके प्लेटको आपने स्थायी इत्यादि कर लिया, पर नेगेटिवमें प्रकाशान्तर बहुत ही कम आया। बस, समझ लिया मेटलसे घनत्व आता ही नहीं; नहीं, आ ही नहीं सकता; यह डेवेलपर बेकाम है; फेंक दो; इसका नाम न लेना। प्यारे पायरोसोडासे बढ़कर कहीं संसार में डेवेलपर नहीं। पाठकगण, अब भी कई एक पुस्तक ऐसे मिलेंगे जिनमें ऐसे ही बातें लिखी हैं। हम यहां पर एक बानगी देते हैं।

२४—पायरोसोडाकी प्रशंसा

ऐडोल्फे ऐब्रहम्स महाशय, एफ० आर० पी० एस० (Mr. Adolphe Abrahams, F. R. P. S.) ने "अपने चलती हुई वस्तुओंकी फोटोग्राफी" (Photography of Moving Objects) की पुस्तकमें लिखा है:—

* ऐसे रासायनिक पदार्थ भी बिकते हैं, जिनसे धोनेके बाद प्लेट पर लाल रोशनी या धीमी सफेद रोशनीका प्रभाव नहीं पड़ता। इसमें धोकर प्लेटको डेवेलप करनेसे ऐसे धुन्धसे बच सकते हैं। ऐसे रासायनिक पदार्थका एक उदाहरण इलफोर्ड (Ilford) कम्पनीका बनाया हुआ "डिसेन्सिटल" (Desensitol) है।

"We all seem to run the gamut of reducing agents, starting with pyro soda, deserting it for the more flashy pyro-metol, dabbling with eikonogen and hydroquinone, experimenting with glycin and rodinal, and finally returning to our first love, the simple pyro soda."

अर्थात् "जान पड़ता है कि हम सब लोग डेवेलपरोंकी उसी सीढ़ी पर चढ़ते उतरते हैं। चलते हैं पायरो-सोडासे फिर इससे अधिक भड़कीले पायरो-मेटलके फेरमें इसका परित्याग करते हैं, कुछ दिन तक आइकोनोजेन और हाइड्रोकिनोनमें छपकी लेते हैं, तब ग्लाइसिन और रौडिनल * की जांच करते हैं और अन्तमें अपनी पहिली प्यारीके पास लौट आते हैं, वही सीधी सादी पायरो-सोडा"। फिर आप पायरो-सोडा की बहुत कुछ प्रशंसा कर और यह लिखकर कि मैं सदा इसीको काममें लाता हूं लिखते हैं:—

"I do not deny that I use pyro-metol. The flesh is weak, and the method of attenuated development I have described needs a great deal of patience, fairly constant attention, and prolonged existence in the unhygienic ruby light. Pyrometol is so fascinating in the rapidity of its action; up comes the image with both detail and density, and when one is a little tired or lazy or in a hurry with many plates to develop, the meretricious pyro-metol is an easy first favourite. But it is a bad habit, for the resulting negatives, though pretty, are not so good as they look."

भावार्थ यह है—"मैं इस बातको मानता हूं कि मैं पायरो-मेटलको भी काममें लाता हूं। यह रक्त मांस का बना मनुष्य सदा अपनेको बुरी बातोंसे बचा नहीं सकता. और (पायरो-सोडा) डेवेलपरमें अधिक पानी मिलाकर धीरे धीरे डेवेलप करनेकी ऊपर वर्णन की हुई रीतिके लिए बड़े धैर्य, प्रायः लगातार ध्यान और स्वास्थ्य बिगाड़नेवाली लाल रोशनीमें बहुत देर तक ठहरनेकी आवश्यकता होती है। पायरो-मेटल ओषधि अपने कामको शीघ्र दिखा हमको बहुत मोह लेती है। चित्र ब्यौरा और घनत्व दोनों ही एक साथ निकल पड़ते हैं, और जब कोई थोड़ा थका रहता है, या आलस्यके वश रहता है, या बहुत से प्लेटोंको डेवेलप कर डालनेकी जल्दीमें रहता है तब वेश्याओंकी भांति छली पायरो-मेटल ही सुगमतासे सबसे बढ़कर प्यारी हो जाती है। पर यह बुरी आदत है, क्योंकि इस प्रकार बने हुए नेगेटिव यद्यपि देखनेमें बड़े सुन्दर होते हैं तो भी इतना अच्छा काम नहीं देते"। यदि पेब्रहम्स महाशय आलस्य न कर पायरो-मेटल ही से पूरे समय तक डेवेलप करते तो इस डेवेलपर को गाली न देते। हम पूछते हैं कि आलस्य या जल्दी रहती है तभी क्यों इस बेचारे डेवेलपरको काममें लाते हैं? क्या इसीलिए कि अपनी "प्यारी" पायरोसोडा ओषधिको कुछ बुरा भला न कहना पड़े?

—[ असमाप्त ]

* रौडिनल (Rodinal) एक बना बनाया प्रसिद्ध डेवेलपर जर्मनीसे लड़ाईके पहिले मिलता था। एज़ोल (Azol) के सब गुण इसमें पाये जाते थे पर इसका गुणक (Factor) ४० था।

## नये तैरनेवालोंके लिए अद्भुत कालर

जिन लोगोंको तैरना आता है या जिन्होंने तैरना सीखनेका प्रयत्न किया है, उन्हें भली भांति मालूम होगा कि आरम्भमें सबसे ज़्यादा मुश्किल सरको पानीके ऊपर रखनेमें पड़ती है। यदि सर सावधानीसे पानीके ऊपर रखा जाय तो डूबनेका भय न रहे और तैरना भी शीघ्र आजाय। इस कठिनाईको दूर करनेके लिए एक सज्जनने हालमें ही एक कालर बनाया है, जिसके प्रयोगसे सर पानीके

अन्दर नहीं जा सकता। कालरकी बनावटका ज्ञान साथके चित्र १४ से हो जायगा। यह एक ऊंची, पारदर्शक, सेलूलोइडकी बनी बेलनाकार वस्तु है,

चित्र १४—तैरनेका कालर
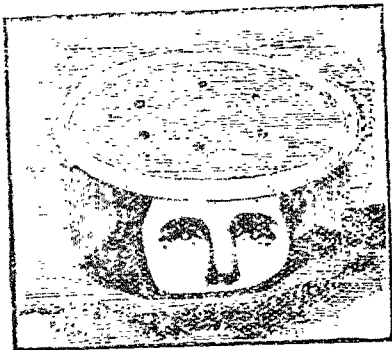
जिसके निचले हिस्सेमें रबरीला कपड़ा लगा रहता है, जो पहननेपर गरदनसे चिपट कर बैठ जाता है। ऊपरी भाग भी रबरीले कपड़ेका बना है, जिसमें सांस लेनेके लिए छिद्र बने हुए हैं।

कालर बहुत हलका है। कुल वज़न प्रायः ३½ छटांक होगा। यह पानी पर तैरता रहता है। इसकी उछाल १० पौण्ड है। अर्थात् ५ सेर बोझ तक यह पानीमें डूबनेसे रोक सकता है। अतएव इतनी थाम सरको डूबनेसे बचा सकती है।

इन कालरोंको पहनकर ऊंचेसे कूदना सम्भव नहीं, क्योंकि गर्दनमें झटका लगनेका डर सदा रहता है। उनमें यदि पानी भर जाय तो भी खतरा है।

## शुतुर्मुर्गके चमड़ेके जूते

शुतुर्मुर्गके चमड़ेके जूते बहुत मज़बूत और देर-पा होते हैं। इसलिए आजकल इनका फैशन बहुत बढ़ गया है। कुछ लोगोंका तो यह ख़याल है कि सम्भव है कि इस प्रकार चमड़ेकी कमी पूरी हो जाय और कुछ दिनोंमें कोई गाय, भैंस और बकरे के चमड़े को पूछे भी नहीं।

## एक अद्भुत आराम कुरसी

आराम कुर्सी पर पड़े रहने या बैठनेमें कैसा आनन्द आता है। यदि उसमें पाये न लगा कर उनके स्थानपर धनुषके आकारके दो लकड़ीके टुकड़े लगा दें तो उसमें झूलनेका अजीब लुत्फ मिलता है।

यदि ऐसी कुर्सी नदी या तालावोंके पानीके ऊपर आराम करनेको मिले तो कैसा लुत्फ आवे॥ इसीकी तर्कीब यहां दी जाती है।

१ फ़ुट चौड़ा और ६ फ़ुट लम्बा चीड़का तख़्ता लेकर जैसा चित्र १५ के ऊपरी भागमें दिखाया है काट लीजिये। सकड़ा हिस्सा प्रायः लम्बाईका ¼ होना चाहिये। तख़्तेपर रन्दा करके खूब साफ़ कर लेना चाहिये और उसपर दो तीन तह वार-निशकी चढ़ा देनी चाहिये। अब तीन ट्यूब लेकर उन्हें तख़्ते पर तसमोंसे बांध देना चाहिये। तसमों-के लिए तख़्तेमें छेद कर लेने चाहिएं और बांधते समय यह ख़याल रखना चाहिये कि इतना ढीला रखें कि ट्यूबोंमें हवा भरने पर वह ठीक खड़ी रहें और फटें नहीं।
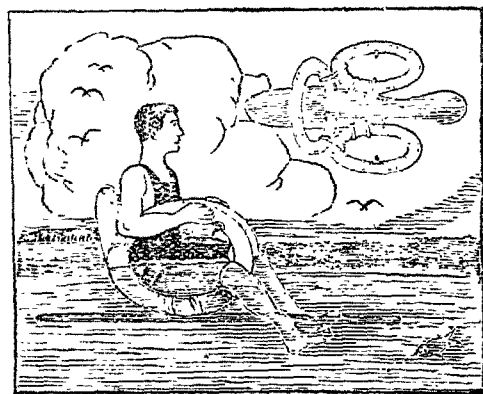
चित्र १५—अद्भुत आराम कुरसी

हवा भरनेके बाद इस नावनुमा कुरसीको पानीपर छोड़ दीजिये और उसपर चित्र १५ में दिखाई विधिसे बैठ जाइये। अग़ल बग़लकी ट्यूबोंको बग़-लोंमें दबा कर आगे या पीछे झुकनेसे इस कुरसी-

को भी आगे पीछे झुका सकते हैं। जब साम्य बिगड़ता दीखे तो आगे या पीछे हटनेसे ठीक हो जायगा।

---

## एक सरल पेन्सिल शार्पनर

सेफ्टी रेज़रोंके ब्लेड्स प्रायः योंही फेंक दिये जाते हैं। उनसे सरल, सस्ते और उपयोगी पेन्सिल शार्पनर बनाये जा सकते हैं, जिसकी तरकीब यह है:—

. १½ इंच लम्बा, १¼ चौड़ा और ½ मोटा एक लकड़ीका टुकड़ा लीजिये। इसमें एक तिरछा गोल खांचा काट लीजिये, जैसा कि चित्र १६ में दिखाया
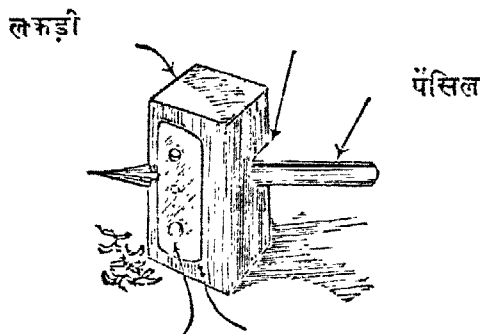
चित्र १६—सरल पेन्सिल शार्पनर

गया है। तदनन्तर ब्लेडको दो पेंचों द्वारा जड़ दीजिये। उसकी धार खाँचेके ऊपर प्रायः ⅛ निकली रहे। जब पेंसिल खांचेमें रखकर खींची जायगी थोड़ीसी छिल जायगी। खांचेके ढालपर ही पेंसिलकी नोंक निकलना निर्भर है।

## माताकी आयुका सन्तानके लिंग-निर्णयपर प्रभाव
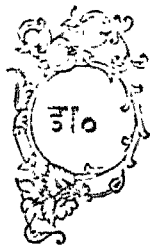
डा० युवार्ट ( Ewart ) ने इस विषय-पर बहुत खोज की है। उनकी खोजोंका परिणाम हम यहां पर देते हैं। साथ ही पाठकों-से प्रार्थना करते हैं कि वह भी इसी प्रकारके नकशे बनाने-का प्रयत्न करें।

| अवस्था | लड़के | लड़कियां | १००० लड़कियों पीछे लड़कों की संख्या |
|---|---|---|---|
| १९ वर्ष तक | १९ | ४४ | ६५९ |
| २४ " " | २२६ | २६४ | ८५६ |
| २९ " " | ४३७ | ४५५ | ९६० |
| ३४ " " | ७१६ | ७१६ | १००० |
| ३९ " " | ७२० | ७१५ | १००७ |

इसी प्रकार यदि पहले खानेमें दिये हुये वर्षोंके बीचका भी हिसाब लगाया जाय तो ऐसा ही एक दूसरा नकशा तय्यार हो जायगा।

| समय | लड़के | लड़कियां | १००० लड़कियों पीछे लड़कोंकी संख्या |
|---|---|---|---|
| १९ वर्ष तक | २९ | ४४ | ६५९ |
| २०से२४वें " " | १८७ | २२० | ८९५ |
| ३० " ३४ " " | १८० | १६२ | ११११ |
| ३५ वर्षके बाद | १५५ | १३३ | ११६५ |

इन नकशोंसे प्रकट होता है कि नई उम्रमें औरतें लड़कियां ज़्यादा जनती हैं और ज़्यादा उम्र होनेपर लड़के ज़्यादा पैदा होते हैं।

उक्त डा० बाबूने पिताओंके भी नकशे इसी तरह तय्यार किये हैं। उनसे भी ऊपर दिया हुआ परिणाम निकलता है। यदि यह बात सच्ची है तो प्रकृतिमें स्त्री पुरुषोंकी संख्या समान रखनेका एक प्रकारका स्वतः विधान है—अपने आप हो जाने वाला इन्तज़ाम है। यदि किसी समाजमें स्त्रियां थोड़ी हैं तो उनकी शादी जल्दी हो जाती है। इस-

लिए उनकी सन्तान भी जल्दी पैदा होने लगती है। उपरोक्त नियमानुसार उनके लड़कियां ही अधिक पैदा होती हैं। इस प्रकार उस समाजमें स्त्रियोंकी संख्या अधिक बढ़ जाती है। इसके विपरीत यदि समाजमें पुरुषोंकी संख्या कम हुई तो स्त्रियोंकी शादी देरमें होती है, जिसका परिणाम लड़कोंका अधिक संख्यामें पैदा होना अर्थात् पुरुषोंकी संख्या बढ़ना होता है। ऐसे नकशे भारतवर्षमें भी भिन्न भिन्न जातियोंके तैय्यार करने चाहियें और यह देखना चाहिये कि भिन्न भिन्न सामाजिक प्रथाओं तथा आर्थिक स्थितियोंका क्या प्रभाव पड़ता है।

---

## क्या खुशहाल घरोंमें लड़कियां ज्यादा पैदा होती हैं?

प्रायः देखनेमें तो यह आता है कि स्त्रियोंके क्रमसे लड़के लड़की पैदा होते हैं। परन्तु कुछ स्त्रियोंके लड़के ही लड़के और कुछके केवल लड़कियां ही पैदा होती हैं। परन्तु निश्चयसे तभी कहा जा सकता है जब हज़ारों और लाखों कुलोंकी परीक्षा करके नकशे तैय्यार किये जायं और उनपर ग़ौर किया जाय। धर्मशास्त्रमें तो यह लिखा है कि ऋतुकालमें सम रात्रियोंमें सम्भोग करनेसे लड़के और विषम रात्रियोंमें सम्भोग करनेसे लड़कियां पैदा होती हैं। हम यहांपर तो केवल कुछ वैज्ञानिकोंकी खोजके परिणामोंका उल्लेख करेंगे।

गुलाबके पेड़ोंको नुक़सान पहुंचानेवाला एक कीड़ा होता है जिसे एफाइड कहते हैं (Aphide)। गरमीमें तो यह कीड़ा मादा ही बच्चे पैदा करता है, परन्तु जाड़ेमें कुछ नर बच्चे भी पैदा हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषयमें ऋतुके बदलनेका प्रभाव नहीं होता, किन्तु ऋतुके अनुसार खाने पीनेकी सामग्रीके कम और अधिक होनेका प्रभाव होता है।

इस विचारकी पुष्टि प्रो० हर्टविग (Professor R. Hertwig of Munich) के प्रयोगोंसे भी होती है। यह एक बड़े विख्यात वैज्ञानिक हैं। इन्होंने डेफनिया (Daphnia) नामी प्राणीपर प्रयोग किये थे, तो तालावों, नदियों और कीचड़ आदिमें फुदकता फिरता है। उन्होंने कुछ डेफनियाओंको भिन्न भिन्न तापक्रमोंके पानीमें रखा, क्योंकि पहिले उनका विचार था कि तापक्रमसे ही लिंगनिर्णय हो जाता है। उन्होंने देखा कि साधारण गरम पानीमें रखनेसे मादा बच्चे ही पैदा होते हैं और ठंडे पानीमें नर बच्चे ही। परन्तु छने हुये गरम पानीमें भी रखनेका वही प्रभाव हुआ जो ठंडे पानीमें रखनेका हुआ था। इससे यही नतीजा निकलता है कि बेछने गरम पानीमें जो खाद्य-सामग्री अधिक थी, उसीका यह सब चमत्कार था।

यहां यह कहा जा सकता है कि एफाइड और डेफनिया बहुत ही नीची कोटिके प्राणी हैं और उनके परीक्षणसे जो परिणाम निकलते हैं वह ऊंचे प्राणियोंके विषयमें लागू नहीं हो सकते। वास्तवमें कई धुरन्धर विद्वानों ने भी यही आपत्ति खड़ी की थी। यंग (Yung) ने इसीलिए एक अधिक ऊंचे प्राणी, मेढ़क, की परीक्षा की। उन्होंने बच्चोंको तरह तरहके खाने खिलाये। जब बच्चोंको योंही छोड़ दिया तो मादाओंकी संख्या ४०—५३ प्रतिशत थी। जब बच्चोंको गोमांस खिलाया तो मादाओंकी संख्या ५४से ७८ हो गई। मछली खिलानेसे ६१ से ८१ और खास तौरपर बनाया हुआ पुष्टिकारक मांस खिलानेसे ५६से ९२ तक बढ़ गया।

जब और अधिक ऊंचे जानवरोंको लेते हैं, तो पोषणके प्रभावकी ठीक ठीक जांच करना मुशकिल हो जाता है; तथापि ऐसी बहुत सी बातें देखने में आती हैं, जिनसे उपर्युक्त मतका ही समर्थन होता है। बहुत दिन हुए गिरौ (Girou) ने एक प्रयोग किया। उन्होंने एक तीन सौ भेड़ोंके गल्ले को दो भागोंमें विभक्त किया। एक भागको बहुत अच्छा खाना खिलाया और दूसरेको बहुत खराब। पहले समूहमें साठ प्रतिशत और दूसरेमें चालीस प्रतिशत भेड़ें पैदा हुईं। एक और व्यक्तिका

अनुभव है कि भारी भेड़ोंके प्रायः मादा बच्चे पैदा होते हैं। इस बातपर वीसमानके अनुयायियों ने आपत्ति की है। उनका विश्वास है कि योग्यतमावशेष नियमके अनुसार ही विकाश होता है। परन्तु आजकलके वैज्ञानिकोंका मत है कि जीवपर हर प्रकारकी उत्तेजनाओंका प्रभाव पड़ता है और इन बाहरी कारणोंसे जीवके रूपोंमें परिवर्तन हो जाता है। यह नहीं होता कि सबका नाश हो जाय और बस एक ही प्रकारके जीव बच रहें।

वीसमानके मतके भ्रममें पड़कर बहुत से वैज्ञानिकोंने लिंग नि[?]यके विषयपर विचार करना ही छोड़ दिया। परन्तु कुछ दिनोंसे अध्यापक हर्टविगने फिर प्रयोग करने शुरु किये हैं। उनके प्रयोगोंका भी यही परिणाम निकला है जो हम ऊपर बतला आये हैं। उनका मत है कि मादाको कम पुष्टिकारक भोजन देनेसे नर बच्चे अधिक पैदा होते हैं और अधिक पुष्टिकारक पदार्थ देनेसे मादा बच्चों की संख्या बढ़ जाती है। इस बातको यों भी कह सकते हैं कि भोजनकी बहुतायत और पाचक शक्तिकी प्रबलता हो तो मादा बहुत सी शक्तिका संचय कर सकती है और इसी शक्तिको बादमें मादा बच्चोंके रूपमें जातिको प्रदान कर देती है।

लड़कियां यद्यपि ऊपरसे कमज़ोर मालूम होती हैं तथापि उनके शरीरोंमें रोधक शक्ति और सहनशीलता अधिक होती है। इसलिये यह ताअज्जुब की बात नहीं है कि अच्छा खाना पानेवाली मांओंके लड़कियां ज्यादा पैदा हों। हर्टविगके शिष्य कोवेल्यूसकीने गिनीपिग और खरगोशों पर प्रयोग किये थे। उन्होंने पशुओंके तन्तुओंको सूक्ष्मदर्शकसे जांचा था और पुष्टिकारक पदार्थोंका रुधिरके परिमाण पर क्या प्रभाव होता है इस बातकी जाँच की थी। जो बातें ऊपर बतला आये हैं उन्हींका वह भी समर्थन करते हैं।

---

## जगतमें क्या क्या दुर्लभ है ?

अभिमान रहित राजा, निरीह ब्राह्मण, कोप न करनेवाला मुनि, चपलता रहित वानर, मत्सरशून्य कवि, न चुरानेवाला बनिया, बिना ईर्षाका प्रेमी, दरिद्रतारहित साधु पुरुष, खलतारहित धनी, क्षुद्र हृदयका प्रिय, दयाशील शिकारी, ब्राह्मण भिक्षु, सुखी सेवक, कृतज्ञ जुआरी, पेट भरा भिखारी, मधुरभाषी जल्लाद, सच्चा मंत्री, दुर्विनयसे रहित राजपुत्र—यह जगतमें दुर्लभ हैं।

---

## गगनचारी यन्त्रयान

कवि बाणभट्ट अपने बनाये हर्षचरितमें लिखते हैं कि "राजा चण्डीपति आश्चर्यकर वस्तुओंका बड़ा प्रेमी था। उसने एक यवन राजाको जीत लिया था। यवन राजा शिल्प कला कौशलमें बड़ा निपुण था। उसने यन्त्रों द्वारा एक आकाशमें उड़नेवाला यन्त्रयान बनाया और राजाको प्रसन्न करके उसमें बैठाया और लेकर उड़ गया। इस प्रकार उसने बदला लिया।"

इस उल्लेखके होते हुए एरोप्लेन और विमान निर्माणके इतिहासमें इस घटनाको भी अवश्य महत्वका स्थान मिलना चाहिये।*

---

## कृत्रिम रूपसे राजयक्ष्माकी उत्पत्ति

वर्तमानकी (बैक्टीरियोलौजी) जीवाणु विद्याने बहुत से प्रकारके जीवाणुओंको खोज निकाला है। वैज्ञानिक उनको बोतलोंमें बन्द कर लेते हैं और जहां चाहें उनको फैला सकते हैं। इसका आविष्कार आजसे सैकड़ों वर्ष पहले हो चुका था। बाणभट्टने ऐसी एक घटनाका उल्लेख किया है।

---

* आश्चर्य कुतूहली च चण्डीपतिः दण्डोपनत यवन निर्मितेन नभस्तलयायिना यन्त्रयानेनानीयत क्वापि।
(हर्षचरित उच्छ्वास ६ पृ० १६६ नि० सागरी छापा)

"विदेहराजाका पुत्र बहुत रसादि औषधोंके बनानेमें लगा रहता था। वैद्यका रूप धरके बहुत से शत्रुप्रयुक्त लोगोंने उसको औषधें खिलाकर राजयक्ष्माकर दिया।"*

---

## परिषद्का हिसाब

### अगस्त १९२१

आय

| | |
|---|---|
| सभ्योंका चन्दा | १) |
| मुत्फर्रिक | ३=) |
| पुस्तकोंकी बिक्री | [illegible])॥ |
| जोड़ | २०।=)॥ |
| पिछले मासकी बचत | ४१०।-)॥. |
| महान जोड़ | ४३०॥)॥. |

व्यय

| | |
|---|---|
| किराया दफ्तर जून, जुलाई महीनोंका | ६) |
| क्लर्ककी तनखाह जुलाईकी ५) काटकर | १३) |
| क्लर्कको पेशगी | ४) |
| छपाई पदाधिकारियोंकी सूचीकी | २) |
| स्टेशनरी | ३≡) |
| | २९≡) |
| रोकड़ बाकी— | ४०१॥-)॥. |
| | ४३०॥)॥. |

---

### सितंबर १९२१

आय

| | |
|---|---|
| सभ्योंका चन्दा | १३) |
| मुत्फर्रिक | ६५) |
| पुस्तकोंकी बिक्री | २४।=) |
| जोड़ | १०२।=) |
| रोकड़ बाकी ३१ अगस्तकी— | ४०१॥-)॥. |
| | ५०३॥≡). |

व्यय

| | |
|---|---|
| क्लर्ककी तनखाह अगस्तकी ४) काटकर | १४) |
| किराया दफ्तर अगस्तका | ४॥) |
| प्रयाग नारायण चटर्जीको | १५०) |
| पुस्तक खरीदा | ४=) |
| मुत्फर्रिक | ४॥।-)॥ |
| पोस्टेज | १-) |
| योग | १९८॥)॥ |
| रोकड़ बाकी ३० सितम्बरको | ३०५।=)॥. |
| महान जोड़ | ५०३॥≡). |

## हिसाब १ अक्तूबर १९२० से ३० सितम्बर १९२१ तक का

आय

| | |
|---|---|
| सभ्यों का चन्दा | ५२५) |
| पुस्तकोंकी बिक्री | ३६७) |
| मुत्फर्रिक | १३०५।-) |
| खातोंके हिसाब में | २२८॥≡) |
| योग | २४२६॥।=) |
| ३० सितम्बर २० को रोकड़ बाकी | ७०६॥।=)॥. |
| | ३१३३॥)॥. |

व्यय

| | |
|---|---|
| जमा कराया ( केश सर्टिफिकेट ) | ६५०) |
| खर्च दफ्तर | २७५॥) |
| टिकट | २६॥) |
| फुटकर | ९९८-)॥। |
| छपाई | ११०॥) |
| कागज़ | १०३॥≡) |
| खाते | ६१७।-) |
| | २८०८।-)॥। |
| रोकड़ बाकी ३० सितम्बर २१ को | ३२५।=)॥. |
| | ३१३३ ॥)॥. |

---

* "रसायन रसाभि निवेशिनश्च वैद्यव्यञ्जनाः सुबहु पुरुषान्तर प्रकाशितौषधगुणाः गणपतेर्विदेह राज सुतस्य राजयक्ष्माणमजनयन् ॥" —बाण
( हर्षचरित नि० सागरी १९९ पृ० )

सूरजप्रसाद खन्नाके प्रबन्धसे हिन्दी साहित्य प्रेसमें मुद्रित, तथा विज्ञान परिषद्, प्रयागसे प्रकाशित।

*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.*

Reg. No. A. 708

पूर्णसंख्या ८२

# विज्ञान

प्रयाग की विज्ञान परिषत् का मुख पत्र

भाग १४
Vol XIV.

संख्या ४
No 4

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी.

मकर १९७८, जनवरी १९२२

प्रकाशक

विज्ञान परिषत्

प्रयाग

# विषय सूची



---

## वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञानंब्रह्म ति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १४ } मकर, संवत् १९७८ । जनवरी, सन् १९२२ { संख्या ४

## समाजकी उत्पत्ति और महत्व

डारविनका विकाश सिद्धान्त बहुत दिनोंसे विख्यात है । हमारे पाठक यह जानते ही होंगे कि इस सिद्धान्तके अनुसार यह माना जाता है कि एक-सेल-युक्त प्राणीसे ही सारे संसारकी सृष्टि हुई है । उसीसे क्रमशः अधिकाधिक जटिल प्राणियोंकी सृष्टि होती गई, जिसका अंतिम और सर्वोत्तम परिणाम मनुष्य है । मनुष्यसे शारीरिक बलमें अन्य प्राणी अधिक बढ़े चढ़े हैं । परन्तु बुद्धिबल इसीमें सबसे अधिक है । और उसीके सहारे इसने समस्त पशुसंसारपर विजय पाई है और उनको अपने अधीन किया है ।

इसी विकाशक्रमपर विचार करते हुए दार्शनिकोंके हृदयमें यह विचार उत्पन्न होने लगा कि क्या यह चक्र यहीं पर ठहर जायगा, या इसीके द्वारा आगे चल कर कोई और अधिक ऊंची कोटिका प्राणी भी पैदा होगा । उन लोगोंका विश्वास यह हो चला कि ऐसा अवश्य ही होगा । ऐसे ही दार्शनिकोंमें नेटशे महोदय भी थे । इन्होंने पहिले पहल इसकी चर्चा चलाई थी । इनका कहना था कि जैसे प्राचीन कालमें अन्य बहुत से प्रकारके प्राणियोंका लोप हो चुका है, उसी प्रकार मनुष्यका भी एक दिन अन्त हो जायगा और उसके स्थानपर एक नया और अधिक श्रेष्ठ प्राणी भूमंडलपर आ बसेगा ।

जिस प्रकार विकाशका चक्र अबतक निर्दयतासे आगे बढ़ता रहा है, निर्बल और निरुपयुक्त प्राणियोंका नाश और सबल और उपयुक्त प्राणियों

का जन्म होता रहा है, उसी प्रकार जीवन संग्रामके द्वारा ही उस नये जीव, सुपरा-मनुष्य, की सृष्टि भी होगी। यदि हम यह चाहते हैं कि उसकी सृष्टि जल्दी ही हो जाय, अथवा सतयुग जल्दी ही आ जाय तो हमें चाहिये कि जीवन-कलहको अधिक भीषण और विकट करदें। इन्हीं विचारोंके कारण नैटशेको डारविनवादका भयानक सपूत बतलाया जाता है। कुछ लोगोंका खयाल है कि उनकी विचारशैली अपूर्ण और संकुचित थी। उन्होंने संसारके इतिहासमें होनेवाली सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटनापर दृष्टिपात नहीं किया था। मनुष्यने सुपरामनुष्यकी, किसी मन्द रीतिसे, सृष्टि होनेका इन्तज़ार नहीं किया है। उसने उसको पैदा करके खड़ा ही कर दिया है। और वह है अत्यन्त अद्भुत सुविशाल और महाकाय वस्तु समाज।

संसारमें वस्तुओंकी सृष्टि और लय होनेका क्रम सदा जारी रहता है। परन्तु मनुष्यने समाजके संगठनके रूपमें इस क्रमको मेट देनेका प्रयत्न किया है। उसने एक ऐसी चीज़ बनाकर खड़ी कर दी है, जो अमर है, जो अपने बनानेवालेके मर मिटनेके उपरान्त भी मिटती नहीं और पूर्ववत चली जाती है। व्यक्ति विशेष पैदा होते हैं और मर जाते हैं; कुछ दिन संसारके मंचपर अभिनय कर सदाके लिए पर्देके पीछे जा छिपते हैं। परन्तु उनमेंसे बहुतसे ऐसे भाग्यवान सपूत निकलते हैं, जो औरोंसे दौड़में आगे निकल जाते हैं। और दुनियामें कुछ किरिश्मे करके दिखा जाते हैं। यही मनुष्य जाति रूपी उद्यानके सर्वोत्तम सुगन्धित फूल होते हैं, जिनकी महक थोड़े ही समयके लिए वाटिकाको सुगन्धिमय कर गायब नहीं हो जाती, किन्तु समाजरूपी कवचकी क्रियासे चिरकाल तक वहीं रमी रहती है और उत्तरोत्तर उन्नति करती जाती है।

आधुनिक मनुष्य अपने पूर्वजोंसे शारीरिक शक्तिमें शायद बहुत कम उतरे, किन्तु उसकी शक्तिका अनुमान उसके भुजाओंके बलसे न करके उन यन्त्रोंसे करना चाहिये, जिनसे देशकी दूरी, कालकी अवधि और वस्तुकी जड़ताको दूरकर उसने वह चमत्कारकर दिखाये हैं कि जड़से चैतन्यका काम ले लिया है। यह तो हुई बाहरी प्रकृतिपर विजय पानेकी बात। उसने अपनी आन्तरिक प्रकृतिपर भी विजय पाई है, जिसका ही स्थूल रूप समाजके संगठन, मतमतान्तरोंके प्रचार, धर्म और नीतिके संस्थापनमें दिखाई पड़ता है। इन दोनोंके सम्बन्धमें, मनुष्यने वृद्धि और क्षयके साधारण विधानको पलट दिया है और हम इस बातको कह सकते हैं कि उसने प्रकृतिपर बहुत बड़ी विजय प्राप्त कर ली है।

यह बहुत सम्भव है कि जबसे मनुष्यने बरबरता को छोड़ सभ्यताकी ओर कदम बढ़ाया है उसके बुद्धिबलमें बहुत कम वृद्धि हुई है। प्राचीन मनुष्यने प्राकृतिक अवस्थाओंसे अपनी रक्षा करनेमें जो महत् प्रयत्न किया था तभी जो कुछ उसका मानसिक बल बढ़ गया था, वह अभी उतनाका उतना ही बना हुआ है। तथापि सांसारिक सुख, प्राकृतिक अवस्थाओंपर विजय, शिक्षा और नीतिमें उसने बहुत कुछ उन्नति की है। परन्तु यह सब बातें समाजके उन्नत संगठनके द्वारा ही प्राप्त हुई हैं, क्योंकि जो बातें उसे शारीरिक परम्पराके द्वारा नहीं प्राप्त होती हैं, वह समाजकी कृपासे सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार मनुष्यने एक बड़े भारी प्राकृतिक नियमके विरुद्ध भी अपनी उन्नतिका मार्ग अंकित कर लिया है, जो मनुष्यकी प्रकृतिपर बड़ी भारी पहिली विजय है। इसीके कारण मनुष्य सभ्य कहलानेका मुस्तहक हुआ है। इससे मनुष्य जातिको कितना लाभ हुआ है और होनेकी सम्भावना है, यह प्रत्येक मनुष्य अच्छी तरह जानता है।

मनुष्यकी पहिली बग़ावतका फल एक कड़े बाधक नियमका तोड़ना है। इस बग़ावतमें उसे कितनी अधिक सफलता हुई है! मनुष्यका जब जन्म होता है तो बीजपरम्पराके नियमोंके अनुसार उसे अपने माता पितासे बहुत थोड़ी चीज़ें मिलती हैं—बस उसका शरीर और मन कुछ

अच्छे बुरे संस्कारों सहित उसके पल्ले पड़ते हैं। परन्तु इस कमीको उसने स्वनिर्मित समाजसे पूरा कर लिया है। समाज द्वारा उसे अपने पूर्वजोंका भौतिक और अध्यात्मिक ज्ञान-भण्डार मिल जाता है। थोड़ी देरके लिए कल्पना कीजिये कि एक बच्चा पैदा हुआ और उसे समाजसे अलग करके एकान्त स्थानमें रखनेका प्रबन्ध कर दिया गया। या जैसा कई बार देखनेमें आया है, भेड़िया उसे उठा ले गया; तब सोचिये कि बड़े होनेपर उसकी क्या दशा होगी।

उन्नतिका मूलमंत्र है परिवर्तनोंका होना और उनमेंसे अच्छे और उपयुक्त परिवर्तनोंका चुना जाना। यह दो क्रियाएँ विश्वके विकाशमें भी बड़ा महत्व रखती हैं। प्राणियोंके रूपोंमें परिवर्तन स्वतः ही हुआ करते हैं। इन परिवर्तित रूपोंमेंसे वही ठहरता है जो देश और कालके अधिक उपयुक्त होता है और शेष नष्ट हो जाते हैं। इन्हीं दो क्रियाओं—परिवर्तन और चयन (Variation and Selection)—द्वारा एक सैलसे पैदा होकर अनेक, असंख्य, जीव आज भूमण्डलपर दिखाई दे रहे हैं। यही नियम समाजमें भी बर्तता है। परन्तु भेद इतना ही है कि प्राणि संसारमें तो व्यक्तियोंमें परिवर्तन होनेसे काम चल जाता है, परन्तु समाजमें विचारोंका महत्व है। अतएव यह कह सकते हैं कि समाजकी वृद्धि चेतनताकी वृद्धिसे अधिक सादृश्य रखती है और भौतिक शरीरकी वृद्धि और विकाशसे कम।

आधुनिक सभ्य समाज एक प्रकारका अर्ध देहधारी व्यक्ति है जिसका निवास मनुष्योंके समान विचारोंमें है। तथापि समाजमें जो शक्तियां काम करती हैं, उनमें भी वैसीही नियामकता पाई जाती है जैसी भौतिक शक्तियोंमें पाई जाती है। समाजमें भी आकर्षक और निराकरिष्णु शक्तियां पाई जाती हैं। पहले प्रकारकी शक्तियां व्यक्तियोंको समूहके अधिकारमें लानेकी चेष्टा करती हैं और दूसरे प्रकारकी शक्तियां व्यक्तियोंको स्वतंत्र और नवीन लीक निकालनेमें समर्थ करती हैं।

दल बांधकर रहनेका स्वभावही वह प्रेरक प्राकृतिक शक्ति है जो मनुष्योंको समाज प्रियता प्रदान करती है। यह स्वभाव मनुष्य को विरसेमें, मुमकिन है, उसके पशु पूर्वजोंसे मिला हो, परन्तु वह इतना प्रबल नहीं है कि केवल उसीसे प्रेरित हो मनुष्य समाज संगठन करने लगे। बहुत ही नीची जातियोंमें भी केवल इससे काम नहीं चलता, प्रत्युत् अन्य अद्भुत अधिगत मानसिक वृत्तियोंके कारण मनुष्य समाज-रचनाके लिए बेबस हो जाता है। बात यह है कि मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियां पशुओंकी तरह कटी छटी निश्चित रूपकी नहीं हैं। उसकी प्रकृतिका स्वभावजन्य भाग, ज्यों ज्यों वह उन्नति करता जाता है, कम होता जाता है; परन्तु सीखनेकी शक्ति अधिकाधिक प्रबल होती जाती है। जितना जिस जीवको अपने जीवन-कालमें सीखना होता है उतनी ही कम निश्चित और स्पष्ट रचना उसकी स्वाभाविक वृत्तियोंकी होती है। हमको जन्मसे सीखनेकी शक्ति, न कि काम करनेकी योग्यता, प्राप्त होती है। यही कारण है कि मनुष्यका बालक इतना बेबस पैदा होता है। गायके बच्चोंको ही देखिये। जन्म लेते ही दौड़ना और तैरना उन्हें आजाता है, परन्तु अपने जीवन भरमें वह नयी बातें बहुत कम सीखते हैं। प्रायः जितनी बातें उन्हें पैदा होनेके समय आती हैं उतनी ही मरते समय भी आती हैं। उधर मनुष्यकी स्वाभाविक वृत्तियां बहुत ही कम और जो हैं वह भी बहुत ही अस्पष्ट और लचीली होती हैं। यही कारण है कि मनुष्यका बालक अत्यन्त परिवर्तनशील होता है। यही कारण है कि उसपर कुसंस्कारों और सुसंस्कारोंका बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। परन्तु इसमें मनुष्यका लाभ ही है, हानि नहीं; क्योंकि जितनी बातें उसे शारीरिक परम्परा द्वारा प्राप्त होतीं उससे न जाने कितनी ज़्यादा सामाजिक परम्परा द्वारा प्राप्त हो जाती हैं।

मनुष्यका बालक नरम मट्टीके समान होता है। जिस जाति अथवा कुलमें वह उत्पन्न होता,

वह जाति अथवा कुल कुम्भकारकी नाईं उसके आचार विचार, भाव और कर्मके निश्चय करनेमें बड़ा महत्व पूर्ण प्रभाव डालता है। सारांश यह कि अंशतः मनुष्य समाज-रचित होता है। उसके वंशका उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना संग साथ और समाजका। जलवायुका प्रभाव समाजके प्रभावके सामने पीला पड़ जाता है। वह बड़ी भूल करते हैं जो इस बड़े भारी प्रभावको भूल यह समझ बैठते हैं कि जल वायुका प्रभाव ही सब कुछ है। पर अभाग्यवश ऐसे ही मदान्धोंकी बातें भारतीय स्कूलोंमें पढ़ाई जाती हैं। बच्चोंको सिखाया जाता है कि भारत वर्ष जैसे गरम देशमें आकर आर्योंका बल वीर्य हवा हो गया। वह तेजहीन और बल-हीन होकर कूपमण्डूककी नाईं सड़ने लगे। यह शिक्षा बड़ी घातक है, पर शोक है कि जनता इस ओर ध्यान नहीं दे रही है। जिन बच्चोंके हृदयमें स्वाभिमान और जाताभिमान इस प्रकार समूल नष्ट कर दिया जाता है, उनके मन और मस्तिष्क गुलामीके उपयुक्त रह जाते हैं।

प्लेटोका मत था कि मनुष्यके मनमें उसके विचार सूक्ष्म रूपमें विद्यमान रहते हैं। जन्म लेने पर उचित देशकाल, जलवायुके मिलने पर वह अंकुरित हो आते हैं। उनमें काटछांट, कमीवेशी नहीं हो सकती। सब मसाला पहलेसे ही तय्यार होता है। उधर लौक महाशयका यह कहना है कि विचारोंका जन्म प्रभावना द्वारा होता है। दार्श-निकोंमें इसमें बड़ा विवाद चल रहा है, पर हिन्दुओंने इस ग्रन्थिको बड़ी उत्तमतासे सुलझाया है। इस खूबीसे इस सवाल को हल किया है कि बड़ा आश्चर्य होता है।

ऊपर हम कह आये हैं कि मनुष्य अंशतः समाज निर्मित होता है। इस विचारको हिन्दुओंके "द्विज" शब्दके अर्थसे मिलाइये। स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दू मनुष्यके दो जन्म मानते हैं। एक जन्म माताके उदरमेंसे निकलने पर होता है, दूसरा गुरुगृह को, उपनयन संस्कार हो जाने पर, जाने के समय माना जाता है। वह इन दोनों बातोंके महत्वको भली प्रकार मानते हैं। पुनर्जन्मके अनु-सार प्लेटो और लौक दोनोंके सिद्धान्त ठीक उतरते हैं, केवल अन्तर इतना दिखाई पड़ता है कि वह दोनों एक पूर्ण सिद्धान्तके संकुचित एक-देशीय रूप हैं। मनुष्यके कर्मोंके अनुसार उसके संस्कार होते हैं और जैसे संस्कार होते हैं वैसे ही कुलमें पुनर्जन्म मिलता है। इससे सिद्ध हुआ कि जन्म लेनेपर मनुष्यके हृदयमें पूर्व जन्मके संस्कार बने रहते हैं; उन्हींके अनुसार उसे कुल और समाज मिलता है ( Plato's ready made ideas ) और वह क्रमशः विकसित होकर ( Lockes' origin of notions in sensation ) आगेके लिए उसका मार्ग निर्धारित करदेते हैं। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि प्लेटोका "बने बनाये विचारोंका संसार" यही समाज है। पोस्ट महोदयका कहना है कि वास्तवमें हम नहीं विचार करते, किन्तु मानव जाति हमारी हृदय तंत्रीको बजाया करती है। जब ऐसा होना रुकजाता है तभी यातो हम पागल हो जाते हैं या सिद्ध।

अब फिर हम उसी बातपर आते हैं जिसके निर्णय करनेके लिए चले थे। समाज संगठनके लिए मनुष्यको कौन सी वृत्ति प्रेरित करती है? एक बात तो पहलेही बतला चुके हैं; वह है दल बांधकर रहनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति, जिस अकेलेसे ही काम नहीं चलता। दूसरी बड़े महत्वकी वृत्ति है अनु-करण करनेकी प्रवृत्ति, जो बहुत प्रबल है। इस बातमें तो वह बन्दरसे भी बाज़ी ले गया है। वह ऐसा ज़बरदस्त नकल करनेवाला है कि जाने या अनजाने वह दूसरोंके भावों, मनोविकारों, विचारों आदिकी नक़ल करता है। बच्चोंकी बुद्धि और आचारका इसी प्रकार विकास होता है। जिस प्रकार सूरजमुखी सूर्यकी तरफ मुख किये रहती है, उसी प्रकार बच्चे अपनेसे बड़ोंकी ओर आक-र्षित होते हैं और उन आचरणोंका अनुकरण करने लगते हैं, जिनसे उनके हृदयमें तदनुकूल विचार

भी प्रकट हो जाते हैं। इस विषयपर अगले अंकमें विस्तारसे विचार करेंगे।

---

## गरम पानीसे नहाना चाहिये कि ठण्डेसे
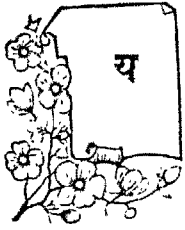
यदि बदनकी सफाई करना मंजूर हो तो गरम पानीसे नहाना उचित है। शरीरके ऊपर लगा हुआ तेल और चरबी शरीरके तापक्रमपर प्रायः ठोस और द्रवावस्थाओंके बीचमें रहते हैं। यह अधिकांशमें शरीरमेंसे ही निकलते हैं, पर कुछ शहरकी हवामेंकी कलिमा, मैल इत्यादिके कणोंके साथ बाहरसे भी आजाते हैं। गरम पानीके प्रयोगसे यह सब छुट जाते हैं, अतएव मैल फूल आता है और सहज ही रगड़नेसे उतर जाता है।

गरम पानी शरीरकी नसोंको उत्तेजित भी करता है, परन्तु यह गुणकारी तभी होता है जब बहुत थोड़े समयके लिए हो और उसके बाद ठण्ड पहुंचाई जाय। नवजात शिशु यदि अच्छी तरह साँस न लेता हो तो उसकी त्वचा पर बारी बारीसे गरम और ठंडे पानीका प्रयोग करते हैं। थोड़ी देरमें ही वह भली भांति सांस लेने लग जाता है। साधारण मनुष्योंको भी इसी प्रकार गरम और ठंडे पानीका प्रयोग लाभ पहुंचा सकता है। यदि आदमी दिनमें दो बार नहाता हो तो सवेरे ठंडे पानीसे और शामको सोनेके पहले गरम पानीसे नहाना उचित है। मुंहपर गरम पानीका प्रयोग समझ बूझकर करना चाहिये। चेहरेका चमड़ा बड़ा पतला और नाजुक होता है। उसमें नसोंकी संख्या भी बहुत ज़्यादा है, जो अत्यन्त साम्वेदनिक हैं। अतएव चेहरा साफ करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि पानी इतना गरम न हो कि ब्लडवेसिल्स उसके प्रयोगसे इतनी फैल जायं कि पीछेसे अपने पूर्वाकारको न प्राप्त कर सकें। जिनके कान और नाक सुर्ख रहते हों उन्हें तो विशेषतः गुनगुने पानीसे ही काम लेना चाहिये। गरमीमें भी लूमें रखे हुए पानीसे शामको नहायें तो मरोरियां मर जाती हैं।

ठंडे पानीके नहानेसे बल बढ़ता है। जाड़ेमें भी जहां तक हो सके और शरीर सह सके, ठंडे पानीका ही प्रयोग करना चाहिये। यदि उससे नहानेसे दांत किटकिटाने लगें और उंगलियां नीली पड़ जायं तो समझ लेना चाहिये कि उसमें कुछ गरम पानी मिलानेकी आवश्यकता है। साधारणतया ठंडे पानीसे नहानेसे शरीर पर वही प्रभाव पड़ता है जो तेज़ घोड़े पर चाबुकका और किसी व्याख्याता पर महत्वपूर्ण घटना का।

ठंड लगनेसे शरीरकी गरमी तो अवश्य जल्दी जल्दी निकलती है, किन्तु शीघ्र ही ताप और बल उत्पन्न हो जाता है, जिसके कारण भूख तेज़ और हाज़मा दुरुस्त हो जाता है। वास्तवमें ठंड लगनेपर शरीरको अपनी रिज़र्व शक्तिसे काम लेना पड़ता है।

अन्तमें यह स्मरण रखना चाहिये कि स्नानका लाभालाभ उसके उपरान्त शरीरकी होनेवाली प्रतिक्रियापर निर्भर होता है। यदि शरीरमें उसके बाद अपने आप गरमी पैदा हुई तो लाभ और यदि गरमी कम हो गई तो नुक़सान होगा। नहानेकेबाद शरीर हलका और फुरतीला मालूम होना चाहिये।

---

## मिठाई, अचार आदि

[ ले०—श्री०गोपीनाथ गुप्त वैद्य ]

पीछे बतलाया गया है कि मधुर रस हमारे लिए बहुत उपयोगी है और इसीलिए मधुर-रसयुक्त पदार्थ अधिक खाने चाहिएँ; परन्तु वर्तमानमें मिठाइयोंका इतना अधिक प्रचार बढ़ गया है कि जिसे आहार सम्बन्धी एक अति कह सकते

हैं। मधुर रस शरीरके लिए अन्य रसोंसे अधिक आवश्यक है, पर जितनी मिठाइयां आजकल खाई जाती हैं उतनी नहीं खानी चाहियें। मधुर रसके सेवन करनेके लिए नाना प्रकारकी मिठाइयोंके खानेकी आवश्यकता नहीं है। गेहूंमें भी मधुर रस है। दूध चावल, आलू, मूंग और अनेक प्रकारके फलों, अनाजों और शाक इत्यादि में भी मधुर रस होता है; इसलिए अनेक प्रकारकी मिठाइयां खाना आवश्यक नहीं है। यद्यपि गन्ने या खजूर इत्यादिसे बनी हुई खांड, बूरा, बताशा, मिस्री इत्यादि साधारण और सादी मिठाइयां स्वभावतः हानिकारक नहीं हैं, परन्तु इनके साथ जिन अन्य पदार्थोंको मिला कर पेड़े, लड्डू, खजला इत्यादि मिठाइयां बनाई जाती हैं उनमें से अधिकांश देरमें पचनेवाले होते हैं। पेड़ा इत्यादि खोएसे बननेवाली मिठाइयां अधिक खानेसे आंतोंमें ऐंठन उत्पन्न करती हैं और मैदाके प्रयोगसे बनी हुई चीज़ें बहुत देरमें पचती हैं; अतएव ऐसी मिठाइयोंको बहुत थोड़ी मात्रामें खाना चाहिये। अधिक मीठा खानेसे पाचनशक्ति क्षीण होती है और मधुमेह उत्पन्न हो जाता है, जो बहुत ही भयंकर रोग है। मधु मेहके रोगी जीनेसे मरना अच्छा समझते हैं। अतएव चाहे किसी प्रकारकी भी मिठाई क्यों न हो बहुत अधिक नहीं खानी चाहिये। विशेष कर खोए और मैदा इत्यादिसे बनी हुई मिठाइयाँ तो बहुत ही कम खानी चाहिएँ। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि अन्य पदार्थोंके समान ही मिठाइयोंके पचानेमें भी पाचक यन्त्रोंको कार्य करना पड़ता है, इसलिए इनको खाते समय केवल रसनाकी ही नहीं पेटकी भी सलाह ले लेना आवश्यक है।

खट्टी तथा चरपरी चीज़ोंमें उत्तेजक गुण अधिक होता है; इसलिए ब्रह्मचारियों और विद्यार्थियोंके लिए इनका सर्वथा त्याग करना ही श्रेयस्कर है। खट्टे और अधिक मिर्च मसालेवाले पदार्थ धातु तारल्य, स्वप्न दोष, इत्यादि वीर्य सम्बन्धी रोगोंको भी उत्पन्न करते हैं; एवं पाचनशक्तिको खराब और मानसिक शक्तियोंका ह्रास करते हैं। यद्यपि अम्ल द्रव्योंसे पाचन क्रियामें कुछ सहायता अवश्य मिलती है और नीबू, नारंगी तथा आमले इत्यादि अम्ल पदार्थोंमें रक्त शोधक-शक्ति भी होती है; परन्तु अधिक खटाई खानेसे छातीमें जलन और पाचन क्रियामें बाधा उत्पन्न होती है। अतएव यथासम्भव खटाई बहुत कम खानी चाहिये। समस्त प्रकारकी खटाइयोंमें नीबू और आमला तथा अनार श्रेष्ठ माना गया है। जिन स्थानोंमें ताज़ा फल और हरे शाक नहीं मिल सकते वहां उचित परिमाणमें नीबूका रस और आमलेकी खटाई उपयोगमें लाई जा सकती है, क्योंकि हरे शाक और फलोंके अभावमें रक्त दूषित होनेकी सम्भावना रहती है और इन खटाइयोंसे रक्त शुद्ध होता है।

यहांपर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रकार रसोईमें स्वच्छता और शुद्धिकी आवश्यकता है उसी प्रकार मिठाइयों और खोएके सम्बन्धमें भी है। परन्तु देखा जाता है कि प्रायः दूकानदारोंके यहां शुद्धि और सफ़ाईका अभाव रहता है; सारे पदार्थ खुले हुए रखे रहते हैं, उनमें सड़कसे उड़कर धूल इत्यादि पड़ती रहती है। मक्खियां आ कर उनपर बैठती हैं। उनके पैरोंके साथ न जाने कितने घृणित पदार्थ चिमटे रहते हैं; जिनमें रोग जीवाणुओंका होना भी बहुत सम्भव है। यह रोग जीवाणु और मैले पदार्थ उपरोक्त खाद्य पदार्थोंमें मिल जाते हैं और रोग फैलाते हैं। हलवाइयोंको चाहिये कि समस्त पदार्थ काँचकी अलमारियोंमें अथवा तारकी महीन जालियोंमें, या धोतर इत्यादि कपड़ेसे ढांप कर रखें। यदि यह सम्भव न हो तो सफ़ेद अभ्रकके पत्रोंसे बांसकी खप्पचके बने हुए चौखटोंको मढ़कर उनसे भी काम ले सकते हैं।

अचार और मसाले इत्यादि

अचार, मसाले, चटनी, चूर्ण और नमक सुलेमानी इत्यादि लोग इसलिए खाते हैं कि इनसे

भोजनमें रुचि उत्पन्न होती है, भूख बढ़ती और भोजन शीघ्र पचता है। परन्तु शरीर सञ्चालनके लिए इनमें से किसी पदार्थकी भी आवश्यकता नहीं है; न तो इनसे शरीर पुष्ट ही होता है और न शक्ति उत्पन्न होती है। रही भूख बढ़ाने और रुचि उत्पन्न करनेकी बात सो स्वस्थ मनुष्यको तो प्रतिदिन समयपर स्वयं ही भूख लगती है। जिसकी पाचन शक्ति ठीक है उसे भूख बढ़ानेवाले किसी पदार्थकी आवश्यकता नहीं। यदि कोई स्वाभाविक भूखसे भी अधिक भूख बढ़ाना चाहता है तो मानों वह स्वयमेव रोगको बुलाता है। जब भूख लगी हो तो उस समय भोजनमें स्वतः ही रुचि उत्पन्न होती है; कहावत है कि "भूखमें गूलर पकवान होते हैं"। मसालोंसे भोजन सुपाच्य अवश्य हो जाता है; पर ऐसे गरिष्ट भोजन खानेकी आवश्यकता ही क्या है कि जिसके पचानेके लिए इतने उपाय करने पड़ें।

मसालोंके सेवनसे पाचक यन्त्रोंको उत्तेजना मिलती है और पाचक रस पहिलेकी अपेक्षा अधिक निकलने लगते हैं; इसीलिए मसालों और चूर्णोंके सेवनसे थोड़े दिनों तक पाचन शक्ति बढ़ती हुई प्रतीत हुआ करती है; परन्तु थोड़े समय पीछे ही मन्दाग्नि और क्षुधा-नाश इत्यादि रोग आ दबाते हैं। पाचक यन्त्र शिथिल और निर्बल हो जाते हैं। चलते हुए घोड़ेको खूब कोड़े लगाने से जो परिणाम होता है वही परिणाम मसालोंके सेवनसे पाचक यन्त्रोंके सम्बन्ध में भी होता है। कोड़ोंकी मारसे घोड़ा अपनी शक्तिसे भी अधिक भागता है; परन्तु इस मारसे उसमें बल नहीं आ जाता और वह थोड़ी दूर जा कर ही थक जाता है। इसी प्रकार मसालोंके हण्टरसे पाचक यन्त्र अपनी शक्तिसे कहीं अधिक काम करने लगते हैं जिसे सर्वसाधारण भूल से क्षुधावृद्धि समझते हैं; पर इस प्रकार शक्तिसे अधिक काम करनेके कारण पाचकयन्त्र शीघ्र ही थक जाते हैं और फिर वह अपना नियत कार्य भी नहीं कर सकते। जिन चूर्णों और मसालोंमें क्षार पदार्थ अधिक होते हैं वह पुंस्त्व शक्तिका नाश करते हैं और उनसे कई वीर्य सम्बन्धी रोग भी उत्पन्न होते हैं। "क्षारः पुंस्त्वोपघातिनाम्" (चरक)। मसालोंसे सहनशीलता, स्मृति, धैर्य, शान्ति-प्रियता इत्यादि कितने ही सद्गुणोंका ह्रास भी होता है; अतएव यथासम्भव इनका बहुत कम सेवन करना चाहिये। विशेष कर विद्यार्थियों और ब्रह्मचारियोंको तो मसाले और चटपटी तेज़ तथा उत्तेजक चीज़ोंका सर्वथा त्याग करना ही हितकर है।

कहा जाता है कि मसालोंसे भोजन स्वादिष्ट हो जाता है, परन्तु यह हमारी भूल है। अधिक समयके अभ्यासके कारण ही हमें उनमें स्वाद प्रतीत होता है, अन्यथा वास्तवमें स्वादका तो कुछ अस्तित्व ही नहीं है। एकको अम्ल पदार्थ स्वादिष्ट मालूम होते हैं। परन्तु दूसरा मनुष्य उन्हें स्वादिष्ट नहीं समझता; वह मीठे पदार्थोंमें अधिक स्वाद अनुभव करता है। इसी प्रकार अपने अपने अभ्यासके अनुसार प्रत्येक मनुष्य भिन्न भिन्न पदार्थोंमें स्वाद अनुभव करता है। मसाले, चटनी या मिठाई इत्यादिमें कोई ऐसी बात नहीं होती कि जो इन्हें स्वभावतः ही स्वादिष्ट कहा जा सके।

---

## तेजसे जलकी उत्पत्ति

लकी मनोरञ्जक गाथा' शीर्षक लेखमें हम जलके चमत्कारोंपर और उसकी सृष्टिपर विचार कर चुके हैं। हमारे प्यारे पाठक उसे भूले न होंगे। उसी विषयके एक पहलूपर आज हम फिर विस्तारसे विचार करना चाहते हैं।

पानी दो गैसों, उज्जन और ओषजन, का यौगिक है। परन्तु यह दोनों गैसोंके मिलाने भरसे अपने

भाप नहीं बन जाता। अतएव प्रश्न यह उठता है कि इसकी उत्पत्ति कब और कैसे हुई। एक समय था जब पृथ्वीका तापक्रम बहुत ऊंचा था और तब पानी वाष्पके रूपमें वायुमण्डलमें ही होगा। यदि यह कल्पना ठीक हो तो उस समय पृथ्वीका वायुमण्डल हज़ारों मील तक फैला हुआ होगा, परन्तु उस दशामें पृथ्वीके पिण्डके लिए वायुमण्डलको साथ साथ लिए देशमें चक्कर लगाना असम्भवसा जान पड़ता है। यदि इस बातके सम्भव और असंभव होनेपर इस समय विचार न भी करें तो भी यह बात तो रह ही जाती है कि जल-वाष्प कहांसे आई और कैसे बनी ?

इन सब कठिन समस्याओंके सुलझानेके लिए हम यह मान सकते हैं कि जलवाष्प सबकी सब एक समय ही नहीं बनगयी थी। वह क्रमशः बनती रही और किसी समय भी वायुमण्डलमें इतनी जलवाष्प नहीं थी, जितनी कि पृथ्वीके आकर्षणसे वायुमण्डलमें न बनी रहती। ख़ैर यह तो हुआ; किन्तु ऐसा क्यों और कैसे हुआ, इस बातकी व्याख्या करना रह गया।

जल वाष्प दो या तीन तरहसे बन सकती है। प्रयोगशालामें उज्जन और ओषजनके मिश्रणमें विद्युत् चिंगारी चला कर पानी बना सकते हैं। पृथ्वीके ज्वालामुखीय युगमें ज्वालामुखियोंमेंसे उज्जन बहुत बड़े परिमाणमें निकलती रही होगी। उस ज़मानेमें बिजली भी बहुत कड़कती और गिरती रही होगी। इसीके कारण जैसे जैसे बिजली चमकती होगी उज्जन पानीमें परिवर्तित होती रही होगी। इस प्रकार जलका जन्म ज्वालामुखियोंकी ज्वाला, बिजलीकी चमक और वज्रपातके नादमें हुआ हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

परन्तु एक और कल्पना की जा सकती है कि जल भूगर्भमें बनता रहा हो और वहींसे बना बनाया भूपृष्ठ पर आया हो। गले हुए पदार्थ प्रायः ठंडे होने पर, यदि उनके चारों ओर उज्जन विद्यमान हो तो, उज्जनका शोषण कर लेते हैं। इस घटनाको औकल्यूज़न (Occlusion) कहते हैं। अतएव जब पृथ्वीकी चट्टानें द्रवसे ठोसमें परिणत हो रही थीं उन्होंने उज्जनका शोषण कर लिया होगा और इस प्रकार भूगर्भमें उज्जनकी अमित मात्रा विद्यमान थी और है। चट्टानोंने ठण्डे होते समय ओषजनका भी पान किया और उनमेंका लोहा आदि पदार्थ ओषिदमें बदल गये। इसी ओषिद और शोषित उज्जनकी क्रियासे क्रमशः पानी बनता रहा; जो ज्वालामुखियों, गरम झरनों और प्राकृतिक फव्वारों (Geyser) द्वारा धीरे धीरे ऊपर आता रहा। सम्भवतः ज्वालामुखियोंसे निकली हुई जलवाष्पसे ही भूतल परका पानी इकट्ठा हुआ है। कैसा आश्चर्य है कि आगको बुझानेवाले पानीकी उत्पत्ति आगसे भरे ज्वालामुखियोंमें हुई।

आजकल भी वाष्पकी मात्रा जो ज्वालामुखियोंमेंसे निकलती है बहुत बड़ी है; फिर उस समयका तो कहना ही क्या है जब पृथ्वीका समस्त पृष्ठ ज्वालामुखियोंसे इस प्रकार ढका हुआ था जैसे शीतलाके रोगीका शरीर आबलोंसे। ज्वालामुखीकी क्रिया कितनी प्रबल हो सकती है और उसमेंसे कितना गैसीय द्रव्य निकलकर बाहर जा सकता है और अखीरमें गायब हो जा सकता है, इस बातका अगर अंदाज़ा लगाना हो तो चन्द्रलोकके झरोखोंमें झांक कर उसका भीतरी दृश्य देख लीजिये। जितने बड़े बड़े समुद्र हैं उनके किनारे किनारे ज्वालामुखी स्थित हैं। और किसे मालूम समुद्रोंकी तलैटीमें कितने ज्वालामुखी किस समय आग और जल वाष्प उगलते रहे होंगे। प्रशान्त महासागरमें जो ज्वालामुखीय टापू हैं उनसे तो यह अनुमान होता है कि समुद्रीय ज्वालामुखी बड़े तेज और भयानक रहे होंगे। इसी बातका प्रमाण समुद्रकी तलैटीमें भी ज्वालामुखीय धूलिकी विद्यमानता है।

# छायाचित्रणमें स्पष्टीकरण अर्थात् चित्र निकालना

[ ले०—श्री० "सिद्धहस्त" ]

### २५—तेज़ प्लेट पर घनत्व और प्रकाशान्तर

डेवेलप हो जानेके समयके बारेमें एक और झूठी बातका निपटारा यहीं करके आगे बढ़ेंगे। अभी तक कितने लोग हैं जिनका विश्वास है कि तेज़ (Fast) प्लेट पर घनत्व और प्रकाशान्तर आते ही नहीं हैं, यह भी भूल है। बात यह है कि यदि मन्द (Slow) प्लेटके लिए डेवेलप हो जानेका समय दो मिनट है तो तेज़ प्लेटके लिए यह समय ११ मिनट भी हो सकता है। यदि दोनों प्रकारके प्लेटोंको ३ मिनट तक डेवेलप करें तो सुस्त प्लेटमें हद से ज़्यादा प्रकाशान्तर हो जायगा और तेज़ प्लेटमें इतना कम प्रकाशान्तर (और घनत्व) होगा कि वह किसी कामका न रहेगा। पर यदि चाहें तो तेज़ प्लेटमें भी अधिक समय तक डेवेलप करनेसे इतना प्रकाशान्तर ला सकते हैं कि यह भी किसी काम के लायक न रहे। इस लिए इस कारण तेज़ प्लेटका तिरस्कार करना ठीक नहीं। हां, और बातें हैं जिनके कारण तेज़ प्लेटके प्रयोग करनेमें अधिक सावधानीकी आवश्यकता पड़ती है। तेज़ घोड़ेकी सवारी करना गधेकी सवारीसे बहुत कठिन है, पर जो घोड़ेकी सवारी न कर सकें वह घोड़ेको दोष न दें, अपना ही दोष समझें।

### २६—हैपोका काम

ऊपर लिख आये हैं कि प्लेटको डेवेलप करनेके बाद उसपर पानी छोड़कर लगे हुए डेवेलपरको बहा देना चाहिये। फिर हैपोवाली तश्तरीमें प्लेटको छोड़ देना चाहिये। हैपोका काम है कि जिस भागको डेवेलपरने काला नहीं किया है उस भागके रासायनिक पदार्थोंको घुला डाले। यदि प्लेटको हैपोमेंसे एक या दो मिनटके बाद निकाल कर देखें तो पता चलेगा कि प्लेटका मैलापन मिटा जा रहा है: जहांपर पहिले सफेदी थी, पर आर पार साफ नहीं दिखलाई देता था वहांसे अब कुछ कुछ साफ दिखलाई देने लग गया है। यदि प्लेटके पीठकी जांच करें तो देखेंगे कि उधर अभीतक कहीं कहीं, या कदाचित् सभी जगह, दूधियापन है; अभी प्लेट स्थायी नहीं हुआ है। प्लेटको अभी कुछ देर तक हैपोमें और रहने दें। ५ मिनटके बाद प्लेटको निकाल कर फिर देखें तो कदाचित् पहिलेका दूधियापन अब सब जगहसे मिट गया होगा। यदि अभी प्लेटको निकाल, पानीसे धो, सुखा लें तो इस प्रकार बना हुआ नेगेटिव बहुत दिन नहीं ठहरेगा। जितनी देरमें दूधियापन दूर होता है कमसे कम प्लेटको हैपोमें उतनी ही देर तक और पड़ा रहना चाहिये। पर यदि बहुत देर तक प्लेट हैपोमें पड़ा रह जायगा तो भी प्लेटके घनत्वमें कमी न होगी। पर बहुत देर तक इस प्रकार पड़े रहनेसे प्लेटका जिलेटिन (Gelatine) कदाचित् सड़ने लगे या गरमीमें कदाचित पिघलने लगे। हैपोका घोल यदि बहुत फीका हो तो प्लेटके स्थायी होनेमें १० मिनटसे अधिक देर लगेगी और ठीक स्थायी न होनेका भी डर रहेगा। इसलिए एक बोतल पानीमें पाव सेरसे हैपो बहुत कम न हो। अधिक हैपो होनेसे कोई विशेष लाभ नहीं होगा, बहुत अधिक हैपोके रहनेसे प्लेटके जिलेटिनमें छाले (Blisters) पड़ जा सकते हैं। जान पड़ता है कि कुछ लोग हैपोके कामको नहीं समझते। बाबू मन्मथनाथ चक्रवर्ती कृत और बाबू श्याम सुन्दर दास, बी० ए०, द्वारा अनुवादित * "आलोक चित्रण अथवा फोटो

* अनुवादक महाशयको हम यहां हार्दिक धन्यवाद

ग्राफी" नामी पुस्तकके द्वितीय संस्करणमें लिखा है "यहांपर यह कह देना आवश्यक है कि डेवेलप करते समय ध्यानपूर्वक कार्य न करनेसे फिल्म मोटा पड़ जाता है। ऐसे मोटे फिल्मवाले नेगेटिवको स्थायी अर्थात् फिक्स करते समय अर्थात् डेवेलप करके उसे फिक्सिंग बाथ में धोते समय नियत परिमाणसे कुछ अधिक हैपोके मिला देने से ही प्लेटका फिल्म मोटा न पड़ेगा"। आगे चलकर लिखा है—"प्लेटके फिक्स्ड हो जानेपर भी उसे पुनः हैपोमें धोनेसे फिल्म पतला पड़ सकता है।" इस बातकी असत्यताका प्रमाण नौसिखे भी बहुत शीघ्र केवल एक बार कर देखने से ही पा सकते हैं। स्थायी करना कोई ऐसी क्रिया नहीं है जिसको नियत समयपर रोकना पड़ता है। स्थायी तो पूर्ण रीति से ही किया जाता है। जब हैपोके घोलमें ( Solution ) घुलने योग्य और कुछ पदार्थ न रह जाय तभी हाइपोके घोलसे प्लेटको निकालना चाहिये। डेवेलप और स्थायी किये हुए प्लेटको नेगेटिव कहते हैं।

### २७—नेगेटिव धोना

प्लेटके स्थायी हो जानेके बाद इसे धोना चाहिये। इसकी कई विधि हैं। सबसे सरल और अचूक यह है कि पहिले नेगेटिवके ऊपर लगे हुए हैपोको पानी छोड़कर बहा दीजिये। फिर एक साफ तश्तरीमें पानी रखकर उसमें नेगेटिवको छोड़ दीजिये। और तीन चार मिनट तक उसमें रहने दीजिये। जबतक किसी दूसरी तश्तरी या थालीमें साफ पानी रखकर ऊपर कहे हुए तीन चार मिनटके बीत जानेपर नेगेटिवको निकाल एक या दो मिनट तक निथार इस नये पानीमें तीन चार मिनटके लिये रख दीजिये: तब तक पहिली तश्तरीके पानीको फेंक, एक बार कुछ धोकर उसमें साफ पानी रख दीजिये। इसी प्रकार ७ या ८ पानी बदलनेके बाद नेगेटिवमें सोखा गया सभी हैपो साफ हो जायगा। यदि चार या पांच नेगेटिव एक साथ ही धोना हों तो भी ऊपरकी लिखी रीतिसे काम कर सकते हैं और जितना एक नेगेटिवके धोनेमें समय लगता है उतना ही समय चार नेगेटिवके धोनेमें भी लगेगा। बाज़ारमें नेगेटिव धोनेके लिए विशेष बरतन मिलते हैं और इनमें एक एक दरजन नेगेटिव साथ ही धोये जा सकते हैं। यदि एक ही नेगेटिव धोना हो तो पानीके कलके नीचे रख पानीका कल धीरेसे खोल देनेसे भी नेगेटिव धोया जा सकता है (चित्र १७) पर यह रीति बहुत अच्छी नहीं है*। धोनेके विषयमें यह स्मरण रखना चाहिये
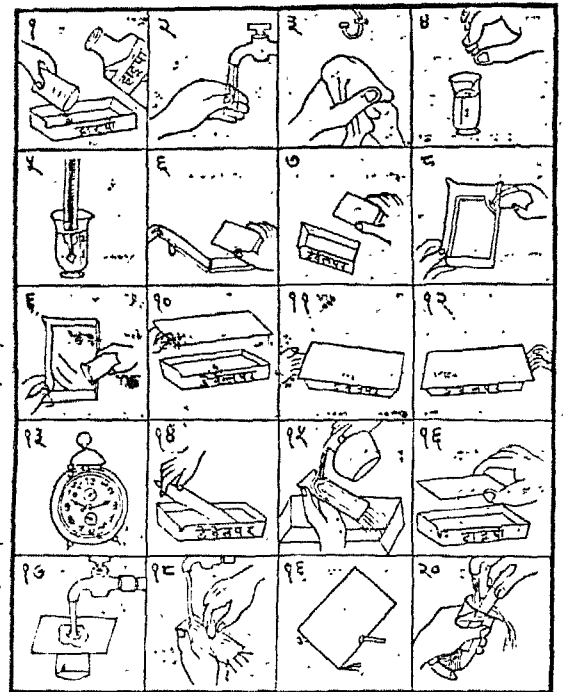
प्रकट करते हैं। उनकी पुस्तकसे हमने फोटोग्राफी सम्बन्धी कई एक हिन्दी शब्दोंको पाया है।

* फिल्मके ऊपर पानीकी धार न पड़नी चाहिये नहीं तो उसके उखड़ जाने का भय रहता है। —सं०

कि अधिक पानीसे या अधिक देर तक धोना उद्देश्य नहीं है, बल्कि हाइपोको भली भांति निकाल देना ही मुख्य उद्देश्य है, और यह बार बार पानी बदलने और विशेष कर नेगेटिव पर लगे हुए पानी-को सब निथार करके दूसरे पानीमें रखनेसे ही होना है। जहां तक हो सके नेगेटिवके धोनेका काम शीघ्र समाप्त करना चाहिये, क्योंकि दो तीन घंटे पानीमें पड़े रहनेसे जिलेटिन (Gelatine) के पिघल जानेका डर रहता है, विशेष करके गर्मीके दिनोंमें।

चाहे किसी प्रकारसे नेगेटिव धोयी जाय, देखनेसे ज्ञात पड़ेगा कि पानीकी सब गर्द या बालू के कण और कुछ सफेद सफेद कण भी नेगेटिव-पर चिपक गये हैं। इनके हटानेके लिए थोड़ी सी बढ़िया रुई जिसमें एक भी बिनौला या तिनका न हो (प्रत्येक दवाखानेमें ऐसी रुई बिकती है) ले पानीमें भिगो ली जिये। यदि पानीका कल न हो तो किसीसे नेगेटिवपर धीरे धीरे पानी छोड़नेके लिए कहिये और उसी समय आप सावधानीके साथ भीगी हुई रुईसे फुलफुले हाथसे नेगेटिवको धोइये (चित्र १८)। इस प्रकार नेगेटिव बहुत कुछ साफ हो जायगा, परन्तु इसपर ध्यान रखना चाहिये कि किनारेसे टूटकर कोई जिलेटिनका टुकड़ा बीचमें न आकर चिपक रहे। तब सूखनेके लिए नेगेटिवको रख सकते हैं।†

२८—सफाई इत्यादि

ऊपरकी क्रियाओंमें कई एक बातों पर ध्यान देना चाहिये। एक तो यह कि जब कभी प्लेटको उठावें तो कोर पकड़कर उठावें, (चित्र ६, ७, १०, १५, १६, और १८) नहीं तो नेगेटिव पर अँगुलियोंके धब्बे पड़ जायँगे। दूसरे, जब कभी प्लेटको तश्तरीमें रखें तो जिधर जिलेटिन लगा है वह पृष्ठ ऊपर रहे। तीसरे, नख इत्यादिसे प्लेटके किसी भागका जिलेटिन न उपड़ने पावे, क्योंकि इसका उपाय फिर पीछे नहीं हो सकता। चौथे, स्मरण रखना चाहिये कि जिलेटिनकी झिल्ली जो प्लेटपर है वह सूखे रहनेपर भी बड़ी कोमल होती है, पानीमें भीग जानेपर और भी अधिक कोमल हो जाती है इसीलिए इसे कभी असावधानीसे न छूना चाहिये और रुईसे बहुत नर्मीसे पोंछना चाहिये। पांचवें, धोने इत्यादि का पानी खूब ठंढा होना चाहिये, नहीं तो प्लेट परका जिलेटिन गल जा सकता है। छठवें, सफाई रखनी चाहिये। सफाईके विषयमें तो कई पेज लिखे जा सकते हैं, पर यहांपर हम केवल इतना ही कहेंगे कि सफाई न रखनेसे सब परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। विशेष कर हैपोको अपनी तश्तरीको छोड़ और कहीं नहीं जाने देना चाहिये। यदि हैपोका एक कण या हैपोके घोलकी एक बूंद भी प्लेटपर या डेवेलपरमें पड़ जाय तो प्लेटका खराब हो जाना निश्चय ही समझना चाहिये। इसलिए हैपोको छूनेके बाद हाथको पानीसे अवश्य धो भी लेना चाहिये; केवल तौलि-यासे हाथ पोंछनेसे काम न चलेगा। यदि हैपोका घोल कहीं गिर पड़े तो उस स्थानको धोकर पोंछ देना चाहिये। जिस तश्तरीमें एक बार भी हैपो रखा गया है, उसमें फिर डेवेलप करना अच्छा नहीं। पानी, तश्तरी, ग्लास, इत्यादि सबको खूब साफ रखना चाहिये (चित्र २०)।

२९—नेगेटिवको सुखाना

नेगेटिवको सुखानेके लिए बाज़ारमें ड्राइङ्ग रैक (Drying rack) मिलते हैं। प्लेट सूखनेके लिए इस पर रखा जा सकता है; पर हम ऐसी सम्मति नहीं देते। यदि दीवालमें चार चार अंगुल पर दो इंच लम्बे कुछ कील इस प्रकार गाड़ दी जायँ कि दीवालसे आध इंच या कुछ अधिक निकली रहें, तो प्लेटको इन्हीं पर ऐसे रख सकते हैं कि उनका एक कोना दीवालको

† रुईसे साफ करनेके पहले फिटकरीके घोलमें नेगे-टिवको ५ मिनट तक रखें तो हैपो भी निकल जायगा और फिल्म कड़ी हो जायगी। —सं०

छूता हुआ नीचेकी ओर रहे ( चित्र १६ )। प्लेट पर जिधर शीशा है वही पृष्ठ दीवालकी ओर रहे। इस प्रकार नेगेटिवके रखनेसे ऊपरके गिरे धूलके कण शीशेकी ही ओर पड़ेंगे। पर नेगेटिवको ऐसे स्थानमें सूखनेके लिए रखना चाहिये जहां गर्द न हो और जहां वायु आती जाती हो, पर गरमी न हो। वायुके आने जानेसे नेगेटिव शीघ्र ( घंटे दो घंटेमें ) सूखता है *। और भी शीघ्र सुखानेके लिए आंच नहीं दिखला सकते; क्योंकि भीगा नेगेटिव पिघल जायगा। आगे चल कर नेगेटिवके बहुत शीघ्र सुखानेकी विधि दी जायगी।

१०—शुद्ध नेगेटिवका रूप

यहां पर यह लिख देना भी उचित जान पड़ता है कि ठीक नेगेटिव देखनेमें कैसा होता है। पहिली बात तो यह है कि नेगेटिवके किनारे जो कि डार्क-स्लाइड ( Dark-slide ) में दबे थे और जिन पर लेन्स ( Lens ) द्वारा आई हुई रोशनी कुछ भी न पड़ी थी उनको सादे शीशेकी भांति स्वच्छ रहना चाहिये। दूसरे, नेगेटिवमें एक दो बहुत ही छोटे स्थानोंको छोड़ कोई भी जगह सादे शीशेकी भांति स्वच्छ न होनी चाहिये। कुछ न कुछ ब्यौरा (Detail) सभी जगह होना चाहिये (हां, उन स्थानोंको छोड़ जहां विषय ( Subject ) में भी कुछ ब्यौरा न था )। नेगेटिवमें किनारोंको छोड़ और किसी स्थानमें सादे शीशेकी भांति स्वच्छता रहनेकी अच्छे नेगेटिवके लिए आवश्यकता नहीं। कालेसे काला भाग इतना गाढ़ा हो कि प्रकाशान्तर ( Contrast ) के बारेमें कुछ शिकायत न हो। यदि नेगेटिवमें एक भी बड़ा भाग ऐसा हो जो बिल्कुल साफ है और जहां ब्यौरा नहीं है तो जान लेना चाहिये कि एक्सपोज़र कम था।

११—"धुन्ध"।

यदि किनारे भी कुछ काले हो गये हैं या नेगेटिव बहुत गाढ़ा हो गया है और जो भाग सबसे साफ है उसमें भी कालापन अधिक है, या यदि दोनों दोष उपस्थित हैं तो हम कहेंगे कि नेगेटिव "धुन्धला" ( Fog ) हो गया है। किनारोंका काला होना और उसीके साथ बीचके भागोंमें नेगेटिवका ठीक रहना तभी होता है जब प्लेटका बहुत दिनके रखनेसे या अनुचित स्थानमें रखनेसे बिगड़ना आरम्भ होता है। प्लेट जब बिगड़ने लगता है तब किनारोंसे बिगड़ना आरम्भ होता है। इसको छोड़ धुन्धके कई एक कारण हैं। इन कारणोंके एक समूह ऐसे हैं जिनसे किनारे और बीचके भाग सभीमें धुन्ध उत्पन्न होता है। दूसरा समूह ऐसा है जिससे किनारे तो साफ रहते हैं पर और सब भाग धुन्धले हो जाते हैं। यह सब नीचे लिखे जाते हैं।

(क) पहिला समूह—यह कारण जो नेगेटिवके सभी स्थानों पर प्रभाव डालते हैं।

( १ ) प्लेटपर सफेद रोशनीका लग जाना। अँधेरी कोठरीमें कहींसे सफेद रोशनी आती हो या डार्क-स्लाइड ठीक न हो या डार्क स्लाइड और कैमरे ( Camera ) के जोड़से रोशनी भीतर जाती हो तो ऐसा हो सकता है।

( २ ) लाल रोशनीका ठीक न होना।

( ३ ) लाल रोशनीके ठीक होते हुए भी, ऐसी रोशनीमें अनुचित समय तक प्लेटको रखना।

( ४ ) डेवेलपरमें सोडा कारबोनेट ( Sodium-Carbonate ) या कास्टिक सोडा ( Caustic soda ) परिमाणसे बहुत अधिक छोड़ना।

( ५ ) डेवेलपरका यथोचित ठंढा न रहना।

( ६ ) भली भांति स्थायी होनेके पहिले ही नेगेटिवको अँधेरी कोठरीके बाहर लाना।

( ७ ) बहुत अधिक समय तक डेवेलप करना जैसा कि लोग बहुत कम एक्सपोज़र पाये हुए प्लेटको कभी कभी इस आशासे करते हैं कि कदाचित् चित्र उभड़ आवे।
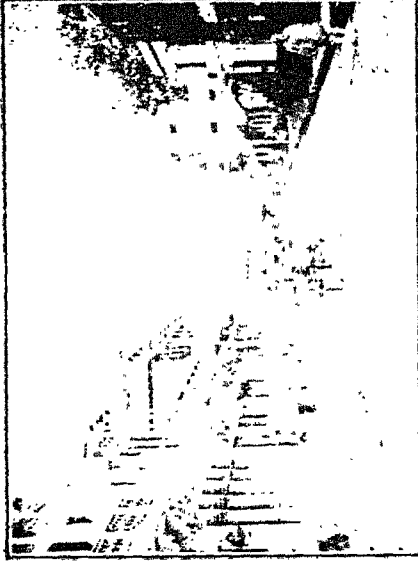
* यदि नेगेटिवका कोई विशेष भाग और भागोंसे बहुत देरमें सूखे तो नेगेटिवमें चिन्ह पड़ जानेका भय रहता है।

चित्र १८—ठीक डेवेलप किये हुए नेगेटिव से।

चित्र २०—अधिक डेवेलप किये हुए नेगेटिव से कम समय तक छापा गया फ़ोटो; उच्च प्रकाशित ब्योरे का अभाव।

चित्र १९—कम डेवेलप किये हुए नेगेटिव से।

चित्र २१—अधिक डेवेलप किये हुए नेगेटिव से। अधिक समय तक छापा गया फ़ोटो; परछाईंवाले ब्योरे का अभाव।

( ८ ) बहुत दिन तक या अनुचित स्थानमें प्लेटको रखना।

(ख) दूसरी समूह उन कारणोंका जो किनारों पर प्रभाव नहीं डालते।

( १ ) अधिक एक्सपोज़र * ।

( २ ) लेन्सका साफ़ न होना, जैसे गर्द, नमी, अँगुलियोंके धब्बे, खरोंच इत्यादिका रहना।

( ३ ) कैमेरेके भीतर गर्द, जो लेन्स द्वारा आई हुई रोशनीको फैलाकर प्लेटपर पहुँचा देती है।

( ४ ) कैमेरेके भीतरके भागका उचित रीतिसे काला न रहना, जिससे लेन्स द्वारा आई हुई रोशनी सोख लिये जानेके बदले फैल कर प्लेट तक पहुँच जाती है।

( ५ ) कैमेरेमें कहींसे रोशनीका जाना, जैसे कि भाथी ( Bellows ) में एक दो छोटे छेद द्वारा।

( ६ ) लेन्सपर धूप या तेज़ रोशनीका पड़ना।

( ७ ) लेन्स पर ऐसी वस्तुओंकी रोशनीका पड़ना जिनका फोटो नहीं खींचा जा रहा है। लेन्सपर गहरे गिलासके आकारका चोंगा (hood) रहनेसे यह दोष उत्पन्न नहीं होता है।

( ८ ) विषय या स्वयं कैमेरेके हिल जानेसे भी नेगेटिव ऐसा हो जा सकता है कि देखनेवालेको धुन्धका भ्रम हो जाय।

( ९ ) किसी किसी विशेष विषयके लिए धुन्धसे बचनेके वास्ते बैकड ( Backed ) प्लेटकी आवश्यकता होती है। ऐसे प्लेटकी पीठ पर एक प्रकार का काला पदार्थ लगा रहता है।

थोड़ेसे धुन्धके उपस्थित रहने पर भी नेगेटिवसे बढ़िया फोटो छप सकता है, पर अधिक धुन्ध रहनेसे प्रकाशान्तर कम हो जाता है और उच्च प्रकाश ( highlights ) में ब्यौरा ( detail ) मिट जाता है। थोड़ी ही सावधानीसे सब नेगेटिव धुन्धसे बचा लिये जा सकते हैं, और हम उन महाशयके वचनका समर्थन करते हैं जिन्होंने लिखा है—"जबतक कि प्लेट बिना धुन्ध पैदा हुए डेवेलप न किया जा सके, तबतक दूसरी बातोंमें अभिज्ञता प्राप्त करनेकी चेष्टासे कुछ लाभ नहीं होगा। यह प्रथम उद्देश होना चाहिये और प्रत्येक बार इसमें सफलता होनी चाहिये। *

१२—गरमीके दिनोंमें

गरमीके दिनोंमें डेवेलपर, हाइपो और धोनेके पानीको ठंडा रखनेमें विशेष कठिनाई होती है। पर यदि बर्फसे डेवेलपर इत्यादि ठंडा भी रखा गया तो सूखते समय नेगेटिव पर लगा हुआ जिलेटिन या तो पिघल कर बह चलता है या यदि यहां तक दुर्दशा न हुई तो कई एक जगह जिलेटिनमें गड्ढे ( pits ) पड़ जाते हैं, जिनके कारण नेगेटिव नष्ट हो जाता है। इसलिए एक ऐसे रासायनिक पदार्थकी आवश्यकता पड़ती है जो जिलेटिनको कड़ा कर दे। इन पदार्थोंमें फ़ारमैलिन* ( Formalin ) सबसे बढ़ कर है। एक भाग फारमैलिन और ५० भाग पानी मिला कर यदि किसी प्लेटके ऊपर १० मिनटके लिए छोड़ दें तो उसका जिलेटिन इतना कड़ा हो जायगा कि खौलते हुए पानीमें भी न पिघलेगा। गरमीके दिनोंमें दो औंस ठंडे पानीमें ८ या १० बूंद फारमैलिन मिला कर अँधेरी कोठरीमें रख लेते हैं और डेवेलप करनेके पहिले ही इस फारमैलिनको प्लेट पर छोड़, तश्तरी ढक, तीन या चार मिनट तक तश्तरी हिलाते जाते हैं। इसके बाद प्लेटको एक मिनट तक ठंडे पानीसे धो सब लगे हुए फारमैलिनको बहा देते हैं। फिर ऊपर लिखी हुई रीतिसे डेवेलप करते हैं। इस समय नौसिखिये भी एक औंससे

* बहुत अधिक एक्सपोज़रसे किनारे भी काले हो जाते हैं।

* "How to take photographs" से। यह पुस्तक प्रत्येक क्लिटो कैमेरे ( Klito Camera ) के साथ मुफ़्त मिलती है।

* इसके १०० भागमें ४० भाग शुद्ध फारमैल्डिहाइड ( Formaldehyde ) और शेष पानी रहता है। दवा खानोंमें भी बिकता है, सस्ता मिलता है।

अधिक डेवेलपर लेनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि प्लेट भींगा है और थोड़ा भी डेवेलपर आप ही आप सब जगह बराबर पहुंच जायगा। यदि फारमैलिनका अधिक अंश डेवेलपरमें आ जायगा तो प्लेट धुन्धला हो जायगा, इसलिए फारमैलिनको धोकर बहा देना अति आवश्यक है। डेवेलपरको भी ठंडा ही रखना चाहिये, क्योंकि यद्यपि जिलेटिनके पिघलनेका कोई भय नहीं है तो भी गरम डेवेलपरसे प्लेट धुन्धला हो जायगा। यदि डेवेलप करते करते डेवेलपरके ताप-क्रम बढ़ जानेका भय है तो डेवेलपरवाली तश्तरीको एक ठंढे पानीसे भरी बड़ी तश्तरीमें रखना चाहिये। चाहे गरमीके दिन हों चाहे जाड़के, डेवेलप करते समय डेवेलपरके ताप-क्रमको न बदलने देना चाहिये, नहीं तो डेवेलप हो जानेके समयमें भी गड़बड़ हो जायगी। गरमीके दिनोंमें ऐसे डेवेलपरका प्रयोग नहीं करना चाहिये जिसमें कास्टिक सोडा ( Caustic soda ) पड़ा हो, क्योंकि इससे जिलेटिन बहुत नर्म हो जाता है। गरमीके दिनोंमें प्लेट सबेरे ही डेवेलप कर लिया जा सकता है और बर्फका प्रयोग न कर केवल सुराहीमें रखा हुआ बासी पानी काममें लाया जा सकता है। ऐसा करनेसे और फारमैलिनका बराबर प्रयोग करनेसे एक भी कठिनाई नहीं पड़ती है। डेवेलप करनेके बादकी क्रिया सब वही हैं जो जाड़के दिनोंके लिए ऊपर लिख आये हैं।

३३—नेगेटिवको शीघ्र सुखाना

कभी कभी नेगेटिवसे बहुत शीघ्र फोटो छापने की आवश्यकता हो जाती है। ऐसे समय चाहें तो भींगे ही नेगेटिवसे एक विशेष रीतिसे फोटो छाप सकते हैं, पर चाहें तो नेगेटिवको बहुत शीघ्र सुखा सकते हैं। तीन तरकीबें नीचे दी जाती हैं।

(१) धोये हुए नेगेटिवपर लगे हुए सब जलको निथार थोड़ीसे मेथिलेटेड स्पिरिट * (Methylated spirit) में एक या दो मिनट तक छोड़ देते हैं, फिर नेगेटिव पर लगी हुई सब स्पिरिटको निथार थोड़ीसे ताज़ी मेथिलेटेड स्पिरिटमें २ मिनट के लिए रख देते हैं। फिर इसी प्रकार एक बार और स्पिरिटसे धो नेगेटिवको हाथमें ले इधर उधर हिलाकर शीघ्र सुखा लेते हैं।

(२) ५० भाग पानी और १ या २ भाग फारमैलिन ( Formaline ) में १० मिनट तक एक बार पानीसे धोये नेगेटिवको रख और कभी कभी तश्तरीको हिला नेगेटिवके जिलेटिनको कड़ा कर लेते हैं। फिर ऐसे नेगेटिव पर ६ या ७ बार खौलते पानीको छोड़ नेगेटिव धो लेते हैं और आंच दिखा कर या धूपमें रखकर नेगेटिवको शीघ्र सुखा लेते हैं।

(३) धोये हुए नेगेटिवको ऊपरकी रीतिसे फारमैलिनमें कड़ाकर आग या धूपकी सहायतासे शीघ्र सुखा सकते हैं। चाहें तो नेगेटिवको नीचेकी विधिसे बहुत शीघ्र धो सकते हैं।

३४—हैपो मारक

कई एक रासायनिक पदार्थ जिनको हम हैपो-मारक ( hypo-eliminator ) कहेंगे हैपोका नाशकर कुछ दूसरे ऐसे रासायनिक पदार्थ उत्पन्न कर देते हैं जो नेगेटिवके लिए हानिकारक नहीं हैं या हानिकारक हैं भी तो बहुत कम। इस लिए शीघ्र नेगेटिव धोनेकी आवश्यकता हो, पर नेगेटिवका बहुत दिन तक रखना परम आवश्यक नहीं हो, तो किसी हैपो मारकका प्रयोग कर सकते हैं। सबसे सस्ता और सभी स्थानमें मिलने वाला हैपो-मारक पोटासियम परमैङ्गनेट * ( Potassium permanganate ) है। एक ५ भाग इसका १० भाग पानीमें घोलकर रख सकते हैं। यह घोल बहुत दिन तक चलेगा। एक औंस पानीमें इसकी एक या दो बूंद छोड़ देनेसे पानी

* प्रायः सभी शहरोंमें वार्निश या दवा बेचनेवालोंकी दूकान पर बिकता है।

* सांपके काटने और हैजेके रोगमें काम आनेवाला यह पदार्थ दवा खानों में बहुत सस्ता मिलता है।

सुन्दर बैंजनी रंगका हो जायगा। इसमें थोड़ेसे भी हैपोके पड़ जानेसे यह रंग जाता रहेगा। हैपोके घोलसे निकाल नेगेटिवको पहिले एक मिनट तक सादे पानीसे धोना चाहिये; पीछे परमैङ्गनेटके रँगे पानीसे धोना चाहिये। जब नेगेटिवको ऐसे पानीमें छोड़नेसे पानीका रंग न उड़े तो जानना चाहिये कि नेगेटिवमें हैपो अब नहीं है और एक बार फिर सादे पानीसे धो नेगेटिव सुखा लिया जा सकता है। ध्यान रखना चाहिये कि पानीका रंग कुछ देरमें आप ही आप मिट जायगा, पर यदि नेगेटिवमें हैपो है तो वह रंग तुरन्त मिट जायगा। इतना परमैङ्गनेट न छोड़ना चाहिये कि पानीका रंग गाढ़ा हो जाय। रंग बहुत फीका ही होना चाहिये। इस विधिसे तीन या चार मिनटमें सूखने के लिए नेगेटिव तैय्यार हो जायगा।

३५—फिल्म

हमने अभी तक प्लेट ही डेवेलप करनेके विषयमें लिखा है, पर यदि फिल्म (film) डेवेलप करना हो तो ऊपरकी सब बातें व्यर्थ न जांयगी। केवल फिल्मके बहुत लम्बा और लचीला होनेके कारण और इसके दोनों ओर जिलेटिन रहने से ऊपरकी रीतिमें थोड़ा सा भेद हो जायगा। एक गहरी तश्तरीमें ठंडा पानी रख फिल्मके एक सिरेको दाहिने और दूसरेको बांयेमें पकड़ कर पहिले एक हाथवाले सिरेको पानीके भीतर छोड़ ऊपर उठाते हैं, और इसी समय दूसरे हाथको नीचा करते जाते हैं, जिसमें कि फिल्मका सभी भाग पानीसे तर हो जाय। फिर दूसरे हाथको ऊपर और पहिलेको नीचे इस प्रकार करते जाते हैं कि अब भी फिल्मका एक भाग सदा पानीमें डूबा रहे। गरमीके दिनोंमें पहिले फीके फारमैलिनमें फिल्मको तर करना चाहिये और तब पानीमें धोना चाहिये। जब इस प्रकार फिल्मको पानीमें तर करते एक या दो मिनट बीत जायँ और फिल्म नर्म हो जाय तो डेवेलपरमें भी इसी प्रकार फिल्मको आगे पीछे खींच कर नियत समय तक डेवेलप करना चाहिये। कहनेकी आवश्यकता
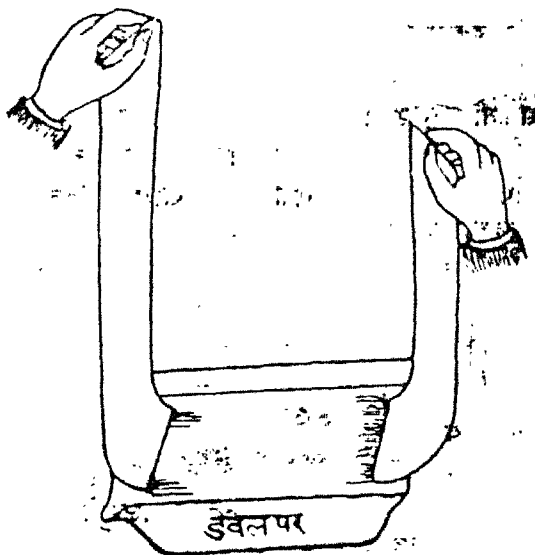
चित्र १७—फिल्म डेवेलप करनेकी विधि

नहीं है कि यह सब अँधेरी कोठरीमें किया जाता है और क्योंकि यहांपर तश्तरीको नहीं ढक सकते, इसलिए लाल रोशनीको इतना धीमा रखना चाहिये कि केवल इसीका पता चल जाय कि हम क्या कर रहे हैं। फिर पानीमें इसी प्रकार फिल्मको धोना चाहिये। अन्तमें हैपोके घोलमें भी इसी प्रकार फिल्मको आगे पीछे १० मिनट तक कर स्थायी करना चाहिये। तब अँधेरी कोठरीके बाहर आ फिल्मको घंटे आध घंटे धो कर सूखनेके लिए टांग सकते हैं; पर ऊपरके सिरेको छोड़ फिल्मके किसी भागको दीवाल इत्यादिसे न छूते रहना चाहिये।

३६—टैङ्क

ताप-क्रम और समय नापकर डेवेलप करनेकी विधिसे पूरा लाभ उठाने और ६ या १२ प्लेटोंको एक साथ ही डेवेलप करनेके लिए टैङ्क

( Tank ) बिकते हैं। यह एक निकल ( Nickel ) की कलई किया हुआ पीतलका बक्स होता है, जिसमें ६ या १२ प्लेट इस प्रकार रखे जा सकते हैं कि प्लेटकी झिल्ली एक दूसरेसे अलग रहे। ढकना बंद कर देनेसे भीतर रोशनी नहीं जा सकती। प्लेटको इसमें रख इसको बाहर ला सकते हैं, फिर फीका डेवेलपर बना कर, उसका ताप-क्रम नाप टैङ्कके एक छेदको खोल डेवेलपर-को भीतर छोड़ देते हैं और छेदको फिर उसकी टोपीसे बंद कर देते हैं। इस छेदके द्वारा डेवेलपर भीतर जा सकता है, परन्तु रोशनी नहीं जा सकती। टैङ्कको कभी कभी उलटना पड़ता है, जिसमें डेवेलपर एक ही जगह पर स्थिर न पड़ा रहे। नियत समयके बीतने पर प्लेटको धो स्थायी इत्यादि पहिलेकी रीतिसे करते हैं। ऐसे टैङ्कके खरीदनेकी सम्मति हम उन्हींको देंगे जिनके पास रुपयेकी कमी नहीं है और जिन्हें बारह बारह या छः छः प्लेटोंको साथ ही डेवेलप करना पड़ता है।* फिल्मके लिए भी डेवेलप करनेकी मशीन बिकती है। इसका भी सिद्धान्त वही ताप-क्रम और समय नापनेका है। प्रत्येक मशीनके साथ प्रयोग करनेकी विधि छपी मिलती है। इसलिए उनके बारेमें यहां लिखनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

### १७—पायरो सोडाका नुसखा

खंड १९ में लिखी हुई प्रतिज्ञाको अब हम पूरा करेंगे। नीचे लिखा हुआ नुसखा "दि ब्रिटिश जनरल फोटोग्राफिक अलमनक, सन् १९२१ ई०" ( The British Journal Photographic Almanac, 1921 ) के आधार पर लिखा गया है।

नीचे लिखे नुसखोंके अनुसार दो घोल तैय्यार कीजिये।

* चार क्वार्टर प्लेटें ( Quarter-Plates ) को एक बड़े होल-प्लेट ( whole-plates) की तश्तरीमें रखकर भी एक साथ ही डेवेलप कर सकते हैं।

१—सोडा सलफाइटकी सूखी बुकनी ( Soda Sulphite, dry ) २ औंस या ४ भाग।
पोटासियम मेटा-बैसलफाइट ( Potash metabisulphite ) ½ औंस या १ भाग।
पानी, ३० औंस या ६० भाग।
( यदि बन पड़े तो ऊपरके घोलको एक दो मिनटके लिए खौला लेना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे इसकी अधिक समय तक ठहरनेकी शक्ति बढ़ जाती है। ठंड होने पर पायरो मिला देना चाहिये। )
पायरो ( चाहे रुईके रूपवाला या चाहे रवेदार Pyro, sublimed or cryst. ) २४० ग्रेन अर्थात् आधा औंस, २० ग्रेन; या १$\frac{1}{10}$ भाग

२—सोडा कारबोनेटकी सूखी बुकनी ( Soda Carbonate, dry ) २ औंस या २ भाग
पोटासियम ब्रोमाइड ( Potass. Bromide ) ५० ग्रेन या $\frac{1}{8}$ भाग
पानी इतना कि घोल हो जाय २५ औंस या २५ भाग

एक भाग घोल नम्बर १; एक भाग घोल नम्बर २ और दो भाग पानी मिलानेसे डेवेलपर तैय्यार होता है।

घोल नम्बर १ यदि रबरकी कागसे बंद शीशी-में रखा जाय तो एक या डेढ़ महीने तक चलेगा; घोल नम्बर दो बरसों चलेगा। यदि थोड़ा ही डेवेलपर बनाना हो तो

| | | |
|---|---|---|
| १—सोडा सलफाइट ( सूखी बुकनी ) | ... | ३० ग्रेन |
| पोटासियम मेटा-बैसलफाइट | ... | ८ ग्रेन |
| पायरो | ... ... | ८ ग्रेन |
| पानी | ... ... ... | १ औंस |
| २—सोडा कारबोनेट | ... ... | ३५ ग्रेन |
| पोटासियम ब्रोमाइड | ... | २ ग्रेन |
| पानी | ... ... ... | १ औंस |

एक भाग घोल नम्बर १, एक भाग घोल नम्बर २ और दो भाग पानी मिलानेसे डेवेलपर तैय्यार होजाता है। इसी नुसखेके हिसाबसे इससे
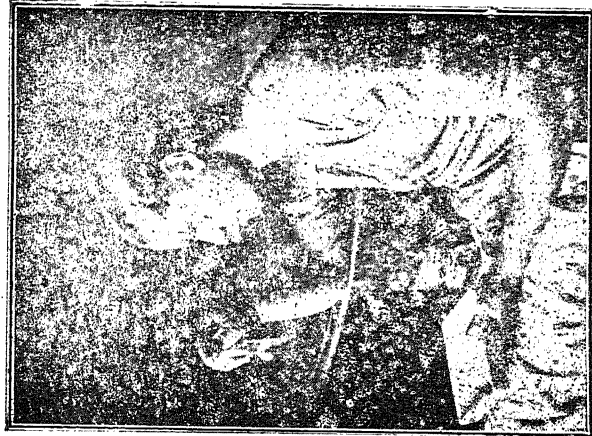
कम या अधिक जितना चाहें उतना डेवेलपर बना सकते हैं।

ऊपरके नुसखोंमें यदि रवेदार ( crystalline ) सोडा सलफैटका प्रयोग करें तो लिखी हुई तौलका दुगुना या यदि रवेदार सोडा कारबोनेट-का प्रयोग करें तो लिखी हुई तौलका ढाई गुना छोड़ेंगे।

ऊपरकी रीतिसे बने डेवेलपरका गुणक ६ है। डेवेलप हो जानेका समय नीचेकी सारिणी * से जाना जा सकता है—

| डेवेलपरका ताप क्रम | इल्फोर्ड आर्डिनैरी | इल्फोर्ड एम्प्रेस | इल्फोर्ड ज़ेनिथ | इल्फोर्ड स्पेशल रैपिड |
|---|---|---|---|---|
| ५५° फा | ६¼ मिनट | ८ मिनट | १० मिनट | १२ मिनट |
| ६०° " | ५¼ " | ६¾ " | ८½ " | १० " |
| ६५° " | ४¼ " | ५¾ " | ७ " | ८½ " |
| ७०° " | ३½ " | ४¾ " | ५¾ " | ७ " |
| ७५° " | ३ " | ४ " | ५ " | ६ " |
| ८०° " | २½ " | ३¼ " | ४¼ " | ५ " |

( Wellington Ordinary ) का समय इल्फोर्ड आरडिनैरी ( Ilford Ordinary ) के समान है। वेलिङ्गटन एन्टीस्क्रीन ( Anti-Screen ) या स्पीडी ( Speedy ) का समय इल्फोर्ड एम्प्रेस (Emprees) के समान है। वेलिङ्गटन एक्सट्रा स्पीडी ( 'Xtra Speedy ), ईस्टमैन एक्सट्रारैपिड ( Eastman Extra Rapid ) या रैपिड ( Rapid ) और कोडक ( Kodak ) और एन्साइन ( Ensign ) फिल्मके डेवेलप होनेका समय इल्फोर्ड ज़ेनिथ ( Zenith ) के समान है।

३८—दोष और उनकी औषध

ठीकसे अधिक या कम समय तक डेवेलप किये हुये नेगेटिवसे निराश होकर उन्हें फेंक नहीं देना चाहिये। पहिले तो उन्हें नर्म या विगरस गैसलाइट ( Soft या Vigorons Gaslight ) पर छाप कर देखना चाहिये। इसके अतिरिक्त उन्हें इन्टेन्सिफाई ( Intensify ) और रिड्यूस (Reduce) भी कर सकते हैं। इन क्रियाओंसे बहुत कुछ सुधार हो सकता है, पर याद रखना चाहिये कि लाचारीमें किसी प्रकार काम चलानेके लिए ऐसा करते हैं। इनके लिए भी अभ्यास चाहिये। नौसिखोंके लिए यह नहीं हैं। उन्हें दूसरे प्लेटपर एक्सपोज़र दे केवल डेवेलप करनेके समय पर ही ध्यान दे कर नेगेटिवको ठीक बनाना चाहिये। कम या अधिक एक्सपोज़र पाये हुए प्लेटके लिए तो हमारी भी सम्मति चाइल्ड बेली ( Child Bayley ) की सी है "As for plates which are under or over-exposed, they are best reduced with a hammer," * अर्थात् "कम या अधिक एक्सपोज़र पाये हुए प्लेट सबसे अच्छी तरह ठीक किये जा सकते हैं—हथौड़ेसे"। और दोषोंके वर्णन, उनके उपाय, इन्टेन्सिफाई और रिड्यूस करनेकी विधि इत्यादि लिखनेके लिए यहांपर अवकाश नहीं है, इनका विवरण पीछे फिर दिया जायगा।

३९—काले मनुष्योंको गोरा बनाना

मुझे आशा है कि इस खंडको लोग विशेष चावसे पढ़ेंगे। क्योंकि सभी फोटोग्राफरोंको ऐसे स्त्री या पुरुष अवश्य मिलते हैं जो काले रंगके होते हुए भी फोटोमें अपने चेहरेको गोरे रंगका चाहते

* इसको हमने तैयार किया है।

* "The Complete Photographer" से।

हैं। ऐसे फोटोग्राफके बनानेमें विशेष कठिनाई नहीं पड़ती। कुल भेद अधिक समय तक डेवेलप करनेमें हैं; पर स्मरण रखना चाहिये कि चेहरे पर जो साया पड़ता हो वह बहुत ही फीका हो, क्योंकि अधिक डेवेलप करनेसे यह साया अधिक गाढ़ा हो जायगा। दूसरी बात यह है कि कपड़े इत्यादि चेहरेसे हलके रंगके न हों, नहीं तो उनमें ब्यौरा (detail) छापना कठिन हो जायगा। फिर, एक्सपोज़र भी ठीक या कुछ अधिक ही हो; नहीं तो चित्र बहुत बुरा लगेगा। किसी काले मनुष्य-का चित्र तो मेरे पास इस समय नहीं है पर नेगे-टिवको साधारणसे दूने समय तक डेवेलप करनेसे क्या किया जा सकता है यह आप "भोले पनकी मुसकराहट" वाले चित्रसे पता लगा सकते हैं।

४०—समाप्ति

यद्यपि नेगेटिव बनानेके विषयमें अभी बहुत कुछ लिखा जा सकता है तो भी मुझे इस लेखको विस्तार भयसे यहीं समाप्त करना पड़ता है। अब यह प्रत्यक्ष हो गया होगा कि "ब्यौरा" और "प्रकाशान्तर" ही डेवेलप करनेकी क्रियाके प्राण हैं; पर अभाग्यवश इनके बदले दूसरे उचित शब्द हम न खोज सके। तिसपर भी हम आशा करते हैं कि पाठकगण हमारे अभिप्रायको समझ गये होंगे और हमको विश्वास है कि उन्होंने देख लिया होगा कि आजकल डेवेलप करनेकी क्रियासे सब कठिनाई और बखेड़े दूर कर दिये गये हैं।

---

## सूरीके कान और रेशमकी थैली

इन दोनोंमें कुछ भी सम्बंध प्रतीत नहीं होता, परन्तु न्यूयार्कके एक रासायनिक कारखानेने असम्भवको सम्भव कर दिखलाया है। रेशमका कीड़ा अपने सिरके अत्यन्त सूक्ष्म रंध्रोंमेंसे एक चिकटा पदार्थ निकाला करता है, जिसके रेशे हवामें आते ही कड़े हो जाते हैं। इसी भांति किसी भी चिकटे पदार्थसे रेशम बनाया जा सकता है। सूरीके कानसे निकाले हुए चिकटे पदार्थसे भी रेशम बन चुका है, और उससे एक थैली भी तैयार की गयी जो हालमें एक प्रदर्शनीमें दिखाई गयी है।

---

## अन्धेरेमें देखना

मशहूर हाफ़ गैनने 'सायण्टि-फ़िक अमेरिकन' में रात-को देखनेके विषयमें एक लेख लिखा है। उक्त महो-दयने एक यन्त्र तैय्यार किया है, जिसकी सहा-यतासे अप्रकाशित और प्रकाश रहित पदार्थका दूरसे घोर अन्धकारमय रात्रिमें भी सुगमतासे पता लगाया जा सकता है। यह यन्त्र गत महाभारतमें भी यूरोपमें खाइयों-की लड़ाइयों तकमें खूब काम आया था। रातके समय शत्रुके हवाई जहाज़ों तकका आना इससे तुरन्त जांच लिया जाता था। लेखकका कहना है कि इसकी युक्ति अत्यन्त सरल है।

आजकल मानव बुद्धि प्रकृति विलासमें मग्न है। उसको प्रत्येक कार्यके लिए यन्त्रका आश्रय लेना पड़ता है। ऐसे यन्त्र आविष्कृत हुए हैं, जिनसे हम अपनी साधारणसे साधारण बुद्धिको भी ताक़ में धरकर अपना काम निकाल सकते हैं। अब शिक्षित मुन्शियोंकी भी आवश्यकता नहीं। जोड़, बाकी, गुणा और भाग करने वाले यन्त्र उपस्थित हैं। हथ्था हिलाते जाइये और रकमोंका जोड़ मालूम होता जाता है। इसी प्रकार चलने फिरने घूमने उड़ने और बात करने पंखा करने, आदि सभी की कलें बन कर तय्यार हैं। बटन दबाया कि बिजलीके चिराग चमक उठते हैं, पंखे चलने लगते हैं, विशाल पुतली घरोंमें भी सब प्रकारके भीम काय चक्र और कलें धड़ाधड़ अपना भैरव नाद करती हुई कारखाने दारोंका काम करने

लगती हैं। इसी कलजुगमें राष्ट्रोंकी शान्तिभङ्ग किये रखनेके लिए लड़ाऊ हवाई जहाज़ और मरणपो- निरन्तर आकाश और समुद्रकी छातियां चीरते हुए त्रास देते रहते हैं। जलमग्न गोले और भूमि-मग्न सुरंगें भी उसी प्रकार समुद्र और पृथ्वीका गर्भ घात करने पर उतारू हैं। फलतः बस अब केवल एक ही कल शेष है। जब वह भी बन जायगी तब वैज्ञानिकोंकी इस लोकसे और वैज्ञानिकोंसे इस लोककी मुक्ति हो जायगी। केवल जीवन और सुख दुःख अनुभव करनेका यन्त्र है जो अभी बनना शेष है। कलमय संसारमें प्रकट हुई सभ्यताके सदस्य अवश्य ऐसा यन्त्र खोजते होंगे जो उनके बदले जी भी लिया करे। और सुख तो यह भोग लिया करें पर दुख कोई और यन्त्र भोग लिया करे। अस्तु,

प्राचीन कालकी सभ्यता बहुत कुछ इससे विपरीत थी। प्राचीन कालमें विद्वानोंने अपने अलौकिक कार्य करनेके लिए अवश्य चमत्कारिक साधन खोजे थे; परन्तु उनसे वह अपनी शक्तियों-को बढ़ाते थे, पङ्गु नहीं होने देते थे। इसीलिए योग साधन, मन्त्र साधन, तन्त्रोक्त औषध साधन और समाधि द्वारा वह अद्भुत शक्तियोंको प्राप्त कर लेते थे। उनका सिद्धान्त था कि परमात्माने प्रत्येक शक्ति बीज रूपेण हमारे शरीरमें रख दी है। देहकी रचना भी एक ऐसे यन्त्रके समान है, जिसमें एक एक कल पुर्जा संसारके सभी सूक्ष्मतत्वों (तन्मात्रा) से घड़कर बनाया गया है। उसमें चेतन भोक्ता जड़ प्रकृतिको सब प्रकारसे भोग सकता है। यदि वह चाहे तो उचित साधनोंसे अपने अन्दरकी बीज शक्तियोंको चैतन्य करके बहुत अधिक उन्नत कर सकता है। मनुष्यके मस्तिष्कसे सूक्ष्मग्राही ज्ञान साधन यन्त्र अभी तक दुनिया भरमें आविष्कृत नहीं हुआ है। फिर उसकी सूक्ष्मगामिनी शक्तिकी अवहेलना करके जड़ प्रकृतिके गुणों पर मुग्ध होना आत्माका अपमान करना है। आत्म-तत्वज्ञोंने उसकी महत्ताको जाना और उसकी सामर्थ्यको जगा कर स्वतः लोकोत्तर कलाओंके निधान होकर एक आदर्श पराकाष्ठा तककी उन्नतिकी चरम सीमाको पा लिया था।

रात्रिको अंधेरेमें देख लेना तो उनके लिए कोई बड़ी बात न थी। एक नुसखेमें ही काम सिद्ध हो जाता है। उन्होंने देखा कि बिल्ली, शेर चीता, उल्लू आदि रात्रिचर पशु पक्षी बिना किसी रोक टोकके रात्रिके घोर अन्धकारमें भी देख सकते हैं। इस कारण अनुमातृ बुद्धिने विचारा कि उनकी आंखोंके घटक द्रव्योंमें ही कोई विशेषता है। यदि उसी पदार्थका सम्पर्क हमारी आंखमें भी होगा तो हमें भी दीखना चाहिये। इस आधार-पर निम्न लिखित नुसखा प्राचीन पुस्तकोंमें स्थान स्थान पर मिलता है।

बिल्ली, विलाव, ऊंट, भेड़िया, सूअर, सेहा ( सिपली ), विलवनौरी ( छोटा उल्लू ), बड़ा उल्लू इन सब रातको घूमनेवाले पशुपक्षियोंकी या इनमें से किन्हीं दो या अधिक की दायीं आंखें निकाल कर अलग सुखा ले और वायीं आंखें अलग। फिर चूर्ण करके दायीं आंखका चूर्ण वायींमें और वायीं आँखका चूर्ण दायींमें सलाई से आँजले, तो बिना किसी रोकके घोर रात्रिमें भी स्पष्ट दिखाई पड़ेगा। *

दूसरा नुसखा

एक आंवला, एक वराहकी आंख और जुगनू और मैनाकी आंख लेकर सुखाले और पीसकर चूर्ण करके रख ले। इसका आंखमें अञ्जन करनेसे रातको अन्धेरेमें भी सब पदार्थ दीखने लगते हैं।

तीसरी युक्ति

आंख बन्द करके माथेके ठीक बीचमें मध्य अंगुलीसे एक बार स्पर्श करे और स्पर्श होनेके पश्चात् उसी स्थानपर अपनी बन्द चक्षुओंको प्रेरित करे और भावना करे कि मैं यहींसे देखूं।

---

† बड़ा अच्छा होता यदि विद्यालंकार जी थोड़ासा परिश्रम कर, सामग्री जुटा, स्वयम् प्रयोग कर लेते और तब दूसरोंको सलाह देते—सं०

नित्य प्रति दो घड़ी एकान्त निःशब्द अन्धकारमय स्थानपर ऐसाही अभ्यास करनेसे ६, या ८ मासमें तृतीय नेत्र खुल जाता है और उस समय बिना आंख खोले रात दिन जब चाहे पुस्तक पढ़ सकता है; दूरस्थ घटनाओंको सैकड़ों व्यवधान होते हुए भी बे रोक टोक देख सकता है। इसको त्रिकुटी साधन कहा जाता है।

चौथी युक्ति

मैस्मेरिक ट्रांस या योगज निद्रामें सब प्रकार की वस्तु भासती हैं। इसमें स्वतः जनित योग निद्रामें योगीको और दूसरे पर किये मोहन प्रयोग में दूसरेको भी व्यवहित वस्तुएं दिखाई पड़ती हैं।

जब इतने साधन हमारे पूर्वजोंके पास थे और वह चेतन साधनोंसे उत्तम कार्य ले सकते थे तो उनको जड़ साधनोंकी क्या अवश्यकता थी ?

—जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार

## अंगूठा चूसनेका बुरा परिणाम

अगर किसीसे यह कहा जाय कि तुम्हारे चेहरे-के दाएं बाएं भाग एक जैसे नहीं; उनमेंसे एक भाग अधिक सुडौल, सुन्दर और प्रतिभा सम्पन्न प्रतीत होता है तो वह विश्वास न करेगा। परन्तु यह बात तसवीर खींचकर और नेगेटिवसे दो तसवीर इस प्रकार छापकर, कि एकमें दाएँ भागसे और दूसरेमें बायें भागसे ही दो बार छाप कर पूरा चेहरा बना दिया जाय, प्रमाणित की जा सकती है।

सेरोनी नामके एक न्यूयार्कके फोटोग्राफरने इस बातका कारण बच्चोंकी अंगूठा चूसनेकी आदतको बतलाया है। इस आदतसे नाककी कार्टि-लेज विकृत हो जाती है और इसीसे आधा चेहरा बिगड़ जाता है।

## बड़े भाग्यसे २० मिनट मिलेंगे

आगामी १० वर्षोंमें ज्योतिषियोंको मुश्किल से २० मिनट मिलेंगे, जिनमें वह सूर्य ग्रहणका निरीक्षण करके यह पता चलाएंगे कि सूर्यके पाससे होकर आनेवाला किरणोंमें विचलन होता है अथवा नहीं।

---

## रन्धन-क्रिया

विद्वानोंका मत है कि आहारको राँधनेसे अथवा पकानेसे उनकी बलोत्पादक शक्ति कम हो जाती है; परन्तु अन्य जीवधारियोंकी भांति मनुष्यकी पाचनशक्ति ऐसी नहीं रही कि वह आहारको बिना पकाये हज़म कर सके। बहुत समयसे मनुष्य अपने भोजनको पका कर खाता चला आया है। इसीलिए अब उसकी पाचनशक्ति क्षीण हो गई है, और यही कारण है कि अधिकांश पदार्थोंको पकाकर खाया जाता है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि सभी पदार्थ पकाकर खाये जायँ जैसे बहुत से फल, मेवे और दूध इत्यादि पदार्थ कच्चे भी खाये जाते हैं; परन्तु दाल चावल, अनाज और शाक इत्यादि अधिकांश पदार्थ पका कर ही खाये जाते हैं।

पकानेसे भोजन सुपाच्य और स्वादिष्ट हो जाता है और कितने ही रोग-जीवाणु मर जाते हैं; इसलिए पके हुए भोजनमें हैज़े, पेचिश इत्यादि रोगोंके जीवाणु होनेका भय कम रहता है।

भोजनको पकानेमें एक और भी रहस्य है कि खानेकी चीज़ोंका श्वेतसार एक प्रकारके ऐसे खोलोंमें बन्द रहता है, जिनपर हमारे पाचक यन्त्रोंमें उत्पन्न होनेवाले पाचक रसोंका प्रभाव अच्छी तरह नहीं हो सकता; इसलिए कच्चे श्वेत सारको हम अच्छी तरह नहीं पचा सकते। पदार्थोंका पकानेसे यह खोल फट जाते हैं और

श्वेतसार इनसे बाहर निकल आता है।* परन्तु भोजन पकानेमें बड़ी होशियारी और सावधानीकी आवश्यकता होती है; अच्छा बघार लगा देने, खूब मसाले डाल देने और बहुत सा घी खपा देनेमें ही रसोइयेका चातुर्य समाप्त नहीं हो जाता; बल्कि रसोइयेकी चातुरी इस बातमें है कि भोजन स्वादिष्ट होनेके साथ साथ सुपाच्य और शरीरके लिए हितकर बने; उसका अधिकसे अधिक भाग पचकर हमारे शरीरमें मिल जाय और पकानेमें पदार्थोंका उपयोगी अंश नष्ट न हो जाय।

शाकोंके पकानेमें सर्वसाधारण बहुत बड़ी भूल करते हैं और उनका उपयोगी अंश दूर करके फोक फोक रख लेते हैं। शाकोंसे हमें उद्भिज नमक मिलते हैं और उनके लिए ही भोजनमें हरे शाकोंका होना बहुत आवश्यक समझा जाता है; उद्भिज लवण हमारे शरीरके लिए बहुत लाभदायक होते हैं और उनका काम खनिज लवणोंसे नहीं चल सकता, परन्तु सर्वसाधारण जिस रीतिसे शाकोंको पकाते हैं उससे उनका बहुत सा लवण जाता रहता है। शाकोंको बहुत से पानीमें उबाल कर पानी निकाल दिया जाता है; परन्तु शाकोंका लवण प्रायः इसी पानी में घुल जाता है।

जिन लवणोंकी हमारे शरीरको अत्यन्तावश्यकता है वह तो इस प्रकार निकाल दिये जाते हैं और फिर खनिज लवणोंसे शाकोंको नमकीन बनाया जाता है; परन्तु याद रखना चाहिये कि खनिज लवण हमारे शरीरमें इतनी शीघ्र शोषित नहीं हो सकते और न इतना लाभ ही पहुँचा सकते हैं जितना कि उद्भिज लवण। अतएव शाक भाजियों को पकाते समय यह ध्यान रखना बहुत ही आवश्यक है कि उनका लवणांश नष्ट न हो जाय। शाकोंको पकानेकी एक रीति यह है कि एक दो खानेवाला दोहरा बरतन लिया जाय और उसमें बाहरके खानेमें तो पानी भरा जाय और भीतरवाले खानेमें शाक रखा जाय और उसे पानीको भापसे पकाया जाय।* शाकमें थोड़ा पानी भी डाला जा सकता है, परन्तु उत्तम यही है कि शाक भाजी अपने स्वाभाविक रसमें पके। यदि शाकोंका स्वाभाविक रस और लवण निकाल न दिया जाय तो वह बहुत स्वादिष्ट बनते हैं। शाक पकानेकी दूसरी सुगम विधि यह है कि उसमें बहुत थोड़ा पानी डाल कर साधारण रीतिसे पकाया जाय, पर पक जाने पर वह पानी फेंका न जाय।

शाकोंको न तो बिल्कुल सूखा बनाना चाहिये और न बहुत पतला ही; उनमें थोड़ा रसा रहना चाहिये, क्योंकि शुष्क शाक भली भांति न पच कर आंतोंमें दाह उत्पन्न करता है। रसेदार शाक शीघ्र पचते हैं और विशेष कर उष्ण देशोंमें तो कड़े और सूखे शाक खाना बहुत हानिकारक है।

चावल पकानेके सम्बन्धमें यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि चावलोंको जितना ही सफ़ेद बनानेका प्रयत्न किया जाता है वह उतने ही सारहीन हो जाते हैं। चावलोंके ऊपर जो कामू (लाल लाल धुंधला पदार्थ) होता है उसीमें स्नेह और नमक का बहुत सा भाग होता है। इसलिए मूंजी या धान इत्यादिके ऊपरसे एक छिलका (भूसी) उतार कर फिर चावलोंको कूट कर अधिक सफ़ेद करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। अमीरोंके यहां बहुत सफ़ेद मोतीसे चावल पसन्द किये जाते हैं कि जिनके ऊपरका लाल परत (कामू) बिल्कुल उतार दिया गया हो और फिर पकानेके समय उनका पानी निकाल कर बिल्कुल साफ़ कर दिया जाता है। खेदकी बात है कि सार भाग तो निरुपयोगी समझ कर फेंक देते हैं और निस्सार भाग ग्रहण करते हैं। इस बुरे ढंगसे कूटे और पकाये

* हालमें ही यह सिद्ध हो चुका है कि कच्चा श्वेतसार भी उतनी ही सुगमतासे पच जाता है। (Popular Science Siftings)

* जैसे "कूकर" में होता है।

हुये चावलोंमें प्रायः श्वेतसार ही शेष रह जाता है और पौष्टिक भाग लगभग सब निकल जाता है।

दूधके पकानेमें भी इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि वह जल न जाय, अधिक देर तक औटानेसे दूधके उपयोगी अंश नष्ट हो जाते हैं और वह देरसे पचता है*। उबले हुये दूधकी अपेक्षा ताज़ा और कच्चा दूध अधिक लाभदायक है और शीघ्र पचता है; परन्तु आज कल बाज़ारोंमें जैसा दूध मिलता है उसे बिना उबाले कभी न पीना चाहिये। वह बहुत अशुद्ध और हानिकारक होता है। हल्वाइयोंके यहां खुली कढ़ाइयोंमें पड़ा रहता है; सड़ककी धूल मट्टी इत्यादि उसमें गिरती रहती है और मक्खी इत्यादि जन्तु उसे दूषित करते रहते हैं। फिर यह भी विश्वास नहीं होता कि वह दूध स्वस्थ पशु का, स्वच्छ और पवित्र बासनमें स्वस्थ मनुष्य द्वारा शुद्धि और पवित्रता के साथ निकाला गया है। उसमें हैज़े, पेचिश, मोती झिरा, इत्यादि अनेक रोगोंके रोग जीवाणु होनेका भय होता है; यह रोग-जीवाणु दूधको गरम करनेसे नष्ट हो जाते हैं।

दूधको १५८° फारनहैटकी गरमीपर आध घंटे तक गरम करना पर्याप्त होता है, इससे अधिक समय तक उबालना ठीक नहीं।

दूध गरम करनेकी दूसरी विधि यह है कि उसमें आधा या चतुर्थांश पानी मिला कर धीमी अग्निपर पानी पानी जला दिया जाय। अथवा बिना पानी डाले ही पीछे जिस दोहरे बरतन का ज़िक्र किया गया है उसमें पानीकी भापसे थोड़ी देर गरम किया जाय।†

---

† दूधमें के विटेमीन्स नष्ट हो जाते हैं।

* दूधका विस्तृत वर्णन "भूलोक का अमृत" नामक पुस्तक में किया गया है। इस पुस्तक में दूध के सम्बन्ध में बहुत सी जानने योग्य बातें और दूधके द्वारा अनेक रोगोंकी चिकित्सा बतलाई गई है।

पता—आर्य पुस्तकालय हल्दौर ( बिजनौर ) यू. पी.

श्वेतसारकी अधिकतावाले पदार्थ जैसे दलिया, खीर इत्यादि बहुत पतले नहीं बनाने चाहिएँ, क्योंकि पतले होनेसे वह मुखमें पहुंचते ही झट गलेसे नीचे उतर जाते हैं और उनमें मुखकी लार नहीं मिलने पाती. परन्तु श्वेतसारवाले पदार्थों-का पाचन विशेषकर लार या थूक पर ही निर्भर है। ऐसे पदार्थोंको रोटी या किसी और कठिन पदार्थके साथ खाना अधिक उत्तम है कि जिससे कठिन पदार्थको चबानेके साथ साथ इनमें भी मुखकी लार मिल जाय और पाचन अच्छी तरह हो सके।

यह बात और याद रखनी चाहिये कि तेज़ अग्निपर बने हुए पदार्थोंकी अपेक्षा मन्दी आंचपर पकाये हुए पदार्थ अधिक लाभदायक होते हैं। तेज़ आंचपर पकानेसे पदार्थोंका बहुत सा उप-योगी अंश जल जाता है। रसोई बनानेमें इस बात-की बड़ी सँभाल रखनी चाहिये कि कोई पदार्थ आवश्यकतासे अधिक या कम न पकाया जाय। उत्तम पका हुआ भोजन करनेके पश्चात् (यदि वह उपयुक्त मात्रासे किया गया है) अवश्य ही चित्त प्रसन्न होता है, शरीरमें फुरती और स्फूर्ति आती है। यदि इसके विपरीत ग्लानि, सुस्ती और अव-साद मालूम हो और इसका कोई अन्य कारण न हो तो समझना चाहिये कि भोजन विधिपूर्वक और ठीक पकाया हुआ नहीं था।

### रसोइया और रसोई

रसोई बनाना एक बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है; पाचककी तनिक सी भूल या मूर्खतासे भोजन पानेवालोंका जीवन तक जा सकता है। परन्तु खेद है कि आजकल यह कार्य प्रायः नौकरों द्वारा कराया जाता है। विशेष कर नवीन सभ्यता प्राप्त गृह-देवियां तो रसोई बनानेके कामसे बुरी तरह नाक भौं सिकोड़ती हैं। पुरुष भी उनसे ऐसा काम लेनेमें उनका घोर अपमान समझते हैं। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि नौकर चाहे कितना ही स्वामि-भक्त, कर्तव्यपरायण और स्वामी-

का हितचिन्तक क्यों न हो, फिर भी वह नौकर ही है। आपके स्वास्थ्यका इतना ध्यान उसे रहना कठिन है जितना कि आपको प्राणसे अधिक प्रिय समझनेवाली माता, पत्नी, किंवा बहिन इत्यादि को रह सकता है। माता जिस प्रेमके साथ रोटी बनाकर खिलाती है, नौकरकी बनी रसोईमें उसका शतांश भी नहीं मिल सकता। जो भोजन प्रेमके साथ बनाया और खिलाया जाता है उसके गुण कई गुने बढ़ जाते हैं। प्रेमका प्रभाव वर्णनातीत है। माताके स्तनोंमें अमृतोपम दूध आनेका मुख्य कारण प्रेम ही होता है। जो प्रेम चितामें जलनेके घोर दुःखको सतीके लिए सुख रूप बना देता है, जो प्रेम उजाड़ जंगलको नगरोंसे अधिक रम्य बना देता है, जो प्रेम अन्योंके लिए स्व-जीवन देने को बाध्य करता है, जो प्रेम दूसरोंको अपना बना देता है; क्या वही प्रेम रसोईमें प्रभावहीन हो सकता है? अतएव रसोई बनानेका कार्य नौकरों-से न लेकर यदि गृह देवियां स्वयं करें तो विशेष उत्तम है। मेरा अभिप्राय यह नहीं कि नौकर रसोइये पर विश्वास न किया जाय, और नौकरों से किसी दशामें भी रसोई न बनवाई जाय; प्रत्युत मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि नौकरकी अपेक्षा घरकी स्त्रियों द्वारा बनी हुई रसोई अधिक लाभदायक हो सकती है। स्त्रियों-के विशेष गुणोंमें भोजन बनाना भी एक गुण है। स्त्रियोंके लिए साक्षर होनेकी अपेक्षा पाक विद्या और गृह प्रबन्धमें दक्ष होना कहीं अधिक आव-श्यक है। पाक विद्या, किताबी या केवल मान-सिक (मनन करनेकी) विद्या नहीं है। यह करतब-की विद्या है और करनेसे ही आती है। जितना ही अधिक अभ्यास किया जायगा उतनी ही अधिक दक्षता प्राप्त होती है। पाक कलामें दक्षता प्राप्त होने के अतिरिक्त रसोई बनानेसे स्त्रियोंका प्रतिदिन न्यूनाधिक व्यायाम भी हो ही जाता है; अतएव रसोईके कार्यको दूषित न समझ कर गृह देवियों-को अपने हाथमें लेना चाहिये। और यदि यह असम्भव हो तो रसोईकी देख भाल तो घरके मनुष्योंके द्वारा ही होनी चाहिये।

द्वेषी, क्रोधी, ईर्षालु, असन्तोषी और चिड़ चिड़े स्वभाववाले मनुष्यको रसोई बनानेके कामपर न लगाना चाहिये। जिसको देखकर चित्त प्रसन्न न हो, प्रेम भावका उदय न हो, घृणा, ग्लानि इत्यादि उत्पन्न हों ऐसा मनुष्य रसोई बनानेके योग्य नहीं होता।

रसोइयेके लिए मानसिक पवित्रताके साथ साथ शारीरिक शुद्धिकी भी अत्यन्त आवश्यकता है। रसोइयेको प्रतिदिन स्नान करना चाहिये। रसोई बनाते समय स्वच्छ और पवित्र एवं उज्ज्वल वस्त्र पहनने चाहियें, मैले वस्त्र पहन कर रसोई बनाना ठीक नहीं। यदि रसोई बनानेवाली स्त्री हो तो सिरके बाल खुले छोड़कर रसोई न बनानी चाहिये, इससे रसोईके पदार्थोंमें बाल गिरनेका भय रहता है। रसोइयेके लिए उचित है कि नख, केश इत्यादि न बढ़ने दे और प्रसन्न चित्त एवं सुन्दर वेशमें रहे।

रसोई-घरकी सफ़ाई भी बहुत आवश्यक है; यदि फर्श पक्का हो तब तो रसोई बनानेके पश्चात् दोनों समय नित्य प्रति धुलवाना चाहिये, अन्यथा उसे साफ़ कराके पवित्र मिट्टी या गोबरसे पुत-वाना चाहिये। दीवारों, छतों और रोशनदानोंमें जाले इत्यादि न होने देने चाहिएं। रसोई घरमें वायु और प्रकाशका यथोचित आनेका उचित प्रबन्ध होना आवश्यक है, धुवाँ निकलनेका भी प्रबन्ध होना चाहिये।

रसोईके घरके पास, अगल बगलमें, अथवा सामने शौचालय, गन्दे पानीके गढ़े इत्यादि होना ठीक नहीं है। साथ ही रसोई घरकी नालियाँ ऐसी होनी चाहियें कि जिनसे पानी तत्काल बह जाय और पानी रुक कर उसमें मच्छर अथवा कीड़े इत्यादि न हो जाएं। जूते पहने रसोई घरमें प्रवेश करना ठीक नहीं है।

रसोई घरमें जो सामान हो वह क्रम-बद्ध रखा रहना चाहिये कि जिसको देखकर चित्त प्रसन्न हो। रसोई बनानेके पात्र भी जैसे तैसे पड़े रहना ठीक नहीं है; सब पात्रोंको तिपाई या चौकी इत्यादिपर सजा कर रखना चाहिये। समस्त पात्र बहुत स्वच्छ रहने चाहियें। यदि ताँबेके पात्र हों तो उनपर कभी कभी आवश्यकतानुसार क़लई कराते रहना उचित है; क्योंकि उनपर क़लई न करानेसे ताम्र-विषके भोज्य पदार्थोंमें मिलनेका भय रहता है। खट्टे पदार्थोंको पीतलके बरतनोंमें पकाना ठीक नहीं, उन्हें क़लईके बरतनोंमें पकाना चाहिये। घृत रखनेके लिए मिट्टी, पत्थर, कांच लोहे अथवा चीनीके पात्र अच्छे होते हैं। तांबे और पीतलके बरतनोंमें घृत ख़राब हो जाता है; दस दिन पर्यन्त कांसीके पात्रमें रखा हुआ घृत विष तुल्य हो जाता है।

दूध गरम करनेके लिए लोहेके पात्र बहुत उत्तम होते हैं। घृत, दूध और शरबत इत्यादि छाननेके छन्ने भी बहुत साफ़ होने चाहियें। भोजनके समस्त पदार्थ चाहे वह शुष्क हों अथवा तरल हर समय ढक कर रखने चाहियें। भोज्य पदार्थोंपर मकोड़े, चींटी इत्यादिको न बैठने देना चाहिये और विशेष कर मक्खीको तो पास भी न फटकने देना चाहिये; क्योंकि मक्खी हैज़ा, पेचिश, ज्वर, यक्ष्मा इत्यादि कितने रोगोंको फैलाती है। मैले हाथोंसे किसी भोज्य पदार्थको न छूना चाहिये और सब पदार्थोंको ऐसे स्थान में रखना चाहिये कि जहां उसमें, धूल, मिट्टी इत्यादि न गिरने पावे और विषैली वायुका प्रभाव न हो सके।

---

## आंसू लानेवाले बम गोले

जहां कहीं जनसमूहोंसे काम पड़ता है तहां एक ऐसे साधनकी आवश्यकता पड़ती है कि जिससे सुगमतासे उन्हें काबूमें ला सकें अथवा रोके रखें। भारतवर्षमें यह साधन हैं—पुलिसका डंडा, गालियोंकी बौछार अथवा आजकल ठंडे पानीकी वर्षा। इनसे जब काम नहीं चलता तो मिलीटेरीके घोड़े दौड़ा दिये जाते हैं या गोली वर्षा की जाती हैं। परन्तु जिन देशोंमें अधिक उत्तर दायित्वपूर्ण विधियोंका विधान है, वहां इन साधनोंसे काम नहीं लेसकते। वहांके लिए ही आंसू लानेवाले अथवा बेहोशी लानेवाले बम गोले बनाये गये हैं। अमेरिकामें हालमें ही इन दोनों भांतिके बमगोले तैय्यार किये गये हैं और उनकी परीक्षा भी की गयी है।

पुलिसके कुछ जवानोंने इसकी परीक्षा अपने ऊपर कराई। पुलिसके सिपाही एक तरफ खड़े हो गये। उनसे १०० गज़के फासलेपर उनके मित्र खड़े हो गये और कुछ देर बाद धावा करनेके लिए दौड़े। पुलिसने उन्हें आधी दूरतक तो बढ़ने दिया, तदनन्तर चार बम गोले फेंक मारे। धरती पर गिर कर बम दो चार दफे तो उछले और फिर फटे। उनमेंसे घनी धुआं उड़कर चारों तरफ फैल गई। धुआंने वही काम किया जो पत्थरकी दीवार करती। १५ फुटके आगे वह लोग फिर न बढ़ सके।

बम गोलोंमें ऐसा प्रबन्ध रखा गया है कि सहसा गिरनेसे वह नहीं फट जाते। उनमें एक छल्ला लगा रहता है जो फेंकनेके पहले हटा दिया जाता है। यह छल्ला एक कमानीको हटाये रहता है, जो छूटनेपर बम गोलेको चला देती है। कमानीका दबाव प्रायः ऐसा होता है कि ५ सेकण्डमें गोला फट जाता है, परन्तु यह समय घटाने बढ़ानेका भी प्रबन्ध रहता है।

आंसू लानेवाली गैसके बमोंसे आंसू निकलने लगते हैं और आदमी आंख खोलनेका भी साहस नहीं करता। बेहोशीके बमोंसे आदमी बेहोश हो जाता है। साधारणतः ५ या १० मिनट तक बेहोशी रहती है, परन्तु अधिक गैसके प्रयोगसे अधिक देर तक बेहोशी रहती है।

इन बमोंका प्रयोग मोटरी चोरोंकी धर पकड़में बड़ी सफलतापूर्वक होगा, क्योंकि पुलिसवालों-

को पता चलने पर भी मोटरका इन्तज़ाम करनेमें देर लगती ही है। इन गोलोंके रहते हुए तो एक हाथमें ही चोर साफ पकड़ लिये जा सकते हैं। अगर वार खाली गया और बम गाड़ी पर टकरा कर बाहर ही गिर गया तो भी गाड़ी पर ऐसा निशान लग जायगा कि बादमें गाड़ी सहज ही पहचानी जा सकती है।

---

## मोम बत्तियोंका सम्राट्

न्यूयार्कमें एक मोम बत्ती बनाई गयी है जिसको परिधि, घेरा, ५ फुट और ऊंचाई १८ फुट है। इसका वज़न प्रायः १२½ मन है। अनुमानतः १२०००० घण्टे तक यह जलती रह सकती है। वह नैपिल्सके एक गिरजेमें रखी जायगी। इसके बनाने का खर्च उस अनाथालयके अनाथोंने चन्दा करके दिया है, जिसकी सहायतार्थ केरुसो महोदय प्रायः ४०००० रुपये वार्षिक दिया करते थे।

---

## फूले हुए नाजने बचाया

सीपूलनामक स्टीमरमें न्यूफौरडलेरडके करीब बरफके पहाड़से टक्कर खानेसे दरार होगई। स्टीमरमें पानी भरने लगा; परन्तु साथ ही उसके अन्दर भरा नाज फूलने लगा। इससे दरार बन्द हो गई और स्टीमर डूबनेसे बच गया।

---

## झुके हुए बुर्ज

यह एक मीनारका नाम है जो चीनमें नेनकिंग स्थानके पास है। यह १०० फुट ऊंची है, उसमें १३ खन हैं और सीधसे १२ फुट झुकी हुई है। पीसाकी विख्यात झुकी हुई मीनार (Leaning Tower of pisa) जो अब तक मशहूर थी १७९ फुट ऊंची है और १६½ फुट झुकी हुई है।

---

# ज्वर-निदान

शारीरिक उत्ताप

स्वस्थ अवस्थामें शरीरका तापक्रम ९७° से ९९° (फ़ारन हैट) तक रहता है, अर्थात् सवेरे यदि तापक्रम ९७·५° (साढ़े सत्तानवे अंश) हो तो शामको ९८·५° (साढ़े अट्ठानवे अंश) वा ९९° हो सकता है; पर यदि प्रातःकालीन तापक्रम ९९° हो तो ज्वर समझा जायगा। शरीरकी औसत हरारत ९८·५° मानी जाती है, जिससे सुबहको आधा दर्जा कम और शामको आधा दर्जा ज्यादा होना प्राकृतिक ही है। परन्तु यदि प्रातःकालीन ताप क्रम ९७° वा उससे भी कम हो और सायंकालीन ९९° वा ९९·५° हो, अथवा दोनों सीमाओंके मध्यमें दो वा तताधिक तापांशोंका अन्तर रहे तो हम ज्वर मानेंगे। इसलिए जीर्ण ज्वरोंमें रोगीके तापक्रमको सीमाओंका ठीक ठीक निर्णय करना अत्यावश्यक होता है कि वह कमसे कम कितना और ज्यादासे ज्यादा कितना होता है। स्पष्ट है कि तापक्रमके अतिरिक्त ज्वरके अन्य लक्षणोंपर भी दृष्टि रखनी चाहिये।

ज्वर-मान-यन्त्र

(Clinical Thermometer)

शरीरका उत्ताप एक विशेष प्रकारके तापमापक यन्त्र द्वारा लिखा जाता है, जिसको 'ज्वर-मान-यन्त्र' कहते हैं। इस यंत्रमें यह विशेषता होती है कि घुंडीमें से पारा एक बार चढ़ जानेके बाद ठंडे होनेपर भी स्वयं नहीं उतर सकता। इसीलिए

चि। २...—ज्वरमापयंत्र

लगानेसे पहिले यन्त्रको हाथका झटका देकर (वा अन्य रीतिसे) पारेको सबसे नीचेके दर्जे तक उतार दिया जाता है। गरमीके दिनोंमें पारेको उतारने के लिए घुंडीको पानी लगा कर ठंडा कर लेना भी ज़रूरी होता है। साधारणतः यन्त्र रोगीकी बग़लमें वा बच्चोंके जंघासे के अन्दर रख कर कई मिनट तक दबाये रखा जाता है। दुबले मनुष्योंमें बग़लके अन्दर दबानेमें कोहनीको खींच कर पेटकी मध्यम रेखा तक लाकर दबाये रखना ज़रूरी होता है। फिर भी कभी कभी यन्त्र बग़लकी खोखलमें अलग रह जाता है और पारा ठीक नहीं चढ़ता। इसीलिए प्रायः मुंहके अन्दर ज़बानके नीचे मध्य रेखाको छोड़कर एक तरफ़ घुंडीको रखकर होंठ बन्द कर देनेसे सही हरारत मालूम हो जाती है। होंठ खुले रह जानेसे पारेकी ठीक ठीक न चढ़नेकी सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त मुख विवरका तापक्रम गरम वा ठंडे खाने पीनेकी चीज़ोंके सेवनसे थोड़ी थोड़ी देर तक प्राकृतिक अवस्थासे घटता बढ़ता रहता है। इसलिए नाज़ुक हालतोंमें कभी कभी चिकित्सक गुदा वा योनिमार्गमें यन्त्र रख कर रक्तकी सही हरारत मालूम करते हैं। इन मार्गोंका तापक्रम स्वस्थ दशामें १००.५° फा० होता है, पर रक्तकी असली हरारत क़रीब १०२° फा० है।

इस देशमें अंग्रेज़ी ढंगके ज्वरमानयन्त्रका व्यवहार किया जाता है, जिसकी नाप फ़ारनहैटकी रीतिकी होती है। यंत्र पर प्रायः ९५° से ११०° तापांशके बड़े बड़े चिन्ह बने रहते हैं। और हर एक अंशके ५ छोटे छोटे भाग होते हैं जो प्रत्येक २ दशमांशके बराबर होते हैं। ९८° वा ९९° के बीचमें एक स्थान पर तीरका फल बना रहता है, जो साधारण अवस्था (Normal) की औसत हरारत (९८.४° वा ९८.६°) का बोधक होता है। अंगरेज़ी यंत्रोंके चिन्ह कांच पर खुदे रहते हैं, जिनमें जीवाणुओंके रह जानेका अधिक भय रहता है। इसलिए यंत्रको, काममें लानेके पहले और पीछे अच्छी तरह साबुन और ठंडे पानीसे धो लेना चाहिये, और अगर रोग संक्रामक हो तो ५ मिनट तक किसी जीवाणुनाशक द्रव्यके घोलमें (जैसे लाइसोल वा क्रीसोल वा कार्बोलिक एसिड २ भाग, और जल १०० भाग) में डुबो रखना चाहिये। गरम पानीसे धोये जानेसे यन्त्र टूट जाया करते हैं; बारंबार धोये जानेसे यंत्रके चिन्ह भी मिट जाते हैं। इसलिए जर्मन ढंगके यन्त्रोंका व्यवहार करना चाहिये, जिनके चिन्ह काँचकी नलीके अन्दर होते हैं। पर इनकी नाप शतांश रीतिकी होती है। अकसर यन्त्र आधे, एक वा दो मिनटके बनाये जाते हैं। इन यन्त्रोंमें १ मिनटवाला हमारे खयालमें अच्छा होता है, कारण कि आध मिनटवालेकी घुंडी ऐसी पतली होती है कि दबनेसे भी पारा चढ़ जाता है। दो वा तदधिक मिनटवाले यंत्रोंसे रोगी उकता जाता है। पर जीर्णज्वर तथा शीतकी दशामें १ मिनटके यंत्र को मुखके अन्दर ३ मिनट तक रख कर तापक्रमके दशमांशोंको भी ठीक ठीक मालूम कर लेना चाहिये।

ज्वरोंकी कक्षायें

हम बता चुके हैं कि फारनहैट तापक्रमके अनुसार साधारण अवस्थामें शरीरका तापक्रम ९७° से ९९° तक है, जिसकी औसत ९८.४° वा ९८.६° है। ९९° से १०१° तक लघु ज्वर, १०१° से १०३° तक ज्वर, और १०३° से १०५° तक तीव्र ज्वर कहा जाता है। इससे ज़्यादा होने पर प्रचंड ज्वर कहलाता है, जिसकी अधिक स्थिति भयानक होती है। इसी तरह ९७° से नीचेके दर्जे शीतके बोधक हैं और रोगीके लिए अरिष्ट लक्षण समझे जाते हैं। पर थोड़ी देरके प्रचंड ज्वर (१०६°) से इतना डर नहीं होता जितना कई सप्ताहके निरन्तर तीव्र ज्वरसे हो सकता है।

निदान

साम्यावस्थासे शारीरिक उत्तापका एक वा अधिक अंशका बढ़ जाना और उसका कुछ काल तक क़ायम रहना ज्वर समझा जाता है। स्वस्थ

अवस्थामें भी भोजनके अनन्तर वा अधिक शारीरिक परिश्रम (दौधूप) करनेसे अल्प कालके लिए शरीरका उत्ताप कुछ बढ़ जाता है, पर वह ज्वर नहीं समझा जाता।

तापोत्पादनका असली कारण ओषजनीकरण वा धातुओंके अन्दर रासायनिक परिवर्तन है। पेशियोंका हिलना, यकृत आदि पाचक ग्रन्थियोंकी क्रिया, तथा मस्तिष्क द्वारा मानसिक क्रियासे भी ताप उत्पन्न होता रहता है। पर त्वचापर हवा लगने वा पसीनेके सूखनेसे तथा फुफ्फुसोंके द्वारा प्रश्वास वायुके निरन्तर निकलते रहनेसे शरीर ठंडा होता रहता है। स्वस्थ अवस्थामें तापोत्पादक और तापह्रासक अवयवोंपर नाड़ी मण्डलका ऐसा प्रभाव है कि शारीरिक उत्ताप निर्दिष्ट सीमाओंके अन्दर घटता बढ़ता रहता है, चाहे मौसमी गरमी वा सर्दी कुछ ही हो। पर ज्वरकी दशामें उपरोक्त अव्यवोंकी क्रियाओंमें सामञ्जस्य स्थिर नहीं रहता और शारीरिक तापक्रम अधिक बढ़ जाता है, या कभी इतना घट जाता है कि रोगी शीतकी दशामें आ जाता है। युक्ति-पूर्ण चिकित्साका उद्देश्य इस सामञ्जस्यको पुनः स्थापन करना है।

ज्वर कोई विशेष रोग नहीं है। यह केवल एक जटिल लक्षण है जो भिन्न भिन्न दशाओंमें पैदा हो जाता है। ज्यादा चोटके लगने पर, धातुओंके अन्दर किसी प्रकारकी विकृति पैदा होनेसे, वा किसी अवयवके अन्दर प्रदाह (वरम) हो जानेसे, अथवा शरीरके अन्दर किसी प्रकारके विषैले पदार्थोंके उत्पन्न हो जानेसे (जैसा कि रोग जीवाणुओंके प्रवेश करनेसे होता है) वा ऐसीही अन्य घटनाओंसे शारीरिक धातुओंकी रासायनिक क्रिया तीव्र हो जानेके कारण अधिक ताप पैदा हो जाता है, जिसको हम ज्वर कहते हैं। उत्तापके बढ़नेके साथ ही कुछ परस्पर सम्बद्ध लक्षण ऐसे होते हैं जो कि हर एक ज्वरमें थोड़े बहुत प्रकट हो जाते हैं। इनको ज्वरके साधारण लक्षण कहते हैं।

ज्वर लक्षण

पूर्व रूप—ज्वर चढ़नेसे पहिले शरीरमें थकान मालूम होती है। आरामसे बैठने या लेटनेको जी चाहता है। सारा शरीर दुखता प्रतीत होता है। मुंह (लाला ग्रन्थियोंके) सूख जानेसे गस्सा निगलनेमें कष्ट होता है। और भोजनमें स्वाद नहीं आता। इसी तरह अन्य पाचक ग्रन्थियोंके निर्यास कम हो जानेसे भूख बन्द हो जाती है और अक्सर कब्ज़ भी हो जाता है। सरमें भारीपन वा कुछ दर्द भी मालूम होता है। आंखें पनियाली हो जाती हैं और छोटे बालक बिना विशेष कारणके ही रोया करते हैं।

ज्वर रूप—इसके अनन्तर पूर्व रूपके लक्षण और भी बढ़ जाते हैं। सर्दी मालूम होती है, और किसी किसी ज्वरमें सर्दीके कारण बड़े जोरसे कपकपी लगती है। त्वचा ठंडी मालूम होनेपर भी इस समय मुंह वा गुदामें ज्वर मान लगा कर देखनेसे कई तापांश का ज्वर पाया जाता है। बच्चोंमें कपकपी लगनेके बदले प्रायः बांयटे (अंगोंकी ऐंठन) आने लगते हैं, जिसको लोग 'माता का कलेड़ा' समझ कर बहुत डरते हैं। ज्वरारम्भमें बच्चोंके बांयटे आना एक साधारण लक्षण है, पर किसी रोगके अन्तमें बांयटोंका होना अरिष्ट लक्षण समझा जाता है।

सर्दी वा कपकपीके अनन्तर गरमी मालूम होती है। इस समय ज्यादा उढ़ाये हुए कपड़ोंको उतार देना चाहिये, पर पसीना आते समय शरीरको हवासे बचाना चाहिये। इस समय सिरका दर्द बढ़ जाता है। कभी कभी रोगी बर्राया करता है और कचित् काल्पनिक पदार्थोंको देखकर प्रलाप भी करता है वा निद्रा की अवस्थामें चुपचाप पड़ा रहता है। इसमें उसको बार बार जगाना नहीं चाहिये, केवल शिरः पीड़ादि के दूर करनेके लिए शिर पर बर्फकी डली वा ठंडे जलकी पट्टी रखनी चाहिये। इस समय रोगीको बहुत प्यास भी लगती है, जिसका रोकना बहुत ही अनिष्ट-

कर है। इस गरमीकी दशामें धमनी (नाड़ी) कुछ तीव्र होती है, पर वह प्रबल और उंगलियोंको मोटी मालूम होती है। परन्तु किसी किसी दशामें उत्ताप बढ़ जाने पर भी धमनी पतली और उसकी गतिकी संख्या अपेक्षतया अधिक तीव्र हो जाती है और अर्द्ध निद्राके स्थानमें रोगी प्रायः अचेतन सा होकर पड़ा रहता है और उसी दशामें कभी कभी वह बर्राया करता है। यह अरिष्ट लक्षण है।

सब ज्वरोंकी अवधि समान नहीं होती। साधारण बर्साती ज्वर (मलेरिया) में २, ३ घन्टे गरमी लगनेके पश्चात् ही थोड़ा थोड़ा पसीना आकर ज्वर शान्त होने लगता है। परन्तु अन्य ज्वरोंमें यथा एन्टरिक (आँत्रिक वा 'मोतीझिरा') ज्वरमें यद्यपि दैनिक उतार चढ़ाव होता रहता है तथापि ज्वर तीसरे वा चौथे सप्ताहमें जाकर थोड़ा थोड़ा करके उतर जाता है। इसके विरुद्ध निमोनिया (फुफ्फुस प्रदाह) में दैनिक उतार चढ़ाव होते हुए भी प्रायः दसवें दिन ज्वर सहसा उतर जाता है। जिस तरह ज्वरके उतरनेके दो नियम हैं (क्रमशः वा सहसा उतरना) इसी तरह ज्वरारम्भके भी दो नियम हैं (सहसा वा क्रमशः)। अधिकतर रोग क्रमशः ही आरम्भ होता है और क्रमशः ही उतरता है।

ज्वरके शान्त होनेके समय, विशेषकर जब कि वह सहसा उतर जाता है, रोगीकी अवस्था बहुत ही क्षीण मालूम होती है। बहुत पसीनेके कारण सारा अंग ठंडा पड़ जाता है, धमनी सूक्ष्म और उसकी गति शिथिल होजाती है; पर शीघ्र ही तापक्रम बढ़ने लगता है और धमनी स्थिर गतिसे चलने लगती है। कभी कभी दस्त आ जानेके कारण रोगी और भी निर्बल हो जाता है, पर उसकी सुध बुध सब ठिकाने रहती है। तन्द्रामें रहते हुए भी वह बर्राता नहीं। उसको भूख लगती है और मानों वह नवजीवन प्राप्त कर स्वास्थ्यके मार्ग पर अग्रसर हो जाता है।

परन्तु दूसरी दशामें रोग समाप्तिके समय यद्यपि तापक्रम घटने लगता है तथापि रोगीकी दशा शोचनीय होती जाती है। उसकी जिह्वा अति मलीन हो जाती है, दांत और होठों पर जिह्वाकी तरह मोटी पपड़ी जम जाती है, उसको सुध बुध नहीं रहती। मूर्छित अवस्थामें कुछ झड़ बड़ाने पर भी वह प्रायः होशकी बात नहीं करता। उसकी उंगलियां कांपती हैं, वह बिस्तरोंको टटोलता है, और काल्पनिक सूत्रोंको सुलझाता है। धमनीकी गति बहते हुए पानीकी तरह तीव्र और सूक्ष्म होनेके अतिरिक्त बीच बीचमें वह अस्पृश्य हो जाती है यहां तक कि हृत्पिण्डकी गति बन्द होकर वा श्वास रुककर, वा नाड़ीमण्डलकी क्रियामें विकृति होनेसे रोगी मर जाता है। इसी अवस्थाको प्राचीन 'सन्निपात' कहते थे, जिसको साधारण लोग 'शीत' वा 'वायु' की दशा कहते हैं।

श्वास तथा धमनी-गति

नोट—विश्रामकी अवस्थामें स्वस्थ मनुष्योंकी धमनीगति (नब्ज़की हरकत) प्रति मिनट ७० से ८० होती है अर्थात् बलिष्ट महाकाय मनुष्योंमें ७० और क्षुद्र काय लोगोंमें ८०। इसकी औसत पुरुषोंमें ७२ और स्त्रियोंमें ७५ समझनी चाहिये। नवजात शिशुमें १४०, एक सालकी अवस्थामें १२०, दूसरे वर्षमें ११०, और तीसरे वर्षमें इसकी औसत १०० के क़रीब रहती है। बाल्यावस्थामें ९० और किशोरवस्थामें ८० के लगभग होती है और पूर्णावस्थामें ७०; जैसा कि हम बता चुके हैं।

ज्वरकी दशामें साधारणतः एक अंश तापक्रम बढ़नेसे धमनीकी गतिकी संख्या ८, १० बढ़ जाती है, परन्तु किसी किसी ज्वरमें कम और किसी किसीमें अधिक भी हो सकती है। टाइफोयड, निमोनिया प्लेग आदि रोगोंमें यदि धमनी गतिकी संख्या तापक्रमके अनुसार उपर्युक्त नियमसे बढ़ जाय तो ऐसी स्थिरको हृत्पिण्डकी क्षीणता समझ कर अरिष्ट लक्षण समझा जायगा; जैसे १०२.५° की हरारत (४ अंश ज्वर) में यदि धमनी-

गति ८० + ४ × १० अर्थात् १२० से ज्यादा हो तो वह अरिष्ट लक्षण है।

धमनि-गतिका श्वासकी गतिके साथ एक नियत सम्बन्ध है अर्थात् १०३ के ज्वरमें यदि धमनी गति १० हो तो श्वासकी गति १२० ÷ ४ अर्थात् ३० से अधिक न होनी चाहिये। पर यदि वह ४०, ५० वा ६० हो तो हम उसको निःसन्देह फुफ्फुस सम्बन्धी रोग मानेंगे। श्वासकी गति गिननेमें यह बात याद रखनी चाहिये कि रोगीका ध्यान उस तरफ आकर्षित न हो, क्योंकि इसका बढ़ाना घटाना रोगीकी इच्छाधीन है। इसलिए श्वासगति गिननेमें रोगीका ध्यान बटानेके लिए उसकी नब्ज़ पर उंगली रखकर उसको बिना जतलाये पेट वा सीनेके कपड़ोंकी हरकतसे श्वासगति गिन लेनी चाहिये। धमनी गति गिननेमें उसके आयतन (मोटी वा पतली) उसके बल (सख्त वा नर्म) और उसके ताल (नियमित वा अनियमितगति) आदि पर दृष्टि रखनी होती है।

ज्वरका स्वरूप

यद्यपि प्रत्येक ज्वरका स्वरूप भिन्न भिन्न होता है, तथापि ज्वरकी स्थितिके अनुसार हम उनके कई बड़े बड़े गण बना सकते हैं; कारण उनमेंसे कितने ही का उतार चढ़ाव एक विशेष नियम पर अवलम्बित है, अतएव ज्वरोंके दो बड़े बड़े गण यह हो सकते हैं:—एक नियमित और दूसरा अनियमित।

अनियमित ज्वर

अनियमित ज्वर वह है कि जो कभी बहुत बढ़ जाते हैं या घट जाते हैं, कभी बन्द हो जाते हैं, कभी फिर आने लगते हैं और इनके चढ़ने उतरनेका कोई नियत समय नहीं होता जैसे कि मलेरियाका जीर्ण ज्वर।

नियमित ज्वर

तापक्रमके उतार चढ़ावके अनुसार उनके भी कई भेद किये गये हैं:—

(क) निरन्तर ज्वर (Continued Fever)—वह है कि जिसमें ज्वरका दैनिक उतार चढ़ाव बहुत ही थोड़ा होता है (दो अंशसे कम) और चौबीस घण्टेमें एकबार भी साम्यावस्था तक नहीं उतरता, जैसे कि टाइफोइड (मोतीझिरा, आन्त्रिक ज्वर) के द्वितीय सप्ताहमें, इरीसिपलस (फुल बाद), लोबर निमोनिया (फुफ्फुस पिण्ड प्रदाह) तथा अन्य प्रदाह जनितज्वर आदिमें। स्पष्ट है कि इस प्रकारके ज्वरोंमें तापक्रम प्रायः प्रबल होता है।

(ख)-अविराम ज्वर (Remitetnt Fever) इसमें भी निरन्तर ज्वरकी तरह तापक्रम २४ घन्टोंमें एक बार भी साम्यसीमा तक नहीं उतरता, पर दैनिक उतार चढ़ावके बीचमें दो वा ततोधिक अंशोंका अन्तर रहता है। मलेरियाके ज्वरोंमें कभी कभी इस प्रकारके ताप स्वरूप देखनेमें आते हैं। इसमें एक बुखार उतरते उतरते दूसरा बुखार चढ़ जाता है और इस तरहसे ज्वर प्रायः १, २ या ततोधिक सप्ताह तक कायम रह सकता है। स्पष्ट है कि इस आंशिक विरामसे भी रोगीको बहुत आराम मिलता है और टाइफोयड आदि निरन्तर ज्वरोंकी तरह रोगी इसमें बहुत निर्बल नहीं हो जाता।

(ग) सविराम ज्वर (Intermittent Fever)—इसमें ज्वर चाहे अधिक चढ़े चाहे कम; २४ घंटेमें एक बार साम्यावस्था तक आ जाता है। साधारण मलेरियाके ज्वर इसी प्रकारके होते हैं। यह ज्वर कभी दैनिक (Quotidian) कभी तिजारिया अर्थात् एक दिनके अन्तरसे (Tertian) और कभी चौथैय्या (Quartan) रूपसे प्रकट होते हैं। शेषोक्तमें विराम दो दिनका होता है। स्पष्ट है कि कई मौके चौथय्या या तिजारिया बुखारके मिल जानेसे दैनिक ज्वर बन जा सकता है। इसीलिए देखनेमें आता है कि ऐसे दैनिक ज्वरको क्विनीनसे चिकित्सा करनेमें वह दैनिकसे छूट तिजारिया और तिजारियासे चौथय्या रूप धारण करनेके अनन्तर जाता रहता है।

(घ) मिश्रित ज्वर—सविराम और अविराम ज्वरके बीचमें एक और भी प्रकारका ज्वर है जिसको 'हेक्टिक फीवर' (Hectic Fever) कहते हैं। इसमें प्रायः सायंकालको ज्वर बढ़ जाता है, चेहरा तमतमाने लगता है और आंखें उज्वल मालूम होती हैं। कुछ रात रहते प्रातःकालके समय प्रायः पसीना देकर आंशिक वा सम्पूर्ण विरामके साथ बुखार हल्का हो जाता है, परन्तु फिर दिन चढ़ेसे थोड़ा थोड़ा चढ़कर सायंकाल तक पूरा चढ़ जाता है। ऐसे ज्वर अनेक काल तक स्थायी रहनेके कारण रोगी प्रातःकालके समय अल्प मात्रा उत्तापको अनुभव ही नहीं करता। परन्तु यन्त्र लगाकर देखनेसे मालूम होता है कि किसी दिन विराम सम्पूर्ण होनेसे सविराम, और किसी दिन आंशिक रूपसे होनेके कारण ज्वर अविराम अतएव मिश्रित रूप धारण करता है। ऐसा ज्वर यक्ष्मा रोगमें, विशेषकर जब शरीरके अन्दर कहीं पीप पैदा हो जाती है, उसके धीमे प्रदाहके कारण अनेक काल तक होता रहता है। इसीको प्रायः लोग 'जीर्ण ज्वर' 'पुराना बुखार' वा 'तप ए दिक' कहते हैं। यह ज़रूरी नहीं कि उसका कारण यक्ष्मा जीवाणु ही हो।

—बी० के० मित्र, एल. एम. एस.।

## हानिकारक, विरोधी और हितकर पदार्थ

स्वभावसे हानिकारक पदार्थ

छ पदार्थ ऐसे हैं कि जिनका स्वभाव ही हानि पहुंचानेका होता है। उनका सेवन करते रहने से स्वस्थ मनुष्य भी रोगी हो जाता है। अतएव इन पदार्थों-को बहुत ही कम खाना चाहिये और निरन्तर तो कभी भी न खाना चाहिये। ऐसे पदार्थोंके नाम नीचे दिये जाते हैं।

उर्द, कटहल, सरसोंका शाक, भेड़का दूध, भेड़का घृत, कैड़ (कुसुम) का तेल, राब इत्यादि।

विरोधी पदार्थ

कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं कि उनमें परस्पर विरोध होता है अर्थात् उन्हें आपसमें मिला देने-से ऐसा रासायनिक परिवर्तन होता है कि चाहे वह पदार्थ अमृत तुल्य ही क्यों न हों पर इस मेलसे हानिकारक और कभी कभी विष समान भी हो जाते हैं। यह रासायनिक परिवर्तन भोजन बनाते समय, अथवा खानेके समय विरोधी पदार्थोंका मिश्रण होनेसे तत्काल और कभी उन्हें मिलाकर रख देने पर कुछ काल पीछे हो जाता है। किन्हीं किन्हीं पदार्थोंमें तो यहां तक विरोध होता है कि यदि आमाशयमें पहुँच कर भी वह परस्पर मिल जायं तो भारी हानि पहुँचाते हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिए यहां ऐसे पदार्थोंका वर्णन कर देना उचित प्रतीत होता है।

दूधके साथ सब प्रकारके फलोंका, और नीबू-के अतिरिक्त समस्त अम्ल खारे और नमकीन पदार्थोंका, एवं कुलथी, उर्द, मोठ, मूली और लह-सनका विरोध है।

उर्दके साथ मूलीका, मकोयके साथ पीपल और मिर्च तथा नालीके शाकका, नालीके शाकके साथ दहीका, केले और ताड़के फलके साथ दही और तक्रका, और बड़हलके फलके साथ उर्दकी दाल, दूध, शहद, और घृत एवं खीरका और शहद के साथ खिचड़ीका तथा मकोयके साथ गुड़का और मूलीके साथ शहदका विरोध है।

मधुको उष्ण जल, तक्र और समान मात्रा घृतमें मिलाकर खाना हानिकारक है। तेलके बने पदार्थ कांजीके साथ, और दहीके साथ कोई गरम पदार्थ ( तप्त पदार्थ ) न खाना चाहिये। जिस समय तक खाया हुआ बहुत पच न जाय दूध पीना निषिद्ध है। ठंडे भोजन या काढ़ेको पुनः गरम करके खाना हानिकारक है। घृत और तेलको जलके साथ न मिलाना चाहिये। जिस पात्रमें अदरक पकाया गया हो उसमें मकोयका शाक नहीं पकाना चाहिये। बिलावेके साथ सब प्रकारके उष्ण अन्न पानका निषेध है। खीर खाने-के पश्चात् तक्र न पीना चाहिये तथा खीर और खिचड़ीको परस्पर मिलाकर खाना भी हानिकारक है। द्राक्षासव, खर्जूरासव और शर्करासव परस्पर मिलाकर पीना उचित नहीं।

कोई दो स्नेहोंको (यथा घृत और तेल) बराबर बराबर मिलाकर सेवन करना हानिकारक है।

मधुर रस युक्त पदार्थोंके साथ कड़वे और नमकीन पदार्थ; नमकीन और खट्टे पदार्थोंके साथ चरपरे और कसैले पदार्थ मिलाकर न खाने चाहियें।

विरोधी पदार्थ मिलाकर खानेसे रक्त-पित्त, कुष्ठ, पाण्डु, अरुचि वमन और खाज, खुजली इत्यादि रक्त विकार तथा कितने ही अन्य रोग उत्पन्न होते हैं; कभी कभी मृत्यु तक हो जाना भी सम्भव है।

यह हो सकता है कि किन्हीं विरोधी पदार्थों-को मिला कर सेवन करने से तत्काल कोई हानि प्रतीत न हो; कभी कभी महीनों तक विरोधी पदार्थोंका सेवन करते रहने पर भी कोई रोग प्रकट होता हुआ दिखाई नहीं देता, परन्तु यह याद रखना चाहिये कि विरुद्ध पदार्थोंसे अब नहीं तो कालान्तरमें हानि अवश्य होती है; "रोज़के पाथे रोज़ नहीं जलते"। अतएव विरोधी पदार्थोंका सदैव त्याग करना ही श्रेयस्कर है और यदि कभी भूलसे संयोग विरुद्ध पदार्थ खाये गये हों तो वमन, विरेचन और उपवासके द्वारा शरीर-शुद्धि कर लेना उचित है।

स्वभावसे हितकारी पदार्थ

कुछ पदार्थ स्वभाव से ही हितकारी होते हैं अर्थात् उनके सेवनसे प्रायः किसी दशामें भी हानि नहीं पहुँचती।

यथा—पुराने चावल या साठी चावल, गेहूं, मूंग, अरहर, मसूर, मधुर रसयुक्त पदार्थ, सैन्धव, अनार, आमला, पक्का अंगूर, छोहारा, फालसा, खिरनी, बिजौरा, नीबू, बथुएका शाक, पोई और परवलका शाक, जमींकन्द, गो दुग्ध, गोघृत, काले तिलका तेल और मिश्री।

---

## सुर्मेसे कोढ़ अच्छा

सुरमेसे आंखोंका धुंध कटता सुना गया था, परन्तु ब्रिटिश मेडीकेल जरनेलके अनुसार अब कोढ भी दूर होने लगा है। डा० कौस्टन ( F. G. Cawston ) ने कौलोयडल सुरमेका प्रयोग करके अनेक कोढ़ियोंको फायदा पहुंचाया है, जिसके हाथ और पैरकी अंगुली तक गल रही थीं।

---

## परीक्षाके भयसे आत्महत्या

१९२० के पहले छः मासमें अमेरिकामें २२५ विद्यार्थियोंने आत्महत्या की; १९२१ के पहले छः मासमें ४५० ने की। जांच करनेसे पता यह लगा कि अधिकांशने परीक्षाके भयसे आत्महत्या की। भारतमें परीक्षाओंके भयसे और विदेशी भाषाके भारसे दबकर विद्यार्थियोंका सर्व नाश हो रहा

है, जिसका परिणाम शिक्षितोंके स्वास्थ्यके बिगड़ने, अधिक संख्यामें मरने और अपरिश्रम शील होनेमें दिखाई दे रहा है—यद्यपि अपने पूर्वजोंके आध्यात्मिक जीवनके प्रभावसे आत्महत्याका खयाल उन्हें नहीं आता।

---

## स्त्रियां जातीय शक्तिकी रक्षक और पुरुष विनाशक हैं

वनस्पतियों और पशुओंमें बड़ा भारी अन्तर इस बातका है कि वनस्पति शक्तिकी संचायक और पशु विनाशक होते हैं। वनस्पति धीरे धीरे निर्जीव पदार्थोंसे बिना प्रयास ही अत्यन्त जीवनोपयोगी पदार्थ बना लेती हैं। मट्टी, पानी, खाद और वायुसे अनेक जटिल और आश्चर्योत्पादक पदार्थ वनस्पति सहजमें ही बना देती हैं। वह शक्तिका खर्च बहुत कम करती हैं और उपार्जन अधिक। पशु निर्जीव पदार्थोंसे तो काम चला ही नहीं सकते, उन्हें तो बना बनाया मसाला वनस्पतियों अथवा पशुओंसे लेना पड़ता है। उनमें अधिक चंचलता और क्रियाशक्ति होती है, जिनसे वह वनस्पतियोंकी और अन्य पशुओंका शिकार करते हैं। वनस्पतियोंकी अपेक्षा पशुओंको शक्तिके खराब करने वाले ही समझना चाहिये।

वैज्ञानिकोंका खयाल है कि पुरुष पशुओंकी नाईं शक्तिके खराब करनेवाले और स्त्रियां शक्तिको इकट्ठा करनेवाली होती हैं। स्त्रियोंको सन्तानोत्पत्तिके लिए शक्तिका संचय करना पड़ता है; पुरुष अपनी पूंजी भी स्वाहा कर डालते हैं। स्त्रियोंका खाया पिया जातिको सन्तानके रूपमें मिल जाता है, पुरुषका प्रायः व्यर्थ ही चला जाता है।

पशु संसारमें तो नर की आवश्यकता केवल गर्भाधान करनेके लिए होती है। उसके हो चुकनेपर उसका मरना जीना बराबर होता है; उलटा जीनेसे वह खाद्य पदार्थोंका विनाश करता है। यही कारण है कि मक्खियां नरोंको, गर्भाधान होनेपर, मार डालती हैं। हां, नरोंकी मेहनत मज़दूरी और रक्षा करनेके लिए आवश्यकता पड़ती है; यद्यपि इसका प्रबन्ध मादा स्वयम् भी कर सकती हैं। परन्तु मानवी सभ्यताके विकाश, वृद्धि और स्थितिके लिए पुरुषों और स्त्रियों दोनोंका होना आवश्यक है। इसी लिए इनकी उपमा गाड़ीके पहियोंसे दी गई है। पुरुष और स्त्री जुदी जुदी वस्तु नहीं हैं, यह दोनों एक पूर्ण वस्तुके अंग हैं, इसीलिए पुरुषकी अर्द्धाङ्गिनी स्त्री को माना है।

---

## पुरुषके सिरपर ही उन्नतिका भार क्यों है ?

पुरुष स्वभावसे ही क्रियाशील, साहसी, और उद्यमी होते हैं; यही कारण है कि साधारणतया पुरुष ज़्यादा मरते हैं। पुरुषके स्वभावतः अधिक साहसी और उद्यमी होनेका एक कारण तो परम्परा है, परन्तु दूसरा और बड़े महत्वका कारण एक और जान पड़ता है। स्त्रीका खून अधिक पतला होता है। यदि एक घन मिलीमीटर रुधिर दोनोंका लिया जाय तो पुरुषके रुधिरमें ५२ लाख और स्त्रीके रुधिरमें ४६ लाख लाल रक्त कण मिलेंगे। यह पुरुष और स्त्रीमें बड़ा भारी शारीरिक भेद है। पुरुष ही इस लिए शारीरिक संगठन और मानसिक गुणोंमें परिवर्तन करता रहता है, जिसपर ही जातिका विकाश निर्भर है। वह नये नये रास्ते निकालता है; वही अधिक चंचल है, वही अधिक आगे, और अधिक पीछे भी, जाता है। प्रतिभा और पागलपन, दोनों ही पुरुषोंमें अधिकतर पाये जाते हैं।

यही कारण है कि खुशहाल घरोंमें और प्रौढ़ावस्थामें लड़कियां अधिक पैदा होती हैं।

सूरजप्रसाद खन्नाके प्रबन्धसे हिन्दी साहित्य प्रेसमें मुद्रित, तथा विज्ञान परिषद्, प्रयागसे प्रकाशित।

# विषय सूची





---

## सूचना

किसी स्थानके मंत्री ओसवाल हितकारिणी सभाने हमारे पास ३) मनीआर्डर द्वारा भेजे थे। परन्तु मनीआर्डरके कूपनमें जगहका नाम नहीं था। इस लिए हम इस सभाको विज्ञान भेजनेमें असमर्थ हैं। यदि कोई सज्जन हमें उस स्थानका नाम बतला सकें तो बड़ी कृपा होगी।

—मैनेजर।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १४ { कुम्भ, संवत् १९७८ । फरवरी, सन् १९२२ { संख्या ५

## भारत गीत ७२

### मातृ भूः

हिमनगभूषितभालां, सुरधुनिजलधौतजानपदजालाम्
प्रकृतिविभूतिविशालां वन्दे त्वां त्रिदशकोटिजनपालाम्
अभिनवजीवनपूर्णां परहितनतूर्णां परार्थिपरिकीर्णाम्
साधितदीनोद्धरणां वाधितसर्वाधिसंघसंसरणाम्
दिशि दिशि वितरितधान्यां विनयवदान्यां मनस्विसंमान्याम्
संवर्द्धितसौजन्यां ध्याये धन्यां धरित्रिमूर्धन्याम्
वर्णचतुष्कमजुष्टां शिष्टामगजगदनुक्रमज्येष्ठाम्
सदसद्ज्ञानगरिष्ठां सत्येष्टां स्वात्मशासनसचेष्टाम्
करुणावरुणायतनां प्रयतानन्दप्रदानुभावयुताम्
सुधृतपयोनिधिरसनां कृषिवनवसनां श्रुतौ कृतव्यसनाम्
पूर्वतपः प्रतिबिम्बां शुचिप्रभाभासुरां शुभारम्भाम्

मज्जीवनावलम्बां वन्दे मज्जन्ममेदिनीमम्बाम्
त्वं मे मा त्वममाया त्वं सेव्या मे त्वमेव हि सहाया
त्वं सत्या त्वनपाया स्तुत्या नित्या त्वमीश्वरीमाया
त्वं मे कुरु हृदि वासं स्वान्तःसन्तापसन्ततिनिरासम्
शतसौभाग्यविलासं सततं स्वातन्त्र्यसम्पदुल्लासम्

श्री पद्मकोट
१२-१-२२

—श्रीधर पाठक

## ज्वर शुश्रूषा तथा चिकित्सा

[ ले०—डा० बी. के. मित्र, एल. एम. एस. ]

चिकित्सा दो प्रकारकी होती है। (१) साधारण (२) विशेष। यह स्पष्ट है कि न केवल हरएक प्रकारके ज्वरके, बल्कि हरएक व्यक्ति विशेषकी प्रकृतिके अनुसार चिकित्सामें विशेषता होनी चाहिये। पर निम्नलिखित उपचारकी शैली तथा चिकित्सा-प्रणाली कुछ परिवर्तनोंके साथ प्रायः सभी रोगोंमें कार्यकर हो सकती है।

रोगी गृह

रोगीको एक खुले हुए कमरे या दालानमें जहां किसी किस्मका .गुलगपाड़ा न हो रखना चाहिये। यह कमरा जितना बड़ा हो उतना ही अच्छा है, किन्तु कमसे कम एक बीमारके लिए ३ गज़ × ३ गज़ स्थान ज़रूर होना चाहिये। ऊपरका मकान नीचेके मकानसे अच्छा होता है। जाड़ोंमें उत्तर-मुखसे दक्षिण-मुख घर गरम और रौशन रहता है, पर साधारणतः पूर्व मुखसे पश्चिम-मुख घर जियादा गरम होता है। रोगीगृहके अन्दरसे बेज़रूरी असबाब निकाल देना चाहिये, और उस कमरेको साफ सुथरा रखना चाहिये। रोगीगृहमें यदि रोशनी ज़ियादा मालूम हो, तो पर्दों वा चिकोंके द्वारा कमरेमें अन्धेरा कर सकते हैं, परन्तु किसी हालतमें भी रोगीके कमरेको हवा-बन्द सन्दूककी तरह न बनाना चाहिये, जैसा कि लोग निमोनिया आदि फेफड़ेकी बीमारियोंमें वा शीतकी दशामें किया करते हैं। ठंडसे बचानेके लिए रोगीके सामनेकी खिड़की वा दर्वाज़ेको, जिससे ठंडी हवाके झोंके सीधे रोगीके शरीरपर लगते हों, बन्द कर सकते हैं वा पर्देसे ओट कर सकते हैं। परन्तु उस कमरेमें हवाके आने जानेका रास्ता कहीं न कहीं अवश्य छोड़ देना चाहिये।

शरीरको आवश्यकतानुसार गरम कपड़ोंसे ढांके रखना चाहिये। शीतकी दशामें गरम पानीकी बोतलोंको कपड़ेमें लपेट कर पैरके तलवे तथा शरीरके अन्य भागोंके साथ लगाये रखना चाहिये अथवा उढ़ानेके कपड़ोंको आगपर गरम करके शरीरको ढांक दे, पर मुंह खुला रखे।

मामूली लोहेकी अंगीठियोंमें कोयले दहका कर कमरेको गरम करना, रोगीके लिए बहुत ही हानिकर है। क्योंकि आंचसे न केवल हवाका एक प्रधान भाग ( ओषजन ) नष्ट होकर "कर्बन-द्वि-ओषिद" बन जाता है; बल्कि लोहेकी अंगीठियोंमें ताजे कोयले दहकानेसे एक उससे भी अधिक दूषित वायु ( कर्बन-एक-ओषिद ) पैदा होती है,

जिससे कितनी ही दफे स्वस्थ मनुष्य भी बेहोश होकर मर जाते हैं। अतएव नीली लो देती हुई अंगीठीको कभी कमरेके अन्दर न लाना चाहिये, पर कोयले दहक चुकनेके पीछे अंगीठीको रोगी गृहमें थोड़ी देरके लिए रख सकते हैं। कोठियोंके आतिशदानके अन्दर लकड़ीकी आग जलानेसे वायुके निरन्तर परिवर्तन होनेके कारण बाहरसे ताज़ी हवा आती रहती है।

मनुष्योंके फेफड़ों से भी "कर्बन-द्वि-ओषिद" वायु तथा अन्य प्रकारके दूषित पदार्थ निकलते रहते हैं। इसलिए रोगी-गृहमें बहुत से आदमियोंका जमघटा लगाना भी हानिकर है। विशेष कर संकटापन्न दशामें सारे परिवार तथा कुटुम्बियोंके एक छोटेसे कमरेमें जमा हो जानेसे न केवल दूषित वायुसे उसकी भौतिक हानि होती है, बल्कि उनके रोने पीटने आदि निराशाजनक बातोंसे रोगीका मानसिक अनिष्ट भी होता है।

### रोगी-गृहका सामान

चारपाई वा बिस्तर—रोगीके लिए यदि चारपाई लोहे और मोटे तारकी न हो, तो मोटे बानकी बुनी हुई होना ही अच्छा है, पर वह खूब तनी हुई हो। संक्रामक रोगोंमें व्यवहारके अनन्तर कमसे कम बानको काटकर जला देना चाहिये। बिस्तरके लिए बहुत मोटा गद्दा न होना चाहिये। नीचे बिछानेके लिए तोशकके बजाय मोटा कम्मल वा साधारण गाढ़ेके गिलाफके अन्दर मुलायम फूँस भरकर व्यवहार किया जा सकता है, और फूँसको व्यवहार करनेके अनन्तर जला देना चाहिये। कम्मल वा फूँसकी तोशकके ऊपर एक दरी और दरीके ऊपर एक चादर होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त चादरके ऊपर मध्य-भागमें रोगीके कूल्हेके नीचे एक और कपड़ा दो तह करके आड़ा बिछाकर उसके दोनों सिरे बिस्तरके नीचे खूंस देने चाहियें; इसको अंग्रेजीमें "ड्रैशीट" कहते हैं। शौच आदिसे ख़राब होनेपर यह बीच बीचमें बदल दिया जा सकता है। कभी कभी इसके नीचे एक टुकड़ा ख़रका, बरसाती या "औयल् क्लौथ" बिछाना भी ज़रूरी होता है। तकिया बहुत ऊँचा और सख़्त न होना चाहिये; क्योंकि इससे ठोड़ी झुककर सांस लेनेमें बाधा होती है। इसलिए एक चौड़ा नरम तकिया रोगीके सिर गर्दन और कन्धे के नीचे तक रखना अच्छा है। बल्कि नाज़ुक हालतोंमें, जैसे कि ऑपरेशन वा सन्तानोत्पत्तिके अनन्तर केवल गर्दन और कन्धेके नीचे तकिया लगाकर सिर पीछेको झुका देना चाहिये कि जिससे सांस लेनेमें ज़रा भी बाधा न हो। स्पष्ट है कि बिस्तरमें सिलवटें तक न रहनी चाहियें, जिससे रोगीके आराममें विघ्न होता है। बीच बीचमें मैली चादरको पलट देना चाहिये। यदि रोगी उठ बैठ न सके, तो चादर व बिस्तर बदलनेके लिए सबसे अच्छा नियम यह है कि एक और उसी प्रकारकी चारपाई पर नया बिस्तरा लगाकर, रोगीकी गर्दन और कमरके नीचे हाथ डालकर आहिस्तेसे नई चारपाई पर ले आयें और पुरानी चारपाई तथा बिस्तर आदिको शुद्ध होनेके लिए धूपमें डालदें। ऐसे रोगियोंकी चादर पलटने वा कपड़ा पहिनानेके लिए विशेष नियम भी हैं, जो एक दफे देखने पर वर्णनसे अधिक सुगमतासे समझमें आ सकते हैं।
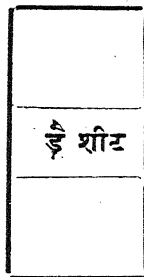
ड्रै शीट

और सामान—चारपाईके अतिरिक्त इस घरमें एक दो तकियेदार मोढ़े वा कुर्सियां चिकित्सक वा परिचारकके बैठनेके लिए होने चाहियें। रोगीके कुल्ली आदि करनेके लिए एक बड़ा उगालदान और उसके आवश्यक सामान रखनेके लिए एक तिपाई वा जालीदार 'डोली' नियामत ख़ाना (Meat Safe) का होना भी आवश्यक है, जिसपर सेवनकी ओषधियां, पीनेका जल वा अन्य पेय पदार्थ तथा "फीडिंग कप" आदि रखे रहें; परन्तु बाह्य प्रयोगकी ओषधियां जो प्रायः विषैली होती हैं, इसपर कभी न रखनी चाहियें।

जहांतक हो सके रोगीको लिटाये रखना चाहिये, पर हमेशा चित नहीं; बीच बीचमें करवट बदलवानी चाहिये, नहीं तो दो तीन सप्ताह तक हमेशा चित पड़े रहनेसे एक विशेष प्रकारकी खांसी पैदा हो जाती है; और पुट्ठेकी निकली हुई हड्डियोंके उपर त्वचामें दबावसे जख़म पड़ जाते हैं, जिनको शैय्या-व्रण कहते हैं। आरोग्योन्मुख रोगीको यदि वह चाहे, तो थोड़ी देरके लिए किसी चीज़ ( तकियेदार मोढ़ा, कुर्सी आदि ) के सहारे बिठा देनेमें कोई हानि नहीं; बल्कि बिस्तर पर भी एक सामान्य काठका चौखटा बनाकर, जिसमें कोई मोटा कपड़ा तान दिया जाय दिवालके सहारे रख देनेसे रोगी उसमें आराम कुर्सीकी तरह सहारा देकर बैठ वा लेट सकता है। अस्पतालोंमें इस प्रकारका एक यन्त्र "बेडरेस्ट" नामक व्यवहार किया जाता है।

उन्मत्त अवस्थामें यद्यपि रोगीको लिटाये रखना ही प्रशस्त है, तथापि उसको जबरदस्ती खाटपर दबाये वा बांधे न रखना चाहिये। यदि उसको थोड़ी देर घरके अन्दर चलने फिरने दिया
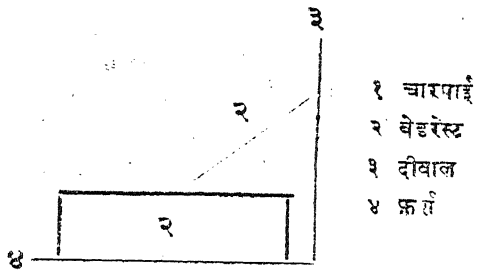
जाय तो वह थककर आप ही शान्त हो जाता है। पर क्षीणदशामें रोगीको मल-मूत्र त्याग करने तकके लिए भी उठाना बिठाना न चाहिये; क्योंकि इससे हृत्पिण्डपर अधिक ज़ोर पड़ता है। इसी तरह "टाईफ़ोयड" आदि अधिक काल स्थायी ज्वरोंमें रोगीको आरम्भसे ही "बेडपैन" ( मल त्याग पात्र ) में मल-मूत्र त्याग करनेका अभ्यास डाल देना चाहिये; नहीं तो पीछे जब उसकी मानसिक अवस्था ख़राब हो जाती है, तब वह उसके व्यवहारमें जियादे हुज्जत करता और घबराता है। स्पष्ट है कि ऐसी दशामें रोगीको लेटे लेटे ही खिलाना पिलाना भी चाहिये। इसके लिए लोग मामूली तुतईका व्यवहार करते हैं; परन्तु उसकी टोंटीके जोड़पर जाली आदि रहनेके कारण उसमें मैल जमा हो जाता है। आजकल देसी बने हुए चीनी मिट्टीके "फ़ीडिंग कप" मिल सकते हैं, जिनमें जाली न रहनेके कारण अधिक साफ रखे जा सकते हैं। परन्तु इस प्रकारके पात्रोंमें "आइडियल्" ( Ideal ) और "मौ" ( Maw ) का पेटेण्ट फ़ीडिंग कप, जिनमें टोंटी ही नहीं होती, सफाईके लिहाज़से सबसे अच्छे हैं। अंग्रेज़ी दवाख़ानोंमें एक एक रुपयेमें मिल सकते हैं; अतएव हरएक घरमें रखनेके योग्य हैं।

बेडपैन दो प्रकारके होते हैं (१) गोल और (२) चट्टी जूतीके आकारका। बिस्तर पर लगानेके लिए दूसरे प्रकारका पात्र ज़ियादा उपयोगी होता है। परन्तु इनकी कीमत अधिक होनेके कारण जो साधारण गृहस्थी इनको व्यवहार नहीं कर सकते, वह कूंडे आदि व्यवहार करें। मूत्रके लिए भी विशेष प्रकारके पात्र व्यवहार किये जाते हैं; पर पुरुषोंके वास्ते चौड़े मुंहकी साधारण बोतलोंसे भी वह काम लिया जा सकता है।

### रोगीके प्रति व्यवहार

यह बात याद रखनी चाहिये कि शरीर पर मनका बड़ा भारी प्रभाव होता है। इसलिए जहांतक हो सके रोगीको नाराज़ न करना चाहिये। यद्यपि कभी कभी रोगी असङ्गत बातें चाहता है, किन्तु ऐसी हालतमें भी उससे नरमीसे काम लेना चाहिये। उसको कोई ऐसी बात बता देनी चाहिये, जिससे उसका जी बहल जाय और उसके विचार उस तरफसे हट जायँ। यद्यपि बहुत समय ज्वरका रोगी प्रलाप भी करता है, किन्तु अपने खयालसे युक्ति सङ्गत ही कहता है। ऐसी दशामें अगर उसको पागल समझ कर उसका अनादर किया जाय

तो वह अपने दिलमें बहुत कुढ़ता है। अगर रोगी कोई बात पूछे तो उसका जवाब सन्तोषजनक और संक्षिप्त होना चाहिये। जवाब चाहे गलत क्यों न हो; पर निराश करनेवाला वा सन्देहजनक न होना चाहिये। नहीं तो रोगी प्रश्नके जवाबके लिए बे फ़ायदा सिर धुनता है। इससे उसकी हालतपर बुरा असर होता है। रोगीके सामने कोई ऐसी बातचीत न करनी चाहिये, जिससे वह अपने स्वास्थ्यके बारेमें सन्दिग्ध हो जाय। जो कुछ कहना हो "यदि वह कहने योग्य" है तो इस तरहसे कहना चाहिये, जिससे वह सब सुन सके। काना-फूसी करनेसे रोगी समझता है कि मेरी दशा शोचनीय है। रोगीको किसी बातमें बहस करनेका मौका न देना चाहिये। रोगी-गृहमें कुटुम्बियों और बन्धुवर्गको आनेसे रोकना चाहिये; विशेषकर जब रोगी कोई प्रसिद्ध व्यक्ति हो, जैसे किसी दफ्तरके बड़े बाबू तो लेखक ऐसी दशामें बाहरके दर्वाजे पर एक सूचना पत्रके साथ कुछ छोटे छोटे कागज़ वा कौपी और पेन्सिल बांधकर लटका देता है, जिसपर बन्धुवर्ग आनकर अंग्रेजी कायदेसे अपना कार्ड छोड़ जायँ वा नाम लिख जायँ। उपचारकको भी रोगीके सिरहाने की तरफ़ बैठना चाहिये, जिससे रोगीको अधिक बोलनेका अवसर न मिले, पर ज्वर रोगीको कभी अकेला न छोड़ना चाहिये; क्योंकि कितनी ही बार शान्त प्रकृतिके रोगी भी मानसिक विकृतिके कारण घरसे निकल भागे हैं और कुए आदिमें गिरकर मर गये हैं।

रोगीका पथ्य

ज्वरावस्थामें भी लोगोंको खाद्यकी वैसी ही आवश्यकता होती है जैसी कि स्वास्थ्यमें। सिर्फ फ़र्क़ इतना ही होता है कि ज्वरकी दशामें हम मामूली खुराक को हज़म नहीं कर सकते। मामूली खुराकके बदलेमें जो चीज़ें रोगीको दी जाती हैं, उसको पथ्य कहते हैं। ज्वर-रोगीका खाना पीना बिल्कुल बन्द करना बड़ी ग़ल्ती है। माना कि रोगी चलता फिरता नहीं, तथापि उसके शरीरके अवयव कार्य करते रहते हैं और धातु तेज़ीसे जलते रहते हैं। इसलिए यदि खुराक न दी जाय तो वह बहुत ही दुर्बल हो जायगा।

ज्वर-रोगीके लिए दूध ही सबसे अच्छा खाद्य है, कारण कि इसमें शरीरके उपयोगी सारे ही उपादान मौजूद रहते हैं। १०० भाग गौके दूधमें प्रायः ४ भाग मांस जातीय पदार्थ (पनीर), ४ भाग घृत और ४ भाग शर्करा, १ भाग लवण तथा ८७ भाग जल होता है। पर कभी कभी रोगी, पेटमें पनीरके गुट्ठल बंध जानेके कारण, दूध ठीक हजम नहीं कर सकता। इसलिए दूधके साथ किसी प्रकारका मांड़ मिलाकर देना अच्छा है, जिससे सख़ गुट्ठल नहीं बंधने पाते। इस देशमें साबूदानेके मांडका ही प्रायः रोगीके लिए व्यवहार होता है। पर अन्य मांड भी, यथा चावलका पोढ, खील, मुरमुरे आदि, उबाल कर उनका मांड, कच्चे वा भुने हुए जौका मांड तथा अरारोट, यह सब उपयोगी हैं। अरारोटका विशेष गुण यह है कि वह आँतोंके प्रदाहको शान्त करता है, इसलिए दस्तोंकी हालतमें विशेष हितकर है। कच्चे अनाजोंकी अपेक्षा लेखक भुने हुए अनाजोंके मांडको जैसे कि जौकी बौरियां, मुरमुरा आदिको अधिक पसन्द करता है; क्योंकि इनमें निशास्ता कुछ कुछ शर्करामें परिणत हो जाता है। अतएव छोटे बच्चोंको जो निशास्ता हजम नहीं कर सकते विलायती "पर्ल बार्ली" की जगह देसी जौकी बौरियोंका मांड व्यवहार कराना चाहिये। यह मूत्रल भी होता है, अतएव ज्वर रोगीके लिए बहुत उपयोगी है।

चूनेका पानी ( १ पाव दूधमें ½ से १ छ० ) और सोडियम सिट्रेट ( पाव भरमें ½ से १ माशा ) मिलाने से भी यही लाभ होता है पर चूना जरा क़ाबिज़ होता है, इसलिए दस्तोंकी हालतमें यह दिया जा सकता है। अधिक दस्त आने वा अजीर्ण की दशामें दूधसे पनीर कुछ कालके लिए थोड़ा बहुत निकाल दिया जा सकता है। इसका तरीका

यह है कि गरम दूधके अन्दर ताजा नीबू निचोड़ते जायँ, जब तक दूध फटने न लगे। फिर पनीरको कपड़ेमें छानकर दूधकी कांजी मीठा या नमक मिलाकर रोगीको दी जा सकती है। छना हुआ पनीर और लोग खा सकते हैं। यह अति पुष्टिकर और रोचक खाद्य है, कारण कि पनीर दूधका मांस है। जिगरके रोगोंमें कि जब सफेद रंगके चिकने दुर्गन्धित पाखाने आया करते हैं मक्खन निकाला हुआ मेशीनका दूध (Separated milk) भी दिया जाता है। गुर्देके रोगोंमें घी निकाला हुआ खट्टा मठा भी अच्छा होता है। ज्वर-रोगीके लिए यह सब (लस्सी) आदि बहुत ही उपयोगी हैं, पर एक ही प्रकारके पथ्यका बहुत दिन तक सेवन करते रहनेसे रोगी उससे उकता जाता है। अतएव दूधके अतिरिक्त रोगीको दालका पानी चटपटा बनाकर, हड्डियोंका यूष, अंडेका पानी (अंडेकी सुफ़ैदी १ भाग, पानी ६, भाग नमक पर्याप्त, छानकर) रसीले फलोंके रस—जैसे कि नारंगी, अनार, अंगूर, सेव आदिके रस—दिये जा सकते हैं। गरीब रोगियोंके लिए लेखक नरम गंडेरियों पर एक आध बूंद नीबू या गुलाब निचोड़ कर व्यवस्था करता हैं।

स्वास्थ्योन्मुख रोगियोंको थोड़ा सा ठोस खाद्य भी दिया जा सकता है, जिसके लिए नमकीन मुरमुरे रोचक तथा लघु पथ्य हैं। अध उबला अंडा और सफेद मछली, नानपाव, नरम चावल, पतली खिचड़ी, साबूदानेकी खीर आदि चीज़ें भी यथा समय दी जा सकती हैं, पर मण्ड जातीय पदार्थोंको नरम वा तरल होने पर भी चमचेके जरिये थोड़ा थोड़ा करके और मुँहमें घुला घुलाकर खाना चाहिये। याद रखना चाहिये कि मण्ड तथा शर्करा जातीय पदार्थ अग्नि-उत्पादक होते हैं; अतएव ज्वर रोगीके लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इसके विरुद्ध मांस जातीय पदार्थ न केवल दुष्पाच्य ही होते हैं, बल्कि उनका मल गुर्दोंसे छननेके कारण, जो ज्वरमें पहिलेसे ही प्रदाहयुक्त हो जाते हैं, रोगीके लिए बहुत लाभदायक नहीं होते। पर हड्डीके यूषका सेवन अन्य धातुओंकी रक्षा करता है, इसीलिए ज्वर-रोगीको हितकर है।

ज्वर रोगीके लिए जल न केवल पथ्य है, बल्कि औषध भी है। शरीरके जले हुए धातु जलमें द्रवित होकर ही मूत्र और स्वेदके रास्ते निकलते रहते हैं। अतएव बेहोश बीमारको जगा जगा कर भी थोड़ा थोड़ा जल देना चाहिये। सोडावाटर तथा अत्यन्त शीतल (बर्फ़ का) पानी अथवा अत्यन्त गरम जल जो पिया जा सके वमनको रोकते हैं। अर्ध-उत्तप्त जल वमनकारी होता है। साधारण पित्त ज्वरोंमें जलके साथ थोड़ी सी शर्करा तथा नीबूका रस मिलानेसे न केवल वह रोचक हो जाता है, बल्कि उपकारी भी है। साधारण ज्वरोंमें हलकी चाय तथा कोको भी दिया जा सकता है। चाय वा कोको मिलानेसे बहुत लोग दूधको आसानीसे पी लेते हैं।

### ज्वर-चिकित्सा

ज्वरारम्भमें कोई लघु विरेचक (दस्तावर); जैसे कि रातको ३ माशे छोटी हड़ कूट कर वा दिनको २ तोले शुद्ध अरण्डीका तेल, देना अच्छा है। पर यह दोनों स्वादिष्ट नहीं, इसलिए एक स्वादिष्ट विरेचक भी घरमें रखना चाहिये, जैसे "पल्भ गिलसिराइज़ा कम्पौन्ड" (मात्रा ३—६ माशे रातको पानी या दूधके साथ) यह बवासीरको भी फायदा करता हैं।

प्यासके बुझानेके लिए उबला हुआ शीतल वा उष्ण जल जितना भी चाहे देना चाहिये, क्योंकि यह मूत्रल प्रभाव रखता है।

उत्तापके घटानेके लिए शरीरको ५—१० मिनट तक ठंडे वा गुन गुने पानीसे दिनमें कई बार (जब कभी ताप क्रम १०३° से अधिक हो जाय) रगड़ना चाहिये। यह टाइफोयड आदि अविराम ज्वरोंमें बहुत ही लाभदायक है।

मलेरिया आदि अल्प स्थायी ज्वरोंके लिए, तापघ्न औषधियोंमें हम केवल "एस्पिरीन" ५ से

२० ग्रेन तक की मात्रामें ३—३ घंटेके अनन्तर देना ठीक समझते हैं। यह शिरः पीड़ा और हड़-फूटनके लिए अत्यन्त लाभदायक है। इसको टिकियाएँ मिलती हैं।

यदि शिरः पीड़ा अधिक हो, तो इसीके साथ ५ ग्रेन "ब्रोमाइड् ऑफसोडियम्" दिया जा सकता है। यदि रोगी बहुत प्रलाप करे तो ब्रोमाइड्की मात्रा चौगुनी तक बढ़ाई जा सकती है।

मलेरियाके ज्वरोंमें बुखारका उतार शुरू होनेपर फौरन १० ग्रेन क्विनोन नीबूके शर्बतके साथ देनी चाहिये, यदि पहिलेसे दस्त कराये गये हों। साधारणतः दूसरी मात्रा क्विनीनकी ५ ग्रेनकी ही पर्याप्त होती है।

टाइफोयड आदि निरन्तर ज्वरोंमें इस बात पर नज़र रखनी चाहिये कि रोज़ाना एक दो पाखाने आते रहें। अधिक दस्त आनेपर १० ग्रेनकी मात्रामें "बिस्मिथ सैलेसिलेट्" दिनमें ३-४ बार दिया जा सकता है। बिस्मिथके साथ समान भाग "हिंगाष्टक चूर्ण" मिलानेसे न केवल दोनोंका स्वाद ही अच्छा हो जाता है, बल्कि कुछ पाचक बन जानेके कारण यह योग बहुत उपकारी साबित हुआ है।

यदि रोगीको पेचिश हो जाय तो उसके दस्तोंको फौरन बन्द न करना चाहिये। ऐसी दशामें अरंडी का तेल छोटी छोटी मात्राओंमें एक छोटी चायकी चमची भर (३ मासे) दिनमें ४, ५ बार दिया जा सकता है। इसी तरह ६ माशे ईशपगोलके बीज दही या खाँड़ मिला कर निगल जाना मृदु सारकका काम करता है और आँतोंकी ख़राशको भी घटाता है।

खाँसीके लिए "वाइनम् इपिकैक" की २० बूंद देनी चाहियें। यह अति सुन्दर कफ विलायक है। अधिक मात्रामें वमनकारक भी है। बच्चे जो कफको नहीं निकाल सकते उनको गुन गुने पानीमें ज़रा नमक मिलाकर पिलाना चाहिये और फिर गलेमें उँगली डालकर बीच बीचमें कै करा देनी चाहिये। इससे पसलीकी खांसीमें बड़ा लाभ होता है।

खांसीमें सीनेपर मलनेके लिए १ भाग यूकालिप्टस आयल और ४ भाग खोपरा वा सरसोंका तेल मिला कर मालिश करना बहुत लाभदायक है। सीनेके दर्द आदिको खोनेके अतिरिक्त यूकालिप्टसकी गन्ध बलग़मके लिए उपकारी है। इसके अतिरिक्त यही मालिशका तेल छोटे घाव आदिपर बांधनेसे भी लाभदायक हो सकता है।

घरमें रखने योग्य एक और औषधि "टिंचर बेंज़ोइन कम्पौण्ड" है। उबलते हुए पानीमें डालकर इसका भपारा निमोनिया, पसलीकी खाँसी आदिमें देना लाभदायक है और साधारण दुर्गन्धित बलगममें खांड वा मीठे दूधके साथ सेवन किया जाता है। यह, ताज़े कटे हुए ज़ख्मपर फायेसे लगा देनेपर, घावको पकने नहीं देता; बल्कि इसकी बत्ती रखनेसे नासूर भी भर जाता है।

निमोनिया आदि ज्वर जब सहसहा बहुत पसीनेके साथ उतर जाते हैं और हृत्पिण्डकी क्षीणतासे दिल घबराने लगता है उस समय एक उत्तेजककी भी आवश्यकता होती है। इसके लिए घरमें "स्पिरिट ईथर सल्फ" (उड़ने और जलनेवाली चीज होनेके कारण) मज़बूत शीशीमें कड़ा डाट लगाकर रखना चाहिये। इसकी १५-३० बूंद तक १ छटांक ठंडे पानीके साथ सेवन करानी चाहियें। यह हृत्पिण्डका उत्तेजक, वायु निःसारक (डकार लानेवाला) और हाज़मा बढ़ानेवाला भी है।

संक्रामक रोगोंमें रोगी वा उसके मल मूत्रको छूनेके अनन्तर उपचारकका हाथ वा रोगीके बिस्तर आदि धोनेके लिए एक अच्छे जीवाणु नाशक पदार्थकी भी आवश्यकता है। इसके लिए घरेलू दवा "लाइसोल" है। इसका २ प्रतिशत घोल (३ पावकी बड़ी बोतल पानीमें ४ छोटी चायकी चमची वा सवा तोला लाइसोल मिलाकर) साधारणतः व्यवहार करनेसे साबुन और जीवाणु नाशकका काम देता है।

पाठक यदि आप अपने डाक्टरकी सहायतासे उपर्युक्त औषधियोंके गुणोंको समझलें, तो डाक्टरकी अनुपस्थितिमें आप इनसे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। इनका मूल्य भी अधिक नहीं।

# रसायनशास्त्रका देशकी आर्थिक दशासे सम्बन्ध

[ले०—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, एम.एस-सी., एफ.सी.एस.]
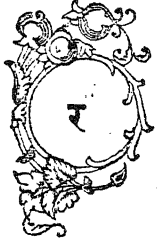
रसायन शब्द 'रस' से निकला है। हिन्दू वैद्यक ग्रन्थोंमें सारे खनिज पदार्थ 'रस' और 'उपरस' दो भागोंमें विभक्त हैं। यद्यपि रस शब्द किसी खनिज के लिए प्रयुक्त हो सकता है, तथापि इसका विशेषतः पारेके लिए प्रयोग होता है। चरक और सुश्रुतादि प्राचीन ग्रन्थोंमें यह साधारण अर्थमें प्रयुक्त हुआ है और सुश्रुतमें रस-क्रियाका निचोड़ कर अर्क (Extract) निकालनेके अर्थमें प्रयोग हुआ है।

> साल सारा द सारेषु पटोल त्रिफला सुच।
> रसक्रिया विधातव्या शोधनी शोधनेषुच।

आदि कालमें केवल जड़ी और बूटियाँ ही औषधोंमें काम आती थीं। धीरे धीरे खनिज पदार्थोंका, विशेषतः पारे और पारेके बने पदार्थोंका, प्रयोग होने लगा। जैसे जैसे इसका प्रयोग बढ़ने लगा तैसे तैसे यह शब्द पारे और पारेके बने पदार्थोंके लिए व्यवहार होने लगा। पारेके लिए इस शब्दके प्रयोग होनेका एक यह भी कारण है कि पारा साधारणतः तरलावस्थामें रहता है। भाव प्रकाश एक प्रमाण वैद्यक ग्रन्थमें रस शब्दका कहीं प्राचीन और कहीं अर्वाचीन अर्थमें प्रयोग हुआ है।

> सम्यक् पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितो रसः
> सतुद्रवः सितः शितः स्वादुः स्निग्धश्चलोभवेत।

यहां रस शब्दका प्राचीन अर्थमें प्रयोग हुआ है। पुनः

> रसायनार्थिभिर्लोकैः पारदो रस्यते यतः
> ततोरस इति प्रोक्तः सच धातुरपि स्मृतः

यहाँ रस शब्दका पारेके अर्थमें प्रयोग हुआ है।

रसायन शब्दमें रसके सिवा 'अयन' दूसरा शब्द है जिसका अर्थ 'मार्ग' है। शारङ्गधरने लिखा है "रसायनञ्च तज्ज्ञेय यज्जराव्याधि विनाशनम्" अर्थात् रसायन उस शब्दको कहते हैं जो वृद्धावस्था और रोगका नाश करे। इस अर्थमें इस शब्दका बहुत प्राचीनकालमें व्यवहार होता था। पीछे यह शब्द पारा अथवा दूसरे धातु जो दवाइयोंमें काम आते थे उनके लिए भी प्रयुक्त होने लगा। आजकल इन अर्थोंके अतिरिक्त यह कीमिया (Alchemy) अर्थात् लोहे आदिसे सोना बनानेकी कलाके अर्थमें भी प्रयुक्त होता है।

आधुनिक रसायन शास्त्र उन घटनाओंकी व्याख्या करता है जो वस्तुओंकी प्रकृति एवं संगठनमें परिवर्तनसे उत्पन्न होती हैं; न कि केवल वस्तुओंकी बाहरी अवस्थाके परिवर्तनसे। रसायन शास्त्रका स्पष्ट और यथार्थ ज्ञान होनेके लिए रासायनिक परिवर्तनका आशय ठीक तरह समझना बहुत आवश्यक है। जितनी क्रियाएं हम लोगोंकी चारों ओर हो रही हैं जैसे लकड़ीका जलना, पानीका बरसना, बर्फका गलना, बारूदका भड़कना, वह या तो रासायनिक है अथवा केवल भौतिक। इन क्रियाओंको जब हम लोग सूक्ष्म दृष्टिसे जाँच करते हैं तब मालूम होता है कि उनमें किसी न किसी प्रकारका परिवर्तन अवश्य हो रहा है। जब लकड़ी जलती है तब ताप, प्रकाश और धुएंका उत्पन्न होना देखा और अनुभव किया जाता है। कुछ समयके बाद लकड़ी बिलकुल लोप हो जाती है। जब बर्फ गलती है तो देखा जाता है कि एक ठोस पदार्थ तरल पदार्थमें बदल जाता है। लकड़ीके जलने और बर्फके पिघलनमें बड़ा अन्तर है। जलनेमें लकड़ीसे बने पदार्थ ताप, प्रकाश और धुएंसे यदि हम लोग चाहें तो फिर लकड़ी नहीं बना सकते; किन्तु जलसे बर्फ बहुत सरलतासे बनायी जा सकती है। बर्फमें केवल बाहरी अवस्थाका परिवर्तन हुआ है किन्तु लकड़ीमें बाहरी अवस्थाके साथ साथ उसकी प्रकृतिमें भी परिवर्तन हुआ है

बर्फके गलनेकी भाँति जब परिवर्तन केवल बाहरी अवस्थामें ही होता है और पदार्थका संगठन पूर्ववत ज्योंका त्यों बना रहता है, तो ऐसे परिवर्तनको भौतिक परिवर्तन कहते हैं, ठीक इसके प्रतिकूल जब एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें परिवर्तन हो जाता है और इस परिवर्तनसे बाहरी अवस्थाके अतिरिक्त उसकी प्रकृति और संगठनमें भी परिवर्तन होता है, जैसा कि लकड़ीके जलनेमें होता है, तो उस परिवर्तनको रासायनिक परिवर्तन कहते हैं। रसायन शास्त्र ऐसे ही परिवर्तनोंसे सम्बन्ध रखता है। प्रस्तुत लेखका उद्देश्य यह बतलाना है कि इस आधुनिक रसायन शास्त्रके अध्ययन और देशकी आर्थिक दशाका परस्पर कितना घना सम्बन्ध है।

मनुष्य मात्रकी आवश्यकताएं दिन प्रतिदिन बढ़ रही हैं। कुछ दिन पूर्व जिन वस्तुओंका नामो-निशान नहीं था वह आजकल जीवनकी आवश्यक वस्तुओंमें गिनी जाती हैं। कुछ समय पूर्व रेल, जहाज़ तार इत्यादि वस्तुओंको कोई जानता भी नहीं था। गोर ( Gore ) नामक एक पाश्चात्य लेखकने लिखा है कि १३वीं शताब्दीमें यूरोपनिवासी विदेशी मद्य, विदेशी खाद्य वस्तु फल इत्यादि, घड़ी, लोहेका कलम, चिट्ठीके कागज, हुण्डी, मनीआर्डर, डाक घर, पुलिस, तार, पक्की सड़क, ट्राम, रेल, नहर, वाष्पइञ्जन, गैसकी रोशनी, बिजलीकी रोशनी, फोटोग्राफी, पांव गाड़ियाँ, सीनेकी कलें, रेशम, अलपका, ऊन, साबुन, अलकतरेके बने रङ्ग, कृत्रिम खाद्य, स्क्रू, सलाई, पेट्रोलियम लैम्प, रबर इत्यादि बहुत सी आजकलकी उपयोगी वस्तुओंसे बिलकुल अनभिज्ञ थे। ऊपर लिखी वस्तुओंमें अधिकांश ऐसी हैं जिनको केवल सौ दो सौ वर्ष पूर्व लोग नहीं जानते थे। आज उनके बिना लोगोंका काम ही नहीं चल सकता। यदि सौ वर्ष पूर्व रसायन शास्त्रके पठन पाठनकी आवश्यकता नहीं थी तो यह कोई कारण नहीं है कि आज भी इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे समय बीतता जाता है लोगोंकी आवश्यकताएं उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं।

गत यूरोपीय युद्धके समय यह बात मालूम हो गयी है कि हम लोगोंकी ज़रूरतसे बहुत अधिक खाद्य वस्तुएं उत्पन्न नहीं होतीं और जो कुछ अधिक उत्पन्न होती भी हैं वह दूसरे देशोंमें बिलकुल खप जाती हैं। यदि विज्ञानकी सहायता न रहती—खेती वैज्ञानिक रीतिसे न की जाती और नये नये कृत्रिम खादोंसे उपज न बढ़ाई जाती—तो वर्तमान संसार-की आबादी अपना जीवननिर्वाह कभी न कर सकती। अपने देशको अकालके पञ्जेसे बचानेके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम लोग सारे संसारकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए चेष्टा करें। वर्तमान कालमें पदार्थोंको एक देशसे दूसरे देश ले जानेके साधन इतने सुलभ हो गये हैं और देशोंको एक दूसरेपर इतना निर्भर रहना पड़ता है कि इस युगमें केवल अपने ही देशकी दशा सुधारनेसे काम नहीं चल सकता। अब तो हमें सारे संसारकी ही फिक्र करनी पड़ेगी।

खाद्य वस्तुओंको पर्याप्त परिमाणमें उत्पन्न करनेके लिए कृत्रिम खादके व्यवहारका प्रचार होना अनिवार्य्य है। वैसे तो कृत्रिम खाद अनेक हैं और उनका किसी न किसी रूपमें प्रयोग हर जगह होता है, किन्तु जो कुछ प्रयोग होता है वह अन्ध परम्परागत रीतिसे होता है, न कि वैज्ञानिक रीतिसे। इसका परिणाम यह होता है कि थोड़ा बहुत खाद व्यवहार होनेपर भी उससे यथेष्ट लाभ नहीं होता। किस पौधेको किस प्रकारके खादकी आवश्यकता होती है इसके यथार्थ ज्ञानके अभावसे खादसे कभी कभी उलटी हानि भी होती है। आजकल तीन प्रकारके खादोंका प्रयोग श्रेष्ठ गिना जाता है। एक खरी, दूसरे हड्डीके बने खाद तीसरे नत्रजनीय खाद जैसे यहांका शोरा, चिली का शोरा, अमोनियम नत्रेत, गन्धेत अथवा हरिद।

भारतमें कितनी खरी उत्पन्न होती है, यह ठीक मालूम नहीं; क्योंकि अधिक भाग इसका जहां उत्पन्न होता वहां ही खर्च हो जाता है। एक अंग्रेज़ लेखकका कथन है—"India producees more

cake then she can use" अर्थात् अपनी ज़रूरतसे अधिक खरी भारतमें उत्पन्न होती है। आपका कथन निम्न लिखित तालिका पर निर्भर है।

| वर्ष | कितनी खरी भारतसे बाहर गई ( मनों में ) | मूल्य ( रुपयों में ) |
|---|---|---|
| १९१२-१३ | ४४००५५२ | १२३२०८०५ |
| १९१३-१४ | ४७६८५१४ | १३८०३७३५ |
| १९१४-१५ | ३७२४५४० | १०६३२२८५ |
| १९१५-१६ | ४०८७७७९ | ११३६२५१५ |
| १९१६-१७ | ३३९९८९१ | ९९१०४५५ |
| १९१७-१८ | २३४३५२५ | ७०७४९७५ |

परन्तु उपरोक्त बात ठीक नहीं जान पड़ती। खरी इस देशसे बाहर भेजी जाती है, इसीसे यह सिद्धांत निश्चय करना कि यहां ज़रूरतसे अधिक खरी पैदा होती है युक्तिसंगत नहीं। यहांसे बाहर जानेके कई एक कारण हैं। एक तो यह कि अभीतक यहांके किसान खादके रूपमें खरीको बहुत कम काममें लाते हैं। वही लेखक फिर लिखते हैं—"It is correct tosay that the ordinary Indian cultivator has not realised the importance of the application of suitable fertilisers to his band" अर्थात् यह कहना ठीक है कि भारतके साधारण किसान ज़मीनमें उपयुक्त खाद व्यवहार करनेके महत्वको नहीं समझे हैं। यह कथन अक्षरशः सत्य है। यह शिक्षित समाजका धर्म है कि किसानोंको इसका मूल्य समझावें और अधिक परिमाणमें व्यवहार करनेका परामर्श दें। शिक्षितोंमें भी, जो विज्ञानशिक्षा-विहीन हैं वह अभीतक इसके महत्वको नहीं समझे हैं। दूसरा कारण खरीके न व्यवहार होनेका यह है कि साधारण किसान इतने दरिद्र हैं, आर्थिक दशा उनकी इतनी गिरी हुई है, कि वह खरीका ख़रीदकर व्यवहार नहीं कर सकते। यही कारण है कि हर साल भारतमें काफी खाद्य द्रव्य पैदा होते हुये भी देशके किसी न किसी भागमें अकाल पड़ा ही रहता है। तीसरा कारण यह है कि किस चीज़की खेतीमें कौन सी खरी उपयोगी है, यह भी वह नहीं जानते। इन सब बातोंको समझने, समझाने एवं उनसे लाभ उठानेके लिए यह अत्यावश्यक है कि विज्ञान, विशेषतः रसायन शास्त्रके, पठन पाठनके प्रबन्धके साथ साथ ऐसा संगठन हो कि देशी भाषाओं द्वारा यह ज्ञान किसानोंके द्वार तक पहुंचाया जाय और यदि आवश्यक हो तो इसमें उनको आर्थिक सहायता भी देकर उत्साहित किया जाय। सरकारके कृषिविभागको अभीतक सफलता नहीं हुई है, इसका कारण यही है कि ऊपर बताये ठीक मार्गसे वहां कार्य नहीं हो रहा है। जबतक कृषिविभागके अनुसन्धानके फल प्रान्तिक भाषाओंमें प्रकाशित न होंगे और जबतक आर्थिक सहायता दे उसके प्रत्यक्ष फल किसानोंको दिखा न दिये जायँगे तब तक इस कृषिविभागसे देश और किसानोंको कोई लाभ नहीं हो सकता।

खरीके सिवा दूसरा अधिक उपयोगी खाद जिसमें स्फुरका विशेष अंश वर्तमान रहता है वह पशुओंकी हड्डियां हैं। लोगोंके अज्ञान और किसानोंके दुर्भाग्यसे बहुत अधिक मात्रामें यह हड्डियां देशसे बाहर चली जाती हैं और वहां खादके काम आती हैं। रेलके भ्रमण करते हुये स्टेशनोंके आस पास हड्डियोंके ढेरके ढेर दिखाई पड़ते हैं।

यह हड्डियां गांव गांवसे इकट्ठी होकर कलकत्ता बम्बई आदि बड़े शहरोंमें रासायनिक क्रियासे गला कर बाहर भेजी जाती हैं। यदि यह हड्डियां योंही ज़मीन पर पड़ी रहें, तो कुछ समयमें—सम्भव है वर्षों में—स्वयं ही गलकर खाद बन जाती हैं। जबतक हड्डियोंका बाहर भेजा जाना शिरू न हुआ था, वह इसी प्रकार धीरे धीरे गल कर मट्टीमें मिल जाती थीं और इससे खेतोंको बहुत लाभ होता था, किन्तु जबसे इनका बाहर जाना आरम्भ हुआ है इस लाभसे किसान वञ्चित रहते हैं। जिस समय हड्डियोंके ढेरोंको यह लेखक देखता है, उसे बड़ा दुःख होता है, क्योंकि वह जानता है कि इन हड्डियोंके रूपमें इस देशकी उर्वराशक्ति बाहर जा रही है, जिसको फिर किसी रूपमें यहां आनेको

सम्भावना नहीं। थोड़ेसे रासायनिक ज्ञानसे हम लोग इन बातोंको समझ सकते हैं और इस बड़े बहावको रोक सकते हैं। निम्न लिखित तालिकासे मालूम होगा कितनी हड्डियां कितने मूल्यकी प्रति साल हिन्दुस्तानसे बाहर जा रही हैं।

| वर्ष | वजन ( मनों में ) | मूल्य ( रुपयोंमें ) |
| --- | --- | --- |
| १९१३-१४ | २८६७२३४ | ७८३३४९५ |
| १९१४-१५ | १७४०१२० | ४७९३२९५ |
| १९१५-१६ | १३८६५२० | ३५३३७४५ |
| १९१६-१७ | ११४३५४२ | ३२४४१२५ |
| १९१७-१८ | ७२५६६९ | १५३५८३५ |

तीसरे प्रकारके खादमें नत्रजनका विशेष अंश वर्तमान रहता है। इनमें अमोनियम गन्धेत अमोनियम कर्बनेत, अमोनियम हरिद और शोरा ( पोटाशनत्रेत और सोडा नत्रेत ) मुख्य हैं। इनमें शोरा* बहुत दिनोंसे यहां तैयार होता है। अमोनियम यौगिक भी अब यहां बनने शुरू हो गये हैं, तो भी कुछ कम परिमाणमें यह बाहरसे नहीं मंगाये जाते; और दिनों दिन इसकी खपत बढ़ती जाती है।

अमोनियम यौगिककी आयात

| वर्ष | वजन ( मनोंमें ) | मूल्य ( रुपयोंमें ) |
| --- | --- | --- |
| १९१३-१४ | ८१६० | ११०९२५ |
| १९१४-१५ | १४४९२ | २५५०१५ |
| १९१५-१६ | १४९६० | ३१००५० |
| १९१६-१७ | ९७१० | १०२७५५ |
| १९१७-१८ | १२१३१ | ४७३९७० |

खाद्यके अलावा अमोनियाके यौगिक बरफके कारखानोंके लिए अमोनिया बनानेके काम आते हैं, परन्तु सबसे अधिक भाग इसका खादके ही रूपमें व्यवहृत होता है। यदि काफी सस्ता शोरा यहां पैदा किया जाय तो बहुत सम्भव है कि इसका बाहरसे आना बन्द हो सके। अमोनिया भी यहां अधिक उत्पन्न किया जा सकता है। इसके लिए कार्य्य कुशलताके साथ साथ थोड़ेसे रसायन शास्त्रके ज्ञानकी आवश्यकता है।

तेलहन बहुत अधिक मात्रामें इस देशमें पैदा होते हैं। ऊँचे दर्जेके तेलका खानेमें प्रयोग होता है। इसके लिए आजकल मूंगफली, बिनोला, तिल, सरसों और राईका तेल बहुत अधिक मात्रामें व्यवहृत होता है। सरसों और राईके तेल शरीरमें लगाये भी जाते हैं। तेलोंसे ग्लीसरिन भी निकाली जाती है, जो स्फोटकोंके निर्माण और ओषधियोंमें प्रयोग होती है। नीचे दर्जेके तेलोंका साबुन बनानेमें व्यवहार होता है। साबुनका व्यवहार आजकल दिनों दिन यहां बढ़ रहा है। कृत्रिम घीके प्रचार से भी तेलकी मांग बहुत कुछ बढ़ गई है। पाश्चात्य देशोंको जितना तेल अथवा तेलहन जाता है उसका अधिक भाग कृत्रिम घी के बनानेमें व्यय होता है। अभीतक कृत्रिम घी के बनानेकी चेष्टा हिन्दुस्तानमें केवल एक फर्म द्वारा हुई है और वह बम्बईकी ताता कम्पनीका कोचीन राज्यमें कारखाना चला रही है। इस कारखानेमें विशेषज्ञों के लिए इतना अधिक रुपया खर्च किया गया है कि अभी तक उसमें आर्थिक दृष्टिसे सफलता नहीं हुई है, किन्तु समय पाकर इस कम्पनीको अवश्य ही लाभ होगा; क्योंकि इसकी भित्ति दृढ़ नींवपर स्थित है।

तीसीके तेलका प्रयोग दिनों दिन बढ़ रहा है। यह वार्निश बनानेमें बहुत अधिक लगता है। तीसीके पैदा होनेका हिन्दुस्तान मुख्य स्थान है, यद्यपि यह यूरोप विशेषतः रूस और अमेरिकामें भी उत्पन्न होती है। करोड़ों मन तेलहन इस देशसे बाहर जाते हैं। तेल भी इस देशसे बाहर कुछ कम नहीं जाता। किन्तु यहाँसे जो तेल जाता है वह मामूली तेल है और बाहरसे परिशोधित होकर आता है। नीचे लिखी तालिकासे मालूम होता है

* इस विषयपर स्वार्थके मार्ग शीर्षके अङ्कमें "भारतमें शोरेका व्यवसाय" लेख देखें। लेखक

कि कितना तीसीका तेल प्रति वर्ष यहांसे बाहर जाता है और कितना बाहरसे आता है।

| वर्ष | आयात (गैलन) | निर्यातन (गैलन) |
|---|---|---|
| १९१२-१३ | ३६४९६१ | १०६८६७ |
| १९१३-१४ | ४३६४८२ | १०२३६० |
| १९१४-१५ | ३६०४८४ | १३२७६६ |
| १९१५-१६ | २६६६८७ | २८०८५० |
| १९१६-१७ | १३४९२२ | १७८२५७ |
| १९१७-१८ | ६२६९५ | ५५७६६३ |

थोड़ेसे वैज्ञानिक ज्ञानसे यह तेल यहां भी शोधित हो सकता है, किन्तु तेलके व्यवसायी उस ज्ञानसे वञ्चित हैं, इसीसे इस ओर अभी तक कोई विशेष उन्नति नहीं हुई है। ऊपरकी तालिका केवल तीसीके तेलकी है। और तेलहन भी बहुत अधिक मात्रामें यहांसे बाहर जाते और बाहरसे परिशोधित तेल यहां आते हैं।

( असमाप्त )

---

## भोजनका समय

जनका उपयुक्त समय मालूम करनेके लिए किसी घंटे या घड़ीकी आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक प्राणीमें एक स्वाभाविक इच्छा होती है जिसे "क्षुधा" कहते हैं। यही प्रत्येक प्राणीको भोजनका ठीक ठीक समय बतला देती है। एक विद्वानका कथन है कि "भोजनका घंटा बजना ही भोजनका समय नहीं बतलाता, बल्कि जब भूख लगे तभी भोजन करनेका ठीक" समय है। यह वाक्य अक्षरशः सत्य है: जिस आवश्यकताकी पूर्तिके लिए भोजन किया जाता है वह आवश्यकता क्षुधासे ही प्रकट होती है। जब शरीरके लिए आहारकी आवश्यकता होती है तभी क्षुधा प्रतीत हुआ करती है: अतएव भूख लगना ही भोजनके समयकी सूचना है, अज्ञानवश अधिकांश मनुष्योंका विचार है कि भोजन करना हमारे नित्यके कार्योंमें से एक अनिवार्य काम है। इसीलिए प्रतिदिन चाहे क्षुधा हो या न हो वह नियत समय पर भोजन कर लेते हैं और समझते हैं कि एक दिन भी भोजन न करने से हमारा शरीर नहीं चलेगा।

यद्यपि भोजन करना अनिवार्य काम अवश्य है, पर उसी समय जब कि उसकी आवश्यकता हो। जिस समय शरीरको आहारकी आवश्यकता नहीं है ( क्षुधा नहीं है ) उस समय भोजन करना अनावश्यक ही नहीं प्रत्युत हानिकारक है। भूख न होनेका मतलब यह है कि आमाशय अभी अपने कामको समाप्त नहीं कर पाया और अभी वह पुनः काम लेनेके लिए तैयार नहीं है। यदि ऐसी दशामें उसे काम दिया जायगा तो वह उस कार्य को पूरा नहीं कर सकेगा; कामके भारसे पाचक यन्त्र निर्बल हो जायँगे और भोजन पेटमें पड़ा पड़ा सड़ेगा और मन्दाग्नि, अजीर्ण, संग्रहणी, कृमि इत्यादि अनेक रोग उत्पन्न करेगा। अतएव भूखके बिना कभी भोजन न करना चाहिये।

कभी कभी ऐसा होता है कि पहिले तो भूख मालूम होती है, परन्तु भोजन सामने आते ही वह काफूर हो जाती है: और कभी कभी भोजन करनेके थोड़ी देर पश्चात् ही फिर भूख लग आती है और पुनः पुनः भोजन करनेपर भी तृप्ति नहीं होती। यह दोनों प्रकारकी भूखें वास्तविक भूख नहीं होतीं और ऐसी झूठी भूख मदिरा, मांस इत्यादि सेवन करनेवाले मनुष्योंको प्रायः लगा करती है। इसे एक प्रकारका मानसिक विकार समझना चाहिये। पाचक यन्त्रोंमें विकार उत्पन्न होनेपर भी झूठी भूख लग सकती है। पाश्चात्य देशवासी दिनमें कई बार भोजन करते हैं; इसके विपरीत अधिकांश भारतीय दिनमें दो बार भोजन करके ही तृप्ति लाभ करते हैं: परन्तु बार बार भोजन करनेके

कारण पाश्चात्य लोगोंका भारतीयोंसे शारीरिक या मानसिक बल अधिक नहीं होता और न वह भोजन इस उद्देश्यसे करते ही हैं। उन देशोंमें तो मांस मदिरा इत्यादिका अधिक प्रचार है और इन उत्तेजक पदार्थोंके सेवन करनेके थोड़ी देर पश्चात् ही, जब उत्तेजना शान्त हो जाती है और इन पदार्थोंसे उत्पन्न हुआ हांडीका सा उबाल बैठ जाता है, खिन्नता, ग्लानि और शिथिलता उत्पन्न होती है और उस शिथिलताको दूर करनेके लिए पुनः पुनः उत्तेजक पदार्थोंके खानेकी आवश्यकता प्रतीत हुआ करती है।

झूठी भूखका एक कारण यह भी होता है कि मिठाई अथवा अन्य पदार्थोंको बिना चबाये खाने से आमाशयमें एक प्रकारका खमीर और जोश उत्पन्न होता है; इस जोशके कारण क्षुधाके समान ही एक प्रकारका कष्ट प्रतीत होने लगता है। भोजन करने वा पानी पीनेसे यह जोश थोड़े समयसे लिए दब जाता है और वह कष्ट, झूठी भूख, भी शान्त हो जाती है। परन्तु इस दशामें किया हुआ भोजन शरीरको कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता: प्रत्युत अनेक रोग उत्पन्न करता है। अतएव झूठी भूक लगनेपर भोजन न करके उपवास द्वारा शरीर शुद्धि करनी चाहिये।

गुनगुना पानी पी लेनेसे इस प्रकारकी क्षुधा शान्त हो जाती है। क्योंकि जिस एसिड या अम्लके उत्पन्न होनेसे यह झूँठी भूख लगती है वह पानी से शिथिल हो जाता है और उसका थोड़ा बहुत अंश पानीमें घुलकर आमाशयसे बाहर भी निकल जाता है।

सच्ची भूख मनुष्यको बेचैन नहीं करती, उसमें ऐसा कष्ट नहीं होता कि थोड़ी देर भी सहन न किया जा सके। सच्ची भूख लगने पर चित्तमें शान्ति और एक प्रकारका आनन्द प्रतीत हुआ करता है। यह आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि जहां तक हो सके जल्दी जल्दी बड़े बड़े ग्रास भीतर ढकेल कर क्षुधा शान्त की जाय। सच्ची भूखमें भोजन बहुत ही स्वादिष्ट मालूम हुआ करता है मिर्च मसाले और आचार, चटनियोंसे उसे स्वादिष्ट बनानेकी आवश्यकता नहीं होती। इन पदार्थों की प्रायः उन्हींको आवश्यकता होती है कि झूठी भूखमें भोजन करते हैं। इस झूठी भूकका प्रतीत होना भोजनके वास्तविक समयको प्रकट नहीं करता। भोजनका वास्तविक समय वही है कि जब आनन्द पूर्ण सच्ची भूख उत्पन्न हो। आयुर्वेदमें भोजनके समयका निश्चय इस प्रकार किया गया है—

> प्रहृष्टे विण्मूत्रे हृदि सुविमले दोषे स्वपथगे।
> विशुद्धे चं दूगारे क्षुदुपगमने वातेऽनुसरति॥
> तथाग्ना वुद्धिके विशद करणे देहे च सुलघौ।
> प्रयुञ्जीता हारं विधि नियमितः कालः स्हिमतः॥

(चरक)

अर्थात् (एक बार भोजन करनेके पश्चात्) मल, मूत्र का उत्सर्ग हुआ हो, मन प्रसन्न हो, दोषों—बात, पित्त, कफ़—की स्थिति यथोचित हो; शुद्ध डकार आती हों भूख लगी हो और जठराग्नि प्रदीप्त हो, देह हलकी और समस्त इन्द्रियाँ विशुद्ध हों तब भोजन करना चाहिये; क्योंकि भोजनका वास्तविक समय इन्हीं लक्षणोंसे प्रकट होता है और यही शास्त्रोक्त भोजनका समय है।

जिस प्रकार बिना भूख खाना हानिकारक है उसी प्रकार भूख लगनेपर न खाना अथवा समय बिताकर खाना भी हानिकारक है। पीछे बतलाया गया है कि हमारे शरीरमें सदैव एक प्रकारकी अग्नि जला करती है और उस अग्निके लिए आहार ईंधनका काम देता है। अतएव यदि भूख लगने पर, जबकि वह अग्नि प्रदीप्त होती है, भोजन नहीं किया जायगा तो वह अपने शारीरिक मांस मेदादि धातुओंको दहन करने लगती है और ग्लानि, अरुचि, शूल और भ्रम इत्यादि विकार उत्पन्न होते हैं, शरीर निर्बल और क्षीण हो जाता है; अतएव भूख, सच्ची भूख, लगने पर सब कामोंको छोड़कर पहिले भोजन करना चाहिये। कहा भी है "शतं विहाय भोक्तव्यम्"।

भोजनकी व्यवस्था ऐसी रखनी चाहिये कि प्रतिदिन नियत समय पर ही भूख लगा करे; एक समयका किया हुआ भोजन प्रायः ६ घंटेमें पच जाता है, अतएव भोजन करनेके पीछे ५, ६ घंटे तक कुछ न खानेसे स्वयंही समय पर भूख लगेगी। जो लोग दिन भर कुछ न कुछ खाते रहते हैं, उनके भोजन करनेका समय भी नियत नहीं होता; ऐसे लोगोंको एक दिन १० बजे भूख लगती है तो दूसरे दिन १ बजे लगती है। कभी दिन निकलते ही खानेकी सूझती है और कभी सारे दिन भूख नहीं लगती। इस प्रकार अव्यवस्थित रूपसे भोजन करना उचित नहीं है। नियमित रूपसे किया हुआ साधारण भोजन भी बहुत अधिक गुणकारी होता है और अव्यवस्थित दशामें किया हुआ पौष्टिक और उत्तम भोजनभी तत्समान लाभदायक नहीं होता; प्रत्युत दुखदाई होता है। महर्षि आत्रेय कहते हैं कि—

काल भोजनमारोग्यकारणम्।

अर्थात् समय पर भोजन करना स्वास्थ्य वर्द्धक साधनोंमें सब से प्रधान है। अतएव प्रतिदिन भोजन नियत समयपर ही करना चाहिये। किसी दिन भोजनके समय यदि भूख न लगे तो समय बिताकर भोजन करनेकी अपेक्षा एक समय भोजन न करना अच्छा है। असमयमें भोजन करनेके दोष भाव प्रकाशमें इस प्रकार लिखे हैं—

अप्राप्त काले भुञ्जानो ह्यसमर्थतनुर्नरः।
तांस्तान् व्याधीनवाप्नोति मरणञ्चाधिगच्छति॥
कालेऽतीतेऽश्नतो जन्तोर्वायुनोपहतेऽनले।
कृच्छ्राद् विपच्यते भुक्तं न स्याद्भोक्तुं पुनः स्पृहा॥

अर्थात्—भोजनके समयसे पहिले भोजन करनेसे शरीर असमर्थ अशक्त होता है; एवं विषूचिका, प्रवाहिका पेचिश इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं और (इन दोनों की वृद्धि) मृत्यु होना भी सम्भव है। भोजनके समयको बिता कर भोजन करनेसे वायु कुपित होता है और जठराग्नि मन्द हो जाती है जिससे भोजन देरमें पचता है और पुनः भोजन करने की इच्छा नहीं होती।

दिनमें प्रत्येक मनुष्यको कितनी बार भोजन करना चाहिये, इस प्रश्नका कोई निश्चित उत्तर नहीं दे सकता; क्योंकि यह बात प्रत्येक मनुष्यकी शारीरिक स्थिति, उसके दैनिक परिश्रम और देश कालादि पर निर्भर है। परन्तु भारतीय परिस्थितिके अनुकूल आयुर्वेद शास्त्रमें दिनमें दो समय भोजन करनेका परामर्श दिया गया है; यथा—

सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम्।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः॥—चरक

अर्थात्—अग्निहोत्रके समान प्रातः और सायं दिनमें दो बार भोजन करनेका विधान है, इसके मध्यमें भोजन करना ठीक नहीं है।

देशकी परिस्थितिके अनुकूल यह नियम बहुत अच्छा है; परन्तु सब मनुष्योंसे इसका पालन होना कठिन है। परिश्रमी मजदूरपेशा या किसान आदि लोग अपना भोजन शीघ्र पचा लेते हैं। वृद्धोंकी अपेक्षा युवा और युवकोंकी अपेक्षा बालक भी भोजन शीघ्र पचा लेते हैं, अतएव शारीरिक परिश्रम करनेवाले, इन दो समयके भोजनोंके अतिरिक्त यदि प्रातःकाल कुछ कलेवा कर लिया करें तो कोई हानि नहीं। परन्तु जो लोग शारीरिक परिश्रम नहीं करते उन्हें दिनमें दो बारसे अधिक भोजन न करना चाहिये। बार बार भोजन करनेमें एक बड़ी बुराई यह है कि एक समयका भोजन पचानेके पीछे आमाशयको कुछ भी आराम नहीं मिलता। उसके सामने सदैव काम उपस्थित रहता है और उसे रक्तसे अपनी शक्ति बढ़ाने या उसमें (शक्तिमें) जो कमी हो जाती है उसे पूरा करनेका अवसर नहीं मिलता और वह दिन पर दिन निर्बल होता जाता है। कोई मनुष्य निरन्तर बहुत समय तक (बीचमें आराम किये बिना) परिश्रम नहीं कर सकता। दिनको कार्य करनेके पश्चात् रातको सोनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है और इस प्रकार थकानके पश्चात्

आराम करनेसे शरीर पुनः काम करनेके योग्य हो जाता है; यदि आराम न किया जाय और कई दिन तक रात दिन लगातार काम किया जाय तो शरीर निर्बल और रोगी हो जाता है और फिर उसमें काम करनेकी शक्ति नहीं रहती है। यही हाल आमाशयका भी है। यदि एक भोजन पचानेके पीछे उसे कुछ देर आराम मिल जाया करे तो वह स्वस्थ और सबल रह सकता है, अन्यथा नहीं।

प्रातःकालका भोजन दूसरे पहरके आदिमें अर्थात् लगभग १० बजे और सायङ्कालका भोजन सोनेसे ३, ४ घंटे पूर्व कर लेना चाहिये। प्रातःकाल पहिले पहरमें तो शरीरमें रस उत्पन्न होता है; उसके प्रभावसे अग्नि तीव्र नहीं होती और दूसरे पहरके पश्चात् अग्निका-बल क्षीण हो जाता है। अतएव प्रातःकाल पहिले पहरमें या दूसरे पहरके पीछे किये हुए भोजनका परिपाक ठीक नहीं होता।

सायंकालका भोजन यदि ठीक सोते समय किया जाय तो पाचन ठीक नहीं होता और अजीर्ण मन्दाग्नि इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं; पचनक्रिया का बहुत सा कार्य सोनेके पूर्व ही हो जाना चाहिये। पेट भर कर सोनेसे गहरी नींद नहीं आती और स्वप्न दोष हो जानेका भय भी रहता है। एवं रात भर बुरे स्वप्न दीखते रहते हैं। इसी प्रकार सायंकाल अत्यन्त शीघ्र भोजन करने से भी ठीक नींद नहीं आती; सोनेका समय होते होते फिर भूख लगने लगती है और भूखे नींद आना कठिन है।

प्यासके समय पानी न पीकर भोजन करनेसे गुल्म—बाय गोला—रोग उत्पन्न हो जाता है और इसी प्रकार भूखके समय पानी पीने से जलोदर रोगकी उत्पत्ति होती है। अतएव भूखके समय भोजन और प्यासके समय जलपान ही करना चाहिये। इसके विपरीत करना उचित नहीं है।

किसी प्रकारका शारीरिक परिश्रम करनेके पीछे तत्काल भोजन न करना चाहिये, क्योंकि उस समय अन्य शारीरिक अवयवोंकी भांति पाचक यन्त्र भी थके हुए होते हैं और जिस रक्तसे पाचक यन्त्र भोजन पचानेके लिए शक्ति प्राप्त करते हैं उसका सञ्चार मांस पेशियोंकी ओर अधिक होता है; क्योंकि थकानके समय उन्हें पोषणकी विशेष आवश्यकता होती है। अतएव परिश्रम करनेके पीछे थोड़ी देर आराम करने पर जब थकान दूर हो जाय तब भोजन करना चाहिये। श्रान्तिके समय किया हुआ भोजन आमाशय पर भार रूप होता है और उस समय पाचक यन्त्र उसके पचानेके लिए तैय्यार नहीं होते।

—गोपीनाथ गुप्त

---

## ब्रह्मचर्यकी वैज्ञानिक व्याख्या

( मालिनी वृत्त )

जयति विमलगाथा श्रीश बालेन्दु धारी।
सदय हृदय होके बुद्धि मेरी प्रकाशो।
तव पद उर धारूँ नित्य आनन्दकारी।
नृपिबल मुझको दो विघ्न बाधा विनाशो।

ज मुझे अत्यन्त हर्ष है कि मैं वह कार्य कर रहा हूँ, जिसके करनेका सुअवसर मैं बहुत समयसे खोज रहा था। लगभग तीस वर्षके अनुभवसे ब्रह्मचर्यके विषयमें जो कुछ जानकारी मुझे प्राप्त हुई है, उसे अपने देशके प्यारे बालकोंके सामने खोल कर रख देना मैं अपना परम धर्म समझता हूं। यदि मेरे इस लेखसे देशके दो चार बालकोंको भी कुछ लाभ पहुंचेगा तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

### १—ब्रह्मचर्य है क्या वस्तु ?

'ब्रह्मचर्य' एक ऐसा शब्द है, जिसका अर्थ और तात्पर्य समझनेमें हमारे बालकगण भ्रममें पड़े हुए

हैं। कोई कुछ समझता है, कोई कुछ। माता, पिता आचार्य, पुरोहित और अन्य गुरुजन भी इसका तात्पर्य बालकोंको ठीक ठीक नहीं समझाते। जिस कृत्यका ठीक ज्ञान ही न हो, उसे कोई कर ही कैसे सकता है। अतः मैं पहले इस बातके समझानेका प्रयत्न करता हूँ कि 'ब्रह्मचर्य' का अर्थ और तात्पर्य क्या है—'ब्रह्मचर्य कहते किसे हैं।'

क—अर्थ

'ब्रह्मचर्य' शब्द 'ब्रह्म' और 'चर्य' दो शब्दोंके योगसे बनता है; यह बात तो छोटेसे छोटा बालक भी समझ सकता है। 'ब्रह्म' शब्दके कई एक अर्थ हैं। उनमेंसे मूल अर्थ है 'वृद्धि'। 'चर्य' शब्दका अर्थ है 'आचरण'। दोनों शब्दोंके मिलनेसे इसका मूल अर्थ हुआ—"वह आचरण जिससे वृद्धि हो" अर्थात् वह रहन सहन, वह चाल चलन, जिससे मानव शक्तियोंकी वृद्धि और उनका विकास हो। ( आगे आचरणोंकी व्याख्या की जायगी )।

प्रत्येक बालक जानता है कि जबसे वह पैदा होता है तबसे उसका शरीर, बल और बुद्धि प्रति वर्ष कुछ कुछ बढ़ते जाते हैं। और यह भी प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है कि यह वृद्धि पचीस वर्षकी अवस्था तक होती रहती है। तदनन्तर चार पांच वर्षमें उस वृद्धिमें परिपक्वता आती है। अतः पचीस वर्ष तकके समयको ब्रह्मचर्याश्रम और उस समयके आचरणोंको 'ब्रह्मचर्य' कहा जाता है। पचीस वर्षकी अवस्थाके आगे फिर उसके शरीर-बल और बुद्धिबलकी बाढ़ रुक जाती है, और वह संसारके काम-धंधोंमें लगता है। अतः 'ब्रह्मचर्य'का

ख—तात्पर्य

तात्पर्य यह हुआ कि कमसे कम पचीस वर्षकी अवस्था तक बालक अपनी रहन सहन, चालचलन, इस प्रकारकी रखे, जिससे उसकी शारीरिक तथा मानसिक वृद्धि (मानव प्रकृति विकाश) में बाधा न पड़े। यदि ऐसा आचरण न रखेगा तो उसमें मानव प्रकृतिका पूर्ण विकास न हो सकेगा और वह अपूर्ण मनुष्य रह जायगा।

बालको, इसको यों समझो। तुमने देखा होगा कि बाग़में आमके छोटे छोटे पौधे लगाये जाते हैं। लगाये जानेके बाद कई वर्ष तक उनकी रक्षा करनी पड़ती है। सरदी और गरमीसे उन्हें बचाना पड़ता है। भेड़ बकरी इत्यादि पशु उसे चर न जायं, इस हेतु, उसके इर्द गिर्द ऊँची बारी लगाई जाती है। समय समयपर उसे सींचना पड़ता है और कभी कभी उसके निकटकी भूमिको गोड़ना होता है। उसके इर्द गिर्द ऐसे विषैले और कँटीले पेड़ नहीं रहने दिये जाते जो उसे हानि पहुँचा सकें। लगभग दस पंद्रह वर्ष ऐसी देख रेख करना बहुत आवश्यक है। तदनन्तर जब उसका विकास पूर्ण हो चुकता है, तब उतनी देख रेखकी आवश्यकता नहीं रह जाती। वह स्वयं अपनी आवश्यकताकी सब चीज़ें प्रकृतिसे लेता रहता है; स्वयं इतना ऊँचा हो जाता है कि कोई पशु उसे समूल नहीं खा जा सकता; स्वयं इतना दृढमूल हो जाता है कि बड़ी बड़ी तेज़ आँधियाँ भी उसे नहीं उखाड़ सकतीं, और अपने फूलों, फलों, छाया, पत्तों और लकड़ियोंसे संसारका उपकार करता हुआ पूर्ण आयुको प्राप्त हो जाता है। यदि प्रथम दस पंद्रह वर्ष उसकी पूर्ण निगहबानी न की जाय, सींचन और कोड़नकी चिंता त्याग दी जाय और अन्य विघ्न बाधाओंसे किसी प्रकार बचता हुआ वह बढ़ कर 'वृक्ष' भी हो जाय, तोभी वह वैसा उत्तम वृक्ष कदापि न हो सकेगा जैसा पहलेवाला सुरक्षित वृक्ष होगा। जिस प्रकार उस पौधेकी वृद्धि और उसका विकास मालिक वा बाग़वानके सावधान यत्नपर निर्भर है, उसी प्रकार बालकोंका 'ब्रह्मचर्य' व्रत-पालन भी गुरुजनोंकी सयत्न चेष्टा पर निर्भर है।

बालकों और विद्यार्थियोंके सम्बन्धमें जब 'ब्रह्मचर्य' शब्द बोला जाय, तब मेरी सम्मतिमें, यही अर्थ और यही तात्पर्य समझना होगा। यदि कोई कहे कि "राम प्रसाद अच्छा ब्रह्मचारी है" तो इसका अर्थ और तात्पर्य यही होगा कि वह अपने गुरुजनोंकी देख रेखमें रहकर नियत समयमें

( जबतक शरीर और बुद्धिका विकास होता रहता है ) ऐसा आचरण करता है कि उसका पूर्ण मानव विकास हो रहा है—अर्थात् जितना शारीरिक बल, बुद्धिबल और अन्य शुभगुण एक मनुष्यके लिब आवश्यक हैं उसमें आते जाते हैं, और पचीस वर्षकी अवस्था तक पहुंचते पहुँचते वह एक सर्व गुण सम्पन्न जवान मनुष्य हो जायगा।

प्यारे बालको, ऊपर जो कुछ लिखा गया है, वह ब्रह्मचर्यकी परिभाषा मात्र है। इसे अच्छी तरह समझ लो। इसको समझ लेनेसे ब्रह्मचर्य-पालनमें तुम्हारी रुचि बढ़ेगी। परिभाषा, अर्थ और तात्पर्य न समझनेके कारण 'ब्रह्मचर्य व्रत' तुम्हें व्यर्थ सा जँचता है, कठोर जान पड़ता है। तुम्हें जान पड़ता है कि जो लोग इस व्रतके पालन-की ताकीद करते हैं, वह हमारे ऊपर जुल्म करना चाहते हैं, हमें सांसारिक सुखोंसे वंचित रखने का उद्योग करते हैं, इन्हें क्या अधिकार है कि यह लोग हमारे ऊपर ऐसे कठोर नियम जारी करें, हमारी स्वच्छन्दता हरण करें और हमें मनमानी न करने दें। यदि तुम्हारे चित्तमें अपने गुरु जनों-की ओरसे ऐसा भाव किंचित भी पैदा हो गया, तो तुम आज ही उस भावको अपने चित्तसे निकाल दो, और तुम स्वयं न्याय और विचार पूर्वक हमें यह बतलाओ कि जो लोग तुम्हें संसारी काम काजके लिए सुरक्षित रखते हुये पकाकर तैयार कर रहे हैं वह तुम्हारे हितैषी हैं वा निर्दय शत्रु? यह तो तुमको मानना ही पड़ेगा और जानते ही होगे कि अभी तुम परिपक्व नहीं हुए। अभी तुम्हें पकना है। फिर जो लोग ब्रह्मचर्य-व्रत द्वारा तुम्हें पकानेकी कोशिश करते हैं, उपदेश देते हैं वा ताकीद करते हैं, वे तुम्हारे द्वेषी हैं वा हितैषी? इस बातको तुम खुद समझो। यदि तुम खुद न सोच सको, तो लो मैं तुमको विचारका मार्ग बताये देता हूं। मान लो कि तुम चौदह पंद्रह वर्षके होकर आकार प्रकारमें एक मनुष्यके समान हो गये हो। तुम सोचते हो कि अब तो हम पुरुष हो चुके। जो चाहें सो करें, गुरुजन हमें रोकनेवाले कौन? जेठे लोग अब हमें ब्रह्मचर्यका उपदेश क्यों दें? हम स्वच्छंद हैं, जो चाहें सो करें। परन्तु प्यारे बालको! मैं कहता हूं तुम भूल कर रहे हो; ज़रा स्वस्थ चित्तसे सोचो विचारो। तुम मनुष्यके आकारके तो हो गये, इसमें शक नहीं; परन्तु अभी तुम्हें पकना बाकी है, अभी तुम कच्चे हो। ब्रह्मचर्यकी आँच सहे विना तुम पक न सकोगे। कच्चे रहनेसे तुम्हारे शत्रु ( रोग, संकट, शत्रु इत्यादि ) तुम्हें एक धक्केमें तोड़ देंगे। इसको यों समझो। एक कुम्हारने मिट्टीका एक घड़ा गढ़कर तैयार किया, धूपमें सुखाकर उसे कठोर भी कर लिया ( गीलापन जाता रहा )। अब यदि वह कच्चा घड़ा यह अभिमान करे कि मैं भी तो आकार प्रकारमें पक्के घड़ेके समान हूँ। जितना पानी पक्के घड़ेमें अँटता है, उतना ही मुझमें भी अँट सकता है। अब जो कुम्हार मुझे आँवामें रखकर पकाना चाहता है ( कड़ी आँच देना चाहता है ) यह भारी जुल्म है। तो बताओ उस घड़ेका यह विचार ठीक होगा? यदि पानी उसमें भर जाय, तो वह सही सलामत रह सकेगा? बस तुम भी समझ लो कि १५ वर्षसे २५ वर्ष तकका समय वह समय है जो तुम्हें ब्रह्मचर्यके आँवामें रख कर कड़ी आँचसे पकानेका समय है। यदि इस समयमें तुमने उस आँचसे डर कर कहीं इधर उधर खिसक कर किसी कोनेकी ओर जाकर अपना बचाव किया तो समझे रहो कि मिट्टीके घड़ेकी तरह ( जिसमें किसी कारण आँच नहीं लगने पाती ) तुम भी काले कुरूप हो जाओगे और कच्चे रह कर कमज़ोर ही रह जाओगे। संसारके काम धंधोंका पानी ज्योंही तुममें भर जायगा त्योंही तुम गलकर फूट जाओगे, मिट जाओगे और बनानेवाले कुम्हारका परिश्रम व्यर्थ करोगे। अब तुम सोचो कि तुम्हारे लिए कौन सा मार्ग अच्छा है? ब्रह्मचर्यकी कड़ी आँच सहना या कच्चे ही रहना?

## २—उद्देश्य और आदर्श द्वारा महत्व प्रदर्शन

संसारमें मनुष्य जाति जितने काम कर रही है, वे सब किसी न किसी उद्देश्यसे किये जाते हैं। संसारमें तीन बड़े उद्देश्य हैं–(१) ज्ञान, (२) शारीरिक बल और राज्य वैभव, (३) धन। ब्राह्मणोंका उद्देश्य है ज्ञान, क्षत्रियोंका राज्य वैभव, और वैश्योंका धन। जिनका कुछ भी उद्देश्य नहीं होता वे ही शूद्र कहलाते हैं। और भी कई एक छोटे मोटे उद्देश्य हो सकते हैं, पर खूब बारीकीसे विचार करने पर वे सब इन्हीं तीनके भीतर आजायंगे।

अब तुम स्वयं सोचो कि तुम्हारा क्या उद्देश्य है। जब तुम यह सोच लो कि तुम्हारा क्या उद्देश्य है, तब उसके मुवाफिक आदर्श खोजो। आदर्श खोजनेसे तुम्हें ज्ञात हो जायगा कि संसार भरमें और विशेष करके भारतमें, तुम्हें वेही आदर्श मिलेंगे जो 'ब्रह्मचर्य'के लिए प्रसिद्ध हैं। इससे तुम्हें साफ मालूम हो जायगा कि बिना ब्रह्मचर्यके संसारका कोई बड़ा उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। इस बात-को उदाहरणसे समझो। ज्ञानका उद्देश लेकर जब हम प्राचीन कालके आदर्श खोजते हैं तब हमें सर्व प्रथम श्रीगणेशजी और श्रीसरस्वतीजी* ही सर्वोत्तम आदर्श मिलते हैं। इनसे उतर कर सप्तर्षि सनकादिक और शुकदेव जी का नाम मिलता हैं। इनकी कथाओंमें वर्णन है और सत्य है कि ये लोग पूर्ण ब्रह्मचारी थे। इससे स्पष्ट है कि बिना पूर्ण ब्रह्मचर्यके कोई पूर्ण ज्ञानी नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्यके बलसे हमारे यहाँ तो सीता, सावित्री, सती, अनुसूया, गार्गी, दमयंती, लीलावती इत्यादि बालिकायें भी विलक्षण शक्तिवाली देवियाँ हो गई हैं।

अब दूसरे उद्देश्य शारीरिक बल और राज्य वैभवको लीजिये और आदर्श खोजिये तो राम लक्ष्मण, कृष्ण, अर्जुन, भीष्म और हनुमान इत्यादि महात्माओंके नाम मिलेंगे। ये भी पूरे ब्रह्मचारी थे, ऐसा उनकी जीवनियोंसे प्रकट होता है; अतः सिद्ध हुआ कि ब्रह्मचर्य ही शारीरिक बल और राज्यवैभवका मूल कारण है। धनको उद्देश मानकर आदर्श खोजते हैं तो हमें कुबेर, लक्ष्मी, हनुमान, गणेश इत्यादि नवों निधियोंके मालिक और दाता दिखाई पड़ते हैं। इनकी जीवनियाँ भी वही कहती हैं कि ये लोग पूर्ण ब्रह्मचारी थे। अतः धन भी बिना ब्रह्मचर्यके नहीं कमाया जा सकता।

ये आदर्श बहुत पुराने हैं। अतः कुछ ऐतिहासिक कालके आदर्श भी खोजिये। ज्ञानके लिए बुद्ध भगवान और शंकराचार्यको लीजिये। बलके लिए पृथ्वीराज, राणा प्रताप और शिवाजीको स्मरण कीजिये। धनके लिए जगत् सेठको ही देखिये। ये सब ब्रह्मचर्यके लिए प्रसिद्ध थे।

वर्तमान समयमें हमारे जाने हुए आदर्श (और भी होंगे, जिन्हें हम नहीं जानते। यह न समझा जाय कि हम उनका निरादर करते हैं) ज्ञानके लिए लोकमान्य तिलक महोदय, डाक्टर गणेश प्रसाद, डाक्टर बोस, डाक्टर राय महाशय; बलके लिए प्रोफेसर राममूर्ति; धनके लिए ताता और ठाकुर बैजनाथ सिंह (ब्रह्माप्रवासी) हैं। इनमेंसे प्रत्येककी जीवनी स्पष्ट कह रही है कि उन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य निवाहा है। डाक्टर गणेश प्रसादजी (हिन्दू कालेजके) तो अब तक एक ब्रह्मचारीका ही सा जीवन व्यतीत करते हैं। प्रोफेसर राममूर्तिसे भी वार्तालाप करनेका सौभाग्य लेखकको प्राप्त हुआ है। उन्होंने भी पूछने पर यही बताया कि जो कुछ शक्ति मुझमें है वह सब ब्रह्मचर्यकी बदौलत हैं।

प्यारे बालको! जब संसारके महान उद्देश्योंके सब साधक जन केवल ब्रह्मचर्यके ही साधनसे सिद्धि प्राप्त कर सके हैं, तब यह कैसे हो सकता है कि तुम उसकी अवहेलना करके कोई उद्देश्य साधन कर लोगे। यदि ऐसा होना संभव होता

* सरस्वतीका एक नाम ही 'ब्रह्मचारिणी' है।

तो उन लोगोंने भी वैसा ही कर लिया होता। अतः तुम ब्रह्मचर्यकी ओरसे वेपरवाही मत करो। उसके साधनका दृढ संकल्प करो—और आज ही से करो। यदि आज तक तुम भूले रहे हो, तो पश्चात्ताप कर डालो, और आजसे ब्रह्मचर्य व्रतके निर्वाहकी दृढ़ प्रतिज्ञा करो, और साल ही दो सालमें देख लो कि तुम क्या से क्या हो जाते हो। यदि शूद्रोंकी श्रेणीमें अपनी गणना कराते हुए तुम कोई महान उद्देश्य नहीं रखते तो मैं तुमसे कुछ भी नहीं कहता: जैसा तुम्हें रुचे वैसा करो; परन्तु यदि तुम द्विजातीय—ब्राह्मण, क्षत्री वा वैश्य—होनेका अभिमान और अपनी जातीय प्रकृतिके अनुसार कोई महान उद्देश्यकी सिद्धिको अभिलाषा रखते हो तो मेरे बचन मानकर 'ब्रह्मचर्यकी ओर ध्यान दो; नहीं तो तुम्हारा कोई भी उद्देश्य सिद्ध न होगा और समय बीत जानेपर जब निरुद्देश्य शूद्रकी भाँति जीवन बिताना, कष्ट उठाना और पछताना पड़ेगा, तब तुम्हें महान दुःख होगा।

संभव है कि तुमने कुछ ऐसे आदमियोंको देखा भी हो जो पछता पछताकर कहते हैं कि "भाई क्या करें, भूलमें पड़ गए, ये बालपनमें कुछ समझ सके, अब उसीका फल भोगते हैं।" अतः हे बालको, तुमसे मेरा सप्रेम अनुरोध है कि ब्रह्मचर्यका जो विधान मैं आगे लिखूंगा उसके अनुसार चलनेका आजसे ही संकल्प करो और पचीस वर्षकी अवस्था तक उसका पालन करो। आगे तुम्हारी इच्छा हो वैसा करना।

## ३—दूसरा और तीसरा अंश

"ब्रह्म" शब्दके अनेक अर्थोंमेंसे दो अर्थ और भी ऐसे हैं, जिनका समावेश 'ब्रह्मचर्य' शब्दके भीतर हो जाता है। 'ब्रह्म' का एक अर्थ 'तप' और दूसरा 'वेद' भी है। अतः 'ब्रह्मचर्य' में तपस्या और वेदाध्ययन भी शरीक हैं—अर्थात् 'ब्रह्मचर्य' शब्दका पूरा अर्थ हुआ तपस्वियोंका सा आचरण रखते हुए और विद्या पढ़ते हुए अपने चरित्रको इस प्रकार संगठित करना जिससे मानव शक्तियों की पूर्ण वृद्धि ( पूर्ण विकाश ) हो।"

बालको, ब्रह्मचर्य शब्दकी इस पूर्ण परिभाषापर नित्य विचार किया करो और देखा करो कि तुममें क्या कमी है। कमी मालूम होनेपर उसकी पूर्तिका उद्योग किया करो। ऐसा करनेसे केवल एक ही वर्षमें तुमको स्पष्ट मालूम हो जायगा कि तुम अपने अब्रह्मचारी साथियोंसे सब प्रकार बहुत आगे बढ़ गये हो, रोग और शोक तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकते, परिश्रम करने पर भी थकावट तुम्हारे पास तक नहीं फटकने पाती और आनन्दके निधान ही हो गये हो, हर समय उत्साह तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़ा रहता है और कोई कार्य तुम्हें कठिन ही नहीं जान पड़ता।

## ४—ब्रह्मचर्य बिगड़ता कैसे है?

बालकोंके ब्रह्मचर्यके बिगड़नेके कई एक कारण हैं। उनमेंसे मुख्य मुख्य कारण हम यहाँपर गिनाये देते हैं। इन पर प्रत्येक माता पिता तथा प्रत्येक ब्रह्मचारीको ध्यान देना चाहिये।

### ( १ ) समयका उलटा प्रवाह

न जाने किसके दुर्भाग्यसे समयका ऐसा उलटा प्रवाह चल पड़ा है कि प्रत्येक बालक उसीमें बहा जाता है। उसे जाना तो चाहिये पूर्वकी ओर, पर वह दौड़ा जाता है पश्चिमकी ओर और समझता है कि मैं अपने नियत स्थानके निकटतर पहुँचता जाता हूँ। अधिकतर बालक ब्रह्मचर्यके नियमोंको ( जिनकी व्याख्या आगे होगी ) ढकोसला समझ कर उसके विपरीत आचरणको अच्छा और फैशनेबुल समझता है। इसपर अधिक लिखना आवश्यक नहीं। ब्रह्मचर्यके नियमोंकी व्याख्या पढ़नेपर स्वयं इसकी पूर्ण व्याख्या समझमें आजायगी।

### ( २ ) गुरुजनोंकी बेपरवाही

हमारा अनुभव कहता है कि ब्रह्मचर्यके बिगड़नेका सारा दोष इन्हीं पर लादा जाय तो भी अनुचित न होगा। ये लोग ऐसे स्वार्थी हो गये हैं

कि केवल डांट डपट कर बालकों पर अपना रौब जमाना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते हैं। माता पिता केवल खाना कपड़ा फीस किताबें और (तुर्रा यह कि) जेब-खर्च भी देकर अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझ बैठते हैं। बालकोंके चरित्रकी निगरानी रखना यह अपना कर्त्तव्य नहीं समझते। जेब-खर्च देकर पानबीड़ी, मिठाई, सोडावाटर इत्यादि व्यसन-वस्तुओंके खरीदनेमें सहायक बनते हैं। बालकोंको जेब-खर्च ( मेरी सम्मतिमें ) कभी न देना चाहिये। जिस वस्तुकी वे आवश्यकता प्रकट करें, उचित जँचनेपर उन्हें स्वयं अपने हाथों खरीद देना चाहिये। धनी माता पिता अपने बालकोंकी रक्षा और निगरानी थोड़ी तनखाहवाले नौकरोंके सिपुर्द कर देते हैं। लड़के उनसे दबते नहीं और मनमानी करने लगते हैं। यदि वह नौकर पुराना बूढ़ा और माता पिताका बहुत बड़ा विश्वासपात्र हुआ, तो उसे ख़ुशामदसे या कुछ इनाम देकर राज़ी कर लेते हैं, और इस तरह पर मनमानी करनेकी राह निकाल लेते हैं। गुरुजनोंकी बेपरवाहीसे बालक खराब हो रहे हैं। क्या कोई फैमिली डाक्टर (वैद्य वा हकीम) कभी वैद्यक रीतिसे उस घरके बालकोंको ( जिस घरसे वे सैकड़ों रुपये महीना पाते हैं ) ब्रह्मचर्यका महत्व समझाता है? वंशपुरोहित जी महाराज सिर्फ हलवा पूड़ी उड़ाना और पैसे वसूल करना ही अपना धर्म समझते हैं। ऐसा कभी नहीं होता कि जिजमानोंके बालकोंको किसी समय एकत्र करके सप्रमाण ब्रह्मचर्यका महत्व समझावें।

प्राइवेट शिक्षक तो बहुधा किरायेके टट्टू ही निकलते हैं। उन्हें अपनी फीससे काम है; बालक चाहे पढ़े, सुधरे, ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करे चाहे भाड़में जाय। घरके चाचा, ताऊ इत्यादि देव मंदिरोंमें वा अन्य पुण्य स्थानोंमें जाते समय तो बालकोंको साथ न लेंगे; पर नाटक तमाशे, नाचपार्टी अथवा इसी प्रकारके अन्य दुर्गुणवर्द्धक स्थानोंमें जाते समय बालकोंको अवश्य साथ ले जायँगे। गुरुजन स्वयं भोगविलासमें मस्त रह कर बालकोंके सामने बुरा आदर्श रखते हैं। भला बताइये तो सही कि माता, पिता, पुरोहित, चाचा, ताऊ, इत्यादि बालकोंको ब्रह्मचर्यका महत्व न बतलावें, उसके उत्तम आदर्श स्वयं न बनें, तो बिचारे बालक कहाँसे सीखेंगे। स्वयं अब्रह्मचारी रहें और बालकोंसे ब्रह्मचर्यकी आशा करें यह कितनी बड़ी भूल है!

परन्तु हे प्यारे बालको, अब तुम स्वयं चेतो। गुरुजनोंकी बेपरवाहीसे जो तुम्हारी हानि हो रही है उसे तुम स्वयं सँभाल लो। गुरुजनोंकी भूल चूक क्षमा करो। यदि वे तुम्हें उत्तम मार्ग नहीं दिखा सके तो उनका प्रतिनिधि होकर मैं तो तुम्हें वह मार्ग दिखा रहा हूँ। इस पर चलो और लाभ उठाओ। उनकी तो गुज़र गई तुम्हें अभी बहुत पैरना है।

### ( ३ ) कुसंगति

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं:—

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहै न नीचमते चतुराई॥

मेरा अनुभव है कि बिगड़नेवाले बालक नीच संगतिकी ओर बड़ी रुचि रखते हैं। स्कूलों और पाठशालाओंमें कुछ ऐसे नीच प्रकृतिके लड़के भी रहा करते हैं जो इस खोजमें रहते हैं कि भोले भाले लड़कोंको अपनी चापलूसीसे फँसावें और कुकृत्योंकी शिक्षा देकर उनका भविष्य नष्ट करें। ऐसे लड़केकी खास यह पहचान है कि वे पहले एकान्त और निर्जन स्थानोंमें घूमने फिरनेकी शिक्षा देते हैं और समय पाकर बुरी आदतोंकी शिक्षा प्रदान करते हैं। जो लड़का ऐसी बुरी संगतिमें फँस जाता है, उसमें पहला दुर्गुण यह प्रकट होता है कि वह गुरुजनोंकी आज्ञा भंग करने लगता है।

हे प्यारे बालको, सावधान हो जाओ। जो जन ( चाहे वह तुम्हारी बराबरीका हो चाहे तुमसे बड़ी उम्रका हो ) तुमसे एकान्त स्थलमें चलने वा घूमनेका अनुरोध करे, बस समझ जाओ कि उसकी संगतिसे तुम्हें कोई बड़ी हानि होनेवाली

है। तुम उसका साथ तुरंत छोड़दो। वह तुम्हारी बड़ी खुशामद करेगा, और संभव है तुम्हें धमकावे डरावे भी, पर तुम सावधान रहो और उसका साथ छोड़दो। उसकी खुशामद वा धमकीमें आकर अपना भविष्य बिगाड़नेका सामान मत करो।

और हे गुरुजनो, अभिभावको और संरक्षको, तम भी सचेत हो जाओ, बालकमें प्रथम चिन्ह—अवज्ञा वा आज्ञा भंग—प्रकट होते ही समझ लो कि लड़का कुसंगतिमें पड़ गया, और शीघ्र ही उसकी खोज करके उसका उपाय करो। तनिक भी ढिलाई वा देर करनेसे फिर मामला हाथसे निकल जायगा और बालक बिगड़ जायगा।

( ४ ) असत्य भाषण

असत्य भाषण एक ऐसा दुर्गुण है जो संसार भरके समस्त शुभ गुणोंपर पानी फेर देता है। ब्रह्मचर्य व्रतका तो यह दुर्गुण महान शत्रु है। कुसंगतिमें पड़ा हुआ बालक इसी दुर्गुणकी ओट लेता है और इसके बलसे कुछ दिनों तक अपने गुरुजनोंको धोखा दे देकर अपना सत्यानाश करता रहता है। अन्य अनेक गुण रहते हुए भी एक ही दुर्गुण सारे ब्रह्मचर्यको नष्ट भ्रष्ट कर देनेमें समर्थ हो जाता है। अतः हे बालको, इस दुर्गुणसे बहुत सावधान रहो। कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, पर असत्य भाषणका आश्रय मत लो। सच्चे ब्रह्मचारीकी यही खास पहिचान है कि वह कभी झूठ न बोलेगा। एक बार भी वह झूठ बोला और उसका ब्रह्मचर्य नष्ट हुआ। जो झूठ बोले, बस समझ लो कि वह ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। यह बात इतनी सत्य है कि इससे अधिक सत्य कोई दूसरी बात हो ही नहीं सकती।

प्यारे बालको और बालकोंके संरक्षको, ब्रह्मचर्य बिगड़नेके कारण और उसके चिन्ह जो मैंने ऊपर लिखे हैं, ये कल्पित नहीं हैं, बल्कि अनुभूत हैं। इस लेखका लेखक २८ वर्षसे शिक्षकका काम करता है। कई हज़ार बालक पढ़ा डाले। सैकड़ों बालकोंके चरित्र और ब्रह्मचर्य भंगकी सच्ची घटनाएं देखी हैं, और उनसे जो नतीजा वा गुरु निकाला है वही मैंने यहाँ दर्ज किया है। मुझे दावा है कि जो चाहे इन बातोंको आज़मावे, कभी झूठ नहीं प्रमाणित हो सकतीं। हाँ यह हो सकता है कि इनके अलावा और भी कारण हों, पर मैं इनको ही अधिक महत्वके कारण समझता हूं। इसी कारण इन्हींका उल्लेख यहाँपर किया है। यदि आपको ठीक मालूम हों तो इनसे लाभ उठाइये, नहीं तो जाने दीजिये, अपने अनुभवसे काम लीजिये।

अब आगे हम ब्रह्मचर्यके प्रधान नियम व्याख्या सहित लिखते हैं। यह नियम भी अनुभूत हैं। सैकड़ों बालकोंको इन नियमोंके अभ्याससे लाभ पहुँच चुका है। समय बहुत कुछ बदल गया है। प्राचीन कालके सब नियम अब काममें नहीं लाये जा सकते। परन्तु यहाँ पर मैं ऐसे नियम दूंगा जो प्राचीन कालमें भी प्रचलित थे और अब भी पालन किये जा सकते हैं। छोटे बड़े, अमीर गरीब, सब प्रकारके बालक सदा और सब देशोंमें इन नियमोंका पालन करते हुए आनन्द पूर्वक अपना ब्रह्मचर्य अटल रखकर अच्छे पुरुष और परिपूर्ण मनुष्य हो सकते हैं। [ असमाप्त ]

—भगवानदीन।

---

# भोजनका स्थान और पात्र

१ भोजनका स्थान

जन करनेका स्थान अत्यन्त पवित्र और स्वच्छ होना चाहिये। भोजन करनेका कमरा यदि रसोई घरसे पृथक् हो तो विशेष उत्तम है अन्यथा रसोई बनाने और खानेके स्थानमें २॥, ३ गज़का अन्तर अवश्य रहना चाहिये।

भोजनका स्थान एकान्त और पर्देवाला होना चाहिये। ऐसे स्थान पर भोजन करना उचित नहीं कि जहां हर प्रकारके भले बुरे मनुष्योंकी दृष्टि पड़ती हो। भोजन करते समय अपने माता पिता, इष्ट मित्रों और अपनेसे प्रेम रखनेवाले एवं हित-चिन्तक मनुष्योंके अतिरिक्त अन्य मनुष्योंको विशेष कर नीच जाति के मनुष्यों, भिखारियों और जिनको देखकर चित्तमें किसी प्रकारकी ग्लानि, खिन्नता, संकोच, रोष इत्यादि उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो, वहां न आने देना चाहिये; क्योंकि उनको देखनेसे अपने मनकी स्थिति ठीक नहीं रहती और मानसिक स्थिति ठीक न रहने पर भोजनका पाचन भले प्रकार नहीं होता। दूसरे नीच लोगोंकी दृष्टि पड़नेसे भोजन दूषित हो जाता है। जिन्हें मेस्मरिज़्म, और हिप्नाटिज़्मके सम्बन्धमें थोड़ा भी ज्ञान है वह जानते हैं कि इच्छा शक्तिसे कैसे कैसे आश्चर्यजनक कार्य किये जाते हैं। इसीलिए भोजन करते समय जिन मनुष्योंकी दृष्टि आपके भोजनपर पड़ती है उनमेंसे जिनके विचार आपके सम्बन्धमें अच्छे नहीं हैं, जो आपके हित-चिन्तक नहीं हैं, उनकी दृष्टिका बुरा प्रभाव भोजन-पर न्यूनाधिक अवश्य पड़ेगा। जिनकी यह दृढ भावना है कि हमारे ऊपर इस प्रकारके विचारों या कुदृष्टिका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता; उनकी यह भावना अपनेसे निर्बल इच्छा शक्ति रखनेवाले-के कुविचारोंको दबा लेती है और उनपर बुरी दृष्टिका भी बहुत कम प्रभाव पड़ता है; परन्तु बच्चों पर दूसरोंके बुरे या भले विचारोंका प्रभाव दृष्टि द्वारा शीघ्र ही हो जाता है। यही कारण है कि मेस्मरिज़्मका थोड़ा अभ्यास रखने वाले भी बच्चोंको शीघ्र ही मूर्छित कर देते हैं और बड़ों पर उनका प्रभाव बहुत कम होता है। अतएव बच्चोंके भोजनको दृष्टि दोषसे अवश्य बचाना चाहिये। यह याद रखना चाहिये कि बुरी या भली दृष्टिका प्रभाव जानदार और बेजान दोनों पर ही पड़ता है और जो लोग मेस्मरिज़्म इत्यादि नहीं जानते यह प्रभाव उनकी दृष्टिमें भी अवश्य होता है; अतएव यह न समझना चाहिये कि आहारके बेजान पदार्थों पर मेस्मरिज़्म आदि न जाननेवालोंकी दृष्टिका प्रभाव नहीं पड़ सकता।

भोजनके कमरेमें प्रकाश और वायु सञ्चारका यथोचित प्रबन्ध होना चाहिये। वहां पर यथा सम्भव बहुत कम सामान होना चाहिये और उसकी दीवारोंपर सुन्दर सुन्दर चित्र ( आदर्श वाक्य ) और सूक्तियां इत्यादि लगी रहनी चाहिएँ, जिनको देखनेसे चित्त प्रसन्न रहे।

रसोई खानेका कमरा प्रतिदिन धुलवाना, और साफ़ कराना चाहिये; उसके आस पास कोई ऐसा स्थान न होना चाहिये कि जहांसे दुर्गन्धि इत्यादि आती हो। जिस स्थानमें बहुत कोलाहल हो वहां बैठकर भी भोजन न करना चाहिये, मतलब यह कि भोजन करनेके कमरेमें शान्ति और प्रसन्नता मूर्तिमान से होने चाहिएँ।

### २—भोजनके पात्र

खानेके लिए सोने और चाँदीके पात्र सर्वोत्तम माने गये हैं। सोनेके पात्र त्रिदोष नाशक और नेत्रोंके लिए हितकारी होते हैं। चान्दीके पात्र भी नेत्रोंके लिए हितकारी और पित्तनाशक होते हैं; ग्रीष्म ऋतुमें चांदीके पात्रोंमें भोजन करना विशेष उपयोगी है। परन्तु इस दीन देशमें जहां तन ढांपनेको वस्त्र और पेट भरनेको भोजन भी सबको नहीं मिलता वहां सर्व साधारणके लिए सोने और चांदीके पात्रोंके दर्शन भी दुर्लभ हैं, फिर उनमें भोजन करनेकी कौन कहे? राजा महाराजों और धनवान ही उनका प्रयोग कर सकते हैं। चांदीसे उतर कर कांसेके पात्र होते हैं; इनमें भोजन करना सदैव हितकर है। कांसेके पात्र बुद्धि और रुचिको बढ़ानेवाले, रक्तशोधक और पित्त-नाशक होते हैं।

पीतलके पात्र रूक्ष, वायु वर्द्धक, और खुश्की पैदा करनेवाले हैं; परन्तु कृमि, कफ़ और शूलको नष्ट करते हैं। इसलिए इन रोगोंसे पीड़ित मनुष्यों-

को तो पीतलके पात्रोंमें ही भोजन करना चाहिये। परन्तु सर्व साधारणको यथा सम्भव पीतलके बर्तनोंको कम उपयोगमें लाकर कांसीके पात्रोंमें भोजन करना चाहिये। यदि पीतलके बर्तनोंमें ही भोजन करना पड़े तो उनपर क़लई करा लेनी उचित है। खट्टे पदार्थोंको पीतलके बर्तनोंमें कभी भूलकर भी न रखना चाहिये; इससे उनमें एक प्रकारका विष उत्पन्न हो जाता है।

लोहेके पात्र बलवर्द्धक और सूजन, पीलिया-तथा कामला रोग नाशक होते हैं।

काच, बिल्लौर, चीनी और मूंगेसे जड़े हुए पात्र पवित्र और शीतल होते हैं; इनमें किसी प्रकारके पदार्थ भी नहीं बिगड़ते और न स्वास्थ्यको ही कोई हानि पहुँचती है। ग्रीष्म ऋतुमें इनका व्यवहार विशेष लाभदायक है।

पत्थर और मिट्टीके पात्र तक्र, दही, और अन्य खट्टे पदार्थ रखनेके लिए उत्तम होते हैं।

काष्ठ के पात्र भोजनमें रुचि उत्पन्न करने वाले, पवित्र और पित्त नाशक होते हैं, वायु औ कफ़की वृद्धि करते हैं, इसलिए बरसात और जाड़ेमें उनका प्रयोग न करना चाहिये।

पत्तोंकी बनी पत्तल दौने आदि—केला, कमल इत्यादि पत्रोंसे बनी हुई पत्तल, दौने इत्यादि भोजनके लिए बहुत उत्तम माने गये हैं। इनमें भोजन करनेसे रुचि और जठराग्निकी वृद्धि होती है और भोजनमें किसी प्रकारका साधारण रासायनिक विष उत्पन्न हो गया हो तो उसका प्रभाव भी नष्ट हो जाता है।

तांबेके पात्र भोजन करनेके लिए निषिद्ध हैं; परन्तु क़लई करा कर उनका प्रयोग करनेमें कोई हानि नहीं है। पानी भर कर रखनेके लिए तांबेके पात्र ही उत्तम होते हैं। तांबेके पात्रोंमें जल शोधक शक्ति होती है और महामारियोंके दिनोंमें तांबेके पात्रोंमें जल पीना और रखना विशेष उत्तम है। परन्तु यह बात केवल पानीके लिए है; अन्य पदार्थ तांबेके पात्रोंमें रखना उचित नहीं है।

---

# भोजन कैसा होना चाहिये ?

भोजन दर्शन और गन्धमें प्रिय होना चाहिये। जिस पदार्थके देखने या गन्धसे घृणा उत्पन्न हो; जो अरुचि उत्पन्न करता हो वह कभी न खाना चाहिये। जिस भोजनके खानेसे चित्त प्रसन्न नहीं होता वह अच्छी तरह पच भी नहीं सकता, क्योंकि ऐसा भोजन करनेसे पाचक रस भली प्रकार नहीं बनते।

२—बासी भोजनकी अपेक्षा ताज़ा भोजन अधिक हितकर होता है। विद्यार्थियों और अध्यापकोंको तो बासी भोजन कभी भी न करना चाहिये; क्योंकि वह आलस्य उत्पन्न करता है और स्मरण शक्तिका ह्रास करता है। चरकने लिखा है कि बासी भोजन अरुचि उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंमें प्रधान है।

३—इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि रोटी जली हुई या कच्ची न हो। कच्ची रोटी उदरशूल, अजीर्ण इत्यादि रोग उत्पन्न करती है और जली हुई रोटी बलहीन हो जाती है।

४—सदैव एक सा ही भोजन करते रहना ठीक नहीं है, भोजनमें परिवर्तन अवश्य होता रहना चाहिये।

५—भोजन जल वायु, देश काल और मनुष्य की प्रकृतिके अनुकूल होना चाहिये। ऋतु और मनुष्यकी आयु तथा शारीरिक और मानसिक परिश्रम इत्यादिका लिहाज़ रहना भी आवश्यक है।

६—हरे शाक पर्याप्त मात्रामें खाने चाहियें और अपनी स्थितिके अनुसार फल तथा मेवे भी खाते रहना चाहिये।

७—अधिक गरम या अधिक ठंडा भोजन दाँतोंको हानि पहुँचाता है; इसलिए सदैव मन्दोष्ण भोजन करना चाहिये।

८—एक समयमें बहुतसे शाक, मिठाइयां, अचार, मुरब्बे इत्यादि बहुत प्रकारके भोजन खाने की अपेक्षा, एक दाल, शाक, रोटी और एकाध कोई अन्य पदार्थ खाना अधिक हितकर हो सकता है। अभिप्राय यह कि भोजनमें जितने कम पदार्थ हों उतना ही अच्छा है। प्रसिद्ध लेखक एडीसनका कथन है कि मेरे सामने जब विविध भोजनोंके पात्र आते हैं तो मैं उन पात्रोंकी आड़में विविध रोगोंको घात लगाये हुये बैठा देखता हूं।

केलग नामी एक पाश्चात्य विद्वान डाक्टर कहता है कि—

"पाचन शक्तिको अच्छी दशामें रखनेके लिए सादे भोजनसे बढ़कर कोई उत्तम पदार्थ नहीं है।"

एक समयमें बहुत से पदार्थ खानेसे उनका पाचन भले प्रकार नहीं हो सकता। यदि भोजनमें बहुत से पदार्थ होते हैं तो भोजन भूखसे अधिक किया जाता है; कई चीज़ें क्षुधानिवृत्ति हो जाने पर भी केवल स्वादके लिए खाई जाती हैं। अतएव यह बहुत ही आवश्यक है कि भोजनमें यथा सम्भव न्यूनातिन्यून पदार्थ हों। भोजन जितना ही सादा और मिर्च मसालोंसे रहित होगा वह उतना ही अधिक स्वास्थ्य वर्द्धक होगा।

९—भोजनके साथ किसी रसेदार शाक या दालादिका होना आवश्यक है। शुष्क भोजन भले प्रकार नहीं पचता और जठराग्निसे दग्ध हो कर विदग्धाजीर्ण उत्पन्न करता है; कलेजे और छातीमें जलन होती है, खट्टी डकारें आती हैं और भोजनपर अरुचि उत्पन्न हो जाती है। शुष्क भोजनसे शारीरिक धातुओंकी यथोचित वृद्धि नहीं होती और रक्ताभिसरण क्रिया मंद हो जाती है एवं मलावरोध उत्पन्न होता है।

१०—भोजनमें घृतादि स्नैहिक पदार्थ इतने अधिक न होने चाहिएं कि उनका पचना कठिन हो जाय। घृत भोजनमें पकते समय ही डाल देना चाहिये; क्योंकि कच्चा घृत आसानीसे नहीं पचता।

११—सदैव ऐसा भोजन करना चाहिये कि जो सुगमतासे पच सके।

१२—फल ताज़े और गदरे (अधपके) विशेष उत्तम होते हैं; अधिक पके हुए, घुले और अधिक समयके रखे हुए फल (जिनमें दुर्गन्ध आने लगी हो अथवा उनका कोई अंश भी गल गया हो) खाना बहुत हानिकारक है। खानेसे पहिले फलोंको भले प्रकार धो लेना चाहिये।

—गोपीनाथ गुप्त वैद्य।

## पृथ्वीका जन्म

विशाल भूमंडलके सामने मनुष्यका शरीर इतना तुच्छ दिखाई पड़ता है जितना कि हिमालय पर्वतके सामने एक त्रसरेणु। उसके जीवन निर्वाहके लिए एक बीघा ज़मीन और एक गाय काफी होती है। और जब मरता है तो एक मुट्ठी भर खाक बच रहती है। कुछ दिन पहिले इस तुच्छ शरीर वाले प्राणीके पास न देखने या जांचनेके यन्त्र थे और न यात्रा करनेके साधन। उसके पास न दूरबीन, न रेल न मोटर कार और न एरोप्लेन ही थे। यही कारण था कि वह प्रायः भूमंडलके थोड़े से ही भागको देख पाता था। वह पृथ्वीको एक चपटी सी चीज़ समझता था, जो ब्रह्मांडके बीचमें स्थित है और जिसकी परिक्रमा सूर्य्य, चांद और सारे सितारे किया करते हैं। पृथ्वीका अन्त समुद्र तक पहुँचने पर समझा जाता था, क्योंकि उस ज़मानेमें जहाज़ और अग्नि बोट नहीं थे। दरख़्तोंके तनोंको खोद कर बनाई हुई छोटी छोटी नावमें बैठ कर मनुष्य समुद्रमें जानेका साहस नहीं कर सकता था। इसीलिए प्राचीन मनुष्य यह ख़याल करने लगे थे कि पृथ्वी चपटी है और उसके चारों ओर समुद्र

है, जिसका अनन्त विस्तार है। यूनानी लोग मानते थे कि पृथ्वीका अन्त जिबराल्टर पर हो जाता है, जिसके आगे और आस पास, उन लोगोंका विश्वास था कि जादूके बाग़ हैं। हिन्दुओंका भी विश्वास था कि, पृथ्वी एक हाथीकी पीठ पर रखी हुई है, जो एक कछुएकी पीठपर खड़ा है और कछुआ दूधके समुद्रमें तैर रहा है।

ऐसा होना ऊपर बतलाये हुये कारणोंसे बिलकुल स्वाभाविक था। आजकल भी बहुत से पढ़े लिखे आदमियोंको यह न मालूम होगा कि पृथ्वीका व्यास कितना और परिधि कितनी है। इसी प्रकार बहुतोंको यह भी न मालूम होगा कि चन्द्रमा स्वतः प्रकाशमान नहीं है। इसलिए इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है कि प्राचीन मनुष्यने झूठे सिद्धान्त बना लिये। आश्चर्य तो यह है कि प्राचीन मनुष्यने ऐसे गूढ़ और भ्रममें डालनेवाले विषय-पर सिद्धान्त गढ़नेका साहस किया।

अनन्त कालसे इन छोटे छोटे शरीरवाले मनुष्योंमेंसे सदा थोड़े ऐसे भी पैदा होते रहे हैं कि जिनके दिल और दिमाग़ औरोंसे बड़े थे और जिन्होंने उपरोक्त समस्याओंको हल करनेका प्रयत्न किया है, और यद्यपि आरम्भमें उन्हें सफलता नहीं हुई है, तथापि धीरे धीरे किसी न किसी तरह इस भूमंडलका बहुत कुछ हाल उन्होंने जान लिया है। ऐसे ही लोग भूमंडलका हाल जाननेसे सन्तुष्ट नहीं हुए। वह यह भी जानना चाहते थे कि पृथ्वीकी अवस्था उसके शैशवकालमें कैसी थी। वह इस बातको जान लेना चाहते थे कि कब और कैसे उसका जन्म हुआ और किस प्रकार उसने इतने दिन बिताये हैं। कवियोंने अपनी कल्पना शक्तिका सहारा लेकर पृथ्वीके जन्मकाल तकका हाल जाननेका प्रयत्न किया। वैज्ञानिकों और दार्शनिकोंने अपनी तर्क शक्तिसे वहाँ तक पहुँचनेमें कोई बात उठा न रखी। और इस प्रकार कल्पना और तर्क दोनोंकी सहायतासे अब हम पृथ्वीके प्राचीन इतिहासका कुछ कुछ हाल जान पाये हैं।

यह तो निश्चय है कि पृथ्वी सदासे ऐसी अवस्थामें नहीं रही है, जैसी आजकल है। हर दिन और हर वर्ष हम पृथ्वीतलको बदलते देखते हैं। कहीं पहाड़ टूटटूटकर मिट्टीमें मिल जाते हैं। कहीं ग्लेशियर्स काफूर हो जाते हैं। कभी नये नये टापू समुद्रके आंचलको फाड़ मुँह दिखाते हैं, तो कभी कभी पृथ्वीके बड़े बड़े भाग जलमग्न हो जाते हैं। बरफ़, अन्धड़, समुद्र, भूकम्प और ज्वालामुखी यह सब अपना बनाने बिगाड़नेका काम किया करते हैं। भूगर्भ शास्त्रसे हमको मालूम होता है कि ऐसे परिवर्तन इतने युगोंसे होते चले आये हैं कि उनका अन्दाज़ा लगाना भी कठिन है। आर्टिक और एन-टार्टिक समुद्रकी बर्फमें यदि गरम प्रदेशोंके जङ्गलोंके अवशेष पाये जाते हैं, तो घाससे ढकी हुई हरी भरी भूमिके ऊपर बिखरी हुई चट्टानों पर ग्लेशियर्सके निशान देखनेमें आते हैं। कहीं पहाड़ों पर सीपी आदि देखनेको मिलती हैं तो समुद्रोंके तलेटी पर शहरोंके निशानात पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त हम यह भी जानते हैं कि पृथ्वी धीरे धीरे ठंडी होती चली जा रही है और शायद एक ऐसा ज़माना था जब वह पिघली हुई दशामें रही होगी। पर प्रश्न यही रह जाता है कि पृथ्वी कहांसे आई और पहिले पहल इसका रूप कैसा था।

लगभग डेढ़ सौ वर्ष हुए कि कुछ बड़े बड़े विद्वानोंके प्रयत्नसे एक अत्यन्त साहसपूर्ण कल्पना की रचना हुई। इसी सिद्धान्तके ऊपर पीछेसे पृथ्वीके बनने और उसके रूप निकलनेके विषयमें और सिद्धान्त गढ़े गये। इस सिद्धान्तको कई विद्वानोंने कई प्रकारसे बतलाया। इसके भिन्न भिन्न रूपोंकी चर्चा तो फिर कभी की जायगी; अब तो हम केवल लापलेस महाशयकी कल्पनाका कुछ कुछ उल्लेख करेंगे।

जिनके पास दूरबीन है या जिन्होंने एक दूरबीनमें होकर तारोंकी तरफ देखा है। उनका यह अनुभव होगा कि आकाशमें कुछ ऐसे भी पिंड हैं जो कोहरेके समान दिखाई पड़ते हैं। ऐसे ही पिंडों

को नीहारिका कहते हैं। नीहारिकाओंमें छिटके हुए तारे भी दिखाई दिया करते हैं। अन्तरमदा मंडलमें भी एक नीहारिका है। लाप्लेस महोदय का कहना है कि ऐसे ही एक नीहारिकामय पिंडसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है। सौरमंडलके सभी पिंड एक चक्कर खाते हुये श्वेत उत्तप्त गैस-मय नीहारिकाके गर्भमें एक समय समाये हुए थे। यह नीहारिका बहुत बड़ी थी; अरुण और वरुण ग्रहोंके क्रान्तिमार्गके आगे तक भी लाखों मील तक फैली हुई थी; सूर्यके पिंडसे लाखों गुनी बड़ी थी। यह धूममय पिंड ठंडा होता गया और जैसे जैसे सिकुड़ता गया नियमानुसार उसका वेग बढ़ता गया। मान लीजिये कि हम एक लकड़ीके सिरेपर कुछ चिथड़े बांध लें और इसको पानीमें भिगोकर बड़ी तेज़ीसे घुमायें, तो उसमेंसे पानी अलग होने लगेगा। इसी प्रकार उपरोक्त नीहारिकाके वेग बढ़नेपर उसमेंसे एक छल्ला सा अलग होगया। यह छल्ला भी कुछ समय तक सबका सब घूमता रहा; परन्तु कुछ समय बाद बीचमें से टूट गया और एक स्थानपर सिमिटने लगा और अन्तमें एक गोल पिंडके रूपमें बदल गया, जिसे आजकल हम वरुण कहते हैं। यह पिंड भी अपने मातृपिंडकी पूर्ववत प्रदक्षिणा करता रहा।

नीहारिकाका ठंडा होना बराबर जारी रहा और उससे क्रमशः नव ग्रहोंकी उत्पत्ति हो गई। ग्रह भी क्रमशः ठंडे होते गये और उनसे भी इसी प्रकार उपग्रहोंकी उत्पत्ति हुई; जैसे पृथ्वी-से चन्द्रमाकी। इस सिद्धान्तको दिखलानेके लिए एक बेलजियन वैज्ञानिकने एक बड़ा अच्छा प्रयोग किया। उन्होंने पानी और शराबका एक मिश्रण लिया और उसमें तेलकी एक छोटी सी गोली छोड़ी और ऐसी तरकीब की कि वह चक्कर खाने लगी। ज्यों ज्यों यह चक्कर लगाती थी, कटि भाग (ईक्वेटर) पर बाहरको निकलती आती थी और ध्रुव देशों पर चपटी होती जाती थी। जब वह और तेज़ीसे घुमाई गई तो उसमें से छल्ले अलग होने लगे, जो धीरे धीरे टूटकर छोटे छोटे गोल पिंडोंमें बदल गये और अपनी धुरीपर चक्कर लगाते हुये मातृपिंडकी भी परिक्रमा करने लगे।

लाप्लेसके इस सिद्धान्तके अनुसार एक समय पृथ्वी सूर्य और ग्रह सब एक अग्निमय पिंडमें शामिल थे और पृथ्वी सूर्यके चारों तरफ एक छल्लेके रूपमें विद्यमान थी। यह विचार बहुत ठीक मालूम होता है। शनिग्रहके चारों तरफ कई पेटियां देखनेमें आती हैं, और देशमें तेजोमय घूमती हुई अनेक नीहारिकायें भी विकासकी विविध अवस्थाओंमें देखनेमें आती हैं, तो भी अधिक वैज्ञानिकोंका खयाल है कि यह सिद्धान्त सन्तोषजनक नहीं है और उन्होंने बहुत से संशोधन और परिवर्तन भी किये हैं। इनमेंसे सबसे विख्यात उल्कावाद है। उसके अनुसार हमारे ग्रहोंकी उत्पत्ति उल्काओंके टुकड़ोंके मिल जानेसे हुई है। हमारे सौरमंडलके ग्रहोंके बीचमें पत्थरों और टूटे हुये उल्का पिंडोंके समूहके समूह इधर उधर चक्कर लगा रहे हैं। जब इनके बड़े बड़े टुकड़े हमारे वायुमंडलमें प्रवेश करते हैं तो हवासे रगड़ खाकर श्वेत उत्तप्त हो जाते हैं और हमको दिखाई पड़ जाते हैं। यही टूटते हुए तारे कहलाते हैं। प्रोफेसर न्यूटन महोदयका अनुमान है कि प्रायः २ करोड़ ऐसे उल्का वायु मण्डलमें नित्य प्रवेश करते हैं कि जो हमको दिखाई पड़ सकते हैं। छोटे छोटे उल्काओंका कहना ही क्या है, क्योंकि वह तो दिखाई ही नहीं देते। सम्भव है कि सूर्यपर भी ऐसी ही गोलाबारी होती हो। पुच्छलतारे भी शायद इन्हीं उल्काओंके समूह रूप हैं।

उल्कावादके अनुसार नीहारिकाएं भी उल्काओं के समूह हैं, जो उज्ज्वल गैसमें बराबर चक्कर लगा रहे हैं। पत्थर इधर उधर घूमते हैं, टकराते हैं और रगड़ खाते हैं। टकरानेसे उत्पन्न हुए तापसे इनमेंसे कुछ पिघल जाते हैं और कुछ वाष्पमें परिणत

हो जाते हैं। शनैः शनैः छोटे छोटे पत्थरोंके मिलनेसे अधिक बड़े पत्थर बन जाते हैं, जो आकारमें गुरुत्वाकर्षणके नियमानुसार बढ़ते जाते हैं।

अभी तक इस बातका ठीक ठीक निर्णय नहीं हो पाया है कि इस सिद्धान्तके अनुसार ग्रहोंकी रचना किस प्रकार होती है और किस प्रकार वह क्रान्ति मार्गों पर घूमने लगते हैं। कुछ लोगोंका खयाल है कि पत्थर सब दिशाओंमें घूमते रहते हैं, कुछ यह कल्पना करते हैं कि पत्थर भी एक केन्द्रस्थपिण्डके चारों ओर अपने अपने क्रान्ति मार्गोंपर चक्कर लगाते हैं; और टकराते तभी हैं जब उनके क्रान्ति मार्ग कटते हैं; कुछ भी खयाल क्यों न किया जाय, परिणाम वही निकलता है—ग्रह रूप पिण्डोंका बन जाना।

चाहे हम यह समझ लें कि पृथ्वीकी उत्पत्ति ठण्डे होते हुए धूममय पिण्डसे हुई है, अथवा यह समझ लें कि पत्थरोंकी बौछारमें इसका जन्म हुआ है; बात यह माननी ही पड़ेगी कि दोनों सिद्धान्तोंके अनुठपन से मन फड़क उठते हैं। दोनों सिद्धान्त एक समान चमत्कार और रहस्य से भरे हुए हैं।

जीन्स महोदयकी कल्पनाका भी यहां पर उल्लेख कर देना आवश्यक जान पड़ता है। इन्होंने गणितसे यह सिद्ध किया है कि गोलाकार नीहारिका यदि उत्तप्तावस्थामें चक्कर लगाती हो तो वह कालान्तरमें सिकुड़ने पर नासपातीका आकार धारण कर लेगी, क्योंकि ऊपरकी तरफ़से अधिक शीघ्रतासे ठंडी होती जायगी और ज्यों ज्यों सिकुड़ती जायगी त्यों त्यों उसका वेग भी बढ़ता जायगा।

अन्तमें जो इसका कूब सा निकल आयगा, उसकी मातृपिण्डसे कटकर अलग हो जानेकी सम्भावना दिनों दिन बढ़ती जायगी और वह विशेषतः किसी पाससे निकले हुए पिण्डके आकर्षणसे, किसी समय अलग हो जायगा।

इस सिद्धान्तसे भी सूर्यसे अनेक ग्रहोंकी और ग्रहोंसे उपग्रहोंकी उत्पत्ति होना समझमें आसकता है। सम्भवतः पृथ्वी चन्द्रदेवको अपने गर्भमें ५६००००००० वर्ष पहले धारण किये हुए थी। उस समय उसका आकार नासपातीका सा रहा होगा और वह सूर्यकी परिक्रमा लगाती होगी। सूर्यके आकर्षणसे ही इसका उभरा हुआ भाग अलग हो गया होगा, जिसके निकल जानेसे २७ मील गहरा खड्ड पृथ्वीमें हो गया। इसी खड्डके स्थान पर आज कल प्रशान्त महासागर विद्यमान है। प्राकृतिक शक्तियोंने जहांसे पृथ्वी पिण्डको काटकर चन्द्रमाको निकाल लिया, उसी नीचे स्थानमें प्रशान्त महासागर किलोलें मार रहा है; उधर निर्मल चन्द्रबिंब अपनी मनोहारिणी मुस्कराहटसे, अपनी टेढ़ी चितवनसे, प्रशान्त महासागरकी शान्ति भंग करनेमें निशिवासर प्रयत्नशील रहता है; मानों अपनी माताके हृदयमें पुत्र वियोगके दुखकी लहरें उठते और लय होते देख माताके प्रेमका परिचय पा पहले तो सुखी होता है और पीछेसे पश्चात्ताप होनेपर क्षीण कलेवर हो जाता है।

जब चन्द्र पिण्ड पृथ्वी पिण्डसे अलग हुआ था, उस समय पृथ्वी बड़े वेगसे अनन्त देशमें घूम रही थी। उस ज़मानेमें रात दिन कुछ घण्टोंके ही होते थे। अतएव जब चन्द्रमा निकल कर अलग हुआ उसकी अत्यधिक गतितति थी। वह प्रायः १०००० मीलकी दूरी पर जा पृथ्वी की परिक्रमा लगाने लगा और प्रायः दिनमें छः बार उदय और अस्त होता था। उस समय उसके ज्वालामुखी अपने यौवनकालमें थे और पृथ्वीतलपरसे स्पष्ट दिखाई पड़ते होंगे। उस समय उसको सब तरफ़से हम देख सकते होंगे। (आजकल हम चन्द्रमाका एक तरफ़का भाग ही देख पाते हैं। उसके दूसरे भागका कुछ अंश दाएं बाएं कभी कभी दीख जाता है।) उस अतीतकालमें जो अंधड़ और ज्वारभाटे उठते होंगे उनकी कल्पना करते हुए भय प्रतीत होता है। बाल महोदयका अनुमान है कि ६०० फुट ऊँची लहरें उस कालमें उठती थीं।

आजकल चन्द्रमा लगभग २३८००० मील दूर है। उसके ज्वालामुखी अब मर चुके हैं, उसके कारण जो तरंगें भूमण्डल पर उठती हैं वह बहुत छोटी होती हैं, वह अपनी अक्ष पर घूमना भी भूल गया है तथापि उसके पुराने इतिहास पर विचार करनेसे दया और आदरके भाव उत्पन्न होते हैं।

जब पृथ्वीका तापक्रम १२००°श हो गया तब उसका ऊपरी भाग ठंडा हो कर ठोस बन गया और जब ऊपरी भागका तापक्रम ३७०°श हो गया तबसे जलका द्रव रूपमें इकट्ठा होना आरम्भ हो गया। यह ज़माना भी बड़े बड़े उपद्रवोंका था—गली हुई धातुओंकी नदियां सर, सरिता और सागर, धातुओंके बादल और वर्षा, बड़े भयंकर ज्वालामुखियोंका अग्नि-उद्गार, महा प्रलयकेसे भूचाल आदि घटनाएँ उस कालकी विशेषताएं थीं।*

---

## भोजनके पूर्वके कृत्य

जनके पूर्व स्नानादि करके शुद्ध और पवित्र होकर खड़ाऊँ पहन कर भोजनके स्थानमें आना चाहिये। यद्यपि स्नानका उपयुक्त समय प्रातःकाल ही है, परन्तु जो ऋतु अनुकूल हो और सहन हो सके तो भोजन करनेके पूर्व भी स्नान कर लेना चाहिये, अन्यथा हाथ, मुंह इत्यादि अवश्य धो लेने चाहिएँ। स्नान करने से भोजनमें रुचि उत्पन्न होती है और चित्त शान्त होता है, शान्त-चित्त हो कर किया हुआ भोजन शीघ्र पचता है; स्नान करने से क्रोध, कामादि मानसिक विकार दूर हो जाते हैं कि जो भोजनके समय मनमें न रहने चाहिएँ।

भोजनके पूर्व और पश्चात् खड़ाऊँ पर चढ़नेके लाभ भाव प्रकाशमें इस प्रकार लिखे हैं।

> पादुकारोहणं कुर्यात्पूर्वं भोजनतः परम्।
> पाद रोग हरं, वृष्यं, चक्षुष्यञ्चायुष्यो हितम्॥

अर्थात् भोजनके पूर्व और पश्चात् खड़ाऊँ पहनने से, पाद-रोगोंका नाश होता है; वीर्यकी वृद्धि होती है और नेत्रोंको लाभ पहुंचता है तथा आयु बढ़ती है।

आयुर्वेदमें भोजन करनेके पूर्व मंगल पदार्थोंके दर्शनकी अनुमति दी गई है और ब्राह्मण, गौ, अग्नि, पुष्पमाल, घृत, सूर्य, राजा और जल—इन आठको मंगलकारी माना है।

स्नान करके या हाथ पैर और मुख धोकर सब प्रकार से शुद्ध और पवित्र होकर कुश, कंबल इत्यादिके पवित्र आसन पर बैठकर शान्ति पूर्वक मौन होकर भोजन करना चाहिये।

भोजनका थाल किसी इतनी ऊँची तिपाई या चौकी इत्यादि पर रखना चाहिये कि जिससे नीचे बहुत झुकना न पड़े। भोजन करते समय नीचे झुक कर या घुटने खड़े करके बैठनेसे आमाशयादि सिकुड़ जाते हैं और उन पर दबाव पड़ता है। ऐसी स्थितिमें किये हुये भोजनका ठीक ठीक परिपाक नहीं होता। इसलिए भोजन करते समय सदैव आलती पालती मार कर सीधा बैठना चाहिये।

भोजन करते समय शरीरपर बहुत थोड़े और हल्के वस्त्र होने चाहिएँ; कोट पतलून इत्यादि पहन कर भोजन करना अनुचित है; भारी और खिंचे हुए कपड़ोंसे आमाशय, पक्वाशयादि पर दबाव पड़ता है। दूसरे तनिक सी असावधानीसे कपड़ोंपर कोई भोज्य पदार्थ गिर जानेसे उनके खराब होनेका भय रहता है। इसके अतिरिक्त भोजनके पचनेमें आक्सीजन वायुकी विशेष आवश्यकता होती है; शरीर पर अधिक वस्त्र होनेसे शरीरकी

---

* देखिये विज्ञान भाग ६ संख्या १ पृष्ठ ३५ 'जलकी मनोरंजक गाथा' शीर्षक लेख।

त्वचाके करोड़ों छिद्रोंसे जो वायु भीतर जा सकती थी वह नहीं जा सकती।

एक ही पात्रमें दो वा ततोधिक मनुष्योंको भोजन न करना चाहिये। ऐसा करनेसे यदि एकको कोई छूतका रोग होता है तो अन्योंको भी उसके हो जानेका भय रहता है। इसी प्रकार किसीके जूठे पात्रमें भोजन करना और पानी पीना अथवा कोई जूठा पदार्थ खाना हानिकारक है। भाई, बहिन, पिता, पुत्र, माता, पत्नी या अन्य कोई चाहे जैसा घनिष्ठ सम्बन्धी या इष्ट मित्र क्यों न हो किसीको भी जूठन खाना या जूठे पात्रमें भोजन करना सर्वथा अनुचित और हानिकारक है। भोजन सामने आते ही एकदम खाना आरम्भ न कर देना चाहिये; बल्कि २-१ मिनट चुपचाप शान्तिके साथ बैठकर ईश्वरको धन्यवाद देना चाहिये और ऐसा ध्यान करना चाहिये, बल्कि दृढ विश्वास रखना चाहिये, कि यह भोजन हमारे लिए अत्यन्त लाभदायक है; हमारे स्वास्थ्य और प्रकृतिके सर्वथा अनुकूल है; और इस भोजनसे हमें अत्यधिक शारीरिक और मानसिक बल प्राप्त होगा। ऐसा करनेसे भोजनकी इच्छा प्रबल होती है और इच्छाके प्रबल होनेसे पचन-क्रियामें बहुत सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त इससे संयम और सहनशीलताका अभ्यास होता है; जल्दबाज़ी और बेसबरीकी बुरी आदत छूटती है।

भोजनके आदिमें थोड़ा अदरक और सैन्धा नमक खाना अच्छा है। इससे अग्नि प्रदीप्त होती है, जिव्हा और कण्ठ शुद्ध होता है तथा भोजनमें रुचि बढ़ती है। जिन्हें अदरक अनुकूल न पड़ता हो उन्हें छोटी काली हड़ खानी चाहिये। हड़ खानेसे भी वही लाभ होता है कि जो अदरकसे। इसके पश्चात् मधुर रसयुक्त पदार्थोंसे भोजन करना आरम्भ करे, क्योंकि भूखके समय वायु और पित्तका अंश बढ़ा हुआ होता है। वह मधुर पदार्थोंके सेवनसे यथोचित हो जाता है; इसके सिवाय पहिले मीठे पदार्थ खानेसे मुखसे लार छूटने लगती है, जिसके संयोगसे भोजनका परिपाक अच्छी तरह होता है।

भोजनके मध्यमें अग्नि प्रदीप्त करनेके लिए नमकीन और अम्लरसवाले पदार्थ खाने चाहियें और अन्तमें तिक्त तथा कसैले पदार्थ, क्योंकि भोजनके अन्तमें कफ बढ़ जाता है ( इसलिए भोजनान्तमें प्रायः कुछ सरदी मालूम हुआ करती है ) और यह रस कफको शान्त करनेवाले हैं।

यदि भोजनमें फल हों तो ( केला, ककड़ी और चिलगोजेको छोड़कर ) सब प्रकारके मधुर फल आदिमें ही खाने चाहियें। गन्ना भी भोजनके आदिमें खाना हितकर है। गुरु पाकी पदार्थ और कन्द मूल भोजनके आदिमें ही खाने चाहियें; लड्डू, चिवड़ा-चौड़ा-जलेबी कचौरी या अन्य पीठीके बने पदार्थ और अन्य समस्त प्रकारके गरिष्ठ पदार्थ भी भोजनके आदिमें ही खाने उचित हैं। क्योंकि उस समय अग्नि प्रदीप्त रहती है और भारी पदार्थ भी आसानीसे पच जाता है। यदि उदरका अधिक भाग लघु-पाकी पदार्थोंसे भर जाने पर थोड़ा भी गरिष्ठ भोजन किया जायगा तो उसके पचने में भी कठिनता होगी; इसलिए सब प्रकारके गुरु पदार्थ पहिले ही खाने चाहियें।

गुरु पदार्थ तीन प्रकारके होते हैं—(१) स्वभाव गुरु, जैसे उर्द इत्यादि जो स्वभावसे ही देरमें पचते हैं। (२) मात्रा गुरु जैसे मूंग इत्यादि जो लघुपाकी होनेपर भी अधिक मात्रामें खानेसे देरमें पचते हैं और (३) संस्कार गुरु। संस्कार भेदसे आहार पदार्थ छः प्रकारके बनते हैं (१) चूष्य पदार्थ जो चूसकर खाये जाते हैं जैसे गन्ना, आम, नीबू इत्यादि; (२) पेय पदार्थ जो पिये जायँ जैसे शरबत, दूध, तक्र इत्यादि; (३) लेह्य पदार्थ यथा रबड़ी, लपसी इत्यादि; (४) भोज्य पदार्थ यथा दाल चावल, रोटी इत्यादि (५) भक्ष्य पदार्थ यथा लड्डू, पेड़ा, मठरी, गुझिया इत्यादि और (६) चर्व्य पदार्थ यथा चिवड़े—इत्यादि। यह छहों प्रकारके पदार्थ उत्तरोत्तर गुरु माने गये हैं अर्थात्

चूष्य पदार्थ सबसे हलके और चर्व्य पदार्थ सबसे भारी होते हैं। भक्ष्य और चर्व्य पदार्थ भोजनके अन्तमें न खाकर आदिमें खाना उचित है।

यदि भोजनमें विदाही और चरपरे पदार्थोंका आधिक्य हो तो भोजनके अन्तमें दूध पीना चाहिये; यद्यपि भोजनान्तमें कफ़की वृद्धि होती है और दूधभी कफ़वर्द्धक है, परन्तु भोजनमें विदाही और गरम पदार्थोंके आधिक्यसे जो पित्त वृद्धि होती है दूधकी कफ़वर्द्धक शक्ति उसके शान्त करनेमें लग जाती है। और कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। भोजनके अन्तमें तक्र पीना भी हितकर बतलाया जाता है। जन साधारणमें एक कहावत प्रसिद्ध है कि :—

भोजनान्ते पिबेत्तक्रं निशान्ते च पिबेज्जलम्।
निशा मध्ये पिबेद्दुग्धं किं वैद्यस्य प्रयोजनम्॥

भोजन करते समय बातचीत करना या हँसना ठीक नहीं, क्योंकि हँसने या बोलनेसे कोई छोटा कण, चावल, या पानी इत्यादि श्वास पथमें जा सकता है और खांसी इत्यादि होनेके अतिरिक्त इससे किसी समय दम घुटकर मृत्यु हो जाना भी सम्भव है।

### चबाकर खाना

प्रत्येक ग्रासको भले प्रकार चबाकर उसके बारीक हो जाने और उसमें लारके मिल जानेपर निगलना चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि हमारे मुखमें दाँतोंकी दो पंक्तियाँ केवल सौंदर्य्य वृद्धिके लिए ही नहीं हैं; उनका मुख्य काम आहार पदार्थोंको पीसकर बारीक करना है।

पीछे बतलाया गया है कि पचन क्रियासम्बन्धी सबसे पहिला काम मुखमें ही होता है; श्वेत सार-मय पदार्थोंसे मुखमें ही एक प्रकारकी शर्करा (यवज शर्करा) बन जाती है। यह शर्करा मुखमें न बने तो फिर इस कार्यके लिए आँत और वृक्क-को प्रयत्न करना पड़ता है; इस प्रकार जब उन अवयवोंपर अपने कामके अतिरिक्त यह दाँतों और मुखका काम भी आ पड़ता है तो पहले तो वह उसे पूरा ही नहीं कर सकते और यदि कुछ आधा पौना काम करते भी हैं तो स्वयं निर्बल हो जाते हैं और अपने कार्यको भी भले प्रकार नहीं कर सकते; अन्तमें परिणाम स्वरूप अजीर्ण, मन्दाग्नि इत्यादि रोग उत्पन्न हो कर जीवनके अधि-कांश भागको दुःखमय बना देते हैं।

हमारे नित्यके भोजनमें नशास्तेवाले पदार्थ बहुत अधिक होते हैं और होने भी चाहिएं; परन्तु नशास्तेका पाचन मुख्यतः मुखोत्पादित लार पर ही निर्भर है; अतएव आहारके समस्त नशास्ते-वाले पदार्थोंको (चाहे वह रोटी, बिस्कुट इत्यादिके समान कठिन हों या हलवेके समान ढीले) भले प्रकार चबा कर और लार मिलाकर निगलना चाहिये।

प्रत्येक ग्रासको इतना चबाना चाहिये कि उसका नशास्तेवाला भाग शर्करामें परिणत हो कर उसमें मिठास आजाय। ग्रासको तीस चालीस बार चबानेसे यह प्रयोजन प्रायः सिद्ध हो जाता है। इतना चबानेसे ग्रास बारीक हो जाता है और उसमें लार भले प्रकार मिल जाती है।

खीर या दूध इत्यादि नशास्तेवाले पतले पदार्थों को भी एक दम न निगल कर थोड़ी देर मुखमें रख कर धीरे धीरे निगलना चाहिये कि जिससे उनमें मुखकी लार यथेष्ट परिमाणमें मिल सके।

जिन पदार्थोंमें नशास्ता नहीं होता उन्हें भी चबा कर ही खाना चाहिये, क्योंकि चबा कर खानेसे श्वेतसारका शर्करा बननेके अतिरिक्त पदार्थके बारीक हो जानेके कारण आमाशयका कार्य भी हलका हो जाता है और आगेकी पचन क्रिया सहज हो जाती है। जो भोजन चबाकर नहीं खाया जाता उसे आमाशय बारीक करता है; क्योंकि वह यथासम्भव किसी मोटे टुकड़ेको आँत-की ओर नहीं जाने देता; पर रोज़ रोज़के अधिक कार्य भारसे वह भी निर्बल हो जाता है। शरीरके प्रत्येक अवयवके लिए पृथक् पृथक् कार्य नियत है; कोई अवयव बेकार नहीं रहता; इसलिए जब एक अवयवका कार्य दूसरे अवयवसे लिया

जाता है तो पहिला अवयव तो काम न करनेके कारण निर्बल हो जाता है और दूसरा कामकी अधिकतासे पिस मरता है। सारांश यह कि बिना चबाये भोजन करनेसे आमाशय और अन्त्रादि ही निर्बल नहीं हो जाते हैं बल्कि दाँत भी ख़राब हो जाते हैं।

आहारको चबा कर खाना या बिना चबाये खाना साधारण दृष्टिसे एक बहुत साधारण सी बात प्रतीत होती है और सिवाय इसके कि ग्रास निगलने योग्य हो जाय इससे कोई लाभ हानि प्रतीत नहीं होती और इसीलिए प्रायः लोग चावल, खीर इत्यादिको वैसेका वैसा ही गलेसे उतार लेते हैं। उनके चबानेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं समझते; परन्तु स्वास्थ्य पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। जो भोजन बिना चबाये खाया जाता है उसका बहुत थोड़ा भाग पचता है और बिना पचा भोजन शरीरके लिए कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा सकता; उल्टा पाचक यन्त्रोंके लिए भार स्वरूप होता है।

जो अधपचा आहार अंतड़ियोंमें रह जाता है वह जब सड़ने लगता है तो एक प्रकारका विष उत्पन्न होता है और वह विष रक्तमें मिलकर स्वास्थ्य और बलका नाश करता है।

मनुष्यके मलमें पशुओंकी अपेक्षा बहुत अधिक दुर्गन्ध आया करती है। इसका कारण यही है कि पशु अपने आहारका अधिकांश भाग पचा डालते हैं और उनकी आंतोंमें अधपचे अन्नको सड़नेका अवकाश नहीं मिलता; परन्तु मनुष्य अपने आहार-का थोड़ा अंश पचाते हैं और शेष अधपचा अन्न आंतोंमें पड़ा हुआ सड़ा करता है। जिस मनुष्यकी पचन शक्ति जितनी निर्बल होती है उसके मलमें उतनी ही अधिक दुर्गन्ध भी आया करती है; जैसे संग्रहणीके रोगीके मलमें अत्यन्त दुर्गन्ध आया करती है; क्योंकि वह आहारको अच्छी प्रकार नहीं पचा सकता। भोजन न पचनेके कारणोंमें बिना चबाये खाना भी एक मुख्य कारण है।

चबा कर खानेसे एक बड़ा लाभ यह भी है कि इससे रसनेन्द्रिय—जिह्वा—की शक्ति भी बढ़ जाती है, चबाकर खानेवालोंको भोजन जितना स्वादिष्ट मालूम हुआ करता है; बिना चबाये जल्दी जल्दी खानेवालोंको उतना स्वाद नहीं लगता; मिर्च, मसाले तरह तरह के अचार और चट-नियोंके बिना उन्हें भोजन बिलकुल बे स्वाद और बे मज़ा मालूम होता है; क्योंकि उनकी रसनेन्द्रिय आहारके पदार्थोंमें रहनेवाले हलके स्वादको अनुभव नहीं कर सकती।

बिना चबाये भोजन करनेसे उदर भर जानेपर भी तृप्ति नहीं होती। इसीलिए बिना चबाये खानेसे भोजन मात्रासे अधिक खाया जाता है और मात्रा-से अधिक भोजन करना हानिकारक है। भोजनको भले प्रकार चबानेसे क्षुधाका अस्वाभाविक प्रकोप भी नष्ट हो जाता है। अतएव आवश्यकतासे अधिक भोजन करनेके लिए बाध्य होना नहीं पड़ता; एवं मांसादि तामसिक पदार्थोंके खानेकी प्रबल लाल-साकी निवृत्ति होती है। अतएव चबाकर खानेसे जहां स्वास्थ्योन्नति होती है वहां आर्थिक लाभ भी कुछ कम नहीं होता।

विख्यात शरीर तत्व विद डाक्टर सर माईकेल फस्टार साहबका कथन है कि "यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि भली प्रकार चबाये बिना भोजन करनेसे हम लोग आवश्यकतासे अधिक आहार्य सामग्री ग्रहण करनेके लिए बाधित होते हैं और हमारे शरीरको शीघ्र ही अति भोजनके विषमय फल भोगने पड़ते हैं।"

भोजनको चबा कर खानेसे आमाशयिक रस भी अधिक उत्पन्न होते और मुखकी लाला-ग्रन्थियां पुष्ट होती हैं।

होरेस फ्लेचर नामी विद्वानने अपनी एक पुस्तकमें लिखा है कि "चवालीस सालकी अवस्थामें मैं बहुत मोटा हो गया था; यहाँ तक कि बीमा करनेवाली कम्पनीने मेरा बीमा करनेसे इन्कार कर दिया। इसके पीछे मैंने अपने स्वास्थ्यकी गिरी

हुई दशापर बहुत कुछ सोच विचार कर भोजनको चबाकर खानेकी आदत डाली। इससे मेरा मुटापा जाता रहा और स्वास्थ्यमें आश्चर्य जनक उन्नति होने लगी। जब इस बातका ज़िक्र कई डाक्टरोंके सम्मुख किया गया तो उन्होंने वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके अनुसार इस विषय पर विचार किया और फिर इसके बहुत से लाभ प्रकट किये।" इंगलिस्तान और अमेरिकाके कितने ही प्रसिद्ध प्रसिद्ध मनुष्यने भी फ्लेचर साहबकी बातको अपने परीक्षणों द्वारा सत्य सिद्ध किया है और यह भी सिद्ध हुआ है कि आहारको चबाकर खानेसे कई रोग भी नष्ट हो जाते हैं; इस प्रणालीका नाम फ्लेचरिज़्म रखा गया है।

इंगलिस्तानके महामन्त्री ग्लेडस्टन प्रत्येक ग्रासको गिनकर ३२ बार चबाया करते थे कि जिससे जल्दी जल्दी खानेकी आदत न पड़ जाय और वह इसीका यह परिणाम प्रकट करते हैं कि उनका स्वास्थ्य इतना उत्तम रहता था कि वह ८० वर्षकी आयुमें भी बिना श्रम अनुभव किये बहुत अधिक मानसिक परिश्रम कर सकते थे। डाक्टर हेरी केम्बल साहबका कथन है कि "आहारको अच्छी तरह चबानेसे जबड़ोंका अच्छा व्यायाम हो जाता है और चेहरे तथा मसूड़ोंकी ओर रक्त भ्रमण क्रिया भी खूब होती है। इसलिए नाक, दाँत और मसूड़ोंके कोई रोग होनेका बहुत कम भय रहता है।"

जिन्हें चबा चबाकर खानेका अभ्यास नहीं है उन्हें अभ्यास करनेमें पहले पहल कुछ कठिनता प्रतीत होना या अधिक समय लगना सम्भव है, परन्तु थोड़े समय पीछे अभ्यास हो जानेपर अच्छी तरह चबाकर खानेमें भी अधिक समय नहीं लगेगा। फिर उन्हें भोजनको चबाकर खानेका ध्यान रखनेकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी और चबाकर खाना उनकी आदतमें शामिल हो जायगा; परन्तु बरसोंका अभ्यास दो चार दिनमें नहीं बदला जा सकता; अभ्यास बदलनेके लिए कुछ अधिक समय लग जाय तब भी हानिकारक अभ्यास छोड़नेका प्रयत्न करना ही चाहिये।

यहां पर यह बतला देना बहुत आवश्यक है कि प्रत्येक ग्रासको चबानेके लिए ३०, ४० या ५० अथवा और कोई गिनती नियत करना ठीक नहीं है। जब तक भोजनका असली स्वाद बना रहे और निगलनेके लिए प्रयत्न करना पड़े तबतक बराबर चबाते रहना चाहिये।

कुछ लोग कहेंगे कि एक एक ग्रासको बहुत देर तक कुचलते रहना अच्छा मालूम नहीं होता, पर यह अच्छा और बुरा मालूम होना वहमके सिवाय कुछ असलियत नहीं रखता। यदि उन्हें चबा चबा कर खाना अच्छा नहीं लगता तो बिना चबाये भोजनको पेटमें डाल लेना प्रकृतिको अच्छा नहीं लगता। ऐसा करना उसके बनाये हुए दाँतोंका अपमान करना है; प्रकृतिकी आज्ञा है कि भोजनको भले प्रकार कुचल कुचलकर खाओ। इस आज्ञाका पालन करना ही चाहिये, अन्यथा हुकुम उदूलीका दण्ड मन्दाग्नि, अजीर्ण, इत्यादि रोगोंके स्वरूपमें अवश्य भोगना पड़ेगा।

---

## निर्मल आकाशसे वज्रपात

जब बादल घुमड़ घुमड़कर आते हैं अथवा वेगसे आंधी चलकर बादलोंको उड़ाकर लाती हैं तो कभी कभी वज्रपात हो जाता है; परन्तु निर्मल आकाश, स्वच्छ और शान्त वायुमण्डलमें वज्रपात होते कभी देखनेमें नहीं आया, तथापि नाहन्त बीच (Nahant Beach, Masco) के पास ऐसी ही अवस्था में वज्रपात हुआ जिससे एक लड़का मर गया और दो लुञ्ज पुञ्ज हो गये।

---

---

सूरजप्रसाद खन्नाके प्रबन्धसे हिन्दी साहित्य प्रेसमें मुद्रित, तथा विज्ञान परिषद्, प्रयागसे प्रकाशित।

*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.*

पूर्ण संख्या ८४

Reg. No. A. 708

# विज्ञान

## प्रयाग की विज्ञान परिषत् का मुख पत्र

भाग १४
Vol. XIV.

संख्या ६
No. 6

सम्पादक—गोपाल स्वरूप भार्गव एम. एस-सी

मीन १९७८, मार्च १९२२

प्रकाशक

विज्ञान परिषत्

प्रयाग

# विषय सूची



## वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला



---

## विज्ञानके पुराने अंकोंकी जरूरत

विज्ञानके १, ५, ६, ७ और ८ भाग हमारे कार्यालयमें नहीं रहे हैं, परन्तु उनकी मांग बराबर आ रही है। जिन सज्जनों के पास उक्त भाग हों और वे देना चाहते हों वह लिखें।

निवेदक—मैनेजर, "विज्ञान"
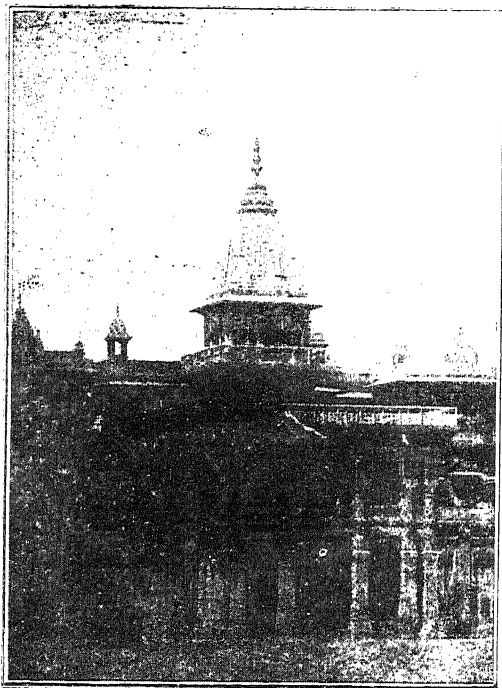
( २७ ) चित्र १८—सात आने वाले कैमरे से लिया हुआ चित्र ( हि० वि० वि० काशी )
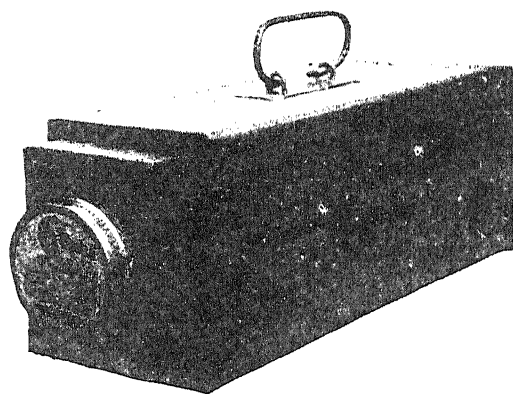
( २६ ) चित्र १२—सात आने वाला कैमरा

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १४ } मीन, संवत् १९७८। मार्च, सन् १९२२ { संख्या ६

## पृथ्वीकी वर्तमान दशा

पृथ्वीके अग्निमय और कोलाहल पूर्ण इतिहास पर हम पिछले अंकमें विचार कर चुके हैं। अब कुछ विचार उसके वर्तमान नीरस अवस्थाका भी करना चाहिये। ज्योतिषकी दृष्टि और परस्पर सम्बन्धकी दृष्टिसे पृथ्वी सौर मण्डलका एक अंग है। अपनी अक्षपर नृत्य करती हुई वह मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, अरुण और वरुणके साथ सूर्यकी परिक्रमा करती है। वह मंगल और शुक्र (Venus) के बीचमें है और ऐसा होना उपयुक्त भी है। वह प्रायः गोलाकार ही है, परन्तु ध्रुव देशोंमें कुछ चपटी हो गई है और निरक्ष देशमें (equator) ज़्यादा उभरी हुई है। उसका ध्रुवीय व्यास ७८९९ मील और निरक्षीय व्यास ७९२६ मील अर्थात् २७ मील अधिक है। पृथ्वीका सबसे अधिक व्यास २५००० मील है। पृथ्वीका औसत घनत्व ५ है अर्थात् पानीसे ५ गुना ज़्यादा है। इस सम्बन्धमें वह शनि और बृहस्पतिसे (Jupiter) बहुत भिन्नता रखती है। अन्तिम दो ग्रह कार्क (Cork) के समान हलके हैं। अन्य ग्रहों से तुलना करने पर जान पड़ता है कि पृथ्वी बहुत बड़ी नहीं है। बुध, मंगल (Mars, Mercury, Venus) और शुक्रसे तो पृथ्वी बड़ी है, परन्तु बृहस्पति (Jupiter) से बहुत छोटी है; जैसे तरबूजके सामने मटर। सूर्यके सामने पृथ्वी इतनी छोटी जान पड़ती है जैसे ऐरावतके सामने घुन।

पृथ्वी की चालमें भी कुछ अनोखापन नहीं है। ३६५ दिनमें वह लगभग ५८०,०००,००० मील की यात्रा तय कर पाती है, सूर्यकी एक परिक्रमा पूरी कर पाती है। इसलिए उसका औसत वेग

१८ मील प्रति सेकण्ड है। यह तेज़से तेज़ रफलकी गोलीसे प्रायः ५० गुना अधिक वेग है। आप कहेंगे कि यह तो बहुत काफी तेज़ी है, परन्तु शुक्र और बुध दोनों इससे अधिक चलनेवाले हैं। आक्ट्यूरस तो प्रायः २०० मील प्रति सेकण्डके हिसाब से चलता है।

पाठको, ऊपर जो लिख आये हैं कि पृथ्वी न तो आकारमें और न वेगमें अन्य ग्रहोंके सामने सर ऊंचा कर सकती है। परन्तु पृथ्वीकी उत्कृष्टता उसके अमूल्य भारके कारण है। यह कहना कठिन है कि सजीव प्राणी इसके तलपर ही विद्यमान हैं कि और ग्रहोंपर भी, पर यह सम्भवतः निस्सन्देह है कि पशु, पक्षी, मनुष्य और वृक्षावली भूमण्डलपर ही पाये जाते हैं। यह सच है कि मंगल ग्रहपर यथाक्रम लकीरसे दिखायी पड़ती हैं, जिनको कुछ लोग नहरें समझते हैं, और इन्हींके आधारपर ज्योतिषियों और उपन्यास लेखकोंने मंगलवासियोंकी कल्पना कर डाली है, परन्तु यह निश्चय है कि जैसा जीवन हम यहां बिताते हैं वैसा मंगल पर नहीं है और पृथ्वीको ही मनुष्य जीवनका सौभाग्य प्राप्त है।

पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा करती है, परन्तु सूर्य भी स्थिर नहीं है। वह अपने ग्रह और उपग्रहों के साथ १० मील प्रति सेकंडके वेगसे लाइरा ( Lyra ) की ओर झपटता चला जा रहा है। प्रति वर्ष वह अपने ध्येयके ३०००००० मील निकटतर पहुँच जाता है, परन्तु कौन कह सकता है कि वह कबसे उस तरफ लपकता चला जा रहा है और कब तक इसी प्रकार दौड़ता रहेगा? सम्भव है कि १०००००० वर्षमें वह वहां पहुँच जाय। जब तक यह घटना होगी तब तक तो हमारा सौर मण्डल महासागरके बीचमें अकेली चट्टानके समान सबसे अलग पड़ा हुआ है।

ज्योतिष शास्त्रके अनुसार पृथ्वीके यही लक्षण हैं, ऐसे ही वेगसे वह नाचती हुई सूर्यकी परिक्रमा देती रहती है। पर पृथ्वी क्यों नाचती है, क्यों चक्कर लगाती है? अन्य ग्रह और उपग्रह क्यों नृत्य और प्रदक्षिणा करते हैं। इन बातोंका उत्तर देना वर्तमानमें हमारी शक्तिके बाहर है; पर हम यह जानते हैं कि इन सबकी गतियां (क्रान्ति मार्गों पर ) एक ही नियमके अनुसार होती हैं। उनके गिरनेका भी वही नियम है और उनमें वैसीही गति-प्रति उत्पन्न होती है जैसी एक गिरती हुई सेबमें। चन्द्रमा पृथ्वीके चारों तरफ गिरता और उठता है और पृथ्वी सूर्यके चारों तरफ; और सेब पृथ्वीपर गिरता है। यह सब उसी गुरुत्वाकर्षणके खेल हैं जिसके असली रहस्यको, सच्ची प्रकृतिको, समझनेमें हम असमर्थ हैं। इस आकर्षणके बारेमें हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि इसीके कारण संसार चल रहा है। यदि इसका परिमाण बढ़ जाय तो पृथ्वी शलभ रूप हो सूर्यमें गिर स्वाहा हो जाय। और यदि उसका परिमाण घट जाय तो पृथ्वी अपने मार्गको छोड़ गोफनसे छोड़े हुए पत्थरके समान सीधी चलने लगे।

पृथ्वी अपनी अक्षपर नाचती है, इसी कारण दिन रात होते हैं और इसी कारण हवाएं चलती हैं। पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा देती है, जिससे ही ऋतुओंमें परिवर्तन होता है; अतएव उसकी इन दोनों प्रकारकी गतियों से जो बातें होती हैं, उनका हम पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

पृथ्वीकी अक्ष उसके ध्रुवोंमेंसे निकलनेवाली रेखा है। इसी रेखापर वह पूर्वाभिमुख हो नाचती है। और २४ घण्टेमें पूरा चक्कर लगा लेती है। पृथ्वीके निरक्ष देश पर स्थित कोई भी स्थान ५०० गज प्रति सेकंडके वेगसे पूरबकी तरफ जाता है।

पृथ्वी जिस तलमें सूर्यकी परिक्रमा देती है, उस तलसे अक्ष समकोण नहीं बनाती; बल्कि उसकी तरफ झुकी रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि ध्रुव बारी बारीसे सूर्यकी तरफ झुके रहते हैं। जो ध्रुव सूर्यकी तरफ झुका होगा उसमें दिन रात प्रकाश रहेगा और उसके आस पासके प्रदेशमें ( गोलार्द्ध ) गरमीका मौसम हो

जायगा। दूसरे ध्रुवमें रात दिन अंधेरा रहेगा और उसके आसपासके प्रदेशमें सर्दी होगी। एक बोतल मेज़पर रख लीजिये। कलमको झुका कर उसके चारों तरफ फिराइये। आधे चक्करमें यदि पानी बोतलकी तरफ रहेगा तो आधेमें कलमका सिरा। इस सरल प्रयोगसे ऊपरकी बातें समझमें आजायेंगी। कदाचित पृथ्वीके क्रान्ति तलसे उसकी अक्ष समकोण बनाती होती तो बारहों महीने सब जगह एकसा मौसम रहता। कितनी छोटी छोटी बातोंमें कितना रहस्य भरा हुआ है!

एक ध्रुव सूर्याभिमुख होता है, तदनन्तर वह हटता जाता है और दूसरा सूर्यकी तरफ आता जाता है। अतएव पृथ्वीके क्रान्ति मार्गमें दो स्थान ऐसे हैं, जहां पर दोनों ध्रुव सूर्यकी तरफ एक समान झुके हुए होते हैं। इन्हीं स्थानों पर जब पृथ्वी पहुंचती है, तो दोनों गोलार्द्धोंमें समान परिमाणके रात दिन होते हैं। इन्हीं स्थानोंको शरद संपात और वसंत संपात कहते हैं।

—मनोहर लाल

## भोजन-परीक्षा

भोजन आरम्भ करनेसे पूर्व भोजनके समस्त पदार्थोंकी परीक्षा करनी चाहिये। सबसे पहिले इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि भोजन भले प्रकार पकाया गया है या नहीं, कोई पदार्थ हमारी प्रकृति या ऋतुके प्रतिकूल तो नहीं है, भोजनमें कोई विरोधी पदार्थ तो नहीं हैं, अथवा उसमें राख मिट्टी बाल या मक्खी इत्यादि कोई क्षुद्र जन्तु तो नहीं गिर गया है। इन साधारण बातोंके अतिरिक्त यह परीक्षा करनी भी बहुत आवश्यक है कि भोजनमें किसी प्रकारका रासायनिक विष तो उत्पन्न नहीं हो गया है। राजा महाराजाओं और बड़े लोगोंको तो विष-परीक्षाकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये; क्योंकि उन्हें उनके शत्रु अथवा राज वंशी लोग राज पानेके अभिप्रायसे कभी कभी विष दिलानेका प्रयत्न किया करते हैं। यद्यपि सर्व साधारणको प्रायः ऐसा भय नहीं होता, पर तो भी उन्हें परीक्षा कर लेनी चाहिये।

विष मिला अन्न अग्नि पर डालनेसे फड़फड़ाया करता है और उसमेंसे एक सीधी लुक निकलती है जिसका रंग नीला होता है; विष मिले भोजनके जलनेसे जो धुआं निकलता है उसका रंग भी नीला ही होता है। कभी कभी एक विशेष प्रकारका शब्द हुआ करता है। विष मिला हुआ अन्न अग्निपर डालनेसे प्रायः ज्वाला निकलती ही नहीं और एक विशेष प्रकारकी गन्ध निकलती है।†

हिन्दू घरोंकी बूढ़ी स्त्रियां अग्यारी (अग्नि जिमाना) किये बिना घरके किसी मनुष्यको भोजन नहीं करने देतीं और अग्यारी एक धार्मिक कर्तव्य समझती हैं, परन्तु पाश्चात्य-ज्ञान विदग्ध लोग इसे हास्यास्पद और वहम, तथा बिल्कुल निरर्थक समझते हैं। यह उनकी एक बड़ी भूल है। वास्तवमें अग्नि जिमाना स्वास्थ्य और जीवन रक्षाके लिए आवश्यक है। भातमें विषका संयोग होनेसे उसके पानीमें गाढ़ापन आ जाता है और माँड नहीं उतरता। विषका संयोग हो जानेसे चावल पकते भी देरमें हैं और उनमेंसे जो भाप निकलती है वह कुछ नीलवर्ण होती है। भातके ऊपर एक प्रकारकी ऐसी झिल्ली सी मालूम हुआ करती है जैसी कि पानी पर तेल डालनेसे हो जाती है। उसके खानेसे बेहोशी, ग्लानि, मूर्छा इत्यादि उत्पन्न होती है और मुँहसे पानी छूटने लगता है।

विष संयुक्त पदार्थ खाते समय मुखमें लार कम उत्पन्न होती है और वह शुष्क सा मालूम हुआ करता है अथवा उसमें फेन उत्पन्न होने लगते हैं और खानेके पश्चात् जीभ ऐंठने लगती है।

रायते, शाक तरकारी, मुरब्बे तथा मांसादिमें विष मिल जानेसे उनका रसा फट जाता है अर्थात्

† संखिया मिले रहने पर लहसुनकी सी गंध आग पर डालनेसे निकलती है।

पानी और घनांश अलग अलग हो जाते हैं। दूध पर लाल रंगकी रेखा, दही पर साँवली, मट्ठे पर काली या पीली, घृत पर पानीके समान, पानी-पर काली और शहद पर हरी तथा तेल पर लाल रेखा पड़ जाती है। कच्चे फल पकेके समान और पक्के फल सड़े हुएसे प्रतीत होने लगते हैं।

विष मिले भोजनसे कव्वेका शब्द बारीक हो जाता है। तोता, मैना और पपीहा उसे देखते ही शोर मचाने लगते हैं। हंस सिकुड़ता है और चकोरके नेत्रोंका रंग बदल जाता है। कोयल, मुर्गी और चकवा विष मिले भोजनको देखते ही कोलाहल करने लगते हैं। बिल्ली उद्विग्न होती है, बन्दर भयके मारे विष्ठा त्याग कर देता है; मोर विषैले पदार्थको देख कर बहुत प्रसन्न होता है। और मोरकी दृष्टि पड़नेसे साधारण विषका प्रभाव कुछ शिथिल भी हो जाता है।

विष-युक्त भोजन मुखमें जाते ही मनुष्यकी जिह्वा और होठोंमें जड़ता आ जाती है। लार टप-कने लगती है, दांतोंसे कुछ कुतरा नहीं जाता और मुखमें जलन होने लगती है।

—गोपीनाथ गुप्त

# ब्रह्मचर्यकी वैज्ञानिक व्याख्या

[ गतांकसे आगे ]

## ५—ब्रह्मचर्यके नियम

ब्रह्मचर्य कायम रखनेवाला प्रधान और मूलाधार नियम है "प्राणायाम साधन"। इसीको 'सन्ध्या' करना कहते हैं। पर आजकल "सन्ध्या" को लोग ढकोसला समझने लगे हैं, इसको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगे हैं, इसीसे हमने इसका नाम बदल दिया है और इसको "प्राणायाम साधन" वा केवल 'प्राणायाम' कहना ठीक समझा है। नये नाममें कुछ नया आकर्षण होता है। हमने देखा है कि अनेक बालक, जो सन्ध्याके नामसे डरते थे, इस नये नामपर मुग्ध होकर इस क्रियाको करने लगे और लाभ उठाया। हम स्वयं इस क्रियाके अभ्यासी हैं और अब इस समय (५४ वर्षकी अवस्था में) भी हमें यह दावा है कि हम एक नवयुवकसे अधिक स्वस्थ और अधिक परि-श्रमी हैं। अब तक हमें नई पुस्तकें पढ़नेका शौक और उत्साह है। शरीरमें आलसका नाम नहीं है। यदि यहाँ पर हम प्राणायामका विधान लिखें तो यह लेख सीमासे बढ़ जायगा। अतः हमने उसका उल्लेख मात्र कर दिया है और सलाह देते हैं कि ब्रह्मचारी गण किसी जानकार आदमीसे इसे सीख लें और अभ्यास करें और आजीवन करते रहें, बड़ा लाभ होगा। इस विषयकी एक पुस्तक हिन्दी भाषामें बहुत अच्छी प्रकाशित हुई है। उसका नाम है "श्वास विज्ञान"। यह पुस्तक "देशसुधार ग्रंथ माला आफिस, भोजू-बीर, बना-रस" से ॥) में मिलती है।

आप इतना तो अवश्य समझ सकते हैं कि मनुष्यका जीवन प्राण-वायुकी शुद्धता पर निर्भर है। प्राणहीन शरीरसे क्या हो सकता है? प्राणवायु जितनी ही शुद्ध और प्रबल होगी, मनुष्य उतना ही स्वस्थ और बली होगा। आज कल ब्रह्मचारियोंको (विद्यार्थियोंको) यह क्रिया ढकोसला वा हौवा सी जान पड़ती है; सिखाई ही नहीं जाती (यह उनके गुरुजनोंका दोष है)। इसका फल यह हो रहा है कि आजकलके ब्रह्म-चारी तेज हीन, आलसी, कमजोर और रोगी रहा करते हैं। और युवा होनेसे पहले ही बूढ़े हो जाते हैं। हम दावेके साथ कह सकते हैं कि जब तक विद्यार्थी गण मनुष्य जीवनकी आधार स्वरूपा इस प्राणायाम क्रियाके अभ्यासी न बनेंगे तब तक देशमें सच्चे उत्साही और कर्मवीर मनुष्य पैदा ही न होंगे। जड़ ही नहीं तो पत्ते और फूल फल कहां?

प्राणायामसे क्या क्या लाभ होते हैं, यह बता देना आवश्यक है:—

(१) प्राणवायु शुद्ध रहनेके कारण शरीर स्वस्थ रहता है।

(२) शरीरमें आलस्यका नाम नहीं रहता जो विद्यार्थियोंका बड़ा भारी शत्रु है।

(३) जो कुछ भी खाया जाता है, अच्छी तरह पच जाता है; कभी अपच रोग नहीं होता। उदर-शूल, सिर दर्द, बवासीर इत्यादि रोग भी नहीं होते। जिसको यह रोग हो गये हों वह प्राणायाम किया करे और देखले कि उसका रोग छूट जायगा या कम हो जायगा, या कमसे कम इतना तो अवश्य होगा कि वह रोग बढ़ेगा नहीं।

(४) अच्छे पाचनके कारण भोजनसे शुद्ध रस बनता है, जिससे शुद्ध वीर्य बनता है और शरीरमें अद्भुत कान्ति रहती है।

(५) वीर्य स्थिर रहता है। स्वप्न दोष कभी होता ही नहीं। आज कलके विद्यार्थियोंका पेटेंट रोग स्वप्न दोष, वा धातुकी दुर्बलता है। प्राणायाम क्रिया बिना यह रोग दमन नहीं किया जा सकता, चाहें आप कितनी ही दवाइयां फांक जाइये। इसका अनुभव हमने सैकड़ों विद्यार्थियोंके जीवनमें किया है।

(६) सब इन्द्रियां सबल और शुद्ध स्थितिमें रहकर अपना अपना काम ठीक रीतिसे करती हैं।

(७) स्मरण शक्ति शुद्ध रहती है। यही शक्ति विद्यार्थियोंकी परम सहायिका है। संसारका समस्त कार्य इसी शक्ति पर निर्भर है। जिसकी यह शक्ति बिगड़ी होती है, वही तो सनकी वा पागल कहलाता है।

(८) भले बुरेका ठीक ज्ञान प्राप्त होता है।

और कहाँ तक गिनायें। तात्पर्य यह है कि मनुष्य जन्मकी सफलता इसी 'प्राणायाम' क्रिया-पर निर्भर है। जबसे इस क्रियाकी ओरसे हिन्दू जातिने आंख फेरी, भारतका सब प्रकारसे ह्रास हुआ। यदि युवकगण इस क्रियाका अभ्यास करें तो अद्भुत लाभ उठावेंगे, यह निश्चय है।

इस क्रियाके अभ्यासके संबन्धमें हम इतना और भी बतलाये देते हैं कि यह क्रिया ऐसे स्थान में करनी चाहिये जहाँ शुद्ध वायु प्राप्त हो। नित्य प्रति (निरन्तर, बिला नागा) करनी चाहिये। कमसे कम २१ प्राणायाम नित्य करना चाहिये। बहुत ही अच्छा हो यदि इस क्रियाके करनेसे पहले स्नान भी कर लिया जाय। जहां तक संभव हो स्नानके बाद ही यह क्रिया की जाय। यह क्रिया आध घंटेमें हो सकती है।

२—ब्रह्मचर्यका दूसरा नियम है सूर्यसे "बिजली संचय करना" इसका नाम ही सुनकर अज्ञान बालक हँस देंगे; पर हँसनेकी बात नहीं है, अनुभवकी बात है। संसारके सब पदार्थोंमें बिजली है। वह बिजली सबको सूर्यसे ही प्राप्त होती है। सूर्य स्वयं यह बिजली संसारके पदार्थोंमें भरा करता है। अनजानमें भी हम सूर्यसे बिजली पाते रहते हैं, पर यदि जान कर और नियम पूर्वक सूर्यसे मांग कर हम यह बिजली अपने शरीरमें संचित करें तो वह बिजली विलक्षण शक्तिवाली होगी और हमारी आज्ञाके अनुसार काम करेगी। अनजाने और अनियम रीतिसे जो बिजली हमारे शरीरमें आती है वह केवल हमारी साधारण प्राकृतिक ज़रूरतोंको पूरा तो करती है, पर हमारी आज्ञाकारिणी नहीं होती। शिवजी ने काम को जलाया था। रानी दमयन्तीने सतीत्व भंग करनेकी इच्छा करनेवाले व्याधको तुरंत जलाकर भस्म कर दिया था। अनुसूयाने ब्रह्मा, विष्णु और शिवको भी बालकरूपमें परिवर्तित कर दिया था। महात्मा ईसा मुर्देको ज़िन्दा कर देते थे, कोढ़ियोंको तुरंत अच्छा कर देते थे। और भी अनेक महात्माओंके विषयमें आश्चर्यमयी घटनाओंका वर्णन ग्रन्थोंमें लिखा है। शाप और वरप्रदानकी घटनाओंसे समस्त संसार-के ग्रंथ परिपूर्ण हैं। ऐसी घटनाओंको लोग करामात वा मोजिज़ा कहते हैं। तनिक विचार करनेसे तुम्हें मालूम हो जायगा कि यह कोई अन्य शक्ति न थी; केवल वही बिजलीकी शक्ति थी, जो उन्होंने

नियम पूर्वक सूर्यसे माँगकर अपने शरीरमें संचित की थी। आज्ञाकारिणी होनेके कारण जो आज्ञा वह उस बिजलीको देते थे, वह उसका पालन तुरंत करती थी।

श्रीहनुमान जी कैसे अद्भुतकर्मा ब्रह्मचारी हैं, यह बात प्रत्येक हिन्दू बालक जानता ही होगा। उन्होंने जो जो अद्भुत कार्य किये, इसी संचित बिजलीके बलसे किये। उनके पास इस बिजलीका ख़ज़ाना सबसे अधिक है। जानते हो क्यों? उनकी जीवनी पढ़ो और वहीं इसका उत्तर मिल जायगा। श्री हनुमानजीने सूर्यके निकट रहकर उनसे विद्या सीखी थी, उनके चेले थे, उन्हींसे दीक्षित होकर ब्रह्मचर्यव्रत पालन किया था। इसका तात्पर्य सोचो, विचारो और विद्वानोंसे पूछो। मैं इसका उत्तर यही देता हूँ कि उन्होंने सूर्यकी उपासनासे इतनी बिजली अपने शरीरमें एकत्र करली थी कि वह अति अद्भुत कार्य पलक मारते कर सकते थे। लंका जानेके लिए उन्होंने व्यर्थ कष्ट उठाया, बहाना ढूंढ़ा। वे चाहते तो एक दृष्टि-पातसे लंकाको भस्म कर देते। परंतु नहीं इसमें भी एक तत्व छिपा हुआ है। वह यह कि ऐसे शक्तिशाली पुरुषको अकारण ही अपनी शक्तिको प्रकाशित करके नष्ट न करना चाहिये, वरन् कुछ कष्ट सहते हुए भी उसे संचित ही रखनेका उद्योग करना चाहिये और सदा विचार इस बातका रखना चाहिये कि वह शक्ति परोपकारमें ही खर्च की जाय। कोई ऐसी ही अनुसूया और दमयन्तीकी सी अति कठिन और अनिवार्य आवश्यकता और विवशता आ पड़े तब उससे अपना कार्य लिया जाय, नहीं तो उसके नष्ट हो जानेका भय रहता है। परोपकार-में खर्च करनेसे उसमें कमी नहीं होती, वरन् बढ़ती है, यही इस शक्तिमें विलक्षणता है। महा-भारतमें महात्मा कर्णकी कथासे भी यही तात्पर्य है कि उन्होंने भी इस शक्तिका अच्छा संचय किया था।

बालको, आशा है कि तुमने अब इस शक्तिको अच्छी तरह समझ लिया होगा। अब तुम्हें यह जानना है कि इस शक्तिका संचय किस प्रकार किया जाता है। लो वह भी सुन लो। प्राणायामके वर्णनमें हम लिख आये हैं कि यह क्रिया सूर्योदय-से पहले की जाय, स्नान करके की जाय। अब मानलो कि तुमने स्नान करके प्राणायामकी क्रिया खतम की है कि सूर्योदय (सूर्य बिंबका निकलना) प्रारंभ हुआ। बस खड़े होकर हाथ जोड़ कर सूर्य-को प्रणाम करो। उनको जलांजलि दो, स्तुति करो, परंतु उनसे आँख न मिलाओ, जबतक उनकी लालिमा दूर न हो जाय (यह लालिमा दो मिनटमें दूर हो जाती है)। लालिमा दूर होने पर नेत्र भर कर उनके दर्शन करो और झट आँख मूँद कर उनका ध्यान करो; एक मिनट बाद फिर दर्शन करो और झट आंख मूंद कर ध्यान करो। इसी प्रकार दस बारह बार करो और इसी दर्मियानमें भावना करते जाओ कि मैं सूर्य नारायणसे उनकी बिजली खींच रहा हूँ और वह मेरे शरीर भरमें नेत्रों द्वारा आ आ कर भर रही है। प्रार्थना भी करते जाओ कि हे सूर्य भगवान, अपनी विलक्षण बिजली मेरे शरीरमें भर दीजिये। संभव हो तो यह क्रिया जल-में खड़े होकर की जाय, वा जलके निकट होकर की जाय, वा जहां कहीं की जाय कुछ जल एक जल पात्रमें भर कर इतना निकट रख लिया जाय कि उस जल-पात्रको तुम हाथ फैला कर छू सको। जल निकट न होनेसे बिजली बहुत कम संचित होगी और अच्छी भी न होगी। जितनी अधिक बिजली संचित करना मंजूर हो उतनी ही अधिक समय तक इस क्रियाको करते रहना चाहिये। महात्मा कर्ण इस क्रियाको दो पहर तक करते थे। परंतु तुम्हें इतनी फ़ुर्सत और शक्ति कहाँ। तुम इस क्रियाको दस मिनट भी करो तो बहुत है।

साथ ही इस बातका भी ध्यान रखो कि जितनी बिजली संचित करनेके पात्र तुम हो उतनी ही संचित करो, अधिक इच्छा न करो, नहीं तो नेत्रोंको हानि पहुँचेगी। इसका अंदाज़ तुम न कर सकोगे, इसलिए हम बतला देते हैं। दस वर्षके

बालक इस क्रियाको केवल ५ मिनट तक करें। दससे पंद्रह तकके बालक ७ मिनट तक, तदुपरान्त २० वर्ष तकके बालक १० मिनट तक और २० से ऊपरकी आयुके १५ मिनट तक कर सकते हैं। इससे अधिक नहीं। पूर्ण युवा और बलवान पुरुष इस क्रियाको आध घंटेसे अधिक न करें, नहीं तो लाभके बदले हानिकी संभावना है।

इस क्रियासे क्या क्या लाभ होते हैं सो हम संक्षेपमें यों कहे देते हैं कि इस क्रियाके प्रतापसे रोगके जीवाणु शरीरमें प्रवेश ही नहीं कर सकते। यदि किसी प्रकार प्रवेश कर ही जायं तो दूसरे ही दिन भस्म हो जायँगे और प्राणायाम क्रियाके द्वारा तुरंत बाहर फेंक दिये जायंगे। हाँ इतना और जताये देते हैं कि इस क्रियामें यदि कभी नागा हो जाय तो उसकी कमी आगामी एतवारके दिन पूरी की जा सकती है। पर जिस एतवारको यह कमी पूरीकी जाय उस एतवारको नमक और तेल न खाया जाय; नहीं तो कमी पूरी न होगी।

३—ब्रह्मचर्यका तीसरा नियम है 'व्यायाम'। बालको, हमारे लेखपर ज़रा बारीकीसे ध्यान देना कि हम क्या लिख रहे हैं। प्राणायामका अभ्यास बता कर तुम्हें यह बताया गया कि तुम अपने विकासका ज़रूरी मसाला "पवन" से लो। तदनंतर सूर्यकी उपासनासे यह बतलाया गया कि दूसरी प्रकारका ज़रूरी मसाला सूर्यसे ( जो अग्नि तत्वका पुंज है ) हासिल करो। अब व्यायामसे तुम्हें यह बतलाया जाता है कि पृथ्वीसे भी तुमको कुछ मसाला ग्रहण करना चाहिये। पृथ्वीसे मसाला ग्रहण करनेके दो ढंग हैं। उनमेंसे एक यही 'व्यायाम' है और दूसरा 'भोजन'। भोजनके विषयमें आगे लिखेंगे। व्यायामकी बात पहिले सुन लो। आज कलके स्कूलों और कालिजोंमें जितने प्रकारके व्यायाम कराये जाते हैं वह व्यर्थ तो नहीं हैं, उनसे भी कुछ न कुछ लाभ होता ही है, पर वास्तवमें ब्रह्मचारीको ऐसे व्यायाम भी करने चाहियें, जिनमें शरीरका भूमिसे स्पर्श होता रहे—जैसे कुश्ती और डँड़ वगैरा। जब तक सारे शरीरका भूमिसे स्पर्श न होगा, शरीर भूमिसे रगड़ न खायगा; तबतक पृथ्वीतत्व से जो सच्ची शक्ति हमारे शरीरको मिलनी चाहिये वह न प्राप्त होगी। ग़रीबोंके लड़के जो मिट्टीमें लोट लगाया करते हैं प्रायः उन लड़कोंसे अधिक स्वस्थ और बलवान होते हैं जो मखमली गद्दों पर रखे जाते हैं। यह क्यों ? उत्तर स्पष्ट है कि ग़रीबोंके लड़कोंको पृथ्वी मातासे वह शक्ति मिलती रहती है जो अमीरोंके लड़कोंको नहीं मिलती। तुमने प्रायः देखा होगा कि धूल मिट्टीका काम करनेवाले उन चिकनियाँ बाबुओंसे कहीं बढ़कर स्वस्थ और बलवान होते हैं जो घरमें भी पृथ्वीपर पैर नहीं रखते। अपने घरकी चिकनी और साफ ज़मीन पर खड़ाऊं पहन कर वा पगतरी घालकर चटर पटर करते फिरते हैं। ऐसे मनुष्योंसे पृथ्वी माता कहती है कि अच्छा बच्चा तुम मुझे पैरसे भी छूना हीं चाहते तो मैं भी तुम्हें कुछ न दूँगी। जाओ कमज़ोर ही बने रहो मेरा इसमें क्या हर्ज है, तुम्हीं पछताओगे।

अतः हे प्यारे बालको, तुम ऐसे व्यायाम किया करो कि तुम पृथ्वीकी गोदमें गिरो, पृथ्वी तुम्हें अपनी गोदमें लेकर छातीसे लगावे और तुम्हें अपनी छातीसे वह शक्तिरूपी दूध पिलावे, जिससे तुम्हें पूर्ण बल प्राप्त हो। बदनमें मिट्टी लग जानेसे शर्माओ मत। वह मिट्टी नहीं है। शक्ति रूपा पृथ्वी माताका प्रसाद है। ऐसा व्यायाम करनेसे खाना खूब पचता है, नींद अच्छी आती है, और भोजनों द्वारा यदि कोई विकार शरीरमें प्रवेश कर गया है तो उसे जबरदस्ती बाहर निकलना पड़ता है। जो लोग पृथ्वी माताका इस प्रकारके व्यायामसे सत्कार करते हैं, उन्हें पृथ्वी माता भी भरपूर शक्ति देती है। मल्लों और पहलवानोंको तुमने देखा ही होगा। वे क्यों इतने स्वस्थ, पुष्ट और अंगोंसे सुडौल होते हैं ? उत्तर स्पष्ट है कि पृथ्वी माताकी दी हुई शक्तिसे।

विद्यार्थियोंको सवेरेके स्नानके बाद या संध्याके समय किसी स्वच्छ वायुवाले स्थानमें ऐसा व्यायाम एक घंटे तक अवश्य करना चाहिये, नहीं तो पृथ्वीसे जो मसाला उनके विकाशके लिए मिलना आवश्यक है उसमें कमी रह जायगी क्योंकि भोजनसे जो पृथ्वी तत्वके मसाले मिलते हैं। वह अन्य प्रकारके होते हैं और इस कमीको पूर्ण नहीं कर सकते।

४—ब्रह्मचर्यका चौथा नियम है 'भोजन पानका संयम'। भोजन और पानका अर्थ है "पृथ्वी तत्व और जल तत्वसे शरीरके विकाशमें मदद लेना और उनकी शक्ति शरीरमें संचित रखना"। अतः ब्रह्मचारीको चाहिये कि अपने भोजन और पानकी सामग्री ऐसी रखें जो प्राकृतिक हो, बनावटी नहीं। तात्पर्य यह कि सादा भोजन और स्वच्छ जल ही हमारे शरीरके विकासके लिए ज़रूरी है। कभी कभी उपवास भी करना चाहिये। निराहार उपवास हो तो क्या कहना है। नहीं तो फलाहार वा दुग्धाहार करे। उपवासमें मिठाई हानिकारक है। तरह तरहके मसाले, अचार, मुरब्बे, सोडावाटर और शर्बतोंके समान पदार्थोंकी ज़रूरत नहीं। भोजनमें दूध और फल बहुत ज़रूरी सामान हैं। तेज़ मसालेदार वा कृत्रिम रीतिसे बनाये हुए अधिक स्वादिष्ट पदार्थ, अधिक नमकीन, मीठे, वा खट्टे पदार्थ हानिकारक हैं। जिस भूमिमें अधिक क्षार होता है वह ऊसर हो जाती है, उसमें कुछ पैदा नहीं होता। अधिक क्षारवाला पानी भी निकम्मा ही होता है। यह बात तुम प्रत्यक्ष देख और अनुभव कर सकते हो। फिर कैसे संभव है कि चटपटे मसालेदार भोजन, एसिड (Acid) वाला पानी तुम्हारे शरीरको (जिसमें पृथ्वी और जल तत्वोंकी बहुत बड़ी अधिकता है) लाभदायक हो सकेगा। अतः भोजन पान सादा होना चाहिये। ब्रह्मचारीका भोजन सदा निरामिष होना चाहिये। मादक जल-शराब वा भंग-कभी न पीना चाहिये। तमाखू, सुर्ती, बीड़ी, गांजा, मदक इत्यादिका सेवन तो मानो जानबूझ कर विष खाना है।

इसी प्रकार शरीरको आवश्यकतासे अधिक बनाव शृङ्गार युक्त तथा वस्त्राभूषणसे सुसज्जित रखना भी ब्रह्मचर्यके विरुद्ध है; क्योंकि अनावश्यक है, व्यर्थ है। ब्रह्मचारीको अनावश्यक वस्तुओं वा कार्योंमें अपना पैसा और समय नष्ट करना अच्छा नहीं। बनाव शृङ्गार, वस्त्राभूषण, तेलफुलेल, इत्र लगाना इत्यादि केवल दिखाव और मनोरंजनकी सामग्री है। इसके लिए तुम्हें गृहस्थाश्रममें समय और संयोग मिल सकता है। अधीर होकर ब्रह्मचर्याश्रममें ही इनका भोग व्यर्थ और अनिष्टकारक होनेके सिवाय कुछ भी सुफल नहीं दे सकता। हानि अधिक और लाभ कुछ भी नहीं। ऐसा काम करना क्या बुद्धिमानोंका काम कहा जायगा? इस बातको तुम खुद सोचो और समझो।

५—ब्रह्मचर्यका पाँचवां नियम है 'वीर्य रक्षा'। ऊपर कहे नियमोंके अनुसार चलनेसे जब चार तत्वोंकी शक्तियोंका काफी भंडार तुम्हारे शरीरमें भर जायगा, तब तुम्हारे शरीरमें एक वस्तु पैदा होगी, जिसे 'वीर्य' कहते हैं। इस बातको तुम समझ गये होगे कि इन तत्वोंकी शक्तियोंका सारभूत पदार्थ यही 'वीर्य' है। इसीके पैदा करने और संचित रख कर पुष्ट करनेके लिए ब्रह्मचर्यके कठोर नियमोंका पालन करना पड़ता है। तुम स्वयं विचारो कि यह वीर्य कितनी अमूल्य वस्तु है। १५—१६ वर्षकी अवस्थासे इस पदार्थका विकास आरंभ होता है और इसके पूर्ण विकासमें १० वर्षका समय लगता है। बस ब्रह्मचारियों द्वारा जो ग़लती होती है वह इसी बातके समझनेमें होती है। वीर्यका प्रत्यक्ष प्रकाशन होते ही वह समझने लगते हैं कि बस अब हम 'वीर्यवान' हो गये। उन्हें समझना चाहिये कि वीर्य पैदा तो हो गया है, पर वह अभी पका नहीं। जब किसी वृक्षमें फल लगते हैं तो वह प्रत्यक्ष होते ही काममें लाये जाने योग्य नहीं हो जाते। क्रमशः उनका विकाश होता है, उनकी रक्षा करनी पड़ती है, पत्तियों और कीड़ोंसे बचाना पड़ता है। फल

हुए वृक्षको सींचना पड़ता है। क्रमशः विकसित होके वे अपने पूरे आकारको पहुंचते हैं, तब भी कुछ दिन पुष्ट होते हैं; तब पक कर खाने योग्य होते हैं। उन्हीं पके फलोंके बीजसे आगे उनका वंश भी चलता है। कच्चे फलोंके बीजसे वंश चलनेकी आशा असंभव है।

इसी प्रकार मनुष्यके शरीरमें १५, १६ वर्षकी अवस्थामें वीर्य पैदा तो हो जाता है, पर उसके विकास और उसके पकनेमें १० वर्षका समय और लगता है। इसी विकास और पुष्टिके समयमें ब्रह्मचारी गण व्याकुल हो उठते हैं और अपनेको पूर्ण और परिपक्व 'वीर्यवान' समझ कर ऐसे अद्भुत बहुमूल्य, कठिनतासे प्राप्त और सर्व तत्वोंकी शक्तियोंके सारभूत पदार्थका व्यर्थ व्यय आरंभ कर देते हैं। हा हतभाग्य भारत ! तेरे पुत्रोंकी यह कुबुद्धि ! नवयुवक ब्रह्मचारी नहीं समझते कि हस्त-क्रिया वा अप्राकृतिक मैथुन द्वारा हम अपने ही हाथों अपनी जड़ें काट रहे हैं, अपनी शक्तियोंके सारभूत पदार्थको व्यर्थ फेंक रहे हैं। कोई कोई मूर्ख माता-पिता इस हवनमें और भी सुन्दर साकल्य डालते हैं। बालकका विवाह करके बहू ला बैठालते हैं। और यदि २५ वर्षकी अवस्था तक दो तीन संतानें न हो गईं तो अपनेको भाग्य-हीन और युवक बालकको नपुंसक समझने लगते हैं और देवता और पीर पूजने लगते हैं या किसी वैद्य या साधुकी शरण लेनेकी ठान लेते हैं। इस अवस्थामें संतान हो तो सकती है; पर हम सैकड़ों घरोंमें देख चुके हैं और जो चाहे खोजसे अनुभव कर सकता है कि २५ वर्षकी अवस्थासे पहले उत्पन्न हुई संतान प्रायः बिलकुल निकम्मी, कम-ज़ोर, कुरूप, रोगी और अल्पायु होती है। उसमें बुद्धिका पूर्ण विकास कदापि नहीं होता। अतः कहना चाहिये कि वह संतान मानव संतान ही नहीं है। ऐसी संतान पैदा करनेसे क्या फायदा होगा, सो वेही मूर्ख मातापिता जानते होंगे। हमारी समझमें तो कुछ भी नहीं आता। प्यारे ब्रह्म-चारियो, सँभल जाओ; सावधानीसे काम लो। वीर्यको व्यर्थ नष्ट न करो। पीछे बहुत पछताओगे।

परन्तु हम जानते हैं कि इस अवस्थामें वीर्य-का इतना प्रबल वेग रहता है कि उस वेगको रोकनेमें तुम्हें कठिनाई मालूम होती होगी। कठि-नाई ही नहीं वरन् तुम्हें असंभव सा जान पड़ता होगा। परंतु धैर्य रखो, हम तुम्हें युक्तियां बताते हैं, जिनसे तुम उसके वेगको सरलतासे रोक सकते हो। सुनोः—

( १ )—किसी भी युवती स्त्रीसे हँसी मज़ाक मत करो।

( २ ) किसी युवती स्त्रीका बार बार स्मरण मत करो।

( ३ ) किसी युवती स्त्रीके रूपलावण्यकी प्रशंसा न तो स्वयं करो न दूसरोंसे सुनो। जो साथी ऐसा करते हों उसका साथ छोड़ दो। जिनमें स्त्रियोंके रूपलावण्यका वर्णन हो ऐसी पुस्तकें मत पढ़ो।

( ४ ) किसी युवती स्त्रीकी ओर बार बार मत देखो, न उससे दृष्टि मिलाओ।

( ५ ) किसी युवती स्त्रीसे एकान्तमें वार्ता मत करो।

ये ऊपर कहे हुए नियम बहुत ज़ोरदार न होने पर भी तुम्हारी बहुत कुछ रक्षा कर सकते हैं। लो अब ऐसे ज़ोर दार नियम सुनलो जो तुम्हारे हृदय-में वीर्यका वेग उत्पन्न ही न होने देंगे और यदि उत्पन्न हो गया होगा तो तुरंत दबा देंगे।

(१) रोज़ एक बार इस पुस्तकको पढ़ डाला करो।

(२) किसीसे भी आँख मिलाकर और हँस कर वार्ता मत करो। जब और जिस किसीसे वार्ता करो उच्च और स्पष्ट शब्दोंमें करो और वार्ता करते समय अपनी दृष्टि भूमिकी ओर रखो।

( ३ ) सर्वदा चौबीसों घंटे ( सोते, जागते, बैठते, खेलते, कूदते, खाते नहाते,) किसी ऐसे गुरु-जनके सामने रहा करो जिस पर तुम्हारी भक्ति हो और जो तुम्हें तुम्हारी गलती पर डांट सकता हो।

इस नियमावलीको पढ़ कर बहुत से मनचले बालक हँस देंगे। हँसें, हमारी कोई हानि नहीं। हम इतना ही कहेंगे कि ये नियम कवच रूप हैं। पालन करनेकी चीज़ हैं। ३० वर्षके अनुभवमें हमने इनको कभी असत्य उतरते नहीं पाया। इन आठों नियमोंका पालन करनेसे ब्रह्मचारी इतना सुरक्षित रहता है जितना एक कछुवा अपने खपड़ेके भीतर रहता है। नियमोंका पालन करो और देखो कि तुम्हें क्या लाभ होता है।

आज कलके ब्रह्मचारियोंमें स्वप्न दोष की शिकायत बहुत अधिकतासे पाई जाती है, और वे सोचते हैं कि जब स्वप्न दोषसे वीर्य स्वयं नष्ट होता है, तब हस्त क्रिया वा अन्य किसी अप्राकृतिक रीतिसे वीर्यको निकाल देनेमें क्या दोष है। बालको! यह तुम्हारी बड़ी भारी भूल है। स्वप्नदोषसे जो पदार्थ निकल जाता है वीर्य नहीं है, वरन् वह वीर्यकी तरहका एक दूसरा पदार्थ है जिसे अँग्रेज़ीमें अल्ब्यूमेन ( Albumen ) कहते हैं। इसका स्थान दूसरा है और वीर्यका स्थान दूसरा। इसकी उत्पत्ति दूसरे प्रकारसे होती है और वीर्यकी उत्पत्ति दूसरे प्रकार से। शरीरमें इसका प्रयोजन दूसरा है और वीर्यका प्रयोजन दूसरा। पंद्रह बीस रोज़में यदि एक बार स्वप्न दोष होता हो, तो कुछ भी हानि नहीं। हाँ इससे अधिक हो तो शरीर दुर्बल होता है। परंतु स्मरण रखो कि ब्रह्मचर्यके नियम ठीक रीतिसे पालन करनेसे स्वप्न दोषकी भी रुकावट हो जाती है। इसका अधिक ब्यौरे वार वर्णन करनेसे लेख बढ़ जायगा। अतः संक्षेपमें सूचना मात्र देना ही उचित समझा गया। इसके ब्यौरेवार वर्णन किसी डाकृरसे समझ लेना चाहिये। हम केवल इतना ही कहते हैं कि स्वप्न दोषमें वीर्य नष्ट नहीं होता। अपने झूठे विचारमें पड़ कर तुम अप्राकृतिक क्रियाओं द्वारा वीर्यको जबरदस्ती शरीरसे मत निकालो। भ्रममें पड़ कर अपनेको नष्ट मत करो। सोचो और समझो कि जिसके निकल जानेमें इतना आनन्द मिलता है, यदि वह पदार्थ शरीरमें रहे तो कितना आनन्द दायक हो सकता है।

पाठको! तुम सोचते होगे कि पवन, अग्नि, पृथ्वी और जल तत्वोंकी शक्तियां संचित करनेका विधान तो बतलाया गया, पर आकाश तत्व तो रही गया। क्या मानव शरीरके संगठन और विकाशमें आकाश तत्वका कुछ भी भाग नहीं है, या लाला जी लिखना ही भूल गये? नहीं, मैं भूला नहीं। सुनिये। शरीर और वीर्यके बनने और विकाशमें आकाश तत्वका अत्यल्प अंश काममें आता है। अधिक सार और शक्तियां इन्हीं चार तत्वोंकी लगती हैं, अतः यहाँ तक अभी इन्हीं चारका वर्णन किया गया। अब ब्रह्मचर्यके छठे नियममें आकाशकी शक्तिको संचित करनेका ब्यौरा दिया जायगा आकाश तत्व सब तत्वोंसे सूक्ष्म तत्व है और हमारे शरीरमें 'बुद्धि' सबसे सूक्ष्म वस्तु है। आकाशका गुण है 'शब्द'। पठन पाठनमें शब्दों द्वारा उसका सूक्ष्म तत्व लेकर बुद्धिका संगठन होता है। यही आकाश तत्वका हमारे विकाशमें उपयोग है। अतः—

६—ब्रह्मचर्यका छठा नियम है "नियम पूर्वक पठन पाठन"। अनियम पठन पाठनसे अच्छा लाभ नहीं होता। अच्छे सुचरित्र विद्वान आचार्यसे श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नियमित समय पर विशेष विद्या वा कला सीखनी चाहिये। आचार्यको सरल सुन्दर और स्पष्ट शब्दोंमें विद्यार्थीको अभिलषित विद्या सिखानी चाहिये। विद्यार्थीको ध्यान पूर्वक गुरुके शब्दोंको सुनना और समझना चाहिये। गुरुकी ओरसे वात्सल्य और शिष्यकी ओरसे भक्तिके भावों सहित जो शिक्षा दी और ग्रहण की जायगी उसके द्वारा आकाश तत्वकी पूर्ण शक्ति दिमागमें संचित हो कर बुद्धिका विकाश कर सकेगी, अन्यथा कदापि नहीं।

यों तो जबसे बालक बोलने और समझने लगते हैं तभीसे आकाशकी शक्ति दिमागमें संचित होने लगती है, पर उपनयन या विद्यारंभ समयसे

इसका प्रभाव अधिक पड़ता है। इस तत्वसे अधिक से अधिक शक्ति संचय करनेके नियम ये हैं:—

(१) प्रत्येक कार्यके लिए एक नियत समय, और प्रत्येक समयके लिए एक नियत कार्य। टाइम-टेबुल रखनेका सिद्धान्त यही है।

(२) गुरु जी की आज्ञाका पालन और सत्य भाषण।

(३) पवित्र शरीर, पवित्र विचार, और पवित्र कार्य। इनमेंसे सर्व प्रधान है गुरु जी की आज्ञाका पालन।

हमारे यहां छुआ छूतका अधिक विचार और प्रत्येक कार्य ब्राह्मण, पुरोहित और आचार्यकी आज्ञा द्वारा करनेका जो अधिक प्रचार है, उसका कारण यही है कि सारे शुभ और पवित्र कार्य बुद्धिकी शुद्धिके हेत ही किये जाते हैं और उसमें शुद्ध आकाश तत्वकी आवश्यकता होती है। शुद्ध आकाश तत्वका संचय बिना पवित्रता और आज्ञा पालनके होता नहीं। बिना आकाश तत्वके संचयके बुद्धिका विकाश असंभव है।

शरीर और शारीरिक बल, वीर्य और बुद्धिका पूर्ण विकाश ही पूर्ण मनुष्यत्व है। इन्हीं वस्तुओंकी वृद्धि पुष्टि और स्थिरताके लिए ब्रह्मचय व्रत धारण किया जाता है।

लोग आश्चर्य किया करते हैं कि भारतका पतन क्यों होता जाता है। अब इस लेखसे पाठकोंको स्पष्ट कारण मालूम हो जायगा कि भारतवासी पूर्ण मनुष्य ही नहीं हैं तो उन्नति कैसे हो। हमारा यह संसार पंचतत्वमय है। तो यह आवश्यक है कि इसका सारा कार्य इन्हीं पंच तत्वोंकी शक्तियोंसे सुचारु रूपसे चलेगा। हम उन शक्तियोंको अपनेमें संचित नहीं करते। जितनी शक्तियाँ अनायास ही हममें संचित हो जाती हैं, उन्हींसे काम चलाते हैं। भला विचारिये तो सही, इस तरहसे कहीं काम चल सकता है। कदापि नहीं।

छोटेसे छोटा काम जब हम करना चाहते हैं, तो उस कार्यकी सामग्री पहलेसे एकत्र करनी पड़ती है; तब वह काम होता है; यह तुम रोज देखते हो। अब विचार करो कि जब तुम समस्त संसारका काम (सृष्टि पालन और संहार) करना चाहते हो तो तुम्हें कितनी अधिक सामग्री एकत्र करनी चाहिये। और वह सामग्री आवेगी कहाँसे और कैसे? हमारा उत्तर है—"वह सब सामग्री पंच तत्वोंसे मिलेगी और इसी ब्रह्मचर्य व्रतसे"।

अब सवाल यह हो सकता है कि अन्यान्य देशोंके मनुष्य तो ऐसा नहीं करते और वे उन्नत और शक्तिशाली हैं। यह क्यों? इसका उत्तर यह है कि तुम ग़लती कर रहे हो। ज़रा सोचो और समझो। संसार भरके समस्त देशोंमें ब्रह्मचर्यके कुछ न कुछ नियम प्रचलित हैं। अन्य देशोंमें विवाह बड़ी उम्रमें होता है। यह हमारा पाँचवां नियम है। उन लोगोंने इसको प्रधानता दी है। अन्य तत्वों-की शक्तियाँ अनियम रीतिसे प्रकृति उनमें स्वयं भरती रहती है। उनके व्यायामका ढंग भिन्न प्रकारका है; पर है अवश्य। भोजन पानका ढंग विलग है, पर है अवश्य। खुली हवा और धूपमें रहनेके भी उनके दूसरे ढंग हैं, पर हैं अवश्य। इस विभिन्नताका फल भी प्रत्यक्ष है। हमारी सभ्यता बहुत पुरानी है। हमारे ऋषियोंने हज़ारों वर्षोंके अनुभवसे प्रकृतिकी शक्तियोंसे अंश संचित करने के ऐसे ढंग और नियम बना लिये हैं, जिनकी पाबंदीसे तत्वोंकी शक्तियोंका सात्विक अंश संचित हो जाता है। अन्यान्य देश अभी भारतके सामने बच्चे हैं और वे वैसे अच्छे नियमोंसे शक्ति संचय करना नहीं सीखे। इसी कारण उनकी शक्तियोंमें तामसीपन अधिक है, जिसका फल यह है कि वे संहारका कार्य अधिक करते हैं। यूरोपका महा-युद्ध इसी अनियम शक्ति संचयका फल है। हमारे बनाये नियमोंसे भी राजसी, तामसी अंश संचित होगा; पर वह केवल आवश्यकता भर होगा और आज्ञाकारी रहेगा।

प्रत्यक्ष देख लो कि यूरोप और अमेरिकामें आकाश तत्वकी शक्तिके संचयका ढंग हमारे नियम

से बिल्कुल विरुद्ध है। फल यह है कि वहाँके अधिकतर बुद्धिमान लोग तामसी और संहारक तत्वों और यंत्रोंको ईजाद करनेमें ही अपना गौरव समझते हैं। अतः यदि अन्य देशोंके लोग हमारे बताये नियमोंके अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत पालन नहीं करते तो इससे यह नतीजा कदापि नहीं निकाला जा सकता कि हमारे नियम ढकोसला मात्र हैं। विचारवान लोग हमारे बताये हुये नियमोंकी खूबी, सरलता, सुसारता और व्यापकता भली भाँति जान सकते हैं।

बस ब्रह्मचर्यके विषयमें जो कुछ हमें लिखना था हम लिख चुके। अब हम विना पूछे ही बालकों वा बाल समाजोंको एक सलाह भी देते हैं कि वह अपने लिए एक क्लब ऐसा संगठित करलें, जिसमें इन नियमोंके अनुसार कार्य हो। किसी एक स्थानमें नवयुवक गण सूर्योदयसे एक घड़ी पहले एकत्र हों, शौच और स्नानसे निपट कर, वहीं प्राणायाम करें, सूर्यसे बिजली संचित करें और व्यायाम भी वहीं करें। ये तीनों क्रियाएं डेढ़ घंटेमें समाप्त हो सकती हैं। और भी किफायत दर्कार हो तो एक ही घंटेमें करें यथावकाश व्यायामका समय घटाया बढ़ाया जा सकता है, वा सन्ध्याका समय रखा जा सकता है। तीन नियमोंका पालन इस तरहसे हो जायगा। शेष तीन नियमोंके लिए क्लबके सदस्यों वा उनके गुरुजनोंसे प्रतिज्ञापत्र लिखाये जायँ। यदि कभी मालूम हो और प्रमाणित भी हो जाय कि उन्होंने प्रतिज्ञाके विरुद्ध काम किया है तो वे क्लबकी मेम्बरीसे खारिज कर दिये जायं। मेम्बर एक दूसरे पर निगाह रखें, उनके आचरणोंकी जांच परताल करते रहें। प्रति वर्ष सर्वोत्तम ब्रह्मचारीको कुछ पुरस्कार देनेकी भी व्यवस्था की जाय। इस क्लबका नाम हो "ब्रह्मचर्य क्लब"। जो बालक इस क्लबका मेम्बर होकर ब्रह्मचर्य पालनसे पटुता दिखावे, समाजमें उसका विशेष आदर किया जाय। २४ वर्षकी अवस्था तक निर्वाह करने वालेको "ब्रह्मचारी" कहा जाय। या इसी प्रकारके कुछ और उपायों द्वारा इसका प्रचार बढ़ाया जाय। क्लबमें कभी कभी ब्रह्मचर्य पर विद्वानोंसे व्याख्यान भी दिलाये जायँ।

अंतमें ईश्वरसे तथा अखंड ब्रह्मचारी श्री गणेशजीसे हमारी यही प्रार्थना है कि हमारे युवकोंको ब्रह्मचर्य पालनकी शक्ति और विद्वानोंका सत्कार करनेकी सुबुद्धि प्रदान करते रहें। ॐ शांतिः

—भगवानदीन।

---

# सस्तेपनकी सीमा। सात आनेमें छायाचित्रणके लिए कैमरा

[ ले०—श्री० "सिद्धहस्त" ]

श्चर्यकी बात है कि मनुष्यको खुशामद कितनी भाती है। मैं, श्री० सिद्धहस्त, इस लतसे बचा नहीं हूं। यदि कोई मेरे इन सिद्ध हस्तोंसे बनाये हुए चित्रकी थोड़ी भी प्रशंसा कर देता है तो मैं हर्षसे फूल उठता हूं, पर यदि कोई ऐसा इशारा भी कर देता है कि जिससे मेरे बड़प्पनमें अन्तर पड़ जानेकी सम्भावना हो जाती है तो मैं मन ही मन कुढ़ उठता हूं। प्रशंसा मुझको इतनी प्रिय है कि दूषित चित्रोंको मैं "कभी अन्धेरी कोठरी" के बाहर निकलने नहीं देता। लेकिन अच्छे उतरे चित्रोंको प्रत्येक मित्रको दिखलाता हूं।

मेरे चित्रोंकी प्रशंसा करने वालोंकी कमी नहीं है, पर अभाग्य वश मेरी प्रशंसा करनेवाले बहुत ही कम हैं। चित्रकी सुन्दरतासे मुग्ध हो लोग पूछ बैठते हैं, "आपके पास कौन सा कैमरा है? किस कारखानेका लेंस है?" और यह सुनते ही कि मेरे पास "रिफलेक्स" (reflex) कैमरा और "एफ फोर पैंट फैव बेक निओस्टिगमार ऐनैस्टिगमैट लेन्स" (F. 4·5 Beck Neostigmar Anastigmat) है

बोल उठते हैं "क्यों न हो, ऐसे यंत्रसे ऐसा चित्र आना ही चाहिये" सुनते ही मेरी तबियत बिगड़ जाती है। जो प्रशंसा मुझको मिलनी चाहिये वह व्यर्थ दी जाती है मेरे कैमरेको। तुरन्त हम समझ लेते हैं कि कहनेवाला अनाड़ी है और इसी विचारसे अपने चित्तको प्रबोध करते हैं। पर यह हम कब तक सह सकते हैं। हालमें मैं विज्ञानमें छपे अपने लेखोंको अपने एक मित्रको दिखला रहा था। उन्होंने भी बड़ी कृपा करके अपने हाथोंसे खींची फोटो मुझको दिखलायी। घमंडमें चूर मैं बोल उठा "इतना औट आफ फोकस (out of focus) क्यों? प्रकाशान्तर भी बहुत कम है।"

परन्तु उन्होंने उत्तर दिया "मेरा लेंस आपके लेंसकी तरह पेनिस्टिगमैट तो है नहीं। जितनी लेन्समें पावर (power) थी उतना शार्प (Sharp) फोटो उतरा है।" मनमें तो मुझे हँसी छूटी; लेन्स भी क्या मोटर गाड़ी है कि कम और अधिक पावर की जांच करनी पड़ेगी; पर प्रत्यक्षमें मैंने उनके सामने यही प्रतिज्ञा की—"खैर, जो आप कहिये सोई सही। पर यदि मैं पांच पैसेके लेन्ससे आपसे बढ़कर इसी विषयकी फोटो न खींच दूं तो मेरा नाम "सिद्धहस्त" नहीं।" इस लेखमें इसी प्रतिज्ञा पूर्तिका वर्णन है।

विचारनेकी बात है कि मनुष्य अपनेको निर्दोषी ठहरानेके लिए कितने उपाय करता है। किसीको आप दोषी ठहराइये, परन्तु वह अपनेको बचानेके लिए किसी दूसरेको दोषी बना देता है। ऐसा न कर सका तो अपनी अवस्था और स्थितिको दोष देता है। कुछ नहीं बन पड़ा तो यही समझाने लगता है कि हमसे ऐसा क्यों हो गया। फोटोग्राफरोंकी भी यही बान है। फोकस ठीक नहीं है तो अवश्य लेन्स ही ख़राब होगा। प्लेट धुन्धला हो गया तो निश्चय ही प्लेट बिगड़ गया था। प्रकाशान्तर कम है तो डेवेलपर ही बुरा है। फोटो अधिक काला हो गया है या उनपर धब्बे पड़ गये हैं या अच्छे रंगका नहीं है तो इसमें सन्देह नहीं कि कागज़ ख़राब था। फोटो यदि अच्छा नहीं लगता तो कैमरा ही रद्दी होगा। मेरी समझमें अपनेको दोषी न ठहराना बहुत ही लाभदायक है। कमसे कम ऐसे पुरुषको यह तो विश्वास है कि अच्छे यंत्रसे हम अच्छा काम कर सकते हैं। ऐसे मनुष्यों-से जो कि ऐसा सोचकर "हम बड़े मूर्ख हैं, हमारा किया इस संसारमें कुछ नहीं हो सकता" निराश पड़े रहते हैं वह कहीं अच्छे हैं; पर सबसे अच्छे वह हैं जो निष्पक्षपात (impartially) दोषके कारण की जांच करते हैं और एक एक करके प्रत्येक दोषकी जड़को उखाड़ फेंकते हैं। ऐसे ही लोग शीघ्र सफल होते हैं।

इस लेखके लिखनेमें मेरा यह उद्देश्य नहीं है कि लोग इसी प्रकारके कैमरेको बनावें। मैं कभी भूल कर भी ऐसी सम्मति देनेवाला नहीं। इस लेखके पढ़नेसे लोगोंको यह नहीं समझना चाहिये कि "सिद्धहस्त" को बढ़िया कैमरा बनाना नहीं आता। कदापि नहीं। इच्छा तो यही है कि आगामी लेखोंमें ऐसे ऐसे कैमरोंके बनानेको तरकीब लिखूं जो थोड़े ही व्ययमें अत्यन्त मनोहर बनें, काम करनेमें बड़े सुभीतेके हों और मज़बूत ऐसे हों कि उनके आगे बाहरके बने सभी कैमरे सिर झुकावें। यहां पर तो केवल यही दिखाया जायगा कि मैंने अपनी प्रतिज्ञा कैसे पूरी की। यह आपके लिए शिक्षा रहित नहीं है। इससे आप देख सकेंगे कि टूटे बक्स, पुराने चश्मेके एक ताल, बूट पालिशके एक बेकार डिब्बे और थोड़ी सी स्याही-से क्या किया जा सकता है। इसीसे आप अनुमान कर सकेंगे कि आप अपने कैमरेसे क्या क्या करा-मात कर सकते हैं। इस लेखके पढ़नेसे यदि वह लोग जो आशा छोड़ बैठे हैं फिर कमर कस काम करनेको उद्यत हो जायंगे तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

परन्तु अपने विषय पर लिखनेके पहिले कुछ दूसरी बातोंके लिखनेसे मैं अपनेको नहीं रोक सकता। ऊपर ही लिख आया हूं कि मैं केवल प्रशंसा-

का ही भूखा हूं। छिद्रान्वेषण तो किसीको नहीं रुचता, भला सिद्धहस्तको कब अच्छा लगेगा। इसलिए गत जनवरी मासके विज्ञानमें छपी आक्षेपका उत्तर दिये बिना नहीं रहा जाता। गलती चाहे किसी की हो मैं अपनेको अशुद्ध नहीं मानता। पृष्ठ १३६ के फुट नोटमें लिखा गया है रुईसे साफ करनेके पहिले फिटकरीके घोलमें नेगेटिवको ५ मिनट तक रखें तो हैपो भी निकल जायगा और फिल्म कड़ी हो जायगी। मैंने नेगेटिव को खूब धो हैपोको भलीभांति निकाल देनेके बाद नेगेटिवको रुईसे साफ करनेकी सम्मति दी है। यदि इस समय फिटकरीमें नेगेटिवको इस अभिप्रायसे रखें कि हैपो निकल जाय तो मुझे यह पूछना है कि (१) अब हैपो नेगेटिवमें कहांसे आया? (२) फिटकरी क्या हैपो-मारक है? (३) यदि हैपोमारक है भी तो आरम्भ में ही इसका प्रयोग क्यों न किया जाय और (४) फिटकरीके घोलसे निकालनेके बाद क्या नेगेटिवको फिटकरीसे मुक्त करनेके लिए फिर घंटे आध घंटे तक धोनेकी आवश्यकता न पड़ेगी? यदि केवल फिल्म कड़ी करनेके लिए ऐसा किया जाय तो जैसा मैंने प्रक्रम ३२ में दिखलाया है डेवेलप करनेके पहिले ही फिल्मको कड़ी कर लेना चाहिये। कमसे कम इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि रुईसे साफ करनेके पहिले फिटकरीके घोलमें नेगेटिव रखनेमें किसी प्रकारका सुभीता न होगा। दूसरे आक्षेप (पृष्ठ १३८ फुट नोट) का उत्तर केवल हम इतना ही देते हैं कि चित्र १७ में दिखलाई गई रीतिसे किसी बेकाम नेगेटिवको पानीके कलके दो तीन इंच नीचे रखकर कलको थोड़ा सा खोल दीजिये। जब तक कि फिल्म उखड़ न जाय नेगेटिवको यों ही पड़ा रहने दीजिये। मुझे आशा है कि इस प्रयोगको कर देखनेसे आप फिल्म उखड़ जानेके भयसे बिल्कुल निश्चिन्त हो जायंगे।

अपने विषय पर अब लौट आना चाहिये। बनारस शहरमें एक "गुदड़ी बाज़ार है। यहां पर पुरानी और टूटी फूटी रद्दी चीज़ें बहुत बिकती हैं। ज्योतिष-दूरबीन (Astronomicol Telescope) बनानेके लिए मैं इसी बाज़ारकी एक दूकानपर पुराने चश्मों की ताल मोल लेने एक बार गया था। दूकानदारने तालोंसे भरी एक थालीको मेरे सामने रख दिया। कितने ताल बिल्कुल निकम्मे थे। खरोंच सभीमें पड़े थे। कुछ देख भाल करने पर एक ताल जिसको मैंने अपने कामके योग्य समझा अलग किया। दाम पूछने पर दूकानदारने कहा इसके दाम चार आने हैं। मनमें दूकानदारने सोचा कि बाबू साहब ने बहुत छान बीन की है। अवश्य बढ़िया माल निकाला होगा। मैंने भी दूकानदारके मनकी बात समझ ली। मैंने कहा कि इसके लिए चार पैसेसे अधिक दाम न देंगे; चलते समय पांच पैसे पर दूकानदार राज़ी हो गया और मैंने इसी पांच पैसेवाले लेन्सको इस कैमेरेमें लगाया।

अब मुझे यह बतलाना है कि कैमरा मैंने कैसे बनाया। मेरे मकानके एक कोनेमें चीड़की लकड़ी का एक पुराना बक्स पड़ा था। यह वही है जिसमें मट्टीके तेल भरे कनस्तर आते हैं। मैंने इसीको कैमरा बनाने के लिए चुन लिया। यदि मेरे पास ऐसा बक्स पहिले से ही न होता तो पुराने कनस्तरके टीन या बे काम दफ़्ती का ही कैमरा बना डालता। लेकिन लकड़ीके मिल जानेसे सुभीता हुआ। एक बक्स क ख ग घ (चित्र १) इतना बड़ा बनाया गया कि उसकी भीतरी नाप ४½ इंच × ३½ इंच हुआ। इसमें क्वार्टर प्लेट अच्छी तरहसे जा सकता है। बक्सके पल्लोंके जोड़नेकी रीति चित्र २ से प्रत्यक्ष है। किसी चूर आदि काटनेकी आवश्यकता नहीं। इस बक्सके दोनों छोर, अर्थात् क घ और ख ग, खुले रखे गये हैं। प्लेटको टिकानेके लिए लकड़ी या दफ़्तीके आध इंच चौड़े और ¼ इंच मोटे चार टुकड़े त थ इत्यादि क घ वाले किनारेसे ¾ इंचकी दूरी पर जड़ दिये गये (चित्र ३)। इसके बाद एक बक्स च छ ज झ (चित्र ४) इस नापका बनाया गया कि पहिले

बक्स क ख ग घ के अन्दर आसानीसे खिसक सके। दोनों बक्सोंकी लम्बाई अ लेन्सकी फोकल लेन्थ (Focal Length) के तीन चौथाईके बराबर है। इस दूसरे बक्सके भी दोनों सिरे इस समय तक खुले हैं। पर एकको बन्द करनेके लिए मोटी लकड़ी का एक टुकड़ा ट ठ ड ढ (चित्र ५) इतना बड़ा काटा जाता है कि छ ज वाले किनारेमें कस दिया जा सके। इसके ठीक बीचमें एक छेद लगभग १ इंच व्यासका कर दिया जाता है। इसी पर लेन्स (चश्मेके ताल) को लगा देते हैं। लगानेकी विधि भी चित्र ५ से स्पष्ट है। दो छोटे परेग पहिले ही जड़ दिये जाते हैं। तब तालको रख पेंच कस देते हैं। चित्र ६ इसी लकड़ी के टुकड़ेका बगलका दृश्य है। यदि ताल प्लेनो कनवेक्स (Plano-Convex) है, अर्थात् इसका एक तरफ सम और दूसरी उन्नतोदर है तो सम ओरको प्लेटकी तरफ और दूसरे ओरको बाहरकी तरफ रखना चाहिये। इस लकड़ीको तब च छ ज झ बक्सके छ ज वाले सिरेमें कस, दो पेंचसे जड़ देते हैं। बक्स क ख ग घ में बक्स च छ ज झ को छोड़ देते हैं और क ख ग घ के दूसरे छोर अर्थात् क घ को बन्द करनेके लिए एक लकड़ीके टुकड़े न य को, जिसकी नाप ४½ इंच × ३½ इंच है, दूसरे लकड़ीके टुकड़े द ध पर कीलसे जड़ देते हैं। द ध की नाप क घ की बाहरी नापके बराबर होती है। प्लेटको क घ में रखनेके बाद चार या पांच तह काला कागज़ या कपड़ा रख कर द ध न य ढकने से बन्द कर देते हैं। इस ढकनेको अपनी जगह पर ठहरानेके लिए अँकुड़ी इत्यादि लगा सकते हैं, पर मैंने बक्स क घ के बाहर दोनों बगल एक एक कील जड़ दी थी। इनमेंसे एक ह चित्र ३ में दिखलाई पड़ती है। ढकना रखनेके बाद इन्हीं कीलोंको तागे या फ़ीतेसे बांध देते हैं। चित्र ८ इसी ढकनेकी बगलका दृश्य है। अब एक बूट पालिशका खाली डिब्बा या अन्य कोई टीनका डिब्बा लेकर उसके पेंदेमें ½ इंच व्यासका एक छेद र ल काट दीजिये। फिर इस छेदके बाहर तीन छेद कर पेंचसे लकड़ी-के टुकड़े ट ठ ड ढ पर जड़ दीजिये। इसका ढंग बगल वाले दृश्य चित्र १० से जान सकते हैं। कैमरेको अब एक प्रकारसे तैयार समझना चाहिये।

हिन्दोस्तानी स्याहीसे अब क ख ग घ का भीतरी भाग, च छ ज झ का बाहरी और भीतरी भाग दोनों, ट ठ ड ढ, द ध न य, और डब्बेके भीतरी भागको काला रँग दीजिये। फिर लेईसे काले कागज़की पट्टी बक्स च छ ज झ के भीतर से और बक्स क ख ग घ के बाहरसे जोड़ोंमेंसे प्रकाशको भीतर आनेसे रोकनेके लिए चिपका दीजिये। हो सके तो बक्स क ख ग घ के ख ग किनारेके भीतर चारों ओर एक इंच चौड़ी मोटे मखमल की पट्टी चिपका दीजिये (मैंने ऐसा नहीं किया था)। इसके चिपकानेसे दोनों बक्सोंके जोड़से प्रकाश भीतर न जा सकेगा; पर इसके लिए लकड़ीको कुछ छील देना पड़ेगा। कैमरा अब फोटो खींचनेके लिए बिलकुल तैय्यार है, पर इसके कुरूपको छिपानेके लिए पुस्तकों पर जिल्द बांधने वाले कागज़से मैंने इसको मढ़ दिया था और ऊपरसे एक लोहेका हैन्डल लगा दिया था। यह हैन्डल मेरे पास बहुत पहिले से ही था, नहीं तो निश्चय है कि किसी फटे जूतेसे चित्र ११ में दिख-लाये गये आकारके चमड़ेका हैन्डल काट कर लगा देते। रह गया अब कैमरेके लिए ट्रिपाड (Tripod)। मैं अपने बाइसिकिलको पम्पसे टेक लगा कर खड़ी कर देता हूं और पीछे लगे हुए लगेज कैरियर (luggage carrier) पर कैमरेको रख देता हूं। कैमरेको हिलनेसे बचानेके लिए कैमरेके ऊपर एक ईंट रख देता हूं। घरके भीतर मेज़ या बक्सोंसे काम चलाता हूं। यदि मेरे पास साइकिल न होती तो छड़ी या डंडेसे काम चलाता; ट्रिपाड कभी इस कैमरेके लिए न मोल लेता। व्यू-फाइन्डर (view-finder) भी मैंने एक मिनटमें बना लिया। यह डाइरेक्ट् विज़न वायर-फ्रेम (direct vision wire frame) चालका बहुत सीधा व्यू

फाइन्डर ठीक उसी प्रकारका है; जैसा कि बहुत दाम वाले फोकल-प्लेन हैन्ड कैमरों (Focal-plane hand cameras) में लगा रहता है। यह व्यू-फाइन्डर चित्र १२ में स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। मैं उन महाशयोंमेंसे नहीं हूं जो बिला स्वयं जांच किये औरोंको ऐसी सलाह दे बैठते हैं जिनका पूरा करना असम्भव है। मेरा आशय आप गत जनवरी मासके विज्ञान वाले "अँधेरेमें देखना" या दिसम्बर मासके "सरल पेन्सिल शार्पनर" पर लिखे लेखोंसे समझ जायँगे। इस बातका आपको विश्वास दिलानेके लिए कि मैंने ऐसा कैमरा सच-मुच बनाया है इस कैमरेकी फोटो (चित्र १३) मैं यहां पर देता हूं। अभी तक इसमें व्यू-फाइन्डर नहीं लगाया गया है।

इस कैमरेके प्रयोग करनेकी विधिका सविस्तर वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है, पर दो एक बात लिखना आवश्यक जान पड़ता है। फोकस करनेके लिए बक्स च छ ज झ को आगे पीछे खिसकाते हैं और ६ फुट, ६ फुट, १५ फुट, ३० फुट और बहुत दूरके वस्तुओंको ठीक फोकसमें लानेके लिए बक्स क ख ग घ के भीतर बक्स च छ ज झ को कितना रखना चाहिये इसको जाननेके लिए बक्स च छ ज झ के ऊपर चिह्न लगा देते हैं। इसके लिए ढकने द ध को हटा प्लेटके स्थानमें ग्रौन्ड ग्लास (ground-glass) थोड़ी देरके लिए लगा देते हैं। अब हमारे पाठक स्वयं यह समझ लेंगे कि इस कैमरेमें प्लेट कैसे लगाते हैं, एक्सपोज़र exposure कैसे देते हैं, इत्यादि। केवल मुझे इतना ही कहना है कि लेन्सके सामनेका छेद और छोटा करना पड़े तो एक गोल काले कागज़में ठीक नापका छेद काट कर बूट पालिशवाले डिब्बेमें लगा देते हैं।

मैंने तो पहिलेसे ही ठान लिया था कि मैं सस्तेपनकी हद कर दूंगा। कदाचित आप जानना चाहें कि ऐसे कैमरेके बनानेमें क्या खर्च पड़ता है। इसलिए ऐसे कैमरेका हिसाब नीचे लगा दिया जाता है।

| | |
|---|---|
| लेन्स ... ... ... | ⁻)। |
| लकड़ी, (मुझको तो मुफ़्त मिली, लेकिन मान लीजिये) ... ... | ।) |
| कील ... ... ... | )॥ |
| पेंच ... ... ... | )। |
| स्याही ... ... ... | )॥ |
| बूट पालिशका खाली डिब्बा, | मुफ़्त |
| लेई, काला कागज़ इत्यादि, | मुफ़्त |
| हैन्डल ( अनावश्यक ), | मुफ़्त |
| मढ़नेके लिये कागज़ (अनावश्यक) | |
| ट्रिपाड, | मुफ़्त |
| व्यू-फाइन्डरके लिए तार | )। |
| कुल | ।=)॥। |
| अधिकसे अधिक हद | ॥) |

इस कैमरेसे पहिले ही फोटो जो मैंने उतारी मेरे मित्र महाशयसे बहुत अच्छी उतरी उनको भी इस बातको मानना पड़ा। बानगीके लिए दो चित्र यहां छापे जाते हैं। आप कदाचित कहें कि आपकी अँधेरी कोठरी खूब सजी है। इसी कारणसे आपका फोटो बढ़िया आया। मैं इसके लिए भी तैयार हूं। कैमरेमें प्लेट लगाते समय या प्लेट डेवेलप करते समय अपनी अँधेरी कोठरीके सामानमेंसे एकको भी मैं काममें नहीं लाया। एक दम अन्धेरेमें ही प्लेटको लगाया। डेवेलप करते समय अपने छोटे भाईको घड़ी देकर बाहर खड़ाकर दिया। डेवेलपर छोड़ते ही उससे मैंने समय पूछ लिया। फिर मैंने कह दिया कि बड़ी सूई अमुक गिनती पर पहुँचे तो बतलाना। अपने भाईके कहने पर प्लेटको डेवेलपरसे निकाल स्थायी (fix) किया। आपको एक भी अवसर न देनेके लिए मैंने प्रति दिनके कामकी अल्यूमिनियमकी थालियोंमें प्लेट डेवेलप इत्यादि किया। तराजू बांटसे काम न लेनेके लिए टिकियोंके रूपमें डेवेलपर मोल लिया था। मेज़-
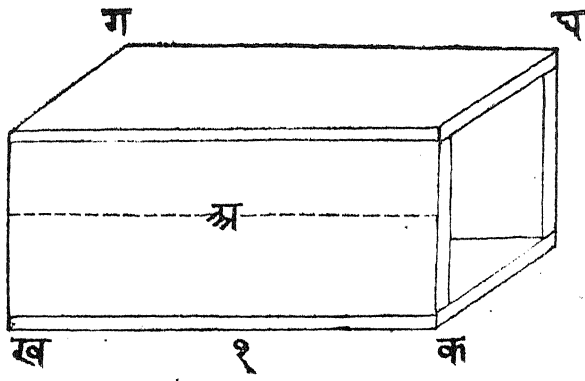
(२४) चित्र १
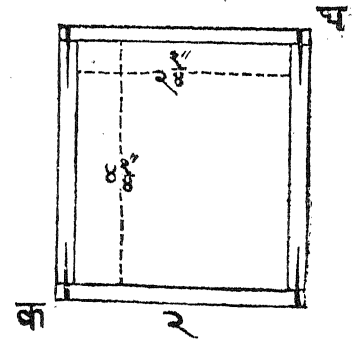
(२५) चित्र २
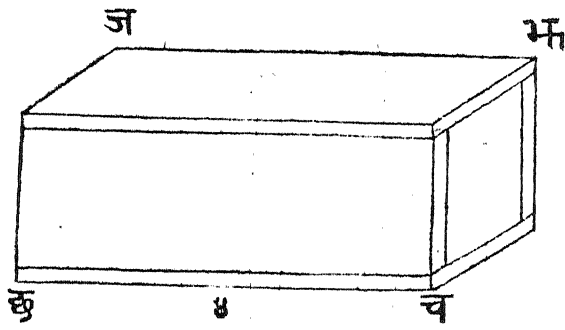
(२७) चित्र ४
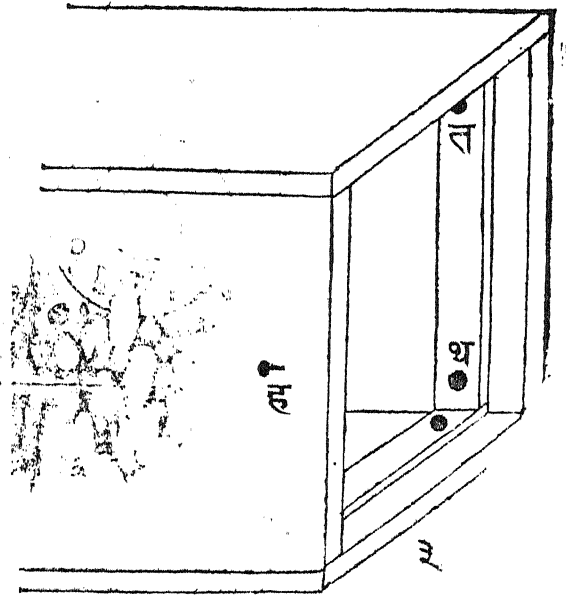
(२६) चित्र ३
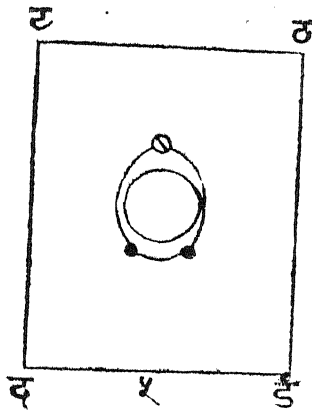
(२८) चित्र ५

(२९) चित्र ६
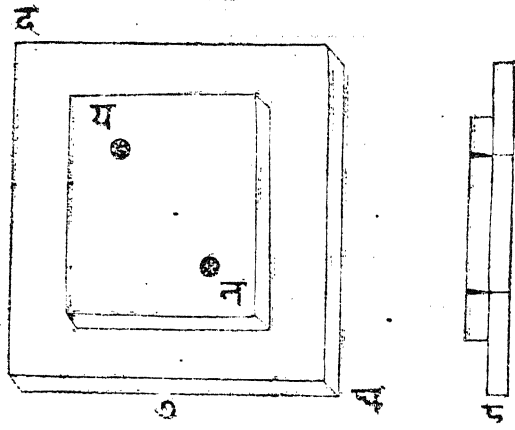
(३०) चित्र ७

(३१) चित्र ८
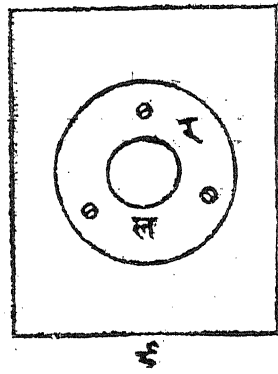
(३२) चित्र ९
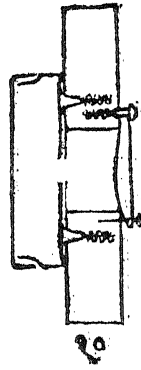
(३३) चित्र १०

(३४) चित्र
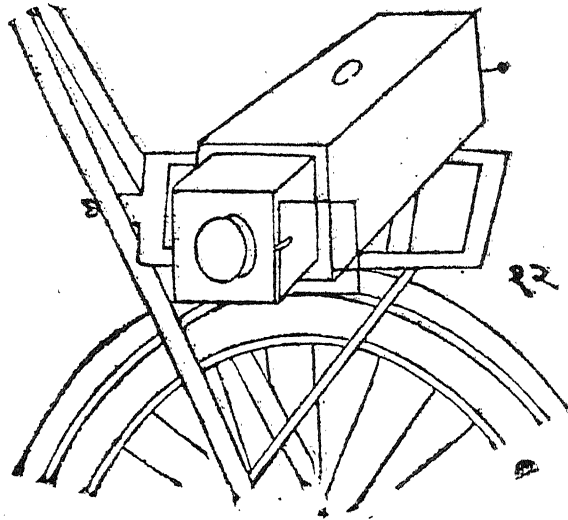
(३५) चित्र १२

रिंग ग्लाससे भी काम न लेकर अन्दाज़से ही पानी लिया था। चाहता तो प्रिन्टिंग फ्रेम ( printing frame ) से भी काम न लेता। पर यह फ्रेम मेरे ही हाथका बना था, इससे कोई आपत्ति इसके प्रयोग करनेमें मुझको न हुई। यदि चाहता तो अँधेरी कोठरीका प्रयोग न कर केवल रात्रिके समयमें ही काम किया करता, पर तब एक दिनमें एकसे अधिक फोटो न उतार सकता। अब तो मेरी प्रशंसा आप करेंगे न ? या अब भी आपके बचनेका कोई उपाय है ?

अभी हालमें मैं इन चित्रोंको एक दूसरे मित्रको दिखला रहा था। संयोगसे वहां इंजीनियरिंग कालेजके एक विद्यार्थी आ पहुंचे। यही सब बातें हो रही थीं। उन्होंने कहा यदि आपकी बात सच्ची है कि इस कैमरेमें आपका आठ आनेसे अधिक व्यय नहीं हुआ है तो मुझसे एक रुपया ले लीजिये और इस कैमरेको मुझे दे दीजिये। मैंने पूछा "आपके पास क्या कोई कैमरा नहीं है !" उत्तर मिला "है क्यों नहीं, हाफ प्लेट विक्टो (Victo) तो है, पर काम अच्छा नहीं उतरता।" मैंने कहा, "सच है, नाच न जानूं आँगन टेढ़ा"।

---

## प्रकृतिके रहस्य

एक विचित्र वनस्पति

[ ले०—श्री० सुरेन्द्रदत्त, बी. एस-सी. ]

वृक्ष या पौधा कहनेसे साधारणतः उन बड़े या छोटे हरे तरु और लताओंका बोध होता है, जिन्हें हम हर समय और हर जगह देखते हैं, जिनमें जड़ें, शाखायें और हरे पत्ते होते हैं। सर्वत्र हरियाली इन्हींके अंगों विशेष कर पत्तोंके कारण दिखलाई देती है। प्रत्येक वृक्षकी जड़ और धड़ ( मूल और स्कन्ध ) दो भाग होते हैं, जो भिन्न भिन्न काम करते हैं। धड़में शाखाएँ और पत्ते होते हैं, पर कुछ वनस्पति ऐसी भी हैं, जिनमें जड़ और धड़ अलग अलग नहीं होते अर्थात् पूरा पौधा एकसी बनावटका होता है। पाठकोंने नदी या तालावोंमें पानीकी सतह पर हरी हरी काई लगी हुई देखी होगी, जो ऊपरसे एक परत सी दिखाई देती है। पर थोड़ी सी हाथमें लेकर देखिये तो मालूम होगा कि यह अत्यन्त पतले पतले हरे सूतोंके एकत्रित हो जानेसे बनी हुई है। इसका हर एक सूत एक पौधा है।

ऐसे ही कई प्रकारके छोटे छोटे पौधे इस पृथ्वी पर हैं जिनको हम कठिनाईसे पहचान सकते हैं। इतना ही नहीं बल्कि ऐसे भी पौधे पाये जाते हैं जिनका शरीर केवल एक कोष ( सेल Cell ) का बना होता है।

ऊपर कहे हुए सब पौधोंमें हरा रंग मौजूद रहता है और कभी कभी उसके साथ दूसरे रंग भी मिले रहते हैं। आगे जिन पौधोंके विषयमें लिखा जायगा उनको भली भाँति समझनेके लिए कुछ हाल वनस्पतिकी हरियालीका बतला देना आवश्यक होगा। वृक्षोंकी इस हरियालीका क्या कारण है और इसका पौधोंसे क्या संबन्ध है ? हरियाली हरितराग ( Chlorophyl ) नामक पदार्थकी बदौलत दिखाई पड़ती है। इस पदार्थके छोटे छोटे कण कोषोंके भीतर भरे रहते हैं। इसमें यह शक्ति है कि सूर्यके प्रकाशकी किरणोंके पड़ने पर यह पत्तोंके भीतर कर्बन द्विओषिद्के कर्बन और ओषजनको पृथक् पृथक् कर देता है।

वृक्षका शरीर भी मनुष्यों अथवा पशुओंके शरीरोंकी भांति एक विशाल यन्त्र है, जिसमें अनेक क्रियायें नियमित रूपसे होती रहती हैं। वृक्षके हरे पत्ते जिनके कोषोंमें हरितराग ( क्लोरोफिल ) भरा रहता है, हवासे कर्बन द्विओषिद खींचकर उसका कर्बन अलग करते हैं। पृथ्वी से अन्य आवश्यक घुलनशील पदार्थ जड़ों द्वारा खिंचकर पत्तों में पहुंचते हैं और वहां कर्बनसे मिलकर वृक्षके भोजनोपयोगी पदार्थ बन जाते हैं। यह भोजन तब शरीरके सारे अवयवोंमें पहुंचता है। इस

प्रकार क्लोरोफिल इन वृक्षोंके जीवनके लिए ऐसा अनिवार्य है कि बिना इसके उनका जीवन संभव नहीं है, क्योंकि साधारण पौधे जानवरोंकी भांति आङ्गारक (†organic) पदार्थोंको नहीं खा सकते, वरन् उनको अनाङ्गारक (inorganic) पदार्थोंसे आङ्गारक पदार्थ क्लोरोफिलके सहारे बनाने पड़ते हैं।

जिस विचित्र वनस्पतिसे यहां हम पाठकोंका परिचय कराना चाहते हैं, उसमें और उपरोक्त प्रकारकी वनस्पतिमें यह भेद है कि उसमें हरित राग नहीं होता और इसीलिए उसमें हरियालीका भी लोप होता है। बस इसी भिन्नताके कारण उसके सारे जीवनके व्यवहारोंमें हेर फेर पड़ गया है और यह पौधे इतने निराले होगये हैं कि साधारण मनुष्य इन्हें पौधे कहते हिचकता है।
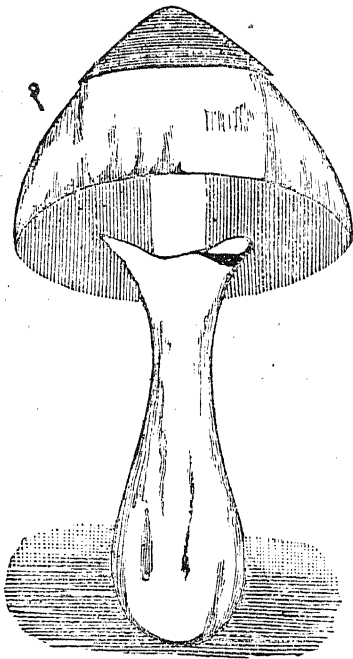
(३८) चित्र १

गोवरछत्ते (जिन्हें कुकुरमुत्ते भी कहते हैं), जो छातेके आकारके होते हैं और बरसातमें खाद-वली भूमिमें बहुतायतसे उगते हैं प्रायः सबने देखे होंगे। सरसरी तौर पर देखनेसे यह पौधे नहीं ज्ञान पड़ते, पर वास्तवमें यह भी पौधे हैं, जो दूसरी जातिके, हरितराग (क्लोरोफिल) रहित, वनस्पतिमें सम्मिलित हैं। (चित्र १)

इसी प्रकार बरसातमें जब नमी अधिक होती है तो जूतों, चमड़ेकी बनी अन्य वस्तुओं तथा अन्य अनेक वस्तुओं और बहुधा सड़ते हुए फलोंके ऊपर नीली वस्तुओंमें नीली काई सी लग जाती है। (चित्र २) यह भी वास्तवमें हरितराग विहीन पौधे ही होते हैं। इस प्रकारकी वनस्पतिको फंगस† अथवा घुआ कहते हैं। फफूंदी, गोबरछत्ता और कठफूला आदि नाम-विशेष अर्थवाचक हैं। इन पौधों की बनावट अत्यन्त सरल है। इनके न जड़ होती है, न धड़। बहुत से केवल एक कोषके बने होते हैं और इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनकी बनावट बिना सूक्ष्म दर्शक यन्त्रके नहीं देखी जा सकती। सारा शरीर जीवाद्यम (protoplasm) के पतले पतले सूतोंसे बना हुआ होता है, जो अलग अलग या साथमें जुड़कर गुथे हुए रहते हैं। यह सूत विशेषकर जिस वस्तुपर फंगस उगता है उसके भीतर ही फैलते हैं। केवल फल बाहर होते हैं। कहीं कहीं सूत वस्तुकी सतह पर फैलते हैं, जैसे ऊपर बतलाई हुई जूतेकी फफूंदीमें। गोबरछत्तेका उदाहरण लीजिये; छाता जो ऊपर आता है फल मात्र है। फंगसका सारा शरीर तो उसके नीचे मिट्टीमें फैला होता है और कभी कभी सफेद काईकी भांति दिखलाई देता है। इसमें यह
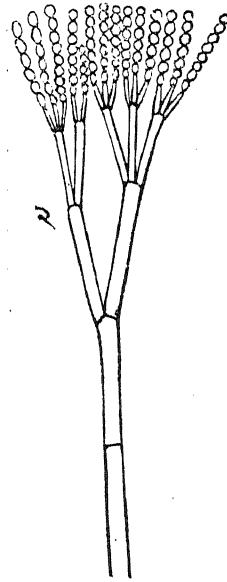
(३९) चित्र २

† अंग्रेज़ी शब्द

असाधारण विशेषता है कि एक छोटा शरीर अपने से बड़ा फल धारण कर सकता है। ( चित्र ३ )

(४०) चित्र ३
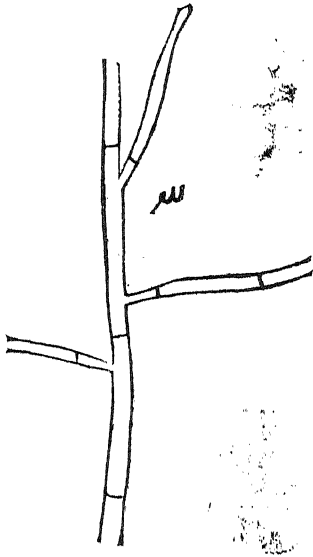
आकार डील डौल रंग रूपमें घुए नाना प्रकार के होते हैं। अधिकतासे यह अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, जिन्हें पहिचाननेके लिए अणु वीक्षणकी सहायता लेनी पड़ती है। परन्तु बहुत से बड़े भी होते हैं, जिनकी बनावट खाली आंखोंसे मालूम हो जाती है। प्रकृति निरीक्षण का अभ्यास रखने वालों ने सड़कोंके किनारे या जंगलोंमें कई बार देखा होगा कि वृक्षोंकी शाखाओं पर कानके आकार के घुए लगे रहते हैं
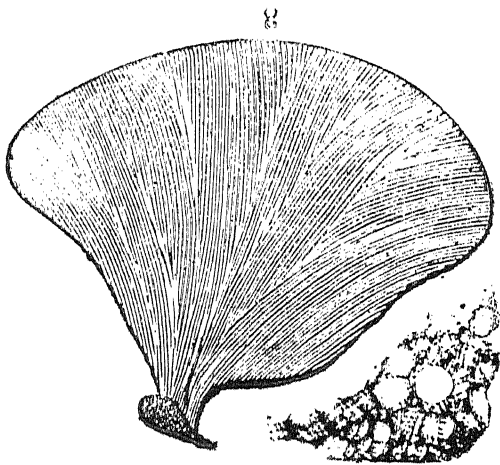
(४१) चित्र ४

जो बहुधा सफेद या भूरे रंगके होते हैं। इन्हें कठफूला कहते हैं। इनमें कोई तो सदा काष्ठपर लगे रहते हैं और कोई बरसातमें उगकर पीछे झड़ जाते हैं। कोई घुए छातेके आकारके होते हैं; कोई तूंबेके आकारके फफोले से; कुछ ठोस गोलाकार होते हैं और मिट्टीके नीचे ही रहते हैं। सूक्ष्म प्रकार के घुए खाली आंखोंसे देखनेमें वृक्षादिकी पत्तियोंपर चित्तियोंके रूपमें या अन्य पौधोंके फलों और पत्तोंके ऊपर काले, नारंजी, पीले, भूरे रंगकी बुकनीके रूपमें दिखाई पड़ते हैं। (चित्र ४,५,६,७,)
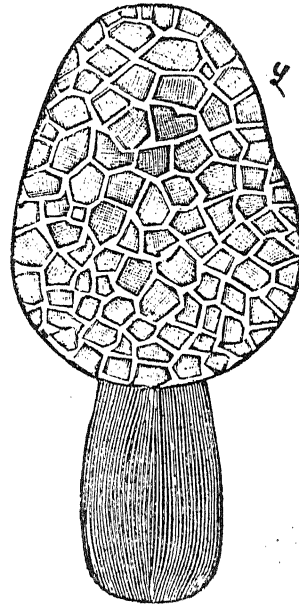
(४२) चित्र ५
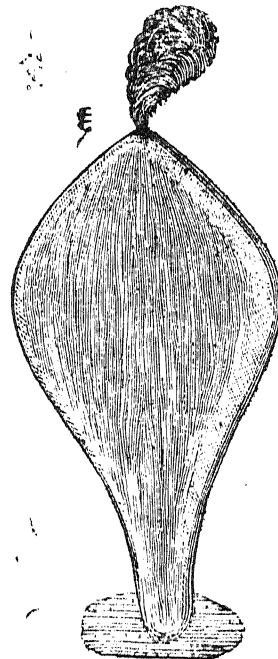
(४३) चित्र ६
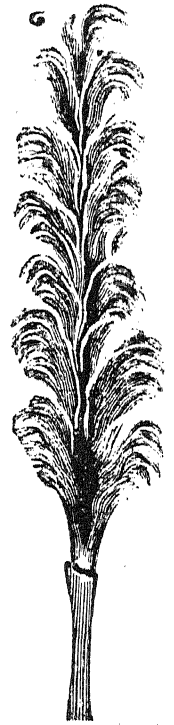
(४४) चित्र ७

# भोजनके समय जलपान और मानसिक स्थिति

१—जलपान

भोजन करते समय जल किस समय पीना चाहिये; आदिमें, मध्यमें, अन्तमें या बारम्बार अथवा भोजनके समय बिल्कुल पानी न पीना चाहिये, यह भी एक आवश्यक प्रश्न है और भिन्न भिन्न विद्वानोंकी इस विषयमें पृथक् पृथक् सम्मतियां हैं। इस प्रश्नके उत्तरमें आयुर्वेद कहता है कि—

समस्थूल कृशा भुक्त मध्यान्त प्रथमाम्बु पाः।

( वाग्भट्ट )

अर्थात्—भोजनके प्रथम पानी पीनेसे शरीर दुबला और अन्तमें पीनेसे स्थूल होता है, परन्तु भोजनके मध्यमें जल पान करनेसे शरीर सम अवस्थामें रहता है। इस कथनके अनुसार भोजनके मध्यमें ही जल पीना ठीक है; आदि किंवा अन्तमें पानी पीनेसे हानि होती है। विशेष कर भोजनान्तमें जल पीना तो बहुत ही हानिकारक है, क्योंकि उस समय कफ बढ़ा हुआ होता है और जल पीनेसे उसके और भी अधिक बढ़ जानेका भय रहता है। भोजनके आदि और अन्तमें जल पीनेसे पाचक रस शिथिल हो जाते हैं और फिर भोजन भले प्रकार नहीं पच सकता। एक अन्य विद्वानका कथन है—

( वारि ) भोजनान्ते विष प्रदम्

अतएव भोजनके मध्यमें ही जल पीना चाहिये; परन्तु उस समय भी जलकी मात्रा बहुत थोड़ी होनी चाहिये, अधिक जल पीनेसे पाचक रस पतले हो जाते हैं और अजीर्ण उत्पन्न हो जाता है। अजीर्ण रोगके कारण बतलाते हुए आयुर्वेदमें लिखा है—

अत्यम्बु पानाद्विषमाशनाश्च।
सन्धारणात्-स्वप्न विपर्ययाश्च॥
कालेपि सात्म्यम् लघु चापि भुक्तम्।
अन्नं न पाकं भजते नरस्य॥

( माधव निदान )

अर्थात् अधिक जल पीने, और विषम भोजन करने—कभी कम, कभी अधिक, कभी किसी समय और कभी किसी समय खानेसे—मल, मूत्र क्षुधा, तृष्णा आदि स्वाभाविक वेगोंको रोकने और सोने की व्यवस्था ठीक न होनेसे (दिनमें सोने, और रातको जागनेसे) समय पर किया हुआ प्रकृतिके अनुकूल और लघु भोजन भी नहीं पचता। अतएव भोजनके साथ किसी समय भी अधिक जल पीना बहुत हानिकारक है।

बहुत से डाक्टरोंकी सम्मति है कि पचन क्रियाका अधिकांश भाग पूरा होने पर अर्थात् भोजन करनेके कोई ३, ४ घंटे पीछे जल पीना चाहिये। यदि भोजनमें रसेदार शाक, दाल इत्यादि पर्याप्त मात्रामें हों तब तो यही नियम ठीक है, परन्तु शुष्क भोजनके साथमें भोजनके मध्यमें थोड़ा जल पी लेना अच्छा है, क्योंकि शुष्क भोजन भले प्रकार नहीं पचता और उसका रस ठीक ठीक न बनकर वह जठराग्निमें दग्ध हो जाता है।

भोजनके समय जो प्यास लगती है वह प्रायः झूठी प्यास होती है और उसका कारण प्रायः चिरभ्यास ही होता है। यह अभ्यास बड़ी आसानी से छोड़ा जा सकता है; भोजन करते समय प्यास मालूम होते ही १, २ मिनटके लिए मुखको ग्राससे खाली रखना चाहिये अथवा १, २ कुल्ले कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे प्यास शान्त हो जाती है और थोड़े दिन पीछे ऐसा अभ्यास हो जाता है कि फिर प्यास लगती ही नहीं।

भोजनके समय उन्हें भी अधिक प्यास लगा करती है कि जिनको बिना चबाये जल्दी जल्दी भोजन करनेकी आदत होती है अथवा जिनका मलाशय मलसे भरा रहता है और आँतोंमें सड़न उत्पन्न हो जाती है।

भोजनमें अधिक गरम मसाले, मिर्च इत्यादि होनेसे भी प्यास अधिक लगती है। अतएव यदि ऐसा कोई कारण हो तो उसे दूर करके ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे भोजनके समय प्यास लगे ही नहीं।

पानी चाहे जिस समय क्यों न पिया जाय सदैव घूंट घूंट करके पीना चाहिये। एक दम गटागट पानी पीनेकी अपेक्षा घूंटघूंट पानी पीनेसे थोड़े ही पानीमें प्यास शान्त हो जाती है; विशेष कर भोजनके समय गटागट पानी पीनेसे मात्रासे बहुत अधिक पानी पिया जाता है और उस समय अधिक पानी अजीर्ण उत्पन्न करता है। प्यास शान्त करनेके लिए भी एक दम गटागट बहुत सा जलपान करनेकी आवश्यकता नहीं होती। स्मरण रखना चाहिये कि प्यास शान्त होनेके लिए आमाशयमें कुछ देर पानीके ठहरनेकी आवश्यकता है।

उष्ण भोजन करनेके पीछे शीतल जल पीनेसे दाँतोंको बहुत हानि पहुंचती है। वह निर्बल हो जाते हैं और हिलने लगते हैं। अतएव यही उचित प्रतीत होता है कि मिर्च मसालोंसे रहित सदा भोजन किया जाय और भोजनके साथ रसेदार दाल शाक इत्यादि पर्याप्त मात्रामें खाये जायँ कि जिससे उस समय प्यास लगे ही नहीं। और फिर भोजनके १,२ घंटे पीछे यथेच्छ जल पान किया जाय। भोजनके १,२ घंटे पीछे पानी पीनेसे एक यह भी लाभ है कि आहारका रस नाड़ियोंमें सरलतापूर्वक और शीघ्र गतिसे भ्रमण कर सकता है; इसीलिए किसी विद्वानने कहा है 'जीर्णे वारिबलप्रदम्'।

२—भोजनके समय मानसिक स्थिति

हमारी मानसिक वृत्तियोंका स्वास्थ्यके साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है, कि उतना आहार विहार का भी नहीं है। रोगोत्पादक खानपान हमें इतने शीघ्र रोगी नहीं बना सकता जितने शीघ्र किसी रोगका निश्चयात्मक विचार। इसी प्रकार अत्यन्त प्रभावशाली औषध भी रोगको इतनी शीघ्र आराम नहीं कर सकती जितने शीघ्र कि रोगके दूर होनेका दृढ़ निश्चय। जो मनुष्य अपने शरीरमें रोग टटोलता है उसे रोग मिल जाता है, चाहे रोगके कारण उपस्थित हों या न हों। कोई ऐसा रोग नहीं है कि जो वहमसे उत्पन्न न हो सकता हो। हिप्नोटिज़्म या इच्छा शक्तिसे चिकित्सा करनेवाले यही करते हैं कि रोगीको रोगके दूर होनेका निश्चय करा देते हैं; ऐसा निश्चय होते ही रोग स्वयं चला जाता है; इसके विपरीत विश्वास दिलानेसे वह लोग शरीरमें रोग उत्पन्न भी कर सकते हैं। एक बार मैंने एक विद्यार्थीके मस्तक पर उँगली रखकर कहा कि तुम्हारे इस स्थान पर दर्द होता है; १ मिनट पश्चात् उसके मस्तकमें उसी स्थान पर पीड़ा होने लगी और इतनी बढ़ गई कि वह उसे सहन न कर सका। यह केवल उसके विश्वासका ही फल था; मन्त्र, जन्त्र, डोरे, तावीज़ और झाड़ फूँकमें यही विश्वास काम करता है और जो मनुष्य रोगीको जितना अधिक रोगसे दूर होनेका विश्वास दिला सकता है वह उतनी ही अधिक सफलता भी प्राप्त कर सकता है*।

इस स्थल पर मानसिक-चिकित्सा पद्धतिके सिद्धान्तों या कार्यों पर विस्तृत विवेचन करना अभीष्ट नहीं है। मैं सर्वसाधारणका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि मानसिक वृत्तियों या विकारों अथवा विचारोंका शरीर पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। चाहे इस प्रभावके कारण कुछ ही क्यों न हों; परन्तु यह शरीरमें अनेक प्रकार के परिवर्तन कर देता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

*सर्व साधारणमें अपनी इस प्रकार की बातोंका दूसरों को विश्वास दिला देने और उनके मन पर प्रभाव डालनेकी शक्ति कम होती है; परन्तु विशेष नियमोंसे इस शक्तिको बढ़ाया जा सकता है।

किसी अभीष्ट वस्तुके प्राप्त होने, ख़ुशीकी ख़बर सुनने या बहुत कालसे बिछुड़े हुये सम्बन्धियोंके मिलाप होने पर चेहरे पर एक विशेष प्रकारका परिवर्तन प्रकट होता है। किसी उत्तम भोज्य पदार्थको देखकर मुखमें लार आ जाती है; इसके विपरीत किसी घृणित पदार्थको देखने, सूंघनेसे भोजनसे अरुचि उत्पन्न हो जाती है। शोक समाचार सुननेसे चेहरा पीला पड़ जाता है; जब विद्यार्थियोंको उनके अनुत्तीर्ण होनेका समाचार मिलता है उस समय उनके चेहरेको देखनेसे अच्छा ख़ासा परिवर्तन दिखलाई देता है। पुत्र शोकसे व्याकुल किसी माताको देखनेसे सहजमें ही पता चल सकता है कि शोकके कारण उसके शरीरमें क्या क्या परिवर्तन हुये हैं। भयानक समाचार सुनने या किसी भयानक दृश्यको देखनेसे शरीर काँपने लगता है। धड़ाकेकी आवाज़ सुननेसे गर्भवती स्त्रियोंके गर्भ गिर जाते हैं। क्रोधके समय आँखें लाल हो जाती हैं। किसी शोक समाचारको सुनकर चक्कर आ जाना या बेहोश हो जाना बहुतोंने देखा होगा। चिन्तासे मनुष्य बहुत शीघ्र दुर्बल हो जाता है; कहावत प्रसिद्ध है कि चिन्ता चितासे अधिक है। यह ऐसी बातें हैं कि जिन्हें हम प्रतिदिन देखते रहते हैं और सब मनुष्योंके जीवनमें इनके न्यूनाधिक प्रभाव घटित होते रहते हैं।

शरीरका अभ्यान्तरिक या वाह्य कोई भी ऐसा अवयव नहीं कि जिस पर मानसिक विकारों या विचारोंका प्रभाव न होता हो। पाचक यन्त्र भी इस प्रभावसे नहीं बच सकते। जिस प्रकार स्वादिष्ट और उत्तम भोज्य-पदार्थोंके देखनेसे भोजनमें रुचि उत्पन्न हो जाती है, भूख प्रतीत होने लगती है और मुखमें लार उत्पन्न होती है उसी प्रकार भोजनमें रुचि होनेसे आमाशयादि पाचक यन्त्रों से भी पाचक रस उत्पन्न होने लगते हैं। भोजनमें रुचि न होने और मानसिक स्थितिके ठीक न होने पर पाचक रस निकलने बन्द हो जाते हैं। इससे प्रकट है कि भोजनको केवल पाचक यन्त्र ही नहीं बल्कि मन और पाचक यन्त्र दोनों मिलकर पचाते हैं। अतएव यह बहुत ही आवश्यक है कि भोजनके समय मानसिक स्थिति सुव्यवस्थित हो। आयुर्वेदमें कहा है—

तृष्णा भय क्रोध परिप्लुतेन लुब्धेन रुग्दैन्य निपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन वा सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति॥

(भाव प्रकाश)

अर्थात्, तृष्णाके समय अथवा जिस समय मनमें भय, क्रोध, लोभ द्वेष इत्यादिके विचार हों उस समय और रोगसे पीड़ित होनेकी दशामें किया हुआ भोजन भले प्रकार नहीं पचता।

इसलिए भोजनके समय मनमें किसी प्रकारके कुत्सित विचार नहीं आने देने चाहियें। जिस समय मन क्षुब्ध हो, क्रोध भय इत्यादि कोई विकार उपस्थित हो उस समय भोजन न करना चाहिये और ऐसे समय भोजन करनेके लिए किसीको विवश करना भी ठीक नहीं। क्रोध, शोकादि दूर होने पर जब मन स्वस्थ हो तभी भोजन करना चाहिये। भोजन करते समय चित्तका प्रसन्न और शान्त होना बहुत आवश्यक है। घबराहट या हड़बड़ीके साथ किया हुआ भोजन अच्छी तरह नहीं पचता और अजीर्ण उत्पन्न करता है।

यह भी याद रखना चाहिये कि भोजनके समय अपने कारबारकी बातें सोचना, या किसी भले बुरे विषयमें कुछ विचारना भी हानिकारक है; भोजन करते समय ध्यान भोजनमें ही रहना चाहिये। ऐसा न होनेसे और उस समय किसी विचारमें मग्न होनेसे (चाहे वह विचार कितना ही उत्तम क्यों न हो) रक्तका प्रवाह मस्तिष्ककी ओर विशेष रूप से होने लगता है और पाचक यन्त्रोंकी ओर इसकी कमी हो जाती है; परन्तु पाचक यन्त्रोंकी ओर इस समय अधिक रक्त पहुँचनेकी आवश्यकता होती है; इसलिए पाचक रस कम उत्पन्न होते हैं और पाचन क्रिया ठीक नहीं होती। इसीलिए आयुर्वेदमें एकाग्रचित्त होकर एकान्त स्थानमें भोजन करनेकी आज्ञा दी है कि जिससे ध्यान इधर उधर न बटे।

ध्यान भोजनमें न रहनेसे मात्रासे अधिक भोजन किया जाना भी सम्भव है, जो बहुत हानिकारक होता है।

यहां पर एक और बात बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है और वह यह कि यद्यपि खान पान के सम्बन्धमें बहुत सावधान रहनेकी आवश्यकता है, परन्तु अत्यधिक शंकित चित्त होना असावधानी की अपेक्षा भी हानिकारक है। हर समय यही विचार करते रहना बहुत बुरा है कि अमुक पदार्थ अमुक हानि पहुँचायेगा, और अमुक पदार्थ अमुक, इसमें यह दोष है, उसमें वह विकार है इत्यादि। जो मनुष्य हर पदार्थमें बुराई खोजता है उसे कोई अच्छा पदार्थ नहीं मिलता। जो मनुष्य जिस रोग-से जितना अधिक डरता है और जितना फूँक फूँक कर क़दम रखता है उसको वह रोग उतना ही अधिक चिपटता है। मतलब यह है कि कुछ सोचे समझे बिना अनाप, शनाप मनमाना आहार विहार करना भी हानिकारक है और सीमासे अधिक फूँक फूँक कर क़दम रखना भी स्वास्थ्यनाशक है।

—गोपीनाथ गुप्त

## लाहनसे चमड़ा और रबड़

दस भाग लाहन (जिसमें आधा पानी मिला हो), एक भाग ग्लिसरीन और $\frac{6}{10}$ भाग टारके साथ खूब मिलाइये; जब मिल चुके तो उसमें $\frac{6}{10}$ भाग ग्लू गला दीजिये। फारमेल्डी हैड मिला कर, गरम कीजिये और गरम रहते ही सांचोंमें दबा दीजिये। यदि कृत्रिम रबड़ बनानी हो तो कम दबाव और चमड़ा बनाना हो तो अधिक दबाव डालना चाहिये। (Popular Sc. Siftings Dec 27, 1921)

## कपकपीसे गरमी आती है

यह तो एक साधारण बात है कि जब कभी मांस पेशियां हरकत करती हैं, हिलती हैं या काम करती हैं, तो गरमी पैदा होती है। जब कपकपी लगती है तो गरमी पैदा होती है और इस प्रकार सरदी कम हो जाती है। वास्तवमें कपकपी उन सूचनाओं का स्थूल रूप है जो शरीरकी नाड़ियां मस्तिष्कको सर्दी से बचनेका उपाय करनेके लिए देती हैं। यदि कोई वैरी किसी देश पर आक्रमण करे तो जिन गांवोंमें वह पहले पहुँचेगा, वहां के आदमी स्वयं उसे रोकनेकी चेष्टा करेंगे और साथ ही राजधानीको भी सूचना देंगे, ठीक यही बात शरीरमें भी सर्दी लगने पर होती है।

## शोरेकी शोधन विधि

(लेखक—प्रो० फूलदेव सहाय वर्म्मा, एम. एस-सी., एफ. सी. एस.)
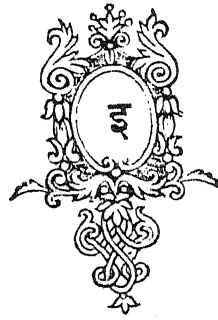
इस लेखके प्रथम भागमें जो दिसम्बरके विज्ञानमें प्रकाशित हुआ है शोरेकी प्रचलित शोधन विधिका वर्णन किया गया है। इस भागमें उस विधिका वर्णन किया जायगा, जिसके द्वारा कम व्यय और परिश्रम से बहुत शुद्ध शोरा तैयार हो सके और जिसे इस लेखकने स्वयं निर्धारित किया है। पहले भागमें कहा जा चुका है कि शोरे की मुख्य अशुद्धि नमक है। प्रश्न केवल यही है कि नमकको शोरेसे कैसे पूर्ण रूपसे निकाल बाहर किया जाय।

साधारण तापक्रम और जलके क्वथनांकके बीच नमककी घुलनशीलतामें बहुत अधिक अन्तर नहीं। ०° शतांशपर सौ भाग शुद्ध जल प्रायः ३६ भाग नमकको घुलाता और १००° शतांशपर प्रायः ४० भाग नमकको घुलाता है। इस प्रकार ०° और १००°शतांशके बीच केवल ४ भागका अन्तर है। ०° शतांशपर सौ भाग शुद्ध जल केवल १३ भाग शोरेको घुलाता है; किन्तु १००° शतांशपर २४७ भाग शोरेको घुलाता है। इस प्रकार ०° और

१००° शतांशके बीच शोरेकी घुलनशीलतामें बहुत अधिक अर्थात् २३१ भागका अन्तर है। इस प्राकृतिक विभिन्न घुलनशीलताके कारण ही शोरेको नमकसे अलग करनेमें बहुत सरलता होती है। यहां एक और बात विचारनेकी आवश्यकता है। क्या नमक और शोरेकी घुलनशीलतामें एक दूसरेकी उपस्थितिमें कोई भेद उत्पन्न होता है। इस प्रश्नपर डा० लेदर और मि० मुकर्जीने प्रयोग किया है, जिससे निम्नलिखित तालिका ली गई है।

| तापक्रम (शतांश) | प्रति १०० भाग जलमें | |
|---|---|---|
| | पोटाश नत्रेत (भाग) | सोडा हरिद (भाग) |
| २६° | ४४. ८ | ३८. ६ |
| २८° | ४७. ४ | ३८. ६ |
| ३०° | ४६. ३ | ३६. १ |
| ३५° | ५७. २ | ३८. ८ |
| ४०° | ६४. ० | ३६. २ |
| ४५° | ६३. ६ | ३६. २ |
| ५५° | ७४. ०० | ३८. ७ |
| ६५° | ११६. ५ | ३८. ५ |
| ७१° | २१८. ८ | ३६. १ |

इस तालिकासे दो बातें मालूम होती हैं। पहली यह कि पोटाश नत्रेत और सोडा हरिदकी घुलनशलिता एक दूसरेकी उपस्थितिमें कुछ कम हो जाती है। दूसरी यह कि ५५°-६५° के बीच सोडा हरिदकी घुलनशीलता और तापक्रमोंकी घुलनशीलताकी अपेक्षा बहुत न्यून है और यह घुलनशीलता साधारण तापक्रमकी घुलनशीलतासे भी कम है।

यदि उपरोक्त कथन सच है तो कच्चे शोरेको ५५°से ६५° शतांश तक गरम कर छोड़ देनेपर नमकका अंश अलग नहीं होना चाहिये और इससे यह सम्भव है कि बहुत ही शुद्ध नमक विहीन शोरा प्राप्त किया जा सके। इस पर जो प्रयोग हुये हैं उनमेंसे कुछ चुने हुये नीचेकी तालिकामें दिये जाते हैं।

| प्रयोग नं० | प्रयोगका तापक्रम (शतांश) | अशुद्ध शोरा (सेर) | १०० भाग अशुद्ध शोरेमें जलके भाग | १०० भाग अशुद्ध शोरेमें पोटाश नत्रेतके भाग | १०० भाग अशुद्ध शोरेमें सोडा हरिदके भाग | लिये हुये शोरेमें शुद्ध पोटाश नत्रेतके भाग सेरमें | शोधित पोटाश नत्रेत प्राप्त सेरमें | शोधित १०० भाग शोरेमें नमकका अंश |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | ७५° | २० | २·७ | ७० | २१·० | १४·० | १३·५ | १·४ |
| २ | ७२°-७५° | ६७ | ५·८ | ३२·० | ५१·० | २१·५ | १६·५ | ३·४ |
| ३ | ५०°-५६° | २० | २·७ | ७० | २१·० | १४·० | १३·० | ०·७ |
| ४ | ५०°-५७° | ३० | ५·८ | ३२·० | ५१·० | ९·६ | ७·५ | ०·५ |
| ५ | ५०°-५७° | ४८ | ५·८ | ३२·० | ५१·० | १५·३ | १३·० | ०·५ |
| ६ | ५०°-५५° | २३·५ | ४·३ | ४८·० | ३६·० | ११·२ | ९·० | ०·४ |
| ७ | ५०°-५५° | १७·५ | ४·३ | ४८·० | ३६·० | १८·० | १५·५ | ०·६ |

ऊपरकी तालिकासे निम्नलिखित बातें मालूम होती हैं।

१. ऊंचे तापक्रम पर गरम करके यदि शोरेके रवोंको अलहदा किया जाय तब उसमें नमकका अधिक अंश रह जाता है। यह प्रयोग नं० १ और २ से विदित होता है।

२. ५०°-५५° शतांश तापक्रम पर प्रयोग करनेसे केवल एक क्रियामें अशुद्धसे अशुद्ध शोरेसे ९९·५ प्रतिशत शुद्ध शोरा प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकारका शुद्ध शोरा डा० लैदर और मि० मुकर्जीके यन्त्रोंसे नहीं प्राप्त हो सका है। इस तापक्रम पर अधिकसे अधिक शोरा भी निकल आता है। ऊँचे तापक्रम पर शोरेके नष्ट हो जानेकी सम्भावना रहती है।

ऊपरके प्रयोग जिन अवस्थाओंमें हुये हैं उनका संक्षिप्त वर्णन यह है। कच्चा शोरा शोरेके घोलमें डुबोया जाता है। यह घोल साधारण तापक्रम पर पोटाश नत्रेत और सोडा हरिदसे संयुक्त रहता है। कच्चे शोरेको इसके साथ गरम करने पर वह केवल पोटाश नत्रेतको ही ले लेता है और सोडा हरिद ज्योंका त्यों रह जाता है। पोटाश नत्रेतके अधिकसे अधिक भागको केवल एक बारमें निकाल लेनेके लिए यह अत्यावश्यक है कि शोरेको घोलके साथ खूब मिलाया जाय, जिसमें उन दोनोंको परस्पर सम्मिलित होनेका पूरा अवसर मिले। उबलते तापक्रम तक उन्हें गरम करनेकी आवश्यकता नहीं, जैसा कि साधारणतः साफ करनेके कारखानोंमें होता है; वरन् ५०°-५५° शतांशका तापक्रम ही इसके लिए काफी है। उबलते हुये तापक्रम तक गरम करनेसे लवणका अधिक अंश रह जाता है। यह सम्भव है कि भाफके उड़ जानेसे ही ऐसा होता है। ७५° शतांशका तापक्रम भी इसके लिए उपयुक्त नहीं, क्योंकि इस तापक्रम पर भी प्रायः १.५ से ३.५ भाग प्रतिशत लवण शोरेमें रह जाता है।

५०°-५५° शतांश तापक्रम पर प्रायः एक घन्टा गरम करनेकी आवश्यकता पड़ती है। इतने ही समयमें पोटाश नत्रेतका प्रायः ६० से अधिक फी सैकड़ा भाग निकल आता है। इस प्रकार प्राप्त घोल छाननेके यन्त्रमें छाना जाता है (filter pun)। यह यन्त्र बहुत कीमती नहीं है और छोटेसे छोटे आकारका प्राप्त हो सकता है। छाननेकी क्रिया इसमें बहुत शीघ्रतासे होती है। छाननेसे बहुत सी बिना घुली हुई अशुद्धियां मट्टीके कण इत्यादि दूर हो जाते हैं। रङ्ग भी इसमें बहुत कुछ हलका हो जाता है। रङ्गको बिलकुल दूर करनेके लिए एक दूसरे यन्त्रकी आवश्यकता पड़ती है। इस छाने हुये घोलके ३ हजार भागमें एक भागके हिसाबसे यदि ग्लू पानीमें घोल कर डाल दिया जाय और सारे घोलको कुछ मिनट तक उबलनेके तापक्रम पर रखा जाय, तो सारे रङ्गीन पदार्थ फेनके रूपमें तहपर इकट्ठे हो जाते हैं और घोल बिलकुल साफ हो जाता है। गरम करनेमें कुछ पानीके उड़जानेकी सम्भावना रहती है। इस कमीको पूरा करनेके लिए यह आवश्यक है कि अन्तमें शुद्ध पानी डाल कर उसे पूरा कर दें। इसके बाद वह घोल ठंडा होनेके लिए छोड़ दिया जाता है। साधारणतः तीसरे दिन अधिकांश भाग शोरेका रवोंके रूपमें अलग हो जाता है। रवेको घोलसे अलग करनेपर उसमें सटे हुये घोल कणोंको भलीभांति दूर करनेके लिए घुमनेवाले यन्त्रमें रखकर शीघ्रतासे घुमानेकी आवश्यकता पड़ती है। इस क्रिया पर शोरेकी शुद्धता बहुत कुछ निर्भर होती है। इसीसे यह क्रिया अत्यावश्यक है। इस प्रकार घोलको पूर्ण रूपसे निकाल डालने पर, थोड़े शुद्ध जलसे धोकर फिर उसे घुमा देना चाहिये, जिसमें लवणका बचा अंश भी बहुत कुछ निकल जाय। इस प्रकार ९९.५ प्रतिशत शुद्ध शोरा प्राप्त हो सकता है।

कच्चा शोरेसे गरम कर घोल निकाल लेने पर जो सीठा बच जाता है उसमें प्रायः ८ से ९ भाग फी सैकड़ा शोरा रह जाता है। इसे जल द्वारा घुला कर निकाल डालनेमें लाभ नहीं; क्योंकि उसमें जलको उड़ा देनेसे जलावनका अधिक खर्च लगता है। घुमानेवाले यन्त्रमें डाल कर घुमा देनेसे उसका बहुत कुछ भाग घोलमें निकल आता है। प्रायः २ से ३ भाग फी सैकड़ा बच जाता है, जो इस विधिसे नहीं निकाला जा सकता।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे निम्न लिखित बातें मालूम होती हैं।

१—शोरेके घोलको ५०°-५५° शतांश तापक्रम-पर गरम करना चाहिये।

२—इस प्रकार प्राप्त घोलको यन्त्रसे छान कर, थोड़ा ग्लू मिला कर, उबलनेके तापक्रम तक गरम करके छोड़ देना चाहिये।

३—रवे निकल आने पर उन्हें घोलसे अलग कर घुमाने वाले यन्त्रमें घुमा कर थोड़ा शुद्ध पानी डाल, फिर घुमा कर सुखा देना चाहिये। इस क्रियासे प्रायः ९९·५ प्रतिशत शुद्ध शोरा प्राप्त हो सकता है।

४—सीठेमें बचे हुये शोरेका अधिक भाग घुमनेवाले यन्त्रमें डाल कर घुमाकर निकाल लेना चाहिये।

---

## भोजनके पश्चात्‌के कृत्य

भोजनके पश्चात् स्वच्छ और शुद्ध जलसे भले प्रकार मुख-प्रक्षालन (कुल्ले) करना चाहिये। भोज्य पदार्थोंके छोटे छोटे कण जो दांतोंकी सन्धियोंमें रह जाते हैं उनसे दांतोंको अच्छी तरह साफ़ करना चाहिये। यदि यह अन्न कण दांतोंमें रह जाते हैं तो समय पा कर सड़ने लगते हैं और उनमें कृमि उत्पन्न हो जाते हैं; मुखमें दुर्गन्ध आने लगती है, दांतों पर पीले रंगका मैल जम जाता है और उनमें पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। कृमि दांतोंकी जड़ोंको खोखला करके उनमें अपना निवास स्थान बना लेते हैं और फिर बहुत से यत्न करने पर भी प्रायः नष्ट नहीं होते; इन क्रिमियोंके कारण दांतोंमें कभी कभी इतनी तीव्र वेदना होती है कि उसका सहन करना बहुत कठिन हो जाता है। क्रिमियोंके स्थान पर दांत प्रायः काले हो जाते हैं। दांतोंको साफ़ न करनेसे वह निर्बल हो जाते हैं और दांतोंका किरना, मसूढ़ोंका फूलना इत्यादि दांतों और मसूढ़ोंके कई रोग उत्पन्न हो जाते हैं। दांतोंकी जड़में एक प्रकारका गोंद रहता है; दांतोंको साफ़ न करनेसे उनपर जो मैल जमता है वह उस गोंदको खा जाता है, जिससे दांत हिलने लगते हैं तथा समय से पूर्व ही गिर जाते हैं। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि दांतोंके खराब हो जाने पर स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता; क्योंकि पचन क्रियाका एक मुख्य काम दांतोंके ही सपुर्द होता है; जिसका वर्णन पीछे किया जा चुका है।

दांतोंको साफ़ न करनेसे न केवल दन्त रोग ही उत्पन्न होते हैं प्रत्युत् दन्तोद्भव कृमि और मल रूप विष भोज्य पदार्थों और थूकके साथ उदरमें प्रविष्ट होकर नाना प्रकारके रोग उत्पन्न कर देता है। मुखकी दुर्गन्ध फेफड़ेमें जाकर उसके कार्यमें भी बाधा डालती है। खेदका विषय है कि यूरोप निवासियोंके संसर्गसे कुछ भारतीय जेन्टलमैन भी भोजनके पश्चात् कुल्ले करनेको फैशनके विरुद्ध समझने लगे हैं। यह उनकी बड़ी भारी भूल है। भोजन करनेके पश्चात् दाँत साफ़ करना स्वास्थ्य रक्षाके लिए बहुत ही आवश्यक है। दांत साफ़ करना असभ्यता नहीं बल्कि उन्हें साफ़ न करना ही असभ्यता है। इस विषयमें हमें यूरोप निवासियोंका अनुकरण नहीं करना चाहिये।

मुख साफ़ करनेके पीछे दोनों भीगे हुए हाथोंको नेत्रों पर मलना चाहिये। ऐसा करनेसे दृष्टिके तिमिर, अन्धकार इत्यादि रोग दूर हो कर दृष्टि बढ़ती है।

भोजनको भली प्रकार पचानेके लिए विद्वद्वर्य माधवाचार्य निम्न लिखित साधन बतलाते हैं—

> भुक्त्वाशत पदं गच्छेद्वामपार्श्वेन संविशेत।
> शब्द रूप रसस्पर्श गन्धाश्च मनसः प्रयात॥

अर्थात् भोजन करके (धीरे धीरे) १०० कदम चलना चाहिये; फिर बाईं करवट लेटना और प्रिय शब्द, रूप, रस, स्पर्श, और गन्ध इत्यादि सेवन करने चाहियें। बाईं करवट लेटनेका प्रयोजन यह है कि दाहिनी ओर यकृत होता है और उस ओर लेटनेसे उस पर दबाव पड़ता है जो पचन क्रियामें बाधा उत्पन्न करता है। स्मरण रखना चाहिये कि भोजनके बाद कुछ देर लेटना ही लाभदायक है,

सोना नहीं; क्योंकि दिनमें सोनेसे कफ़की वृद्धि होती है और कफ़ अग्निको मन्द करता है। आयुर्वेदमें कहा है—

भुक्त मात्रस्यतु स्वप्राद्धन्त्यग्निम् कुपितः कफ।

पचन क्रिया आरम्भ होते ही पाचक यन्त्रोंकी ओर रक्ताभिसरण विशेष रूपसे होने लगता है। इसलिए भोजन करनेके कोई १ घंटे पीछे तक कोई शारीरिक या मानसिक परिश्रमका काम न करना चाहिये, क्योंकि श्रम करनेसे रक्त प्रवाह उस अवयवकी ओर अधिक होने लगता है, जिससे कि काम लिया जाता है और पाचक यन्त्रोंकी ओर उसकी कमी हो जाती है, जिससे पाचन-क्रियामें विघ्न उपस्थित होता है।

भोजनके पश्चात् १०० कदम चलनेके लिए अनुमति दी गई है। परन्तु वह व्यायाम करनेके उद्देश्यसे नहीं दी गई। इसलिए भोजन करनेके पश्चात् तेज़ीसे भागना न चाहिये। कहा गया है कि

आयुश्च कममागाम्य मृत्युर्धावति धावतः (चरक)

अर्थात-भोजनके पश्चात् धीरे धीरे गमन करनेसे आयु वृद्धि होती है और दौड़नेवालेके पीछे मृत्यु दौड़ती है।

कुछ लोगोंको भोजनके पीछे पान खानेका अभ्यास होता है। पान खानेसे (यदि वह उपयुक्त मात्रामें खाया जाय तो) कुछ लाभ अवश्य पहुँचता है; परन्तु अधिक खानेसे लाभकी अपेक्षा बहुत अधिक हानि पहुँचती है। भोजनके पश्चात् पान खानेसे मुखकी दुर्गन्ध, दान्तोंके मल और वायुका नाश होता है; जिह्वा और इन्द्रियोंमें शुद्धता आती है: एवं गल रोग नष्ट होते हैं। पानसे पाचनशक्ति भी बढ़ती है और मल साफ़ होता है।

मध्यान्ह समयके पानमें कत्था और सायंकाल को चूना अधिक लगाना चाहिये। बिना सुपारीके पान खानेसे आयु घटती है और डंठल सहित पान खानेसे बुद्धिका नाश होता है तथा अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

अधिक पान खानेसे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं; पाचन शक्ति क्षीण होती है और दांत खराब हो जाते हैं।

भिषग्मणि भाव मिश्र लिखते हैं कि—

ताम्बूलं नाति सेवेत न विरिक्तो बुभुक्षितः।
देह दृकेश दन्ताग्नि श्रोत्र बलक्षयः॥
शोषः पित्तानिलास्त्रम स्यादति ताम्बूल चर्वणात्।
ताम्बूलं न हितं दन्त दुर्बलेक्षण रोगिणाम्॥
(भाव प्रकाश)

अर्थात् अधिक पान न खाना चाहिये, विरेचित (जिसने जुलाब लिया हो उसे) और क्षुधित पुरुषको पान हानि पहुँचाता है। अधिक पान खानेसे देह, दृष्टि, दन्त औ जठराग्नि, तथा श्रवण शक्ति क्षीण होती है। एवं शोष रोग (देह का सूख जाना) और पित्त वृद्धि तथा वात-रक्त (पित्ती) उत्पन्न होता है। जिनके दांत और दृष्टि निर्बल हों अथवा चक्षु सम्बन्धी कोई रोग हो उन्हें पान खाना हित कर नहीं है।

सम्प्रति ऐसा मनुष्य एक प्रतिशत मिलना भी कठिन है कि जिसके दन्त और नेत्र दोनों ही रोग रहित हों; प्रायः सभी दुर्बल दृष्टि देखनेमें आते हैं। चश्मोंकी बाहुल्यता इसका प्रकट प्रमाण है। इसके अतिरिक्त न्यूनातिन्यून ७५ प्रतिशत मनुष्य दन्त रोगोंसे पीड़ित रहते हैं। ऐसी अवस्थामें सभीको पान त्याग देना उचित है। पान कामोत्तेजक होता है। इसलिए विद्यार्थियोंको तो यह कभी भूल कर भी न खाना चाहिये।

कुछ लोग पान न खा कर केवल सुपारी खाया करते हैं। यह अभ्यास बहुत ही बुरा है, विशेष कर धातु क्षीणता उत्पन्न करता है।

मेरे विचारमें तो पानके स्थानमें यदि भोजनके अन्तमें १-२ छोटी काली हड़ खाई जाय तो बहुत उत्तम है। हड़ के प्रभावसे भोजन शीघ्र पचता है और अजीर्ण, मन्दाग्नि रोगोंका नाश होता है।

भोजनादि औ' अन्तमें पथ्या* सदा पथ्या कही
( निघंटु विनोद )

हड़का स्वाद कुछ अच्छा नहीं होता। इसलिए शायद बहुत से सज्जन उसे खाना पसन्द नहीं करेंगे अतएव हड़के स्वादिष्ट बनाने और शुद्ध करनेकी विधि लिखी जाती है। इस विधिसे तैय्यार की हुई हड़ बहुत स्वादिष्ट होती है और बाज़ारमें बिकने वाली "शुद्ध हरों" से कहीं अधिक लाभदायक है।

स्वादिष्ट हड़ बनानेकी विधि

छोटी छोटी काली हरें लेकर उन्हें मठामें भिगो देना चाहिये। साथ ही थोड़ा सा सैंधा नमक भी डाल देना चाहिये; तीसरे दिन मठाको बदल देना चाहिये और उसमें पुनः सैंधा नमक डाल देना चाहिये। इस प्रकार तीन चार बार मठा बदलनेके पीछे जब हरों का कड़वापन कुछ जाता रहे और वह कुछ नमकीन हो जाय तब उन्हें छायामें सुखाकर पीछे मन्दमन्द अग्निपर घीमें तल लेना चाहिये और आवश्यकता हो तो उस समय उनमें थोड़ा सा सैन्धव और डाल देना चाहिये।

यह हरें पेटके अनेक रोगोंके लिए हितकर हैं और भोजनके आदि तथा अन्तमें खानेसे भोजन शीघ्र पचता है। साथ ही यह अन्य चूर्णोंकी भांति कोई हानि भी नहीं पहुँचातीं; क्योंकि इनका प्रभाव आमाशयादि पर अधिक तीव्र न हो कर मन्द होता है।

भोजनके पश्चात् मूत्र त्याग करना भी अच्छा है, क्योंकि इससे कटि-शूल और मूत्राशयके कई रोग होनेका भय नहीं रहता। भोजन के पश्चात् ३, ४ घंटे तक मानसिक स्थिति वैसी ही रहनी चाहिये जैसी कि भोजन करते समय।

भोजनान्तमें त्याज्य कर्म

शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धो जुगुप्सितः।
भुक्तमप्रियमन्नमति हास्यञ्च वामयेत् ॥
शयनं चासनञ्चापि न भजेत् द्रवाधिकम्।
नाग्न्या तपो न प्लवनं न यानं नापि वाहनम् ॥
व्यायामञ्च व्यवायञ्च धावनं यानमेवच ।
युद्धं गीतञ्च पाठञ्च मुहूर्तं भुक्तवांस्त्यजेत् ॥

अर्थ—अप्रिय-शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गन्धसे तथा अप्रिय अन्न खाने और अधिक हंसनेसे वमन हो जाता है। इसलिए इन सबका त्याग कर देना चाहिये।

सोना, बैठे रहना, द्रव पदार्थ ( तक्रको छोड़ कर ) पीना, तापना, तैरना, सवारी पर चढ़ना; घोड़े इत्यादि पर सवार होना, व्यायाम, मैथुन, दौड़ना, युद्ध करना, गाना ( गान सुनना नहीं ) और पढ़ना यह सब कार्य भोजनान्तमें त्याज्य हैं। भोजनान्तमें पढ़ना बहुत हानिकारक है। इसलिए स्कूलोंका समय ऐसा होना चाहिये कि जिसमें विद्यार्थियोंको भोजन करते ही स्कूलके लिए न भागना पड़े। हमारे देशमें पाठशालाओं और स्कूलोंका समय प्रातःकालका होना चाहिये; दस बजे या उसके कुछ आगे पीछेका समय पढ़ाईके लिए उपयुक्त नहीं है; ऐसा समय होनेसे एक तो विद्यार्थियोंको जल्दी जल्दी घबराहटके साथ बिना चबाये भोजन करना पड़ता है। फिर भोजन करते ही तेज़ीसे स्कूल जाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त भोजन करते ही पढ़नेमें लग जानेसे आलस्य आता है और पाठमें मन नहीं लगता। मतलब यह कि भोजन करते ही पढ़ने लगनेसे न तो भोजन ही भले प्रकार पचता है और न पठन-पाठनका कार्य ही समुचित रूपसे होता है।

विद्यार्थियोंको स्वास्थ्य रक्षाके नियमोंका उल्लंघन करनेके लिए इस प्रकार बाध्य करना उनके वर्तमान और भविष्य जीवनको दुःखमय बनाना और उनके साथ भारी अन्याय करना है।

—गोपीनाथ गुप्त

---

* पथ्या, हरीतकी, हड़।

# बङ्गरोग और बङ्गरोदन

जिस प्रकार मनुष्योंको रोग हुआ करते हैं, उसी भांति कुछ धातुओंके भी रोग हैं। मामूली टीन या बङ्ग रवेदार होती है। यदि एक छोटी टीनकी छड़ लेकर कानके पास लाएं और उसको दोनों किनारोंको पकड़कर लचाएं तो स्पष्ट शब्द सुनाई पड़ेगा। इसी शब्दको बङ्ग रोदन अथवा बङ्ग शब्द कहते हैं। इसका कारण यह है कि बङ्गके रवे मोड़ने पर एक दूसरे से रगड़ खाते हैं; रगड़नेसे ही शब्द उत्पन्न होता है।

जाड़ेके दिनोंमें जब तापक्रम १८°श से कम हो जाता है तो टीन रवेदार अवस्था से बे-रवा अवस्थामें परिणत होनेकी चेष्टा करती है। ऐसा जब होता है तो टीनकी छड़ अथवा अन्य वस्तुएं चूर्ण रूपमें बिखर कर नष्ट हो जाती हैं। पहले पहल यह बात अर्डमन महोदय ने सं० १७८४ वि० में देखी थी। उस वर्ष लन्दनमें बड़ी कड़ी सरदी पड़ी थी। उनके पास टीनकी बनी आर्गन पैप तुरई थीं। एक दिन उन्होंने देखा कि तुरई गायब है और उनके स्थान पर चूर्णका ढेर लगा है। खोज करने पर पता चला कि यह बङ्ग का ही रूपान्तर है। १८°श या इससे नीचे तापक्रमों पर टीनका रूप बदल सकता है। इसीलिए १८°श को परिवर्तन तापक्रम (Transition Temperature) कहते हैं। और इस परिवर्तनको बङ्गरोग कहते हैं। यदि किसी बङ्गके रोगी टुकड़ेको (अर्थात् ऐसे टुकड़ेको जो धीरे धीरे बदल रहा हो) किसी स्वस्थ टुकड़ेके पास रखदें तो स्वस्थ टुकड़ेको भी यह रोग हो जायगा और वह पहलेकी अपेक्षा बहुत शीघ्रतासे बदलने लगेगा। अतएव यह रोग छूतका रोग है।

जैसा हम ऊपर लिख आये हैं यह रोग नहीं है। बङ्गका रूपान्तर मात्र है। बङ्गका रवेदार रूप १८°श के ऊपर स्थायी है और बे-रवा रूप १८°श के नीचे स्थायी है। इसीलिए यदि बे-रवा रूप १८°श से ऊँचे तापक्रम पर हो तो वह अस्थायी अवस्थामें है अर्थात् किसी समय भी वह रवेदार रूपमें बदल जायगा। इसी प्रकार १८°श के नीचे बे-रवा रूप अस्थायी होनेके कारण किसी समय भी बदल सकता है, परन्तु परिवर्तन जलदी करने के लिए कोई बाहरी कारण अवश्य होना चाहिये। यह केवल इसी परिवर्तनमें नहीं देखा जाता, अन्य परिवर्तनों में भी ऐसा ही होता है। दो एक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

बरफ़ ०°शके ऊपर अस्थायी और उसके नीचे स्थायी होती है। पानी ०°श के ऊपर स्थायी और नीचे अस्थायी अवस्थामें होता है। अब एक नली में पानी भरकर जमने-मिश्रण (Freezing mixture) में रख दीजिये। नमक और बरफ़ मिला कर यदि मिश्रण बनाया है तो – १०°श तक सहजमें ही पानी ठंडा हो जायगा। दस पांच मिनट तक नलीको ठंडा होने दीजिये। आप देखेंगे कि पानी बरफमें नहीं बदला, यद्यपि तापक्रम – १०°शके लगभग है। पहलेसे नलीमें तापमापक भी रख सकते हैं, परन्तु मिश्रणमें नली डुबोनेके समय उसे डट्टेमें कस देते हैं, जिसमें वह खड़ी रहे और गिर न जाय, बादमें छूना न चाहिये। अब ज़रा ताप मापकको ऊपरसे पकड़ कर हिलाइये। हिलाते ही पानी बरफमें बदल जायगा।

हैपो एक ट्यूबमें लीजिये। ट्यूबको पानी भरे बीकर-आबखोरेमें रखकर, आबखोरेको गरम कीजिये। नलीमें एक ताप मापक भी डाल दीजिये। हो सके तो पानीको ज़रा हिलाते भी जाइये, जिसमें नली तक एक बराबर गरमी पहुंचती रहे। ४०°शके ऊपर हैपो गलने लगेगा, अतएव यह मालूम हुआ कि हैपोका द्रवण बिन्दु ४०° श है। जब हैपो सब गल जाय तो पानी गरम करना बन्द कर

दीजिये। पानी ठंडा होता जायगा: ४०° शसे भी नीचे तक पानी ठंडा हो जायगा, पर हैपो जमेगा नहीं। अब उसमें एक टुकड़ा ठोस हैपोका डाल दीजिये, एक दम हैपो जम जायगा। ऐसी ही घटना परिसंतृप्ति घोलोंके विषयमें देखनेमें आती है

---

## उपवास

पाचक यन्त्रोंको रोगोंसे बचाने, उन्हें सबल बनाये रखने और स्वास्थ्य रक्षाके लिए भोजनकी भांति ही उपवासकी भी अत्यन्तावश्यकता है। हम चाहे आहारादिके सम्बंधमें कितने ही सावधान क्यों न रहें फिर भी कुछ न कुछ भूलें होती ही रहती हैं। आहार सम्बन्धी भूलोंसे पाचक यन्त्रोंमें विकार उत्पन्न होता है और वह रोगी हो जाते हैं; पाचक यन्त्रोंमें रोग उत्पन्न होनेसे अनेक प्रकारके शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं—

सर्वेषामेव रोगाणाम् निदानं कुपिता मलाः।
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहित सेवनम्॥

अर्थात् सब रोगोंका मूल कारण विविध प्रकारका अहित आहार विहार ही होता है। अहित आहार सेवनका विकार पहिले पाचक यन्त्रोंमें उत्पन्न होता है और फिर उसका प्रभाव समस्त शरीरमें फैल जाता है। यदि हमारे पाचक यन्त्र स्वस्थ रहें तो आहारजनित कोई रोग भी नहीं हो सकता। पाचक यन्त्रोंको स्वस्थ रखने और उनकी शक्ति बनाये रखनेके लिए उपवास एक सरल और प्राकृतिक उपाय है।

उपवाससे पाचक यन्त्रोंको विश्राम मिलता है और उनके भीतर जो हानिकारक विजातीय पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं वह बाहर निकल जाते हैं और पाचक यन्त्र निर्मल हो जाते हैं।

आराम करनेसे जिस प्रकार, मस्तिष्क और शरीरके अन्य अवयव तरोताज़ा और स्वस्थ हो जाते हैं, उसी प्रकार विश्राम लेनेके पीछे आमाशय भी अपना कार्य्य पहिलेकी अपेक्षा बहुत अच्छी तरह करने लगता है।

उपवाससे न केवल आमाशय ही निर्मल होता है प्रत्युत् शरीरके अन्य स्थानोंका मल भी निकल जाता है।

लंघन या उपवासके दिनोंमें जिह्वा पर सफ़ेद या पीलेसे रंगका मैल जमता है, पसीने और श्वासमें दुर्गन्ध आने लगती है, प्रातःकाल सोकर उठने पर मुख प्रक्षालनसे पूर्व देखने पर भी कभी कभी जिह्वा पर ऐसा मैल जमा हुआ मिलता है। यह मैल शरीरके भीतरके हानिकारक पदार्थ हैं और शरीरमें जिस स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं वहीं रोग उत्पन्न करते हैं अथवा रक्तमें मिल कर उसे दूषित करते हैं और उसकी गतिमें बाधा उपस्थित करते हैं। उपवास करनेसे यह सब विजातीय पदार्थ शरीरसे बाहर निकल जाते हैं और फिर जिह्वा साफ़ हो जाती है, श्वास और पसीनेमें दुर्गन्ध नहीं रहती।

शरीरके भीतर एक स्वाभाविक शक्ति विद्यमान है कि जो शरीरके मलको उससे बाहर निकालती रहती है; यह शक्ति हर समय अपना कार्य करती रहती है परन्तु हमारी भूलोंके कारण शरीरमें इतना मल जमा हो जाता है कि वह शक्ति रोज़का काम रोज़ पूरा नहीं कर सकती; उपवासके दिनोंमें इस शक्तिको अपना पिछला बचा हुआ काम करनेका अवसर मिल जाता है।

अजीर्ण, मन्दाग्नि इत्यादिके रोगियोंको तो उपवाससे बहुत ही लाभ पहुंचता है। कई वर्षकी पुरानी मन्दाग्नि, अजीर्ण इत्यादि जिन्हें औषधोंसे कुछ भी आराम न होता हो केवल उपवाससे नष्ट हो सकते हैं। परन्तु रोग होनेसे पहिले ही उसका उपाय करना चाहिये। रोग उत्पन्न होनेकी प्रतीक्षा करना मूर्खता है। अतएव यह न सोचना

चाहिये कि उपवास केवल रोगियोंके लिए ही लाभदायक है, बल्कि स्वस्थ मनुष्योंको भी महीने पन्द्रह दिनमें १, २ दिनका उपवास अवश्य करते रहना चाहिये।

हिन्दू धर्ममें, एकादशी, पूर्णिमा, इत्यादिका व्रत रखनेका विधान है। स्वास्थ्य रक्षाके लिए यह बहुत ही उपयोगी है। प्रत्येक पक्ष, मास या सप्ताहमें जो दोष सञ्चित होते हैं वह इस प्रकार व्रत रखनेसे दूर होते रहते हैं। परन्तु खेदका विषय है कि नये प्रकाशसे चौंधयाई हुई आँखें इसका कुछ भी महत्व नहीं समझतीं! हिन्दू धर्ममें व्रतोंके लिए जो दिन नियत किये गये हैं वह या तो पक्ष, मास अथवा सप्ताहके अन्तिम दिन हैं अथवा विशेष पर्वोंके दिन हैं; उपवासको सुव्यवस्थित और नियमित बनानेके लिए ऐसे दिनोंका नियत करना बहुत ही उत्तम है। किसी विशेष दिनके नियत किये बिना कभी १० दिनमें कभी ५वें दिन और कभी कई कई महीने पीछे उपवास करनेसे व्यवस्था ठीक नहीं रहती। अनियमित और अव्यवस्थित रूपसे किसी कार्यके करनेसे उतना फल प्राप्त नहीं हो सकता जितना कि सुव्यवस्थित रूपमें करनेसे होता है।

हिन्दू धर्ममें उपवास रखनेकी व्यवस्था बहुत अच्छी है, परन्तु देखा जाता है कि अधिकांश लोग व्रतके दिन नाना प्रकारके गरिष्ठ भोजन, अनेक तरहकी मिठाइयां और पकवान इत्यादि दुष्पाच्य पदार्थ खाते हैं। ऐसे उपवास या व्रत रखनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता। व्रतका सुफल तभी प्राप्त हो सकता है कि जब व्रतकी अवधि समाप्त होने पर फलाहार और लघु भोजन किया जाय।

कुछ वर्षोंसे पश्चात्य विद्वानोंका ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ है और उन्होंने कई प्रकारके कठिन रोगोंको केवल उपवास द्वारा नष्ट करनेमें सफलता प्राप्त की है। कितने ही विद्वानोंका कथन है कि समस्त रोग केवल उपवासके द्वारा ही नष्ट हो सकते हैं, परन्तु यह उनकी अत्युक्ति है। रोग दो कारणोंसे उत्पन्न होते हैं एक तो शरीरमें विजातीय पदार्थोंके जमा हो जानेके कारण और दूसरे रस रक्तादि धातुओंकी क्षीणतासे। पहिले प्रकारके अधिकांश रोगोंको नष्ट करनेमें उपवास अवश्य सफल हो सकता है, परन्तु दूसरे प्रकारके रोगोंमें बहुत कम सफलता प्राप्त होना सम्भव है। धातुओंकी क्षीणताका कारण विजातीय पदार्थोंकी वृद्धि भी हो सकती है, परन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं होता। पोषक पदार्थोंकी कमी और अन्य कारणोंसे भी रोग उत्पन्न होते हैं फिर शारीरिक धातुओंके साथ विजातीय पदार्थोंका नष्ट हो जाना भी सम्भव है। अतएव सभी रोगोंमें उपवास करना ठीक नहीं, उपवास करनेसे पहिले अपनी स्थितिका विचार अवश्य कर लेना चाहिये। यदि सभी रोगोंमें उपवाससे लाभ होना सम्भव होता तो प्राचीनाचार्य आयुर्वेदज्ञ ऋषि मुनियोंको इतने वृहदौषध शास्त्रके रचनेकी क्या आवश्यकता थी? यह बात भी नहीं है कि वह लोग उपवासके महत्व और उसकी रोग नाशक शक्तिसे अनभिज्ञ थे। वह उपवासके प्रभावोंसे भली प्रकार परिचित थे, जिन रोगोंमें उपवास हित कर हो सकता है उनमें उपवास करनेकी आज्ञा उन्होंने भी दी है। कितने ही स्थानों पर केवल उपवास या लंघनको ही मुख्य औषध बतलाया है, जैसे—

रसजानां विकाराणां सर्वं लंघनमौषधम्।

( चरक )

ज्वराधिकारे—

ज्वरे लंघनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात्।
आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान्निरोधयन्॥
विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत्।

( चक्रपाणि )

तथा अतिसारे—

लंघनमेकं मुक्त्वान चान्यदस्तीह भेषजं बलिनः।
समुदीर्ण दोष चयं शमयति तत्पाचयत्यपि च॥

( चक्र दत्त )

मतलब यह कि सभी मनुष्योंको और सभी रोगोंमें उपवास लाभदायक नहीं हो सकता;

हां पेटके अधिकांश रोगोंमें अवश्य हितकर होता है। स्वस्थ मनुष्योंको २,३ दिनसे अधिक उपवास नहीं करना चाहिये। पाश्चात्य देशवासियोंको (जिनका भोजन मांस, इत्यादि दुष्पाच्य पदार्थ होते हैं और जो दिनमें कई कई बार भोजन करते हैं) अथवा जिन भारतीयोंका भोजन भी उन्हींके समान बिगड़ा हुआ हो उन्हें कभी लम्बा उपवास हितकर हो सकता है; परन्तु फल, अनाजादि लघु भोजनों पर निर्वाह करनेवाले अधिकांश भारतियोंके लिए बिना किसी विशेष आवश्यकताके लम्बा उपवास हितकर नहीं हो सकता।

लंघनकी अवधिके विषयमें महर्षि आत्रेय कहते हैं—

प्राणविरोधी ना चैनं लंघने नोपपादयेत।
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रिया क्रमः॥ (चरक)

लंघन उसी समय तक करना चाहिये जब तक कि प्राणोंको कष्ट न पहुंचे (शरीर सहन कर सके), क्योंकि स्वास्थ्य बलाधीन होता है और स्वास्थ्यकी प्राप्तिके लिए ही चिकित्सा की जाती है।

ठीक लंघन हुआ है या नहीं है?

इसकी पहिचान चक्र दत्तमें इस प्रकार लिखी है कि—

अपानवायु और मल मूत्रादिका भले प्रकार उत्सर्ग हो, शरीरमें लाघव प्रतीत हो, हृदय, कण्ठ, डकार और मुख शुद्ध हों, तन्द्रा और ग्लानि न हो, पसीना आता हो और भोजनमें रुचि हो, भूख, प्यास उत्पन्न हुई हो, अन्तरात्मामें किसी प्रकारकी व्यथा या ग्लानि न हो। मन प्रसन्न हो यह उचित अवधि तक लंघन होनेके लक्षण हैं। यदि अंग मर्द (गात्र टूटना) सन्धियोंमें वेदना, कास—खांसी—मुखका सूखना, क्षुधानाश, अरुचि, तृषा, कर्ण और दृष्टि शक्तिकी दुर्बलता और अग्निमान्द्य इत्यादि लक्षण प्रकट हों तो समझना चाहिये कि सीमासे अधिक लंघन किया गया है।

उपवासके पहिले और दूसरे दिन बड़े ज़ोरकी भूख लगा करती है। यदि इस भूखको सहन कर लिया जाय तो फिर अन्नको पचानेवाली शक्ति पूर्ण रूपसे मलको बाहर निकालनेमें लग जाती है और फिर क्षुधा पहिले दिनकी भांति पीड़ित नहीं करती।

उपवासके दिनोंमें जल बराबर पीते रहना चाहिये और रूक्षता बढ़ जाने पर यदि आवश्यकता प्रतीत हो तो वस्ती यन्त्र से आंतोंको भी साफ करना चाहिये।

उपवासके दिनोंमें प्रतिदिन कुछ शारीरिक भार कम हो जाता है, परन्तु इससे घबराना नहीं चाहिये। उपवासके पीछे यह भार बहुत शीघ्र पूरा हो जाता है।

उपवासकी अवधि समाप्त होने पर पहिले दिन सन्तरे इत्यादिका रस, फिर दूध और लघु पाकी फल इत्यादि खाने चाहियें और फिर धीरे धीरे अपने नित्यके भोजन पर आ जाना चाहिये। यह नियम लम्बे उपवासके लिए है, १ २ दिनके उपवासके पीछे दूध या साबूदानेकी खीर इत्यादि लघु भोजन किया जा सकता है।

उपवास करनेसे स्वभावतः रूक्षता बढ़ जाती है, अतएव उपवासके पीछे कुछ समय तक कोई रूक्ष (खुश्क) पदार्थ न खाना चाहिये।

उपवास किनको नहीं करना चाहिये?

तत्तु मारुत, क्षुत्तृष्णा मुख शोष भ्रमान्विते।
कार्यं न बाले वृद्धे वा न गर्भिण्याम् न दुर्बले॥

अर्थात्—रूक्ष (खुश्क मिज़ाज वाले) पुरुषों और वात जनित रोगोंमें तथा क्षुधातुर, और तृषित पुरुषको एवं मुख शोष; भ्रम, चक्कर इत्यादि रोगोंमें और बालक, वृद्ध तथा गर्भिणी स्त्री और दुर्बलोंके लिए उपवास हितकारक नहीं है।

---

## गुरुत्वाकर्षण

यदि ऊपरसे कोई वस्तु छोड़ी जाय तो वह पहले सेकंडमें १६ फुट नीचे उतर आयेगी। दो सेकंडमें ६४ फुट और ३ में १४४ फुट इत्यादि। इसी प्रकार गुरुत्वाकर्षणके नियमके अनुसार भिन्न भिन्न ग्रहोंपर उनके भारानुसार वस्तुएं भिन्न भिन्न वेगसे गिरती हैं। गिरते समय पहले सेकंड में कितने फुट उतर आती हैं, इस बातका पता नीचे की सारिणीसे चलेगा।

| | | | |
|---|---|---|---|
| पृथ्वी | ... | ... | १६ फुट |
| चन्द्रमा | ... | ... | २·६ " |
| बुध | ... | ... | ६·६ " |
| शुक्र | ... | ... | १६·१ " |
| मंगल | ... | ... | ६·१ " |
| बृहस्पति | ... | ... | ४२·४ " |
| शनि | ... | ... | १८·६ " |
| अरुण (Uranus) | | ... | १२·८ " |
| वरुण (Neptune) | | ... | १४·२ " |

इस क्रम से ही समझ लेना चाहिये कि उछाली हुई चीज़के वेगके कम होनेका क्रम न्यूनाधिक होगा अर्थात् समान परिश्रम से जितने ऊँचे तक कोई चीज़ उछाली जा सकती है उसका परिमाण भिन्न भिन्न होगा। अगर कोई हाईजम्प करनेवाला पृथ्वी पर १६ फुट ऊंचा कूद सकता है तो चन्द्रमा पर ९९ फुट, बुध पर ३७ फुट, शुक्रपर २० फुट, मंगल पर ४३ फुट, बृहस्पति पर ६ फुट, शनि पर १४ फुट, अरुण पर २३ फुट और वरुण पर १८ फुट कूद सकेगा।

यदि किसी मनुष्यका पृथ्वी पर १२ पंचसेरी (पसेरी) बोझ है तो बृहस्पति पर २८ पसेरी, शनिपर १४ प० और अरुण, वरुण और शुक्रपर प्रायः १० प० बैठेगा। मंगल और बुध पर प्रायः ५ प० और चन्द्रमा पर १० सेर ही रह जायगा और यदि वह किसी लघुग्रह पर पहुँच जाय तो शायद २ चार पाव ही रह जाय।

इसका कारण यह है कि ग्रहोंका भार एक समान नहीं है। प्रोफ़ेसर ग्रिगरीका अनुमान है कि पृथ्वीका भार १६८०००००००००००००००० मन है। यदि इस भारको हम एक मानलें तो सूर्यका ३३६००० इकाई, बृहस्पति का ३१० इ०, शनिका ९३, वरुणका १७ इ० और अरुण (Uranus) का १४ इकाई भार होगा। शुक्र १३/१६ इ०, मंगल ३/३२ इ०, बुध १/१६, और चन्द्रमा १/८० इ० ही बैठेगा। अतएव जो बातें ऊपर लिखी गई हैं वह सब उसी गुरुत्वाकर्षणके व्यापक नियमके अनुसार ही हैं।

---

## वर्ष

जितने समयमें कोई ग्रह सूर्यकी परिक्रमा पूरी कर लेता है, वह समय उस ग्रहका एक वर्ष माना जाता है। हमारे दिनोंके हिसाबसे ग्रहोंके वर्षोंके परिमाण इस प्रकार हैं:—

| | | |
|---|---|---|
| बुध | ८८ | दिन |
| शुक्र | २२५ | " |
| पृथ्वी | ३६५ | " |
| मंगल | ६८७ | " |
| बृहस्पति | ४३३२ | " (लगभग १२ वर्ष) |
| शनि | १०७५९ | " ( " ३० " ) |
| (यूरेनस) अरुण | ३०६८७ | " ( " ८४ " ) |
| (नेपच्यून) वरुण | ६०१२७ | " ( " १६५ " ) |

---

## सत्याग्रही लोहा

लोहेका टुकड़ा पतले शोराम्लमें डाल दीजिये। वह गलने लगेगा, यहां तक कि सब गल जायगा। पर लोहेके एक टुकड़ेको गाढ़े शोराम्लमें डुबो दीजिये और निकाल दीजिये। तदनन्तर उसे गाढ़े शोराम्लमें भी डालिये तो वह न गलेगा। इसी लोहेकी अवस्थाको निष्क्रय (passive) अवस्था कहते हैं। क्या तेज़ तेज़ाबके प्रभावसे लोहेको भी सत्याग्रह अथवा निष्क्रय प्रतिरोध करनेकी सूझती है?

# फिटकरी और हैपो

पो के सम्बन्धमें 'विज्ञान' में बहुत कुछ निकल चुका है। फोटोग्राफरोंके लिए यह एक तरफ (स्थायी करणमें) रसायन है तो दूसरी तरफ नेगेटिवमें रह जाने पर उसको खा भी जाता है, रंग उड़ा देता है। पिछले अंकमें एक टिप्पणीमें यह लिख दिया गया था कि नेगेटिवको अन्तमें धोनेके पहले दो चार मिनटके लिए फिटकरीमें दे दीजिये (फिटकरीके घोलमें डाल दीजिये) तदनन्तर बहते हुए पानीमें धो लीजिये। धोते समय भी यदि नलकी धार फिल्म पर सीधी न पड़े, तो अच्छा है।

श्रीयुत 'सिद्ध हस्त' जीने इन बातों पर सन्देह किया है और उनको गलत बतलाया है। हमारा विनम्रनिवेदन है कि जो बातें हमने लिखी थीं, वह जहां तक हम सोच और समझ सकते हैं, ठीक हैं। यदि सिद्धहस्त जी उनमें कोई गलती पावें तो कृपाकर विस्तृत सूचना दें। नयी बात यदि हमको मालूम हो जाय, तो लाभ ही होगा।

(१) फिटकरीमें डालनेसे हैपो निकल जानेकी बात तो हमने यों ही फिटकरीकी उपयोगिता बतलाते हुए लिख दी थी। यदि हैपो नहीं है तो निकलेगा क्या। परन्तु जैसा श्री० सिद्धहस्त जी ने बतलाया है कि कई बार पानी बदलो, तो यदि इन पानियोंमेंसे एक फिटकरीका घोल हो तो बड़ा अच्छा है। इससे फिल्म भी कड़ी पड़ जाती है और हैपो भी निकल जाता है।

(२) फिटकरी हैपो मारक है। यह बात एक सरल परीक्षासे जांची जा सकती है। हैपोके घोलमें फिटकरीका घोल डालिये, गंधक द्विओषिदकी फ़ौरन बू आने लगेगी। ज़रा गरम कर डालिये तो गन्धक महोदय फौरन अलग हो जायंगे। यदि फिटकरी हैपो घातक न होती तो हैपोका हनन कैसे कर पाती।

(३) इसका आरम्भमें ही प्रयोग कर लेना चाहिये, परन्तु बहुत कुछ हैपो निकाल देने पर। फिल्म कड़ा हो जाने पर, यदि वह कहींसे चटख्या न हो तो या तो फव्वारेके नीचे धोनेको रख दीजिये या यदि जल्दी हो और सधा हुआ हाथ हो तो अंगुलीसे दबा कर पानी सब निकाल दीजिये। फिर पानीसे धोइये, और दबा कर फिल्मका पानी निकाल दीजिये। केवल बहते हुए पानीमें रखनेसे भी सब हैपो नहीं निकलता। फव्वारेसे भी कुछ फिल्म पर दबाव पड़ेगा, अंगुलीसे दबा कर पानी निकाल देनेसे हैपो बहुत जल्द निकल जायगा। इसी लिए धोनेके पहले फिटकरीके घोलमें डालनेकी सलाह दी गयी थी।

(४) फिटकरी इतना भयानक पदार्थ नहीं है जितना हैपो है। इस लिए उसकी इतनी फिक्र करना आवश्यक नहीं। फिटकिरी नेगेटिव का रंग उड़ा नहीं देती, दूसरे निकल भी बहुत जल्दी जाती। यदि नेगेटिवमें पीला पन आगया है तो वह भी, इससे बहुत कुछ निकल जायगा।

सभी हैपो मारक काममें नहीं लाये जाते। आयोडीन (Iodine) भी हैपो मारक है, पर वह तो नेगेटिवको हलका कर देती है। इस लिए हैपो मारकके काम नहीं आती।

साधारणतया तो नेगेटिवको नलके नीचे रखकर धो सकते हैं, परन्तु नलकी ऊँचाई बहुत ज़्यादा न होनी चाहिये। कभी कभी नेगेटिवमें कहीं कहीं फिल्म ढीला पड़ जाता है, वहां पर ज़ोरसे पानी गिरनेसे उखड़नेका भय रहता है। मामूली टेपकी जगह यदि शौवरटेप हो तो अधिक उपयोगी होगा।

---

# प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad

---

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

---


भाग—१४

तुला—मीन १६७८

October 1921 – March 1922


---


प्रकाशक

विज्ञान—परिषत्‌ प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

# विषयानुक्रमणिका

# स्वास्थ्य की रक्षा कीजिये

परन्तु

इस कामके लिए शरीरकी बनावट और अंगों-की रचनाका जानना परमावश्यक है। इस लिए

## डा० त्रिलोकी नाथ वर्मा

कृत

## हमारे शरीर की रचना

पढ़िये। इसके दूसरे भागमें अत्यन्त मनोरञ्जक भाषामें शरीरके अंगोंकी रचना और धर्म बतलाया है। पढ़नेमें उतना ही रोचक है जितना कोई अच्छा उपन्यास। स्त्रियोंको पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक आवश्यक है कि शरीर की रचना जानें। पहले भागमें शरीरके धातुओंकी रचना पर अति उत्तम विधिसे विचार किया गया है। मूल्य पहले भागका २॥) दूसरे भागका ४)।

## विज्ञानके ग्राहकोंको सुभीता

१—जो विज्ञानके ग्राहक दोनों पुस्तकें एक साथ मंगायेंगे उन्हें ६) रुपयेमें ही मिलेंगी। अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

२—विज्ञान परिषद्की पुस्तकों पर भी विज्ञान के ग्राहकोंको हमने रुपयेमें दो आना कमीशन देना निश्चय किया है।

३—अन्य पुस्तकें भी हमारे यहां से मिलती हैं। सूचीपत्र मंगाकर देखिये।

मैनेजर

## विज्ञान पुस्तक भण्डार

प्रयाग

---

## सुअवसर

विज्ञान भाग ३, ४ तथा ५ अब हमने १) प्रति भागके हिसाबसे देना निश्चय कर लिया है। इनमें अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद लेख हैं। अवसर न चूकिये। शीघ्र मंगाइये। भाग ११, १२, १३ भी १) प्रति भागकी दरसे मिल सकते हैं। भाग ६ तथा १० का १॥)।

---

हिमालय पर्वतकी सब प्रकारके प्रमेहों पर रामबाण औषध

## शुद्ध शिलाजीत

सब प्रकारके प्रमेह, बहुत पेशाबका आना, गठिया, बवासीर, कुष्ठ, मृगी, पीला पड़ जाना, श्वास, क्षय, विक्षिप्तता, रक्त विकार, सूजन, कफ विकार, खांसी इत्यादि रोगोंके ऊपर इसका सेवन किया जाता है, जिसके विशेष विवरणकी पुस्तक तथा सेवन विधिका पत्र शुद्ध शिलाजीतके साथ विना मूल्य देते हैं।

मूल्य

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ५ तो० | २) | डा. व्य. ।ᐨ) | २० तो० | ८) | डा. व्य. ।) |
| १० " | ४) | " ।ᐨ) | ४० " | १५॥) | " ॥=) |

## ब्राह्मी बूटी बटिका

ब्राह्मी बूटी स्वरको मधुर करती है, स्मरण शक्तिको बढ़ाती, कुष्ठ, पांडु, बवासीर खांसी, विष, सूजन, ज्वरको नष्ट कर देती है। बुद्धिको तीव्र करती है विद्यार्थियोंको इसके सेवनसे पाठ शीघ्र याद हो जाता है तथा भूला हुआ पाठ स्मरण हो जाता है। वैद्यक ग्रंथोंमें इस ब्राह्मीके गुणोंकी प्रशंसा मुक्तकंठ से की गयी है।

मूल्य १ डब्बीका १॥) डा. व्य. ।)

## सूज़ाककी दवा

कैसा ही नया पुराना सूज़ाक हो इस दवाके सिर्फ सात दिन सेवन करनेसे ही आराम हो जाता है। दो खुराक दवा खाते ही पेशाबकी जलन, कड़क और पीली रंगत जाती रहती है और धारके साथ पेशाब होने लगता है, मवाद और खून बंद हो जाता है।

मूल्य २) डाकव्यय ।ᐨ)

मिलनेका पता:—

मैनेजर हिमालय डिपो, मुरादाबाद यू. पी.

---


सूरजप्रसाद खन्नाके प्रबन्धसे हिन्दी साहित्य प्रेसमें मुद्रित, तथा विज्ञान परिषद्, प्रयागसे प्रकाशित ।